पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ

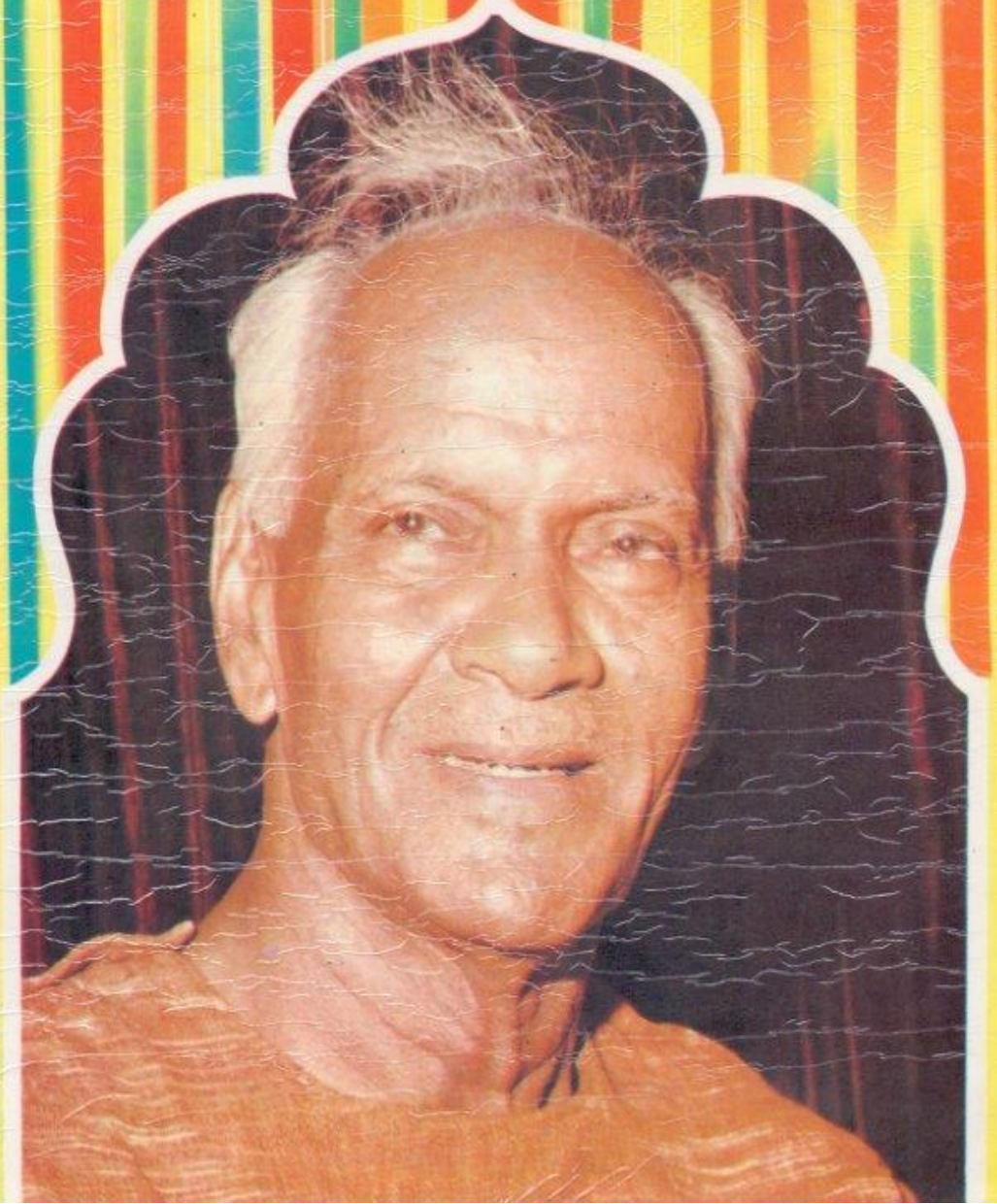

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा - २८१००३

© सर्वाधिकार सुरक्षित

द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

मूल्य १२५)

मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ मातरं भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ॥

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ॥

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ॥

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ॥

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है । परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है । परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी मां शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही है । उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया । आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं है किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानी गणों के, वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है ।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देख सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये । इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबा कर लिखा गया हो । हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता मन को, विचारों को बदलता चला जाता है । लाखों करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छू कर उसने उनका कायाकल्प कर दिया । रूसो के प्रजातंत्र की, कार्ल मार्क्स के साम्यवाद की क्रांति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है । उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े रहते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाय, कैसे छन्दबद्ध, लिपिबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को ।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पंद्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता । वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता-श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आसपास के दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था । साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा । जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे । छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे । किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी । जाति-पाँति का कोई भेद नहीं । जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवाकर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा ।

उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किन्तु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभा सम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय, अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय, यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजा स्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में संपन्न क्रिया कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषि सत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष के चौबीस महा- पुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रांति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि "प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरु सत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गई, संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।"

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने तोड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख सुन कर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद पैदल लम्बा रास्ता पारकर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल

भी गये । छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई । जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अंग्रेजी सीखकर लौटे । आसन- सोल जेल में वे श्री जवाहर लाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से-मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना । यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश ।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जन आक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रांतिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था । नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं । बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये । जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा छीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्य चकित रह गये । उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्त जी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्य मंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधी जी के समक्ष पेश किये गये । बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए । कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुज में सम्मानित किया । उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधान मंत्री राहत फण्ड, हरिजन फण्ड के नाम समर्पित कर दीं । वैरागी जीवन का, सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है ?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरु हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये । सांस्कृतिक आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्री कृष्णदत्त पालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रह कर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया । प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अत: पुन: सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमश: उनके अध्यवसाय घर-घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदय स्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है ।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ, स्थान बदला, आगरा से मथुरा आ गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे । पुस्तकों का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत: स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही । साथ देने आ गयीं

परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दुखी था-पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रांति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परम वंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५८ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देश भर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर विश्वकोश स्तर की अपनी रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्रायः पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनमें महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूल थाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञान सम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तपःपूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों, यज्ञायोजनों के द्वारा विचार क्रांति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों में विशेष कार्य भार सौंप, परम वंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़ कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्त्तन संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट् परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके

लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी बूटी, यज्ञविज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञान सम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युग शिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता, आस्तिकता संवर्धन एवं जन जागृति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञा संस्थान - शक्तिपीठ-प्रज्ञामण्डल-स्वाध्याय मंडल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तप साधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी को दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नव निर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरु सत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युगसंधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेघ महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नव निर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रांति के निमित्त सौर ऊर्जा के दोहन द्वारा विशिष्ट प्रयोगों के माध्यम से विशिष्ट मंत्राहुतियों द्वारा सम्पन्न किये गये इन अश्वमेधों ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस. ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु संपन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९५ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी जा रही है। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो सत्तर खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हो रहा है। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जायेंगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़ चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेंगे' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी-उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

प्रस्तुत खण्ड रामचरित मानस से प्रगतिशील प्रेरणाएँ, रामचरित मानस के प्रेरक तत्व, वाल्मीकि रामायण, रामायण में पारिवारिक आदर्श आदि पूज्यवर की प्रेरणानुसार संकलित पुस्तकों का सम्मिलित रूप है । रामायण को भारतीय धर्म का प्राण कहा जाता है । भारत के हर ग्राम में श्री राम का निवास है क्योंकि वे आदर्शों के प्रतिनिधि, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । भारत की सांस्कृतिक चेतना सुगम—जन-जन की बोली अवधी में लिखी गयी रामचरितमानस से पूरी तरह अनुप्राणित है । इस गहराई तक इस ग्रंथ की पैठ घर-घर में है कि हमारा दैनन्दिन जीवन इस ग्रंथ से— इसके पात्रों के जीवन चरित्र से प्रभावित होता प्रतीत होता है । रामचरित मानस संभवतः अधिक लोकप्रिय इसलिये हुआ कि यह जन-जन की भाषा में लिखा गया था । गोस्वामी तुलसीदास की यह रचना इस राष्ट्र की ऐसी सांस्कृतिक धरोहर है, जिस पर सामाजिक वर्जनाओं —सद्गृहस्थ परम्पराओं तथा पिता-पुत्र, भ्राता-भ्राता के संबंधों को आधारित माना जा सकता है । यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इस ग्रंथ ने हमारी पारिवारिक आदर्शों को बनाए रखने में जितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उतनी और किसी की नहीं रही है। इसी की वजह से हमारे यहाँ दाम्पत्य जीवन की शुचिता बनी रही एवं पश्चिम की तरह परिवार संस्था टूटी नहीं ।

परमपूज्य गुरुदेव ने ग्रामीण क्षेत्रों में, जो कि बहुसंख्य भारत का प्रतिनिधित्व करता है, गायत्री का प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ युग-उद्बोधन की प्रक्रिया में जिसका आश्रय सर्वाधिक लिया है— वह रामचरित मानस है । यों तो वाल्मीकि रामायण जो कि संस्कृत में लिखी गयी है, को भी एक महत्वपूर्ण स्थान हमारी ग्रंथ निधि में प्राप्त है किन्तु वह जन-जन की भाषा नहीं थी । उसकी प्रेरणाओं को पूज्यवर ने हिन्दी में प्रस्तुत कर उसे लोक मानस के लिये सुगम बना दिया । दोनों ही का प्रस्तुतीकरण अपने आप में अनूठा है पर पूज्यवर ने दोनों के और भी सरलीकरण के माध्यम से इन सद्गुणों की व्याख्या की है जिन्हें हम रामचरित के माध्यम से जीवन में उतार सकते हैं ।

श्रीराम का जीवन एक ऐसा आदर्श जीवन है—जिसके अंदर एक औसत भारतीय को कैसा जीवन जीना चाहिए—क्या उसके दैनन्दिन जीवन का आचरण होना चाहिए तथा पारिवारिक जीवन में उसे किन मर्यादाओं का पालन करते हुए विभिन्न आश्रमों का निर्वाह कर अपनी जीवन यात्रा आगे बढ़ानी चाहिए, यह सब देखा जा सकता है । छोटी-छोटी चौपाइयों के माध्यम से पूरा जीवन दर्शन, एक आदर्श व्यक्तित्व के निर्माण की विधा का— परिवार संस्था के संचालन से लेकर अनीति से लड़ते हुए—देवत्त्व की रक्षा का— संघ शक्ति के महत्त्व का शिक्षण दे दिया गया है । यह पूज्यवर की शैली की विशेषता है कि रामचरितमानस रूपी बगिया में बिखरे कई रंग-बिरंगे फूलों को एक स्थान पर एकत्र उनने पुष्प गुच्छक बनाकर रख दिए हैं ताकि पढ़ने वाले को एक गुण की व्याख्या के प्रमाण एक ही स्थान पर मिलते चले जायँ ।

धर्मोपदेश के लिए इस वाङ्मय से श्रेष्ठ कोई नहीं । रामायण जन-जन के अंतः स्थल में बसी हुई है-अनपढ़ भी इन्हें सहज सुनकर याद कर दुहराता रहता है — रामलीला के माध्यम से प्रतिवर्ष रामचरित को बार-बार याद किया जाता है, ऐसे में इससे सुन्दर प्रमाण किसी को समझाने के लिये और क्या हो सकते हैं ।

रामचरित मानस में जहाँ धर्मतंत्र रूपी दंड का राजतंत्र रूपी व्यवस्था तंत्र पर पूर्ण नियंत्रण बताया गया है वहाँ आदर्श गुरु-शिष्य परम्परा व शिष्य धर्म के निर्वाह को भी समझाया गया है । भ्रातृ धर्म निभाते हुए संयुक्त कुटुम्ब प्रथा कैसे चलती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

है व पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर कैसे भौतिक जगत के प्रलोभन को छोड़कर तप-तितिक्षा को जीवन का अंग—एक कसौटी—एक परीक्षा मानकर चला गया एवं त्याग में—कुटिलता का प्रतिरोध कर भरत जैसा आदर्श भाई कैसे अपने अग्रज की पादुकाओं को निमित्त मानकर शासन चलाते हैं, यह रामायण से ही सीखा जा सकता है । लक्ष्मण का कर्तव्य पालन-कठोर तप, श्री राम का हर जाति-वर्ग-वर्ण के व्यक्ति से अनन्य प्रेम तथा लीला संदोह के प्रकरण में सीता हरण होने पर छोटी-छोटी शक्तियों के एकत्रीकरण से—देवत्व के संघीकरण से अनीति से लड़ने के लिये आतुर हो तत्पर हो जाना व असुरता का मर्दन कर देना रामायण की एक ऐसी प्रेरणा है जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है ।

श्री राम अपने भ्राता भरत से युद्ध की अवधि में मौन सामूहिक अनुष्ठान पूरी अयोध्या के माध्यम से संपन्न करवाते हैं ताकि अनीति से सूक्ष्म मोर्चे पर लड़ा जा सके । भरत अपनी सेना भेजने की बात कहते हैं तो श्रीराम उनसे मात्र आध्यात्मिक आश्रय चाहते हैं । लीलापुरुष यह काम स्वयं कर एक ही बार में असुरता के प्रतीक ब्राह्मण-पण्डित होते हुए भी पथ-भ्रष्ट दुर्बुद्धि को प्राप्त रावण को मिटा सकते थे किन्तु वे ऐसा नहीं करते । वे बंदर-भालुओं का सहारा लेते हैं, हनुमान-नल-नील-अंगद को श्रेय देते हैं एवं वह करा लेते हैं जिसे असंभव माना जा रहा था ।

श्री रामचरित मानस की प्रगतिशील प्रेरणाओं का एक-एक प्रकरण इतना अनूठा है कि उससे दैनन्दिन जीवन के कर्मयोग में कैसे जीवन जियें— इसका महत्वपूर्ण शिक्षण लिया जा सकता है । श्रीराम का अवतरण जिस कार्य के लिए हुआ था, वैसी परिस्थितियाँ हर युग में बनती रही हैं पर किसी को भयभीत होकर विचलित नहीं होना चाहिए, सज्जनों के संगतिकरण-यज्ञीय जीवन को अपनाते हुए परमार्थ—परक सत्कर्मों में लगे रहना चाहिए, यही इस शिक्षण का सार है । वाङ्मय के इस खण्ड में जो भी कुछ पूज्यवर की लेखनी से-उनकी प्रेरणा से वर्णित किया गया है, वह इतना महत्वपूर्ण है कि कभी भी कोई समस्या आने पर उससे मार्ग दर्शन लिया जा सकता है । एक ही स्थान पर दो ग्रन्थों— रामायण श्री वाल्मीकि कृत् एवं श्री रामचरित मानस श्री तुलसीकृत को जिस प्रकार से गूंथकर प्रस्तुत किया गया है, वह इसे मननीय, पठनीय बना देता है ।

— ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

अध्याय-१

रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ १.१

बालकाण्ड १.१

अयोध्याकाण्ड १.१०

अरण्यकाण्ड १.२६

किष्किन्धा काण्ड १.३२

सुन्दरकाण्ड १.३६

लंकाकाण्ड १.४२

उत्तरकाण्ड १.४८

अध्याय-२

रामचरित-मानस से प्रगतिशील प्रेरणा २.१

उद्देश्य २.१

रामचरित मानस-अलौकिक तीर्थराज २.३

आस्तिकता प्रकरण २.५

ईश्वर भक्ति और उसका स्वरूप २.१२

भक्त और भगवान के सम्बन्ध २.१६

माया जाल से बन्धन मुक्ति २.२२

ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता २.२४

आध्यात्मिक प्रकरण २.२८

'राम' आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत २.२८

गुणों की उपयोगिता और महत्ता २.३१

मन और बुद्धि का परिष्कार २.४१

सन्त और असन्त-देव और दानव २.४७

सत्संग और कुसंग का प्रतिफल २.५३

मनुष्य जीवन का सदुपयोग २.५६

गुरु का महत्व और स्वरूप २.५९

धार्मिकता प्रकरण २.६४

धार्मिकता अर्थात् कर्तव्य परायणता २.६४

परोपकार उदार हृदय की प्रतिकृति २.६८

वाणी का शील और सन्तुलन २.७०

कर्म और उसका प्रतिफल २.७४

परिवार प्रकरण २.७८

परिवार का विकास नीतिनिष्ठा के आधार पर २.७८

दाम्पत्य की महत्ता २.८०

पुरुष पत्नीव्रत कर्म पालें २.८३

पति-पत्नी की अनन्य एकता २.८५

ससुराल पक्ष का शील और मर्यादा २.८८

सन्तानोत्पाद की मर्यादा और जिम्मेवार अभिभावकों और सन्तान के पारस्परिक कर्तव्य २.९१ २.९४

शिष्टाचार का अभ्यास बचपन से हो २.९६

भाई-भाईयों का स्नेह सहयोग २.९९

संस्कार और आश्रम धर्म २.१०२

समाज प्रकरण २.१०५

आदर्श समाज की स्थापना के लिए आदर्श लीलाएँ २.१०५

राम की नीति-निष्ठा २.१०५

नागरिक-कर्तव्यों का पालन २.१०७

सज्जनता शालीनता २.१०८

सच्ची और झूठी मित्रता २.१०९

रामराज्य, धर्म राज्य की शासन पद्धति २.११०

श्रेष्ठ सामाजिक सत्प्रवृत्तियाँ २.११३

धर्म स्थापना के लिए अनीति के विरुद्ध संघर्ष २.११६

जन्म वंश से कोई ऊँच-नीच नहीं २.१२१

रामकथा का उद्देश्य और उपयोग २.१२५

राम नाम परायण ही नहीं गुण-परायण भी बनें २.१३१

सद्बुद्धि की अनिवार्यता और महत्ता २.१३७

'विवेक' युक्त हंस वृत्ति २.१४१

यज्ञीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार २.१४४

सामूहिकता, सहयोग और संगठन की प्रवृत्तियाँ २.१४७

पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी संकेत २.१५२

अध्याय-३

वाल्मीकि रामायण से प्रगतिशील प्रेरणा ३.१

आस्तिकता प्रकरण ३.२

अवतारी पुरुष एवं उनके लक्षण ३.२

भक्ति और भगवान के सम्बन्ध ३.५

आध्यात्मिकता प्रकरण ३.८

गुणों की उपयोगिता और महत्ता ३.९

मन और बुद्धि का परिष्कार ३.१०

सत्संग और कुसंग का प्रतिफल ३.१४

मनुष्य जीवन का सदुपयोग ३.१५

धार्मिकता प्रकरण ३.१७

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

धार्मिकता अर्थात् कर्तव्य परायणता ३.१७
वाणी का शील और सन्तुलन ३.२२
शौर्य साहस पराक्रम एवं पुरुषार्थ ३.२३
कर्म और उसका प्रतिफल ३.३०
परिवार प्रकरण ३.३४
दाम्पत्य की महिमा ३.३४
पुरुष पत्नीव्रत पालें ३.३६
पति-पत्नी की अनन्य एकता ३.३९
अविभावकों और सन्तान के पारस्परिक कर्तव्य ३.४१
शिष्टाचार का अभ्यास बचपन से हो ३.४३
भाई-भाईयों का स्नेह सहयोग ३.४३
संस्कार और आश्रम धर्म ३.४७
समाज प्रकरण ३.५०
नागरिक-कर्तव्यों का पालन ३.५०
सच्ची-झूठी मित्रता ३.५१
श्रेष्ठ सामाजिक सत्प्रवृत्तियाँ ३.५३
धर्म-स्थापना के लिए अनीति से संघर्ष ३.५५
यत्रीय संस्कृति का संरक्षण और प्रचार ३.५६

अध्याय-४

रामचरित मानस के प्रेरक तत्व ४.१
रामकथा का उद्देश्य-लोक मंगल ४.१
मानव जीवन की दुर्लभता और बोध ४.७
मानव जीवन का सदुपयोग ४.१३
ईश्वर और उसकी भक्ति ४.१९
धार्मिकता, कर्तव्य और कर्मफल ४.२५
अनीति के विरुद्ध संघर्ष ४.३०
दाम्पत्य का आदर्श और उसका निर्वाह ४.३६
ससुराल पक्ष-कर्तव्य और मर्यादायें ४.४१
सन्तान सम्बन्धी मर्यादा और उत्तरदायित्व ४.४६
परिवार को नीतिनिष्ठ बनायें ४.५२
भ्रातृत्व का आदर्श ४.५८
संस्कार और वर्णाश्रम धर्म ४.६३
श्लोक परिशिष्ट ४.६८
दाम्पत्य की महिमा ४.७५
दृष्टान्त परिशिष्ट ४.८०

अध्याय-५

रामायण में पारिवारिक आदर्श ५.१
नारी का श्रद्धेय स्वरूप ५.२
महिलाओं के प्रति मान्यता सुधारें ५.९
दाम्पत्य का आदर्श और निर्वाह ५.१६
अभिभावकों के कर्तव्य और मर्यादाएँ ५.२४
पारिवारिक जीवन में आदर्श ५.३१
परिवार आदर्शनिष्ठ बनें ५.३८
ससुराल पक्ष में नीति और निर्वाह ५.४६
सुसंस्कारिता का वातावरण ५.५३
अनीति के विरुद्ध संघर्ष ५.६१

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संक्षिप्त रामायण

अध्याय १

बालकाण्ड

भवानीशंङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम् ॥२॥
वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ॥३॥
बन्दउँ गुरु पद कंज, कृपा-सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर ॥४॥

बन्दउँ प्रथम महीसुर चरना ।
मोह जनित संसय सब हरना ॥
सुजन समाज सकल गुन खानी ।
करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥
साधु चरित सुभ चरित कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा ।
बंदनीय जेहिं जग जस पावा ॥
बिनु सत्संग विवेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला ।
सोइ फल सिद्धि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई ।
पारस परस कुधात सुहाई ॥
विधिवस सुजन कुसंगत परहीं ।
फन मनिसम निजगुन अनुसरहीं ॥
बहुरि बंदि खल गन सतिभाएँ ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरे ।
उजरें हरष विषाद बसेरें ॥
बन्दउँ संत असज्जन चरना ।
दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं ।
मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥

भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु ।
सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥
जड़ चेतन गुन दोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि विकार ॥६॥

आकर चारि लाख चौरासी ।
जाति जीव जल थल नभ वासी ॥
सीय राममय सब जग जानी ।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
जग बहु नर सर सरि सम भाई ।
जे निज बाढ़ि बढ़हिं जल पाई ॥
सज्जन सकृत सिंधु सम कोई ।
देखि पूर बिधु बाढ़इ जोई ॥

निरगुन तें एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।
कहउँ नामु बड़ राम तें, निज विचार अनुसार ॥२३॥
सबरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेद बिदित गुन गाथ ॥२४॥

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि ।
रामकथा कलि कलुष बिभंजनि ॥
रामकथा कलि पंनग भरनी ।
पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी ॥

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, इंधन अनल प्रचंड ॥३२॥
जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भलि ।
बिलग होइ रसु जाइ, कपट खटाई परत पुनि ॥५७ख॥

बड़ अधिकार दच्छ जब पावा ।
अति अभिमानु हृदयँ तब आवा ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं ।
प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
सतीं बिलोके ब्योम बिमाना ।
जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥
जौं महेसु मोहि आयसु देहीं ।
कछु दिन जाइ रहौं मिस एहीं ॥

पिता भवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ ।
तौ मैं जाउं कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥६१॥

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा ।
यह अनुचित नहिं नेवत पठावा ॥
जौं बिनु बोलें जाहु भवानी ।
रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥
जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा ।
जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तदपि बिरोध मान जँह कोई ।
तहाँ गएँ कल्यानु न होई ॥

कहि देखा हर जतन बहु, रहइ न दच्छकुमारि ।
दिए मुख्य गन संग तब बिदा कीन्ह त्रिपुरारि ॥६२॥

पिता भवन जब गईं भवानी ।
दच्छ त्रास कहुँ न सनमानी ॥
सादर भलेहिं मिली एक माता ।
भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता ।
दच्छ न कछु पूछी कुसलाता ।
सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सतीं जाय देखेउ तब जागा ।
कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥
तब चित चढ़ेउ जो संकर कहेऊ ।
प्रभु अपमान समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुखु न हृदयँ अस ब्यापा ।
जस यह भयउ महा परितापा ॥
जद्यपि जग दारुन दुख नाना ।
सब तें कठिन जाति अवमाना ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा ।
भयउ सकल मख हाहाकारा ॥
सतीं मरत हरि सन बरु मागा ।
जनम जनम सिब पद अनुरागा ॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई ।
जनमीं पारवती तनु पाई ॥
नारद समाचार सब पाए ।
कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए ॥
कह मुनि बिहसि गूढ़ मृदु बानी ।
सुता तुम्हारि सकल गुन खानी ॥
सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी ।
सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥

जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमंगल बेष ।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥६७॥

जगत मातु सर्वग्य भवानी ।
मातु सुखद बोलीं मृदु बानी ॥

सुनहिं मातु मैं दीख अस, सपन सुनावउँ तोहि ।
सुन्दर गौर सुबिप्रवर, अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

करहि जाइ तपु सैलकुमारी ।
नारद कहा सो सत्य बिचारी ॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा ।
तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता ।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता ।
तपबल संभु करहिं संघारा ।
तपबल सेषु धरइ महिभारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।
करहिं जाइ तपु अस जियँ जानी ॥
सुनत बचन बिसमित महतारी ।
सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी ॥
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई ।
चलीं उमा तप हित हरषाई ॥
उर धरि उमा प्रानपति चरना ।
जाइ बिपिन लागीं तपु करना ॥
तब तें सतीं जाइ तनु त्यागा ॥
तब तें सिब मन भयउ बिरागा ॥

चिदानंद सुखधाम सिव, बिगत मोह मद काम ।
बिचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना ।
कतहुँ राम गुन करहिं बखाना ॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना ।
भगत बिरह दुख दुखित सुजाना ॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ ।
बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही ।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥
जन्म कोटि लगि रगर हमारी ।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू ।
आपु कहहिं सत बार महेसू ॥
मनु थिर करि तब संभु सुजाना ।
लगे करन रघुनायक ध्याना ॥

सुरन्ह कही निज बिपति सब, सुनि मन कीन्ह बिचार ।
संभु बिरोध न कुसल मोहि, बिहसि कहेउ अस मार ॥८३॥

तदपि करब मैं काजु तुम्हारा ।
श्रुति कह परम धरम उपकारा ॥
पर हित लागि तजइ जो देही ।
संतत संत प्रसंसहिं तेही ॥
ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना ।
धीरज धरम ग्यान बिग्याना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा ।
सभय बिबेक कटक सबु भागा ॥
छाड़े बिषम बिसिख डर लागे ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

छूटि समाधि संभु तब जागे ॥
भयउ ईस मन छोभु बिसेषी ।
नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥
सौरभ पल्लव मदनु बिलोका ।
भयउ कोपु कंपेउ त्रैलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा ।
चितवन कामु भयउ जरि छारा ॥
अवसरु जानि सप्तरिषि आए ।
तुरतहिं बिधि गिरिभवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रहीं भवानी ।
बोले मधुर बचन छल सानी ॥

कहा हमार न सुनेहु तब, नारद कें उपदेस ।
अब भा झूठ तुम्हार पन, जारेउ कामु महेस ॥८९॥

बोलीं तब मुसुकाइ भवानी ।
उचित कहेहु मुनिबर बिग्यानी ॥
तुम्हरें जान कामु अब जारा ।
अब लगि संभु रहे सबिकारा ॥
हमरें जान सदा सिव जोगी ।
अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं सिव सेये अस जानी ।
प्रीति समेत कर्म मन बानी ॥
तात अनल कर सहज सुभाऊ ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गएँ समीप सो अबसि नसाई ।
अस मन्मथ महेस की नाई ॥

हियँ हरषे मुनि बचन सुनि, देखि प्रीति बिस्वास ।
चले भवानिहि नाइ सिर, गए हिमाचल पास ॥९०॥

हृदएँ बिचारि संभु प्रभुताई ।
सादर मुनिबर लिए बोलाई ॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई ।
बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥
जसि बिवाह कै बिधि श्रुति गाई ।
महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी ।
भवहि समरपी जानि भवानी ॥
पति बिधि सृजी नारि जग माहीं ।
पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं ॥
भै अति प्रेम बिकल महतारी ।
धीरजु कीन्ह कुसमय बिचारी ॥
पारबती भल अवसरु जानी ।
गईं संभु पहिं मातु भवानी ॥

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा ।
बाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥
पति हिएँ हेतु अधिक अनुमानी ।
बिहसि उमा बोलीं प्रिय बानी ॥
कथा जो सकल लोक हितकारी ।
सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती ।
सादर जपहु अनँग आराती ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई ।
की अज अगुन अलखगति कोई ॥

जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि ।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥९०८॥
राम कथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख दानि ।
सतसमाज सुरलोक सब, को न सुनै अस जानि ॥९१३॥

राम नाम गुन चरित सुहाए ।
जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा अनंत राम भगवाना ।
तथा कथा कीरति गुन नाना ॥
सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करम करइ बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा ।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी ।
महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥
तस मैं सुमुखि सुनावउँ तोही ।
समुझि परइ जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी ।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस, राम जन्म कर हेतु ॥१२१॥
उपजे जदपि पुलस्त्यकुल, पावन अमल अनूप ।
तदपि महीसुर श्राप बस, भए सकल अघरूप ॥१७६॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कीन्ह विविध तप तीनहुँ भाई ।
परम उग्र नहिं बरनि सो जाई ॥
गयउ निकट तप देखि बिधाता ।
माँगहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए ।
हरषित ते अपने गृह आए ॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा ।
परम सुंदरी नारि ललामा ॥
काममरूप जानहिं सब माया ।
सपनेहुँ जिन्ह कैं धरम न दाया ॥
दसमुख बैठ सभाँ एक बारा ।
देखि अमित आपन परिवारा ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी ।
बोला बचन क्रोध मद सानी ॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा ।
हमरे बैरी बिबुध बरूथा ॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई ।
देखि सबल रिपु जाहिं पराई ॥
तेन्ह कर मरन एक बिधि होई ।
कहउँ बुझाइ सुनहु अब सोई ॥
द्विजभोजन मख होम सराधा ।
सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ॥

क्षुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहिं मिलिहहिं आइ ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ, भली भाँति अपनाइ ।।१८१।।

देखत भीमरूप सब पापी ।
निसिचर निकर देव परितापी ॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया ।
नाना रूप धरहिं करि माया ॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला ।
सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं ।
नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥
सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई ।
देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना ।
सपनेहुँ सुनिअ न बेद पुराना ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा ।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी ।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

अतिसय देखि धर्म कै ग्लानि ।
परम सभीत धरा अकुलानी ॥
गिरि सरि सिंधु भार नहिं मोही ।
जस मोहि गरुअ एक परद्रोही ॥
बैठे सुर सब करहिं बिचारा ।
कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई ।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥
जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती ।
प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ ।
अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ ॥
हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं ।
कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ॥
अग जगमय सब रहित बिरागी ।
प्रेम तै प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना ।
साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

जानि समय सुर भूमि सुनि, बचन समेत सनेह ।
गगनगिरा गंभीर भइ, हरनि सोक संदेह ।।१८६।।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ।
तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा ।
लेहउँ दिनकर बंस उदारा ॥

निज लोकहि बिरंचि गे, देवन्ह इहइ सिखाइ ।
बानर तनु धरि धरि महि, हरि पद सेवहु जाइ ।।१८७।।

बनचर देह धरी छिति माहीं ।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा ।
हरि मारग चितवहिं मति धीरा ॥
अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
एक बार भूपति मन माहीं ।
भै ग्लानि मोरें सुत नाहीं ॥
निजदुखसुख सबगुरहि सुनायउ ।
कहि बसिष्ठ बहुबिधि समुझायउ ॥
धरउं धीर होइहहिं सुत चारी ।
त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी ॥
सृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा ।
पुत्रकाम सुभ जग्य करावा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें ।
प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें ॥
जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा ।
सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
यह हबि बाँटि देहु नृप जाई ।
जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥
एहि विधि गर्भ सहित सब नारी ।
भईं हृदयँ हरषित सुख भारी ॥
जा दिन तें हरि गर्भहि आए ।
सकल लोक सुख संपति छाए ॥
दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना ।
मानहु ब्रह्मानंद समाना ॥
गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा ।
आए द्विजन सहित नृपद्वारा ॥

नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥१९३॥

सर्बस दान दीन्ह सब काहू ।
जेहिं पावा राखा नहिं ताहू ॥
भवन वेद धुनि अति मृदुवानी ।
जनु खग मुखर समयँ जनुसानी ॥
चारिउ सील रूप गुन धामा ।
तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥
भए कुमार जबहिं सब भ्राता ।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥
गुरु गृहँ गए पढ़न रघुराई ।
अलप काल विद्या सब आई ॥
जेहि विधि सुखी होहिं पुर लोगा ।
करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥
वेद पुरान सुनहिं मन लाई ।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥
आयसु माँगि करहिं पुर काजा ।
देखि चरित हरषइ मन राजा ॥
यह सब चरित कहा मैं गाई ।
आगिलि कथा सुनहु मन लाई ॥
विश्वामित्र महामुनि ग्यानी ।
बसहिं विपिन सुभ आश्रम जानी ॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं ।
अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं ॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं ।
करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं ॥
गाधितनय मन चिंता व्यापी ।
हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा ।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा ॥

बहुविधि करत मनोरथ,जात लागि नहिं बार ।
करि मज्जन सरऊ जल, गए भूप दरबार ॥२०६॥

मुनि आगमन सुना जब राजा ।
मिलन गयउ लै बिप्र समाजा ।
करि दंडवत मुनिहि सनमानी ।
निज आसन बैठारेन्हि आनी ।
तब मन हरषि बचन कह राऊ ।
मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा ।
कहहु सो करत न लावउँ बारा ॥
असुर समूह सतावहिं मोही ।
मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा ।
निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥

सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहुविधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु, चले नाय पद सीस ॥२०८॥(क)
पुरुषसिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपासिंधु मति धीर, अखिल विस्व कारन करन ॥२०८॥(ख)

प्रात कहा मुनि सन रघुराई ।
निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी ।
आपु रहे मख की रखवारी ॥
सुनि मारीच निसाचर क्रोही ।
लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा ।
सत जोजन गा सागर पारा ॥
पावक सर सुबाहु पुनि मारा ।
अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी ।
अस्तुति करहिं देव मुनि झारी ॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुल नाथा ।
हरषि चले मुनिबर के साथा ॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया ।
बेगि बिदेह नगर नियराया ॥
विश्वामित्र महामुनि आए ।
समाचार मिथिलापति पाए ॥
कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक ।
मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका ।
वचन तुम्हार न होइ अलीका ॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी ।
मन मुसुकाहिं रामु सुनि बानी ॥
रघुकुल मनि दसरथ के जाए ।
मम हित लागि नरेस पठाए ॥

रामु लखनु दोउ बंधुबर, रूप सील बल धाम ।
मख राखेउ सबु साखि जगु, जिते असुर संग्राम ॥२१६॥

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा ।
सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी ।
रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥
मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई ।
लगे चरन चापन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी ।
करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते ।
गुरपद कमल पलोटत प्रीते ॥
बार बार मुनि अग्या दीन्हीं ।
रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं ॥
चापत चरन लखनु उर लाए ।
सभय सप्रेम परम सचु पाए ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता ।
पौढ़े धरि उर पद जलजाता ॥

उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान ।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति, जागे राम सुजान ॥२२६॥

सकल सौच करि जाय नहाए ।
नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥
समय जानि गुर आयसु पाई ।
लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई ।
गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा ।
हृदयँ सराहत बचनु न आवा ॥

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि ।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

तात जनकतनया यह सोई ।
धनुषजग्य जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं ।
करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं ॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ।
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी ।
जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी ॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी ।
नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी ॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं ।
ते नरबर थोरे जग माहीं ॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही ।
पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही ॥
करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी ।
लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥
बिगत दिवसु गुरु आयसु पाई ।
संध्या करन चले दोउ भाई ॥
सीय स्वयंबरु देखिअ जाई ।
ईसु काहि धौं देइ बड़ाई ॥
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी ।
दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी ॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला ।
देखन चले धनुषमख साला ॥
राजकुँअर तेहि अवसर आए ।
मनहुँ मनोहरता तन छाए ॥
गुन सागर नागर बर बीरा ।
सुंदर स्यामल गौर सरीरा ॥
राज समाज बिराजत रूरे ।
उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ॥
जिन्ह कें रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी ॥
देखहिं रूप महा रनधीरा ।
मनहुँ बीर रसु धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी ।
मनहुँ भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा ।
तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई ।
नर भूषन लोचन सुखदाई ॥
बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा ।
बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें ।
सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी ।
सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्वमय भासा ।
सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता ।
इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया ।
सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ॥
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ ।
कवन प्रकार कहै कबि कोऊ ॥
एहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ ।
तेहिं तस देखेउ कोसलराऊ ॥

सब मंचन्ह तें मंचु एक, सुंदर बिसद बिसाल ।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥२४४॥
जानि सुअवसरु सीय तब, पठई जनक बोलाइ ।
चतुर सखीं सुंदर सकल, सादर चलीं लिवाइ ॥२४६॥

तब बंदीजन जनक बोलाए ।
बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा ।
चले भाट हियँ हरषु न थोरा ॥

बोले बंदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल ।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाय बिसाल ॥२४९॥

सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा ।
राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही ।
बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही ॥
भूप सहस दस एकहि बारा ।
लगे उठावन टरइ न टारा ॥
डगइ न संभु सरासनु कैसें ।
कामी बचन सती मन जैसें ॥
सब नृप भए जोगु उपहासी ।
जैसें बिनु बिराग संन्यासी ॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी ।
बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम भंजहु भव चापा ।
मेटहु तात जनक परितापा ॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा ।
हरषु बिषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ ।
ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ ॥

मन्त्र परम लघु जासु बस, बिधि हरि हर सुर सर्ब ।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥२५६॥

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा ।
अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा ॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ ।
पुनि नभ धनु मंडलसम भयऊ ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें ।
काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ॥
तेहिं छन राम मध्य धनु तोरा ।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ॥
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई ।
पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत जुगल कर माल उठाई ।
प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ॥
तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा ।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ॥

सांत बेषु करनी कठिन, बरनि न जाइ सरूप ।
धरि मुनि तनु जनु बीर रसु, आयउ जहँ सब भूप ॥२६८॥

जनक बहोरि आइ सिरु नावा ।
सीय बोलाइ प्रनामु करावा ॥
आसिष दीन्हि सखीं हरषानीं ।
निज समाज लै गईं सयानीं ॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई ।
पद सरोज मेले दोउ भाई ॥
राम लखनु दसरथ के ढोटा ।
दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
समाचार कहि जनक सुनाए ।
जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे ।
देखे चाप खण्ड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा ।
कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥

समय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीरु ।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु, बोले श्री रघुबीरु ॥२७०॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा ।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही ।
सुनि रिसाई बोले मुनि कोही ॥
सेवकु सो जो करै सेवकाई ।
अरि करनी करि करिअ लराई ॥
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा ।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ॥

लखन उतर आहुति सरिस, भृगुबर कोपु कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन, बोले रघुकुलभानु ॥२७६॥

नाथ करहु बालक पर छोहू ।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना ।
तौ कि बराबरि करत अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।
गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी ।
तुम्ह सम सील धरि मुनि ग्यानी ॥

सुनि लछिमन बिहसे बहुरि, नयन तरेरे राम ।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

अति बिनीत मृदु सीतल बानी ।
बोले रामु जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना ।
बालक बचनु करिअ नहिं काना ॥
बररै बालकु एकु सुभाऊ ।
इन्हहि न संत बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा ।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं ।
मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई ।
मुनिनायक सोइ करौं उपाई ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू ।
कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू ।
बक्र चंदमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा ।
कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी ।
मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥

प्रभुहि सेवकहि समरु कस, तजहु बिप्रबर रोसु ।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु, बालकहू नहिं दोसु ॥२७९॥

देखि कुठार बान धनु धारी ।
भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा ।
बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा ॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं ।
पद रज सिर सिसु धनरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी ।
चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा ।
कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा ।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें ।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा ।
प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई ।
अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं ॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना ।
रहा बिबाहु चाप आधीना ॥
टूटतहीं धनु भयउ बिबाहू ।
सुर नर नाग बिदित सब काहू ॥

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस ब्यवहारु ।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर, बेद बिदित आचारु ॥२८६॥

पहुँचे दूत राम पुर पावन ।
हरषे नगर बिलोकि सुहावन ॥
भूप द्वार तिन्ह खबरि जनाई ।
दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ॥

तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ, दीन्हि पत्रिका जाइ ।
कथा सुनाई गुरहि सब, सादर दूत बोलाइ ॥२९३॥

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई ।
पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ ।
धरम सील पहिं जाहिं सुभाएँ ॥
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी ।
तसि पुनीत कौसल्या देवी ॥
भूप भरत पुनि लिए बोलाई ।
हय गय स्यंदन साजहु जाई ॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता ।
सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता ॥

आवत जानि बरात बर, सुनि गहगहे निसान ।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान ॥३०४॥

रामहिं देखि बरात जुड़ानी ।
प्रीति कि रीति न जाति बखानी ॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी ।
जनु धन धरमादिक तनु धारी ॥

धेनुधूरि बेला बिमल, सकल सुमंगल मूल ।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल ॥३१२॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा ।
अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए ।
मंगल सकल साजि सब ल्याए ॥
पूजे भूपति सकल बराती ।
समधी सम सादर सब भाँती ॥
आसन उचित दिए सब काहू ।
कहौं काह मुख एक उछाहू ॥

होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं ।
बिप्र बेष धरि बेद सब, कहि बिबाह बिधि देहिं ॥३२३॥
सूपोदन सुरभी सरपि, सुंदर स्वादु पुनीत ।
छन महुँ सब कें परुसि गे, चतुर सुआर बिनीत ॥३२८॥
अवधनाथु चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि, बिप्र सभासद राउ ॥३३२॥

चलिहि बरात सुनत सब रानीं ।
बिकल मीनगन जनु लघु पानीं ॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं ।
देइ असीस सिखावनु देहीं ॥
होएहु संतत पियहिं पिआरी ।
चिरु अहिबात असीस हमारी ॥
सासु ससुर गुर सेवा करेहू ।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥
अति सनेह बस सखीं सयानी ।
नारिधरम सिखवहिं मृदु बानी ॥
राम बिदा मागत कर जोरी ।
कीन्ह प्रनामु बहोरि बहोरी ॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई ।
भाइन्ह सहित चले रघुराई ॥

कोसलपति समधी सजन, सनमाने सब भाँति ।
मिलनि परसपर बिनय अति, प्रीति न हृदयँ समाति ॥३४०॥

चली बरात निसान बजाई ।
मुदित छोट बड़ सब समुदाई ॥
भूपति भवन कोलाहुल होई ।
जाइ न बरनि समउ सुखु सोई ॥
कौसल्यादि राम महतारी ।
प्रेम बिबस तन दसा बिसारी ॥
पुरबासिन्ह तब राय जोहारे ।
देखत रामहि भए सुखारे ॥
करहिं निछावरि मनिगत चीरा ।
बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥
जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्हीं ।
लोक बेद बिधि सादर कीन्हीं ॥

भूसुर भीर देखि सब रानी ।
सादर उठी भाग्य बड़ जानी ॥
पाय पखारि सकल अन्हवाए ।
पूजि भली बिधि भूप जेवाँए ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे ।
देत असीस चले मन तोषे ॥
लिए गोद करि मोद समेता ।
को कहि सकइ भयउ सुखु जेता ॥
बधू सप्रेम गोद बैठारीं ।
बार बार हियँ हरषि दुलारीं ॥
जनक राज गुन सील बड़ाई ।
प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी ।
रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी ॥
नृप सब भाँति सबहि सनमानी ।
कहि मृदु बचन बोलाईं रानी ॥
बधू लरिकिनीं पर घर आईं ।
राखेहु नयन पलक की नाईं ॥
देखि स्याम मृदु मंजुल गाता ।
कहहिं सप्रेम बचन सब माता ॥
मारग जात भयावनि भारी ।
केहि बिधि तात ताड़का मारी ॥

घोर निसाचर बिकट भट, समर गनहिं नहिं काहु ।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी ।
ईस अनेक करवरें टारी ॥
मख रखवारी कर दुहुँ भाईं ।
गुरु प्रसाद सब बिद्या पाईं ॥
बिस्वामित्र चलन नित चहहीं ।
राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ॥
दिन दिन सयगुन भूपति भाऊ ।
देखि सराह महामुनिराऊ ॥
मागत बिदा राउ अनुरागे ।
सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ॥
नाथ सकल संपदा तुम्हारी ।
मैं सेवकु समेत सुत नारी ॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती ।
चले न प्रीति रीति कहि जाती ॥
रामु सप्रेम संग सब भाई ।
आयसु पाइ फिरे पहुँचाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अध्याय २
अयोध्याकाण्ड

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथान मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा ॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए ।
नित नव मंगल मोद बधाए ॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ ।
प्रमुदित होइ देखि मुनि राऊ ॥
रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा ।
बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥
श्रवन समीप भए सित केसा ।
मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू ।
जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायउ जाइ ॥२॥
बेगि बिलंबु न करिअ नृप, साजिअ सबुइ समाजु ।
सुदिन सुमंगलु तबहिं जब, रामु होहिं जुबराजु ॥४॥

जौं पाँचहि मत लागै नीका ।
करहु हरषि हियँ रामहि टीका ॥

राम राज अभिषेकु सुनि, हियँ हरषे नर नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

सारद बोलि बिनय सुर करहीं ।
बारहिं बार पाय लै परहीं ॥

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुरकाजु ॥११॥

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती ।
भयउँ सरोज बिपिन हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी ।
मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥
बिसमय हरष रहित रघुराऊ ।
तुम्ह जानहु सब राम सुभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी ।
जाइअ अवध देव हित लागी ॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी ।
करहहिं चाह कुसल कबि मोरी ॥
हरषि हृदयँ दसरथपुर आई ।
जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई ॥

नामु मंथरा मंदमति, चेरी कैकई केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेर ॥१२॥

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती ।
होइ अकाजु कवनि बिधि राती ॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती ।
जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती ॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी ।
का अनमनि असि कह हँसि रानी ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू ।
नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
भयउ कौसलहि बिधि अति दाहिन ।
देखत गरब रहत उर नाहिन ॥
देखइ कस न जाय सब सोभा ।
जो अवलोकि मोर मनु छोभा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी ।
चेरि जाड़ि अब होब कि रानी ॥
जारै जोगु सुभास हमारा ।
अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी ।
रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते ।
समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते ॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा ।
बिनु जल जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी ।
रूँधहु करि उपाउ बर बारी ॥

तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

चतुर गँभीर राम महतारी ।
बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठए भरत भूप ननिअउरें ।
राममातु मत जानब रउरें ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें ।
गरबित भरतमातु बल मी कें ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई ।
कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी ।
सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई ।
राम तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका ।
सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आगिलि बात समुझि डर मोही ।
देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥

रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु ।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ़ बिरोधु ॥१८॥

भावी बस प्रतीति उर आई ।
पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना ।
निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥
रेख खँचाइ कहउं बलु भाषी ।
भमिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई ।
तौ घर रहहु न आन उपाई ॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी ।
धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली ।
बकिहि सराहइ मानि मराली ॥

परउं कूप तुअ बचन पर, सकउं पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि ॥२१॥

कुबरीं करि कबुलीं कैकेई ।
कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसें ।
चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें ॥
दुइ बरदान भूप सन थाती ।
मागहु आजु जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राजु रामहि बनवासू ।
देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥
भूपति राम सपथ जब करई ।
तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीतें ।
बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें ॥
बिपति बीजु बरषा रितु चेरी ।
भुइं भइ कुमति कैकेई केरी ॥
कोप समाजु साजि सबु सोई ।
राजु करत निज कुमति बिगोई ॥
कोपभवन सुनि सकुचेउ रावँ ।
भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सुरपति बसइ बाहँबल जाकें ।
नरपति सकल रहहिं रुख ताकें ॥
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई ।
देखहु काम प्रताप बड़ाई ॥
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे ।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे ॥

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी ।
अनअहिवातु सूच जनु भाबी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी ।
प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥
बिहसि मागु मनभावति बाता ।
भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू ।
बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू ॥

यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहसि उटी मतिमंद ।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहुँ किरातिनि फंद ॥२६॥
मागु मागु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू ।
दुइ कै चारि मागि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
प्रान जाहुँ बर बचनु न जाई ॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाए ।
बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥
तेहि पर राम सपथ करि आई ।
सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढ़ाई कुमति हँसि बोली ।
कुमति कुबिहग कुलह जनु खोली ॥
सुनहु प्रानप्रिय भावत जीका ।
देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी ।
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष बिसेषि उदासी ।
चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू ।
ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥

कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास ।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अबिद्या नास ॥२९॥

देन कहेहु अब जनि बरु देहू ।
तजहु सत्य जग अपजसु लेहू ॥
सत्य सराहि कहेउ बरु देना ।
जानेहु लेइहि मागि चबेना ॥
सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा ।
तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा ॥
अति कटु बचन कहति कैकेई ।
मानहुँ लोन जरे पर देई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दुइ कि होइ एक समय भुआला ।
हँसब ठठाय फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई ।
होइ कि खेम कुसल रौताई ॥
छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू ।
जनि अबला जिमि करुना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी ।
सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥

मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर ।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥
परेउ राउ कहि कोटि बिधि, काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

पछिले पहर भूपु नित जागा ।
आजु हमहिं बड़े अचरजु लागा ॥
जाहु सुमंत्र जगावहु जाई ।
कीजिअ काजु रजायसु पाई ॥
गए सुमंत्रु तब राउर ताहीं ।
देखि भयावन जात डेराहीं ॥
सोच बिकल बिबरन महि परेऊ ।
मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ ॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी ।
बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥
आनहु रामहि बेगि बोलाई ।
समाचार तब पूँछेहु आई ॥
चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी ।
लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥
राम सुमंत्रहि आवत देखा ।
आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई ।
रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई ॥
करुनामय मृदु राम सुभाऊ ।
प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी ।
पूँछी मधुर बचन महतारी ॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारन ।
करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू ।
राजहि तुम्ह पर बहुत नेनहु ॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना ।
मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू ।
छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥

सुत सनेहु इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु ।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥४०॥

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू ।
रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले बचन बिगत सब दूषन ।
मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी ।
जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा ।
दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

भरतु प्रानप्रिय, पावहिं राजू ।
बिधि सब बिधि, मोहि सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा ।
प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी ।
परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं ।
देखु बिचारि मातु मन माहीं ॥
अंब एक दुखु मोहि बिसेषी ।
निपट बिकल नरनायकु देखी ॥
थोरिहिं बात पितहिं दुख भारी ।
होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
देस काल अवसर अनुसारी ।
बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई ।
अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
अति लघु बात लागि दुखु पावा ।
काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता ।
सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता ॥

मंगल समय सनेह बस, सोच परिहरिअ तात ।
आयसु देइअ हरषि हियँ, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

धन्य जनमु जगतीतल तासू ।
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताकें ।
प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥
आयसु पालि जनम फलु पाई ।
ऐहउँ बेगिहिं होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवउँ मागी ।
चलिहउँ बनहिं बहुरि पग लागी ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धरम धुरीन धरम गति जानी ।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू ।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयसु देहि मुदित मन माता ।
जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें ।
आनँदु अंब अनुग्रह तोरें ॥
धरम सनेह उभयँ मति घेरी ।
भइ गति साँप छुछुंदरि केरी ॥
राखउँ सुतहिं करउँ अनुरोधू ।
धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू ॥
कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी ।
संकट सोच बिबस भइ रानी ॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी ।
रामु भरतु दोउ सुत सम जानी ॥
सरल सुभाउ राम महतारी ।
बोली बचन धीर धरि भारी ॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका ।
पितु आयसु सब धरमक टीका ॥

राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहिं भूपतिहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५५॥

जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ॥
मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई ।
रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई ।
राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥
कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली ।
सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ ।
दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥
जौं सिय भवन रहै कह अंबा ।
मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी ।
सील सनेह सुधा जनु सानी ॥
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा ।
सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी ।
होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥

गुर श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥६१॥

मैं पुनि करि प्रबान पितु बानी ।
बेगि फिरब सुनि सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा ।
सुन्दरि सिखबनु सुनहु हमारा ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही ।
तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी ।
धरि धीरजु उर अवनि कुमारी ॥
लागि सास पग कह कर जोरी ।
छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई ।
जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं ।
पिय बियोग सम दुख जग नाहीं ॥

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ॥६४॥

भोग रोग सम भूषन भारू ।
जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं ।
मो कहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी ।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें ।
सरद बिमल बिधु बदन निहारें ॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी ।
बचन बियोगु न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना ।
हठि राखें नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा ।
परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू ।
बेगि करहु बन गवन समाजू ॥
कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई ।
लगे मातु पद आसिष पाई ॥
तब जानकी सासु पद लागी ।
सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा ।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू ।
करम कठिन कछु दोसु न मोहू ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सीतहि सासु असीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार ।
चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥६९॥

समाचार जब लछिमन पाए ।
व्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा ।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े ।
मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें ।
देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥
बोले बचनु राम नय नागर ।
सील सनेह सरल सुख सागर ॥
मागहु बिदा मातु सन जाई ।
आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी ।
भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥
हरषित हृदयँ मातु पहिं आए ।
मनहुँ अंध फिर लोचन पाए ॥
जाइ जननि पग नायउ माथा ।
मनु रघुनंदन जानकि साथा ॥
धीरजु धरेउ कुअवसर जानी ।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही ।
पिता रामु सब भाँति सनेही ॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू ।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं ।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥
गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं ।
सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के ।
स्वारथ रहित सखा सबही के ॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें ।
सब मानिअहिं राम के नातें ॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू ।
लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

पुत्रवती जुबती जग सोई ।
रघुपति भगतु जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी ।
राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं ।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू ।
राम सीय पद सहज सनेहू ॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू ।
जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई ।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू ।
सँग पितु मातु राम सिय जासू ॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू ।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥
गए लखनु जहँ जानकिनाथू ।
भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए ।
चले संग नृपमंदिर आए ॥
सकइ न बोलि बिकल नरनाहू ।
सोक जनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा ।
उठि रघुबीर बिदा तब मागा ॥
पितु असीस आयसु मोही दीजै ।
हरष समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू ।
जसु जग जाइ होइ अपबादू ॥
सुभ अरु असुभ करम अनुहारी ।
ईसु देइ फलु हृदय बिचारी ॥
करइ जो करम पाव फल सोई ।
निगम नीति असि कह सबु कोई ॥

सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत ।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत ॥७९॥

चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई ।
चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई ॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा ।
बिकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं ।
फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं ॥
सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई ।
असमंजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई ।
कछुक देव मायाँ मन मोई ॥
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती ।
राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोज मारि रथु हाँकहु ताता ।
आन उपायँ बनिहि नहिं बाता ॥

राम लखन सिय जान चढ़ि, संभु चरन सिरु नाइ ।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु, इत उत खोज दुराय ॥८५॥
सिय सुमंत्र भ्राता सहित, कंद मूल फल खाइ ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ ॥८९॥

ते सिय रामु साथरीं सोए ।
श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥
भयउ विषादु निषादहि भारी ।
राम सीय महि सयन निहारी ॥
बोले लखन मधुर मृदु बानी ।
ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥
जोग वियोग भोग भल मंदा ।
हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा ॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू ।
संपति बिपति करमु अरु कालू ॥
धरनि धामु धनु पुर परिवारू ।
सरगु नरकु जहँ लगि व्यवहारू ॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं ।
मोह मूल परमारथु नाहीं ॥

सपनें होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ ।
जागें लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जियँ जोइ ॥९२॥

अस विचारि नहिं कीजिअ रोसू ।
काहुहि बादि न देइअ दोसू ॥
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा ।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥
एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी ।
परमारथी प्रपंच बियोगी ॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा ।
जब सब विषय विलास बिरागा ॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥
सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम बचन राम पद नेहू ॥
सकल सौच करि राम नहावा ।
सुचि सुजान बट छीर मगावा ॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए ।
देखि सुमंत्र नयन जल छाए ॥
हृदयँ दाहु अति बदन मलीना ।
कह कर जोरि बचन अति दीना ॥

तात कृपा करि कीजिअ सोई ।
जातें अवध अनाथ न होई ॥
मंत्रिहि राम उठाय प्रबोधा ।
तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा ॥
सिबि दधीच हरिचंद नरेसा ।
सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना ।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा ।
तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥
संभावित कहुँ अपजस लाहू ।
मरन कोटि सम दारुन दाहू ॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ ।
दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती ।
तदपि होति नहिं सीतलि छाती ॥
मिटि जाइ नहिं राम रजाई ।
कठिन करम गति कछु न बसाई ॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई ।
फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई ॥

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे ।
बिहसे करुना ऐन चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥
पद पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार ।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार ॥१०१॥
बहुरि कीन्ह प्रभु लखन सियँ, नहिं कछु केवटु लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू ।
लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई ।
तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी ।
माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भँडारू ।
पुन्य प्रदेस देस अति चारू ॥
छेत्रु अगम गढ़ु गाढ़ सुहावा ।
सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा ।
कलुष अनीक दलन रनधीरा ॥
संगमु सिंहासनु सुठि सोहा ।
छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चावंर जमुन अरु गंग तरंगा ।
देखि होहि दुख दारिद भंगा ॥

सेवहिं सुकृती साधु सुचि, पावहिं सब मनकाम ।
बंदी बेद पुरान गन, कहहिं बिमल गुन ग्राम ।।१०५।।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए ।
करत दंडवत मुनि उर लाए ॥
मुनि मन मोद न कछु कह जाई ।
ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई ॥
सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने ।
भाव भगति आनन्द अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा ।
कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा ॥
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू ।
जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू ॥
मुनि रघुबीर परस्पर नबहीं ।
बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं ॥
पथिक अनेक मिलहिं मग जाता ।
कहहिं सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें ।
देखि सोचु अति हृदय हमारें ॥
मारग चलहु पयादेहि पाएँ ।
ज्योतिषु झूठ हमारे भाएँ ॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी ।
तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी ॥
करि केहरि बन जाइ न जोई ।
हम संग चलहिं जो आयसु होई ॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई ।
फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई ॥

एहि बिधि पूछहिं प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि, कह बिनीत मृदु बैन ।।११२।।
छाँह करहिं घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि बन बिहग मृग, रामु चले मग जाहिं ।।११३।।
एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहिं कि प्रात ।।११४।।

आगे रामु लखनु बने पाछें ।
तापस बेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें ।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ॥
देखत बन सर सैल सुहाए ।
बालमीकि आश्रम प्रभु आए ॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए ।
कंद मूल फल मधुर मगाए ॥
सिय सौमित्र राम फल खाए ।
तब मुनि आश्रम दिए सुहाए ॥
देखि पाय मुनिराय तुम्हारे ।
भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयुस होई ।
मुनि उदबेगु न पावै कोई ॥
अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ ।
सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला ।
बासु करौं कछु काल कृपाला ॥
सहज सरल सुनि रघुबर बानी ।
साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न कहहु अस रघुकुलकेतू ।
तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥
सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने ।
सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने ॥
बाल्मीकि हँस कहहिं बहोरी ।
बानी मधुर अमिअ रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
तुम्हहिं निवेदित भोजन करहीं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना ।
बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी ।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥
काम कोह मद मान न मोहीं ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दम्भ नहीं माया ।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥
सब के प्रिय सब के हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
जननी सम जानहिं परनारी ।
धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी ।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं ।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीत निपुन जिन्ह कइ जग लीका ।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा ।
जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई ।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहिं रहइ उर लाई ।
तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना ।
जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा ।
राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सब सहज सनेहु ।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहू ।।१३१।।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं ।
सुफल होन हित आसिष देहीं ॥
रामहि केवल प्रेमु पिआरा ।
जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
राम संग सिय रहति सुखारी ।
पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी ।
प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी ॥
नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी ।
हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा ।
अवध सहस सम बनु प्रिय लागा ॥
परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा ।
प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा ॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर ।
असनु अमिअ सम कंद मूल फर ॥
नाथ साथ साँथरी सुहाई ।
मयन सयन सय सम सुखदाई ॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू ।
तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू ॥
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना ।
धिग जीवन रघुबीर बिहीना ॥
पैठत नगर सचिव सकुचाई ।
जनु मारेसि गुर बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा ।
साँझ समय तब अवसरु पावा ॥

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें ।
पैठ भवन रथु राखि दुआरें ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए ।
भूप द्वार रथु देखन आए ॥

सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयउ रनिवासु ।
भवनु भयंकरु लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निबासु ।।१४७।।

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ ।
प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ ॥
करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ ।
रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदु बानी ।
महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥
बीर सुधीर धुरन्धर देवा ।
साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा ॥
जनम मरन सब दुख सुख भोगा ।
हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं ।
बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं ।
दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी ।
छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥
लखन कहे कछु बचन कठोरा ।
बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई ।
कहबि न तात लखन लरिकाई ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती ।
भइ जुग सरिस सिराति न राती ॥
तापस अन्ध साप सुधि आई ।
कौसल्यहिं सब कथा सुनाई ॥

राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ, राउ गयउ सुरधाम ।।१५५।।

सोक बिकल सब रोवहिं रानी ।
रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ॥
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा ।
परहिं भूमितल बारहिं बारा ॥
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी ।
घर घर रुदनु करहिं पुरवासी ॥
अंथयउ आजु भानुकुल भानू ।
धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास ।
सोक नेवारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास ।।१५६।।

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई ।
गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई ।।
सुनि मुनि आयसु धावन धाए ।
चले बेग बर बाजि लजाए ।।

एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुँचे आइ ।
गुर अनुसासन स्रवन सुनि, चले गनेसु मनाई ।।१५७।।
भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जियँ, थकित रहे धरि मौनु ।।१६०।।
राम बिरोधी हृदय तें, प्रगट कीन्ह बिधि मोहि ।
मो समान को पातकी, बादि कहउं कछु तोहि ।।१६२।।
मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि ।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ।।१६४।।

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए ।
अति हित मनहुँ राम फिरि आए ।।
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई ।
सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ।।
देखि सुभाउ कहत सबु कोई ।
राम मातु अस काहे न होई ।।
माताँ भरत गोद बैठारे ।
आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ।।
अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू ।
कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ।।
जनि मानहु हियँ हानि गलानी ।
काल करम गति अघटित जानी ।।
काहुहि दोसु देहु जनि ताता ।
भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ।।
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा ।
अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ।।

पितु आयस भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ।।१६५।।

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू ।
सब कर सब बिधि करि परितोषू ।।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी ।
रहइ न राम चरन अनुरागी ।।
सुनतहिं लखनु चले उठि साथा ।
रहहिं न जतन किए रघुनाथा ।।
तब रघुपति सबहीं सिरु नाई ।
चले संग सिय अरु लघु भाई ।।
राम लखनु सिय बनहिं सिधाए ।
गइउँ न संग न प्रान पठाए ।।

यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें ।
तउ न तजा तनु जीव अभागें ।।
मोहि न लाज निज नेहु निहारी ।
राम सरिस सुत मैं महतारी ।।
जिऐ मरै भल भूपति जाना ।
मोर हृदय सत कुलिस समाना ।।

कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु ।
बयाकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक नेवासु ।।१६६।।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई ।
कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई ।।
भाँति अनेक भरतु समुझाए ।
कहि बिबेकमय बचन सुनाए ।।
भरतहुँ मातु सकल समुझाई ।
कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई ।।
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी ।
बोले भरत जोरि जुग पानी ।।
जे अघ मातु पिता सुत मारें ।
गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ।।
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें ।
मीत महीपति माहुर दीन्हें ।।
जे पातक उपपातक अहहीं ।
करम बचन मन भव कबि कहहीं ।।
ते पातक मोहि होहुँ बिधाता ।
जौं यहु होइ मोर मत माता ।।

जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर ।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौं जननी मत मोर ।।१६७।।

बेचहिं बेदु धरम दुहि लेहीं ।
पिसुन पराय पाप कहि देहीं ।।
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी ।
बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ।।
लोभी लंपट लोलुपचारा ।
जे ताकहिं परधनु परदारा ।।
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा ।
जौं जननी यहु संमत मोरा ।।
जे नहिं साधु संग अनुरागे ।
परमारथ पथ बिमुख अभागे ।।
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई ।
जिन्हहिं न हरि हर सुजसु सोहाई ।।
तजि श्रुति पंथु बाम पथ चलहीं ।
बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ।।
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ ।
जननी जौं यहु जानौं भेऊ ।।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे ।
तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे ॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी ।
होइ बारिचर बारि बिरागी ॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू ।
तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं ।
सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए ।
थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ॥
करत बिलाप बहुत एहि भाँति ।
बैठेहिं बीत गई सब राती ॥
बामदेउ बसिष्ठ तब आए ।
सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे ।
कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥

तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु ।
उठे भरत गुरु बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

नृप तनु बेद बिदित अन्हवावा ।
परम बिचित्र बिमानु बनावा ॥
गहि पद भरत मातु सब राखी ।
रहीं रानि दरसन अभिलाषी ॥
चन्दन अगर भार बहु आए ।
अमित अनेक सुगन्ध सुहाए ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई ।
जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥
एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्हीं ।
बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दीन्हीं ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना ।
कीन्ह भरत दसगात बिधाना ॥
जहँ जहँ मुनिवर आयसु दीन्हा ।
तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ॥
भए बिसुद्ध दिए सब दाना ।
धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥
पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी ।
सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥
सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए ।
सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
बैठे राजसभाँ सब जाई ।
पठए बोलि भरत दोउ भाई ॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे ।
नीति धरममय बचन उचारे ॥
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी ।
कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी ॥
भूप धरमब्रतु सत्य सराहा ।
जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा ॥
कहत राम गुन सील सुभाऊ ।
सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी ।
सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी ॥

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ ॥१७१॥

अस बिचारि केहि देइअ दोसू ।
ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं ।
सोचि जोगु दसरथु नृप नाहीं ॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना ।
तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना ।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सोचिअ बयसु कृपन धनबानू ।
जो न अतिथि सिब भगति सुजानू ॥
सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी ।
मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी ।
कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई ।
जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई ॥

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

बैखानस सोइ सोचै जोगू ।
तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी ।
जननि जनक गुर बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी ।
निज तनु पोषक निरदय भारी ॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई ।
जो न छाड़ि छलु हरि जन होई ॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ ।
भुबन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा ।
भूप भरत जस पिता तुम्हारा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुचित उचित विचारु तजि जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ।।२७४।।
भरतु कमल कर जोरि धीर धुरन्धर धीर धरि ।
वचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि ।।२७६।।
कैकेई सुअ कुटिलमति रामु बिमुख गत लाज ।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहिं से अधिम कें राज ।।२७८।।

मोहि समान को पाप निवासू ।
जेहि लगि सीय राम बनवासू ।।
रायँ राम कहुँ कानन दीन्हा ।
बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा ।।
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू ।
बैठ बात सब सुनउँ सचेतू ।।
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू ।
रहे प्रान सहि जग उपहासू ।।

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार ।
तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार ।।२८०।।
आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ ।
देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ।।२८२।।

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा ।
को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ।।
एकहि आँक इहइ मन माहीं ।
प्रातकाल चलिहउँ प्रभु पाहीं ।।
तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी ।
आयसु आसिष देहु सुबानी ।।
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी ।
आवहिं बहुरि रामु रजधानी ।।

जद्यपि जनमु कुमातु तें मैं सठु सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ।।२८३।।

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे ।
राम सनेह सुधाँ जनु पागे ।।
भा सब कें मन मोदु न थोरा ।
जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ।।
चलत प्रात लखि निरनउ नीके ।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ।।
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू ।
को न चहइ जग जीवन लाहू ।।
घर घर साजहिं बाहन नाना ।
हरषु हृदयँ परभात पयाना ।।
भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू ।
नगरु बाजि गज भवन भँडारू ।।
संपति सब रघुपति कै आही ।
जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ।।
तौ परिनाम न मोरि भलाई ।
पाप सिरोमनि साईं दोहाई ।।
करइ स्वामि हित सेवक सोई ।
दूषन कोटि देइ किन कोई ।।
अस बिचारि सुचि सेवक बोले ।
जे सपनेहुँ निज धरम न डोले ।।
कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा ।
जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ।।
करि सबु जतनु राखि रखवारे ।
राम मातु पहिं भरतु सिधारे ।।

आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान ।
कहेउ बनावन पालकी सजन सुखासन जान ।।२८६।।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ।।
बिप्र बृन्द चढ़ि बाहन नाना ।
चले सकल तप तेज निधाना ।।
नगर लोग सब सजि सजि जाना ।
चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना ।।
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई ।
रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई ।।

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ।।२८८।।

सई तीर बसि चले बिहाने ।
सृंगबेरपुर सब निअराने ।।
समाचार सब सुने निषादा ।
हृदयँ बिचार करइ सबिषादा ।।
कारन कवन भरतु बन जाहीं ।
है कछु कपट भाउ मन माहीं ।।
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई ।
तौ कत लीन्ह संग कटकाई ।।

अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु ।।२८९।।

होहु सँजोइल रोकहु घाटा ।
ठाटहु सकल मरै के ठाटा ।।
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ।।
समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा ।
राम काजु छनभंगु सरीरा ।।
भरत भाई नृपु मैं जन नीचू ।
बड़ें भाग आस पाइअ मीचू ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामि काज करिहउँ रन रारी ।
जस धवलिहउँ भुवन दस चारी ॥
तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें ।
दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें ॥
साधु समाज न जाकर लेखा ।
राम भगत महुँ जासु न रेखा ॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू ।
जननी जौबन बिटप कुठारू ॥

बिगत बिषाद निषादपति सबहिं बढ़ाइ उछाहु ।
सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सहाहु ॥१९०॥

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ ।
सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ ॥
भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा ।
एकहिं एक बढ़ावइ करषा ॥
चले निषाद जोहारि जोहारी ।
सूर सकल रन रूचइ रारी ॥
सुमिरि राम पद पंकज पनहीं ।
भाथीं बाँधि चढ़ाइन्हि धनहीं ॥
अंगरी पहिरि कूँड़ि सिर धरहीं ।
फरसा बाँस सेल सम करहीं ॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े ।
कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँड़े ॥
निज निज साजु समाजु बनाई ।
गुह राउतहि जोहरे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जाने ।
लै लै नाम सकल सनमाने ॥

भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि ।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीर अधीर न होहि ॥१९१॥

राम प्रताप नाथ बल तोरे ।
करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरे ॥
जीवत पाउ न पाछें धरहीं ।
रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू ।
कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी ।
भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा ।
सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें ।
बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥

गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ ॥१९२॥

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ ।
बैरु प्रीति नहिं दुराईं दुराएँ ॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू ।
कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू ॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा ।
भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा ॥
राम सखा सुनि संदनु त्यागा ।
चले उतरि उमगत अनुरागा ॥
गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई ।
कीन्ह जोहारु माथ महि लाई ॥
लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा ।
जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा ॥
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता ।
मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥
राम राम कहि जे जमुहाहीं ।
तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं ॥
करमनास जलु सुरसरि परई ।
तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जगु जाना ।
बालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥

स्वपच सबर खस जमन जड़, पाँवर कोल किरात ।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन बिख्यात ॥१९४॥
सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

धृंगबेरपुर भरत दीख जब ।
भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब ॥
सोहत दिएँ निषाधेहि लागू ।
जनु तनु धरें बिनय अनुरागू ॥
एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा ।
दीखि जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू ।
भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥

जहँ सिंसुपा पुनीत तर, रघुबर किय बिश्रामु ।
अति सनेहँ सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

कुस साँथरी निहारि सुहाई ।
कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई ।
बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥

भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

झलका झलकत पायन्ह कैसें ।
पंकज कोस ओस कन जैसें ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरत पयादेहिं आए आजू ।
भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥
खबरि लीन्ह सब लोग नहाए ।
कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए ॥
सबिधि सितासित नीर नहाने ।
दिए दान महिसुर सनमाने ॥
देखत स्यामल धवल हलोरे ।
पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथराऊ ।
बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥
मागउँ भीख त्यागि निज धरमू ।
आरत काह न करइ कुकरमू ॥
अस जियँ जानि सुदान सुदानी ।
सफल करहिं जग जाचक बानी ॥

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान ।
जनम जनम रति रामपद, यह बरदानु न आन ॥२०४॥

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही ।
लोग कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरें ।
अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें ॥
जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ ।
जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई ।
बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें ।
तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥
भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी ।
भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥
तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू ।
राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माहीं ।
तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं ॥
कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा ।
नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी ।
करि दंडवत बिनय बहु भाषी ॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें ।
चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें ॥
राम सखा कर दीन्हें लागू ।
चलत देह धरि जनु अनुरागू ॥
नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया ।
पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया ॥

सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं ।
भरतहिं निरखि हरषु हियँ लहहीं ॥
देखि प्रभाउ सुरेसहिं सोचू ।
जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ॥
गुर सन कहेहु करिअ प्रभु सोई ।
रामहि भरतहि भेंट न होई ॥

राम सँकोची प्रेम बस, भरत सपेम पयोधि ।
बनी बात बेगरन चहति, करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने ।
सहसनयन बिनु लोचन जाने ॥
मायापति सेवक सन माया ।
करइ त उलटि परइ सुरराया ॥
तब किछु कीन्ह राम रुख जानी ।
सब कुचालि करि होइहि हानी ॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ ।
निज अपराध रिसाहिं न काऊ ॥
जो अपराधु भगत कर करई ।
राम रोष पावक सो जरई ॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा ।
यह महिमा जानहिं दुरबासा ॥
भरत सरिस को राम सनेही ।
जगु जप राम रामु जप जेही ॥

मनहुँ न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु ।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा ।
रामहि सेवकु परम पिआरा ॥
सेवक बैर बैरु अधिकाई ।
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू ॥
गहहिं न पाप पुनु गुन दोषू ।
करम प्रधान बिस्व करि राखा ॥
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा ॥
भगत अभगत हृदय अनुसारा ।
अगुन अलेप अमान एकरस ॥
रामु सगुन भए भगत पेम बस ।
राम सदा सेवक रुचि राखी ॥
बेद पुरान साधु सुर साखी ।
अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई ॥
करहु भरत पद प्रीति सुहाई ।

राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल ।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल ॥२१९॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी ।
भा प्रमोदु सन मिटी गलानी ॥
एहि बिधि भरत चले मग जाहीं ।
दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं ॥

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू ।
कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी ।
सेन संग चतुरंग न थोरी ॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू ।
कहत समय सम नीति बिचारू ॥
बिषई जीव पाइ प्रभुताई ।
मूढ़ मोह बस होहिं जनाई ॥
जौं प्रियँ होति न कपट कुचाली ।
केहि सोहाति रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ ।
जग बौराइ राज पदु पाएँ ॥

ससि गुर तिय गामी नहुषु चढ़ेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान ॥२२८॥

सहसबाहु सुरनाथु त्रिसंकू ।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ ।
रिपु रिन रंच न राखब काऊ ॥

अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान ।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

जगु भय मगन गगन भइ बानी ।
लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
अनुचित उचित काजु किछु होऊ ।
समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछें पछिताहीं ।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं ॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने ।
राम सीयँ सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई ।
सब तें कठिन राजमदु भाई ॥
जो अचवँत नृह मातहिं तेई ।
नाहिन साधुसभा जेहिं सेई ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा ।
बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ॥
जौं न होत जग जनम भरत को ।
सकल धरम धुर धरिन धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा ।
को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
सेवक बचन सत्य सब जाने ।
आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू ।
मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥
ईति भीति जनु प्रजा दुखारी ।
त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी ।
होहिं भरत गति तेहि अनुहारी ॥
राम बास बन संपति भ्राजा ।
सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू ।
बिपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी ।
सांति सुमति सुचि सुन्दर रानी ॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ ।
राम चरन आश्रित चित चाऊ ॥

जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु ।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख सम्पदा सुकालु ॥२३५॥

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे ।
जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना ।
प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥
खगहा करि हरि बाघ बराहा ।
देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संगा ।
जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥
झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं ।
मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन ।
कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥
अलिगन गावत नाचत मोरा ।
जन सुराज मंगल चहु ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला ।
सब समाजु मुद मंगल मूला ॥

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु ।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु ॥२३६॥

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए ।
कहुँ कहुँ सीयँ कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई ।
सियँ निज पानि सरोज सुहाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ॥२३७॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी ।
उमगे भरत बिलोचन बारी ॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई ।
कहत प्रीति सारद सकुचाई ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा ।
जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
देखे भरत लखन प्रभु आगे ।
पूँछे बचन कहत अनुरागे ॥
सानुज सखा समेत मगन मन ।
बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं ।
भूतल परे लकुट की नाईं ॥ ।

बरबस लिए उठाइ उर लाइ कृपानिधान ।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

मिलनि प्रीति किम जाइ बखानी ।
कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम पेम पूरन दोउ भाई ।
मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥

गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ ।
बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

बोले मुनिबरु समय समाना ।
सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू ।
राजा रामु स्वबस भगवानू ॥
सत्यसंध पालक श्रुति सेतू ।
राम जनमु जग मंगल हेतू ॥
गुर पितु मातु बचन अनुसारी ।
खल दलु दलन देव हितकारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु ।
कोउ न राम सम जान जथारथु ॥
सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू ।
मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ ।
कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी ।
देस काल अवसर अनुहारी ॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना ।
धरम नीति गुन ग्यान निधाना ॥

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ ॥२५७॥

आरत कहहिं बिचारि न काऊ ।
सूझ जुआरिहि आपन दाऊ ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ ।
नाथ तुम्हारेहिं हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें ।
आयसु किएँ मुदित पुर भाषें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई ।
माथें मानि करौं सिख सोई ॥
पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं ।
सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं ॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाषा ।
भरत सनेहँ बिचारु न राखा ॥
तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी ।
भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरें जान भरत रुचि राखी ।
जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥
तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात ।
कृपासिंधु प्रिय बन्धु सन कहहु हृदयँ कै बात ॥२५९॥

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े ।
नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा ।
एहि तें अधिक कहौं मैं काहा ॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ ।
अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी ।
खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ।
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू ।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही ।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोही ।
सुनि अति बिकल भरत बर बानी ।
आरति प्रीति बिनय नय सानी ।
सोक मगन सब सभाँ खभारू ।
मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू ।
कहि अनेक बिधि कथा पुरानी ।
भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ।
बोले उचित बचन रघुनन्दू ।
दिनकर कुल कैरव बन चन्दू ।
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी ।
भरत भूमि रह राउरि राखी ।
तात कुतरक करहु जनि जाएँ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ ।
मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं ॥
बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ।
हित अनहित पसु पच्छिउ जाना ॥
मानुष तनु गुन ग्यान निधाना ।
तात तुम्हहिं मैं जानउ नीकें ॥
करौं काह असमंजस जीकें ।
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी ॥
तनु परिहरेउ पेम पन लागी ।
तासु बचन मेटत मन सोचू ॥
तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ।
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा ॥
अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ।

कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ ।
करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

कहौं कहावौं का अब स्वामी ।
कृपा अंबुनिधि अन्तरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला ।
मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउं न सोच समूलें ।
रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटलाई ।
बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥
देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू ।
मोरें नीति न धरम बिचारू ॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू ।
रहत न आरत कें चित चेतू ॥
अब कृपाल मोहि सो मत भावा ।
सकुच स्वामि मन जाइँ न पावा ॥
लगे कहन उपदेस अनेका ।
सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी ।
समुझाई सब सभा सुबानी ॥
सीता राम संग बनबासू ।
कोटि अमर पुर सरिस सुपासू ॥
परिहरि लषन रामु बैदेही ।
जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही ॥

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल, सब करतूति कराल ।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥२८१॥

कौसल्या कह दोसु न काहू ।
करम बिबस दुख सुख छति लाहू ॥
कठिन करम गति जान बिधाता ।
जो सुभ असुभ सकल फल दाता ॥
ईस रजाइ सीस सबहीं कें ।
उतपति थिति लय बिषहु अमी कें ॥
देबि मोह बस सोचिअ बादी ।
बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी ॥
जानउँ सदा भरत कुलदीपा ।
बार बार मोहि कहेउ महीपा ॥
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ ।
पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ ॥
अनुचित आजु कहब अस मोरा ।
सोक सनेहँ सयानप थोरा ॥
सुनि सुरसरि सम पावनि बानी ।
भई सनेह बिकल सब रानी ॥
लखि सनेह सुनि बचन बिनीता ।
जनकप्रिया गह पाय पुनीता ॥
देबि उचित असि बिनय तुम्हारी ।
दसरथ घरिनि राम महतारी ॥
प्रभु अपने नीचहु आदरहीं ।
अगिनि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं ॥
जनक राम गुर आयसु पाई ।
चले थलहि सिय देखी आई ॥
लीन्हि लाइ उर जनक जानकी ।
पाहुनि पावन प्रेम प्रान की ॥
तापस बेष जनक सिय देखी ।
भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी ॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ ।
सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी ।
गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी ॥
गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे ।
एहिं किए साधु समाज घनेरे ॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए ।
सील सनेह सुभायँ सुहाए ॥
महाराज अब कीजिअ सोई ।
सब कर धरम सहित हित होई ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ।
सेवाधरमु कठिन जगु जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि बिरोधू ।
बैरु अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू ॥
भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ ।
सहित समाज सराहत राऊ ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे ।
अरथु अमित अति आखर थोरे ॥
धरम धुरीन धीर नय नागर ।
सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू ।
नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥
बोले बचन बानि सरबसु से ।
हित परिनाम सुनत सिस रसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना ।
लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ॥
तुम्हहि बिदित सबही कर करमू ।
आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा ।
तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥
सो तुम्ह करहु करावहू मोहू ।
तात तरनिकुल पालक होहू ॥
सो बिचारु सहि संकटु भारी ।
करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा ।
कुसमयँ तात न अनुचित मोरा ॥
होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए ।
ओड़िअहिं हाथ असनिहु के घाए ॥

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०६॥
मुखिआ मुखु सो चाहिऐ, खान पान कहुँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा ।
बिदा किए सब सानुज रामा ॥
नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे ।
सब सनमानि कृपानिधि फेरे ॥

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर ।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर ॥३२१॥
सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक दोलि दिनु साधि ।
सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

राम मातु गुर पद सिरु नाई ।
प्रभु पद पीठ रजायसु पाई ॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा ।
कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा ॥
जटाजूट सिर मुनिपट धारी ।
महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा ।
करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा ॥

भूषन बसन भोग सुख भूरी ।
मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुर राजु सिहाई ।
दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चम्पक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी ।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
देह दिनहुँ दिन दूबरि होई ।
घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना ।
बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ॥
जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे ।
बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
सम दम संजम नियम उपासा ।
नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू ।
जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं ।
भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
परम पुनीत भरत आचरनू ।
मधुर मंजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू ।
महामोह निसि दलन दिनेसू ॥

अध्याय ३
अरण्यकाण्ड

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं ।
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ॥
मोहाम्भोधरपूगपाट नविधौ स्वःसम्भवं शंकरं ।
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना ।
चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना ।
होइहिं भीर सबहिं मोहि जाना ॥
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई ।
सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए ।
देखि रामु आतुर चलि आए ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करत दंडवत मुनि उर लाए ।
प्रेम वारि द्वौ जन अन्हवाए ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने ।
सादर निज आश्रम तब आने ॥
करि पूजा कहि बचन सुहाये ।
दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥
अनुसुइया के पद गहि सीता ।
मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई ।
आसिष देइ निकट बैठाई ॥
दिव्य बसन भूषन पहिराए ।
जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी ।
नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥
मातु पिता भ्राता हितकारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही ।
अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना ।
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना ।
नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धर्म एक व्रत नेमा ।
कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥
जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं ।
बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं ।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम परपति देखइ कैसें ।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई ।
सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई ।
जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई ।
रौरव नरक कल्प सत परई ॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी ।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परमगति लहई ।
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई ।
बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥
पुनि रघुनाथ चले बन आगे ।
मुनिवर बृन्द बिपुल सँग लागे ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया ।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए ।
सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥९॥

अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही ।
जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
एक बार प्रभु सुख आसीना ।
लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया ।
कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई ।
सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ ।
बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा ।
जा बस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें ।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं ।
देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी ।
तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ॥

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छप्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥१५॥

धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना ।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रबउँ मैं भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो सुतंत्र अवलंब न आना ।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥
भगति कि साधन कहउँ बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा ।
तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं ।
मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा ।
मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा ।
गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें ।
तात निरन्तर बस मैं ताकें ॥

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं नि:काम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम ।।१६।।

भगति जोग सुनि अति सुख पावा ।
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती ।
कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥
सूपनखा रावन कै बहिनी ।
दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥
पंचबटी सो गइ एक बारा ।
देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई ।
बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी ।
यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं ।
देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ॥
तातें अब लगि रहिउँ कुमारी ।
मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥
सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता ।
अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी ।
प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥
सुन्दरि सुनु मैं उन्ह कर दासा ।
पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा ।
जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा ॥
सेवक सुख चह मान भिखारी ।
व्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुमानी ।
नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥
पुनि फिरि राम निकट सो आई ।
प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई ।
जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥
तब खिसिआनि राम पहिं गई ।
रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई ।
कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥

लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि ।
ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि ।।१७।।

नाक कान बिनु भइ बिकरारा ।
जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता ।
धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥
तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई ।
जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाए निसिचर निकर बरूथा ।
जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥
नाना बाहन नानाकारा ।
नानायुध धर घोर अपारा ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं ।
देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा ।
बिहंसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥
जब रघुनाथ समर रिपु जीते ।
सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
धुआँ देखि खर दूषन केरा ।
जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी ।
देस कोस कै सुरति बिसारी ॥
करसि पान सोवसि दिनु राती ।
सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा ।
हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ ।
श्रम फल पढें किएँ अरु पाएँ ॥
संग तें जती कुमन्त्र ते राजा ।
मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥२१(क)॥
सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।
तोहि जिअत दसकन्धर मोरि कि असि गति होइ ॥२१ख॥
सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।
गयउ भवन अति सोचबस नींद परइ नहिं राति ॥२२॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ ।
बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा ।
नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई ।
जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी ।
जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आयहु तात ॥२४॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगें ।
कहीं सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी ।
जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी ॥
तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा ।
ते नर रूप चराचर ईसा ॥
मुनि मख राखन गयउ कुमारा ।
बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा ।
तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥
जाहु भवन कुल कुसल बिचारी ।
सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा ।
कहु जग मोहि समान को जोधा ॥
तब मारीच हृदयँ अनुमाना ।
नवहि बिरोधें नहिं कल्याना ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी ।
बैद बन्दि कबि भानस गुनी ॥
उभय भाँति देखा निज मरना ।
तब ताकिसि रघुनायक सरना ॥

उतरु देत मोहि बधब अभागें ।
कस न मरौं रघुपति सर लागें ॥
तेहि बन निकट दसानन गयऊ ।
तब मारीच कपटमृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई ।
कनक देह मनि रचित बनाई ॥
सीता परम रुचिर मृग देखा ।
अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला ।
एहि मृग करि अति सुन्दर छाला ॥
सत्यसंध प्रभु बधि करि एही ।
आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा ।
करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई ।
फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥
सीता केरि करेहु रखवारी ।
बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी ।
धाए रामु सरासन साजी ॥
कबहुँ निकट पुनि दुरि पराई ।
कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी ।
एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा ।
धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा ।
पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता ।
लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥
मरम बचन जब सीता बोला ।
हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू ।
चले जहाँ रावन ससि राहू ॥
सून बीच दसकन्धर देखा ।
आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं ।
निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दससीस स्वान की नाईं ।
इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपन्थ पग देत खगेसा ।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोधवन्त तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ ।
चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८॥

सीता कै बिलाप सुनि भारी ।
भए चराचर जीव दुखारी ॥
गीधराज सुनि आरत बानी ।
रघुकुलतिलक नारि पहिचानी ॥
धावा क्रोधवन्त खग कैसें ।
छूटत पबि परबत कहुँ जैसें ॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा ।
सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही ।
दण्ड एक भइ मुरुछा तेही ॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना ।
कादेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी ।
सुमिरि राम करि अद्भुत करनी ॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी ।
चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता ।
ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी ।
कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ ।
बन अशोक महँ राखत भयऊ ॥
रघुपति अनुजहि आवत देखी ।
बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली ।
आयहु तात बचन मम पेली ॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं ।
मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी ।
कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ ।
गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना ।
भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी ।
मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥
आगें परा गीधपति देखा ।
सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई ।
तात कर्म निज तें गति पाई ॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं ।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
ताहि देइ गति राम उदारा ।
सबरी कें आश्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए ।
मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा ।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे ।
पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहुँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारम्बार बखानि ॥३५॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी ।
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी ।
अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥
अधम ते अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता ।
मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई ।
धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥
चले राम त्यागा बन सोऊ ।
अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा ।
कहत कथा अनेक संबादा ॥
लछिमन देखत काम अनीका ।
रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी ।
तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥३८(क)॥
लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि ।
क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥३८(ख)॥

पुनि प्रभु गए सरोबर तीरा ।
पम्पा नाम सुभग गम्भीरा ॥
संत हृदय जस निर्मल बारी ।
बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा ।
जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥३९(क)॥
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं ।
जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥३९(ख)॥
फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसम्पति पाइ ॥४०॥

बिरहवंत भगवन्तहि देखी ।
नारद मन भा सोच बिसेषी ॥
यह बिचारि नारद कर बीना ।
गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥
करत दण्डवत लिए उठाई ।
राखे बहुत बार उर लाई ॥
स्वागत पूँछि निकट बैठारे ।
लछिमन सादर चरन पखारे ॥
अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी ।
पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया ।
मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥
तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा ।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा ।
भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ।
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी ।
जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखइ जननी अरगाई ॥
प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता ।
प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी ।
बालक सुत सम दास अमानी ॥
जनहि मोर बल निज बल ताही ।
दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं ।
पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥४३॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता ।
मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी ।
होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका ।
इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई ।
तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥
धर्म सकल सरसीरुह बृन्दा ।
होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मन्दा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई ।
पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥
पाप उलूक निकर सुखकारी ।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी ॥
बुधि बल सील सत्य सब मीना ।
बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ॥४४॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाए ।
मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद ।
सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥
संतन्ह के लच्छन रघुबीरा ।
कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ ।
जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ॥
षट बिकार जित अनघ अकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी ।
सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥
सावधान मानद मदहीना ।
धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥

गुनागार संसार दुख रहित बिगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरन प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥४५॥

निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं ।
पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहि नीती ।
सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥
जप तप ब्रत दम संजम नेमा ।
गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया ।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
बिरति बिबेक बिनय बिग्याना ।
बोध जथारथ बेद पुराना ॥
दम्भ मान मद करहिं न काऊ ।
भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला ।
हेतु रहित परहित रत सीला ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते ।
कहि न सकहिं सादर श्रुति तेते ॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥४६(ख)॥

अध्याय ४
किष्किन्धाकाण्ड

कोसलेस दसरथ के जाए ।
हम पितु बचन मानि बन आए ॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई ।
संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही ।
बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई ।
कहहु बिप्र निज कथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना ।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना ॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा ।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा ॥
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना ।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेबक प्रिय अनन्यगति सोऊ ॥
देखि पवनसुत पति अनुकूला ।
हृदयँ हरष बीती सब सूला ॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई ।
सो सुग्रीव दास तब अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे ।
दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि ।
जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥
एहि बिधि सकल कथा समुझाई ।
लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब सुग्रीवँ राम कहुँ देखा ।
अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा ।
भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती ।
करिहहिं बिधि मो सन ए प्रीती ॥

तब हनुमन्त उभय दिसि की सब कथा सुनाइ ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा ।
लछिमन रामचरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी ।
मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
मन्त्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा ।
बैठ रहेउँ मैं करत बिचारा ॥
गगन पंथ देखी मैं जाता ।
परबस परी बहुत बिलपाता ॥
राम राम हा राम पुकारी ।
हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी ॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा ।
पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा ।
तजहु सोच मन आनहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई ।
जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥

सखा बचन सुनि हरषे कृपा सिन्धु बल सींव ।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥५॥

नाथ बालि अरु मैं दुौ भाई ।
प्रीति रहीं कछु बरनि न जाई ॥
मयसुत मायाबी तेहि नाऊँ ।
आवा सो प्रभु हमरें गाऊँ ॥
अर्ध राति पुर द्वार पुकारा ।
बाली रिपु बल सहै न पारा ॥
धावा बालि देखि सो भागा ।
मैं पुनि गयउँ बन्धु सँग लागा ॥
गिरिबर गुहाँ पैठ सो जाई ।
तब बालीं मोहि कहा बुझाई ॥
परिखेसु मोहि एक पखवारा ।
नहिं आवौं तब जानेसु मारा ॥
मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी ।
निसरी रुधिर धार तहँ भारी ॥
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई ।
सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ॥
मन्त्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं ।
दीन्हेउ मोहि राज बरिआईं ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा ।
देखि मोहि जियँ भेद बढ़ावा ॥
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी ।
हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी ॥
ताकें भय रघुबीर कृपाला ।
सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इहाँ साप बस आवत नाहीं ।
तदपि सभीत रहउँ मन माहीं ॥
सुनि सेबक दुख दीनदयाला ।
फरकि उठीं द्वै भुजा बिसाला ॥

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥६॥

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी ।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना ।
मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई ।
ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा ।
गुन प्रगटे अबगुनन्हि दुरावा ॥
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमान सदा हित करई ॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा ।
श्रुति कह संत मित्र गुन ऐहा ॥
आगें कह मृदु बचन बनाई ।
पाछें अनहित मन कुटिलाई ॥
जा कर चित अहि गति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई ॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी ।
कपटी मित्र सूल सम चारी ॥
सखा सोच त्यागहु बल मोरें ।
सब बिधि घटब काज मैं तोरें ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा ।
बालि महाबल अति रनधीरा ॥
दुंदुभि अस्थि तात देखराए ।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती ।
बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
बार बार नावइ पद सीसा ।
प्रभुहि जानि मन हरष कपीसा ॥
उपजा ग्यान बचन तब बोला ।
नाथ कृपाँ मन भयउ अलोला ॥
सुख सम्पति परिवार बड़ाई ।
सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥
ए सब राम भगति के बाधक ।
कहहिं संत तब पद अवराधक ॥
सत्रु मित्र सुख दुख जग माहीं ।
मायाकृत परमारथ नाहीं ॥

बालि परम हित जासु प्रसादा ।
मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ॥
अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती ।
सब तजि भजनु करौं दिन राती ॥
जो कछु कहेहु सत्य सब सोई ।
सखा बचन मम मृषा न होई ॥
नट मरकट इव सबहि नचावत ।
राम खगेस बेद अस गावत ॥
लै सुग्रीव संग रघुनाथा ।
चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा ।
गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा ।
गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
कोसलेस सुत लछिमन रामा ।
कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥

कह बाली सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ ।
जौं कदाचि मोहि मारहिं तौ पुनि होउँ सनाथ ॥७॥

अस कहि चला महा अभिमानी ।
तृन समान सुग्रीवहि जानी ॥
भिरे उभौ बाली अति तर्जा ।
मुठिका मारि महाधुनि गर्जा ॥
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा ।
मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ॥
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला ।
बंधु न होइ मोर यह काला ॥
एकरूप तुम भ्राता दोऊ ।
तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा ।
तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥
मेली कंठ सुमन कै माला ।
पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥
पुनि नाना बिधि भई लराई ।
बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥

बहु छल बल सुग्रीव कर हियँ हारा भय मानि ।
मारा बालि राम तब हृदय माझ सर तानि ॥८॥

परा बिकल महि सर के लागें ।
पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें ॥
स्याम गात सिर जटा बनाएँ ।
अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ॥
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा ।
सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा ।
बोला चितइ राम की ओरा ॥
धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं ।
मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा ।
अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥
अनुज बधू भगिनी सुत नारी ।
सुनु सठ कन्या सम ए चारी ॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई ।
ताहि बधें कछु पाप न होई ॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।
नारि सिखावन करसि न काना ॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी ।
मारा चहसि अधम अभिमानी ॥

सुनहु राम स्वामी सन चल न चातुरी मोरि ।
प्रभु अजहूँ मैं पापी अन्तकाल गति तोरि ॥९॥

जन्म जन्म मुनि जतन कराहीं ।
अन्त राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल संकर कासी ।
देत सबहि सम गति अबिनासी ॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा ।
बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ॥

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ ।
जेहिं जोनि जन्मौ कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥
राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग ।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥१०॥

तारा बिकल देखि रघुराया ।
दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ॥
छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
प्रगट सो तनु तब आगें सोवा ।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा ॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी ।
लीन्हेसि परम भगति बर मागी ॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा ।
मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ॥
राम कहा अनुजहि समुझाई ।
राज देहु सुग्रीवहि जाई ॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा ।
चले सकल प्रेरित रघुनाथा ॥

लछिमन तुरत बोलाए पुरजन बिप्र समाज ।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज ॥११॥

उमा राम सम हित जग माहीं ।
गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥
बालि त्रास व्याकुल दिन राती ।
तन बहु ब्रन चिंताँ जर छाती ॥
सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ ॥
जानतहूँ अस प्रभु परिहरहीं ।
काहे न बिपति जाल नर परहीं ॥
पुनि सुग्रीवहिं लीन्ह बोलाई ।
बहु प्रकार नृपनीति सिखाई ॥
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा ।
पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत ग्रीष्म बरषा रितु आई ।
रहिहउँ निकट सैल पर छाई ॥
अंगद सहित करहु तुम्ह राजू ।
संतत हृदयँ धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए ।
राम प्रबरषन गिरि पर छाए ॥

प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ ।
राम कृपानिधि कछु दिन बास करहिंगे आइ ॥१२॥

मंगलरूप भयउ बन तब ते ।
कीन्ह निवास रमापति जब ते ॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई ।
सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई ॥
कहत अनुज सन कथा अनेका ।
भगति बिरति नृपनीति बिबेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाए ।
गरजत लागत परम सुहाए ॥

लछिमन देखु मोर गन नाचत बारिद पेखि ।
गृही बिरति रत हरष जस बिष्नुभगत कहुँ देखि ॥१३॥

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा ।
प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माहीं ।
खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ॥
बरषहिं जलद भूमि निअराएँ ।
जथा नवहिं बुध बिद्या पाएँ ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें ।
खल के बचन सन्त सह जैसें ॥
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई ।
जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमि परत भा ढाबर पानी ।
जनु जीवहि माया लपटानी ॥
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा ।
जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई ।
होइ अचल जिमि जिव हरि पाई ॥

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पन्थ ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहि सदग्रन्थ ।।१४।।

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई ।
बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका ।
साधक मन जस मिलें बिबेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ ।
जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी ।
करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी ।
उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा ।
जनु दम्भिन्ह कर मिला समाजा ॥
महावृष्टि चलि फूटि किआरीं ।
जिमि सुतन्त्र भएँ बिगरहिं नारीं ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना ।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं ।
कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा ।
जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ॥
बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा ।
प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना ।
जिमि इन्द्रिय गन उपजें ग्याना ॥

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के ऊपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ।।१५(क)।।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ।।१५(ख)।।

बरषा बिगत सरद रितु आई ।
लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूलें कास सकल महिं छाई ।
जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्ति पन्थ जल सोषा ।
जिमि लोभहि सोषइ सन्तोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा ।
संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी ।
ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥
जानि सरद रितु खंजन आए ।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए ॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी ।
नीति निपुन नृप कै जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भईं मीना ।
अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा ।
हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी ।
कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि ।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ।।१६।।

सुखी मीन जे नीर अगाधा ।
जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ॥
फूलें कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा ।
सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी ।
जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी ॥
चातक रटत तृषा अति ओही ।
जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई ।
संत दरस जिमि पातक टरई ॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई ।
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई ॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा ।
जिमि द्विज द्रोह किएँ कुल नासा ॥

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ ।
सदगुर मिलें जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ।।१७।।

बरषा गत निर्मल रितु आई ।
सुधि न तात सीता कै पाई ॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं ।
कालहु जीति निमिष महुँ आनौं ॥
कतहुँ रहउ जौं जीवति होई ।
तात जतन करि आनउँ सोई ॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी ।
पावा राज कोस पुर नारी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लछिमन क्रोधवन्त प्रभु जाना ।
धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥
तब अनुजहिं समुझावा रघुपति करुना सींव ।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव ॥१८॥
इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा ।
राम काजु सुग्रीवँ बिसारा ॥
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा ।
चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ॥
सुनि सुग्रीवँ परम भय माना ।
विषयँ मोर हरि लीन्हेउ ग्याना ॥
अब मारुत सुत दूत समूहा ।
पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा ॥
कहहु पाख महुँ आव न जोई ।
मोरें कर ता कर बध होई ॥
तब हनुमन्त बोलाए दूता ।
सब कर करि सनमान बहूता ॥
भय अरु प्रीति नीति देखराई ।
चले सकल चरनन्हि सिर नाई ॥
एहि अवसर लछिमन पुर आए ।
क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए ॥
धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करउँ पुर छार ।
व्याकुल नगर देखि तब आयउ बालिकुमार ॥१९॥
पवन तनय सब कथा सुनाई ।
जेहि बिधि गए दूत समुदाई ॥
हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ ।
रामानुज आगें करि आए जहँ रघुनाथ ॥२०॥
नाइ चरन सिरु कह कर जोरी ।
नाथ मोहि कछु नाहिन खोरी ॥
अतिसय प्रबल देव तब माया ।
छूटइ राम करहु जौं दाया ॥
विषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी ।
मैं पावँर पसु कपि अति कामी ॥
नारि नयन सर जाहि न लागा ।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा ॥
लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया ।
सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥
तब रघुपति बोले मुसुकाई ।
तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई ।
जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥
एहि बिधि होत बतकहीं आए बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥
अस कपि एक न सेना माहीं ।
राम कुसल जेहि पूछी नाहीं ॥
यह कछु नहिं प्रभु कइ अधिकाई ।
बिस्वरूप व्यापक रघुराई ॥
ठाढ़े जहँ तहँ आयसु पाई ।
कह सुग्रीव सबहि समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा ।
बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई ।
मास दिवस महँ आएहु भाई ॥
बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरन्त ।
तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमन्त ॥२१॥
सुनहु नील अंगद हनुमाना ।
जामवंत मतिधीर सुजाना ॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू ।
सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ॥
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु ।
रामचन्द्र कर काजु सँवारेहु ॥
भानु पीठि सेइअ उर आगी ।
स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी ॥
तजि माया सेइअ परलोका ।
मिटहिं सकल भवसंभव सोका ॥
देह धरे कर यह फलु भाई ।
भजिअ राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी ।
जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
आयसु मागि चरन सिरु नाई ।
चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥
पाछें पवन तनय सिरु नावा ।
जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी ।
कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु ।
कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु ॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना ।
चलेउँ हृदयँ धरि कृपानिधाना ॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता ।
राजनीति राखत सुरत्राता ॥
चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह ।
राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह ॥२३॥
एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती ।
गिरि कंदराँ सुनी सम्पाती ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार ।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार ॥२८॥

जो नाघइ सत जोजना सागर ।
करइ सो राम काज मति आगर ॥
कहइ रीछपति सुनु हनुमाना ।
का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना ।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं ।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
राम काज लगि तब अवतारा ।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा ।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा ।
लीलहिं नाघउँ जलनिधि खारा ॥

अध्याय-५
सुन्दर काण्ड

नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानिखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥२॥

जामवन्त के बचन सुहाए ।
सुनि हनुमन्त हृदय अति भाए ॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई ।
सहि दुख कन्द मूल फल खाई ॥

पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार ।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥३॥

मसक समान रूप कपि धरी ।
लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी ।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा ।
मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी ।
रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ॥
बिकल होसि तैं कपि कें मारे ।
तब जानेसु निसिचर संघारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता ।
देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥४॥

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा ।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करहिं मिताई ।
गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही ।
राम कृपा करि चितवा जाही ॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना ।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
मंदिर मंदिर प्रतिकर सोधा ।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मन्दिर माहीं ।
अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
सयन किएँ देखा कपि तेही ।
मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा ।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ ।
नव तुलसिका बृन्द तहँ देखि हरष कपिराइ ॥५॥

लंका निसिचर निकर निवासा ।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुँ तरक करै कपि लागा ।
तेहीं समय बिभीषनु जागा ॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा ।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी ।
साधु ते होइ न कारज हानी ॥
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए ।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई ।
बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥
की तुम हरि दासन्ह महँ कोई ।
मोरें हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी ।
आयहु मोहि करन बड़भागी ॥

तब हनुमन्त कहीं सब राम कथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम ॥६॥

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी ।
जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा ।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तामस तनु कछु साधन नाहीं ।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता ॥
नाथ पवनसुत कीन्ह जो करनी ।
सहसहुँ मुख न जाहि सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए ।
जामवंत रघुपतिहि सुनाए ॥
सुनु कपि तोहि समान उपकारी ।
नहिं कोउ सुर नर पुनि तनुधारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं ।
देखउँ कर बिचार मन माहीं ॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता ।
लोचन नीर पुलक अति गाता ॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा ।
कर गहि परम निकट बैठावा ॥
अब बिलंबु केहि कारन कीजे ।
तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे ॥

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ ॥३४॥

राम कृपा बल पाइ कपिंदा ।
भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा ॥

एही बिधि कृपानिधि उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल बिपुल भालु कपि बीर ॥३५॥

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी ।
बिहसा जगत बिदित अभिमानी ॥
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई ।
सिंधु पार सेन सबु आई ॥
बूझेसि सचिव उचित मति कहहू ।
ते सब हँसे मष्ट करि रहहू ॥
जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं ।
नर बानर केहि लेखे माहीं ॥

सचिव बैद गुर तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीन कर होइ बेगिहीं नास ॥३७॥

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई ।
अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा ।
भ्राता चरन सीसु तेजि नावा ॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन ।
बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपालु पूँछिहू मोहि बाता ।
मति अनुरूप कहउँ हित ताता ॥
जो आपन चाहै कल्याना ।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो परनारि लिलार गोसाईं ।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई ।
भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई ॥
गुन सागर नागर नर जोऊ ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत ॥३८॥

सुमति कुमति सब कें उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥
तब उर कुमति बसी बिपरीता ।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार ।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

बुध पुरान श्रुति संमत बानी ।
कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसासन उठा रिसाई ।
खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा ।
रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जग माहीं ।
भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं ॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती ।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा ।
अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥
उमा संत कइ इहइ बड़ाई ।
मंद करत जो करइ भलाई ॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहि मोहि मारा ।
रामु भजें हित नाथ तुम्हारा ॥
सचिव संग लै नभ पथ गयऊ ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ ॥

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

अस कहि चला बिभीषनु जबहीं ।
आयू हीन भए सब तबहीं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधु अवग्या तुरत भवानी ।
करि कल्यान अखिल कै हानी ॥
रावन जबहिं बिभीषनु त्यागा ।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
कपिन्ह बिभीषन आवत देखा ।
जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा ॥
जानि न जाय निसाचर माया ।
कामरूप केहि कारन आया ॥
सखा नीति तुम नीक बिचारी ।
मम पन सरनागत भयहारी ॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा ।
तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती ।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना ।
कपि चंचल सबहीं बिधि हीना ॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा ।
तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर ।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर ॥७॥

जानतहूँ अस स्वामि बिसारी ।
फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी ॥
एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा ।
पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा ॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही ।
जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥
तब हनुमन्त कहा सुनु भ्राता ।
देखी चहउँ जानकी माता ॥
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई ।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ ।
बन अशोक सीता रह जहवाँ ॥
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा ।
बैठेहिं बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी ।
जपति हृदयँ रघुपति गुन श्रेनी ॥

निज पद नयन दिएँ मन राम कमल पद लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ॥८॥
कपि करि हृदयँ बिचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥९२॥

रामचन्द्र गुन बरनैं लागा ।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
लागी सुनैं श्रवन मन लाई ।
आदिहु तें सब कथा सुनाई ॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई ।
कही सो प्रगट होति किन भाई ॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ ।
फिरि बैठीं मन बिसमय भयऊ ॥

कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास ।
जाना मन क्रम बचन यह कृपासिंधु कर दास ॥९३॥

हरिजन जानि प्रीति अति गाढ़ी ।
सजल नयन पुलकावलि बाढ़ी ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना ।
भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी ।
अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपाल रघुराई ।
कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
बचनु न आव नयन भरे बारी ।
अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता ।
बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥

रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर ।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर ॥९४॥

कहेउ राम बियोग तब सीता ।
मो कहुँ सकल भए बिपरीता ॥
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू ।
कालनिसा सम निसि ससि भानू ॥
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा ।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेहि पीरा ।
उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥
कहेहू तें कछु दुख घटि होई ।
काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा ।
जानत प्रिया एकु मन मोरा ॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं ।
जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही ।
मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही ॥
बार बार नाएसि पद सीसा ।
बोला बचन जोरि कर कीसा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता ।
आसिष तव अमोघ विख्याता ॥
चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा ।
फल खाएसि तरु तोरैं लागा ॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे ।
कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे ॥
बह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा ।
परतिहुँ बार कटकु संहारा ॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ ।
नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥
सुनत बिहसि बोला दसकंधर ।
अंग भंग करि पठइअ बंदर ॥

कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कहउँ समुझाइ ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥२४॥

बाजहिं ढोल देहिं सब तारी ।
नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥
पावक जरत देखि हनुमन्ता ।
भयउ परम लघु रूप तुरन्ता ॥

हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास ।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ॥२५॥

देह बिसाल परम हरुआई ।
मंदिर तें मंदिर चढ़ि धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला ।
झपट लपट बहु कोट कराला ॥
साधु अवज्ञा कर फल ऐसा ।
जरइ नगर अनाथ कर जैसा ॥
जारा नगर निमिष एक माहीं ।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥
ता कर दूत अनल जेहि सिरिजा ।
जरा न सो तेहि कारन गिरिजा ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी ।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम धरि लघु रूप बहोरि ।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥२६॥

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा ।
जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामणि उतारि तब दयऊ ।
हरष समेत पवनसुत लयऊ ॥

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरज दीन ।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह ॥२७॥

नाघि सिंधु एहि पारहि आवा ।
सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा ॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना ।
नूतन जन्म कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा ।
कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा ।
किएँ काजु मन हरष बिसेषा ॥

प्रीति सहित सब भेटे रघुपति करुनापुंज ।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज ॥२९॥

जामवंत कह सुनु रघुराया ।
जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर ।
सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ बिजई बिनई गुन सागर ।
तासु सुजसु त्रैलोक उजागर ॥
प्रभु कीं कृपा भयउ सबु काजू ।
जन्म हमार सुफल भा आजू ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई ।
मोरें सनमुख आव कि सोई ॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा ।
तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता ।
मन धरि धीर कही मृदुबाता ॥
नाथ दसानन कर मैं भ्राता ।
निसचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा ।
जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥
अस कहि करत दंडवत देखा ।
तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा ।
भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा ॥
अनुज सहित मिल ढिग बैठारी ।
बोले बचन भगत भय हारी ॥
कहु लंकेस सहित परिवारा ।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥
खल मंडलीं बसहु दिन राती ।
सखा धरम निबहइ केहि भाँती ॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती ।
अति नय निपुन न भाव अनीती ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बरु भल बास नरक कर ताता ।
दुष्ट संग जनि देहि बिधाता ॥

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम ।
जग लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ॥४६॥

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना ।
लोभ मोह मच्छर मद माना ॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा ।
धरें चाप सायक कटि भाथा ॥
गमता तरुन तमी अँधिआरी ।
राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥
तब लगि बसति जीव मन माहीं ।
जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं ॥
अब मैं कुसल मिले भय भारे ।
देखि राम पद कमल तुम्हारे ॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला ।
ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला ॥
सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ ।
जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥
जननी जनक बंधु सुत दारा ।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा ॥
सब कै ममता ताग बटोरी ।
मम पद मनहिं बाँधि बरि डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।
हरष सोक भय नहिं मन माहीं ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें ।
लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें ॥
तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें ।
धरउँ देह नहिं आन निहोरें ॥

सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम ।
ते नर प्रान समान मम जिन्ह कें द्विज पद प्रेम ॥४८॥

सुनु लंकेस सकल गुन तोरें ।
तातें तुम अतिसय प्रिय मोरें ॥
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी ।
नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहिं बारा ।
हृदयँ समात न प्रेमु अपारा ॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दसमाथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुच दीन्ह रघुनाथ ॥४९॥

कह लंकेस सुनहु रघुनायक ।
कोटि सिंधु सोषक तव सायक ॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई ।
बिनय करिअ सागर सन जाई ॥

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि ।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि ॥५०॥

सखा कही तुम्ह नीक उपाई ।
करिअ दैव जौं होइ सहाई ॥
मंत्र न यह लछिमन मन भावा ।
राम बचन सुन अति दुख पावा ॥
नाथ दैव कर कवन भरोसा ।
सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एक अधारा ।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥
सुनत बिहसि बोले रघुबीरा ।
ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा ॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई ।
सिंधु समीप गए रघुराई ॥
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई ।
बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥

बिनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीत ।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति ॥५७॥

लछिमन बान सरासन आनू ।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती ।
सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥
ममता रत सन ग्यान कहानी ।
अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा ।
ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा ।
यह मति लछिमन के मन भावा ॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला ।
उठी उदधि उर अन्तर ज्वाला ॥
मकर उरग झष गन अकुलाने ।
जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना ।
बिप्र रूप आयउ तजि माना ॥

काटेहिं पइ कदरी फरइ कोटि जतन कोउ सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु डाटेहिं पइ नव नीच ॥५८॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे ।
छमहु नाथ सब अवगुन मेरे ॥
गगन समीर अनल जल धरनी ।
इन्ह कइ नाथ सहज जड़ करनी ॥
तब प्रेरित मायाँ उपजाए ।
सृष्टि हेतु सब ग्रन्थनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ अस अहई ।
सो तेहि भाँति रहें सुख लहई ॥
प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं ।
मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्ही ॥
प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई ।
उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई ।
करौं सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥

सुनत बिनीत बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई ।
लरिकाई रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे ।
तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई ।
करिहउँ बल अनुमान सहाई ॥
एहि बिधि नाथ पयोधि बँधाइअ ।
जेहि यह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ ॥
देखि राम बल पौरुष भारी ।
हरषि पयोनिधि भयउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा ।
चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

अध्याय ६
लंकाकाण्ड

रामं कामारिसेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं
योगीन्द्रं ज्ञानगम्यं गुणनिधिमजितं निर्गुणं निर्विकारम् ।
मायातीतं सुरेशं खलवधनिरतं ब्रह्मवृन्दैकदेवं
वन्दे कन्दावदातं सरसिजनयनं देवमुर्वीशरूपम् ॥१॥
सिंधु बचन सुनि राम सचिब बोलि प्रभु अस कहेउ ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरै कटकु ॥

जामवन्त बोले दोउ भाई ।
नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मन माहीं ।
करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥
धावहु मर्कट बिकट बरुथा ।
आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले कर हूहा ।
जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाई ॥१॥

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा ।
देखि कृपानिधि के मन भावा ॥
चली सेन कछु बरनि न जाई ।
गर्जहिं मर्कट भट समुदाई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा ।
कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥
मन्दोदरी सोच उर बसेऊ ।
जब ते श्रवनपूर महि खसेऊ ॥
सजल नयन कह जुग कर जोरी ।
सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु ।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥१४॥

पद पाताल सीस अज धामा ।
अपर लोक अंग अंग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला ।
नयन दिवाकर कच घन माला ॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा ।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी ।
मारुत स्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला ।
माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अम्बुपति जीहा ।
उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोम राजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना ।
जगमय प्रभु का बहु कलपना ॥

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ॥१५(क)॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ ॥१५(ख)॥

बिहँसा नारि बचन सुनि काना ।
अहो मोह महिमा बलवाना ॥
नारि सुभाउ सत्य अस कहहीं ।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एहि बिधि करत बिनोद बहु प्रात प्रगट दसकन्ध ।
सहज असंक लंकपति सभाँ गयउ मद अन्ध ।।१६(क)।।
फूलइ फरइ न बेत जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदयँ न चेत जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम ।।१६(ख)।।

इहाँ प्रात जागे रघुराई ।
पूछा मत सब सचिव बोलाई ।।
कहहु बेगि का करिअ उपाई ।
जामवन्त कह पद सिरु नाई ।।
सुनु सर्बग्य सकल उर बासी ।
बुधि बल तेज धर्म गुन रासी ।।
मन्त्र कहउँ निज मति अनुसारा ।
दूत पठाइअ बालि कुमारा ।।
नीक मन्त्र सब के मन माना ।
अंगद सन कह कृपानिधाना ।।
बालितनय बुधि बल गुन धामा ।
लंका जाहु तात मम कामा ।।
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ ।
परम चतुर मैं जानत अहऊँ ।।
काजु हमार तासु हित होई ।
रिपु सन करेहु बतकही सोई ।।

प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ ।
सोइ मुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु ।।१७(क)।।

बन्दि चरन उर धरि प्रभुताई ।
अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई ।।

जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठ सभाँ सिरु नाई ।।१९।।

कह दसकण्ठ कवन तैं बन्दर ।
मैं रघुबीर दूत दसकन्धर ।।
मम जनकहि तोहि रही मिताई ।
तव हित कारन आयउँ भाई ।।
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती ।
सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ।।
बर पायहु कीन्हेउ सब काजा ।
जीतेहु लोकपाल सब राजा ।।
नृप अभिमान मोह बस किंबा ।
हरि आनिहु सीता जगदंबा ।।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा ।
सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा ।।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी ।
परिजन सहित संग निज नारी ।।
सादर जनकसुता करि आगें ।
एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागें ।।

तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान ।।२५।।

सुनि अंगद सकोप कह बानी ।
बोलु सँभारि अधम अभिमानी ।।
सहसबाहु भुज गहन अपारा ।
दहन अनल सम जासु कुठारा ।।
अब जनि बतबढ़ाव खल करही ।
सुनु मम बचन मान परिहरही ।।
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ ।
अस बिचारि रघुबीर पठायउँ ।।
बार बार अस कहइ कृपाला ।
नहिं गजारि जसु बधें सृकाला ।।
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे ।
सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ।।
नाहिं त करि मुख भंजन तोरा ।
लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ।।
जानेउँ तव बल अधम सुरारी ।
सूनें हरि आनिहि परनारी ।।
जौं अस करौं तदपि न बड़ाई ।
मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई ।।
कौल काम बस कृपिन बिमूढ़ा ।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ।।
सदा रोगबस संतत क्रोधी ।
बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी ।।
तनु पोषक निंदक अघ खानी ।
जीवत सव सम चौदह प्रानी ।।
अस बिचारि खल बधउँ न तोही ।
अब जनि रिस उपजावसि मोही ।।
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना ।
मान न ताहि कालु निअराना ।।
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो ।
यह कहि चल्यो बालि नृप जायो ।।

साँझ जानि दसकंधर भवन गयउ बिलखाइ ।
मंदोदरी रावनहि बहुरि कहा समुझाइ ।।३५।।

अहह कंत कृत राम बिरोधा ।
काल बिबस मन उपज न बोधा ।।
काल दंड गहि काहु न मारा ।
हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा ।।
निकट काल जेहि आवत साईं ।
तेहि भ्रम होइ तुम्हारिहि नाईं ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारि बचन सुनि बिसिख समाना ।
सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ॥
रिपु के समाचार जब पाए ।
राम सचिव सब निकट बोलाए ॥
लंका बाँकि चारि दुआरा ।
केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥
तब कपीस रिच्छेस बिभीषन ।
सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन मंत्र दृढ़ावा ।
चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे ।
जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए ।
सुन कपि सिंघनाद करि धाए ॥
उत रावन इति राम दोहाई ।
जयति जयति जय परी लराई ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं ।
कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥
प्राबिट सरद पयोद घनेरे ।
लरत मनहुँ मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया ।
बिचलत सेन कीन्ह इन्ह माया ॥
भयउ निमिष महँ अति अँधियारा ।
बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥
सकल मरमु रघुनायक जाना ।
लिए बोलि अंगद हनुमाना ॥
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा ।
पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं ।
ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ॥

मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ ।
उतरयो बीर दुर्ग तें सन्मुख चल्यो बजाइ ॥४९॥
आयसु मागि राम पहिं अंगदादि कपि साथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ ॥५२॥

एकहि एक सकइ नहिं जीती ।
निसिचर छल बल करइ अनीती ॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता ।
भंजेउ रथ सारथी तुरन्ता ॥
नाना बिधि प्रहार कर सेषा ।
राच्छस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावन सुत निज मनु अनुमाना ।
संकट भयउ हरिहि मम प्राना ॥
बीरघातिनी छाड़िसि साँगी ।
तेजपुंज लछिमन उर लागी ॥
मुरुछा भई सक्ति के लागें ।
तब चलि गयउ निकट भय त्यागें ॥
संध्या भइ फिरि द्वौ बाहनी ।
लगे सँभारन निज निज अनी ॥
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर ।
लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना ।
अनुज देखि प्रभु अति दुख माना ॥
जामवन्त कह बैद सुषेना ।
लंका रहइ को पठई लेना ॥
धरि लघु रूप गयउ हनुमन्ता ।
आनेउ भवन समेत तुरन्ता ॥

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन ।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन ॥५५॥
प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर ।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस ॥६१॥

हरषि राम भेटेउ हनुमाना ।
अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना ॥
तुरत बैद तब कीन्ह उपाई ।
उठि बैठे लछिमन हरषाई ॥
हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता ।
हरषे सकल भालु कपि ब्राता ॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा ।
जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा ॥
यह वृत्तांत दसानन सुनेऊ ।
अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ ॥
व्याकुल कुम्भकरन पहिं आवा ।
बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥
जागा निसिचर देखिअ कैसा ।
मानहुँ कालु देह धरि बैसा ॥
कुम्भकरन बूझा कहु भाई ।
काहे तव मुख रहे सुखाई ॥
कथा कही सब तेहिं अभिमानी ।
जेहि प्रकार सीता हरि आनी ॥
तात कपिन्ह सब निसचर मारे ।
महा महा जोधा संघारे ॥

सुनि दसकंधर बचन तब कुम्भकरन बिलखान ।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ॥६२॥
राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक ।
रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ॥६३॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महिष खाइ करि मदिरा पाना ।
गर्जा बज्राघात समाना ॥
कुम्भकरन दुर्मद रन रंगा ।
चला दुर्ग तजि सेन न संगा ॥

अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव ।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बल सींव ॥६५॥
महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस ।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस ॥६९॥

सकरुन बचन सुनत भगवाना ।
चले सुधारि सरासन बाना ॥
राम सेन निज पाछें घाली ।
चले सकोप महा बलसाली ॥
खैंचि धनुष सर सत संधाने ।
छूटे तीर सरीर समाने ॥
लागत सर धावा रिस भरा ।
कुधर डगमगत डोलति धरा ॥
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा ।
काल त्रोन सजीव जनु आवा ॥
तब प्रभु कोपि तीब्र सर लीन्हा ।
धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ॥
सो सिर परेउ दसानन आगें ।
बिकल भयउ जिमि फनि मनि त्यागें ॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा ।
तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा ॥

मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास ।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥७२॥

जाहिं कहाँ व्याकुल भए बन्दर ।
सुरपति बंदि परे जनु मन्दर ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला ।
कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन ।
सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सैं जूझै लागा ।
सर छाँड़इ होइ लागहिं नागा ॥
व्याकुल कटकु कीन्ह घननादा ।
पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा ॥
जामवन्त कह खल रहु ठाढ़ा ।
सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा ॥
मारिसि मेघनाद कै छाती ।
परा भूमि घुर्मित सुरघाती ॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो ।
महि पछारि निज बल देखरायो ॥

मेघनाद कै मुरछा जागी ।
पितहि बिलोकि लाज अति लागी ॥
तुरत गयउ गिरिबर कन्दरा ।
करौं अजय मख अस मन धरा ॥
इहाँ बिभीषन मन्त्र बिचारा ।
सुनहु नाथ बल अतुल उदारा ॥
मेघनाद मख करइ अपावन ।
खल मायावी देव सतावन ॥
जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि ।
नाथ बेगि पुनि जीति न जाइहिं ॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना ।
बोले अंगदादि कपि नाना ॥
लछिमन संग जाहु सब भाई ।
करहु बिधंस जग्य कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही ।
देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥

रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरन्त अनन्त ।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमन्त ॥७५॥

जाइ कपिन्ह सो देखा बैसा ।
आहुति देत रुधिर अरु भैंसा ॥
कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा ।
जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा ॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई ।
लातन्हि हति हति चले पराई ॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे ।
आए जहँ रामानुज आगे ॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा ।
परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मन्त्र दृढ़ावा ।
एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा ॥
सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा ।
सर संधान कीन्ह करि दापा ॥
छाड़ा बान माझ उर लागा ।
मरती बार कपटु सब त्यागा ॥
मंदोदरी रुदन कर भारी ।
उर ताड़न बहु भाँति पुकारी ॥
नगर लोग सब व्याकुल सोचा ।
सकल कहहिं दसकन्धर पोचा ॥

तब दसकण्ठ बिबिधि बिधि समुझाई सब नारि ।
नस्वर रूप जगत सब देखहु हृदयँ बिचारि ॥७७॥

तिन्हहि ग्यान उपदेसा रावन ।
आपुन मन्द कथा सुभ पावन ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर उपदेस कुसल बहुतेरे ।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

ताहि कि संपति सगुन सुभ सपनेहुँ मन बिस्राम ।
भूत द्रोह रत मोहबस राम बिमुख रति काम ॥७८॥

कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा ।
मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई ।
अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई ।
धाए करि रघुबीर दोहाई ॥

दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि ।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहि बखानि ॥७९॥

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा ।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा ।
बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना ।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना ।
जेहिं जय होइ सो स्यन्दन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे ।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना ।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा ।
बर बिग्यान कठिन कोदण्डा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम निज नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा ।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥८०(क)॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज ।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥८०(ख)॥
उत पचार दसकन्धर इत अंगद हनुमान ।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन ॥८०(ग)॥
निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजाँ दस चाप ।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

निज दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ ॥८२॥
आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो ।
गिरयौ धरनि दसकन्धर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो ॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो ।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो ॥
उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य ।
राम बिरोध बिजय चह सठहठ बस अति अग्य ॥८४॥

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई ।
सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करइ रावन एक जागा ।
सिद्ध भएँ नहिं मरिहि अभागा ॥
पठवहु नाथ बेगि भट बंदर ।
करहिं बिधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए ।
हनुमदादि अंगद सब धाए ॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका ।
पैठे रावन भवन असंका ॥
जग्य करत जबहीं सो देखा ।
सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा ॥
रन ते निलज भाजि गृह आवा ।
इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ॥
अस कहि अंगद मारा लाता ।
चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥

नहिं चितव जब कोप कपि कोष गहि दसन लातन्ह मारहीं ।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं ॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई ।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई ॥
जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास ।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस ॥८५॥

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर ।
कुलिस समान लाग छाँड़ै सर ॥
नानाकार सिलीमुख धाए ।
दिसि अरु बिदिसि गगन महँ छाए ॥
पावक सर छाँड़ेउ रघुबीरा ।
छन महुँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई ।
बान संग प्रभु फेर चलाई ॥
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै ।
बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै ॥
बिफल होहिं रावन सर कैसें ।
खल के सकल मनोरथ जैसें ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना ।
अस्त्र सस्त्र छाँड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके ।
जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥

पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड ।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड ॥९३॥

आवत देखि सक्ति अति घोरा ।
प्रनतारति भंजन पन मोरा ॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला ।
सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला ॥

तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप ।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥९७॥

काटत बढ़हिं सीस समुदाई ।
जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥

खैंचि सरासन श्रवन लगि छाड़े सर एकतीस ।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ॥१०२॥

सायक एक नाभि सर सोषा ।
अपर लगे भुज सिरि करि रोषा ॥
लै सिर बाहु चले नाराचा ।
सिर भुज हीन रुंड महि नाचा ॥

मन्दोदरी आदि सब देइ तिलांजलि ताहि ।
भवन गईं रघुपति गुन गन बरनत मन माहि ॥१०५॥

आइ बिभीषन पुनि सिरु नायो ।
कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ॥
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला ।
जामवंत मारुत नयसीला ॥
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा ।
सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ॥
पिता बचन मैं नगर न आवउँ ।
आपु सरिस कपि अनुज पठावउँ ॥
तुरत चले कपि सुन प्रभु बचना ।
कीन्ही जाइ तिलक की रचना ॥
सादर सिंहासन बैठारी ।
तिलक सार अस्तुति अनुसारी ॥
सुनि संदेसु भानुकूलभूषन ।
बोलि लिए जुबराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु ।
सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥
तुरतहिं सकल गए जहँ सीता ।
सेवहिं सब निसिचरीं बिनीता ॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखायो ।
तिन्ह बहुबिधि मज्जन करवायो ॥
बहु प्रकार भूषन पहिराए ।
सिबिका रुचिर साजि पुन ल्याए ॥
ता पर हरषि चढ़ी बैदेही ।
सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
बेतपानि रच्छक चहु पासा ।
चले सकल मन परम हुलासा ॥
देखन भालु कीस सब आए ।
रच्छक कोपि निवारन धाए ॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु ।
सीतहि सखा पयादें आनहु ॥
देखउँ कपि जननी की नाईं ।
बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥
सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे ।
नभ ते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥

जनकसुता समेत प्रभु सोभा अमित अपार ।
देखि भालु कपि हरषे जय रघुपति सुख सार ॥१०९(ख)॥

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए ।
तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा ।
आसिरबाद पिताँ तब दीन्हा ॥
सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं ।
तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं ॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा ।
दसरथ हरषि गए सुरधामा ॥
करि बिनती जब संभु सिधाए ।
तब प्रभु निकट बिभीषनु आए ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी ।
बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी ॥

तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात ।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात ॥११६(क)॥
तापस बेष गात कृस जपत निरन्तर मोहि ।
देखौं बेगि सो जतनु करु सखा निहोरउँ तोहि ॥११६(ख)॥

सुनत बिभीषन बचन राम के ।
हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरषाने ।
गहि प्रभु पद गुन बिमल बखाने ॥
चितइ सबन्हि पर कीन्ही दाया ।
बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मार्‌यो ।
तिलक बिभीषन कहँ पुनि सार्‌यो ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निज जिज गृह अब तुम्ह सब जाहू ।
सुमिरेहू मोहि डरपहु जनि काहू ॥
सुनत बचन प्रेमाकुल बानर ।
जोरि पानि बोले सब सादर ॥
प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा ।
हमरें होत बचन सुनि मोहा ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुराई ।
लीन्हे सकल विमान चढ़ाई ॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नायो ।
उत्तर दिसिहि बिमान चलायो ॥

जहँ जहँ कृपासिंधु बन कीन्ह बास बिश्राम ।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम ।।११९(ख)।।

प्रभु हनुमन्तहि कहा बुझाई ।
धरि बटु रूप अवधपुर जाई ॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु ।
समाचार लै तुम्ह चलि आएहु ॥

अध्याय-८

उत्तरकाण्ड

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत ।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत ।।१(क)।।
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात ।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात ।।१(ख)।।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती ।
रटहु निरन्तर गुन गन पाँती ॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता ।
आयउ कुसल देव मुनि त्राता ॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा ।
तृषावन्त जिमि पाइ पियूषा ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते ।
मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता ।
तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥
हरषि भरत कोसलपुर आए ।
समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महँ बात जनाई ।
आवत नगर कुसल रघुराई ॥
सुनत सकल जननीं उठि धाईं ।
कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए ।
नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥

आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ।।४(क)।।
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु ।
प्रेरित राम चलेउ सो हरषु बिरह अति ताहु ।।४(ख)।।

आए भरत संग सब लोगा ।
कृस तन श्रीरघुबीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ट मुनिनायक ।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह ।
अनुजसहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया ।
हमरें कुसल तुमहारिहिं दाया ॥

पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाइ ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ ।।५।।

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे ।
दुसह बिरह संभव दुख मेटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा ।
अनुज समेत परम सुख पावा ॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी ।
जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी ।
किए सकल नर नारि बिसोकी ॥
कौसल्यादि मातु सब धाई ।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥

भेटेउ तनय सुमित्राँ राम चरन रति जानि ।
रामहि मिलत कैकेई हृदयँ बहुत सकुचानि ।।६(क)।।
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाइ ।।६(ख)।।

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही ।
चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता ।
होइ अचल तुम्हर अहिवाता ॥
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं ।
मंगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरती उतारहिं ।
बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥
पुनि रघुपति सब सखा बोलाए ।
मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥
गुर बसिष्ट कुलपूज्य हमारे ।
इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे ।
भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे ।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥
कंचन कलस बिचित्र सँवारे ।
सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बन्दनवार पताका केतू ।
सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥
कृपासिंधु जब मंदिर गए ।
पुर नर नारि सुखी सब भए ॥
गुर बसिष्ट द्विज लिए बोलाई ।
आजु सुघरी सुदिन समुदाई ॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन ।
रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन ॥
मुनि बसिष्ट के बचन सुहाए ।
सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए ॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका ।
जग अभिराम राम अभिषेका ॥
अब मुनिबर बिलम्ब नहिं कीजै ।
महाराज कहँ तिलक करीजै ॥

तब मुनि कहेउ सुमन्त्र सन सुनत चलेउ हरषाइ ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ ।।१०(क)।।
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मगाइ ।
हरष समेत बसिष्ठ पद पुनि सिरु नायउ आइ ।।१०(ख)।।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा ।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ॥
सुत बिलोकि हरषीं महतारी ।
बार बार आरती उतारी ॥
बिप्रन्ह दान बिबिधि बिधि दीन्हे ।
जाचक सकल अजाचक कीन्हे ॥
सिंघासन पर त्रिभुअन साईं ।
देखि सुरन्ह दुन्दुभीं बजाईं ॥

ब्रह्मानन्द मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति ।
जात न जाने दिवस तिन्ह गए मास षट बीति ।।१५।।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाहीं ।
जिमि परद्रोह सन्त मन माहीं ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए ।
आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ॥
परम प्रीति समीप बैठारे ।
भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई ।
मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥
ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे ।
मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज सम्पति बैदेही ।
देह गेह परिवार सनेही ॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना ।
मृषा न कहउँ मोर यह बाना ॥
सब कें प्रिय सेवक यह नीती ।
मोरें अधिक दास पर प्रीती ॥

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम ।।१६।।

प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाषी ।
चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति सादर सब कपि पहुँचाए ।
भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥
राम राज बैठें त्रैलोका ।
हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ।।२०।।

दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं ।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी ।
सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुन्दर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी ।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्यं पंडित सब ग्यानी ।
सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ।।२१।।

सब उदार सब पर उपकारी ।
बिप्र चरन सेवक नर नारी ॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी ।
ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचन्द्र के राज ॥२२॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं ।
मनभावतों धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरनी ।
त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी ।
जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी ।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥

बिधु महि पूरि मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।
मागें बारिद देहिं जल रामचन्द्र कें राज ॥२३॥

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीने ।
दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीने ॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर ।
गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता ।
सोभा खान सुसील बिनीता ॥
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी ।
बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई ।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं ।
सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं ॥
सेवहिं सानुकूल सब भाई ।
राम चरन रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं ।
कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
दुइ सुत सुंदर सीताँ जाए ।
लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर ।
हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे ।
भए रूप गुन सील घनेरे ॥
प्रातकाल सरऊ कर मज्जन ।
बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं ।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं ।
देखि सकल जननीं सुख भरहीं ॥
भरत सत्रुहन दोनउ भाई ।
सहित पवनसुत उपवन जाई ॥
सुमन बाटिका सबहिं लगाईं ।
बिबिध भाँति करि जतन बनाईं ॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं ।
फूलहिं सदा बसंत कि नाईं ॥

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए ।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की सम्पदा किमि गाइए ॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते ।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे ॥

पनिघट परम मनोहर नाना ।
तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना ॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी ।
बसहिं ग्यान रत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई ।
बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥
जब ते राम प्रताप खगेसा ।
उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका ।
बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी ।
प्रथम अबिद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने ।
काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ ।
ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा ।
इन्ह कर हुनर न कवनिहुँ ओरा ॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना ।
ए पंकज बिकसे बिधि नाना ॥
सुख सन्तोष बिराग बिबेका ।
बिगत सोक ए कोक अनेका ॥

यह प्रताप रबि जाकें उर जब करइ प्रकास ।
पछिले बाढ़हिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

जोरि पानि कहि तब हनुमन्ता ।
सुनहु दीनदयाल भगवन्ता ॥
नाथ भरत कछु पूँछन चहहीं ।
प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ ।
भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना ।
सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥
करउँ कृपानिधि एक ढिठाई ।
मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
संतत कै महिमा रघुराई ।
बहु बिधि बेद पुरानन्ह गाई ॥
संत असंत भेद बिलगाई ।
प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता ।
अगनित श्रुति पुरान बिख्याता ॥
संत असंतन्हि कै असि करनी ।
जिमि कुठार चंदन आचरनी ॥
काटइ परसु मलय सुनु गाई ।
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई ॥

ताते सुर सीसन्ह चढ़त जग बल्लभ श्रीखण्ड ।
अनल दाहि पीटत घनहिं परसु बदन यह दण्ड ॥३७॥

बिषय अलम्पट सील गुनाकर ।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूतरिपु बिमद बिरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमलचित दीनन्ह पर दाया ।
मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी ।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
बिगत काम मम नाम परायन ।
सांति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री ।
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर ।
जानेहु तात सन्त सन्तत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं ।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥

निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुन मंदिर सुख पुंज ॥३८॥

सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ ।
भूलेहुँ संगति करिअ न काऊ ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई ।
जिमि कपिलहि घालइ हरहाई ॥
खलन्ह हृदयँ अति ताप बिसेषी ।
जरहिं सदा पर संपति देखी ॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहिं पराई ।
हरषहिं मनहुँ परी निधि पाई ॥
काम क्रोध मद लोभ परायन ।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों ।
जो कर हित अनहित ताहू सों ॥
झूठइ लेना झूठइ देना ।
झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा ।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ॥३९॥

लोभइ ओढ़न लोभइ डासन ।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन ॥
काहू की जौं सुनहिं बड़ाई ।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू कै देखहिं बिपती ।
सुखी भए मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी ।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
मातु पिता गुर बिप्र न मानहिं ।
आपु गए अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोह बस द्रोह परावा ।
संत संग हरि कथा न भावा ॥
अवगुन सिंधु मंदमति कामी ।
बेद बिदूषक परधन स्वामी ॥
बिप्र द्रोह पर द्रोह बिसेषा ।
दंभ कपट जियँ धरे सुबेषा ॥

ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेताँ नाहिं ।
द्वापर कछुक बृन्द बहु होइहहिं कलिजुग माहिं ॥४०॥

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥
निर्नय सकल पुरान बेद कर ।
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा ।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना ।
स्वारथ रत परलोक नसाना ॥
कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता ।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने ।
भजहिं मोहि संसृत दुख जाने ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक ।
भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक ॥
संत असंतन्ह के गुन भाषे ।
ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे ॥

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक ।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥४१॥

एक बार रघुनाथ बोलाए ।
गुर द्विज पुरबासी सब आए ॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन ।
बोले बचन भगत भव भंजन ॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी ।
कहउँ न कछु ममता उर आनी ॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई ।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई ।
मम अनुसासन मानै जोई ॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई ।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥
बड़ें भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ ॥४३॥

एहि तन कर फल बिषय न भाई ।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई ॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं ।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई ।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी ।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥
फिरत सदा माया कर प्रेरा ।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही ।
देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो ।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरा ॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा ।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ॥४४॥

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी ।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति संसृत कर अंता ॥
मोर दास कहाइ नर आसा ।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई ।
एहि आचरन बस्य मैं भाई ॥
बैर न बिग्रह आस न त्रासा ।
सुखमय ताहि सदा सब आसा ॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी ।
अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी ॥
प्रीति सदा सज्जन संसर्गा ।
तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥
भगति पच्छ हठ नहिं सठताई ।
दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥
मम माया सम्भव संसारा ।
जीव चराचर बिबिधि प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाए ।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए ॥
तिन्ह महँ द्विज महँ श्रुतिधारी ।
तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन्ह महँ प्रिय बिरक्त पुनि ग्यानी ।
ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी ॥
तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा ।
जेहि गति मोरि न दूसरि आसा ॥
पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं ।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥
भगतिवन्त अति नीचउ प्रानी ।
मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ॥
एक पिता के बिपुल कुमारा ।
होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता ।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई ।
सब पर पितहि प्रीति सम होई ॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा ।
सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना ।
जद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते ।
त्रिजग देव नर असुर समेते ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अखिल बिस्व यह मोर उपाया ।
सब पर मोहि बराबरि दाया ॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया ।
भजै मोहि मन बच अरु काया ॥
निज अनुभव अब कहउँ खगेसा ।
बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा ॥
राम कृपा बिनु सुनु खगराई ।
जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥
जानें बिनु न होइ परतीती ।
बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई ।
जिमि खगपति जल कै चिकनाई ॥

बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु ।
गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ॥८९(क)॥
कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु ।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९(ख)॥

बिनु संतोष न काम नसाहीं ।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा ।
थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा ॥
बिनु बिग्यान कि समता आवइ ।
कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई ।
बिनु महि गंध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि करि बिस्तारा ।
जल बिनु रस कि होइ संसारा ॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई ।
जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई ॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।
परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा ।
बिन हरि भजन न भव भय नासा ॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु ।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु ॥९०(क)॥

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ॥

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास ।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥१०३(क)॥
प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान ।
जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ॥१०३(ख)॥

नित जुग धर्म होहिं सब केरे ।
हृदयँ राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता बिग्याना ।
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥
सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा ।
सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस ।
द्वापर धर्म हरष भय मानस ॥
तामस बहुत रजोगुन थोरा ।
कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ॥
बुध जुग धर्म जानि मन माहीं ।
तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥
काल धर्म नहिं व्यापहिं ताही ।
रघुपति चरन प्रीति अति जाही ॥
नट कृत बिकट कपट खगराया ।
नट सेवकहि न व्यापइ माया ॥
भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा ।
उभय हरहिं भव संभव खेदा ॥

औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रबीन ।
जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अबिछीन ॥११६(ख)॥

सुनहु तात यह अकथ कहानी ।
समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥
ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुख रासी ॥
सो मायाबस भयउ गोसाईं ।
बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई ।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी ।
छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई ।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदयँ तम मोह बिसेषी ।
ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई ।
तबहुँ कदाचित सो निरुअरई ॥
सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ।
जौं हरि कृपाँ हृदयँ बस आई ॥
जप तप ब्रत जम नियम अपारा ।
जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई ।
भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नोइ निबृत्ति पात्र बिस्वासा ।
निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
धरम धर्ममय पय दुहि भाई ।
अवटै अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै ।
धृति सम जावनु देइ जमावै ॥
मुदितौं मथै विचार मथानी ।
दम अधार रजु सत्य सुबानी ॥
तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ॥

जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ ॥११७(क)॥
तब बिग्यानरूपिनी बुद्धि बिसद घृत पाइ ।
चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ ॥११७(ख)॥
तीन अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि ।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि ॥११७(ग)॥
एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिग्यानमय ।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७(घ)॥

सोहमस्मि इति बृत्ति अखण्डा ।
दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा ।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥
प्रबल अबिद्या कर परिवारा ।
मोह आदि तम मिटइ अपारा ॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजिआरा ।
उर गृहँ बैठि ग्रंथि निरुआरा ॥
छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई ।
तब यह जीव कृतारथ होई ॥
छोरत ग्रंथि जानि खगराया ।
बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई ।
बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई ॥
कल बल छल कर जाहिं समीपा ।
अंचल बात बुझावहिं दीपा ॥
होइ बुद्धि जौं परम सयानी ।
तिन्ह तन चितव न अनहित जानी ॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी ।
तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी ॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना ।
तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहिं बिषय बयारी ।
ते हटि देहिं कपाट उघारी ॥

जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई ।
तबहिं दीप बिग्यान बुझाई ॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा ।
बुद्धि बिकल भई बिषय बतासा ॥
इन्द्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई ।
बिषय भोग पर प्रीति सदाई ॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी ।
तेहि बिधि दीप को बार बहोरी ॥

तब फिरि जीव बिबिधि बिधि पावइ संसृति क्लेस ।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ॥११८(क)

अस बिचारि हरि भगत सयाने ।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने ॥
कहेउँ ग्यान सिद्धांत बुझाई ।
सुनहु भगति मनि कै प्रभुताई ॥
राम भगति चिन्तामनि सुन्दर ।
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर ॥
परम प्रकास रूप दिन राती ।
नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा ।
लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई ।
हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधासम अरि हित होई ।
तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई ॥
व्यापहिं मानस रोग न भारी ।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाकें ।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं ।
जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥
सो मनि जदपि प्रगट जग अहई ।
राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई ॥
सुगम उपाय पाइबे केरे ।
नर हतभाग्य देहिं भटभेरे ॥
पावन पर्बत बेद पुराना ।
राम कथा रुचिराकर नाना ॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ग्यान बिराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी ।
पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु धन सज्जन धीरा ।
चन्दन तरु हरि सन्त समीरा ॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई ।
सो बिनु संत न काहूँ पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसंगा ।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा ॥

बहा पयोनिधि मन्दर ग्यान सन्त सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।।१२०(क)।।
बिरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ।।१२०(ख)।।

नर तन सम नहिं कवनिउ देही ।
जीव चराचर जाचत तेही ॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी ।
ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ॥
सो तनु धरि हरि भजहिं न जे नर ।
होहिं बिषय रत मंद मंद तर ॥
काँच किरिच बदलें ते लेहीं ।
कर ते डारि परस मनि देहीं ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं ।
सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं ॥
पर उपकार बचन मन काया ।
सन्त सहज सुभाउ खगराया ॥
सन्त सहहिं दुख पर हित लागी ।
पर दुख हेतु असंत अभागी ॥
भूर्ज तरु सम सन्त कृपाला ।
पर हित निति सह बिपति बिसाला ॥
सन इव खल पर बन्धन करई ।
खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी ।
अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥
पर संपदा बिनासि नसाहीं ।
जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट उदय जग आरति हेतू ।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥
सन्त उदय सन्तत सुखकारी ।
बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा ।
पर निंदा सम अघ न गरीसा ॥
हर गुर निंदक दादुर होई ।
जन्म सहस्र पाव तन सोई ॥

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि ।
जग जनमइ बायस सरीर धरि ॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी ।
रौरव नरक परहिं ते प्रानी ॥
होहिं उलूक सन्त निंदा रत ।
मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत ॥
सब कै निंदा जे जड़ करहीं ।
ते चमगादुर होइ अवतरहीं ॥
सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा ॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा ।
क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥
प्रीति करहिं जौं तीनिउ भाई ।
उपजइ सन्यपात दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना ।
ते सब सूल नाम को जाना ॥
ममता दादु कंडु इरषाई ।
हरष बिषाद गरह बहुताई ॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई ।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई ॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी ।
त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी ॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका ।
कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका ॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि ।।१२१(क)।।

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा ।
जौं एहि भाँति बनै संजोगा ॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय कै आसा ॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी ।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं ।
नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं ॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई ।
जब उर बल बिराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढ़इ नित नई ।
बिषय आस दुर्बलता गई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बिमल ग्यान जल सब सो नहाई ।
तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुक सनकादिक नारद ।
जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥
पूरन काम राम अनुरागी ।
तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी ॥
सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी ।
पर हित हेतु सबन्ह कै करनी ॥
सन्त हृदय नवनीत समाना ।
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परताप द्रवइ नवनीता ।
पर दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता ॥

गिरिजा सन्त समागम सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान ।।१२५(ख)।।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई ।
सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई ।
जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म ब्रत दाना ।
संजम दम जप तप मख नाना ॥
भूत दया द्विज गुर सेवकाई ।
बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी ।
सब कर फल हरि भगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई ।
राम कृपाँ काहूँ एक पाई ॥
धन्य देस सो जहँ सुरसरी ।
धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई ।
धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी ।
धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा ।
धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ।।१२७।।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामचरित-मानस से प्रगतिशील प्रेरणा

उद्देश्य:— भारतीय संस्कृति के आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में मूर्तिमान करने वाले चौबीस अथवा दस अवतारों की शृंखला में भगवान राम और कृष्ण का विशिष्ट स्थान है। उन्हें भारतीय धर्म के आकाश में चमकने वाले सूर्य और चन्द्र कहा जा सकता है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के उत्कृष्ट स्वरूप का आभूषण रखने एवं विकसित करने के लिए क्या करना चाहिए। इस अपने पुण्य-चरित्र द्वारा जन साधारण के सामनें प्रस्तुत किया है। ठोस शिक्षा की पद्धति भी यही है कि जो कहना हो, जो सिखाना हो, जो करना हो, उसे वाणी से हम और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने वाले आत्म-चरित्र द्वारा अधिक व्यक्त किया जाये। यों सभी अवतारों के अवतरण का प्रयोजन यह रहा है, पर भगवान राम और भगवान कृष्ण ने उसे अपने दिव्य चरणों द्वारा और भी अधिक स्पष्ट एवं प्रखर रूप में बहुमुखी धाराओं सहित प्रस्तुत किया है।

राम और कृष्ण की लीलाओं का कथन तथा श्रवण पुण्य माना जाता है। रामायण के रूप में रामचरित्र और भागवत के रूप में कृष्ण चरित्र प्रख्यात है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त भी अन्य पुराणों में उनकी कथाएँ आती हैं। उनके घटनाक्रमों में भिन्नता एवं विविधता भी है। इनमें से किस कथानक का कौन सा प्रसंग आज की परिस्थिति में अधिक प्रेरक है यह शोध और विवेचन का विषय है। यहाँ तो इतना जानना ही पर्याप्त है कि उपयुक्त दोनों ग्रन्थ दोनों भगवानों के चरित्र की दृष्टि से अधिक प्रख्यात और लोकप्रिय हैं। उन्हीं मे वर्णित कथा क्रम की लोगों को अधिक जानकारी है।

कथा चरित्रों के माध्यम से लोक शिक्षण अधिक सरल पड़ता है। इस भाँति से वह सर्व साधारण के लिए अधिक बुद्धिगम्य हो जाता है और हृदयगम्य तत्वदर्शी मनीषियों ने इस तथ्य को समझा था और जन-मानस के परिस्थितियों के लिये आवश्यक लोक शिक्षण की व्यवस्था बनाने के उदेश्य से कथन शैली को को अपनाया था। वही सुबोध रही और लोकप्रिय बनी। अस्तु, एक प्रकार से इसी प्रक्रिया के माध्यम से धर्म चर्चा करने की नीति अपनाई गई और सफल भी हुई। वेद चार हैं और चारों को मिलाकर २० हजार मन्त्र हैं। पर एक-एक पुराण का आधार-विस्तार कहीं अधिक है, जितना कि चारों वेदों का सम्मिलित रूप है। अकेले महाभारत में एक लाख से अधिक श्लोक है। स्कन्द पुराण भी ८१ हजार श्लोकों का है। उपयोगिता के अनुरूप पुराणों का विस्तार होता ही गया। १८ पुराण बने और इस के बाद १८ उप पुराण। यह विस्तार उस शैली की लोकप्रियता और सफलता पर प्रकाश डालता है।

भगवान राम और भगवान कृष्ण के चरित्रों में लोक-शिक्षण की प्रचुर सामग्री विद्यमान है। रामायण और भागवत के कथानकों के माध्यम से जन मानस का परिष्कार और सामाजिक सुव्यवस्था का प्रतिपादन बहुत ही अच्छी तरह किया जा सकता है, किया जाता भी रहा है।

इस प्रयास प्रचलन में एक त्रुटि यह थी कि कथा-ग्रन्थों का श्रवण एवं पाठ मात्र पुण्य फल प्राप्त करने के लिए पर्याप्त बताया जाने लगा था और नाम जप की महिमा आकाश-पाताल जैसी बताई गई थी। साथ ही भक्ति को अमुक कर्मकाण्डों के बोध (नवधा भक्ति) तक सीमित रखा जा रहा था। इससे कथा-प्रसंगों की उपयोगिता ही नष्ट न हुई वरन् उल्टी गंगा बहने लगी। जब श्रवण, पठन, जप और सरलतम कर्मकाण्डों में कुछ मिनट लगाने से पाप कट सकते हैं, पुण्य फल, ईश्वर का अनुग्रह और मुक्ति जैसी उपलब्धियाँ सहज ही मिल सकती हैं, तो फिर उन कष्ट साध्य आदर्शों को जीवन में उतारने का झंझट मोल क्यों लिया जाय? सरल कृत्यों का अत्यधिक माहात्म्य बताने की परोक्ष प्रक्रिया यह हुई कि लोगों ने अनाचार से बचने और सदाचार को अपनाने के लिये जिस उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्तृत्व की अनिवार्य आवश्यकता है उसकी उपेक्षा आरम्भ कर दी। फलत: लोग पाप कर्मों का दंण्ड मिलने की ओर से निर्भय हो गये। जब पाप अमुक कथा सुनने से नष्ट हो जाते हों और उनका दण्ड न मिलता हो तो उनके सहारे जो भौतिक लाभ मिल सकते हैं। उन्हें क्यों छोड़ा जाय? इसी प्रकार यदि अति सरल कर्मकाण्ड आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करा सकते हैं तो आदर्श जीवन जीने और लोक मंगल के लिए त्याग, बलिदान के झंझट में पड़ने की क्या जरूरत?

यह उल्टे तर्क लोगों के मन में बैठते चले गये। कथा वाचकों ने इसी सरलता को प्रस्तुत करते हुए शायद सोचा होगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

कि इस सरल प्रक्रिया से आकर्षित होकर लोग जल्दी धर्म-प्रेमी बनेंगे । पर वैसा होना सम्भव ही नहीं था और हुआ भी नहीं । छुटपुट क्रिया कृत्यों की टण्ट-घण्ट तो इस प्रलोभन में बहुत फैली पर धर्म की आत्मा का हनन हो गया । धर्माडम्बर ओढ़े हुए लोग अपने को पाप दण्डों से मुक्त और ईश्वरीय अनुग्रह के अधिकारी मानकर चलने लगे । उन्होंने उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्त्तव्य को झंझट कहना आरम्भ कर दिया । सरलता के आकर्षण ने उस ओर से मुंह मोड़ लेने के लिए जन साधारण को प्रेरणा दी । इस प्रकार कथा शैली के विकास का मूल भूत आधार ही नष्ट हो गया ।

सीधी धारा को उल्टी बहाया गया यह अनर्थ ही हुआ । अनर्थ को सुधारना-सही करना आवश्यक था । इसके बिना कथा क्रम का लक्ष्य भ्रष्ट ही बना रहता । रामचरित्र और कृष्णचरित्र का वही उद्देश्य और स्वरूप जन-साधारण के सामने रखा जाना चाहिए जिसके लिए उनका अवतरण हुआ । धर्म की स्थापना और अधर्म का उन्मूलन यह दो प्रयोजन अवतार के रहे हैं । यह प्रयोजन उत्कृष्ट चिन्तन और आदर्श कर्त्तव्य अपनाये बिना और किसी प्रकार पूरा नहीं हो सकता । अवतारों की कथा-गाथाओं में यही तथ्य पग-पग पर उभर रहा है । हमारी कथा शैली की दिशा यही होनी चाहिये । आज धर्म की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए-उसके मूल स्वरूप से जनसाधारण को परिचित कराते हुए धर्मनिष्ठा को प्राणवान बनाने का यही तरीका है । अब कर्मकाण्डों का अलंकारिक माहात्म्य न बताकर चरित्र निष्ठा को अवतारों के अवतरण का मूल प्रयोजन को बताया जाय और उसी के अनुगमन की दिशा में लोक मानस को प्रोत्साहित किया जाय ।

एक अन्य विकृति कथा-शैली में और भी घुस पड़ी थी, जिसमें चरित्र नायकों के जीवन क्रम में ऐसी घटनाएँ जोड़ दी गईं थीं जो नैतिक एवं सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन और अवांछनीय आचरण के उदाहरण प्रस्तुत करती है । लोग गुणग्राही कम और दोषों के अनुकरण में कुशल होते हैं । जहाँ भी देवताओं, अवतारों, ऋषियों, महामानवों के चरित्रों में दोष की बात सुनते हैं, वहाँ न केवल अश्रद्धा करते हैं, वरन् अपनी पथ-भ्रष्टता को सरल स्वाभाविक सिद्ध करने के लिए उन चरित्रों का सन्दर्भ देते हैं, जो महामानवों के लीला प्रसंग में जोड़ दिये गये हैं । दुःख की बात यह है कि कथावाचक उन्हीं को लोक रंजन की दृष्टि से चटपटा बनाकर कहते रहते हैं । वे भूल जाते हैं कि वे धर्ममंच से किन अवांछनीय प्रेरणाओं का प्रवाह बहा रहे हैं ।

कथा शैली के माध्यम से लोक-शिक्षण भारत की वर्तमान मनोभूमि एवं आवश्यकताओं को देखते हुए एक नितान्त उपयोगी और वांछनीय प्रक्रिया है । उसे पुनर्जीवित करने के लिए युग निर्माण योजना ने अभिनव प्रयत्न आरम्भ किये हैं । उन्हीं में से एक प्रयास भगवान राम और भगवान कृष्ण की कथाओं का सहारा लेकर बौद्धिक, नैतिक एवं सामाजिक उत्कृष्टता स्थापित करना भी है । प्रस्तुत रामकथा में संक्षेप में निम्नलिखित प्रकरणों को सम्मिलित किया गया है

अध्याय-१ रामचरित मानस—अलौकिक तीर्थराज
अध्याय-२ आस्तिकता—प्रकरण
अध्याय-३ आध्यात्मिकता प्रकरण—
अध्याय-४ धार्मिकता प्रकरण—
अध्याय-५ परिवार प्रकरण—
अध्याय-६ समाज प्रकरण—
अध्याय-७ सामूहिक सहयोग और संगठन की प्रवृत्तियाँ
अध्याय-८ पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी संकेत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामचरितमानस - अलौकिक तीर्थराज

राम-कथा प्रसंग के लिए विनिर्मित "राम चरितमानस" की रचना गोस्वामी तुलसीदास जी ने तीर्थराज प्रयाग के रूप में दी है इस भावनात्मक दिव्य संगम का स्वरूप निश्चय रूप से परम कल्याणकारक है। इसका दर्श-स्पर्श, मज्जन-स्नान करके जन-मानस सच्चे अर्थों में धन्य बन सकता है। प्रयाग का जो पुण्य वर्णन किया है वह रामचरित मानस के पठन, श्रवण एवं अवगाहन से भली प्रकार मिल सकता है।

इस दिव्य तीर्थराज में मिलने वाली तीन धाराओं का विवेचन रामायणकर्ता ने इस प्रकार किया है—

राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।
सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेध मय कलिमल हरनी।
करमकथा रबिनंदनि बरनी॥

प्रथम राम-कथा अर्थात् गंगा। इसकी परिधि में ईश्वर विश्वास, भक्ति, आत्मसमर्पण विश्व प्रेम आदि आस्तिकता से सम्बन्धित सभी भावनाएँ आती हैं।

द्वितीय सरस्वती अर्थात् ब्रह्म-विचार। ब्रह्म-विद्या, आत्मज्ञान आदि अध्यात्म की समस्त पृष्ठभूमि यही है। आत्मचिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्म विस्तार की विचारणा को दिव्य-सरस्वती कहा गया है।

तीसरी-यमुना। अर्थात् धर्म-धारणा-कर्मनिष्ठा-कर्तव्य परायणता। विधि और निषेध का-औचित्य अनौचित्य का-करने योग्य और न करने योग्य का निर्धारण इसी धर्ममर्यादा के आधार पर होता है। उसके द्वारा कलिमलों का-अन्तरंग दुर्भावनाओं और बहिरंग दुष्कर्मों का-कषाय-कल्मषों का निवारण होता है।

तीर्थराज प्रयाग में बहने वाली गंगा, सरस्वती और यमुना को क्रमशः आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता कहते हैं। इन तीनों का समावेश जिस व्यक्ति या समाज में होगा वहाँ परम शान्तिदायक, चरम मंगलमय, दिव्य पुण्य फलदायक स्वर्गीय वातावरण प्रस्तुत होगा।

रामचरितमानस में प्रतिपादित इस तीर्थराज के प्रभाव से समाज सुकर्मी बनता है अथवा सुकर्मी लोगों का समुदाय बढ़ता है—

"तीरथराज समाज सुकर्मा।"

इस तीर्थराज तक पहुँचना, उसमें मज्जन करना, कुछ भी कठिन नहीं है। कठिन तो कुकर्मों की दिशा में चलना होता है। सज्जनता तो श्रेष्ठ ही नहीं सरल भी है। इससे देखने, कहने, सुनने वाले नहीं वरन् मज्जन करने वाले लोग समस्त क्लेशों से छुटकारा पाकर परम लक्ष्य और अक्षय परमानन्द को प्राप्त करते हैं। सज्जन ही इस तीर्थराज में रुचि लेते है। दुर्जन की इधर प्रवृत्ति नहीं होती—

सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा॥

यह तीर्थराज-आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता का संगम-आँखों से नहीं देखा जा सकता। यह पार्थिव नहीं है, फिर भी उसका प्रतिफल तुरन्त मिलता है। पार्थिव प्रयाग में नहाने से तो प्रायः फल की प्रतीक्षा कभी भविष्य में मिलने की करनी पड़ती है। पर इस भावनात्मक संगम के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। उसका प्रतिफल तुरन्त मिलता है—

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ।
देहि सद्य फल प्रकट प्रभाऊ॥
मज्जन फल देखिअ तत्काला।
काक होहि पिक बकहु मराला॥

इस कथा प्रसंग में ओत-प्रोत प्रकाश को हृदयंगम करने पर दृष्टिकोण बदलता है और उसमें उत्कृष्टता का गहरा समावेश होता है, कर्तृत्व में आदर्शवादी प्रकिया जुड़ती है। फलतः व्यक्तित्व का कायाकल्प ही हो जाता है पिछले लोभ मोहव्यस्त-आधि-व्याधि ग्रस्त जीवन को एक नया स्वरूप मिलता है। उसके प्रभाव से काग जैसे दुष्ट कठोर प्रकृति वाले कोयल के समान प्रिय बन जाते हैं और बगुले जैसे कपट प्रकृति वालों को हंस जैसे विवेकवानों के रूप में परिवर्तित होते देखा जाता है। यह पुण्य फल कालान्तर में नहीं तुरन्त-तत्काल मिलता है। रामायण की यह मान्यता सर्वथा सत्य और प्रत्यक्ष है।

जो केवल जीभ से रामायण पढ़ने और कान से सुनने तक को ही पर्याप्त मानते हैं, उनकी बात दूसरी है। पर जो उसमें प्रतिपादित तथ्यों को हृदयंगम करने और व्यावहारिक जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में समावेश करने का साहस करते हैं उन्हें इस पर प्रेरणा प्रकाश का चमत्कारी लाभ निश्चित रूप से मिलता है। काग का पिक और वक का मराल हो जाना आश्चर्यजनक तो हैं पर रामायण प्रेमियों के लिए असम्भव नहीं ।

प्रयाग में एक अक्षय वट भी है जिसे पृथ्वी का कल्पवृक्ष कहा जाता है। दिव्य दृष्टि से वह अपने धर्म-कर्तव्य का दृढ़ता-पूर्वक पालन करना है। कर्तव्य-परायण लोग वे समस्त भौतिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करते हैं। कल्पवृक्ष के नीचे बैठने वालों की समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण होती है। अक्षय वट का आश्रय लेने वाले आप्त काम हो जाते हैं। यह अक्षय वट कभी नष्ट न होने वाला प्रकाश है। कल्पवृक्ष क्या है इसे तुलसीदास जी ने दृढ़ कर्त्तव्य-निष्ठा के रूप में ही प्रस्तुत किया है—

बट विस्वास अचल निज धर्मा ।
तीरजराज समाज सुकर्मा ॥

धर्म और कर्म की उत्कृष्टता तीर्थराज प्रयाग के पुण्य फल को प्रत्यक्ष एवं सार्थक बनाती है ।

रामकथा को यदि इसी दृष्टि से कहा, सुना पढ़ा और समझा जाय कि उससे प्रस्तुत प्रकाश को हृदयंगम करना है और अपने क्रियाकलाप में सम्मिलित करना है, तो फिर उसका वर्णित माहात्म्य पूरी तरह सार्थक होकर रहेगा। रामचरित-मानस के सहारे मनुष्य भवबन्धनों से मुक्त होगा और देवोपम स्वर्गीय जीवन का आनन्द लाभ करेगा। आन्तरिक दृष्टि से परिष्कृत व्यक्ति भौतिक दृष्टि से भी सुखी और समुन्नत ही रहते हैं, यह तथ्य सर्वविदित है। लौकिक तीर्थराज प्रयाग का अलंकारिक पुण्य-फल हम यथार्थ में रामचरित मानस में वर्णित दिव्य-भावना-दिव्य विचारणा और दिव्य प्रक्रिया की-आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता की त्रिधारा का मज्जन सेंवन करके ही प्राप्त कर सकते हैं ।

ooo

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्तिकता प्रकरण

ईश्वर के तीन स्वरूप– निराकार, साकार और अवतार

किस भगवान की किस प्रकार आराधना की जाय इस गुत्थी को सुलझाती हुई रामायण ने ईश्वर को साकार और निराकर रूप में प्रस्तुत किया है। निराकार अर्थात् चेतना की सतोगुणी प्रवृत्तियाँ जो हमारे अन्त:करण में दिव्य भावनाओं एवं मस्तिष्क में दिव्य विचारणा के रूप में रहती है। विश्वव्यापी निराकार ब्रह्मसत्ता का सम्पर्क मानवी चेतना के साथ इसी रूप में होता है।

साकार ईश्वर इस समस्त ब्रह्माण्ड के, विराट-विश्व के रूप में दृष्टिगोचर होता है। लोक मंगल के लिए प्रादुर्भूत महान अभियानों एवं अपने आदर्शवादी क्रिया-कलाप द्वारा जन-साधारण का मार्ग दर्शन करने वाले महामानवों के रूप में परमेश्वर का वर्णन किया गया है और उन्हीं की भक्ति करने की प्रेरणा दी गई है।

ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप चेतनात्मक सर्वव्यापी सत्ता के रूप में है जो इस विश्व का उद्भव, अभिवर्धन एवं परिवर्तन करने में निरत है। उसकी इन गतिविधियों को ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। मनुष्य में यह ईश्वरीय सत्ता इच्छाशक्ति (भावना), ज्ञान शक्ति (विचारणा) और क्रिया शक्ति (हलचल) के रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन्हीं तीनों को गायत्री, सावित्री और सरस्वती कहते हैं। यह तीनों ही ब्रह्मा की पत्नियों के रूप में पुराण-साहित्य में वर्णित हुई है।

जो सर्वव्यापक है उसे निराकार होना चाहिए। रूप बनाने में तो एक देशीय होना पड़ेगा और उसकी सर्वदेशीय विशेषता समाप्त हो जायेगी। इसीलिए मूलत: ब्रह्मा निराकार है, उसे निर्गुण भी कहते हैं। मनुष्य के सम्पर्क में जब वह व्यापक सत्ता जितनी मात्रा में आती है उतने ही अनुपात से उसमें दिव्य भावनाएँ उत्कृष्ट विचारणायें और आदर्शवादी क्रिया चेष्टाएँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। इस निराकार भावना का दर्शन, इन्हीं इच्छा, ज्ञान और क्रिया की दिव्यता के रूप में हो सकता है।

ईश्वर चेतना रूप है यह भाव शिव-उमा संवाद में इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

सहज प्रकास रूप भगवाना।
नहिं तहँ पुनि विज्ञान बिताना॥

और भी लिखा है–

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।
मायाधीस ग्यान गुन धामू॥

किन्तु मनुष्य स्वयं ही भ्रामित होकर सगुण-निर्गुण में भेद समझने लगता है। जैसे सूर्य और चन्द्र एक-एक ही हैं, पर आँखों को एक तरफ से अंगुली से दबा कर देखने से वह दो दिखाई देते हैं। कहा है–

चितव जो लोचन अँगुलि लाएँ।
प्रकट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥

दिव्य चेतना के रूप में ब्रह्मा की व्यापकता का सुन्दर चित्रण शिव-पार्वती संवाद (बालकाण्ड) में देखने को मिलता है–

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु करम करै जग नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु वानी वक्ता बड़ जोगी॥

इसी निराकार परब्रह्मा की महामानवों एवं महान अभियानों के रूप में जब परिलक्षित होती हो तो उस दृश्यमान क्षेष्ठता को साकार ब्रह्मा कहते हैं। इनमें वस्तुत: कोई भेद नहीं है। एक ही सत्ता के दो अप्रकट और प्रकट रूप हैं।

इस भाव को शिवजी पार्वतीजी से प्रकट करते हुए कहते हैं–

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना।
परमानन्द परेश पुराना॥

वन्दना-प्रसंग में भी भगवान को विश्वरूप में सगुण लीला करने वाला कहा है–

एक अनीह अरूप अनामा।
अज सच्चिदानन्द पर धामा॥
व्यापक रूप विश्व भगवाना।
तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

भगवान राम के जन्म के उपरान्त कवि की टिप्पणी है-

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत बिनोद ।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या कै गोद ॥

वानर वीरों की अयोध्या से विदाई के समय स्वयं भगवान उन्हें अपने सर्वगत रूप की उपासना की शिक्षा देते हुए कहते हैं—

अब गृह जाहु सखा सब, भजहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित, जानि करहु अति प्रेम ॥

लक्ष्मणजी निषादराज को यही तथ्य समझाते हुए कहते हैं—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा ।
अविगत अलख अनादि अनूपा ॥

उत्तर काण्ड में काकभुशुण्डिजी भी भगवान का यही स्वरूप बताते हैं कि भगवान व्यापक हैं और व्याप्य भी वहीं हैं । वे अखण्ड, अनन्त अखिल और अमोघ शक्ति के रूप में हैं—

व्यापक व्याप्य अखंड अनन्ता ।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता ॥

साकार ब्रह्म का वर्णन करते हुए इस संसार को ही भगवान के विराट रूप में वर्णित किया गया है । कहा है कि यह समस्त विश्व ब्रह्माण्ड भगवान का ही रूप है, यह मानकर प्राणिमात्र की-जड़-चैतन्य की सेवा साधना करना यह ईश्वर भक्ति का व्यावहारिक रूप है ।

अर्जुन को भगवान कृष्ण ने विवेक की आँखें दीं । दिव्यं ददामि ते चक्षु । चमड़े की आँखों से तो जड़ प्रकृति के पदार्थ ही देखे जा सकते हैं । भगवान चैतन्य हैं उनका कोई रूप नहीं । रूपवान ईश्वर को देखना हो तो उसके लिए विवेक के दिव्य चक्षु चाहिए । वे ही भगवान ने अर्जुन को दिये और अपना दृश्यमान विराट रूप इस सुविस्तृत विश्व के रूप में दिखाया । गीता में इसका विस्तृत अलंकारिक वर्णन है ।

यशोदा को भी बालकृष्ण ने मिट्टी खानें के लिए धमकाये जाने पर अपना मुँह खोलकर यह विराट रूप दिखाया था और बताया था कि यदि ईश्वर का दर्शन करना हो तो नेत्रों से अथवा ध्यान में किसी कल्पित मानस आकृति से काम न चलेगा । इस मूर्तिमान विश्व को ही भगवान का विग्रह मान कर चलना पड़ेगा और उसकी पूजा, श्रम, समय, स्वेद आदि अपनी सम्पदाओं से करनी होगी । पूजा, उपचार आदि उसी के प्रतीक, प्रतिनिधि हैं ।

कौशल्या जब पालने में राम को झुला रही थी, तब उनकी इच्छा भी भगवान का दर्शन करने की हुई । भगवान ने उन्हें भी अपना विराट रूप दिखाकर समाधान किया । तब काकभुशुण्डिजी की भी इच्छा थी । अयोध्या में जन्में बालक राम को देखने से उनका समाधान न हुआ तब उनने भी अपनी सूक्ष्म बुद्धि से विश्व व्यापी विराट ब्रह्म को देखा, सन्तोष प्राप्त किया । सतीमोह प्रसंग तथा मन्दोदरी द्वारा रावण का समझाने के प्रसंग में भी भगवान के विराट रूप का वर्णन मानस में मिलता है ।

भगवान की मूर्तियों में शिवलिंग और शालिग्राम के रूप में शिव एवं विष्णु की प्रतिमाएँ पाई जाती है । यह गोलाकार पिण्ड इस गोल विश्व का ही प्रतीक है । विश्व मानव के रूप में ही-विराट विश्व के रूप में ही दृश्यमान का साक्षात्कार किया जा सकता है । इस ईश्वर दर्शन के तथ्य को रामायण में भली प्रकार प्रस्तुत किया गया है ।

माता-कौशल्या को जब भगवान ने अपना विराट रूप दिखाया था, तब उसका वर्णन मानस में निम्नलिखित प्रकार मिलता है—

दिखरावा मातहिं निज, अद्भुत रूप अखण्ड ।
रोम-रोम प्रति लागे, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड ॥
अगनित रवि ससि सिव चतुरानत ।
बहु गिरि सरित सिन्धु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ज्ञान सुभाऊ ।
सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥

काकभुशुण्डिजी ने अखिल ब्रह्माण्ड के रूप में भगवान के दर्शन किये थे—

उदर माँझ सुनु अंडजराया ।
देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका ।
रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा ।
अगनित उडुगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला ।
अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
भिन्न-भिन्न मैं दीख सबु, अति विचित्र हरिजान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउँ आन ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोह जनित सती को भगवान राम ने अपना विराट रूप दिखाया जिसमें कण-कण को जड़-चेतन राममय देखकर सती को महान् आश्चर्य हुआ और उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई–

सती दीख कौतुक मग जाता ।
आगे रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिर चितवा पाछे प्रभु देखा ।
सहित बन्धु सिय सुन्दर वेषा ॥
जहँ चितवहि तहँ प्रभु आसीना ।
सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रवीना ॥
देखे सिब विधि विस्नु अनेका ।
अमित प्रभाउ एक तें एका ॥

गीता के ११ वें अध्याय में और यजुर्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित भगवान् के विश्वरूप का चित्रण रामचरितमानस के लंका काण्ड में भी आया है– मन्दोदरी रावण के सामने कह रही है ।

विस्वरूप रघुवंसमनि, करहु बचन विस्वासु ।
लोक कल्पना वेद कर अंग-अंग प्रति जासु ॥
पद पाताल सरस अज धामा ।
अपर लोक अंग अंग विश्रामा ॥
भृकुटि विलास भयंकर काला ।
नयन दिवाकर कच घन माला ॥
जासु घ्रान अस्विनी कुमारा ।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा ॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी ।
मारुत स्वास निगम निज बानी ॥
अधर लोभ जम दसन कराला ।
माया हास बाहु दिग्पाला ॥
आनन अनल अंबुपति जीहा ।
उतपति पालन प्रलय समीहा ॥
रोम राजि अष्टादस भारा ।
अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अघगो जातना ।
जगमय प्रभु का बहु कल्पना ॥
अहंकार सिब बुद्धि अज, मन ससि चित महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥

भगवान को जड़-चेतन सब में व्यापक मानकर हर पदार्थ का श्रेष्ठतम सदुपयोग और हर प्राणी में भगवान की आभा ज्योतिर्मय देखकर उसके साथ सद्व्यवहार करना यही विराट रूप मान्यता को कार्यान्वित करना है । रामायण इसी पथ पर चलने की जनसाधारण को प्रेरणा देती है । इस भाव को मानसकार ने वन्दना-प्रसंग में बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है–

जड़ चेतना जग जीव जत, सकल राममय जानि ।
बन्दौ सब के पद कमल, सदाजोरि जुग पानि ॥
आकर चारि लाख चौरासी ।
जानि जीव जल थल नभ वासी ॥
सियाराम मय सब जग जानी ।
करौं प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

यही भाव दूसरे ढंग से काकभुशुण्डि-श्राप के प्रसंग में शिवजी के मुख से प्रकट हुआ है–

उमा जे रामचरन रत, विगत काम मद क्रोध ।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं विरोध ॥

निराकार और साकार का– निर्गुण और सगुण का भेद और विवाद बहुत समय से चला आता है और दोनों पक्ष अपने-अपने समर्थन के लिए भारी खींचतान करते हैं । तुलसीदास जी ने दोनों का समन्वय किया है और दोनों में अन्तर करने की बात को निरर्थक बताया है । परब्रह्म को निराकार मानकर उसे अपने भीतर सद्भावनाओं-सद्विचारणाओं एवं सत्प्रवृत्तियों के रूप में धारण करना-यह निराकार भक्ति हुई । विराट ब्रह्म को संसार-व्यापी मानकर सबके साथ सद्व्यवहार करना यह साकार भक्ति हुई । दोनों एक दूसरे के पूरक हैं । इसमें विवाद का कोई कारण नहीं । साकार और निराकार ब्रह्म की एकता ही युक्तिसंगत है । रामायण की यही मान्यता है । शिवपार्वती संवाद में यह तथ्य प्रतिपादित है–

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा ।
गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा ॥

'दोहावली' में उल्लेख है–

'हिय निर्गुन नयनहि सगुन ।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान राम की स्तुति में सम्बोधन है—

निर्गुन सगुन विषम सम रूपं ।
ग्यान गिरा गोतीत अनूपं ॥

'बालकांड' में ही नामरूप-वर्णन प्रसंग में उल्लेख है—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म स्वरूपा ।
अकथ अगाध अनादि अनूपा ॥

'किष्किन्धा काण्ड' में शरद-वर्णन के प्रसंग में यही भाव अंलकारिक रूप में प्रस्तुत किया गया है—

फूले कमल सोह सर कैसा ।
निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा ॥

ब्रह्म के व्यक्त-अव्यक्त रूप का स्पष्टीकरण मानस के प्रारम्भिक-प्रसंग में ही इस प्रकार मिलता है—

एक दारुगत देखिअ एकू ।
पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥

अर्थात् काष्ठ के भीतर रहने वाले और उसके जलते स्वरूप में प्रकट अग्नि वस्तुत: एक ही है । इसी प्रकार ब्रह्म भी प्रकट और अप्रकट रूप में रहता है ।

निर्गुण-सगुण की एकरूपता समझाते हुए शिवजी पार्वती जी से कहते हैं—

जो गुन रहित सगुन सोई कैसे ।
जल हिम उपल विलग नहिं जैसे ॥
अगुन अरूप अलख अज जोई ।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई ॥

प्रारम्भिक वन्दना प्रसंग में ही व्यक्त किया गया है—

एक अनीह अरूप अनामा ।
अज सच्चिदानन्द परधामा ॥
व्यापक विश्वरूप भगवाना ।
तेहि धरि देह चरित किय नाना ॥

विराट ब्रह्म, विश्वमानव के अतिरिक्त भगवान का तीसरा स्वरूप अवतार के रूप में है । अवतार मूलत: युग की विसंगतियों का समाधान करने के लिए जन-मानस को उभारने वाली दिव्य प्रेरणाओं के रूप में होते हैं । उस प्रेरणा का नेतृत्व जो महामानव करते हैं उन्हें लोग अवतारी आत्माएँ कहते हैं । वे न केवल वाणी, लेखनी, प्रेरणा, मार्ग-दर्शन आदि से वरन् अपने उज्ज्वल चरित्र से जनसाधारण में परिवर्तनकारी उत्साह उत्पन्न करते हैं । वे युग-पुरुष के रूप में -सन्त, सुधारक और शहीद के रूप में अपना चरित्र, कर्तृत्व उपस्थित करते हैं और जनमानस में अनुकरण की-अनुगमन की चेतना उत्पन्न करते हैं । इन्हें साकार ब्रह्म या अवतारी महापुरुष कह सकते हैं । इनके अवतरण का प्रयोजन सामयिक विकृतियों का निराकरण करके सनातन धर्म परम्पराओं की पुन: प्रतिष्ठापना करना होता है । वे असन्तुलन को सन्तुलन में परिणित करती हैं । विकृतियों से संघर्ष करके सत्प्रवृत्तियों का पुन: प्रचलन करता है । अवतारों का यही उद्देश्य होता है । वे समय-समय पर अनेक क्षेत्रों में, अनेक रूपों में अवतरित होते हैं और आवश्यक अभियानों का नेतृत्व करके समय की पुकार को पूरा करते हैं ।

वस्तुत: कोई एक व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता, चाहे वह कितना ही बड़ा या शक्तिशाली क्यों न हो । युग-परिवर्तन जैसे बड़े प्रयोजन तो निश्चित रूप से जन-सहयोग से ही संभव होते हैं । संघशक्ति-जन शक्ति ही कोई बड़े उद्देश्य पूरे कर सकती है । देवताओं की सम्मिलित शक्ति का दुर्गा के रूप में प्रादुर्भाव और ऋषियों के संग्रहीत रक्त के घट से बनी सीता का जन्म इसी तथ्य का उद्घाटन करते हैं । भगवती दुर्गा एवं सीता के कारण दुर्दान्त असुरता के निरस्त होने का वर्णन उनके सुविस्तृत चरित्रों में विद्यमान हैं । भगवान राम का रीछ-वानरों की सेना खड़ी करना, उनकी सहायता से समुद्र का पुल बाँधा जाना लंका विनाश और रामराज्य की स्थापना किया जाना इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट करता है । भगवान कृष्ण ने अकेले ही नहीं, गोप ग्वालों की लाठियों का सहारा लगवा कर गोवर्धन पर्वत उठाया था । उन्होंने अपना इच्छित महाभारत स्वयं नहीं लड़ा वरन् पाण्डवों को आगे करके विशाल सैन्य संगठन करके तथा सुनियोजित योजना को क्रियान्वित करके ही पूरा किया था । भगवान बुद्ध को अपने समय की विकृतियों को निरस्त करने के लिए ढाई लाख भिक्षु-भिक्षुणियों की सेना खड़ी करनी पड़ी । महात्मा गांधी, गुरु गोविन्द सिंह जैसे अवतारी महामानवों को इसी प्रक्रिया का नेतृत्व करना पड़ा था । वस्तुत: शक्ति उस युग-चेतना में रहती है जो ईश्वर की इच्छा के कारण अपने समय में आन्धी-तूफान की तरह उठती है । उस दृश्यमान अन्धड़ के झोंके चक्रवात के रूप में सामने आते हैं । वस्तुत: चक्रवात अन्धड़ का एक छोटा-सा रूप भर होता है । एक आँधी में कई चक्रवात भी उठते दिखाई पड़ते हैं । एक समय में-कई अवतार भी होते हैं राम और परशुराम दोनों ही अवतार गिने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं। दोनों एक ही समय में हुए। इतना ही नहीं उनको एक दूसरे को पहचानने में तर्क और प्रमाणों का सहारा लेना पड़ा।

जिस रूप में भी हो शरीरधारी अवतारों का अवतरण का उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश ही प्रमुख है। इसी प्रयोजन के लिए उनके विभिन्न चरित्र एवं क्रिया-कलाप होते हैं। गीता में भगवान कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभयुत्थानमधर्मस्य तदात्मन सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनाम् विनाशायाच दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

राम चरितमानस में भी यही तथ्य शिव-पार्वती संवाद (बालकाण्ड) में मिलता है—

जब-जब होइ धरम कै हानी।
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी॥
करइ अनीति जाइ नहिं बरनी।
सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

मानसकार ने राम-जन्म के प्रसंग में यही तथ्य दुहराया है—

'विप्र धेनु सुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।'

नाम महिमा प्रसंग में गोस्वामीजी बताते हैं—

राम भगत हित नर तनु धारी।
सहि संकट किय साधु सुखारी॥

विभीषण से भगवान् राम ने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा—

तुम्ह सारिखे सन्त प्रिय मोरे।
धरउँ देह नहिं आन निहोरे॥

भगवान देवता, धरती माता, गौ, सज्जनों के कल्याण करने के लिए अवतार लेते हैं और प्रभु परायण धर्मात्मा लोग अपना निजी सुख छोड़ कर उनका साथ देने में तत्पर होते हैं। काकभुशुण्डि जी अपना मत व्यक्त करते हैं— समुद्र के किनारे जामवन्तजी ने वानरों को समझाया है।

निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि।
सगुन उपासक संग सब, रहहिं मोच्छ सुख त्यागि॥

अनीति पीड़ित सज्जनों को आश्वासन देते हुए भगवान ने कहा कि उन्हें डरने एवं निराश होने की आवश्यकता नहीं है। पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए मेरा अवतार होगा और अनीति निरस्त होगी। आप लोग अपना मन छोटा न करें और निर्भयता पूर्वक अपना साहस बनाये रहें। देवताओं द्वारा स्तुति प्रार्थना किये जाने पर आकाश वाणी से यह आश्वासन प्राप्त होता है—

जनि डरपहुँ मुनि सिद्ध सुरेसा।
तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा॥
हरिहऊँ सकल भूमि गरुआई।
निर्भय होहु देव समुदाई॥

अपने चरित्र द्वारा मनुष्यों को कर्तव्य पालन का उद्बोधन एवं मार्ग दर्शन करने के लिए ही भगवान का अवतार होता है। जो महामानव इस प्रयोजन को पूरा करते हैं उन्हें भगवान कहते हैं। ऐसे भगवान एक समय में कई-कई भी होते हैं। वाल्मीकि रामायण के व्याख्याकार गोविन्दराज ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है—

स्वाचार मुखेन मनुष्याम्
शिक्षयतुं रामादि रूपेण चतुर्धावतार।

अर्थात्-, अपने आचार रूपी मुख से मनुष्यों को धर्माचरण की शिक्षा देने के लिए राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के चार रूपों में अवतार लिया।

वाल्मीकि जी ने देवर्षि नारद से किसी ऐसे महान व्यक्ति के चरित्र को जानना चाहा था जिसमें समस्त गुण एक साथ निवास करते हों। उन्होंने पूछा— इस समय संसार में क्या कोई ऐसा गुणवान व्यक्ति हैं कि जो बल से सम्पन्न होने के साथ-साथ धर्मात्मा, सत्यवादी, कृतज्ञ और अपने व्रत में सुदृढ़ रहने वाला हो?

कान्वरिमन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च बीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥

महर्षि वाल्मीकि को तब देवर्षि नारद ने राम-कथा सुनाई। संसार की विपत्तियों का निवारण करने के लिए महामानवों का स्वयं कष्ट सह कर विश्व-कल्याण के लिए घोर प्रयत्न करना ही एक मात्र उपाय है। जब तक विशिष्ट व्यक्ति आगे नहीं आते और अपनी आदर्शवादी तपश्चर्या का प्रमाण देकर जनसाधारण को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ उत्पन्न नहीं करते तब तक विपत्ति का निवारण नहीं हो सकता। यदि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रेष्ठ मनुष्य शौक, मौज की जिन्दगी जीते हैं— सुखोपभोग में निरत पड़े रहते हैं तो अनीति के निराकरण का रास्ता ही बन्द हो जायेगा । इस तथ्य को समझते हुए देवता चाहते थे कि राम राजगद्दी का उपयोग न करें वरन् तपश्चर्या और संघर्षशीलता का रास्ता अपनावें । ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने के लिए देवगण भगवती शारदा से प्रार्थना करते हैं कि वे इसके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करें । उन्होंने कहा—

विपत्ति हमारि विलोकि बड़ि मातु करइ सोइ आजु ।
राम जाहि वन राज तजि, होहिं सकल सुरकाजु ॥

रामायण में भगवान के चार रूपों का वर्णन किया गया है— (१) सर्वव्यापी नियन्ता परब्रह्म (२) निराकार परमेश्वर (३) साकार सगुण विराट परमात्मा (४) सन्तुलनकर्ता अवतार ।

यह चार भगवान नहीं वरन् एक ही परब्रह्म सत्ता की चार प्रक्रियाएँ हैं जिनका रहस्योद्घाटन ब्रह्माजी ने चार वेदों के रूप में किया है ।

सर्वव्यापी परमात्मा से कोई स्थान छिपा नहीं है । वे हमारी गुप्त-प्रकट विचारणाएँ और क्रियाएँ भली प्रकार देखते जानते हैं । वे न्यायकारी हैं । नियम और मर्यादा में स्वयं रहते और दूसरों को रखना चाहते हैं । जो अनुशासन में रहते हैं वे नियन्ता का अनुग्रह पाकर सुखी रहते हैं, समुन्नत बनते हैं । जो उच्छृंखलता बरतते हैं, मर्यादाएँ तोड़ते हैं और अवांछनीयता अपनाते हैं । वे नियामक शक्ति द्वारा कठोर दण्ड के भागी बनते हैं सब की आत्मा में अपनी आत्मा और अपनी आत्मा में सब की आत्मा समाई हुई है । हम सब एक हैं इसलिए एकता की ओर चलें, अनेकता को भूलें । सबके सुख में अपना सुख और सबके दुःख में अपना दुःख देखें । "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की दृष्टि रखें और प्रत्येक प्राणी के साथ सद्व्यवहार करें । प्रत्येक पदार्थ को ईश्वर की सम्पत्ति समझ कर उसका सदुपयोग करें । यह परब्रह्म की उपासना हुई ।

निराकार परमेश्वर हमारे स्थूल शरीर में सत्कर्मों के रूप में सूक्ष्म शरीर में गुण तथा श्रेष्ठ चिन्तन के रूप में— मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के परिष्कार के रूप में निवास करता है । स्वाध्याय सत्संग एवं मनन चिन्तन द्वारा अपनी विचारणाएँ उत्कृष्ट बनाकर सूक्ष्म शरीर को, मास्तिष्क को उच्चस्तरीय बनायें । कारण— शरीर अर्थात् हृदय, अन्तःकरण को श्रद्धा, विश्वास, करुणा, मैत्री, उदारता, पवित्रता, आत्मीयता, सेवा, साधना जैसी सद्भावनाओं से ओत-प्रोत रखें । जीवन का स्वरूप और उद्देश्य समझें तथा उस दिशा में अपनी चेतना को अग्रसर करें जो जीवन-लक्ष्य तक भगवान के सान्निध्य तक पहुँचाती है ।

साकार ब्रह्म यह विराट विश्व है । आत्माओं के समूह का नाम परमात्मा है । यह समाज ही समष्टि परमेश्वर है । संसार में श्रेष्ठता उत्पन्न करना उसे समुन्नत बनाने के लिए लोक मंगल के प्रयत्न करना अपने ऊपर चढ़े हुए समाज के ऋण को चुकाने के लिए जन-कल्याण के प्रयोजनों में निरत रहना- अपने व्यवहार में सज्जनता का समावेश्-सत्प्रवृत्तियों से भरा सहज स्वभाव बनाकर, इस संसार को भगवान की प्रतिमा मानते हुए सदा सद्भावनाओं सत्कार्मों से ओत-प्रोत रहना यह विराट ब्रह्म की उपासना है ।

अवतारी अभियान युग की विकृतियों का समाधान तथा अनीति-विकृति को निरस्त करके धर्म-संतुलन स्थापित करने के लिए समय-समय पर आविर्भूत होते हैं । उनका नेतृत्व करने के लिए अवतारी युग पुरुष आगे आते हैं और अपने व्यक्तित्व, चरित्र एवं कर्तव्य से संसार का मार्ग-दर्शन करते हैं परिवर्तन की भूमिका बनाते हैं । युग धर्म को पहचानते हुए हमें रीछ-बन्दरों की तरह, गोप-गोपियों की तरह उनका अनुसरण करना चाहिए । हनुमान और अर्जुन की भूमिका निवाहने के लिए साहस पूर्वक उस अभियान में योगदान करना चाहिए ।

चार प्रकार की ईश्वरीय सत्ता की यही चतुर्विधि उच्चस्तरीय उपासना है । इसी की प्रेरणा प्राप्त करने के लिए जप, ध्यान, व्रत, अनुष्ठान आदि के विभिन्न उच्चस्तरीय कर्म काण्डों का सहारा लिया जाता है । इन्हीं तथ्यों से रामायण की प्रकाश प्रेरणाएँ भरी पड़ी हैं ।

भक्ति की महिमा— भगवान को प्राप्त करने की चेतना की परिष्कृत सतोगुणी स्थिति तक पहुँचाने की भाव-विभोरता भक्ति है । इसी का दूसरा नाम प्रेम है । मोह होता है व्यक्तिगत स्वार्थ, संकीर्णता का परिपोषण, प्रेम होता है आदर्शों के लिए लोकमंगल के लिए भगवान के लिए आत्म समर्पण । प्रेम में आत्मीयता का विस्तार है । शरीर और परिवार के छोटे हित चिन्तन में आदर्शों का परित्याग कर कुछ भी भला बुरा करते रहने को उतनी परिधि में ताना-बाना बुनते रहने को मोहग्रस्त माया बन्धन कहते हैं । इससे ऊपर उठकर आत्म परिष्कार के मार्ग पर चलते हुए सत्प्रवृत्तियों के सुविस्तृत क्षेत्र को विस्तृत करते रहने को ईश्वर उपासना कहते हैं । इसी पथ को अपनाना श्रेय पथ अथवा भक्ति-मार्ग कहलाता है ।

इस मार्ग पर चलने वाले साधक को मन को साधने के लिए मनोवैज्ञानिक उपचार भी करना पड़ता है । सर्वव्यापी, सत्चित्त, और आनन्दमय, अरूप, अनाम अचिन्त्य सत्ता को मनुष्य जैसी स्थिति में कल्पित करना पड़ता है, उसे शरीर मानने का उपक्रम करना पड़ता है, साध भी यह भी सोचना पड़ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है कि वे स्वामी और हम सेवक हैं। अथवा वे मातु-पिता स्वामी, सखा आदि किसी बड़े पद पर आसीन हैं और हम उनके भक्त, सेवक आदि हैं। तद्नुसार अपनी व्यक्तिगत इच्छा छोड़कर अपने स्वामी के अनुयायी बन रहे हैं। यह द्वितीय स्तर का, उसी प्रकार का मानसिक अभ्यास है, जैसे कि प्रारम्भिक बालकक्षा के छात्रों को वस्तुओं के समर्पण एवं शारीरिक क्रियाकलापों के कर्मकाण्ड द्वारा ईश्वर-भक्ति के उपचार रूप में कराये जाते हैं। प्राथमिक कक्षा में कर्मकाण्ड परक उपचार-द्वितीय कक्षा में भगवान को उच्च व्यक्ति के रूप में कल्पित करके उसके दास, सेवक आदि बनने की भूमिका गढ़ना और उसे क्षेत्र की कल्पनाओं में उड़ान भरते हुए अपनी अन्तःचेतना में कामना त्याग का, ईश्वर-प्रेम दिव्य भावनाओं के प्रति आत्म समर्पण का अभ्यास करना। साकार-भक्ति का यही स्वरूप एवं प्रयोजन है।

इससे अगला चरण निराकार-भक्ति है। इसी सर्वोच्च स्थिति को ब्रह्म-परायणता कहते हैं। इस स्थिति में पहुँची हुई चेतना अपनी व्यक्तिवादी, भोगवादी समस्त संकीर्णताओं का परित्याग करके समष्टिवादी, सेवाभावी, आदर्शवादी दिव्य प्रवाह में बहना आरम्भ कर देती है। उससे प्रभावित चिन्तन एवं कर्तृत्व व्यष्टि और समष्टि को उत्कृष्ट बनाने में ही सर्वतोभावेन समर्पित हो जाता है। इस स्थिति की मनःस्थिति को ईश्वर परायणता और भक्ति के नाम से पुकारा गया है। प्रेम का तात्पर्य ही आत्मीयता का अधिकाधिक विस्तार है। अपने हित चिन्तन की जिस प्रकार की ललक जन-साधारण में रहती है, उससे असंख्य गुनी उमंगें जब सदुद्देश्य की दिशा में आगे बढ़ने के लिए उठने लगे, तब समझना चाहिए कि पराभक्ति की, ब्रह्म-परायणता की यथार्थ स्थिति हमारी अन्तःचेतना में अवतरित हो गई। इस भक्ति चेतना का अनुदान पाकर मनुष्य महामानव, देव पुरुष बनता है और सब प्रकार धन्य हो जाता है। इस स्थिति में आत्म सन्तोष एवं आत्मानन्द की असीम उपलब्धि होती है। इसी को प्राप्त करना जीवन का परम लक्ष्य है।

रामायण का लक्ष्य इसी पराभक्ति तक मानव-चेतना को पहुँचाना है। उपलब्धि का माहात्म्य बताते हुए काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि ऐसी भक्ति मिलने पर अन्तःकरण में परक प्रकाश उत्पन्न होता है। उत्तर काण्ड में इस प्रसंग में कहा गया है—

राम भगति चिन्तामणि सुन्दर।
बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकाश रूप दिनराती।
नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती॥

ईश्वर भक्त की समस्त विपत्तियाँ और भय भीरुताएँ नष्ट हो जाती हैं। विभीषण भगवान को शरण में आने के बाद अपनी यही अनुभूति व्यक्त करते हैं—

अब मैं कुशल मिटे भय सारे।
देखि राम पद कमल तुम्हारे॥

तब हनुमान द्वारा सीताजी को विपत्ति समाचार सुनाकर दास ने कहा:—

बचन काय मन मम गति जाही।
सपनेहु बूझिय विपत्ति कि ताही॥

भक्त की आदर्शवादी मनःस्थिति वस्तुतः ऐसी ही होती है कि उसे किसी विपत्ति से डर नहीं लगता और न किसी त्रास या क्षति का डर लगता है। आदर्शवादी में हजार हाथी का बल होने की जो बात कही गई है, वह उसकी मनःस्थिति से ही सम्बन्ध रखती है। शरीर भले ही दुर्बल रहे पर उसका अन्तरात्मा श्रेष्ठ सन्मार्ग की गरिमा समझता हुआ इतना बलिष्ठ रहता है कि वह संभावित विपत्ति से डरना तो दूर-सचमुच संकट आ जाने पर भी उसे अपनी निष्ठा की परीक्षा मानता और साहस पूर्वक उसका सामना करते हुए हर स्थिति में अविचल और निष्ठावान बना रहता है। उपयुक्त चौपाइयों में इसी तथ्य पर प्रकाश डाला गया है।

जब रावण ने विभीषण पर शक्ति छोड़ी और उसकी रक्षा के लिए श्री राम उसे अपने सीने पर झेल कुछ देर के लिए मूर्छित हो गये तो विभीषण रावण पर गदा लेकर टूट पड़ा। उस प्रसंग में भक्ति की महिमा बतलाते हुए शंकर जी पार्वती जी से कहते हैं "हे उमा! जो विभीषण रावण के सामने देख भी नहीं सकता था वही राम का बल पाकर अब काल बनकर दुर्दान्त युद्ध कर रहा है।" अर्थात् मनुष्य की निजी शक्ति तुच्छ होती है, उसमें जब भगवान का उद्देश्य और बल मिल जाता है तब समर्थता का ठिकाना नहीं रहता—

उमा विभीषण रावणहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों, श्री रघुबीर प्रभाउ॥

उसी प्रकार जब हनुमानजी लंका में निडर होकर अपना कार्य प्रारंभ कर देते हैं तब भी शिवजी कहते हैं—

उमा न कछु कपि कै अधिकाई।
प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं हनुमान जी भी इस मर्म को समझते हैं और समुद्र लाँघना, लंकादाह आदि कार्यों के लिए प्रभु उनकी प्रशंसा करते हैं तो वे कहते हैं—

सो सब तब प्रताप रघुराई ।
नाथ न कछू मोर प्रभुताई ॥

भक्ति को आत्म-कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन बताते हुए रामायण में उसकी प्राप्ति के लिए सद्भावनाओं और सत्कर्मों की अभिवृद्धि को प्रधान आधार माना है । भगवान राम श्री लक्ष्मणजी से भक्ति का मर्म बतलाते हुए कहते हैं ।

भगति तात अनुपम सुख मूला ।
मिलइ जो सन्त होइ अनुकूला ॥
भगति के साधन कहौं बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पाबहिं प्रानी ॥
प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीति ॥
एहि कर फल पुनि विषय विरागा ।
तब मन धर्म उपज अनुरागा ॥

भक्ति का महत्व काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में स्थान-स्थान पर विभिन्न दृष्टिकोणों से बताया गया है, जैसे भगवान से विमुख होना विपत्तियों और असफलताएँ मोल लेना है प्रभु-आश्रय के बिना भव-बन्धन कहाँ छूटते हैं—

रघुपति विमुख जतन कर जोरी ।
कवन सकइ भव बंधन छोरी ॥
राम विमुख सुख सपनेहु नाहीं ।
... ...
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं ।
रघुपति भगति बिना सुखे नाहीं ॥

संसार के सुख वैभव कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों, पर यदि उसके पास ईश्वर-भक्ति नहीं है तो फिर बिना जल वाले बादल की तरह उसे निरर्थक और निस्सार ही मानना चाहिये राम शब्दों में कहते हैं—

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई ।
धन बल परिजन कुल चतुराई ॥
भगतिहीन नर सोहइ कैसा ।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

इसके विपरीत भक्तिवान पुरुष की स्थिति बतलाते हुए काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं—

राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहु ताके ॥

भक्ति के प्रभाव से संसारिक कष्टों से मुक्ति तो मिल ही जाती है । भगवान का सच्चा भक्त भगवान के समान ही हो जाता है । इस प्रसंग में वाल्मीकिजी भगवान से अपना मत प्रकट करते हैं—

"जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई ।"

भक्ति के प्रभाव का और भी अधिक गंभीरता से अनुभव किया श्री काकभुशुण्डिजी ने । वे गरुड़ जी से कहते हैं—

मोरे मन प्रभु बस विस्वासा ।
राम ते अधिक राम कर दासा ॥

और स्वयं भगवान भी अपने भक्तों को इसी स्तर का सम्मान देते हैं भले ही वे सांसारिक दृष्टि से दीन-हीन ही समझे जाते हों । प्रसंग है—

भगवान शबरी के घर स्वयं जाते हैं और उससे अपनी क्षुधा तृप्ति करने के साधन पाकर प्रसन्न होते हैं और सराहना करते हैं—

कन्द मूल फल सुरस अति, दिये राम कहँ आनि ।
प्रेम सहित प्रभु खाएहु, बारम्बार बखानि ॥

वन्दना-प्रकरण में भगवान के इस स्वभाव का वर्णन करते हुए मानसकार ने कहा है कि श्री राम पेड़ के नीचे बैठे हैं और वानर वृक्ष की डालों पर । अर्थात् भगवान ने अपने को नीचा रखा और भक्तों को अपने से ऊंचे स्थान पर विराजमान किया—

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किय आपु समान ।
तुलसी कबहू न राम ते साहब सील निधान ॥

ईश्वर भक्ति और उसका स्वरूप

ईश्वर प्राप्ति के लिए एकमात्र साधन है— नि-स्वार्थ प्रेम प्रेम को परमेश्वर कहा गया है । भक्ति का अर्थ है पवित्र प्रेम । इसकी अन्तःकरण में जब दिव्य किरणें पड़ती हैं तब आत्मा आनन्द विभोर हो जाता है और परम तृप्ति अनुभव करता है । इसी के प्राप्त न होने से जीवन अपूर्ण रहता है । अपूर्णता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का निराकरण और पूर्णता को ही जीवन का परम लक्ष्य माना गया है । इसी को दूसरे शब्दों में भगवत् प्राप्ति कहते हैं ।

शरीर और परिवार के प्रति निरन्तर आकर्षित रहने वाला पुरुष माया ग्रस्त है । लोभ और मोह की सीमा में अवरुद्ध व्यक्ति इन्द्रिय जन्य वासनाओं और लोभ जन्य तृष्णाओं में उलझा रहता है । उसका चिन्तन और क्रिया-कलाप संग्रह एवं उपभोग की संकीर्ण स्वार्थपरता में लगा रहता है । इस मोहग्रस्त स्थिति से ऊंचे उठकर आदर्शों के प्रति जो अदम्य भावना उत्पन्न होती है वह ईश्वर-प्रेम है । जिसमें अपने सुखों को बाँट देने की, दूसरों के दु:खों को बटा लेने की, सघन आत्मीयता मिश्रित करुणा और उदार परमार्थ परायणता की, आकाँक्षा उत्पन्न होती है, वही ईश्वर प्रेम है । इसमें आत्मकल्याण के लिए आत्म परिष्कार की, गुण कर्म स्वभाव को उच्च-स्तरीय बनाने की-आकाँक्षा भी जुड़ी रहती है । यह आत्म-प्रेम भी ईश्वरीय प्रेम का ही एक स्वरूप है ।

इन्हीं सब सत्प्रवृत्तियों को अन्त:करण की कोमलता कहते हैं— यही दिव्य प्रेम का स्वरूप है । ईश्वर परायण व्यक्ति को अपना मन:क्षेत्र इन्हीं दिव्य भावनाओं से ओत प्रोत करना पड़ता है । ईश्वर प्रेम अथवा भगवत् भक्ति की यथार्थ स्वरूप यही है । वह भावोन्माद एवं कल्पनाओं की उड़ान से नहीं व्यावहारिक जीवन की उत्कृष्टता से सम्बन्धित है । उसमें चिन्तन और कर्तृत्वपूर्ण के दोनों क्षेत्र परिष्कृत करने पड़ते हैं ।

इसी भक्ति की मन:स्थिति को ईश्वर के अनुग्रह का सर्वोत्तम प्रमाण माना गया है । उसी की आकाँक्षा रामायण में की गई है—

ईश्वर प्रेम की यथार्थता, सार्थकता और गहराई इसी मन:स्थिति में है । भगवान की सत्ता के प्रति असीम प्यार हो जिसके फलस्वरूप लोभ आदि से सहज विरति हो जाय । इसी मनोभूमि में भगवान का अवतरण होता है । रामायण के अन्त में स्वयं तुलसीदास जी कामना करते हैं ।

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥

सुतीक्ष्ण के प्रसंग में प्रभु की लीला होती है—

अतिशय प्रीति देखि रघुबीरा ।
प्रकटे हृदय हरन भव भीरा ॥

अवतार के प्रार्थना-प्रसंग में शिवजी देवताओं को भगवान की प्राप्ति का मर्म समझाते हैं ।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ॥
जाके हृदय भगति जस प्रीती ।
प्रभु तहँ प्रकट सदा यह रीती ॥

भगवान का अनुग्रह ऐसे ही प्रेमीजनों पर बरसता है जो अपनी अभिरुचि एवं आकाँक्षाओं को ईश्वरीय प्रयोजनों में सर्वतोभावेन नियोजित करते हैं । ऐसे प्रेमियों को ही भक्त कहते हैं । गरुड़ को समझाते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं—

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी ।

भगवान काकभुशुण्डि से कहते हैं—

मोहि भगत प्रिय संतत, अस विचारि सुनु काग ।

शबरी को संबोधित करते हुए प्रभु कहते हैं—

कह रघुपति सुनि भामिनि बाता ।
मानों एक भगति कर नाता ॥

इसी सन्दर्भ में शिवजी का मत है—

रामहि केवल प्रेम पियारा ।
जानि लेहु जो जानन हारा ॥
मिलहि न रघुपति बिनु अनुरागा ।
किये जोग जप ध्यान विरागा ॥

जब ईश्वर भक्ति मन में उपजती है तो शरीर-सुख की लालसा वासना और तृष्णा निरन्तर मिटती रहती है, दूर हो जाती है और उनके स्थान पर तपश्चर्या का मार्ग अपना कर आत्म संयम एवं लोक मंगल के मार्ग पर चलते हुए प्रसन्नता पूर्वक कष्ट उठाने को कदम बढ़ते हैं । यही तप-साधन का मार्ग भगवद्भक्ति के रूप में उपलब्ध होते हैं ।

पार्वतीजी की तपस्या के प्रसंग में कहा गया है कि प्रेम उमड़ने पर शारीरिक कष्टों को महत्व नहीं रह जाता—

नित नव चरन उपज अनुरागा।
बिसरी देह तपहिं मन लागा ॥

भक्ति की कोई कामना हो सकती है तो एक ही कि उसे प्रभु का अनन्य प्रेम प्राप्त हो । अर्थात् ईश्वरीय प्रयोजनों की पूर्ति में उसका तन-मन-धन सदा लगा रहे । मात्र भक्ति का वरदान माँगना और निष्काम प्रीति करना— भौतिक कामनाओं को त्याग कर परमार्थ प्रयोजनों में लगना ही ईश्वरीय प्रेम का वास्तविक स्वरूप है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब काकभुशुण्डि विराट रूप का दर्शन कर चुके तो प्रभु उनको समझाते हुए ऐसी ही भक्ति का उद्‌बोधन करते हैं–

सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग ।
श्रुति पुरान कह नीति अस, सावधान सुनु काग ॥
एक पिता के विपुल कुमारा ।
होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया ।
भजै मोहि मन बच अरु काया ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना ।
यद्यपि सो सब भाँति अयाना ॥
अखिल विस्व यह मोर उपाया ।
सब पर मोहि बराबर दाया ॥
सत्य कहहुँ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय ।
अस विचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस सब ॥

चित्रकूट प्रसंग में देवमुनि बृहस्पति इन्द्र को भक्ति का मार्ग समझाते हुए भगवान का स्वभाव बताते हैं कि "भगवान के लिए न कोई प्रिय है और न अप्रिय । उन्हें न किसी से राग है न द्वेष । उन पर न किसी के पाप का उत्तरदायित्व है न पुण्य का । लोग स्वेच्छापूर्वक कार्य करते हैं और उन्हीं बोये हुये बीजों के मीठे-कडुए फल खाते हैं । तो भी जिनके हृदय में भक्ति या अभक्ति है उसके हृदय में वैसा ही सम-विषम-न्यूनाधिक उनका निवास रहता है–"

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू ।
गहइ न पाप-पुण्य गुन दोषू ॥
करम प्रधान विस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
तदपि करहि सम विषम बिहारा ।
भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥

इसीलिए मर्मज्ञ लोग केवल भगवान का प्रेम, उनकी भक्ति ही उनसे माँगते हैं । बालि जब अपनी भूल स्वीकार करता और भगवान उसके शरीर को अक्षय करने का प्रस्ताव करते हैं, तो वह कहता है–

अब नाथ करि करुना बिलोकहु , देहु जो वर माँगऊँ ।
जेहि जोनि जन्मों कर्म बस तहँ राम पद अनुरागहूँ ॥

सुग्रीव भी भगवान का प्रताप देखकर अपनी लौकिक आकाँक्षायें भूल जाता है और माँगता है–

अब प्रभु कृपा करहुँ एहि भाँती ।
सब तजि भजन करहु दिन राती ॥

भगवान की कृपा प्राप्त करने का मर्म भी यहीं है । शिवजी पार्वतीजी को समझाते हैं–

उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम ।
राम कृपा नहिं करहि तस, जस निष्केवल प्रेम ॥

उक्त दोहे में 'निष्केवल प्रेम' भक्ति की अनन्य निष्ठा का प्रतीक है । तुलसीदासजी भी उसी स्तर की निष्ठा व्यक्त करते हुए दोहावली में लिखते हैं–

एक भरोसो एक बल, एक आस विसवास ।
एक श्याम घन श्याम हित, चातक तुलसीदास ॥

चातक या तो मेंघ जल पीता है या प्यासा रहता है । भक्त को भी एक मात्र ईश्वर का विश्वास रहता है और वह किसी भी स्थिति में उसका पल्ला नहीं छोड़ता-अनुसरण नहीं त्यागता ।

सच्चे भक्त की प्रीति भी चातक की तरह उच्च स्तरीय होती है । उसे विश्वास है । कि बादल उससे सच्चा प्रेम करते हैं । इसलिए यदि वे पानी नहीं देते या कम देते हैं प्यास रखते हैं तो इसमें कोई हर्ज नहीं । बाहर वालों से लोक व्यवहार रखना पड़ता है इसलिए उनको अधिक देना लेना पड़ता है । घर के लोग तो कुछ कम लें या कष्ट में रहें तो भी हर्ज नहीं, ऐसा विचार आत्मीयों के प्रति रहता है । बादल अन्यत्र बरसते हैं पर चातक को प्यासा रहना पड़ता है तो वह इसी प्रकार अपने मन को सन्तोष देता है और बादलों के स्नेह में किसी प्रकार की कमी होने की आशंका नहीं करता । दोहावली में सन्त तुलसीदास लिखते हैं–

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के दोष ।
तुलसी प्रेम पयोधि की, तासे नाप न जोख ॥

भरतजी में भी यही चातक-वृत्ति देखने को मिलती है । जब अयोध्या आये और देखा कि लक्ष्मण जी राम के साथ चले गये हैं, उन्हें वह सौभाग्य नहीं मिला तो इस पर पश्चाताप करते हुए भरत आत्मनिरीक्षण करते हैं और सोचते हैं कि इसमें मेंरी ही त्रुटियाँ कारण रही होगी ।

अहह धन्य लक्ष्मण बड़भागी ।
राम परादरबिन्द अनुरागी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा ।
ताते नाथ संग नहिं लीन्हा ॥

भक्त अपने किसी कष्ट और अभाव का दोष भगवान को नहीं देता, अपना ही दोष मानता है, 'विनय-पत्रिका' में यही भाव इस प्रकार है–

है प्रभु मेरोइ सब दोषु ।
वेष वचन विराग मन अघ अवगुननि को कोषु ।
राम प्रीति प्रतीति पोली, कपट करतब ठोस ।

अर्थात्– प्रभु मेरा ही प्रेम खोखला है और कपट आचरण ठोस है । वैराग्य केवल वचन तक है, मन में पाप ही भरा है । इसलिए नियमानुसार दण्ड भोग का कारण मैं ही हूँ ।

और केवल ऊपरी दिखावा, वचन और वेष से भक्ति नहीं की जा सकती । भगवान से सम्बन्ध तो अन्त:करण से होता है । यह तथ्य दोहावली में स्पष्ट प्रकट किया गया है-

वेष विसद बोलनि मधुर, मन कटु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइये, भये विषय जल मीन ॥
वचन वेष से जो बनै, सो बिगरे परिनाम ।
तुलसी मन ते जो बनै बनी बनाई राम ॥

सांसारिक कामनाओं के ज्वार भाटे जब तक मन में उठते रहते हैं तब तक मनरूपी समुद्र स्थिर नहीं रह पाता और उसमें सूर्य-चन्द्र के प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं पड़ते । कामनाग्रस्त मन हर समय मृग-तृष्णाओं में भटकता रहता है, फलतः न उसे शान्ति मिलती है और न एकाग्रता उपलब्ध होती है । लोभी मन की प्रवृत्ति कामनाओं में डूबी रहती है । वह भजन भी भौतिक सम्पदाएँ पाने अथवा विपत्तियों से छूटने के लिये करता है, लक्ष्य सांसारिक सुख रहता है । उसके उपाय मात्र के लिए पूजा उपासना का सहारा लेता है । उसकी मन:स्थिति में भक्ति के वास्तविक तत्व रहते ही नहीं, जिससे प्रभु का अनुग्रह उसे प्राप्त हो सके ।

ईश्वर भक्ति का अर्थ है इस विराट विश्व की सेवा-साधना के आदर्शवादी रीतिनीति को अपनाना, परमार्थ-परायण होना और मानव जीवन के साथ जुड़े हुए आदर्श कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करना । यह तभी संभव हो सकता है । जब मनुष्य भौतिक कामनाओं की गगनचुम्बी तृष्णा को मन से हटाये । सादा जीवन उच्च विचार की नींव अपनाये । शरीर यात्रा एवं कुटुम्ब पालन की स्वल्प श्रम से पूरी हो सकने वाली आवश्यकताओं को पूरा करते रहने भर से सन्तुष्ट रहे और शेष बची हुई सारी विभूतियाँ ईश्वरीय प्रयोजन में लगाये । समय, श्रम, मनोयोग, बुद्धिकौशल, प्रतिभा, सम्पत्ति आदि सम्पदाएँ तभी महान प्रयोजनों में लगाई जा सकती हैं जब व्यक्तिगत भौतिक आकाँक्षाओं का स्वल्प रखा जाय । इसी शान्त मन:स्थिति का निर्माण करना ईश्वर भक्त के लिए आवश्यक होता है । उसे अपनी कामनाओं के उभार शान्त करने होते हैं और ईश्वरीय अनुग्रह के रूप में मिलने वाली निष्कामता-कर्त्तव्य परायणता की आराधना करनी पड़ती है ।

शिवजी पार्वती जी को यह मर्म बतलाते हैं कि श्रेष्ठ आचरण, विवेक, संयम आदि द्वारा भक्ति प्राप्त हो सकती है–

तीर्थाटन साधन समुदाई ।
जोग विराग ग्यान निपुनाई ॥
नाना कर्म धर्म व्रत नाना ।
संजम दम जप तप मख दाना ॥
भूतदया द्विज गुरु सेवकाई ।
विद्या विनय विवेक बड़ाई ॥
जहँ लगि साधन बेद बखानी ।
सब कर फल हरि भगति भवानी ॥

मन सांसारिक कामनाओं से मुड़कर भगवान की ओर लग जाये, यही सच्ची भक्ति-भावना का प्रमाण है । 'विनय-पत्रिका' में यह मत व्यक्त करते हुए तुलसीदासजी प्रभु से कहते हैं–

तुम अपनायो तब जानि हौ जब मन फिरि परि है ।
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरि हैं ॥
हरष है न अति आदरे निदरे न जरि मरि है ।
हानि लाभ सुख दुख सबै सम चित हित अनहित ।
कलिकुचालि परिहरि है ।

ऐसा होना भक्त के लिए कठिन नहीं । जब भगवत् प्रेम अन्त:करण में प्रतिष्ठापित होता है तो सांसारिक आकर्षण फीके लगने लगते हैं और उनकी ओर से सहज की अरुचि हो जाती है । तुलसीदासजी आत्म विश्लेषण करते हुए अपने आप से पूछते हैं कि यदि मुझे सचमुच भगवान से प्रेम होता तो निश्चय ही संसार के आकर्षणों की ओर से अरुचि हो जाती ।

जो मोहि राम लागते मीठे ।
तौ षट रस नव रस अनरस सब ह्वै जाते अति सीठे ।

भक्त की आकांक्षा एक नई दुनिया, एक नई बस्ती बसाने की होती है । वह षडरिपुओं से घिरी बस्ती को छोड़ना चाहता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है और सद्गुणों रूपी सज्जनों को बुलाकर एक नई बस्ती का निर्माण करना चाहता है और उन्हीं के निवास करने की आकांक्षा करता है । एक पुराने खण्डहर को छोड़कर नया ग्राम बसाने और उसमें रहने की भावना उसके मन में निरन्तर उमँगती रहती है—

मैं तुम्हरो लेइ नाम ग्राम, इक उर आपनौ बसावों ।
भजन बिवेक विराग लोग भले मैं क्रम करि ल्यावों ॥

ऐसे भावनाशील सत्कर्म परायण व्यक्ति भगवान को प्यारे हैं । उन्हीं पर प्रभु का अनुग्रह बरसता है । ऐसे लोग ही ईश्वर प्राप्ति, ईश्वर दर्शन और ईश्वर अनुग्रह का लाभ प्राप्त करते हैं ।

भक्त और भगवान के सम्बन्ध

भगवान की आराधना भक्ति-भावना से होती है । भक्ति का अर्थ है प्रेम । भगवत-प्रेम को अन्तरात्मा के कण-कण में बसा लेने से भगवत् उद्देश्य ही जीवन का उद्देश्य बन जाता है । सारी अभिरुचि उधर ही ढल जाती है । इस स्तर के अन्तःकरण में उच्चकोटि की भावनाएँ उमगती रहती हैं, उसी प्रकार के विचारों और कार्यों में सन्तोष होता है । लोक व्यवहार एवं कर्तव्य-पालन की दृष्टि से सांसारिक काम तो सतर्कता पूर्वक किये जाते हैं, किन्तु हृदय में भगवान और उनका स्वरूप तथा निर्देश ही भरा रहता है । इसी का नाम सच्चा भगवत्-प्रेम है ।

ईश्वर-भक्त को ईश्वर सदृश्य श्रेष्ठ आदर्शयुक्त होना चाहिये, मानों दूसरा भगवान ही हो । राम और भरत की जोड़ी ऐसी लगती थी मानों एक ही साँचे में ढले हों । चित्रकूट निवासियों ने राम और भरत की एकरूपता-सम-स्वरता को देखा और आश्चर्य चकित रह गये । दोनों की आकृति और आत्मीयता अनिर्वचनीय प्रतीत होती थीं—

भरत राम ही की अनुहारी ।
सहसा लखि न सकहिं नर नारी ॥

प्रेम एक पक्षीय होना चाहिये, उसमें दूसरे पक्ष द्वारा तदनुरूप बदला देने की कामना नहीं होनी चाहिये । भरत सोचते हैं कि जो भगवान द्वारा दिया जा रहा है वह पर्याप्त है । यदि त्याग दिया गया हूँ तो वह भी उचित है क्योंकि मेंरी मलिनता इसी योग्य थी । यदि वे मेंरा सम्मान करते हैं तो यह भी उचित है क्योंकि वे सुस्वामी हैं । उन्हें अपने अनन्य सेवक का ध्यान रखना चाहिये । भक्त को न कोई उलाहना देना पड़ता है और न शिकायत करनी पड़ती है कि भगवान ने यह नहीं किया वह नहीं किया । वह तो मात्र अपनी भावना और कार्य पद्धति को उत्कृष्ट बनाये रहने में ही भक्ति की पूर्णता मान लेता है और इतने में ही पूर्ण सन्तुष्ट रहता है । भरत का अभिव्यक्ति इसी प्रकार की है ।

भरतजी श्री राम के पास चित्रकूट जाने के लिए तैयार हुए पर बदले में वे किसी सम्मान की आशा नहीं करते मान, अपमान दोनों उन्हें स्वीकार हैं—

जौं परिहरहि मलिन मन जानी ।
जो सनमानहिं सेवक जानी ॥
मोरे सरन राम की पनहीं ।
राम सुस्वामि दोसु सब जनहीं ॥

यही भाव तीर्थराज प्रयाग में उन्होंने व्यक्ति किया है । वे तीर्थराज से माँगते हैं कि मुझे चाहे राम सहित सारा विश्व बुरा कहे पर मेंरे मन से प्रभुभक्ति कम न हो—

राम कुटिल कर जानहिं मोही ।
लोग कहहिं गुरु साहब द्रोही ॥
सीता राम चरन रति मोरे ।
अनुदिन बढ़हिं अनुग्रह तोरे ॥

उन्हें संसार से लेकर मोक्ष तक की कोई कामना प्रभु प्रेम से विचलित नहीं कर सकती—

अरथन धरम न काम रुचि, गति न चहउं निरवान ।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदान न आन ॥

चित्रकूट में राजा जनक भरत की निष्काम भक्ति की सराहना करते हुए देवी सुनयना से कहते हैं—

परमारथ स्वारथ सुख सारे ।
भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥

इसी भावना का प्रतिफल था कि भगवान भरत का सतत स्मरण करते थे । भरद्वाजजी इस तथ्य को प्रकट करते हुए भरतजी से कहते हैं—

जानेऊ मरम नहात प्रयागा ।
मगन होत तुम्हरे अनुरागा ॥
राम लखन सीतहिं मन प्रीती ।
निशि सब तुम्हहिं सराहत बीती ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही प्रेम लक्ष्य करके देवगुरु इन्द्र से कहते हैं ।

भरत सरिस को राम सनेही ।
जग जप राम राम जप जेही ॥

यही नहीं भरद्वाजजी भरत को राम से भी अधिक महत्व देते हुए कहते हैं–

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं ।
उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब सुकृतन कर सुफल सुहावा ।
राम लखन सिय दर्शन पावा ॥
तेहि फल करि फल दरस तुम्हारा ।
सहित प्रयाग सुभाग हमारा ॥

भरत की यह उक्तियाँ और ऋषि द्वारा उनका मूल्यांकन केवल कथन ही नहीं थे । भरत के अयोध्यावास के प्रसंग में उनका प्रत्यक्ष प्रमाण सबको मिला । राम जिस प्रकार रहते हैं भरत भी उसी प्रकार का संयम और जीवनक्रम अपनाते हैं, भगवान की उदात्त रीति–नीति ही भक्त को अपनानी पड़ती है–

जटाजूट सिर मुनि पट धारी ।
महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
असन बसन बासन व्रत नेमा ।
करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥
भूषन बसन भोग सुख भूरी ।
तन मन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवध राजु सुरराजु सिहाई ।
दसरथ धन सुनि धनदु लजाई ॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा विलास राम अनुरागी ।
तजत वमन जिमि जन बड़भागी ॥
राम प्रेम भाजन भरतु, बड़े न ऐहिं करतूति ।
चातक हंस सराहियत, टेंक विवेक विभूति ॥

भक्त को संसार का आकर्षण नहीं रहता उसे तो सारे रिश्ते भगवान में ही दीखते हैं और इसी नाते वह संसार के प्रति अपने कर्त्तव्य भी पूरे करता है परिवार के मोह में फँस कर वह प्रभु से दूर या विमुख नहीं होते । लक्ष्मणजी राम वन गमन के समय भगवान के साथ चलने का आग्रह करते हुए यही भाव व्यक्त करते हैं–

गुरु पितु मातु न जानौं काहू ।
कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई ।
प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरे सबइ एक तुम स्वामी ।
दीनबन्धु उर अन्तरजामी ॥

लक्ष्मणजी जैसी भावना हर भक्त के लिए स्वाभाविक है । अयोध्यावासी नर–नारी भी अपने भोग वैभव छोड़कर राम के साथ वन जाने को निकल पड़े । तब तुलसीदासजी भाव व्यक्त करते हैं कि–

रामचरन पंकज प्रिय जिनहीं ।
विषय भोग बस करहिं कि तिनहीं ॥

भक्त को राग और क्रोध जीतकर नीति मार्ग पर चलना आवश्यक है इस सम्बन्ध में तुलसीदासजी दोहावली में लिखते हैं–

राम भगति पथ नीति मग, चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते, यही भगति कै रीति ॥

'दोहावली' में यही भाव व्यक्त करते हुए लिखा गया है–

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥

''रामचरित-मानस'' में ऐसे भक्तों के उदाहरण स्थान-स्थान पर मिलते हैं । भक्त सुतीक्ष्ण ईश्वर से कभी कोई वरदान नहीं माँगता क्योंकि उसे पता ही नहीं कि उसके लिए क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी । क्या सच और क्या झूठ ।

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाँचा ।
समुझि न परइ झूठ का साँचा ॥

ऋषि सरभंग अपनी सारी साधना को प्रभु-प्रेम के लिए उनके चरणों पर चढ़ा देते हैं–

जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा ।
प्रभु कहुँ देइ भगति वर लीन्हा ॥

ऋषि अगस्त्य जी भी यह मर्म जानते हैं और भगवान से संसारिक वस्तुएँ न माँगकर उनके प्रति अपने अन्तःकरण में विरल भक्ति चाहते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह वर माँगों कृपा निकेता ।
बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥
अविरल भगति विरति सत्संगा ।
चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥

भक्तराज हनुमान भी जानते हैं कि सांसारिक पदार्थ तो दुःखमूल है, वह पुरुषार्थ से मिल सकते हैं । भगवान की भक्ति और उनका प्रेम ही दुर्लभ है—

नाथ भगति अति सुख दायिनी ।
देहु कृपा करि अनपायनी ॥

भगवान जटायू को उसके बलिदान के बदले में कुछ माँगने को कहते हैं तो वह यही कहता है कि— प्रभु आपके प्रेम के लिए ही मैंने जो कुछ बन पड़ा किया— अब यह भाव सदा मेरे अन्तःकरण में बना रहे—

अविरल भगति माँगि वर, गीध गयउ निज धाम ।

भगवान की भक्ति पाकर मनुष्य आप्तकाम हो जाता है, उसकी अवाँछनीय कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं और जो उचित है, वे कर्तव्य से सम्बन्धित होने के कारण सहज ही पूरी होती रहती हैं । केवल भगवान का अनुग्रह पाने के उपरान्त ऐसा ही अनुभव करता है—

नाथ आज मैं काह न पाबा ।
मिटे दोष दुख दरिद नसाबा ॥

केवट अपने नगण्य साधनों को भगवान की सेवा में लगाकर अपने को धन्य मान लेता है और कोई कामना शेष नहीं रह जाती ।

अब कछु नाथ च चाहिये मोरे ।
दीन दयालु अनुग्रह तोरे ॥

भक्त भगवान की कर्म व्यवस्था के परिणाम भोगने के लिए तैयार रहता है । अपने प्रेम के बदले यह नहीं चाहता कि उसके कुकर्म क्षमा कर दिये जावें । बस यही भावना रखता है कि उसे भोग भोगने को कहीं भी जाना पड़े प्रभु की कृपा का आभास बना रहे । विनय-पत्रिका के पद में यह मार्मिक भाव इस प्रकार दिये गये हैं—

यह बिनती रघुवीर गुसाई ।
चहौं न सुगति सुमति संपत्तिकछु, रिधि सिधि विपुल बड़ाई ।
हेतु रहित अनुराग राम पद, बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल कर्म लै जाहिं मोहि, जहँ जहँ अपनी बरिवाई ।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़िबो, कमठ अंड की नाई ॥

तुलसीदासजी तो और भी एक कदम आगे बढ़ जाते हैं । वे भक्ति भी नहीं माँगते, केवल ऐसी प्रेरणा माँगते हैं जिसके आधार पर श्रेष्ठ जीवन-क्रम अपना कर भक्ति के अधिकारी बन सकें । विनय-पत्रिका में वे कहते हैं—

"कभी भगवान की कृपा से मैं सन्त स्वभाव ग्रहण करूँगा । जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष, कभी किसी से कुछ न मांगना, सदैव मन वाणी और कर्म से परोपकार में लगे रहना यम-नियमों का पालन, कठोर वाणी सुनकर भी क्रोधित न होता, अभिमान रहित, सबमें समत्व बुद्धि शान्त मन, दूसरों के दोष न देखकर गुण देखना, शरीर सम्बन्धी चिन्ता छोड़कर सुख और दुख को सहना आदि सन्तों के गुणों को धारण करके ही मैं अविचल हरिभक्ति पा सकता हूँ ।"

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुवीर कृपालु कृपातें संत सुभाव गहौंगो ।
जथा लाभ, संतोष सदा, काहू सौं कछु न चहौंगो ।
पर हित निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन, पर गुन नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो ॥

भक्त-भगवान का सम्बन्ध अनोखा है । भक्त के मन में विकार भी है तो वह प्रभु को बता देता है, और भगवान भी भक्त की दुष्प्रवृत्तियों का निवारण करते हैं । गलत चाहों को पूरा नहीं करते । काम की पूर्ति नहीं उनका शोधन ही प्रभु-अनुग्रह का सच्चा प्रमाण है । नारद-मोह प्रसंग में यह स्पष्ट है—

नारदजी को अपने द्वारा काम-विजय का अहंकार हो गया । भगवान ने इसे जाना तो विचार किया—

करुनानिधि मन देखि विचारी ।
उर अंकुरेऊ गरब तरु भारी ॥
बेगि (सेवक) सौं मैं डारिहउं उखारी ।
पन हमार सेवक हितकारी ॥

भगवान ने माया के प्रभाव से उन्हें मोहित किया । वे विश्वमोहिनी को पाने के लिए आतुर हो उठे । किन्तु भगवान के प्रति विश्वास बना रहा । वे सोचने लगे—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ ।
ऐहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥

भगवान से अपनी इच्छा व्यक्त की, परन्तु निर्णय उन्हीं के हाथों में सौंप दिया–

जेहि बिधि होइ नाथ हित मोरा ।
करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥

भगवान ने भी उनकी निष्ठा देखी । उनके विकारों के ही शमन का निश्चय किया और कहा–

जेहि विधि होइ परम हित, नारद सुनहु तुम्हार ।
सोइ हम करब न आन कछु, वचन न मृषा हमार ॥

और स्पष्ट कह भी दिया कि रोगी कुपथ्य माँगे तो भी वैद्य नहीं देता, वैसे ही तुम्हारा हित मैं करूँगा ।

कुपथ माँगु रुज व्याकुल रोगी ।
वैद न देहि सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि विधि हित तुम्हार मैं ठयउं ।
कह अस अन्तरहित प्रभु भयऊँ ॥

उन्होंने माँगा था सुन्दर रूप किन्तु भगवान ने उन्हें कुरूप कर दिया । उनकी रुचि नहीं हित की रक्षा की ।

मुनि हित कारन कृपा निधाना ।
दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना ॥

स्वयंवर में अपमानित होकर नारद क्रुद्ध भी हुए पर प्रभु ने बुरा न माना । नारद जी ने बाद में (अरण्यकाण्ड में) प्रभु से उनके विवाह में विघ्न डालने का कारण पूछा तो उन्होंने समझाया कि वे भक्त की रखवाली माता की तरह करते हैं । माँ बच्चे को साँप अथवा अग्नि की तरफ जाने से रोकती ही है–

करऊं सदा तिन कै रखवारी ।
जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखइ जननी अरगाई ॥

भगवान ने नारद को बतलाया कि नारी को प्रमदाकामिनी रूप में देखना अहितकारी है, अत: उन्हें उससे दूर रखा है–

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दु:ख खानि ।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ॥

भगवान के इस स्वभाव और प्रभाव को समझकर तुलसीदास जी "विनय पत्रिका" में यही प्रार्थना करते हैं कि हमारे भी दोष हर लीजिये–

कबहुँ रघुवंश मनि सो कृपा करहुगे ।
... ...
मोह मद मान कामादि खल मंडली ।
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ॥

अन्य पद में वे व्यक्त करते हैं कि यह सब विकार प्रभु की कृपा से अवश्य हट जायेंगे ।

जो मन लागै रामचरन अस ।
देह गेह सुत वित कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किये जस ॥
द्वंदरहित, गतमान, ग्यानरत, विषय विरत खटाइ नाना कस ।
सुखनिधान सुजान कोसल पति है प्रसन्न, कहुँ क्यों न होहिस ॥
सर्वभूत हित निर्व्यलीक चित, भगति प्रेम दृढ़ नेम, एकरस ।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवैईश, जेहि हतो सीसदस ॥

इतना ही नहीं प्रभु ने सचमुच अपनाया या नहीं इसकी कसौटी वे यही मानते हैं कि मन कुमार्ग छोड़कर सन्मार्ग पर चल पड़े–

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिर परि है ।
जेहि सुभाव विषयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सो
नेह छाँड़ि छल करि है ।
सुत की प्रीति, प्रतीत मीत को, नृप ज्यों डरि है ।
अपनों सो स्वारथ स्वामिसों, चहुँ विधि चातक ज्यों
एक टेक ते नहिं टरि है ।
हरषि हैं न अति आदरे, निदरे न जरि मरि है ।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित
कलि कुचालि परिहरि है ।
प्रभु गुन सुनि मन हरषि है,नार नयननि ढ़रि है ।
तुलसिदास भयो राम का विश्वास प्रेम लखि
आनँद उमगि उर भरि है ।

भगवान और भक्त का सम्बन्ध ऐसा ही निश्चल है । निर्मल मन से ही सच्ची भक्ति हो सकती है । सत्कर्म परायण भक्त ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । प्रभु अनुग्रह का प्रतिफल उज्ज्वल चरित्र के रूप में देखा जा सकता है । यह तथ्य भगवान स्वयं सखा विभीषण को बतलाते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥

विभीषण भी इस मर्म को जानते और अपनी निष्ठा व्यक्त करते हुए कहते हैं–

करम बचन मन छाँड़ि छल, जब लगि जन तुम्हार ।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहीं, किये कोटि उपचार ॥

इसी विश्वास के सहारे विभीषण शत्रुपक्ष में होते हुए भी भगवान के पास निर्भय होकर जा सके । उन्हें विश्वास था कि–

मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई ।
भजत कृपा करहिं रघुराई ॥

विभीषण ने लंका का राज्य मिलने पर भी अपनी इस निष्ठा का परिचय दिया । भगवान के चरणों में सभी सम्पत्ति सौंपते हुए कहा हे प्रभु इसे स्वीकार कर और वानरों के अर्थात् सदुद्देश्य के लिए इसे खर्च कर डाले–

देखि कोष मंदिर सम्पदा ।
देहु कृपालु कपिन्ह कहुँ मुदा ॥
सब विधि नाथ मोहि अपनाइय ।
पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय ॥

नवधा भक्ति के प्रसंग में नौवीं भक्ति का रूप बताते हुए कहा गया है कि छल रहित सादगी और हर्षोन्माद भरे अहंकार तथा हानि पराजय की दीनता को छोड़कर जो सन्तुलित मनःस्थिति बनती है वही सच्ची भक्ति का रूप है–

नवम सरल सब सन छल हीना ।
मम भरोस हिय हरष न दीना ॥

इसीलिए तुलसीदास जी "विनय-पत्रिका" में प्रभु के प्रति पत्नी जैसे समर्पण भाव व्यक्त करते हैं–

रावरो भरोसो नाह कै सुप्रेम नेम लियो ।
रुचिर रहनि रुचि मति गति तीय की ॥

इसी पद में कहा गया है कि अन्तर्यामी के पास दुरंगी चाल नहीं चल सकती–

ग्यान हू गिरा के स्वामी बाहर अन्तर्यामी ।
यहाँ क्यों दुरैगी बाम मुख अरु हीय की ॥

मन प्रभु से छल न करे इसलिए उसे सावधान करते हुए अन्य पद में कहा है–

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सदगुन धाम राम पावन परम ।
सुरुख सुमुख एकरस एक रूप तोहि
विदित विशेष घट घट के मरम ।

मानसकार मन से छल-कपट को निकाल देने को विद्वता और शौर्य का प्रमाण मानते हैं । काकभुशुण्डिजी गरुड़ से कहते हैं–

सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा ।
जी छल छाँड़ि भजइ रघुबीरा ॥

इसी तथ्य को वे अन्य स्थान में और भी स्पष्ट करते हैं–

विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मार ।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस विचारि ॥

ऐसे भक्तों को भगवान अपना परम प्रिय मानते हैं । भगवान का निवास किस स्तर के भक्तों के मन में होता है उसकी चर्चा रामायण में इस प्रकार आती है, अरण्यकाण्ड में भगवान लक्ष्मण जी से कहते हैं–

काम आदि मद दंभ न जाके ।
तात निरन्तर बस मैं ताके ॥

इसी प्रसंग में भगवान इस तथ्य को दूसरे शब्दों में दुहराते हैं–

बचन कर्म मनमोहि गति, भजन करहिं निष्काम ।
तिनके हृदय कमल महँ, करहुँ सदा विश्राम ॥

विभीषण से पुनः श्री रामजी वहीं भाव दुहराते हैं–

समदरसी इच्छा कछु नाहीं ।
हरष सोक भय नहिं मन माँही ॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।
लोभी हृदय बसइ धन जैसे ॥

भक्त के हृदय में पाप नहीं रहते अथवा पापी से भक्ति नहीं हो सकती । दोनों बातें एक ही हैं । भक्ति से मन की मलीनता धुल जाती है अथवा निर्मल मन से ही भक्ति संभव है । ये दोनों तथ्य अन्योन्याश्रित हैं । मन की मलीनता का हटना, दोष दुर्गुणों से मुक्ति मिलना, भक्ति के हृदय में प्रवेश करने का एक मात्र प्रमाण है–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभीषण प्रभु की शरण गया तब सुग्रीव ने उसकी सद्भावना पर शक करते हुए कहा था— 'जानि न जाय निशाचर माया— काम रूप कोहि कारण आया।' तब भगवान निराकरण करते हुए कहते हैं—

जो पै दुष्ट हृदय सोइ होई।
मोरे सन्मुख आव कि सोई॥

उसी प्रसंग में भगवान और स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं—

पापवन्त कर सहज सुभाऊ।
भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥

उत्तर काण्ड में गरुड़ जी से यही मर्म काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहिं, मूढ़ परे तम कूप॥

अरण्यकाण्ड में रावण भी अपनी इस मजबूरी को स्वीकार करता है—

होहिंह भजन न तामन देहा।
मन क्रम वचन मंत्र दृढ़ नेहा॥

कारण यह कि मन में दुर्भावना होने से भक्ति की निर्मलता पैदा हो ही नहीं सकती। काकभुशुण्डिजी यह सिद्धान्त स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

छूटय मल कि मलहि के धोये।
घृत कि पाव कोइ वारि बिलोये॥
प्रेम भगति जल बिनु खगराई।
अभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई॥

तुलसीदासजी के अन्य पदों में भी यही अभिरुचि झलकती है कि जब तक दोष दुर्गुण मन में भरे रहते हैं तब तक भगवान किसी को अपनाते नहीं। 'विनय-पत्रिका' में यह भाव प्रकट करते हुए वे लिखते हैं—

जेहि गुन ते बस होहु रीझि कर
सो मोहि सब विसर्‌यौ॥

अस्तु, भविष्य के लिए अपने मन को सावधान करते हुए वे कहते हैं—

जो मन भज्यो चहै हरि सुरतरु
तौ तज विषय विकार, सार भज, अजहूँ
जो मै कहौं सोइ करु।
सम संतोष, विचार विमल अति सतसंगति
ये चारि दृढ़ किर धरु।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष
निसेष करि परिहरु।
श्रवन कथा, मुख नाम हृदय हरि, सिर प्रनाम
सेवा कर अनुसरु॥
नयननि निरखि कृपा समुद्र हरि अंग जग
रूप भूप सीता वरु॥
इहै भक्ति, वैराग्य ग्यान यह, हरि तोषन यह
शुभ ब्रत आचरु।
तुलसिदास शिव मत, मारग यहि चलत सदा
सपनेहुँ नाहिन डरु॥

जो दोष दुर्गुणों से भरे हुए हैं और पूजा-पाठ के आधार पर ही राम-भक्त होने का दावा करते हैं, उन पर व्यंग्य करते हुए तुलसीदासजी ने कथा के प्रारंभ में ही कहा है—

बंचक भगत कहाइ राम के।
किंकर कंचन कोह काम के॥

यही भाव विनय-पत्रिका के निम्न पद में व्यक्त किया गया है—

गोपद बुड़िवे जोग करम करौं बातनि जलधि थहाबौं।
अति लालची काम किंकर मन मुख रावरो कहावौं॥

अन्य पद में आत्म-पश्चाताप करते हुए प्रभु से विनय करते हैं कि चाहे आप मुझे सुधार लें अथवा मार डालें मैं आपकी और अपनी मर्यादा का ध्यान रखकर बार-बार आग्रह नहीं करूँगा—

दूरि कीजै द्वार तै लवार लालची प्रपंची।
सुधा सो सलिल सूकरा ज्यौं गहडोरिहौं॥
... ...
राखिये नीके सुधारि नीच को डारिये मारि।
दुहूँ ओर की विचारि अब न निहोरिहौं॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्चे भक्त अपनी तथा प्रभु की इस मर्यादा और गौरव को समझते हैं। अपने अन्तर की मलिनता से उन्हें लज्जा आती है। तुलसीदासजी 'विनय-पत्रिका' में यही भाव व्यक्त करते हैं—

हे प्रभु ! मुझे आपका दास (भक्त) कहलाने में लाज क्यों नहीं आती? मैं आपको अपने हृदय सरोवर में बसाना चाहता हूँ आप हंस के समान निर्मल हैं। मेरा हृदय मलिनताओं से भरा हुआ है ऐसा समझकर मैं बड़े असमंजस में हूँ। क्योंकि जिस सरोवर में कौवा, गीध, बगुला, सुअर आदि भरे हों वहाँ हंस कैसे आ सकता है? भाव यह कि दुर्गुणों से भरे हुये हृदय में भगवान का निवास नहीं हो सकता—

लाज न लागत दास कहावत ।
हरि निर्मल मल ग्रसित हृदय असमंजस मोहि जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥

मायाजाल से बन्धन मुक्ति

माया का अर्थ है— अज्ञान, उलझन जहाँ यह संसार सत् से ओत-प्रोत है वहाँ उसमें असत् का भी आस्तित्व है। काया की तरह छाया की भी एक भ्रान्ति यहाँ मौजूद है। बालबुद्धि के लोग जल में चन्द्रमा की परछाई देखकर उस खिलौने को लेने के लिए ही मचलते हैं और मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरन की तरह थकान भरी निराशा लेकर खाली हाथ वापिस लौटते हैं। यही है माया का जादूगरी भरा इन्द्रजाल।

लोग इन्द्रिय लिप्सा की वासना और मानसिक अदूरदर्शिता की तृष्णा में जो दाद खुजाने जैसा आकर्षण है, उस पर मुग्ध होकर उसी को लक्ष्य मान लेते हैं और निरन्तर उसी की प्रीति के कठिन प्रयत्नों में निरत रहते हैं। आटे की गोली के लोभ में मछली, दाने के लोभ में पक्षी, वीणा के नाद में मृग, गन्ध में भँवरा जिस प्रकार अपने प्राण गँवाते हैं उसी प्रकार मायाजन्य वासना, तृष्णा में फँसकर मनुष्य अपनी जीवन सम्पदा को नष्ट करता है। पेट और प्रजनन के तुच्छ प्रयोजन में जिस प्रकार कीट-पतंग उलझे रहते हैं उसी प्रकार बुद्धिमान मनुष्य भी उसी ताने बाने में उलझा रहता है। पशु-पक्षी शारीरिक आवश्यकता पूरी करने भर के लिए उपार्जन करते हैं और क्षुधा मिटने पर दौड़-धूप बन्द कर देते हैं, पर मनुष्य शरीर पोषण की आवश्यकता पूरी हो जाने पर भी संग्रह के लोभ, प्रदर्शन के अहंकार और सम्बन्धियों के मोह में फंसकर बिना उचित अनुचित का— आवश्यक अनावश्यक का विचार किये निरन्तर लालच में फंसा रहता है और बहुमूल्य मनुष्य-जीवन जिस प्रयोजन के लिए मिला था उसे भुलाकर कुमार्ग अपनाता है— कुकर्म करता है और विपत्ति में फंसता है इसी भूल का नाम माया है।

मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताएँ स्वल्प हैं, शरीर-निर्वाह स्वल्प साधनों से स्वल्प श्रम से हो सकता है। इन्द्रियों की स्वाभाविक भूख नगण्य-सी है और वह समयानुसार सहज ही पूरी होती रहती है संग्रह करके भी मनुष्य उपभोग तो तनिक सा ही कर सकता है। जमा सम्पदा को दूसरे हड़पते हैं और छीन झपट में अवाँछनीय ईर्ष्या, द्वेष, उत्पीड़न एवं अनाचार उत्पन्न होता है। वासना के असीम उपभोग से शरीर और मन की शक्तियाँ जर्जर होती हैं और मनुष्य खोखला बन कर आधि-व्याधि ग्रसित होता है। इन विकृतियों के अनेकानेक उदाहरण सामने रहते हुए भी मनुष्य अपने जीवन लक्ष्य के महान प्रयोजन को भूलकर अनावश्यक संग्रह और उपभोग की ललक में फंसा हुआ असीम क्षति उठाता है और उस अदूरदर्शितापूर्ण नीति-रीति को बुद्धिमत्ता मानता है, यह माया है। लाभ को हानि और हानि को लाभ समझना बुद्धि विपर्यय है, उसी को माया कहते हैं।

माया ग्रसित व्यक्ति पग-पग पर ठोकरें खाता है। उपभोग की लिप्सा में कुत्ता सूखी हड्डी चबाकर अपने जबड़े के रक्त को चाटता है और प्रसन्न होता है। इसी प्रकार मूढ़मति व्यक्ति पशु प्रवृत्तियों की संलग्नता में ही बुद्धिमत्ता सफलता और प्रसन्नता अनुभव करते हैं। सुरदुर्लभ जीवन-सम्पदा गँवाकर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने जैसी बालक्रीड़ा को भी लोग चाव पूर्वक अपनाते हैं यही माया है।

मायाग्रस्त स्थिति में मनुष्य को दुसह दुख सहने पड़ते हैं और असीम क्षति उठानी पड़ती है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते हुए बार-बार जन्म-मरण का कष्ट सहना पड़ता है। लोभ-मोह की पूर्ति के लिए किये गये कुकर्मों का दण्ड तथा निरर्थक कृत्यों में जीवन सम्पदा को गँवाने की हानि का परिणाम कष्टकारक ही होता है। ईश्वर अंश जीव को बड़े सौभाग्य से मनुष्य जन्म मिलता है। उसे मायाग्रस्त स्थिति में गँवा दिया जाये तो इसे महान दुर्भाग्य ही कहना चाहिये। इस स्थिति पर प्रकाश डालकर 'रामचरित-मानस' में काकभुशुण्डि जी गरुड़ को समझाते हुए कहते हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनासी ।
चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो माया बस भयउ गुसाईं ।
बँध्यो कीर मर्कट की नाईं ॥

बन्दर को मदारी नचाता है, तमाशा बनाये फिरता है उसी प्रकार माया जीव को नचाती है । उसी प्रसंग में कहा गया है—

फिरत सदा माया कर प्रेरा ।
काल कर्म स्वभाव गुन घेरा ॥
आकर चारि लाख चौरासी ।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥

जीव सहज चैतन्य स्वरूप है, पर वह माया मोह वश उलझन में पड़ जाता है । इस तथ्य को काकभुशुण्डि जी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

जड़-चेतनहिं ग्रंथि पड़ गई ।
जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तव ते जीव भयउ संसारी ।
छूटन ग्रंथि न होई सुखारी ॥
जीव हृदय तम मोह विसेषी ।
ग्रंथि छूटि किमि परइ न देखी ॥

भगवान भाई लक्ष्मण को अरण्यकाण्ड में समझाते हुए, माया का रूप और विस्तार बतलाते हुए कहते हैं—

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।
जेहि बस कीन्हें जीव निकाया ॥
गो गोचर जहँ लग मन जाई ।
सो सब माया जानेहुँ भाई ॥

माया की प्रबलता के सम्बन्ध में काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं—

अति प्रचण्ड रघुपति के माया ।
जेहि न मोह अस को जग जाया ॥

लेकिन यह भी न मान लें कि माया से बचा नहीं जा सकता । मायाग्रस्त मन:स्थिति तभी तक रहती है जब तक ईश्वर विश्वास और प्रेम मन में नहीं जगता । विभीषण भगवान राम से कहता है—

तब लगि बसत जीव मन माहीं ।
जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं ॥

माया जहाँ जाकर लाचार हो जाती है, उस प्रभु के सान्निध्य का प्रभाव काकभुशुण्डि जी बताते हैं—

जो माया सब जगहिं नचावा ।
जासु चरित लखि काहु न पावा ॥
सो प्रभु भ्रूविलास खगराजा ।
नाच नटी इस सहित समाजा ॥

तुलसीदासजी ने भगवान को सूर्य की और माया को छाया की उपमा दी है । वे कहते हैं कि जब सूर्य प्रात:, सायंकाल दूर रहता है तो छाया बहुत बड़ी, बहुत लम्बी हो जाती है । किन्तु जब सूर्य नजदीक सिर पर होता है तो छाया छोटी हो जाती है और पैरों के नीचे आ जाती है । 'दोहावली' में यह मार्मिक भक्ति है—

राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन मांह ।
भूरि होत रवि दूर लखि, सिर पर पउतर छांह ॥

भगवान का निवास हृदय में होने पर यह संसार को नचाने वाली माया तिरोहित होती चली जाती है ।

ईश्वर भक्ति जहाँ होगी वहाँ माया के प्रति अनावश्यक आकर्षण न होगा । नर और नारी का आकर्षण प्रसिद्ध है, नारी और नारी के बीच वैसा खिंचाव नहीं होता । भक्ति और माया दोनों स्त्रीलिंग है । अस्तु, तुलसीदासजी की उक्ति है कि वे दोनों परस्पर मोहित नहीं होतीं । भक्ति भाव सम्पन्न अन्त:करण में माया के प्रति आकर्षण नहीं होता । इस तथ्य को 'मानस' में काकभुशुण्डिजी बड़ी कुशलता से व्यक्त करते हैं—

माया भगति सुनहु तुम दोऊ ।
नारि वर्ग जानै सब कोऊ ॥
मोह न नारि नारि के रूपा ।
पन्नगारि यह नीति अनूपा ॥

यह माया वस्तुत: अपना भ्रम ही है अज्ञान के कारण ही मनुष्य अपना यथार्थ नहीं समझता और भ्रम में पड़ जाता है । ऐसे भ्रम को मानसकार ने बच्चों जैसी स्थिति बताया है—

बालक भ्रमहि न भ्रमहिं गृहादी ।
कहहि परस्पर मिथ्यावादी ॥

बच्चे गोल गोल घूमते हैं और कहते हैं कि मकान घूम रहे हैं । कोई उनकी बात का खण्डन करे तो उसी को झूँठा कहते हैं । मायाग्रस्त प्राणी भी ऐसा ही करते हैं ।

इसी तथ्य को अन्य उदाहरण से मानस के प्रारम्भिक प्रसंग में प्रकट करते हुए शिवजी कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निज भ्रम नहिं समझै अज्ञानी ।
प्रभु पर मोह धरहि जड़ प्रानी ॥
जथा मगन घन पटल निहारी ।
झाँपेऊ भानु कहहिं कुविचारी ॥

लोग इतने बड़े सूर्य को बादल से ढका हुआ कहते हैं । यह नहीं कहते कि बादल ने हमें ढक लिया है । मायाग्रस्त की ऐसी ही स्थिति होती है ।

शिवजी के शब्दों में यह भ्रम स्वप्नवत् है–

मोह निशा सब सोवनिहारा ।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥

यह माया बड़ी दुस्तर लगती है, किन्तु जब मनुष्य उससे बाहर हो जाता है, तो वह महत्त्वहीन दिखने लगती है–

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥

जागने का अर्थ मोह अज्ञान निवारण से है । इसी तथ्य को ''विनय पत्रिका'' के निम्नलिखित पद में दर्शाया गया है–

मैं तोहि अब जान्यों संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि हरिके बल प्रकट कपट आगार ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए विचार ।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥
तेरे लिये जनम अनेक में फिरत न पायो पार ।
महामोह मृगजल सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार ॥
सुनु खल छलबल मेटि किए वश होहिं न भगत उदार ।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नन्दकुमार ॥
तासा करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार।
सो परि डरे मरे रजु अहि तें बूझे नहिं व्यवहार॥
निज हित सुनु सठ हठ
न करहि जो चाहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दास न
तजि मलहिं जहाँ मद मार ॥

जब प्रभु कृपा से सच्चा बोध हो जाये तभी माया का प्रभाव समाप्त हो जाता है–

जौ सपने सिर काटै कोई ।
बिनु जागे दुख दूर न होई ॥
जासु कृपा अस भ्रम मिट जाई ।
गिरजा सो कृपालु रघुराई ॥

भक्ति की प्रकाश-किरणें जिस अन्त:करण में उदय होंगी उसमें मायारूपी अज्ञानान्धकार टिक नहीं सकता । इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि जँहा जीवन के दृष्टिकोण एवं क्रिया सम्बन्धी दूरदर्शिता उदय होगी वहाँ ईश्वर भक्ति का अवतरण हुआ समझा जायगा ।

ज्ञान और भक्ति की अभिन्नता

रामायण की भक्ति अन्धी भक्ति या भावोन्माद नहीं है, जैसा कि आमतौर से लोग समझते हैं । उसमें विवेक का पूरा-पूरा समन्वय है । गोस्वामी जी ने ज्ञान को भक्ति से कम महत्व नहीं दिया है । वे विवेक और भक्ति को अभिन्न मानते हैं । हम जो भी करें विवेकपूर्वक करें, यहाँ तक कि ईश्वर विश्वास, ईश्वर-प्रेम और भक्ति आचरण के सम्बन्ध में भी यह विचार करते हैं कि वह व्यक्ति और समाज के लिए उपयोगी है या नहीं । नि:सन्देह श्रुति सम्मत आस्तिकता इन सभी कसौटियों पर हर दृष्टि से खरी उतरती है ।

ईश्वर सर्वव्यापक, न्यायकारी, कर्मफलदायिनी और उत्कृष्टता से ओत-प्रोत चैतन्य सत्ता है । सांसारिक दण्ड से बच निकलने के अनेक चतुरतापूर्ण मार्ग हैं, पर दुष्कर्मो का फल ईश्वर द्वारा आज नहीं तो कल दिया ही जाने वाला है, इस मान्यता के कारण व्यक्ति सत्पथ अपनाता है और सद्भाव सम्पन्न बनता है इस दृष्टि से आस्तिकता उस नैतिकता का पक्ष पुष्ट करती है जो व्यक्ति एवं समाज की प्रगति एवं समृद्धि में हर दृष्टि से सहायक होती है ।

ईश्वर-भक्ति अर्थात् ईश्वर-प्रेम । ईश्वर-प्रेम अर्थात् उत्कृष्ट संवेद से अन्त:करण को सुसज्जित बनाना । भावना ही मानवीय चेतना में सर्वोत्कृष्ट तत्व है । इसी से प्रेरित होकर मनोभूमि– बुद्धि, वैभव एवं क्रियाकलाप को दिशा मिलती है । यदि दुर्भावनाओं से अन्तराल भरा होगा तो मस्तिष्क दुष्ट विचारों में निरत रहेगा- असुरता का पक्ष समर्थन करेगा और शरीर की गतिविधियाँ उसी स्तर के कुकर्मों में जुट पड़ेंगी । इन्द्रियाँ वैसा ही चाहेंगी और मन की लालसा उसी ओर खिंचती रहेगी । महानता का आरम्भ आन्तरिक सद्भावनाओं की सुदृढ़ स्थापना से होता है । यह भावनाएँ उच्च स्तरीय हों । उनमें करुणा, स्नेह, सद्भावना कोमलता, आत्मीयता, परदुख कातरता, उदारता जैसे आध्यात्मिक गुणों का समावेश हो तो चिन्तन और कर्तृव्य को निश्चय ही श्रेष्ठ सात्विकता की– देवत्व की– ऋषि कल्प

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गतिविधियाँ अपनाने की प्रेरणा मिलेगी और क्रमशः वैसा ही व्यक्तित्व बनता ढलता जायेगा । ईश्वर-प्रेम, ईश्वर भक्ति वस्तुतः सुकोमल संवेदनाओं को विकसित एवं परिपुष्ट करने का ही नाम है । भक्ति का समस्त कलेवर इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित हुआ है । उसे अपना कर मनुष्य प्रेमी, उदार, सेवाभावी एवं निर्मल चरित्र बन सकता है । इस मार्ग पर चलते हुए मनुष्य ईश्वर का प्यारा बन सकता है और उसके अनुग्रहजन्य आत्मसाक्षात्कार, जीवन मुक्ति परमपद, ब्रह्मानन्द जैसे उपहारों को पाकर धन्य बन सकता है । यही मान्यता ईश्वर -भक्ति द्वारा पुष्ट होती है । मनुष्य को महामानव बनने की दिशा में अग्रसर करती है, जिससे वह अपना तथा समस्त संसार का भला करता है । ईश्वर भक्ति का दुहरा लाभ है— आत्मोत्कर्षण और उसके साथ जुड़ा हुआ जन कल्याण ।

तर्क, प्रमाण और परख द्वारा ही किसी बात पर स्थिर विश्वास किया जा सकता है । ऐसा विश्वास ही चिरस्थायी और प्रेरणाप्रद होता है । अन्ध-श्रद्धा और अन्ध विश्वास के नाम पर यदि 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' की उक्ति के अनुसार कोई लकीर का फकीर बन भी जाय तो उसमें कोई स्थिरता न रहेगी । उस मान्यता को कोई प्रतिभावना व्यक्ति या विपरीत अवसर सहज ही डगमगा देगा । इसलिए रामायण तर्क प्रमाण और परख को समुचित मान्यता देती है । काकभुशुण्डि और गरुड़ संवाद में भक्ति को विश्वास पर आधारित कहा है—

बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम ।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह विश्राम ॥

विश्वास विवेकपूर्ण शोध के बाद ही किया जाता है । उसी प्रकरण में इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

जाने बिनु न होइ परताती ।
बिनु परतीति होई नहिं प्रीती ॥
प्रीति बिना नहिं भगति दृढ़ाई ।
जिमि खगपति जल को चिकनाई ॥

स्पष्ट है कि भक्ति का दिखावा भले ही यों ही कर लिया जाय पर दृढ़ भक्ति तो प्रमाणों पर आधारित विश्वास के द्वारा ही पायी जा सकती है । ज्ञान और भक्ति परस्पर अन्योन्याश्रित है । यह भाव 'मानस' में स्पष्ट है, जैसे उत्तरकाण्ड के 'मानस रोग प्रकरण' में कहा गया है कि बुद्धि ज्ञान में स्नान करे तब भक्ति मिलती है-

विमल ज्ञान जल जो सो अन्हाई ।
तब रह राम भगति उर छाई ॥

जैसे उक्त प्रसंग में ज्ञानासिक्त होने पर हृदय में भक्ति प्राप्ति दर्शायी गई है, वैसे ही ज्ञान को भी रूखा नहीं भक्ति युक्त होना आवश्यक बतलाया गया है । चित्रकूट के प्रसंग में गोस्वामी जी के बारे में जनक से कहते हैं—

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू ।
करणधार बिनु जिमि जलयानू ॥

विवेक के आधार पर ही संसार में उचित-अनुचित का भेद किया जा सकता है और गुण ग्रहण करने तथा दोष त्यागने को तत्पर हुआ जा सकता है । यह संसार गुण दोषमय है— इसका निर्माण तम और सत् के— असुरता और देवत्व के सम्मिश्रण से हुआ है । उसमें से हंस की तरह नीर-क्षीर विवेक करते हुए औचित्य को ही ग्रहण करना चाहिये । यह कर्म-ज्ञान भी विवेक द्वारा ही संभव हो सकता है—

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार ॥

यह हंस-वृत्ति हो तभी तो संसार के विकारों से विरक्त रह कर ईश्वरीय समर्पण संभव होता है । वैराग्य और ज्ञान सहित भक्ति का उपदेश भगवान राम भाई लक्ष्मण को 'लक्ष्मण गीता' के प्रसंग में देते हुए कहते हैं—

धर्म ते विरति जोग ते ज्ञाना ।
ज्ञान मोक्ष प्रद वेद बखाना ॥
जेहि ते वेग द्रवहुँ मैं भाई ।
सो मम भक्ति भगत सुखदाई ॥

ईश्वर-भक्ति के लिए किये गये पूजा-पाठ मनन-चिन्तन, स्वाध्याय-सत्संग, जप-ध्यान, आचार-कर्मकाण्ड आदि एक प्रकार से मानसिक व्यायाम है, जिन्हें अपना कर मनुष्य मनस्वी, आत्मबल सम्पन्न, ब्रह्मवर्चसयुक्त बनता है । अखाड़े में किया गया व्यायाम शरीर को पुष्ट बनाता है और पूजा-कक्ष में किया गया उपासनात्मक साधन सत्प्रवृत्ति के अभिवर्धन में असाधारण सहायता करता है । उसका मनोवैज्ञानिक महत्व है । अन्तः चेतना के परिष्कार में उससे बहुत बल मिलता है । प्रसुप्त गुप्त शक्तियों को जाग्रत होने का अवसर मिलता है ।

ईश्वर को सर्वव्यापी समझकर मनुष्य हर किसी के साथ सद्व्यवहार करने के लिए अग्रसर होता है । उसके द्वारा अवांछनीय कार्य नहीं बन सकते हैं । ईश्वर के साथ— उसके सुरम्य परिकर के साथ अनीति वरतने के लिए भला ईश्वरभक्त कैसे तैयार होगा ? अपने इष्ट देव को कष्ट देकर उसे रुष्ट कैसे कर सकेगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे ही अनेक लाभ आस्तिकता के— ईश्वर विश्वास के— भगवान की भक्ति के हैं। ज्ञान एवं विवेक के आधार पर भक्ति की उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सिद्ध होती है। भक्ति यदि अन्ध-विश्वास पर ही हो तो— कल्पनाओं की उड़ान के आधार पर ही यदि यह महल खड़ा किया गया हो तो उस फूँस की झोंपड़ी को ज्ञान, विवेक, एवं तर्क से डरने की आवश्यकता हो सकती थी। पर जब उसका आधार हर दृष्टि से ठोस है, तो ज्ञान की कसौटी पर भक्ति के परखे जाने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। इसी से तुलसीदासजी ने ज्ञान-चेतना का— तर्क और विवेक का भरपूर समर्थन किया है। यथा—

भक्तिहि ज्ञानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

भक्ति और विवेक को मानसकार ने अन्योन्याश्रित सिद्ध किया है। काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में भक्ति (रामकृपा) से विवेक जाग्रत होने की बात कही गयी है—

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

और भगवान राम लक्ष्मण जी को समझाते हुए कहते हैं कि विवेक द्वारा मोह नाश होने पर मेरे प्रति प्रेम पैदा होता है—

होइ विवेक मोह भ्रम भागा।
तब मम चरण उपज अनुरागा॥

इस प्रकार भक्ति द्वारा विवेक और विवेक द्वारा ईश्वर भक्ति (अनुराग) जाग्रत होने का स्पष्ट अभिमत प्रकट किया गया है। अयोध्याकाण्ड में श्री वाल्मीकि जी श्री रामचन्द्र जी से कहते हैं—

जस तुम्हार मानस विमल, हंसन जीहा जासु।
मुक्ताहल गुनगन, चुनइ, राम बसहु हिय तासु॥

हंस विवेक का ही प्रतीक है। जिसमें हंस वृत्ति अर्थात् सत-असत् का विवेक है उसके हृदय में भगवान का वास होता है। इसी प्रकार 'विनय-पत्रिका' के एक पद में स्पष्ट किया गया है कि इन्द्रियों को वश में किये बिना प्रभु प्राप्ति नहीं हो सकती—

दसईं दराहु कर संजम जो न करिय निज जानि।
साधन बृथा होइ सब मिलहिं न सारंगपानि॥

भक्ति के नाम पर प्रचलित अनेकानेक पंथ सम्प्रदायों के मूर्खतापूर्ण भावोन्माद पर करारे व्यंग्य करते हुए गोस्वामीजी ने उन्हें गर्हित बताया है और उनके द्वारा लिखे हुए ऊटपटाँग वचनों को कलि की करतूत कहकर उत्तरकाण्ड में उनको अमान्य हराया है।

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संयुत विरति विवेक।
तेहि परिहरहिं मोह बस, कल्पहिं पथ अनेक॥

"दोहावली" में भी कहा है—

साखी सबदी दोहरा, कहि कहनी उपखान।
भगति निरूपहिं भगतकलि, निन्दहि वेद पुरान॥

इस प्रकार ज्ञान की उपेक्षा करने वाली भक्ति को उन्होंने अनुचित कहा है। भक्ति में कुटिलता की आवश्यकता नहीं इसको प्रस्तुत करते हुए तुलसीदासजी 'दोहावली' में लिखते हैं—

सूधे मन सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधो सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति॥

ईश्वर अन्न-जल की तरह सर्वसुलभ है। यद्यपि अगम निगम है, पर उसे प्राप्त करना सरल हृदय मनुष्य के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। "दोहावली" का ही कथन है—

निगम अगम साहब सुगम, राम साँच लो चाह।
अम्बु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माँहि॥

भक्ति का मार्ग अति सरल है। सादगी, सचाई और सज्जनता अपनाने में कोई कठिनाई नहीं। उस प्रकार का जीवनयापन बिना किसी विशेष कौशल या चातुर्य के किया जा सकता है और सदाचारी जीवन जीते हुए ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। उतनी सरलता होते हुए भी वह कठिन भी है। क्योंकि जिस प्रकार के निकृष्ट चिन्तन और घृणित क्रियाकलाप का दीर्घकाल से अभ्यास रहा है उसे छोड़ने के लिए अन्तःक्षेत्र में कठिन आन्तरिक संघर्ष करना पड़ता है। यह मनोनिग्रह ही एकमात्र कारण है जिससे यह सरल मार्ग व्यवहार में कठिन प्रतीत होता है। संचित कुसंस्कार बार-बार पीछे घसीटते हैं, नीचे गिराते हैं, इनसे जूझना ही गीता में वर्णित महाभारत है। इनसे लड़ने के लिए हर भक्त को अर्जुन की भूमिका निवाहनी पड़ती है।

इस आन्तरिक समर के लिए भी भक्ति और ज्ञान को परस्पर पूरक बताया है। काकभुशुण्डि जी गरुड़ से कहते हैं कि भक्ति यह युद्ध ज्ञान की तलवार से ही लड़ती है—

विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मार।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस बिचारि॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भक्ति अनायास ही मिल जाती है यह मान्यता भ्रामक है। काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी से कहते हैं कि वह अगम है–

सब ते दुर्लभ सो खगराया ।
राम भगति रत गत मद माया ॥

इसी बात को ''गीतावली'' के एक पद में अधिक स्पष्ट करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं-

''कहत सुगम करत अगम सुनत मीठी लागत।''

ज्ञान और भक्ति को सुगम, सुलभ भी कहा गया है और कठिन भी। इसका स्पष्टीकरण तुलसीदासजी ने ''विनय-पत्रिका'' में बड़े विवेक सम्मत ढंग से किया है। वे कहते हैं–

रघुपति भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानि सोई जेहि बन आई ॥
जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।

अर्थात् कहने में सुगम लगने वाली वस्तु के लिए भी क्या करना पड़ता है, यह उसी को पता है जिस पर बीतती है। और वस्तुत: जो जिस कला में कुशल है, उसके लिए वही सुलभ और सुखकारी है। ज्ञान और भक्ति मार्ग के लिए यह उक्ति बड़ी उचित और विवेकपूर्ण है। इसी पद में आगे चलकर भक्ति के लिए क्या करना पड़ता है, यह स्पष्ट किया गया है। उससे विदित होता है कि ज्ञान, भक्ति और योग आदि परस्पर भिन्न तत्व नहीं हैं। पद का भाव इस प्रकार है–

''जिस प्रकार मछली पानी के प्रवाह को चीरती हुई प्रवाह के विपरीत चलती है उसी प्रकार भक्त को भी संसार प्रवाह की विपरीत दिशा में चलना पड़ता है। जैसे धूल में शक्कर मिला दी जाय उसी तरह संसार में गुण और अवगुण मिले हुए हैं। भक्त चींटी के समान शक्कर (गुण) ग्रहण कर लेता है तथा धूल (अवगुण) छोड़ देता है। जो सारे संसार को अपने में समाया हुआ देखता है तथा अज्ञान रूपी निद्रा को त्याग कर सदा ज्ञान में जाग्रत रहता है जिसे अपना आपा ही सबमें बिखरा हुआ दिखाई देता है, ऐसा योगी ही ईश्वर रूपी परम सुख का अनुभव करता है। न उसे शोक होता है, न मोह, तथा वह हर्ष विषाद से मुक्त होता है। तुलसी कहते हैं कि ऐसी दशा को प्राप्त किये बिना संशय का समूल नाश नहीं होता है।'' पूरा पद इस प्रकार है–

रघुपति भगति करत कठिनाई ।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोई जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुशल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी वहै गज भारी ॥
ज्यों शर्करा मिलै सिकता महँ बलतें, न कोउ बिलगावै ।
अति रसग्य सूच्छय पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवे निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख, अतिसमव द्वैत वियोगी ॥
साक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निरमूल न जाहीं ॥

ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करने के लिये समान साधनों की आवश्यकता पड़ती है, यह तथ्य भुशुण्डि-गरुड़ संवाद में अन्त:- करण की ग्रंथि छोड़ने के प्रसंग में भी स्पष्ट दर्शाया गया है। जड़-चेतन की ग्रंथि छोड़ने के लिए ज्ञान-दीप जलाने की जो विधि बताई है उसमें भक्ति के सारे तत्व सन्निहित हैं। जैसे-

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई ।
जौं हरिकृपा हृदय बस जाई ॥
नोइ निबृत्ति पात्र विस्वासा ।
निर्मल मन अहीर निज दासा ॥

शुद्ध श्रद्धा, हरिकृपा, वैराग्य-भाव, विश्वास तथा निर्मल मन- यह सभी साधन भक्ति के लिए अनेक जगह अनिवार्य बताये गये हैं, जिन्हें यहाँ ज्ञान-दीप के लिए आवश्यक कहा गया है।

इसी प्रकार वही ग्रंथि छोड़ने के लिए भक्ति रूपी मणि प्राप्त करने के लिए जो साधन बताये हैं उन्हें देखें। वह मणि खोजने के साधन ये हैं –

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी ।
पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥

स्पष्ट है कि ज्ञान और भक्ति दोनों ही शब्द-भेद से भिन्न किन्तु भाव-स्तर पर समान तत्व ही है। तुलसीदास जी ने इन्हें भिन्न नहीं माना है। ज्ञानी भी भक्त होता है और भक्त भी ज्ञानी। बालकाण्ड में कहा गया है कि अनेक प्रकार के भक्तों में प्रभु को ज्ञानी भक्त सर्वाधिक प्रिय है–

राम भगत जग चारि प्रकारा ।
सुकृति चारिउ अगध उदारा ॥
चहू चतुर कहुँ नाम अधारा ।
ग्यानी प्रभुहि विशेष पिआरा ॥

इस प्रकार गोस्वामीजी ने ज्ञान और भक्ति के समन्वय को अधिक स्पष्ट कर दिया है।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आध्यात्मिकता प्रकरण

'राम' आध्यात्मिक प्रेरणा के स्त्रोत

राम भक्ति को लोग भावोन्माद भर में सीमित कर लेते हैं, और सोचते हैं कि कल्पना की उड़ानें और क्रिया-काण्डों की छुटपुट कल्पनाएँ करते रहने से भक्ति का उद्देश्य पूरा हो जायेगा और उसके वर्णित माहात्म्य का लाभ सहज ही मिल जायेगा । बाल-बुद्धि वाले इसके लिए 'राम' शब्द का जप, उच्चारण, कीर्तन आदि पर्याप्त मान लेते हैं और सोचते हैं कि यह सरल बाल-क्रीड़ा, किये हुए पापों का दण्ड समाप्त करने के लिए बहुत है । जिह्वा द्वारा किया हुआ जप अथवा भगवान की लीला-पुस्तक का पाठ-पारायण ईश्वर को प्रसन्न करने का उनका अनुग्रह उपलब्ध करा देने का अति सरल उपाय है । पर वस्तुत: ऐसा है नहीं । राम-भक्ति गुण-कर्म प्रधान है । उसमें चिन्तन ही नहीं चरित्र भी उच्चकोटि का बनाने की बात अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है ।

उत्कृष्ट चिन्तन द्वारा व्यक्ति को सर्वतोमुखी विकास, परिष्कार की ओर अग्रसर करना और अपनी क्षमता योग्यता एवं सम्पदा को स्वार्थ प्रयोजनों में निर्वाह मात्र के लिए न्यूनतम मात्रा में लगाकर शेष को लोक-मंगल के लिए परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित करना, यह सच्ची भक्ति के सुनिश्चित लक्षण हैं । जिसने जीभ की नोंक से की गई बक-झक और हाथों के सहारे वस्तुओं की हेरा फेरी वाले क्रियाकाण्ड से आगे बढ़कर अन्त:करण में भगवत् भक्ति की स्थापना की होगी उसे अपने गुण-कर्म-स्वभाव की उत्कृष्टता के रूप में उस स्थिति का परिचय देना होगा । अपने दोष-दुर्गुण को ढूँढ़ने और उन्हें चुन-चुन कर बुहार फेंकने का साहस करना पड़ेगा । साथ ही सद्गुणों की दैवी सम्पदा से अपने मन मंदिर का शृंगार और व्यावहारिक जीवन में होने वाले क्रिया कलापों का परिष्कार करना पड़ेगा ।

ऐसा समर्थ और प्रखर अध्यात्म ही रामायण को अभीष्ट है । राम-कथा के माध्यम से जिस रामभक्ति का प्रतिपादन किया गया है वह वस्तुत: आत्म चिन्तन, आत्मसुधार आत्मनिर्माण और आत्म परिष्कार की प्रेरणा से ही ओत-प्रोत है । इसी श्रुति सम्मत और आप्तपुरुषों द्वारा कार्यरूप से लाई गई आध्यात्मिकता को अपनाने की प्रकाश-प्रेरणा रामायण के प्रत्येक अक्षर में भरी पड़ी है । राम का अवतार और उनका तथा उनके अनुयायियों का समस्त चिन्तन एवं चरित्र इसी धुरी पर घूमता है । सच्ची आध्यात्मिकता को जन-साधारण के गले उतारना और सज्जनोचित, मानवतावादी रीतिनीति व्यवहार में समाविष्ट करना-यही रामकथा का उद्देश्य है । विडम्बनाओं में उलझनों की अपेक्षा हमें इन्हीं सत्प्रेरणाओं को अपना कर रामायण के एक मात्र उद्देश्य को पूरा करना उचित है ।

तुलसी दास जी ने भगवान राम के गुणों को स्मरण करके उनसे अपने जीवन को सम्पन्न और सार्थक बनाने को अग्रह बार-बार किया है । उनकी महिमा भी कही है—

जग मंगल गुन-ग्राम राम के ।
दानि मुकुत धन धरम धाम के ॥

"भगवान के गुण समूह संसार में सब प्रकार मंगल देने वाले हैं । उनसे मुक्ति, धन, धर्म और सद्गति प्राप्त हो सकती है ।"

स्पष्ट है कि भगवान के जीवन में जिन गुणों का बाहुल्य है, उन्हें उपासक अपने जीवन में भी विकसित करें तो लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की सफलतायें पा सकते हैं । इन गुणों के महत्व में आगे कहा है—

सद्गुरु ग्यान विराग जोग के ।
बिबुध वैद भव भीम रोग के ॥
जननि जनक सिय-राम प्रेम के ।
बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥
समन पाप संताप सोक के ।
प्रिय पालक परलोक लोक के ॥
सचिव सुभट भूपति विचार के ।
कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥

"यह गुन ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए गुरु और भवरोग के लिए देवताओं के वैद्य आश्विनी कुमार सिद्ध होते हैं । भगवान के प्रति प्रेम पैदा करने में सद्गुण माता-पिता तथा धर्म-नियमादि बीज रूप हैं । पाप कष्ट और दु:ख का शमन करने वाले तथा परलोक और लोक को नष्ट न होने देने वाले संरक्षक हैं । विचार (ज्ञान) रूपी राजा के मंत्री और योद्धा तथा लोभ आदि को सोखने में कुंभज ऋषि की तरह समर्थ यही गुण है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम कोह कलिमल करिगन के ।
केहरि सावक जन मन बन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के ।
कामद धन दारिद दवारि के ॥

यह सद्गुण मनुष्य के मन रूपी जंगल में फिरने वाले काम, क्रोध आदि कलियुग के दोषों को मारने के लिए सिंहशावक है। भगवान शिव को यह अतिथि की तरह प्रिय हैं और दरिद्रता रूपी अग्नि को बुझाने के लिए इच्छानुसार बरसने वाले मेघ हैं ।

मंत्र महामनि विषय व्याल के ।
मेंटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से ।
सेवक सालि पाल जलधर से ॥

विषय रूपी सर्प के जहर को दूर करने के लिए श्रेष्ठ मार्ग यही सद्गुण है और यही भाग्य के अशुभ लेखों को मिटाने में समर्थ हैं । अर्थात् अपने दुर्गुणों के कारण ही अशुभ कर्म होते हैं जिनके प्रभाव से भाग्य बिगड़ता है। सद्गुणों को बढ़ाकर श्रेष्ठ कार्यों में प्रवृत्त होने से दोष स्वत: प्रभावहीन हो जाते है। मोहरूपी अन्धकार को ये सूर्य किरणों की तरह मिटा देते हैं। सेवा करने वाले को ये उसी तरह पालते हैं जैसे मेघ धान को पालते हैं ।

जगहित निरुपधि साधु लोग से ।
पावन गंग तरंग माल से ॥

इसी शृंखला में इन गुणों को भी कहा है– संसार के हित लिए छल रहित सच्चे सन्त और पवित्र करने के लिए गंगा की तरंगों के समान हैं । अन्त में कहा है –

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखण्ड ।
दहन राम गुनग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥

भगवान राम के गुण कुमार्ग, कुतर्क, गलत गतिविधियों कलियुग के कपट घमंड तथा पाखंड को जलाने के लिए वैसे ही हैं जैसे ईंधन को जलाने के लिए अग्नि ।

'रामचरितमानस' की उपमा सरोवर से दी है, उस सन्दर्भ में श्रीरामचन्द्रजी के यश गुणों को सुन्दर जल बताया है तथा उसी प्रसंग में कहा है –

सो जल सुकृत सालि हित होई ।
राम भगत जगजीवन सोई ॥
मेघा महि गत सो जल पावन ।
सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना ।
सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥

भगवान के शुभ चरित्र रूपी जल सत्कर्म रूपी धान के लिए हितकारक हैं । रामभक्तों के लिए तो जीवन रूप ही हैं । अर्थात् इससे सत्कर्मों की प्रेरणा मिलती है और भक्त उसी के अनुसार अपना जीवन चलाते हैं ।

यह जल मेधा रूपी भूमि ने सोख लिया तथा कानों के मार्ग से एकत्रित होकर अन्त:करण में भर गया । वहाँ स्थिर होकर निर्मल हुआ और सुन्दर, शीतल सुखद हो गया ।

तात्पर्य यह है कि भगवान के गुणों की यशगाथा बुद्धि में धारण की जाय, कानों द्वारा उसे केवल एकत्रित किया जाता है, उसका उपयोग तो अन्त: करण में स्थिर होने से होता है। यह ज्ञान-सरोवर विवेक चक्षुओं से देखा जाता है और तभी मन उसे स्वीकार कर लेता है –

"ग्यान नयन निरखत मनमाना"

भगवान की अनेक महानताओं में कुछ विशिष्ट महानताएँ हैं उनकी बलशीलता, बुद्धिमत्ता, तेजस्विता, धर्मपरायणता और सद्गुण सम्पन्नता । यह विशेषताएँ राम के अनुयायियों को भी अपने भीतर बढ़ानी चाहिये । जामवन्त कहते हैं–

सुनु सर्वज्ञ सकल उर वासी ।
बुधिबल तेज धर्म गुन रासी ॥

वाल्मीकि रामायण में मर्यादा पुरुषोतम श्रीराम को सर्वगुण सम्पन्न कहा है –

"सम्पूर्ण गुणों से युक्त व श्रीरामजी अपनी माता कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले हैं । गम्भीरता में समुद्र और धैर्य में हिमालय के समान हैं । "

सच सर्व गुणो पेत:कौशल्यानन्द वर्धन: ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥

वाल्मकि रामायण में विभिन्न स्थानों पर श्रीराम के लिए जिन गुण वाचक सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है, वे श्रेष्ठ आध्यात्मिक व्यक्तित्व के परिचायक हैं –

(१) नियतात्मा– नियतात्मा माने नियत स्वभाव है । अर्थात् श्रीराम निर्विकार है उनका मन अपने वश में हैं, वे मन के वश में नहीं हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(२) **महावीर्य**– 'वीर्य' शब्द का अर्थ है शक्ति। अत: महावीर्य का अर्थ होगा 'अचिन्त्य-विविध-विचित्र-शक्तिशाली' विविध प्रकार की विचित्र महाशक्तियों से सम्पन्न है।

(३) **द्युतिमान**– 'द्युति' शब्द का अर्थ 'प्रकाश' है। अत: 'द्युतिमान' का अर्थ प्रकाशमान होता है। परन्तु प्रकाश सब पदार्थों में है, इसलिये श्रीराम स्वाभाविक प्रकाश से युक्त हैं।

(४) **धृतिमान**– 'धृति' शब्द का अर्थ 'आनन्द' है, अत: धृतिमान शब्द का अर्थ निरतिशय आनन्दवान होता है। श्रीराम निरतिशय आनन्द गुणों से सम्पन्न हैं।

(५) **वशी**– का अर्थ है 'जितेन्द्रिय' है, अर्थात् श्रीराम अपनी इन्द्रियों को वश में रखते हैं।

(६) **बुद्धिमान्**– 'बुद्धिमान्' का अर्थ है सर्वज्ञ, सब वस्तुओं के ज्ञाता श्रीराम हैं। महेश्वरतीर्थ के मत में 'बुद्धिमान्' का अर्थ प्रशस्त बुद्धि सम्पन्न है। अर्थात् श्रीराम सद्बुद्धि सम्पन्न हैं।

(७) **नीति**– इस 'नीति' शब्द का अर्थ है 'मर्यादा'। नीतिमान् अर्थात् मर्यादावान्, मर्यादापालक हैं।

(८) **वाग्मी**– इसका अर्थ "प्रशस्त वाक् अस्य अस्तीति वाग्मी।" प्रशस्त=पवित्र। अर्थात् श्रीराम पवित्र वाणी (वेद) के प्रवर्तक हैं और वाणी का श्रेष्ठ प्रयोग करने में कुशल हैं।

(९) **श्रीमान्**– श्री शब्द का अर्थ 'विभूतिमान' है। अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक विभूतियों के वे स्वामी हैं।

(१०) **शत्रुनिबर्हण**:– मर्यादा के प्रतिकूल चलने वालों को वे नष्ट करने में समर्थ हैं।

भगवान राम के शील स्वभाव के अवयवों को तुलसीदास जी ने 'विनय-पत्रिका' में इस तरह गिनाया है।

"सुनि सीतापति सील सुभाऊ"

ये अवयव इस प्रकार है –"अक्रोध" (कभी किसी ने राम के चन्द्रमुख पर रिस की रेखा नहीं देखी), सौहार्द (खेल में जीतकर भी हार मान लेना) कृत को विस्मृत कर तनिक भी अविनय पर पश्चाताप करना (चरण के स्पर्श से अहिल्या का उद्धार), क्षमा और सहिष्णुता (परशुराम प्रसंग में)। औदार्य (कैकेयी के विषय में), कृतज्ञता (हनुमान् के प्रति), अदोषदर्शन एवं गुण-ग्राहकता (सुग्रीव और विभीषण के प्रसंग में), यशोलिप्सा में अनासक्ति तथा निरहंकारिता (भक्तोद्धार की प्रशंसा से मुँह छिपाना और सकृत प्रणाम की बार-बार चर्चा)।

मानस-कथा-प्रसंग में श्रीराम के गुणों से सभी प्रभावित होते पाये जाते हैं। दशरथजी गुरु वशिष्ठ जी से कहते हैं कि राम जिस प्रकार मुझको प्रिय हैं वैसे ही समस्त सेवकों, मंत्रियों नागरिकों और हमारे मित्र-शत्रु सभी को प्रिय हैं। मानों आपका (वशिष्ठजी का) आशीर्वाद शरीर धारण करके सुशोभित हो रहा है। महापुरुषों का सच्चा आशीर्वाद जिन्हें मिलता है वे लोकप्रिय एवं यशस्वी बनाने वाले सत्कर्मों में निरत रहते हैं –

सेवक सचिव सकल पुरवासी।
जे हमार अरि मित्र उदासी॥
सबहिं रामु प्रिय जेहि विधि मोही।
प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥

भगवान राम स्वयं तो गुणवान हैं ही, अपने स्वजनों को भी उसी मार्ग से परमानन्द प्राप्ति का विधान सुझाते हैं। राजतिलक के बाद उन्होंने सभी प्रजाजनों को इसी मार्ग का अवलम्बन लेने के लिए कहा–

परानन्द-ब्रह्मानन्द और कुछ नहीं आन्तरिक परिष्कार की वह स्थिति है जिसमें मनुष्य अपने अन्तरंग दोषों और बहिरंग से मुक्ति पाकर उत्कृष्ट आदर्शवादी सत्प्रवृत्तियों से अपने व्यक्तित्व को ओत-प्रोत कर लेता है। इसके लिए उसे किन दोषों का त्याग करना और किन गुणों का अपनाना आवश्यक है इसकी चर्चा रामायण में की गई है और उसी परिष्कृत स्थिति को परानन्द सन्दोह बताया गया है।

त्याग ने योग्य दुर्गुण इन चौपाइयों में इस प्रकार है-

(१) वैर (२) झगड़ना (३) एषणाएँ (४) भीरुता-कायरता (५) लिप्सा, तृष्णा, अभीष्ट उपलब्धि में आतुरता (६) स्वामित्व एवं प्रभुता का अहंकार (७) भाव शून्य निष्ठुर मन:स्थिति (८) पाप-कर्मों में अभिरुचि (९) आवेशग्रस्त उत्तेजित एवं क्रोधी प्रकृति (१०) आलस्य (११) अदूरदर्शिता (१२) कुसंग (१३) विषयाशक्ति (१४) प्रेम भावना का अभाव (१५) अवाँछनीय सम्भाषण (१६) ईश्वर विमुखता (१७) मद (१८) सम्बन्धित व्यक्तियों का अनावश्यक मोह (१९) उपलब्ध वस्तुओं का कृपणतापूर्ण लोभ (२०) दुराग्रह (२१) कुतर्कनाएँ।

इन दोषों का त्याग और इनके प्रतिपक्षी सद्गुणों का धारण यही वास्तविक ईश्वर भक्ति और आत्म कल्याण का - परमानन्द का राजमार्ग है।

वैर न बिग्रह आस न त्रासा।
सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारम्भ अनिकेत अमानी।
अनघ अरोष दक्ष विज्ञानी॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा ।
तृणसम विषय स्वर्ग अपवर्गा ॥
भगत पक्ष दृढ़ नहिं सठताई ।
दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥
मम गुनग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
जाकर सुख सो जानई, परानन्द संदोह ॥

यह सुझाव देते समय उन्होंने अपने प्रिय व्यक्ति की मर्यादा भी बताई है –

सोइ सेवक मम प्रियतम सोई ।
मम अनुसासन मानै जोई ॥

अस्तु, हमें प्रभुप्रिय बनना चाहिये, उनके गुणों का अनुसरण करके उनके बताये अनुशासन का पालन करना चाहिए । आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह श्रेष्ठ मार्ग है ।

गुणों की उपयोगिता और महत्ता

गुण मानव-जीवन की श्रेष्ठतम विभूतियों में गिने जाते हैं । भगवान राम अपनी लीलाओं के द्वारा अनुयायी बनने की प्रेरणा देते हैं । उनके सच्चे भक्त भी अपनी गुणशीलता, कर्म निष्ठा एवं सज्जनोचित विशेषताएँ बढ़ाते हैं । इसी चित्रण से रामायण का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है । 'लंकाकाण्ड' में जब रावण युद्ध के लिए रथ पर चढ़ कर पहुँचा और भगवान राम नंगे पैर खड़े थे, तो विभीषण को चिन्ता हुई । तब श्रीराम ने उन्हें आध्यात्मिक गुणों का महत्व समझाते हुए कहा कि विजय के मुख्य आधार ये गुण ही हैं –

सुनहु सखा कह कृपा निधाना ।
जेहि जय हाइ सौ स्यन्दन आना ॥
सौरज धारज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल विवेक में परहित घोरे ।
क्षमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजन सारथी सुजाना ।
विरति चर्म सन्तोष कृपाना ॥
दान परशु बुध सक्ति प्रचंडा ।
बर बिग्यान कठिन कोदण्डा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना ।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा ।
एहि सम विजय उगय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥

ऊपर वर्णित गुण भगवान राम के चरित्र में तथा उनके सेवकों सहयोगियों आदि में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । उन्हीं के कारण वे सब सफल होते चले गये । बनवास होने पर राम को तनिक भी कष्ट नहीं हुआ । कर्त्तव्य ने उन्हें जहाँ भी धकेला वहाँ वे प्रसन्नतापूर्वक, बिना मुख मलीन किये चल दिये । राजकुमार का ऐश्वर्य छोड़कर मुनि का वेष बनाने में उन्होंने तनिक भी बिलम्ब नहीं किया । माता-पिता को प्रणाम करके वे उस कर्त्तव्य पालन के लिए प्रमुदित होते हुए चल दिये –

राम तुरत मुनि वेष बनाई ।
चले जनक जननिहि शिर नाई ॥

भगवान की इसी निस्पृहता को मंगलदायिन कहते हुए 'अयोध्याकाण्ड' के प्रारम्भ में तुलसीदासजी वन्दना करते हुए कहते हैं -

प्रसन्नतां या न गता भिषेकस्तथा,
न मम्ले वनवास दुःखतः ।
मुखाम्बुजं श्री रघुनन्दनस्य,
में सदास्तु सा मंजुल मंगल प्रदा ॥

सज्जन सदुद्देश्य पूरा करने वाले श्रेष्ठ कामों को सहर्ष स्वीकार शिरोधार्य करते हैं और उस मार्ग में आने वाले कष्टों को ध्यान में न रखकर केवल उससे हित साधन की बात ही सोचते हैं । राम बनवास के कष्ट और राज्य-सुख छिनने की हानि की बात नहीं सोचते वरन् वन में मुनियों से भेंट-पिता की आज्ञा और माता की सहमति से ऐसा सुअवसर मिलने की बात को अपना सौभाग्य ही समझते हैं–

मुनिगन मिलनु विशेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहि में पितु आयसु, बहुरि, सम्मति जननी तोर ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान राम अपने दुःख को दुःख नहीं मानते, हर स्थिति में प्रसन्न रह लेते हैं, किन्तु दूसरों के दुःख से दुखी होते हैं। यह तथ्य हनुमान जी अशोक वाटिका में सीताजी से कहते हैं—

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता।
तब दुख दुखी सु कृपानिकेता॥

'हे माता! प्रभु श्रीराम छोटे भाई सहित सकुशल है, पर वे आपके दुःख से दुखी रहते हैं।''

अपने को छोटा और दूसरों को बड़ा बताने की सज्जनोचित रीति भगवान राम पालन करते हैं, और परशुरामजी से कहते हैं- ''हमारा तो छोटा-सा नाम राम है और आपका तो बड़ा नाम है - परशुराम। नाम और काम की दृष्टि से आप हमसे बड़े हैं-''

राम मात्र लघु नाम हमारा।
परशु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥

लोग नम्रता के नाम पर दीनता के शिकार हो जाते हैं। भगवान राम में दृढ़ता और नम्रता का आदर्श समन्वय था। जनकपुर में परशुराम - संवाद के अवसर पर राम ने शीलयुक्त विनम्र वचनों द्वारा ही परशुराम को निरस्त्र कर दिया था।

सभय विलोके लोक सब, देख जानकी भीरु।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री रघुबीरु॥

नाथ संभु धनु भंजनिहारा।
होइहि कोउ एक दास तुम्हारा॥

परशुराम जी उत्तेजित होकर गलत शब्द बोलने लगे तो रामानुज लक्ष्मण जी निडर भाव से उन्हें मर्यादा की सलाह देते हैं—

वीर व्रती तुम धीर अछोभा।
गारी देत न पावहु सोभा॥

जब भृगुनाथ लक्ष्मणजी पर अधिक क्रोधित होते हैं तो रामचन्द्रजी शालीनता से स्वयं को अपराधी कहकर उनका ध्यान खींच लेते हैं—

तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥

शौर्यपूर्ण शालीनता की सीमा प्रकट करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ।
मन मुसकाहिं राम सिरु नाएँ॥

उत्तेजना की अधिकता में परशुराम जी लक्ष्मण जी के साथ साथ श्रीरामजी को भी युद्ध के लिए ललकारने लगते हैं, तब भी वे अपनी बात निर्विकार भाव से कहते रहते हैं—

प्रभु सेवकहिं समरु कस, तजहुँ विप्रवर रोसु।
बेषु विलोकें कहेसि कछु, बालक हूँ नहिं दोसु॥

ब्राह्मणों विद्वानों का आदर करने की तथा निर्भय रहने की मर्यादा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यदि ब्राह्मण मान कर आपका निरादर हम करें तो फिर सिर झुकाने का कारण ही नहीं रह जाता।

जौं हम निदरहिं विप्र बदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तो अस को जग सुभट जेहि, भय वश नावहिं माथ॥

और भरी सभा में शीलयुक्त दृढ़ता के सामने उत्तेजनाग्रस्त अहंकार को झुकना ही पड़ा।

भगवान राम आगे चलकर अपने प्रेम व्यवहार मधुर वाणी, नम्रता, शिष्टता व्यवहार आदि गुणों से, असभ्य वनचरों को भी मोहित कर लेते हैं। भगवान राम जब चित्रकूट में वनवासियों से मिलते हैं तो उनके साथ पूरे स्नेह, सौजन्य का व्यवहार करते हैं। फलतः वे नतमस्तक हो जाते हैं और सन्तुष्ट, प्रसन्न होकर उनके गुणों की चर्चा कहते, सुनते अपने घर जाते हैं। 'अयोध्या काण्ड' में यह प्रसंग आने पर कहा गया है -

राम सकल बनचर तब तोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥
विदा किए सिर नाइ सिधाए।
प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥

अहित करने वाले की ग्लानि को धोने के लिए अपनी ओर से उसके साथ अधिक उदारता का व्यवहार किया जाय, अपनी ओर से उस अप्रिय घटना को भुलाकर सहज और शीलता का परिचय दिया जाय तो पुराने घावों को सहज ही भरा जा सकता है। इस तथ्य के अनुसार भगवान राम चित्रकूट में अन्य माताओं की अपेक्षा कैकई से सर्वप्रथम मिलते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रथम राम भेंटी कैकेई ।
सरल सुभाए भगति मति भेई ॥

समाज में श्रेष्ठ आदर्श उपस्थिति करने वालों को वे सर्वाधिक सम्मान देते हैं। कृतज्ञता और प्रत्युपकार उनका सहज स्वभाव है। जटायु की मृतदेह का अन्त्येष्टि कर्म पिता की तरह वे स्वयं अपने हाथों करते हैं –

अविरल भगति माँगि वर, गीध गयउ निज धाम ।
तेहि की क्रिया यथोचित निज कर कीन्ह राम ॥

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम हनुमान जैसे निस्पृह एकनिष्ठ सेवक के द्वारा की गयी सेवा के प्रति अपने को कृतज्ञ अनुभव करते हैं और कहते हैं कि तेरे उपकार का बदला मैं किस प्रकार दे पाऊँगा –

सुनु कपि तोहि समान उपकारी ।
नहिं कोउ सुर नर मुनि तन धारी ॥
प्रति उपकार करौं का तोरा ।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा ॥
सुनु सुत तोहि मैं नाहीं ।
देखेऊँ करि बिचारि मन माँहीं ॥

शक्तिवाण लगने से लक्ष्मण मूर्च्छित हैं। इस समय श्रीराम उनकी सेवाओं को याद करके रो रहे हैं – हे भाई ! तुम्हारा स्वभाव कितना मृदुल रहा। तुम मुझे कभी दुःखी देखना नहीं चाहते थे। मेरे लिए तुमने माता-पिता और घर का त्याग कर मेरे साथ वन का दुःख वर्षा, गर्मी और ठंड को सहन किया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ ।
बन्धु सदा तब मृदुल सुभाऊ ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता ।
सहेहु बिपिन हिम आतप वाता ॥

शालीनता के साथ उनमें अदम्य आत्मविश्वास भी है। मरते हुए जटायु से कहते हैं कि वे परलोक में जाकर उनके पिता दशरथ से सियाहरण का समाचार न कहें। यह सुनकर वे दुःखी होंगे। यदि मेरा नाम राम है तो यह विश्वास पूर्वक कहता हूँ कि रावण कुल सहित मर कर परलोक जायेगा और सियाहरण तथा उसके परिणाम का विवरण अपने मुँह से दशरथजी को सुनायेगा। यह है भगवान का आत्मविश्वास।

सीताहरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दसानन आइ ॥

खरदूषण की विशाल सेना से लोहा लेने अकेले खड़े हो जाते हैं। सीताजी के साथ लक्ष्मणजी को सुरक्षित स्थान पर भेज देते हैं। राक्षसों के दूत उन्हें भयभीत करने लिए संदेश लेकर आते हैं तो उत्तर देते हैं -

हम क्षत्री मृगया बन करहीं ।
तुम सम खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवान देख नहीं डरहीं ।
एक बार कालहु सन लरहीं ॥

अपने पर ही नहीं अपने भाई के पराक्रम पर भी उन्हें पूरा विश्वास है। 'लंका काण्ड' में सुग्रीव द्वारा शंका किये जाने पर वे कहते हैं –

जग महँ सखा निशाचर जेते ।
लछिमन हनहिं निमिष महँ तेते ॥

यही आत्मविश्वास उन्हें निडरता और सफलता प्रदान करता रहता था।

सिया स्वयंवर के समय उपस्थित कितने ही महाबली इस लिए हार गये कि वे राम की प्रतिभा देख कर सहम गये और हिम्मत छोड़ बैठे। इसके विपरीत राम अपने शौर्य, साहस और तेज को स्थिर रखते हुए पुरुषार्थ करते हैं और सहज ही शिवधनुष को तोड़कर रख देते हैं। जबकि सुमेर पर्वत उठाने वाला वाणासुर और कैलाश उठाने वाला रावण पराभव अनुभव करके एक कोने में जा बैठते हैं। श्रीराम का पराक्रम बखानते हुए जनकजी के दूत राजा दशरथ जी से कहते हैं-

सकइ उठाइ सुरासुर मेख ।
सोइ हिय हारि गयऊ करि फेख ॥
जेहि कौतुक सिव सैल उठावा ।
सोउ तेहि सभा पराभव पावा ॥
तहाँ राम रघुवंश मनि, सुनिय महा महिपाल ।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पंकज नाल ॥

राम की फुर्ती देखते ही बनती है। वे अपने काम को कितने मनोयोग के साथ तत्परतापूर्वक करते हैं कि उनमें तनिक भी अनावश्यक विलम्ब नहीं होता और देर से हो सकने वाला काम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जल्दी ही निपट जाता है । धनुष उठाते, तोड़ते उन्होंने ऐसी ही फुर्ती दिखाई –

लेत चढ़ावत खैचत गाढ़े ।
काहुँ न लखा देख सबु ठाड़े ॥

बल का प्रदर्शन भी बल-प्रयोग के प्रयोजन को बहुत हद तक हल कर देता है । लोग बलवान पर विश्वास करते हैं और उसी से प्रीति करने को भी तैयार होते हैं । यह तथ्य वहाँ सामने आता है जहाँ सुग्रीव राम के बल की परीक्षा लेकर तब उनका सहयोगी बनना चाहता है । वह दुंदुभि राक्षस की अस्थियों के ढेर एवं ताड़ वृक्षों को दिखाता है और राम से उन्हें बेधन करके अपने बल का प्रमाण देने के लिए कहता है । राम उस परीक्षा में सफल होते हैं और सुग्रीव उनका अनुयायी, सहयोगी बन जाता है –

दुंदुभि अस्थि ताल देखराए ।
बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए ॥
देखि अमित बल बांढ़ी प्रीती ।
बालि बधव इन्ह भइ परतीती ॥

सौन्दर्य की वास्तविक गहराई छल रहित सरल स्वभाव में हैं । राम उस सुन्दरता की हृदय से सराहना करते हैं – मुग्ध हो जाते हैं और महर्षि विश्वामित्र से अपने मन की बात कहते हैं । आन्तरिक द्वन्द्व में भी वे वीर सिद्ध होते हैं । छल उन्हें छू नहीं पाता –

हृदय सराहत सीय लोनाई ।
गुर समीप गवने दोउ भाई ॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं ।
सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं ॥

जो सद्गुणी है वे ही सच्चे राम-भक्त हैं । अथवा जो राम भक्त है उन्हें सद्गुणी होना ही चाहिये । रामायण में वर्णित सभी भगवान के भक्तों का चरित्र ऐसा ही है । उसी से प्रभावित होकर भगवान राम उन्हें प्राणाधिक प्यार करते हैं । 'किष्किन्धाकाण्ड' में वे हनुमानजी के गुणों को परख लेते हैं तथा उन्हें भाई लक्ष्मण से भी अधिक प्रिय मानते हैं–

सुनु कपि जिय मानिस जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥

विभीषण के सद्गुणों से प्रभावित होकर राम उसे हृदय से लगते हैं कि तुम सद्गुणों के कारण मुझे प्राणप्रिय हो –

सुनु लंकेश सकल गुन तोरे।
ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे॥

स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय ही हमारी नीति होनी चाहिये । मात्र अपने ही स्वार्थ से इतना लिप्त नहीं होना चाहिए जिससे दूसरे का अहित होने लगे । भगवान राम अंगद को रावण के पास संदेश लेकर जाने को कहते हैं और समझाते हैं कि भले ही रावण शत्रु है, पर तुम इस प्रकार की वार्ता करना कि जिसमें उसका भी हित होता हो । यहाँ शत्रु का भी अहित न चाहने का प्रसंग है –

काजु हमार तासु हित होई ।
रिपु सन करेहु बतकही सोई ॥

श्रीराम भरत से कहते हैं – जो दूसरों का आदर करता है,पर दूसरों से मान की इच्छा नहीं रखता वह मुझे प्राणों से भी प्यारा है –

सबहिं मानप्रद आपु अमानी ।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥

भरतजी भी सम्मान देने और कृतज्ञता व्यक्त करने में श्रीराम से पीछे नहीं हैं ।

चौदह वर्ष बीतने पर राम अयोध्या लौटने वाले हैं । इसका संदेश पहुँचाने के लिए हनुमान एक दिन पहले अयोध्या पहुँचते हैं । भरत उनसे मिलते हैं और इतनी लम्बी यात्रा करके यह सूचना देने का कष्ट उठाने के लिए वे हनुमान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहते हैं –

नाहिन तात उरिन मैं तोही ।
अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥

भरत लाल जी की निस्पृहता तो लोक विख्यात है । अयोध्या का राज्य विस्तार बहुत था – इन्द्रलोक जैसा । वहाँ धन सम्पत्ति भी कुबेर जैसी थी । इस सबके बीच रहते हुए भी भरत पूर्णतया राग रहित बने रहे जैसे कि चम्पक-वाटिका में भौरा निर्लिप्त-स्वामित्व के मद, अहंकार से दूर रहता है । उसी तरह भरत अयोध्या में मात्र एक साधारण नागरिक की तरह रहते थे –

अवध राज सुर राजु सिहाई ।
दसरथ धन सुनु धनद लजाई ॥
सोई पुर बसत भरत बिनु रागा ।
चंचरीक जिमि चम्पक बागा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम-लक्ष्मण तो वन में रहते हैं, परन्तु भरत भी घर में रह कर शरीर को कष्ट देकर तप करते हैं। भरत के त्याग-तपस्या दोनों सराहना करने के योग्य हैं –

लखन राम सिय कानन बसहीं ।
भरत भवन बसि तप तनु कसहीं ।।
दोऊ दिसि समुझि कहत सब लोगू ।
सब विधि भरत सराहन जोगू ।।

अपने श्रेष्ठतम कर्त्तव्य का चुनाव करने की क्षमता के कारण भरत जी को हंस की उपमा दी गई है। हंस के समान उन्होंने अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन करके राम-सेवा रूपी क्षीर ग्रहण करके माता कैकेई की कुटिलता रूपी नीर का त्याग कर दिया। गुण और दोष को अलग-अलग करके गुण का ग्रहण और दोष का त्याग करने वाले भरत थे।

भरतजी के गुणों के कारण तुलसीदास जी ने उन्हें प्रथम वन्दनीय माना है। भरत अपने नियमों और व्रतों पर अत्यन्त सुदृढ़ हैं। न अनियमित होते हैं, न प्रतिज्ञा तोड़ते हैं, न मर्यादा का उल्लंघन करते हैं। जिसका मन भगवत-परायण है उसको वासना तृष्णा में भटकाने की आवश्यकता उसी प्रकार नहीं होती जैसे कि भौंरा कमल पुष्पों को छोड़कर मलीन पदार्थों की ओर मन नहीं दौड़ाता। वन्दना प्रसंग में तुलसीदासजी लिखते हैं –

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना ।
जासु नेम व्रत जाइ न वरना ।।
राम चरन पंकज मन जासू ।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ।।

प्रभु के साथ काम करने वालों के भी यही ढंग हैं। काम को खेल समझकर करने से बड़े-बड़े कठिन प्रयोजन सहज सुलभ हो जाते हैं। जब कि छोटे काम को भी बहुत बड़ा, भयानक और कष्टसाध्य समझकर करने से हिम्मत टूट जाती है और वह बनाये नहीं बनता है। सेनापति जामवन्त रीछ वानरों में उत्साह भरते हैं और भगवान का स्मरण करते हुए खेल-खेल में वृक्ष और पर्वत उखाड़ लाने जैसे कठिन कार्य को सहज बना कर उसमें संलग्न करते हैं –

रामचरन पकज उर धरहू ।
कौतुक एक भालु कपि करहू ।।
धावहु मर्कट विकट बरुथा ।
आनहु विटप गिरन्ह के जूथा ।।

और बन्दरों ने समुद्र बाँधने जैसा कार्य उसी ढंग से कर भी दिखाया। वानर भालू बड़े-बड़े पर्वत और पेड़ खेल-खेल में फुर्ती के साथ उठा लेते थे और नल-नील उन्हें गेंद के समान ले लेते हैं। इस प्रकार सेतु निर्माण का कार्य तेजी से पूरा हो गया –

अति उतंग गिरि पादप, लीलहिं लेहिं उठाई ।
आनि देहि नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाइ ।।

वानरों में तल्लीन होकर कार्य करने का गुण स्पष्ट देखने को मिलता है। सीताजी की खोज में वे अपने शरीर की सुधि भूल गये -

चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह ।
रामकाज लयलीन मन, बिसरा तन कर छोह ।।

रावण का दरबार अपने वैभव के लिए सर्व प्रसिद्ध था। इन्द्र वरुण आदि समस्त देवगण वहां हाथ जोड़े मस्तक नीचा लिये खड़े रहते थे। लेकिन बन्दी वेष में उसी दरबार में पहुँचने पर भी हनुमान निर्भय निशंक ही रहते हैं –

दसमुख सभा दीखि कपि जाई ।
कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ।।
देखि प्रताप न कपि मन संका ।
जिमि अहिगन महुँ गरुड़ असंका ।।

अंगद भी रावण की सभा में पहुँचकर अपनी निर्भीकता और अदम्य साहस का परिचय देते हैं और कहते है कि मै तेरे दाँत तोड़ने में सर्वथा समर्थ हूँ पर राम के अनुशासन में बँधा होने के कारण वैसा करता नहीं हूँ –

मैं तब दसन तोरिबे लायक ।
आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ।।

रावण भगवान राम तथा लक्ष्मण की निन्दा करने लगा तो अंगद को सहन न हो सका। उसने अपने पौरुष की एक झलक दिखा ही दी –

जब तेहि कीन्ह राम कै निन्दा ।
क्रोधवन्त अति भयउ कपिन्दा ।।
कटकटान कपि कुंजर भारी ।
दुहु भुजु दण्ड तमकि महि मारी ।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डोलत धरनि सभासद खसे ।
चलें भाजि भय मारुत ग्रसे ॥

उसी प्रसंग में उन्होंने अपना पैर जमाकर रावण की सभा के योद्धाओं का अभिमान तोड़ डाला ।

भूमि न छाँड़त कपिचरन, देखत रिपु मद भाग ।
कोटि विघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥

शत्रु दरबार में राम की ओर से पराजित होने पर सीता को हार जाने जैसा संकल्प करके पैर जमा देना उस काल के भारत-सन्तानों की वीरता का सबसे बड़ा प्रमाण है, जबकि उस दरबार में मेघनाद जैसे सैकड़ों योद्धा उपस्थित थे जिन्होंने देवराज इन्द्र को पराजित करके इन्द्रजीत की पदवी धारण की थी —

हनुमान की रामभक्ति प्रसिद्ध है । यह भी प्रख्यात है कि राम उन्हें प्राणाधिक प्यार करते थे और जब भी अवसर आता उनकी भूरि-भूरि सराहना करते थे । भगवान के हृदय में हनुमान ने जो स्थान प्राप्त किया था, वह भजन-कीर्तन के आधार पर नहीं वरन् उनके सद्गुणों और प्रभु प्रयोजनों के लिए किये त्याग और साहस भरे कार्यों पर ही अवलम्बित था । इसी से तुलसीदास जी हनुमान जी की वन्दना करते हैं कि भगवान ने स्वयं अपने श्रीमुख से उनके यश का वर्णन किया है —

महावीर विनवउँ हनुमाना ।
राम जासु जस आपु बखाना ॥

पवनपुत्र इतने अभिमानहीन है कि समुद्र लाँघने के प्रसंग में अपनी क्षमता स्वयं नहीं कहते हैं, किन्तु जब जामवन्त जी कहते हैं कि राम कार्य के लिए उन्हें आगे आना चाहिए तो क्षण भर भी देर न की । आत्मबोध होते ही उनका व्यक्तित्व सामान्य न रह कर असामान्य पर्वत जैसा ऊंचा और विशाल बन गया —

राम काज लगि तब अवतारा ।
सुनतहि भयउ पर्वता कारा ॥

मैनाक पर्वत थके हुए हनुमान को कार्यरत देखकर कुछ समय अपने ऊपर विश्राम करने का अनुरोध करता है । पर हनुमान जी को राम काज कीन्हें बिना चैन कहाँ ? वे विश्राम में तनिक भी समय नहीं गंवाना चाहते और एक भी क्षण अन्य किसी काम में लगाये बिना भगवान के कार्य में निरत रहना चाहते हैं । मैनाक पर्वत के अनुरोध के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसका बार-बार अभिनन्दन करके हनुमान अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं —

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिना, मोहि कहाँ विश्राम ॥

हनुमानजी में आत्म विश्वास की कमी नहीं । अपने बल का परिचय देते हुए जामवन्त को कहते हैं —

सहित सहाय रावनहिं मारी ।
आनहुँ इहां त्रिकूट उपारी ॥

लंका-युद्ध में हनुमान मेघनाद को बार-बार चुनौती देते हैं, पर वही उनकी शक्ति का मर्म जानता है, अतएव उनके पास नहीं आता दूर-दूर ही रहता है —

बार बार पचार हनुमाना ।
निकट न आव मरम सो जाना ॥

उच्च उद्देश्यों से प्रेरित व्यक्ति असंभव लगने वाले कामों में भी जुट जाते हैं । ईश्वर पर विश्वास रख कर सदुद्देश्य के लिए पूरी शक्ति के साथ प्रयत्न करते हैं और अन्ततः सफल होकर ही रहते हैं । लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर हनुमान को संजीवनी बूटी लाने भेजा गया । वे औषधि को पहँचान न सके और पूरा पर्वत ही उखाड़ कर ले आये —

रामचरन सरसिज उर राखी ।
चला प्रभंजन सुत बल भाषी ॥
देखा शैल न औषधि चीन्हा ।
सहसा कपि उपार गिरि लीन्हा ॥

रामायण में उनके बल को अतुलित कहा गया है । भक्त के समान और किसी में बल नहीं होता । लोकोक्ति में भी सत्यनिष्ठ में हजार हाथी के बराबर बल कहा जाता है । हनुमान के बल की तुलना और किसी से नहीं की जा सकती, क्योंकि उनकी ईश्वरनिष्ठा अनन्य थी । तुलसीदास जी ने हनुमान जी की वन्दना करते हुए उनमें छः विशेषताओं का अभिनन्दन किया है — (१) अतुलित बल (२) सुदृढ़ देह (३) असुरता के दाँततोड़नें में समर्थ (४) ज्ञान वान-विद्यावान (५) सद्गुणों के भण्डार (६) लोक-नायक की विशेषताओं से सम्पन्न । हनुमान के यह गुण वस्तुतः प्रत्येक सच्चे ईश्वरभक्त को अपनाने पड़ते है —

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतुलित बल धामं हेम शैलाभ देहं ।
दनुज बन कृशानु ज्ञानिनग्रगण्यम् ॥
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं ।
रघुवर प्रिय भक्तं वातजातं नमामि ॥

भगवत् भक्तों को मात्र सज्जन, सद्गुणी होना ही पर्याप्त नहीं उन्हें बल, बुद्धि, कौशल चातुर्य जैसे लौकिक गुणों से भी सम्पन्न होना चाहिए । सुदृढ़ और सुविकसित व्यक्तित्व से ही भगवान का अधिक मात्रा में और अधिक अच्छा काम किया जा सकता है, यह मानते हुए ईश्वर परायण लोग क्षमताएँ योग्यताएँ एवं विशेषताएँ भी बढ़ाते चलते हैं । यह सर्वतोमुखी बलवर्धन भी भक्ति का ही एक स्वरूप है । इस शक्ति सम्पादन की तप साधना से भगवान प्रसन्न होते हैं और उस समर्थ भक्त को अधिक उत्तरदायित्व सोंपते हैं । हनुमान के बल एवं बुद्धि कौशल को देखते हुए राम ने उन्हें अधिक काम सोंपे और अपना प्रियपात्र माना ।

तृष्णा रूपी सुरसा मुँह फाड़ती है । उसकी पूर्ति के लिए हनुमान अपना आकार बढ़ाते हैं । साधन जुटाते हैं । पर इस क्रम से पार नहीं पड़ता । आग में घी डालने की तरह तृष्णा रूपी सुरसा का मुँह फटता ही जाता है । अन्त में हनुमान अपना छोटा रूप बनाकर संतोष और अपरिग्रह का आश्रय लेकर, उससे अपना पिण्ड छुड़ाते हैं —

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा ।
तासु दुगुन कपि रूप दिखावा ॥
सत योजन तेहि आनन कीन्हा ।
अति लघु रूप पवन सुत लीन्हा ॥
वदन पैठि पुनि बाहरि आवा ।
माँगी विदा ताहि सिरु नावा ॥

इस चतुरता पर प्रसन्न होकर सुरसा अपना प्रयोजन व्यक्त करती है और हनुमान को आशीर्वाद देकर विदा करती है —

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा ।
बुधि बल मरम तोर मैं पावा ॥
रामकाज सब करिहहुँ, तुम बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हरषि चले हनुमान ॥

सीताजी अशोक वाटिका में हनुमान के बलकौशल को देखकर प्रसन्न होती हैं —

देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुवर चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

सीताजी की कसौटी पर वे खरे उतरते हैं । वे समझ लेती हैं कि अपने गुणों के कारण ही ये भगवान राम के प्रिय बने हैं । अतः स्वयं भी आशीर्वाद देती हैं —

आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना ।
होहु तात बल बुद्धि निधाना ॥

ऐसी ही चतुरता हनुमान ने उस समय भी प्रकट की जब वे लंका में सीता का पता लगाने छिप कर गये थे । यहाँ सदुद्देश्य के लिए छद्म आचरण का भी समर्थन है —

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना ।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥

लंका में न वे डरे, न उत्तेजित हुए और न विचलित । हर जगह सटीक निर्णय लेते चले गये ।

भगवत् परायणता में अन्धाधुन्ध भावुकता और अविवेक पूर्वक भावोन्माद में कुछ भी कर गुजरने और पीछे भगवान को दोष देने वाली मूर्खता के लिए कोई स्थान नहीं है हर कार्य को तर्क, विवेक के आधार पर देखना, परखना और स्थिति के अनुरूप कदम उठाना हर किसी के लिए — भक्त के लिए भी आवश्यक है । लंका की परिस्थितियों को हनुमान वहाँ जाकर उसी सूक्ष्म सतर्कता के साथ देख परख रहे हैं —

मन में तर्क करैं कपि लागा ।
ताही समय विभीषण जागा ॥

अपनी बुद्धिमानी तथा नीति निपुणता से उन्होंने शत्रु के गढ़ में भी मित्र ढूँढ़ कर प्रभु कार्य सिद्ध किया ।

उनकी ऐसी ही नीति निपुणता का परिचय 'किष्किन्धा काण्ड' में मिलता है जब वे सुग्रीव को रामकार्य भूलने का स्मरण कराते हैं । कठोर हृदय वालों को सन्मार्ग पर लाने के लिए उन्हें डरना भी एक नीति है । भगवान राम लक्ष्मण की इस बात से सहमत हो जाते हैं कि अपना वचन और कर्तव्य भूल कर प्रमाद में फँसे हुए सुग्रीव को डरा कर सन्मार्ग पर लाया जाय । जहाँ लक्ष्मण धमकी से सुग्रीव को डराते हैं वहाँ हनुमान वार्तालाप में ही उसे विभिन्न पक्षों से समझाकर भयभीत कर देते हैं —

निकट जाइ चरनन सिरु नावा ।
चारिहु विधि कहिं तेहि समुझावा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनि सुग्रीव परम भय माना।
विषय मोर हर लीन्हेउ ज्ञाना॥

हनुमान सेवक का आदर्श स्वरूप है। स्वामी के कार्य में उन्हें तनिक भी आलस्य नहीं है। वे हमेशा कार्य करने के लिए तत्पर बने रहते हैं। समुद्र को लाँघना संजीवनी लाना आदि कार्य ऐसे ही हैं सेवक में मान-अपमान का भाव भी नहीं होना चाहिए। अपने मान के कारण स्वामी का कार्य बिगड़ जाय, यह उसका कर्त्तव्य नहीं, लंका में मेघनाद द्वारा बाँधे जाने पर रावण से कहते हैं –

मोहि न कछु बाँधे करि लाजा।
कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा॥

रावण के दरबार में पहुँच कर वे सबके सामने अपना मत प्रकट कर सके, इसलिए पकड़े जाने की बदनामी से भी उन्हें झिझक नहीं हुई।

तब वे कूद-फाँद कर नगर में आग लगा रहे हैं। सारा नगर धू-धू कर जल उठता है और हनुमान उलटते-पलटते समुद्र में कूद पड़ते हैं। फिर अपनी चतुराई से लंका जला कर स्वयं साफ बच कर निकल आते हैं –

जरइ नगर भा लोग बिहाला।
झपट लपट बहु कोटि कराला॥
जारा नगर निमिष एक माहीं।
एक विभीषन कर गृह नाहीं॥
उलट-पलट लंका सब जारी।
कूदि पड़ा पुनि सिन्धु मँझारी॥

तुलसीदास जी भगवान के गुणों को जीवन में स्थान देने वालों को विशुद्ध विज्ञान रूप मानते हैं। हनुमान जी ने क्रिया द्वारा और वाल्मीकि जी ने चिन्तन लोकशिक्षण द्वारा भगवान के गुणों का गौरवमय स्वरूप विकसित किया, इसीलिए उनकी वन्दना में उन्होंने लिखा है –

सीताराम गुण ग्राम, पुण्यारण्य विहारिणौ।
वन्दौ विशुद्ध विज्ञानौ, कवीश्वरः कपीश्वरौ॥

भगवान की भक्ति करने वालों को भी इसी प्रकार गुणों में अग्रणी बनना चाहिये।

धैर्य- धैर्य एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक गुण है। सब साधन होने पर भी धैर्य खो जाने पर लोग भयंकर स्थिति में फँस कर रह जाते हैं, जबकि धैर्य सम्पन्न व्यक्ति सामान्य साधनों से भी उन परिस्थितियों को पार कर दिखाते हैं। रामचरित-मानस में धैर्य के स्वरूप और महत्व को दर्शाने वाले प्रसंग भरे पड़े हैं –

विवेकियों में अग्रणी को गोस्वामी जी 'अयोध्याकाण्ड' में श्रीराम वन गमन एवं दशरथ व्याकुल उत्पन्न संयुक्त संकट के समय कौशल्या जी रामजी से कहतीं हैं कि धैर्य बनाये रखो तो पार हो जाओगे, अन्यथा सारा परिवार डूब जायेगा

धीरज धरिअ तो पाइअ पारु।
नातरु डूबइ सकल खँभारु॥

चित्रकूट में राम भरत के आग्रह में कुछ निर्णय नहीं हो पा रहा है। जल्दबाजी में तुरन्त ही कुछ निर्णय करने की अपेक्षा हर दृष्टि से उस प्रश्न पर गम्भीर विचार करना आवश्यक समझा गया और यह सोचा कि जहाँ एक बुद्धि काम न करती हो वहाँ कई विज्ञ व्यक्तियों को मिलकर विचार विमर्श करना चाहिए और तब किसी निर्णय पर पहुँचना चाहिये। यह कार्य उतावली में नहीं वरन् धैर्यपूर्ण मनः स्थिति में ही हो सकता है। अस्तु, गुरु बसिष्ठ ने यही उचित समझा कि कर्मयोगी जनक के पास चलकर इस समस्या पर विचार करें। राम के चले जाने पर वसिष्ठ जनक के पास जाने के लिए प्रस्थान करते हैं –

करि प्रनाम तब राम सिधाए।
रिषि धरि धीर जनक पहँ आये॥

जनक भी उतावली में अपना कोई मत व्यक्त नहीं करते वरन् राम, भरत आदि से पूरी बात जान कर-गम्भीरता पूर्वक वस्तुस्थिति जानने और तथ्यों के अनुरूप किसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए भरत के पास अपने अन्य साथी विचारकों के साथ चलते हैं ताकि जहाँ एक की बुद्धि काम न करती हो वहाँ कई मिलकर कोई निर्णय कर सकें। यह विद्वत्-परिषद की आवश्यकता और उपयोगिता का प्रतिपादन है, साथ ही धैर्य के सहारे ही वस्तुस्थिति समझ सकने की यथार्थता का समर्थन भी –

समय समुझि धरि धीरज राजा।
चले भरत पहि सहित समाजा॥

भरत बड़ी आशा के साथ राम को वापिस लाने की योजना बनाकर गये थे। पर जब राम के रुख के कारण उन्हें निराशा हाथ लगी तो भी विचलित नहीं हुए। वरन् स्थिति के अनुरूप अपने को बदलते हुए प्रेमपूर्वक उठे और अपने विशेष धैर्य का परिचय दिया –

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरत सुजान राम रुख देखी ।
उठि सप्रेम धरि धीर विसेषी ॥

सरल स्वभाव वाली राम की माता धीरज धारण करके बोली– राज्य देने को कह कर वन दिया इसका मुझे लेश मात्र दु:ख नहीं, लेकिन तुम्हारे बिना भरत को, राजा को, प्रजा को भीषण कष्ट होगा, इस कारण में दु:खी हो रही हूँ । यहाँ अपनी विपत्ति का साहस और धैर्यपर्वूक सामना करने एवं दूसरों के दु:खों की चिन्ता करने की उच्च मन:स्थिति का दिग्दर्शन है–

सरल सुभाउ राम महतारी ।
बोली वचन धीर धरि भारी ॥
राजु देन कहि दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि, प्रजहि प्रचण्ड कलेसु ॥

माता कौशल्या का धैर्य लोप नहीं हुआ था, इसलिए उन्होंने मरणासन्न दशरथ को समयोचित सीख दी –

कौसल्या नृप दीख मलाना ।
रविकुल रवि अंथयउ जियँ जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी ।
बोली बचन समय अनुसारी ॥

जो अपने मन को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कसते हैं वही धीर धुरन्धर बन पाते हैं । मुनिगण, गुरु वशिष्ठ और विदेहराज जनक इसी कोटि में आते हैं –

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से ।
ग्यान अनल मन कसे कनक से ॥

सुमन्त भी इस कठिन समय में धैर्य धारण करके मधुरवाणी से महाराज को समझाते हैं और उन्हें उनके ज्ञान विवेकपूर्ण पाण्डित्य की याद दिलाते हैं –

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी ।
महाराज तुम पंडित ग्यानी ॥

सुमंत जी राजा दशरथ को समझाते हैं कि सुख में फूल जान और दु:ख में रोना तो जड़ बुद्धि वाले करते हैं, परन्तु विवेकशील पुरुष विवेक द्वारा संकट के समय धैर्य धारण करते हैं–

सुख हरषहिं जड़ दु:ख बिलखाहीं ।
दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु विवेक विचारी ।
छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥

शोकाकुल भरत को गुरु उद्बोधन करते हैं कि तात धीरज धारण करो और वह करने में लग जाओं जो आज करना है । गुरु के वचन सुनकर भरत उठे और जो करना था उसे करने की साज-सज्जा में लग गये–

तात हृदयँ धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आज ।
उठे भरत गुर बचन सुनि, करन कहेउ सब काज ॥

सत्कार्य के लिए अविचल धैर्य और प्रगाढ़ संकल्प शक्ति का होना आवश्यक है । उतावले और चंचल-मति मनुष्य कोई बड़ा लक्ष्य पूरा नहीं कर सकते । पार्वती जी शिवजी के साथ अपने विवाह-प्रण की चर्चा करती हुई कहती हैं कि इसके लिए मैं करोड़ जन्म तक भी कुमारी रह कर प्रयत्न करती रहूँगी –

कोटि जन्म लगि रगर हमारी ।
वरउं सम्भु नतु रहउँ कुमारी ॥

सेवा: – अध्यात्म मार्ग में सेवा परायणता का भी अपना विशेष महत्व है । सच्ची सेवा आत्म-परिष्कार तथा आत्मविकास के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होती है । मानसकार ने सेवा और भक्ति को पर्यायवाची माना है तथा उसके सम्बन्ध में बड़ी सटीक और प्रखर प्रेरणा स्थान-स्थान पर दी है ।

सुमित्रा लक्ष्मण को राम की सेवा करने और मनोविकारों से दूर रहने की शिक्षा देते हुए आशीर्वाद देकर विदा करती हैं –

राग रोष इरषा मद मोहू ।
जनि सपनेहू इन्ह के बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई ।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं ।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान कहते हैं कि– हे हनुमान ! यह जड़-चेतन सारा संसार भगवान का विराट रूप है और मेरा कर्तव्य दूसरों की सेवा करना है। जिसकी ऐसी अविचल मति है वही मेरा अनन्य भक्त है –

सो अनन्य जाके, अस मति न टरइ हनुमन्त ।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वांमि भगवंत ॥

"विनय-पत्रिका" में सेवा का महत्व बतलाते हुए लिखा है कि हनुमान जी आपकी सेवा करते-करते आपके समान ही हो गये। उनका नाम लेने से आप प्रसन्न होते हैं –

सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिये नाम राम सबको सुढर ढरत ॥

'भक्ति' शब्द व्याकरण के अनुसार 'भज् सेवायां' धातु से बना है। भक्त वह है जिसमें सेवा भावना भरी पड़ी है। भक्ति का प्रयोग के अर्थ में होता है। सच्चा प्रेम जहाँ होगा वहाँ लेने को नहीं, देने को ही मन उमड़ेगा। प्रीति की परम्परा यही है।

भगवान के भक्त को भगवान का काम करना पड़ता है। भगवन का काम अर्थात् उनके इस विश्व-उद्यान को अधिक सुन्दर, सुरभित, सुविकसित एवं सुसंस्कृत बनाना। लोक मंगल के लिए की गई निःस्वार्थ सेवा साधना को निश्चित रूप से ईश्वर पूजा माना जा सकता है। भगवान का भक्त प्रेम करना जानता है। वह आत्मा को, परमात्मा को, जीवन लक्ष्य को, धर्म-कर्तव्य को, समाज संस्कृति को प्यार करता है। अस्तु, उसका अन्तःकरण इन सबकी सेवा साधना के लिए हुलसता है। सेवा की आकांक्षा में प्रेम की प्रत्यक्ष परिणित है। ईश्वरभक्त विश्व-मानव की सेवा साधना के बिना सार्थक नहीं हो सकता विश्व-कल्याण के लिए उसे अधिकाधिक सेवा-परक सत्कर्मों में प्रवृत्त रहना पड़ता है। सेवा-धर्म अपना कर लोक सेवक के रूप में अपनी गति विधियों का जिसने निर्माण, निर्धारण किया वस्तुतः उसकी भक्ति सार्थक एवं सराहनीय है। अध्यात्म मार्ग में आन्तरिक परिष्कार के लिए काकभुशुण्डिजी ऐसी ही भक्ति का समर्थन करते हुए कहते हैं –

प्रेम भगति जल बिनु खगराई ।
अभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई ॥

भगवान को ऐसे सेवक-भक्त अत्यन्त प्रिय हैं। 'अयोध्याकाण्ड' में आता है–

"रामहिं सेवक परम पिआरा।"

राम काकभुशुण्डि जी से 'उत्तरकाण्ड' में कहते हैं–

पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहों ।
मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥

स्वयं भगवान राम उत्तरकाण्ड में अपने भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं –

सब मम प्रिय सब मम उपजाये ।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ॥
तिन्ह महँ द्विज द्विज में श्रुतिधारी ।
तिन महँ निगम धरम अनुसारी ॥
तिन महँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी ।
ज्ञानिहुँ ते प्रिय अति विज्ञानी ॥

भक्त की मर्यादा बताई गई है कि उसे अपने सेवक होने का स्मरण सतत बने रहना चाहिये –

अस अभिमान जाइ जनि भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

भरतजी उसी भाव का स्मरण करते हुए हनुमानजी से 'उत्तरकाण्ड' में पूछते हैं –

कहु कपि कबहुँ कृपालु गुसाईं ।
सुमिरहिं मोहि दास की नाईं ॥

गरुड़जी को काकभुशुण्डिजी यहीं मर्म समझाते हुए कहते हैं –

सेवक सेव्य भाव बिनु, भवन तरिअ उरगारि।

स्वयं भगवान राम अपने मुख से कहते हैं –

सबके प्रिय सेवक यह नीती ।
मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥
भगतिवन्त अति नीचहुँ प्रानी ।
मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी ॥
सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रिय कहु काहिन न लाग ।

हनुमानजी विभीषण को प्रभु के प्रेम की रीति बताते हुए कहते हैं कि वे सदैव अपने सेवकों से प्रेम किया करते हैं –

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनहु विभीषण प्रभु कै रीती ।
करहिं सदा सेवक पर प्रीती ॥

भगवान ने स्वयं भी हनुमानजी को यही मर्म समझाया —

समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ॥

आध्यात्मिक क्षेत्र में संसार का मुँह ताकना अच्छा नहीं माना जाता । अध्यात्मवादी को, भक्त को अपने अन्दर की ईश्वरीय क्षमताएँ जाग्रत करनी चाहिये, पराश्रित की तरह संसार का मुँह नहीं ताकना चाहिये । ''उत्तरकाण्ड'' में स्वयं भगवान कहते हैं कि ''मेरा दास कहा कर जो मनुष्यों का आसरा करे उसके विश्वास में दृढ़ता की कमी है।'' पर दुर्भाग्यवश हमें ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं होता।ईश्वर परायणता की स्थिति प्राप्त करना बड़ी कठिन साधना का विषय है —

मोर दास कहाय नर आसा ।
करइ तो कहहु कहा विस्वासा ॥

मन और बुद्धि का परिष्कार

रामायण की भगवत् भक्ति का एक पक्ष सद्गुणों का संवर्धन है । दूसरा दोष-दुर्गुणों का निराकरण है । वस्तुत: ये दोनों अन्योन्याश्रित है । कषाय-कल्मष हटेंगे तो उनका स्थान खाली नहीं पड़ा रहेगा वरन् उसकी पूर्ति सद्गुण करेंगे । आलस्य छोड़ेंगे तो उसका स्थान श्रमशीलता ही लेगी । अज्ञान हटेगा, अन्धकार मिटेगा तो ज्ञान रूपी प्रकाश उस स्थान पर आलोकित होगा ।

इतने पर भी निषेधात्मक और विधेयात्मक दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है । अधर्म का विनाश ही धर्म की स्थापना है । भगवत् भक्ति इस दोष-दुर्गुण भरी स्थिति को शुद्ध करने की, निष्पाप बनने की प्रेरणा देती है ।

जीव भव बन्धनों में काल-चक्र में बँधा हुआ माया की प्रेरणा से दु:ख-सागर में भ्रमण करता है। इसमें उसके गुण कर्म-स्वभाव ही मूल कारण है ।

फिरत सदा माया कर प्रेरा ।
काल कर्म सुभाव गुन घेरा ॥

इसी लिए समझदार व्यक्ति गुण-कर्म-स्वभाव के परिष्कार का सदा ध्यान रखते हैं । माता सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को राम के साथ उनका सहयोगी बन कर वन जाने के लिए, कष्टसाध्य जीवन जीने के लिए प्रेरणा देती है और कहती है कि राम को पिता और सीताजी को माता मान कर उनकी सेवा करना साथ ही राग, रोष, ईर्ष्या, मद, क्रोध आदि दोषों से दूर रहना । यही माता द्वारा पुत्रों को सत्कार्यों में संलग्न होने के लिए, कष्ट-सहन का शौर्य प्रकट करने लिए और चरित्र उज्ज्वल रखने के लिए प्रोत्साहन है —

तात तुम्हारि मात वैदेही ।
पिता राम सब भाँति सनेही ॥
राग रोष ईर्ष्या मद कोहू ।
जनि सपनेहु इनके बस होहू ॥

भक्त अपने मन को समझाता है-तनिक से क्षणिक सुख के लिए मूर्ख मन तू अनेक कल्पों तक दुष्परिणाम भुगतने से भी नहीं डरता । शान्ति प्राप्त करने के लिए न सही, कम से कम काल दण्ड के प्रहार का भय मान कर तो भगवान की शरण में जा । यह प्रभु को कठोर दण्ड-नीति की ओर संकेत है —

लव निमेष परमाणु जुग, बरस कल्प सर चण्ड ।
भजसि मन तेहि राम कहु, काल जासु को दण्ड ॥

मन को भगवान में लगाने का एक ही उपाय है कि वह विषय विकारों की लिप्सा को छोड़े, विवेक का अनुशासन माने । क्षणिक सुख देकर अनन्त काल तक दुख देने वाले आन्तरिक शत्रुओं से अपना पीछा छुड़ाये । इसी राह पर चलते हुए भगवत् अनुग्रह रूपी कल्प वृक्ष पाया जा सकता है —

जौं मन भज्यौ चहै हरि सुरतरु ।
तौं तज विषय विकार सार भजु,
अजहूँ मैं जो कहौं सोई करु ॥

विवेक बुद्धि को कुण्ठित करने का कारण तीन एषणाएँ है । पुत्रेषणा (मोह), वित्तेषणा (लोभ), लोकेषणा (अहंकार), इन तीन से ग्रसित होने पर मानवीय विवेक मलीन हो जाता है । न सोचने योग्य सोचता है, न चाहने योग्य चाहता है और न करने योग्य करता है —

सुत वित लोक एषणा तीनी ।
केहि की मति इन कृत न मलीनी ॥

गीता में उल्लेख है —

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन:
काम: क्रोधस्तथा लोभ : तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"नरक में भेजने वाले और आत्मा का नाश करने वाले तीन महादोष काम, क्रोध और लोभ ही हैं। इनको त्याग देना चाहिये।"

मानसकार का भी मत है कि आन्तरिक विक्षोभ उत्पन्न करने वाले तीन खल काम, क्रोध और लोभ हैं। ये विचारशील मन को भी पल भर में ग्रस्त कर देते हैं —

तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विग्यान धाम मन, करहि निमिष महँ क्षोभ ॥

विषय विकारों में मन का संलग्न रहना ही अनेक योनियों में जन्मने और तरह-तरह के दुःख सहने का एक मात्र कारण बताया गया है। 'विनय-पत्रिका' का पद है —

विषय वारि मन मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक ।
तेहिते सहऊं विपत्ति करुनानिधि, जन्मत जोनि अनेक ॥

एक अन्य पद में साधक दोषों से ग्रस्त होकर कहता है-

करम सुभाव काल काम काहे लोभ मोह ।
ग्राह अति गहनि गरीवी गढ़ि गह्यों हौं ॥

तुलसीदासजी की यह शंका निर्मूल नहीं। बड़े-बड़े प्राणी थोड़ा चूकते ही इस चक्की में पिसने लगते हैं। अपना विवाह कराने के फेर में पड़े हुए, चिन्ताग्रस्त नारद षड्रिपुओं के शिकार हो जाते हैं। विश्व मोहिनी के स्वयम्बर में उनकी स्थिति क्या हो जाती है यह नीचे की चौपाइयों से स्पष्ट है। वे उस समय कामवश हो चुके थे —

जप तप कछु न होहि तेहि काला ।
हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला ॥

उन्हें कामना पूर्ति न होने पर क्रोध आया —

फरकत अधर कोप मन माहीं ।
सदपि चले कमलापति पाहीं ॥

वे लोभ के कारण तरह-तरह के बहाने करने लगे —

लच्छन सब बिचारि उर राखे ।
कछुक बनाइ भूप सन भाखे ॥

अपने बनावटी रूप का उन्हें अहंकार भी आ गया —

मुनि मन हरष रूप अति मोरें ।

वे मोह वश विकल हो उठे —

मुनि अति विकल मोह मति नाठी ।
मनि गिर गई छूटि जनु गाँठी ॥

वे ईर्ष्या से केवल स्वार्थ चिन्तन में फँस गये -

मोहि तजि आनहि बरिहि कि भोरें ।

इस स्थिति को समझ कर भगवान ने उन्हें विवाह करने से रोक दिया।

इसी प्रकार परशुरामजी को क्रोध के कारण जनक की सभा में नीचा देखना पड़ा। क्रोध के कारण ही श्रीराम एवं लक्ष्मण जी के बार-बार समझाने, संकेत करने-पर भी वे उन्हें पहचान न सके और स्वयं तमाशा बन गये। श्रीराम और लक्ष्मण इसीलिए बार-बार उनको क्रोध छोड़ने की सलाह देते रहे —

लखन कहेउ हंसि सुनहु मुनि, क्रोध पाप करि मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्व प्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया ।
परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरहिं रिसाने ।
बैठिअ होइहिं पायँ पिराने ॥

क्रोधी व्यक्ति विचित्र बातें करता है। परशुराम जी क्रोध से दुःख पा रहे थे, पर दोष दया को देने लगे —

आजु दया दुख दुसह सहाबा ।

तब लक्ष्मण जी ने व्यंग्य करके उन्हें तथ्य समझाने का प्रयास किया -

जो पै कृपा जरहि मुनि गाता ।
क्रोध भये तनु राख विधाता ॥

श्रीराम ने भी कहा —

कहिअ बेगि जेहि विधि रिस जाई ।
मुनि नायक सोई करौ उपाई ॥
जेहि रिसि जाइ करइ सोई स्वामी ।
मोहि जानि आपुन अनुगामी ॥

अन्त में समझे तो उन्हें कहना पड़ा—

अनुचित बहुत कहेउ अज्ञाता ।
छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध इसी प्रकार विवेक को नष्ट करके मनुष्य का उपहास करा देता है ।

लालच (तृष्णा) में पड़ कर कष्ट पाने का उदाहरण भगवान ने स्वयं स्वर्णमृग के प्रसंग में सब के शिक्षण के लिए रखा है । इसी प्रसंग को संस्कृत सुभाषित में इस प्रकार भी कहा गया है— पहले किसी ने न सोने का हिरण देखा न सुना, तो भी तृष्णा के वशीभूत होकर **'विनाश काले विपरीत बुद्धि'** का उदाहरण बन कर राम मृगतृष्णा में भटके और कुछ पाने के स्थान पर अपनी पत्नी को भी खो बैठे -''

नीतो केनापि न दृष्टपूर्वो न श्रूयते हेममयः कुरंगः ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाश काले विपरीत बुद्धिः ॥

राम जिस मारीचि मृग को मारने जाते हैं वह साधारण हिरन नहीं वरन् स्वर्ण-मृग-मरीचिका है । पैसे के लोभ में आदमी पागल हो जाता है । अधिक संग्रह करके बड़ा आदमी बनने की, अधिक उपभोग करने की ललक उसे जीवनोद्देश्यों की पूर्ति के लिए सत्कर्म करने का अवसर ही नहीं आने देती, जब कि मनुष्य निर्वाह के लिए थोड़ा-सा उपार्जन करके ही अपना काम चला सकता है और शेष समय परमार्थ प्रयोजनों में लगाकर सुरदुर्लभ मानव जीवन को सार्थक बना सकता है ।

श्रीराम वन में लक्ष्मण से अपनी भूल को स्वीकार करते हुए स्वयं पर व्यंग्य करते हैं । वे कहते हैं कि साधारण हिरन जब मुझ से भयभीत होकर भागते हैं तो उनकी हिरनी समझाती है कि तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं । राम तो सोने के हिरन को मारने के लिए तलाश करते फिरते हैं -

हमहि देखि मृग निकर पराहीं ।
मृगहीं कहहिं तुम कहँ भय नाहीं ॥
तुम आनन्द करहु मृग जाए ।
कंचन मृग खोजन ए आए ॥

मोह बुद्धि मनुष्य से ऐसे ही मूर्खता पूर्ण कार्य करा डालती है । मोहग्रस्त मनुष्य के हृदय में ज्ञान-वैराग्य की स्थिति रह नहीं पाती । जिसके हृदय में ज्ञान-वैराग्य होता है उसे ऐसा मोह नहीं होता ।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके ।
ग्यान बिराग हृदय नहिं जाके ॥

अज्ञान अविवेक एवं दुर्बुद्धि का परिणाम सब प्रकार ही विपत्तियाँ ही होता है । उन्हीं के कारण अनेक प्रकार के विग्रह और संकट खड़े होते हैं । दुष्ट मन द्वारा उत्पन्न दुर्बुद्धि व्यक्ति और समाज को कितनी भयंकर क्षति पहुँचाती है यह मंथरा और कैकेई प्रसंग से स्पष्ट होता है । कैकेई और उसकी दासी मंथरा की दुर्बुद्धि सब के लिए विपत्ति बनकर सामने आई —

विपत्ति बीजु बरसा रितु चेरी ।
भुईं भइ कुमति कैकेई केंरी ॥

दुर्बुद्धि की पहचान यह है कि वह किसी न किसी के अहित की ही बात सोचती है । तोड़-फोड़, विनाश, प्रतिशोध, आक्रमण, कलह, दुरभिसंधियाँ रच कर विग्रह उत्पन्न करना ही उसका प्रमुख प्रयोजन होता है —

करइ विचारु कुबुद्धि कुजाती ।
होइइ अकाजु कवन विधि राती ॥

अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ को ही सब कुछ मानना, दूसरों के हित-अनहित की उपेक्षा करना, जन कल्याण का- दूसरों के सुख: दुख का ध्यान न रखना यह संकीर्ण स्वार्थपरता का परिचायक है । ऐसी निकृष्ट भूमि मंथरा जैसी कुटिल आत्माओं की ही हो सकती है । राम के अभिषेक की बात सुनकर मंथरा अपनी अन्तरंग उपेक्षा व्यक्त करते हुए कहती है —

कोउ नृप होहि हमहिं का हानी ।
चेरि छांड़ि अब होब कि रानी ॥

दुर्बुद्धि सलाहकार कई बार सहज बुद्धि को कुमार्गगामी बना देते हैं जैसे कि राम-राज-तिलक को मंथरा ने इस प्रकार प्रस्तुत किया कि कैकेई की सहज बुद्धि उससे प्रभावित होकर उलटी दिशा में बह गई —

रामहिं तिलक कालि जै भयऊ ।
तुम्ह कहु विपत्ति बीजु विधि बयऊ ॥

जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है वह किसी की अच्छी बात भी नहीं सुनता । रावण की भी ऐसी ही अवस्था हो गई थी—

सुनु सुत भयउ काल बस रावन ।
सो कि मान अब परम सिखावन ॥

इसीलिए मानसकार का मत है कि किसको दारुण दुख मिलने वाला है इसकी पहचान यह है कि उसकी विवेक बुद्धि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चली जाती है। दुर्बुद्धि को दु:ख-दैन्य की पूर्व भूमिका बताया गया है —

जाको हरि दारुन दुख देहीं।
ताकी मति पहिले हरि लेहीं॥

कुछ और भी दोष-दुर्गुण ऐसे हैं जो देखनें में तो छोटे लगते हैं पर हानिकारक वे भी कम नहीं होते। जैसे हठवादिता-असन्तोष-असहिष्णुता-सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा आदि। इन दुष्प्रवृत्तियों को हटाने और उनके स्थान पर सत्प्रवृत्तियाँ स्थापित करने की 'रामायण' में चर्चा है —

हठ या दुराग्रह वश किसी बात पर अड़जाना और अपनी बात को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेना मनुष्य का बड़ा दुर्गुण है। किसी को दुराग्रह नहीं होना चाहिए, वरन् अपनी पिछली बात विवेक की कसौटी पर अनुपयुक्त प्रतीत हो तो उसे तत्काल त्यागने के लिए तैयार रहना चाहिए। हठ को स्वयं भी राम ने अनुचित कहा। सीताजी रामचन्द्रजी के साथ वन में चलने को आग्रह करने लगीं। माता की इच्छा देख कर श्रीरामजी ने उन्हें अयोध्या में रुकने की सलाह दी और कहा —

कहहुँ सुभाय सपंथ सत मोही।
सुमुखि मातु हित राखउं तोही॥
गुरु श्रुति सम्मत धरम फल पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालब नहुष नरेस॥

और उन्हें सावधान करते हुए कहा —

जो हट करहु प्रेम बस बामा।
तो तुम दुख पाउब परिनामा॥

मन की अमर्यादित कामनाओं के कारण ही सुख संतोष से वंचित रहता है। मानसकार का मत है कि कामनाओं के नष्ट हुए बिना सन्तोष नहीं होता और जब तक संतोष न हो तब तक अक्षय सुख स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकता —

बिनु सन्तोष न काम नसाहीं।
काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥

यही भाव दूसरे शब्दों में इस प्रकार प्रकट किया गया है —

कोउ बिश्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि-पचि मरिअ॥

अपने दोषों को छिपाने से वे भीतर ही भीतर बढ़ते और पुष्ट होते रहते हैं। इस प्रकार अपनी विशेषताओं का बखान करते रहने से वे घटती जाती हैं। गरिमा समाप्त होती है, साथ ही शेखीखोर व्यक्ति दूसरों की आँखों में छोटा होता चला जाता है। इन दुर्गुणों से आत्मोत्कर्ष में तो बाधा पड़ती ही है। इसी लिए भक्त दोषों को छिपाना नहीं वरन् भगवान से यह प्रार्थना करता है कि मन से दिखावे कि वृत्ति हटा दें। यही भाव 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदासजी प्रकट करते हैं।

हे प्रभु! मैं आपसे विनय करने में सकुचा रहा हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि चह चराचर जगत आपका ही रूप है पर मैं हठ के कारण आपके इस स्वरूप को नहीं देखता। मैंने मनवाणी एवं कर्म से जो पाप किये हैं उन्हें तो यत्न पूर्वक छिपाता हूँ, किन्तु यदि कभी दूसरों की प्रेरणा से या ईर्षा के कारण मुझ से कोई शुभ कर्म बन पड़े तो उसका ढिंढोरा पीटता हूँ।

सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्यों करि बिनय सुनावौं।
जानत हौं हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं॥
... ...
मन-क्रम-बचन लाइ कीन्हें अघ, ते करि जतन दुरावौं।
पर-प्रेरित इरषा बस कबहुँक, किय कछु सुभ, सो जनावौं॥

मन उन्मादी भ्रमग्रस्त की तरह भाँति-भाँति की विडम्बनाएँ रचने और बाल क्रीड़ाएँ करने में निरत रहता है। भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि इस बावले को जब आप समझदार और सत्पथगामी बना देंगे तभी उसका कल्याण होगा। इस सन्दर्भ में 'विनय-पत्रिका' का एक पद है —

दीनबन्धु, सुखसिंधु कृपाकर कारुनीक रघुराई।
सुनहु नाथ! मन जरत त्रिबिध जुर करत फिरत बौराई॥
कबहुँ जोगरत, भोग निरत सठ, हठ बियोग-बस होई।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई॥
कबहुँ दीन, मति हीन, रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंब रत कबहुँ धर्म-रत ग्यानी॥

बुद्धिमान इसे मन की कुमार्गगामिता समझते हैं और सावधान करते हैं। जब विभीषण ने रावण को इस पथ पर जाते देखा तो उसे सावधान करने की चेष्टा करते हुए उसने कहा —

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पन्थ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जेहि सन्त॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्योंकि मन भोगों से शान्त नहीं होता। जितना अधिक उपभोग करते हैं उतनी ही यह आग शान्त होने के स्थान में अधिकाधिक भड़कती ही जाती है –

बुझे न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घी ते।

इस पद में गोस्वामी जी काम की तुलना अग्नि से करते हैं और विषय को घी की उपमा देते हैं। एक दूसरे पद में इसकी कठिनाई को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं –

विषय हीन दुख, मिले विपत्ति अति सुख सपनेहु नहिं पायो।
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों धन दुखप्रद श्रुति गायो॥

जब तक तुझे विषय भोग नहीं मिले थे तब तक उनके न मिलने का दुख था। मिलने पर भी तृप्ति नहीं हुई और असन्तोष (दुख) भड़का तथा विषयों से वियोग में भी दुख मिला। इस प्रकार विषय रूपी धन को वेदों ने दोनों प्रकार (मिलने तथा न मिलने पर) से प्रेताग्नि के समान दुखदायी ही बताया है।

इसीलिए 'दोहावली' में मन पर अंकुश लगाने पर जोर देते हुए लिखा है कि "चाहे तपस्या करके शरीर को जर्जर करे, चाहे वन में रहे, या सदा हँसते रहे अथवा मौन व्रत धारण करे, परन्तु मन को वश में किये बिना जीवन-मरण के चक्र से छुटकारा नहीं मिल सकता।"

काया कसौ कि बन बसौ, हँसौ कि साधौ मौन।
तुलसी मन जीते बिना, छुटै न आवा गौन॥

मन की मलीनता के कारण जो इच्छाएँ, अभिरुचियाँ हानि कारक है वे ही प्यारी लगती हैं। सन्निपात के रोगी को जिस प्रकार विवेक नहीं रहता और कुछ सोचता चाहता और कुछ करता है, उसी प्रकार मायाग्रस्त मलीन मन अहित में हित और हित में अहित की मान्यता बना लेता है। इस अज्ञान का निवारण भगवान की कृपा से ही संभव होता है। 'विनय-पत्रिका' में कहा है –

कबहु देव घनमय रिपुमय कबहुँ नारिमय भासै।
संस्कृति सन्निपात नाना दुख, बिनु हरिकृपा न नासै॥

मनुष्य जिन मनोविकारों के कारण दुख पाता है, गोस्वामी जी ने उनको मानसिक रोगों का मूल कहा है। यह प्रसंग उत्तरकाण्ड में विस्तार से आया है। उसमें कहा गया है कि मोह में अन्य सब रोगों का निवास बीज रूप में रहता है जो अवसर पाकर अंकुरित और पल्लवित होता है –

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जेहि ते दुख पावहि सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला॥

आगे चलकर मानस रोगों की व्याख्या करते हुए बताया गया है –

काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनहुँ भाई।
उपजाइ सन्निपात दुखदाई॥
विषय मनोरथ दुर्गम नाना।
ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता नाद कंडु इरषाई।
हरष विषाद नरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटिलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृष्णा उदर बृद्धि अति भारी।
त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका।
कहुँ लग कहहुँ कुरोग अनेका॥

'विनय-पत्रिका' में भी शारीरिक रोगों की तुलना कुमनोरथों से कही है। साथ ही उसके लिए साधनों की आवश्यकता बताई है। साधनों सहित उनके उन्मूलन के लिए संघर्ष करने की सलाह दी गई है अन्यथा त्रिताप मिलते हैं –

रोग बस तनु कुमनोरथ मलिन मनु।
पर अपवाद मिथ्यावाद वानी हई॥
साधम की ऐसी बिधि साधन बिना न सिधि।
... ...
इनमें न एको भयो बूझि न जूझयो न जयो॥
ताहिते त्रिताप तयो लुनियत बई।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधनों की व्याख्या मानस-रोगों के बाद ही काकभुशुण्डिजी बताते हैं —

सद्गुरु बैद बचन विस्वासा ।
संजम यह न बिषय की आसा ॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी ।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥

ध्यान देने योग्य बात है संयम तथा अनोपान का महत्व । संयम बिना औषधि नहीं दी जाती । गलत अनोपान होने से विकार हो जाता है । भक्ति के साथ श्रद्धायुक्त सुमति का अनोपान होना चाहिये । इसमें ढील की गुँजायश नहीं ।

तात्पर्य यह है कि भक्ति अथवा ज्ञान का एकांगी उपयोग लाभ नहीं पहुँचाता । उसे सही ढंग से प्रयुक्त करना आवश्यक है । यही दोनों मानस-रोगों के लिए अमोघ साधन है । जहाँ सद्बुद्धि सुमति होगी वहाँ विविध सम्पत्तियाँ उपलब्ध होंगी । जहाँ कुमति का साम्राज्य होगा वहाँ अनेक विपत्तियाँ घिरी रहेंगी-

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपत्ति निदाना ॥

चित्त शुद्धि के लिए विवेक के संदर्भ में विनय पत्रिका में लिखा है— शास्त्रों का मत है कि अनेक जन्मों के पाप कर्मों के कीचड़ में सना हुआ चित्त विवेक जल बिना निर्मल नहीं हो सकता । अत: ईश्वर से सद् बुद्धि ही माँगनी चाहिये । विवेक युक्त मन:स्थिति में ही पापों का संशोधन होता है और उसी के फल स्वरूप सुख शान्ति का पथ प्रशस्त होता है —

जनम अनेक किये नाना बिधि करम कीच चित सान्यो ।
होइ न बिमल बिबेक नीर बिनु बेद पुराण बखान्यो ॥

विवेक के बिना समय पर तप आदि का लाभ भी सही ढंग से नहीं मिल पाता । मनु-शतरूपा ने कितनी कठिन तपस्या की थी । परन्तु वरदान के वक्त छिपी हुई पुत्रेषणा की वासना जाग्रत हो गई । वासना का नाश ज्ञान के बिना नहीं होता —

तन सुखाय पंजर करें, धरे रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटै न बासना, बिना बिचारे ज्ञान ॥

सिद्धान्त की आड़ में मन के दोष न पनप सकें इसके लिए विवेक चाहिए । यही मर्म विनय पत्रिका में इस प्रकार कहा है— "यदि मणिपात्र में विष रखा हो और मिट्टी के बर्तन में अमृत दिया जा रहा हो तो व्यक्ति किसे स्वीकार करेगा ?" उसे मात्र बाह्यरूप देखकर नहीं विवेक पूर्वक गुण-अवगुण का विचार करते हुए यह निर्णय करना पड़ेगा कि दोनों में क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य —

मणि भाजन बिष पारई, पूरन अमिअ निहारु ।
का छाँड़िअ का संग्रहिअ, देखु बिबेक बिचार ॥

इस प्रसंग में ढील बरतने से क्या होता है यह 'विनय-पत्रिका' में तुलसीदासजी स्पष्ट लिखते हैं —

तुलसी कही है साँची रेख बार बार खांची ।
ढील किये नाम महिमा को नाब बोरिहौ ॥

यदि ऊपर लिखी सावधानी बरती जाय तो त्रिविधि साधन एवं कर्मकाण्ड में भूल-चूक रहने पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता । प्रभु भक्त की भावना को ही परखते हैं । मानस के प्रारम्भिक वन्दना प्रकरण में कहा गया है —

उलटा नाम जपत जग जाना ।
वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

ऐसी ही भक्ति के सन्दर्भ में मानसकार विश्वास के साथ कहते हैं —

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू ।
सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं ।
बसइ भगति जाके उर माहीं ॥
व्यापहि मानस रोग न भारी ।
जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाके ।
दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके ॥

यही मत 'विनय-पत्रिका' में भी व्यक्त किया गया है —

जिनके सुथरु राम प्रेम सुरतरु,
लसत सरस सुख फूलत फरत ।
शुक सनकादि प्रह्लाद नारदादि कहैं
राम की भगति बड़ी विरति निरत ।

कामना, वासना से मन की मुक्ति के लिए ज्ञान अथवा भक्ति के दोनों ही सफल प्रयोग मानस में किये गये हैं । शिवजी द्वारा काम दहन का प्रसंग है —

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब सिब तीसर नयन उघारा ।
चितवत काम भयउ जरि छारा ॥

यह भगवान श्री शंकरजी का तीसरा नेत्र ज्ञान था । ज्ञान से ही कामना की निवृत्ति होती है ।

भक्ति द्वारा वासना निवारण का अनुभव बतलाते हुए काकभुशुण्डिजी कहते हैं कि भगवान के प्रति प्रेम जग जाने पर मन अनन्य भाव से भगवान के चरणों में लग गया और सारी वासनायें तिरोहित हो गईं –

उर से सकल बासना भागी ।
केवल राम चरन लय लागी ॥

मन को स्वच्छ निर्विकार, निर्मल बनाना ईश्वर भक्ति का प्रधान प्रतिफल है । मन की मलीनता जिस मात्रा में घटती जाती है, उसी अनुपात में विवेकशीलता, दूरदर्शिता बढ़ती जाती है । इस निर्मल बुद्धि को ऋतम्भरा प्रज्ञा, भूमा आदि नामों से प्रशंसित किया गया है और इसी को आत्मिकता का ब्रह्म-विद्या का प्रधान आधार बताया गया है । मन की वासना, तृष्णा से—स्वार्थ-संकीर्णता—लोभ-मोह के भव—बंधनों से छुड़ा कर भगवान के चरणों में समर्पित करने का अभिप्राय सद्भावनाएँ और सत्प्रवृत्तियों को अन्त:करण के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करना और अपनी आकांक्षाएँ, विचारणाएँ और गतिविधियाँ उसी दिशा में अग्रसर करना है । रामायण यही शिक्षा देती है ।

सन्त और असन्त—देव और दानव

सन्त अर्थात् देव-असन्त अर्थात् दानव । यह दोनों वर्ग सत् और तम के प्रतीक हैं । एक को भगवान का अनुयायी और दूसरे को शैतान का पुजारी कहा गया है । देवासुर संग्राम का विविध उपाख्यानों के रूप में वर्णन मिलता है । वह वस्तुत: सन्त और असन्तों की प्रकृति-भिन्नता एवं गतिविधियों का चित्रण है । परस्पर विरोध होने के कारण उनमें असहयोग टकराव एवं संघर्ष होना भी स्वाभाविक है यही देव दानव युद्ध है । राम-रावण युद्ध-महाभारत आदि इसी टकराव के इतिहास हैं । भगवान का अवतरण साधुता के परित्राण एवं दुष्कर्मरत असुरता के निराकरण के लिए ही होता है । हमें सन्त परम्परा का अनुयायी और असन्त दुष्प्रवृत्ति का असहयोगी -विरोधी होना चाहिये ।

मानस में सन्तों की वन्दना करते हुए उन्हें 'चैतन्य-तीर्थ' कहा गया है । तीर्थों की स्थापना की गयी थी वातावरण के प्रभाव से लोगों में सद्वृत्तियाँ तथा सद्प्रेरणायें उत्पन्न करने के लिए । उन स्थानों पर ऋषियों ने सत्कार्यों और उपासना आदि द्वारा श्रेष्ठ संस्कारों का वातावरण बनाया था । सच्चे सन्त भी अपने श्रेष्ठ संस्कारों के प्रभाव जन-जन में शुभ प्रवृत्तियाँ फैलाते हैं, अत: वे भी तीर्थ कहे जाने योग्य हैं । साथ ही तीर्थ तो अपने स्थान पर रहते हैं – पर साधु तो घूम-घूम कर प्रेरणा संचार करते हैं अत: वे चैतन्य-तीर्थ कहे गये –

मुद मंगलमय सन्त समाजू ।
जो जग जंगम तीरथराजू ॥

किन्तु यहाँ सन्त का अर्थ साधु वेषधारी व्यक्ति नहीं वरन् श्रेष्ठ प्रवृत्तियों और श्रेष्ठ आचरणों से युक्त गुणवान, परमार्थ परायण सज्जन है । 'सुजन समाज सकल गुण खानी' और 'तीरथराज समाज सुकर्मा' आदि पदों से उक्त प्रतिपादन की पुष्टि होती है ।

सन्त एक वृत्ति है, वेष नहीं, जैसा कि आज कल समझा जाता है । लाल-पीले कपड़े- तिलक-छापा, कण्ठी-माला, दण्ड कमंडलु, दाढ़ी-मुंडन, भस्म-भभूत आदि के आवरण जिनने धारण किये हैं घर-परिवार को छोड़कर भिक्षावृत्ति पर गुजारा करते हैं, सेवा करने से कोसों दूर, सेवा लेने के लिए तत्पर आज के तथाकथित सन्त ५६ लाख की संख्या में देश भर में फैल पड़े हैं । जप-ध्यान को थोड़ी लकीर पीट लेना ही जिनने सन्त का एक मात्र कर्त्तव्य मान लिया है, घर-परिवार देश-समाज के उत्तरदायित्वों को जिन्होंने तिलांजलि दे दी है, वे ही वैरागी कहे जाते हैं, भले ही उनमें अहंकार, दंभ, अज्ञान, लालसा, प्रमाद आदि भरे पड़े हों । नशेबाजी जैसी आसुरी वृत्ति को भले ही अपना रखा हो ।

रामायण में सन्त की परिभाषा यह नहीं है । तुलसीदास जी ने सज्जनों को सन्त कहा है और उनके दो गुण प्रधान बताये हैं । एक गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से उत्कृष्ट चरित्र निष्ठा, दूसरा लोक हित के लिए अधिकाधिक उदारता का परिचय देना जन कल्याण को ईश्वर का काम मान कर उसमें कष्ट सहकर भी पूरा-पूरा योगदान देना ।

वेष के सम्बन्ध में रामायण का मत है कि सामान्य नागरिक जैसी वेषभूषा रखते हुए परिष्कृत जीवन जीने वाले भी सन्त हैं, भले ही उन्होंने चित्र-विचित्र वेष न बनाया हो । साथ ही उन्होंने साधु-सज्जा से बने-ठने किन्तु महान गुणों से रहित व्यक्तियों की भर्त्सना की है । रामायण ने सन्त-वृत्ति को सराहा है, वेष की उपेक्षा की है । यदि वेष से विपरीत आचरण है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब तो उसकी कटु आलोचना की है । बंदना-प्रसंग में कहा है –

लखि सुवेष जग बंचक जेऊ ।
बेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥
उघरे अन्त न होइ निबाहू ।
कालनेमि जिमि रावन राहू ॥

इसके विपरीत मानसकार मानते हैं कि सन्त वृत्ति के व्यक्ति किसी भी वेष में पूज्य है –

कियेहु कुवेष साधु सनमानू ।
जिमि जग जामवन्त हनुमानू ॥

बालकाण्ड में कपटी मुनि के प्रसंग में वे कहते हैं कि वेष देखकर मनुष्य की परीक्षा करने वाले मूर्ख हैं, चतुर नहीं ।

तुलसी देख सुवेश, भूलहि मूढ़ न चतुर नर ।
सुन्दर केकहिं पेखि, बचन सुधा सम असन अहि ॥

साथ ही साधकों को सावधान करते हुए वे स्पष्ट करते हैं –

वचन वेष ते जो वने, सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन से जो बने, बनी बनाई राम ॥

इसी प्रकार की अन्य उक्ति है –

वेष विशद बोलति मधुर, मन कटु करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइये, भये विषय जल मीन ॥

मानस में उज्ज्वल चरित्र, उदार, व्यवहार कोमल अन्त: करण, मृदुल स्वभाव, कर्तव्य-निष्ठा, ईश्वर विश्वास जैसे सद्गुणों को साधुता का लक्षण बताया गया है । 'उत्तरकाण्ड' में भाई भरत के प्रश्न के उत्तर में भगवान राम साधु के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं –

सन्तन के लच्छन सुनु भ्राता ।
अगनित श्रुति पुराण विख्याता ॥
विषय अलम्पट सील गुनाकर ।
परदुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु विमद विरागी ।
लोभामरष हरष भय त्यागी ॥
कोमल चित दीनन पर दाया ।
मन क्रम बच मम भगति अमाया ॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी ।
भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥
विगत काम मम नाम परायन ।
सान्ति विरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री ।
द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री ॥
ए सब लच्छन बसहिं जासु उर ।
जानेहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं ।
परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं ॥
निन्दा स्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥

... ...

सुनि मुनि सन्तन के गुन कहऊँ ।
जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ ॥
षट विचार जित अनघ अकामा ।
अचल अकिंचन सुचि सुख धामा ॥
अमित बोध अनीह मित भोगी ।
सत्वसार कवि कोविद जोगी ॥
सावधान मानद मद हीना ।
धीर धरम गति परम प्रवीना ॥
गुनागार संसार दुख रहित विगत सन्देह ।
तजि मम चरन सरोज प्रिय, तिन्ह कहँ देह न गेह ॥
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाहीं ।
पर गुन सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम सीतल नहिं त्यागहि नीती ।
सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती ॥
जप तप बत दम संजम नेमा ।
गुरु गोविन्द विप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा छमा मयत्री दाया ।
मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥
विरति विवेक विनय विग्याना ।
बोध जथारथ वेद पुराना ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दम्भ मान मद करहिं न काऊ ।
भूलि न देहि कुमारग पाऊ ॥
गावहिं सुनहि सदा मम लीला ।
हेतु रहित परहित रत सीला ॥

सन्तों का स्वभाव परहित तथा अपने शुभ संस्कारों से दूसरों के जीवन को सुवासित करने का होता है । जन साधारण राग अथवा द्वेष के वशीभूत होकर लोगों का हित अथवा अनहित किया करते हैं । 'सन्त राग द्वेष से परे होते हैं,' अत: उन्हें 'समान चित्त' कहा गया । अर्थात् उनके चित्त की सहज स्थिति डांवाडोल नहीं होती । इसीलिए उनके प्रति कोई हित के भाव रखता है अथवा अहित के, इससे प्रभावित हुए बिना ही वे सब को अपने शुभ संस्कारों का लाभ दिया करते हैं, जिस प्रकार हाथों की अंजलि में पुष्प रखने से वह दोनों हाथों को समान रूप से सुगंधित कर देते हैं । वन्दना-प्रसंग में तुलसीदासजी ने कहा है –

बन्दउं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोइ ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि, सम सुगन्ध कर दोइ ॥

सन्तों के स्वभाव में तीन गुण विशेष हैं (१) सरल चित्त (२) जगत हित (३) भगवान के चरणों में अर्थात् भगवान द्वारा स्थापित मर्यादाओं के प्रति प्रेम जाग्रत करने की क्षमता ।

पर कोई भी वस्तु मिलती है सुपात्र को ही । संत भी पात्रता देखकर दुर्लभ प्रवृत्तियाँ लोगों को दिया करते हैं । यह पात्रता में वे बाह्य योग्यताओं को कम महत्व देते हैं- आन्तरिक भावना, नीयत को अधिक देते हैं । मानसकार इसीलिए अपने पाण्डित्य अथवा कौशल को दुहाई न देकर स्वभाव और स्नेह का हवाला देते हुए उनकी कृपा की कामना करते हैं । जिसके स्वभाव में सरलता और लोकहित आदि संतोचित भावनाएँ यथार्थत: हों वही सन्तों से कुछ प्राप्ति का आग्रह करने का अधिकारी है । मानसकार ने वन्दना प्रसंग में ही स्पष्ट किया है –

संत सरल चित जगत हित, जानि सुभाउ सनेहु ।
बाल विनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहू ॥

संसार में अधिकांश व्यक्ति ऐसे हैं जो नदी और तालाबों की तरह स्वयं को लाभ मिलने पर उल्लसित होते हैं । पर समुद्र की तरह ऐसे सन्त और सदाचारी कुछ ही होते हैं जो दूसरों की उन्नति (पूर्ण चन्द्र को) देख कर उल्लिसित हों । सन्तों का और श्रेष्ठ पुरुषों का यह लक्षण है कि वे स्वयं तो पूर्ण काम होते हैं, उन्हें अपने लिए कुछ पाने की अभिलाषा नहीं रहती, पर दूसरों की उन्नति को देखकर हर्षित होते हैं । मानस में उसी शृंखला में कहा गया है –

जग बहु नर सरि सर सम भाई ।
जे निज बाढ़ि बढ़हि जल पाई ॥
सज्जन सुकृत सिन्धु सम कोई ।
देख पूर विधु बाढ़इ जोई ॥

सन्तों के इन्हीं गुणों के कारण उनका उत्थान संसार के लिए भी लाभदायक कहा गया है । काकभुशुण्डिजी गरुड़ से कहते हैं–

सन्त उदय संतत सुखकारी ।
विश्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥

सज्जनों को मानसकार ने बड़ा उपयोगी माना है । उनका उपयोग करने वालों को सावधान किया है कि वे आकर्षण नहीं होते, पर हितकारी बहुत होते हैं । बाह्य आकर्षण से प्रभावित होने के अभ्यस्त लोग सन्तों की उपेक्षा न करें इसलिए कहा है –

साधु चरित सुभ सरिस कपासू ।
निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥

कपास के फल के रस नहीं होता, इस कारण उसे निरर्थक न मानें, उसका गुण देखें कि वह मनुष्य का तन ढक कर एक मूल आवश्यकता को पूरी करता है । संत भी चाहे मनुष्यों के मनोरंजन के काम के न हों, पर वे मनुष्यता के संरक्षण का काम अवश्य करते हैं । वे यह सब इसीलिए कर पाते हैं कि गुणमय हैं– गुणों के भंडार हैं । उक्त चौपाई में 'गुणमय' कहा है । इसके पहले 'सुजन समाज सकल गुन खानी' कहकर भी इसी मत की पुष्टि की है । अत: संतों का प्रधान लक्षण उनमें संतोचित गुण होना ही है ।

अनादि काल से अनन्त काल तक यह सृष्टि द्वन्द्वात्मक रूप में ही रहने वाली है । भले ही सृष्टि गुण और दोषों के मिश्रण से बनी हो, किन्तु सन्त हंस के रूप में इन दोनों के पार्थक्य की कला से परिचित है । सन्तों की मान्यता यह है कि जब समस्त सृष्टि गुण-दोष के मिश्रण से बनी हुई है, तब किसी व्यक्ति को केवल पापी अथवा दोषी कहना सर्वथा व्यर्थ है । सन्त प्रत्येक में गुण-दर्शन के द्वारा उसके अन्तर्मन की सद्वृत्तियों को प्रोत्साहित करता है । हंस दूध और पानी अलग

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने की कला जानता है । उसमें उसका भी तो लाभ है कि उसे शुद्ध दूध पीने को मिलता है । बालकाण्ड में यह गुण सन्तों में बतलाते हुए कहा गया है—

कहहिं वेद इतिहास पुराना ।
विधि प्रपंच गुन अवगुन खाना ॥
दुख सुख पाप पुण्य दिनराती ।
साधु असाधु सुजाति कुजाती ॥
दानव देव ऊंच अरु नीचू ।
अमिय सजीवन माहुर मीचू ॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा ।
लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा ॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा ।
मरु मालव महिदेव गवासा ॥
सरग नरक अनुराग विरागा ।
निगमागम गुन दोस विभागा ॥
जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार ।
सन्त हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि बिकार ॥

सन्तों का अन्त:करण अति कोमल और उदार होता । वे स्वयं कष्ट सहकर दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करते हैं । अपना सुख-वैभव दूसरों को बाँट देने में और दूसरों का दु:ख अपने लिए बँटा लेने में उन्हें आनन्द आता है । यह परोपकार प्रवृत्ति ही उन्हें महान, अभिनन्दनीय और ईश्वर का प्यारा बनाती है । 'उत्तरकाण्ड' में काकभुशुण्डि जी अन्तरंग चर्चा करते हुए गरुड़जी को बताते हैं—

सन्त हृदय नवनीत समाना ।
कहा कबिन परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवहि नवनीता ।
पर दुख द्रवहि संत सुपुनीता ॥
पर उपकार बचन मन काया ।
सन्त सुभाउ सहज खगराया ॥

पंपासरोवर के वर्णन के माध्यम से तुलसीदासजी सन्त के हृदय की निर्मलता तथा मर्यादा का उल्लेख करते हैं—

बाँधे घाट मनोहर चारी ।
सन्त हृदय जस निर्मल वारी ॥

चारों घाटों से तात्पर्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से हैं, हृदय की निर्मलता की तुलना निर्मल जल से की गई है । इसी प्रकार वर्षा-वर्णन में कहा गया है कि सन्त के पास सब प्रकार के गुण स्वभावत: एकत्रित हो जाते हैं—

सिमिट सिमिट जल भरइ तलावा ।
जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा ॥

और भगवान को गुणी तथा निर्मल चित्त व्यक्ति ही सर्वाधिक प्रिय है । इसीलिए विनय-पत्रिका में तुलसीदास जी यही कामना करते हैं कि वे सच्चे सन्त की तरह रहकर भगवत प्रेम, सच्ची भक्ति के अधिकारी बन सकें । भक्त की उदात्त भावनाएँ अपने अन्दर विकसित होने की अकांक्षा करते हुए वे कहते हैं—

कबहुँक हौ यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें संत-सुभाव लहौंगो ॥
जथा लाभ-संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निवहौंगो ॥
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
विगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुख-सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसीदास प्रभु यह पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौंगो ॥

जहाँ सन्तों की महिमा रामायण में गाई गई है वहाँ असन्तों की निन्दा भी कम नहीं की गई है । ये दोनों वर्ग दो संस्कृतियों के प्रतीक हैं । एक को देव-पक्ष और दूसरे को असुर-पक्ष कह सकते हैं । एक परम्परा को अपनाने वाले नरदेव-महामानव पुरुषोत्तम और दूसरे को अपनाने वाले नरपशु यानी पिशाच कहे जा सकते हैं । आकृति की दृष्टि से दोनों एक जैसे होते हैं, उनकी शरीर रचना में कोई अन्तर नहीं होता । मात्र प्रकृति भिन्न होती है । असुरों का काला मुँह मुख से बाहर निकले हुए लम्बे दांत, पैने नाखून और सिर पर सींग चित्रित किये जाते हैं । इस प्रकार की शकल सूरत के प्राणी कहीं नहीं पाये जाते । इस अलंकारिक चित्रण में यही बताया गया है कि असुर -प्रकृति के मनुष्यों का मुख दुष्कर्मों की कलंक कालिमा से काला होता है । वे पेटू, स्वार्थी, लोभी, कृपण और संग्रही होते हैं, उनके बड़े दाँत उचित-अनुचित सबको उदरस्थ करने के लिए मुख की मर्यादा से बाहर निकले रहते हैं । हाथों में बड़े नाखूनों का होना हिंस्र पशुओं की नीति अपना कर आक्रमणकारी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आततायी कुकृत्यों में संलग्न होने की दुष्प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इस दुष्ट परम्परा को— असुर संस्कृति को, पशु-प्रवृत्ति को अपनाने वाले लोगों की कमी नहीं। रामायण में इन्हीं को असन्त बताया गया है।

असुरों की इच्छाएँ, कामनाएँ, मान्यताएँ विचारणाएँ - आदतें ऐसी घृणित और निकृष्ट होती हैं कि उस आग को अन्तरंग में जलाकर वे स्वयम् दुःखी होते हैं और दूसरों को दुख देते हैं। स्वयं गिरते हैं और दूसरों को गिराते हैं। जिसकी विचारणाएँ निकृष्ट होंगी उसकी कृतियाँ घृणित होकर रहेंगी। विचार की स्वाभाविक प्रतिक्रिया कर्म रूप में होती है। जो जैसा सोचेगा वह वैसा करेगा भी। अपना पतन और दूसरों का उत्पीड़न, यही है असन्त के व्यक्तित्व का विश्लेषण। इस असुर संस्कृति के निन्दनीय स्वरूप और सुखद प्रतिफल से रामायण ने जन-साधारण को सचेत किया है और उससे दूर रहने की प्रेरणा दी है। संत-असन्त, देव-दानव का अन्तर क्षमताओं का नहीं उनके प्रयोग की दिशा और ढंग का है। यह तथ्य स्पष्ट करते हुए मानस के वन्दन क्रम में खलों की वन्दना करते हुए उनमें अनेक क्षमताओं की चर्चा की गई है, जिन्हें सामान्य रूप में अच्छा माना गया है, लेकिन गलत दिशा में प्रयुक्त होने से वे हानिकारक हो जाती हैं। जैसे—

पर अकाज भट सहसबाहु से।

योद्धा होना श्रेष्ठ गुण है, पर उनकी वीरता दूसरों के काम बिगाड़ने में लग जाती है।

जे पर दोष लखहिं सहसाखी।
सहस नयन पर दोष निहारा॥

सहसाखी— सहस्र साक्षी का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है हजारों साक्षियों के बराबर सूक्ष्म अवलोकन करने की क्षमता से सम्पन्न। उसी तरह का भाव सहस्रनयन से बोधन में है, जो देवराज इन्द्र के लिए प्रयुक्त होता है। क्षमताएँ श्रेष्ठ है, किन्तु परदोष दर्शन में उनका प्रयोग होने से वे अहितकर हो जाती हैं।

उसी प्रकार आत्म बलिदान एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है किन्तु उसका दुरुपयोग देखिये—

"परहित घृत जिनके मन माखी।"

जैसे मक्खी घी में कूद कर स्वयं भी मर जाती है और घी को भी खराब कर देती है। ऐसा बलिदान कैसे प्रशंसनीय कहा जा सकता है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण है—

पर अकाज लगि तन परिहरहीं।
जिमि हिम उपल कृषी दल गरहीं॥

जिस प्रकार ओले कृषि को नष्ट करते हैं और स्वयं भी गल जाते हैं, वैसे ही दुष्ट व्यक्ति दूसरे के अहित में अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं।

बहुश्रुत होना श्रेष्ठ गुण है, किन्तु श्रवण-क्षमता का भी दुरुपयोग देखिये—

"पर अघ सुनहिं सहस दस काना।"

खल दूसरों के पाप इन हजार कानों से सुनते हैं— सुनने में बड़ी रुचि रखते हैं, अघाते ही नहीं।

इसी प्रकार कोई अपने प्रति शत्रुता का भाव रखता है, कोई मित्रता का रखता है— अथवा उपेक्षा रखता है— इसका ख्याल किये बिना सबके साथ एकसा व्यवहार रखना समता का आदर्श है। किन्तु इसी प्रकार की समता का प्रयोग खल अन्य प्रकार से करते हैं—

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहि खल रीति

अतः मानसकार सब को सावधान करते हैं कि केवल सामर्थ्यों, सफलताओं, योग्यताओं और विभूतियों से मनुष्य का मूल्यांकन न करें, उसकी सद्विचारणा तथा आचरण की दिशा देखकर करें। खलों से बचने के लिए भरतजी को सन्तों के लक्षण बताने के बाद भगवान राम स्वयं ही असन्तों के स्वभाव को समझाते हुए कहते हैं—

सुनहु असन्तन्ह केर सुभाऊ।
भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्ह कर संग सदा दुखदाई।
जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥
खलन्ह हृदय अति ताप विसेषी।
जरहिं सदा पर सम्पति देखी॥
जहँ कहु निन्दा सुनहि पराई।
हरषहिं मनहु परी निधि पाई॥
काम क्रोध मद लोभ परायन।
निर्दय कपटी कुटिल मलायन॥
बयरु अकारन सब काहू सो।
जो कर हित अनहित ताहू सों॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झूठइ लेना झूठइ देना ।
झूठइ भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहि मधुर बचन जिमि मोरा ।
खाइ महा अहि हृदय कठोरा ॥
पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद ।
ते नर पाँवर पाप मय, देह धरे मनुजाद ॥
लोभइ ओढ़न लोभइ डासन ।
सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू की जो सुनहिं बड़ाई ।
स्वास लेहिं जनु जूड़ी आई ॥
जब काहू को देखें विपती ।
सुखी भए मानहु जग नृप ती ॥
स्वारथ रत परिवार विरोधी ।
लंपट काम लोभ अति क्रोधी ॥
नर सरीर धरि जे पर पीरा ।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥
करहिं मोह बस नर अघ नाना ।
स्वारथ रत परलोक नसाना ॥

काकभुशुण्डिजी भी गरुड़जी को सावधान करते हुए कहते हैं कि खल लोग स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों को दु:ख पहुँचाते हैं—

सन इव खल पर बंधन करहीं ।
खाल कढ़ाइ विपत्ति सहिं मरहीं ॥

तुलसीदासजी ने ऐसी प्रवृत्तियों की हर जगह निन्दा की है । देवगण स्वार्थवश राम के राज्याभिषेक से प्रसन्न नहीं होते तो मानसकार की उक्ति है—

तिनहिं सुहाइ न अवध बधावा ।
चोरहिं चाँदनि राति न भावा ॥
ऊंच निवाह नीच करतूती ।
देखि न सकहिं पराइ विभूती ॥
ऊतरु देइ न लेइ उसाँसू ।
नारि चरित करि ढारइ आँसू ॥
सहज सरल रघुबर वचन, कुमति कुटिल कर जान ।
चलें जोंक जल वक्र गति, जद्यपि सलिल समान ॥

कुटिल प्रकृति जिनकी होती है, उनकी सदैव विपरीत दृष्टि बनी रहती है । जैसे पराये वैभव को न देख सकना, मीठे वचन भी कठोर लगना आदि । राम बनवास, दशरथ मरण, भरत का कष्ट सहन, समस्त प्रजा का त्रासउत्पन्न करने वाली दुरभिसंधि रचते हुए कैकेई एवं मन्थरा की कुटिलता देखने योग्य है । उन्हें सहज, सरल और हितकर स्थिति भी उलटी लगती है । प्रामाणिक वचनों पर भी उनको विश्वास नहीं होता ।

असुर-संस्कृति के अनुयायी किस प्रकार सत्कार्यों में बाधा डालते हैं । इसका चित्रण, दानवों के क्रिया कलाप का वर्णन 'बालकाण्ड' में रावण के राज्य प्रसार के प्रसंग में किया गया । मानसकार का कथन है कि रूप से नहीं ऐसे विकृत आचरण वालों को ही असुर माना जाय —

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला ।
सो सब करहि बेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं ।
नगर गाँउ पुर आग लगावहिं ॥
सुभ आचरण कतहुँ नहिं होई ।
देव विप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना ।
सपनेहु सुनिय न वेद पुराना ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लंपट पर धन पर दारा ॥
मानहिं मातपिता नहिं देवा ।
साधुन सन करबावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी ।
ते जानहु निसिचर सब प्रानी ॥

मनोबल से रहित निष्क्रिय, निरर्थक, हारे, टूटे और थके मनुष्यों को तथा उन लोगों का जो दोष-दुर्गुणों में ग्रसित, कुकर्म रत जीवन जीते हैं, उन्हें रामायण ने जीवित-मृतक बतलाया है । ऐसे जीवित मृतकों की संख्या चौदह गिनाई है—

कौल काम बस कृपिन विमूढ़ा ।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी ।
विष्णु विमुख श्रुति संत विरोधी ॥
तनु पोषक निन्दक अघ खानी ।
जीवित शव सम चौदह प्रानी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे असुर प्रकृति के दुष्ट दुर्जनों से सदा दूर रहना और उनकी छन्न कुटिलता से सतर्क रहना चाहिये। उनसे घनिठता न बढ़ा कर, उन्हें मुँह न लगाकर, अपने को अलग रखना चाहिये। उनसे सम्पर्क बढ़ाना सब प्रकार अहितकार ही होता है। इसलिए भले ही कष्ट सहकर गुजारा करना पड़े पर इन दुर्जनों से दूर रहने में ही भलाई है।

रावण जब मारीच को छल के लिए तैयार करने गया तब उसके आचरणों पर टिप्पणी करते हुए मानसकार ने शिवजी के मुख से कहलाया है—

नवनि नीच की अति दुखदाई।
जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई॥
भयदायक खल की प्रिय बानी।
जिमि अकाल के कुसुम भवानी॥

काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्म के प्रसंग में यही तथ्य प्रतिपादित करते हैं—

उदासीन नित रहिअ गोसाई।
खल परिहरिअ स्वान की नाई॥

'सुन्दरकाण्ड' में राम विभीषण संवाद में भी यही मार्मिक पीड़ा व्यक्त की गई है।

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देइ विधाता॥

सन्त और असन्तों की तुलना करते हुए उनकी स्थिति का जमीन आसमान जैसा अन्तर स्पष्ट किया गया है। एक स्वर्ग का देवदूत और दूसरे नरक का कृमि-कीट बताया गया है। इस सम्बन्ध में भगवान राम, भरत आदि को बतलाते हैं—

संत असंतन्हि कै असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥
काटइ परसु मलय सुनु भाई।
निज गुन देइ सुगंध बसाई॥
ताते सुर सीसन्ह चढ़त, जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं, परसु बदन यह दण्ड॥

इसी प्रकार गरुड़जी को बतलाते हुए काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

पर उपकार वचन मन काया।
सन्त सहज सुभाउ खगराया॥
सन्त सहहिं दुख परहित लागी।
पर दुख हेतु असन्त अभागी॥
भूर्ज तरु सम सन्त कृपाला।
पर हित नित सह विपति कराला॥
दुष्ट हृदय जग आरति हेतू।
जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥

सत्संग और कुसंग का प्रतिफल

श्रेष्ठता की संगति और दुष्टता से बचाव सर्वतोमुखी प्रगति का महत्त्वपूर्ण सोपान है। श्रेष्ठ विचारों के साथ साधन सम्पर्क बनाये रहने से मनुष्य को पारस को छूकर लोहे से सोना बनने का अवसर मिलने जैसा सत्परिणाम प्राप्त होता है।

श्रेष्ठ आचरण एवं निर्मल ज्ञान वाले परमार्थ-परायण सन्त यदि मिल सकें, तो उनसे व्यक्तिगत घनिष्ठता बढ़ाने, सम्पर्क में आने, साथ रहने का भी प्रयत्न करना चाहिए। आजकल ऐसे सन्त प्रायः नहीं के बराबर हैं, जिनकी संगति की जा सके। जो हैं वे आत्म कल्याण और विश्व कल्याण के महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते हैं— उनके साथ देर तक रहना न अपने लिए सुविधाजनक हो सकता है न उनके लिए। इसलिए यह प्रयोजन वर्तमान परिस्थितियों में सत्साहित्य के स्वाध्याय से ही पूरा हो सकता है। जब कभी महामानवों का सान्निध्य जिस भी रूप में उपलब्ध हो सके उसके लिए भी प्रयत्न करना चाहिए।

आजकल साधु संग के नाम पर ओछे, भ्रान्त, अकर्मण्य और हेय स्तर के लोगों के साथ घुलना-मिलना उनकी सेवापूजन करना समझा जाता है। इसी प्रकार सत्संग के नाम पर निरर्थक गप्पबाजी की-बेतुके वचन -प्रवचन की ऐसी बक झक चलती रहती है जिससे सुनने वाले के चिन्तन एवं कर्तृत्त्व का ऊंचा उठना तो दूर उलटे भ्रान्त धारणाओं से उलझकर अहितकर दिशा में चल पड़ने की शिक्षा मिलती है। इन दिनों सत्संग के नाम पर इन्हीं विडम्बनाओं के घटाटोप हर जगह छाये हुए हैं।

आदर्शवादी व्यक्तियों एवं उत्कृष्ट विचारणाओं का सम्पर्क, सान्निध्य ही सच्चे अर्थों में साधु संग है। उसी को सत्संगति कहा गया है। यह सम्पर्क भले हो स्वाध्याय द्वारा साधा जाय या सान्निध्य द्वारा, इससे उपयोगी प्रेरणाएँ मिलती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं और ऊंचा उठने का अवसर मिलता है। इस लिए रामायण में सत्संगति की महिमा विस्तार पूर्वक बतलाई है।

'उत्तरकाण्ड' में श्रीराम की वन्दना के लिए जब सनकादि मुनि आये, उस प्रसंग में कहा गया है कि सत्संग के प्रभाव से बंधन टूट जाते हैं। श्रेष्ठ व्यक्तियों के अनुभव से वर्षों के तप का लाभ क्षणों में मिल जाता है—

बड़े भाग पाइअ सतसंगा।
बिनहिं प्रयास होइ भव भंगा॥

दूसरे शब्दों में उसका प्रभाव संस्कृति का अन्त कहा है। सांसारिक पीड़ा की समाप्ति श्रेष्ठ आचरण-परायण होने से होती है और यह प्रेरणा सन्तों से मिलती है—

पुण्य पुंज बिनु मिलइ न सन्ता।
सत संगति संसृति कर अन्ता॥

संत का साथ मनुष्य को स्वर्ग की और कामीपुरुष का साथ सांसारिक कष्टों की ओर ले जाता है—

सन्त संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं सन्त कवि कोविद, श्रुति पुरान सद्ग्रंथ॥

'सुन्दरकाण्ड' में जब भक्तराज हनुमानजी विभीषण से मिलते हैं तो विभीषण जी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहते हैं—

अब मोहि भा भरोसा हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता॥

मानस के अनुसार सत्संग की नियमित व्यवस्था होनी चाहिये। मोहग्रस्त गरुड़जी शिवजी के पास समाधान के लिए जाते हैं। वे कहीं जाने की तैयारी में थे, अस्तु उन्होंने गरुड़जी को काकभुशुण्डि जी के पास भेज दिया और कहा—

तबहि होइ सब संशय भंगा।
जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

यह इस लिए कहा गया कि मनुष्य के हृदय में संशय पैदा होते ही रहते हैं। उनके समाधान भी बराबर होते रहने चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि थोड़ी देर के सत्संग की उपेक्षा की जाय। वह तो जितना पाया जा सके शुभ और सुखकारी ही है। लंका प्रवेश के समय हनुमानजी से मिलने पर लंकिनी नाम की राक्षसी कहती है—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला इक संग।
तुलै ने ताहिं सकल मिलि, जो सुख लब सतसंग॥

काकभुशुण्डिजी का मत है—

सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं।

यहाँ सत्संग की महिमा का वर्णन हुआ है। वाल्मीकि ने नारदजी के उपदेश से डाका मारना छोड़कर साधना द्वारा ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया।

नारद ऋषियों की दासी के पुत्र थे किन्तु ऋषियों की संगति से इनका अन्त:करण निर्मल हो गया तथा उनके उपदेश से महान भगवत भक्त बन गये।

अगस्त्य के पिता मित्रा वरुणजी ने एक अप्सरा के सौन्दर्य के कारण स्खलित वीर्य एक घट में रख दिया था। इस नीच योनि में उत्पन्न होने पर भी सत्संग के प्रभाव से वे महान ऋषि बन गये।

पौराणिक उपाख्यानों में वाल्मीकि, नारद, एवं अगस्त्य के बुरी स्थिति से अच्छी स्थिति तक पहुँचने का कारण उनकी प्राप्त हुआ सत्संग ही बतलाया गया है। रामायण में इसी का उल्लेख वन्दना-प्रसंग में किया गया है—

सुनि आचरज करै जनि कोई।
सत संगति महिमा नहिं गोई॥
बाल्मीकि नारद घटजोनी।
निज निज मुखनि कही निज होनी॥

सन्मति, सद्गति, कीर्ति, सुयश, सम्पति हित-साधन के लिए सत्संगति से बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं, है इसी प्रसंग में विश्व की सभी श्रेष्ठ उपलब्धियाँ सत्संग के प्रभाव से प्राप्त दर्शाई गई हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई।
जो जेहि जतन जहाँ जेहि पाई॥
सो जानव सत्संग प्रभाऊ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ॥

जैसे लोहा पारस के स्पर्श मात्र से सोना हो जाता है वैसे ही दुष्ट मनुष्य भी यदि सन्तजनों की संगति कर लें तो वे सज्जन हो जाते हैं। 'बालकाण्ड' में कहा गया है—

सठ सुधरहिं सत संगति पाई।
पारस परसि कुधातु सुहाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर भक्ति का प्रसाद प्राप्त करने के लिए विशेष रूप से ईश्वर, विश्वासी, प्रभु समर्पित आदर्श जीवन जीने वाले सन्त, सज्जनों की— महामानवों की संगति आवश्यक होती है। उनके प्रवचनों से नहीं वरन् उनके चरित्र को निकट से देखने पर अनुसरण की, अनुगमन की प्रेरणा मिलती है और सम्पर्क में आने वाला व्यक्ति भी ईश्वर परायण बनता है। इसी दृष्टि से ईश्वर भक्ति और सत्संगति को एक दूसरे का पूरक बताया गया है। 'अरण्यकाण्ड' में भगवान राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश करते हुए कहते हैं—

प्रथम भगति सन्तन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा॥

'उत्तरकाण्ड' में श्री काकभुशुण्डिजी प्रभुभक्ति की प्राप्ति बिना सत्संग के असंभव बतलाते हैं—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख सानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥
अस विचारि जोइ कर सत्संगा।
राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥

यही भाव दूसरे शब्दों में इस प्रकार मिलता है—

राम भगति के ते अधिकारी।
जिनके सतसंगति अति प्यारी॥

पुनः काकभुशुण्डिजी सारे धर्म-कर्म का फल हरिभक्ति बतलाते हुए उसको सत्संग के बिना दुर्लभ बतलाते हैं—

सब कर फल हरि भगत सुहाई।
सो बिनु सन्त न काहू पाई॥

स्वयं भगवान राम 'अरण्यकाण्ड' में लक्ष्मण जी को भक्ति प्राप्ति का उपाय सन्तों की अनुकूलता बतलाते हैं—

भगति तात अनुपम सुखमूला।
मिलइ जो सन्त होइ अनुकूला॥

यही सम्मति गरुड़जी को शिवजी देते हैं—

बिनु सत्संग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥
बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥

जहाँ सत्संग की प्रशंसा है वहाँ कुसंग की निन्दा भी कम नहीं है। बुरे व्यक्तियों के, बुरे वातावरण के, बुरे साहित्य के सम्पर्क में आने से मनुष्य का अधःपतन एवं विनाश भी कम नहीं होता। 'अयोध्याकाण्ड' में कुबरी की सीख मानकर कैकेई अनर्थ करने पर उतर आती है, तब मानसकार की उक्ति है—

को न कुसंगति पाइ नसाई।
रहइ न नीच मते चुतराई॥

किष्किन्धाकाण्ड के "वर्षा-शरद वर्णन" में सत्संग और कुसंग के प्रभाव से ज्ञान की बुद्धि और क्षय होने का उल्लेख किया गया है—

"उपजइ बिनसइ ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग।"

कुसंग से हानि होती है और सुसंग से लाभ; यह बात संसारी और ज्ञानी सभी जानते हैं। उदाहरणार्थ वायु की सहज गति ऊपर है अतः धूल उसकी संगति से आकश में पहुँच जाती है, किन्तु अधोगमी जल के संसर्ग से वह कीचड़ में मिल जाती है। वही शुक, सारिका साधुओं के यहाँ राम-नाम बोलते हैं और दुष्टों के यहाँ गालियाँ देने लगते हैं। धुँआ पानी के संयोग से कालिख बन जाता है, किन्तु उसका भी सदुपयोग किया जाय तो स्याही बन कर लाभ देता है। वही पानी, अग्नि और वायु के संयोग से बादल बनकर जीवन दाता बन जाता है। सारांश यह कि संसार के सब पदार्थ ग्रह औषधि, जल, वायु, वस्त्र अच्छा या बुरा साथ पाकर भले या बुरे रूप में सामने आ जाते हैं।

हानि सुसंग कुसंगति लाहू।
लोकहु वेद विदित सक काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचहि मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुकसारी।
सुमरिहिं राम देहिं गन गारी॥
धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता॥
ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ सुयोग कुयोग।
होहि कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्संग का लाभ प्राप्त करने के लिए अपने मन में आवश्यक कोमलता, पात्रता, गुण ग्राहकता होनी चाहिए अन्यथा उसे सुयोग का भी समुचित लाभ न मिल सकेगा—

खलउ करहि भल पाइ सुसंगू ।
मिटइ न मलिन सुभाउ अभगू ॥

सत्संग का लाभ वही उठा सकता है जो उसके लिए प्रयत्न शील हो । कुछ ऐसे भी जड़गति होते हैं जो उससे अप्रभावित ही बने रहते हैं । ऐसों से सावधान रहने का परामर्श 'लंकाकाण्ड' में रावण के प्रसंग में दिया गया है—

फूलहि फलहिं न बेत, जदपि सुधा बरसिय जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलें विरंच सम ॥

साधुता और असाधुता किसी वंश अथवा भेष से नहीं, स्वभाव से परखी जाती है । एक साथ पैदा होने वाले एक ही वंश के व्यक्ति गुण, कर्म की दृष्टि से एक दम भिन्न भी हो सकते हैं । साधु-असाधु के सम्बन्ध में मानसकार की स्पष्ट उक्ति है—

उपजहिं एक संग जग माहीं ।
जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू ।
जनक एक जग जलधि अगाधू ॥
भल अनभल निज निज करतूती ।
लहत सुजस अपलोक विभूती ॥

एक ही स्थान पर पैदा हुए व्यक्ति कमल और जोंक की तरह भिन्न स्वभाव तथा सुधा और शराब जैसे विपरीत प्रभाव वाले संत या असंत हो सकते हैं । उनको अपनी करनी के अनुसार ही यश या अपयश मिलता है । अत: संगति का चुनाव विवेक पूर्वक ही करना चाहिये ।

मनुष्य जीवन का सदुपयोग

चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त एक बार यह सुर दुर्लभ मनुष्य शरीर इस लिए मिलता है कि जीव इस द्वार में होकर अपने लक्ष्य को पूरा कर सके, ईश्वर तक पहुँच सके । अपूर्णता से छूट कर पूर्णता का अधिकारी बन सके । इस अवसर को पेट और प्रजनन जैसे कृमि कीटकों का क्रिया कलाप में उलझे रहकर नष्ट कर देना सर्वथा अदूरदर्शिता पूर्ण है । वासना और तृष्णा के, विषय विकारों के, लोभ-मोह के इस कुचक्र में इस सुअवसर को गँवा दिया गया तो इसे एक भयंकर दुर्घटना ही कहना चाहिये ।

इस भूल से रामायण सचेत करती है और उस प्रयास में संलग्न होने की प्रेरणा देती है जिससे मानव-जीवन को सार्थक बनाया जा सके । मानसकार ने मनुष्य शरीर को उपयोगिता और महत्ता स्थान पर दर्शायी है । उत्तर काण्ड में स्वयं भगवान राम कहते हैं—

बड़े भाग मानव-तन पावा ।
सुरदुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ॥

'उत्तरकाण्ड' में काकभुशुण्डिजी भी मानवशरीर को सबसे श्रेष्ठ बतलाते हुए उसके द्वारा नर्क, स्वर्ग अथवा मोक्ष तथा ज्ञान-वैराग्य एवं भक्ति आदि कुछ भी प्राप्त करना संभव मानते हैं—

नर तन सम नहिं कबनिउ देही ।
जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी ।
ज्ञान विराग भगति शुभ देनी ॥

इसी लिए तुलसीदासजी 'विनय-पत्रिका' के एक पद में अपने मन को सावधान करते हुए कहते हैं कि यदि अवसर निकल गया, इस शरीर का उचित लाभ न उठाया गया तो फिर पछताना ही हाथ लगेगा—

सहसबाहु दस-बदन आदि नृप, बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन धाम सवाँरत, अन्त चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सब ही ते ।
अन्तहु तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अब ही ते ॥
अब नाथहिं अनुराग जाग जड़ त्याग दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बड़ घी ते ॥

'विनय-पत्रिका' में ही तुलसीदासजी आत्म-उद्बोधन करते हुए मन को इस चक्र से बचकर भगवान की ओर घुमाने की सलाह देते हैं—

याहि ते मैं हरि ग्यान गँवायो ।
परिहरि हृदय कमल रघुनाथहिं,
बाहर फिरत विकल भयो धायो ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य शरीर बड़ा मूल्यवान है। इसके माध्यम से श्रेष्ठ लक्ष्यों की ओर बढ़ना चाहिए। विषय-वास के सुख की कामना-वह संसार में हो या स्वर्ग में, शरीर का दुरुपयोग है। यह भाव मानस में ''रामगीता'' के अन्तर्गत स्पष्ट प्रकट किया है—

एहि तन कर फल विषय न भाई ।
स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई ॥
नर तन पाय विषय मन देंही ।
पलट सुधा ते सठ विष लेंही ॥
ताहि कबहुं भल कहइ न कोई ।
गुंजा गहइ परस मनि खोई ॥

अपना मन जब सांसारिक उपलब्धियों का हवाला देकर अपनी महत्ता बतलाना चाहता है तो तुलसीदास जी उसे धिक्कारते हुए 'विनय-पत्रिका' में लिखते हैं कि तूने मनुष्य-शरीर के लायक किया ही क्या है—

काज कहा नरतनु धरि सार्‌यो ।
पर उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न विचार्‌यो ॥
द्वैतमूल भयसूल, सोगफल भवतरु टरै न टार्‌यो ।
राम भजन तीछन कुठार लै, सो नहिं काटि निवार्‌यो ॥
संसय सिन्धु नाम बोहित भजि, नित आतमा न तार्‌यो ।
जनम अनेक बिबेक हीन बहु जोनि भ्रमत नहिं हार्‌यो ॥
देखि आन को सहज सम्पद द्वेष अनल मन जार्‌यो ।
सम दम दया दीनपालन सीतन हिय हरि न सँभार्‌यो ॥
प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति, तैं मन क्रम वचन बिसार्‌यो ।

साधक अपने पतन के लिए दूसरे को दोषी न ठहराये, इस लिए वे अन्य पद में अपना भला न कर सकने वाले की निन्दा करते हैं—

नवमी नव द्वार पुर बसि जेहि न आपु भल कीन्ह ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत, दारुन दुख लीन्ह ॥

अपनी भूल अनुभव होने पर साधक फिर प्रभु को मिथ्या दोष नहीं लगाता। यही भाव 'विनय-पत्रिका' के निम्न पद में प्रकट किया गया है—

माधव मो समान जग माहीं ।

... ...

नाहिन कछु औगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ग्यान भवन तनु दियेहु नाथ सोउ पार न मैं प्रभु जाना ॥
केतु करील श्री खंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै ।
सार रहित हत भाग्य सुरभि, पल्लव सो कहुँ किमि पावै ॥

तुलसी कहते हैं हे प्रभु ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है आपने मुझे ज्ञान का घर मनुष्य शरीर दिया, किन्तु इसे पाकर भी मैं आपको न जान सका।

इस प्रकार भगवान जीव को मनुष्य शरीर देकर अपनी कृपा कर चुके अब अपना उद्धार करने की जिम्मेवारी हमारी है। हमें अपने प्रयत्नों द्वारा अपना सुधार करना चाहिये, भगवान की कृपा तो हम पर है ही।

एक अन्य पद में साधक संसार के स्वार्थपूर्ण सम्बन्ध को समझकर पश्चाताप करते हुए कहता है—

''संसार के सभी सम्बन्धियों ने तुझे विषय भोगों के मार्ग की ही शिक्षा दी जिनके फल स्वरूप नरक ही मिलता है। जिस मार्ग में चलने से तेरा वास्तविक हित होने वाला है उस अध्यात्म मार्ग की शिक्षा तुझे किसी ने नहीं दी।''

जाते निरय निकाय निरन्तर सोइ इन्ह तोहि सिखायो ।
तुव हित होय कटै भव बंधन सो मग तोहि न बतायो ॥

इस प्रकार स्वार्थ भरे दृष्टिकोण में फँसकर अलभ्य अवसर खो देने के कारण दु:खी अन्त:करण के भाव 'विनय-पत्रिका' के इस पद में प्रकट किये गये हैं—

लाभ कहा मानुष तन पाये ।
काय वचन मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये ॥
जो सुख सुरपुर नरक गेह बन आवत बिनहिं बोलाये ।
तोहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥
पर-दारा, पर-द्रोह, मोहबस किये मूढ़ मन भाये ।
गरभवास दुख रासि जातना तीव्र बिपति बिसराये ॥
भय निद्रा मैथुन अहार सबके समान जग जाये ।
सुर दुरलभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥
गई न निज पर बुद्धि, सुद्ध ह्वै रहे न राम लय लाये ।
तुलसीदास यह अवसर बीते, का पुनि के पछिताये ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामचरितमानस में भगवान राम अपने प्रजाजनों को भी इसी प्रकार सावधान करते हुए कहते हैं कि यदि समय चूक गये तो पछताना और दूसरों को दोष लगाना ही हाथ लगेगा—

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।
पाइ न जो परलोक सँवारा ॥
सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछताई ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥

भगवान आगे और भी स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य शरीर के साथ प्रभु अनुग्रह तथा सद्गुरु रूप में कर्णधार भी मिल जाता है । फिर भी यदि कोई अपना उद्धार न कर सके तो उसे आत्महत्या का दोषी माना जाना ही उचित है—

नरतनु भव वारिधि कहुँ बेरो ।
सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा ।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥
जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निन्दक मन्द मति,आत्माहन गति जाई ॥

अस्तु समझदार व्यक्ति को चाहिए कि यह तथ्य समझकर आगे के लिए सतर्क हो जाय । जितनी आयु निरर्थक बीत गई उस पर पश्चाताप प्रकट करते हुए बुद्धिमान प्राणी निश्चय करता है कि जो शेष है उसे नष्ट न करूँगा । उसके एक-एक क्षण का सदुपयोग करूँगा । 'विनय-पत्रिका' के इस पद में यह भाव बड़ी प्रखरता से उभारा गया है—

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भव निशा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं ॥
पायउं नाम चारू चिंतामनि, उर कर ते न खसैहौं ।
स्याम रूप रुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन कै तुलसी रघुपति पद कमल बसैहौं ॥

गुरु का महत्व और स्वरूप

गुरु को भारतीय धर्म में बहुत सम्मान दिया गया है । उनकी वंदना, पूजा एवं सेवा करने के लिए शिष्यों को बहुत उत्साहित किया गया है । उनका न केवल सम्मान करने, श्रद्धा, रखने की बात है, वरन् मार्गदर्शन को अपनाने और अनुशासन में चलने को भी शिष्य का परम पावन कर्तव्य माना गया है ।

सद्गुरु अन्तरात्मा में अवस्थित उस ईश्वरीय प्रकाश को कहते हैं, जो उचित अनुचित का बोध कराता है, कुमार्ग छोड़कर सुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है । वस्तुत: सद्गुरु का जागरण और उसका परिपुष्ट होना ही आत्मोत्कर्ष के लिए सबसे बड़ा साधन है । इसलिए सद्गुरु की शरण में जाने की, उनके प्रति श्रद्धालु रहने और अनुशासन मानने की बात अध्यात्म-क्षेत्र में पग-पग पर कही गई है ।

आध्यात्मिक गुरु वे व्यक्ति हो सकते हैं जो अध्यात्म-तत्व ज्ञान से अपनी अन्त: चेतना को सुविकसित बना चुके हैं । व्यक्ति और परिस्थिति के अनुरूप मार्गदर्शन कर सकने की सूक्ष्म और प्रखर बुद्धि जिनमें मौजूद है, जो चरित्रवान है, सद्गुण सम्पन्न हैं और अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के कारण नेतृत्व कर सकने की क्षमता विकसित कर चुके हैं । ऐसे महामानवों को अपना मार्गदर्शक नियुक्त करने की भारतीय संस्कृति की पुण्य परम्परा है । इसके लिए गुरुदीक्षा ली जाती है, उन्हें दीक्षा संस्कार के द्वारा वरण किया जाता है । गुरु-शिष्य इस पुण्य संस्कार द्वारा परस्पर सम्बन्धित होते हैं और महान प्रयोजनों की पूर्ति में एक दूसरे की सामर्थ्य भर सहायता करते हैं । माता पिता की तरह गुरु को भी अभिभावकों में गिना जाता है । जन्म देने के कारण माता को ब्रह्मा— भरण-पोषण की व्यवस्था करने के कारण पिता को विष्णु और अज्ञान का संहार करके सद्ज्ञान का प्रकाश देने के कारण गुरु को शिव कहा गया है । रामायण में गुरु-तत्व को बहुत महत्व दिया गया है । उनके प्रति निष्ठा रखने के लिए अध्यात्म-प्रेमियों को प्रेरणा दी गई है—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकर रूपिणम् ।
यमाश्रितोहि वकोपि चन्द्र: सर्वत्र बन्द्यते ॥

तुलसीदासजी के मतानुसार गुरु भी व्यक्ति नहीं एक शास्वत शक्ति है जो पात्रानुसार व्यक्तियों में प्रतिबिम्बित होती रहती है । इसीलिए उसे नित्य कह कर सम्बोधित किया । शरीर नित्य नहीं है, इसलिए गुरु के सम्बोधन के पीछे किसी शरीर विशेष का आग्रह नहीं है । व्यक्ति के पीछे सक्रिय नित्य शक्ति को ध्यान में रखना चाहिए ।

गुरु बोधमय तो होता ही है । शंकर रूपिणम् उसे इस लिए कहा गया कि वह ज्ञान का कल्याणकारी उपयोग करता है । इसके अतिरिक्त शिव को पिछले श्लोक में विश्वासरूप कहा है, जिसके बिना ईश्वर साक्षात्कार संभव नहीं । अन्त:करण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में स्थिति आत्मतत्व को अनुभव कराने अथवा ईश्वर साक्षात्कार में गुरु की प्रमुख भूमिका होती है। इस दृष्टि से भी उन्हें शिवरूप कहना उचित है।

उनके आश्रित होने पर टेढ़ा चन्द्रमा भी पूज्य हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि गुरुत्व सम्पन्न पुरुष टेढ़े व्यक्तियों को भी दिशा देकर उनसे ऐसे गौरवमय कर्म कराने में कुशल होते हैं, जिनसे उनकी कीर्ति सारे संसार में फैल जाय। इसका आशय यह नहीं कि गुरु का आश्रय टेढ़ा व्यक्ति ही ले, किन्तु यह है कि टेढ़ा होते हुए भी यदि निष्ठापूर्वक शिष्य रूप में गुरु के प्रति समर्पित हो जाय तो भी जीवन का श्रेष्ठ और गौरवमय उपयोग संभव है।

गुरु को नर रूप हरि कहा है— अर्थात् मनुष्य के रूप में ईश्वरीय चेतना। गुरु वही होता है जिसके अन्दर ईश्वरीय प्रकाश प्रकट हो जाय। किसी कुल अथवा जाति की परम्परा से गुरु बनाते चलना उचित नहीं।

गुरु के वचनों से महामोह का निवारण हो जाता है। स्वयं मोहग्रस्त अथवा लोगों को उलझाने वाला व्यक्ति गुरु नहीं कहला सकता।

इस प्रकार गुरु से केवल मोह नाश की आन्तरिक निर्मलता प्राप्त करने की आशा करनी चाहिये। मन में विकार पैदा करने वाली तरह-तरह की इच्छाओं की पूर्ति की आशा नहीं की जानी चाहिये। मानस की प्रारम्भिक वन्दना में यह भाव व्यक्त किए गये हैं—

बन्दउँ गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

इसी प्रसंग में गुरु की चरण-रज का जो प्रभाव बताया गया है उससे भी इसी मत की पुष्टि होती है—

जन मन मंजु मुकुर मल हरनी।
किये तिलक गुन गन बस करनी॥

गुरु की चरण-रज— अर्थात् मार्ग दर्शक की क्षमता भावनात्मक स्तर पर साधक के मन-दर्पण की मलीनता हटाती है और उसको मस्तिष्क में धारण करने से गुणों को वश में किया जा सकता है।

इसी प्रसंग में आगे 'सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती' - 'दलन मोहतम सो सुप्रकासू' - 'उघरहि विमल विलोचन ही के' - 'सूझहि रामचरित मनि मानिक' आदि कहकर इसी मत की पुष्टि की है और स्वयं भी वही पाया है। उसके प्रभाव से विवेक को निर्मल करके राम-चरित्र को लोकोपयोगी रूप में प्रस्तुत किया है—

तेहि कर विमल विवेक विलोचन।
वरनउँ राम चरित भव मोचन॥

मानसकार स्पष्ट रूप से गुरु के प्रति व्यक्तिपरक अथवा स्वार्थ परक दृष्टिकोण के समर्थक नहीं हैं। गुरु के सहयोग पर अपने मन की निर्मलता प्राप्त की जाती है। दर्पण साफ हो तो बिम्ब साफ-साफ दिखता है। मन स्वच्छ हुए बिना भगवान का चरित्र भी लोकोपयोगी ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता—

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार।
वरणौ रघुबर बिमल यश, जो दायक फलचार॥

शास्त्र- वचनों पर उतना विश्वास नहीं हो पाता क्योंकि उनमें देश, काल, पात्र की आवश्यकताओं एवं संदर्भों में अनेक प्रकार के मत व्यक्त किये जाते हैं। यहाँ तक कि वे परस्पर विरोधी भी प्रतीत होते हैं। यद्यपि उस विरोधाभास में भी परिस्थितियों की भिन्नता के अनुरूप एक ही रोग के कई उपचार ही प्रस्तुत किये गये होते हैं।

सामयिक परिस्थिति को- व्यक्ति की मनःस्थिति को ठीक तरह समझकर विवेकवान व्यक्ति जो परामर्श देते हैं वह अधिक सही एवं श्रेयस्कर होता है। अस्तु उसपर निष्ठा विश्वासपूर्वक चला भी जा सकता है। पार्वतीजी को नारद ने तप करके शिवजी को वर रूप में प्राप्त करने का परामर्श दिया, उसका औचित्य समझने के उपरान्त उन्होंने वैसा ही करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। जब उन्हें उस मार्ग से विरत होने के लिए कहा गया तो भी वे गुरु द्वारा मिले परामर्श पर दृढ़ ही बनी रहीं। गुरु के वचन को सर्वोपरि मानती हुई सप्त ऋषियों से कहती हैं—

तजउ न नारद कर उपदेसू।
आप कहहि सत बार महेसू॥

दुनियाँ में बिना सोचे-समझे तरह-तरह की सलाहें देने वाले व्यक्ति कम नहीं हैं। इसलिए प्रामाणिक व्यक्ति की बात पर विश्वास रखकर कार्य करना आवश्यक है। अस्थिर चित्त व्यक्ति कष्ट की कल्पना के कारण अपने आचरण से डिग जाते हैं। पार्वती जी उस पर दृढ़ हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारद वचन न मैं परिहरउँ ।
बसउ भवन उजरउ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के बचन प्रतीति न जेही ।
सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही ॥

गुरु के सम्बन्ध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागों पाँय ।
बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोविन्द दिये मिलाय ॥

भगवान से अधिक गुरु को इसलिए कहा गया है कि उनका उपदेश, चरित्र, व्यक्तित्व, तप एवं ज्ञान शिष्य में ईश्वर विश्वास जगाता है— भगवत् प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करता है— मार्ग दिखाता है और उंगली पकड़कर जीवन लक्ष्य के पथ पर चलने में व्यावहारिक सहायता करता है । यही भाव मानस में ऋषि वाल्मीकि जी राम-निवास बतलाते समय व्यक्त करते हैं—

तुम्ह ते अधिक गुरुहिं जिय जानी ।
सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥

पिछले अशुभ कर्मों के फलस्वरूप बने दुखद प्रारब्ध को भी वर्तमान सत्कर्मों के प्रायश्चित द्वारा बदला जा सकता है । भाग्यनिर्माण मनुष्य के अपने हाथ में होने से उसकी स्थापना एवं परिवर्तन करना भी संभव है । मन:स्थिति एवं क्रियाप्रक्रिया बदलने से दु:खों का दलन हो सकता है । इसके लिए जो आवश्यक मार्ग दर्शन कर सके, सहयोग दे सके उस गुरु की आशीस की सहायता से शिष्य का सब प्रकार भला ही होता है । वशिष्ठ जी के लिए ऐसा ही कहा गया है—

दलि दुख सजइ सकल कल्याना ।
अस असीस राउर जग जाना ॥
सो गुसाँइ बिधि गति जेहि छेकी ।
सकइ को टारि टेक जो टेकी ॥

इतना आत्म विश्वास और आत्मज्ञान किन्हीं विरलों में ही होता है कि बिना किसी की सहायता के अपने आप ही आत्मनिर्माण और आत्मकल्याण का लक्ष्य पूरा कर सकें । इसके लिए किसी कुशल मार्ग दर्शक की जरूरत पड़ती है । कुशल चिकित्सक भी प्राय: अपनी चिकित्सा आप नहीं कर पाते । उन्हें किसी अन्य सहायक की आवश्यकता पड़ती है । अपनी स्थिति को ठीक तरह समझना तथा उसे बदलना प्राय: अपने लिए कठिन पड़ता है । दर्पण के बिना अपना चेहरा भी तो दिखाई नहीं पड़ता और प्रकाश की सहायता के बिना अंधेरी रात में अपने मजबूत पैर भी तो सही तरह सही दिशा में चल नहीं पाते । इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता एवं उपयोगिता को महत्व दिया गया है—

गुरु बिनु भवनिधि तरइ न कोई ।
जो बिरंचि संकर सम होई ॥

भारत की गौरव-गरिमा जिन दिनों उच्च शिखर पर थी उन दिनों यह परम्परा थी कि समर्थ, सत्तावान, धनपति, प्रतिभावना एवं साधन सम्पन्न लोग विचारशील तत्वदर्शियों से परामर्श प्राप्त करते थे और उसी आधार पर अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करते थे । सामर्थ्यवान जब अपने साधन-मद में कुछ भी कर गुजरने की उच्छृंखलता अपनाने लगते हैं, तो पतन एवं विनाश के संकट सामने आ उपस्थित होते हैं । प्राचीन काल में दूरदर्शी सुविज्ञ गुरुजनों का परामर्श एवं सहकार हर क्षेत्र में प्राप्त किया जाता था और उन्हें समुचित सम्मान दिया जाता था । फलस्वरूप सत्प्रवृत्तियाँ पनपती थीं और सुख शान्ति का वातावरण उत्पन्न होता था ।

राजा दशरथ गुरु वशिष्ठ की प्रसन्नता देखकर सन्तुष्ट होते हैं और नम्रतापूर्वक आदेश माँगते हैं —

मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू ।
कहेउ नरेस रजायसु देहू ॥
सब बिधि गुरु प्रसन्न जिय जानी ।
बोले राउ रहँसि मृदुबानी ॥

व्यक्ति चरित्रवान और श्रद्धालु तो सहज ही हो सकता है, जिन विषम परिस्थितियों और मन:स्थितियों में वह घिरा होता है उनसे ऊंचा उठकर तात्विक विश्लेषण करना और विवेक सम्मत निष्कर्ष निकालना प्राय: अपने सम्बन्ध में संभव नहीं हो पाता । क्योंकि अपने सम्बन्ध में विचार करते समय अनेकों पूर्वाग्रह, स्वभाव, प्रवाह एवं स्वार्थ जुड़कर चिन्तन दृष्टि को धूमिल कर देते हैं । ऐसी दशा में सही मार्गदर्शन पाने के लिए किसी परिष्कृत ज्ञानवास की सलाह अपेक्षित होती हैं । चित्रकूट प्रसंग में श्रीराम गुरु वसिष्ठ से ही उचित निष्कर्ष निकालने और उचित परामर्श देने की प्रार्थना करते हैं और उसे मानने का विश्वास दिलाते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ ।
नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥
सब कर हित रुख राउरि राखे ।
आयसु किये मुदित फुर भाखें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई ।
माथे मानि करौ सिख सोई ॥

श्रीराम कहते हैं– तात ! पिता के बाद हमारी सारी बात गुरु जी कृपा से बनी है । नहीं तो प्रजा, नगर निवासी, परिवार हमारे साथ ही सब बरबाद होते । अकाल में सूर्यवंश के सूर्य महाराज दशरथ का अस्त होना संसार में किसके लिये दुखदायी नहीं हुआ । विधाता ने बहुत उत्पात कराया फिर भी मिथिला-पति जनक और आपने सँभाला । जो लोग राज्य-कार्य, धर्म, धरती, धन, भवन आदि सब कार्यों को गुरु के प्रभाव से करते हैं उनका अन्त में कल्याण ही होता है । भरत को इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं–

तात तात बिनु बात हमारी ।
केवल गुरुकुल कृपा सँभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू ।
हमहि सहित सब होत खुआरू ॥
जो बिनु अबसर अथँव दिनेसू ।
जग कहँ कहहु न होई कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा ।
मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा ॥
राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम ।
गुर प्रभाउ पालिहिं सबहिं, भल होइहिं परिनाम ॥

गुरु ऐसे समर्थ और उत्तरदायी व्यक्ति ही कहला सकते हैं । उन्हीं के प्रति शिष्य श्रेष्ठ भाव भी रखते हैं ।

भरतजी भी राम के कथनानुसार गुरु वसिष्ठ के ही हाथों में अपना भी निर्णय सौंप देते हैं । वे कहते हैं– श्रीरामजी का रुख धर्म और व्रत की रक्षा करते हुए तथा मुझे पराधीन समझकर सभी के कल्याण का कार्य कराने के लिए हैं । इसलिए गुरु जी सब के प्रेम को पहिचान कर आदेश दें । यहाँ औचित्य का ही आग्रह है–

राखि राम रुख धरम व्रत, पराधीन मोहि जानि ।
सबके संमत सर्वहित, करिअ प्रेम पहिचानि ॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा ।
हित सब हीं कर रौरे हाथा ॥

गुरु वसिष्ठ अपने उत्तरदायित्व के प्रति सतत सजग है । शोक संतप्त भरत को उन्होंने अनेक प्रकार से उपदेश देकर समझाया–

मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे ।
कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥

जब सारा समाज दुःख से विचलित हो रहा है, तब गुरु अपने सन्तुलन को बनाये रहते हैं और अन्य सब के शोक को दूर करने में भी समर्थ होते हैं–

तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास ।
सोक नि वारेउ सबहिं कर, निज विग्यान प्रकास ॥

अयोध्या में छाये हुए शोक संताप से घिरे लोग जब किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे थे तो उनको मार्ग बताने के लिए वसिष्ठ, वामदेव आदि गुरुजन आते हैं और मन्त्रियों तथा विज्ञजनों को बुलाकर आवश्यक विचार विनिमय करते हैं–

करत बिलाप बहुत एहि भाँती ।
बैठेहि बीत गई सब राती ॥
बामदेव बसिष्ठ तब आये ।
सचिव महाजन सकल बुलाए ॥

महाराज जनक के चित्रकूट आगमन पर शोकसन्तप्त अयोध्या तथा जनकपुर दोनों परिवारों ने एक दिन का उपवास किया । प्रातः काल गुरु वसिष्ठ ने ही तब सब के पास फलाहार भेजा । इससे प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण प्रबन्ध उनके हाथों में था ।

गुरुजन न केवल परामर्श देते थे वरन् आवश्यकतानुसार व्यवस्था का भार भी अपने हाथ में लेकर अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देते थे ।

दल फल मूल कन्द बिधि नाना ।
पावन सुन्दर सुधा समाना ॥
सादर सब कहँ रामगुरु, पठए भरि-भरि भार ।
पूजि पितर सुर अतिथि, गुर लगे करन फरहार ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्ग दर्शन प्राप्त करने के लिए सत्तावान लोग प्राय: गुरु आश्रमों में जाया करते थे। दशरथजी अक्सर गुरु के पास स्वयं जाते थे। वे जब अपना कोई उत्तराधिकारी न देखकर बिकल हुए तब का प्रसंग है–

गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला।
चरनि लाग करि विनय विसाला॥

जब कोई महत्त्वपूर्ण समस्या आती तो एक गुरु का परामर्श पर्याप्त न मान कर अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया जाता। राम जन्म के समय ऐसा ही किया गया -

गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा।
आए द्विजन सहित नृप द्वारा॥

इसी प्रकार सीता-स्वयंम्बर के बाद जनक जी के दूत विवाह-पत्रिका लेकर अयोध्या पहुँचे और दोनों भाइयों के गुणगान किए, तब भी राजा स्वयं आसन से उठकर पत्रिका गुरु बसिष्ठ जी को देते हैं–

तब उठि भूप बसिष्ठ कहँ, दीन्ह पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब, सादर दूत बुलाई॥

गुरु के उपदेश को मानकर ही अयोध्या की प्रजा पुन: पादुका के प्रतीक रूप में मुख्य प्रबन्धक भरत के माध्यम से रामजी के राज में सुख पूर्वक रहने को तैयार हुई। न केवल राजा वरन् प्रजा भी इन वास्तविक लोक नायक गुरुजनों का आदेश परामर्श शिरोधार्य करती थी।

नगर नारि नर गुर सिख मानी।
बसे सुखेन राम रजधानी॥

मनुष्यों के कष्ट और पतन के कारण संशय और भ्रम ही प्रधानत: बन जाते हैं। शरद ऋतु में जिस प्रकार उद्भिज जीव ठंड के मारे मर जाते हैं, उसी प्रकार सद्गुरु प्राप्त होने पर भ्रम और संशयों को निवारण हो जाता है। वर्षा-शरद वर्णन में श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण को यह तथ्य उदाहरण सहित समझाते हैं–

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिलें जाहि जिमि, संशय भ्रम समुदाइ॥

गुरु और शिष्य का सम्बन्ध आदेशकर्त्ता एवं उसका पालन करने वाले का ही नहीं है। दोनों विचार विमर्श करके किसी उचित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं और औचित्य के आधार पर गुरु भी शिष्य के परामर्श को स्वीकार करके सराहते हैं।

भरत ने जब चित्रकूट चल कर राम को वापिस लाने का प्रस्ताव किया तो वसिष्ठ ने उसे उचित माना, सराहा और स्वीकार किया–

अबसि चलिअ बन राम जहँ, भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक सिन्धु बूड़त सबहि, तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥

आम तौर से अपने पाप, दोषों को हर कोई छिपाता है, क्योंकि इससे बात के फैलने और निन्दा होने का डर रहता है लोकापवाद से अपना व्यक्तित्व दूसरों की आँखों में गिरता है। उसके कारण दूसरों के सहयोग में कमी पड़ती है। पर इस दुराव से मन में ऐसी गाँठें मजबूत होती जाती हैं जिनके कारण अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। साथ ही उन दोषों के निराकरण का उपाय न होने से सड़े मवाद की तरह वे भीतर सड़ते रहते हैं और अन्तत: भयंकर अध:पतन के रूप में प्रकट होते हैं।

इसलिए आन्तरिक दुर्बलताओं को समझने, उनके दूरवर्ती परिणामों को देखने के साथ ही निराकरण, निवारण का उपाय जानने के लिए किसी उदार ज्ञानवान मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। मानसिक चिकित्सक की तरह जो उदारता पूर्वक दुर्बलताओं को सुन सके और बिना घृणा भर्त्सना किये उस विभीषिका से छुटकारा दिला सके। उनके सामने गुप्त से गुप्त और घृणित से घृणित मन:स्थिति को भी कहा जा सकता है। उनके द्वारा लोकापवाद फैलाये जाने की कोई आशंका नहीं होती वरन् गुत्थियों को सुलझाने में ही सहायता मिलती है। वस्तुत: गुरु ही ऐसा सच्चा मित्र है जिसके सामने बिना किसी दुराव के सब कुछ कहा जा सकता है और बदले में सुधार के लिए विवेक रूपी उपचार प्राप्त किया जा सकता है–

सन्त कहहि अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुय सन किये दुराव॥

गुरु का सामान्य अर्थ मार्ग दर्शक और अध्यापक होता है। व्यक्तित्व को विकसित और कर्तृत्व को परिष्कृत करना विद्या के अन्तर्गत आता है। भौतिक जानकारियों का अभिवर्धन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं विभिन्न प्रकार की कुशलताओं का विकास शिक्षा का क्षेत्र है। अपनी विद्या सम्पदा का लाभ शिष्य को देने वाले अध्यापक गुरु कहलाते हैं और स्कूल कालेजों में पढ़ाने वाले शिक्षकों को अध्यापक कहते हैं। वे भी गुरु-वर्ग में हैं। एक वर्ग आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए और दूसरा भौतिक उन्नति के लिए शिष्य को अपनी सेवा प्रदान करता है। अस्तुत: वे दोनों ही सम्माननीय माने गये हैं।

इन दिनों गुरुडम एक बपौती बन गया है। एक गुरु का चेला दूसरे गुरु के नहीं जा सकता किसी गुरुनामधारी को भ्रष्ट एवं पतित होने पर भी नहीं छोड़ा जा सकता। पीढ़ी दर पीढ़ी लोग गुरु-चेला का वंश चलाते जाते हैं। यह ठेकेदारी सर्वथा अवांछनीय है। गुरु का सम्मान उसकी पात्रता के साथ जुड़ा है। एक व्यक्ति के कई गुरु भी हो सकते हैं और वह उन सबका समान रूप से स्नेह एवं मार्गदर्शन प्राप्त करता रह सकता है। किसी छात्र के कितने ही गुरु हो सकते हैं और किसी गुरु को कितने ही छात्र पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं है। दत्तात्रेय के चौबीस गुरु थे। भगवान राम ने भी वसिष्ठ और विश्वामित्र से शिक्षाएँ प्राप्त की थीं। अनेक आवश्यक लाभों की पूर्ति के लिए अनेक गुरुजनों से उनकी विशेषताओं के अनुरूप सहायताएँ ली जा सकती हैं और उन्हें गुरु कहा जा सकता है।

स्कूली अध्यापक साधारणतया कई होते हैं। कई विषयों को कई अध्यापकों द्वारा ही पढ़ा और पढ़ाया जाता है। यही बात आध्यात्मिक क्षेत्र में भी लागू होती है।

इन दिनों गुरु परम्पराएँ नष्ट प्राय: हो चली हैं। उनके स्थान पर गुरुडम का बोलवाला है। तथाकथित गुरु नामधारी प्राय: उन सभी विशेषताओं से शून्य होते हैं, जिनके लिए गुरु शब्द का प्रयोग किया गया है। कोई भी साधु बाबा या पण्डा पुजारी, उन महान क्षमताओं से रहित होने पर भी भोले लोगों को चेला बनाने का धन्धा पकड़ लेता है और गले में कंठी बाँध कर-कान फूँक कर उनका धन, सम्मान लूटता रहता है। साथ ही ऐसे परामर्श देता रहता है जिनसे आत्म कल्याण तो दूर उलटे भ्रम-जंजाल में उलझ कर भोले लोगों को मूढ़ अन्धविश्वासों में जकड़कर अपना अहित ही करना पड़ता है।

अध्यापक-वर्ग भी अपने शिक्षा-क्षेत्र में मात्र पाठ्य पुस्तकें पढ़ा देना भर अपना कर्त्तव्य पूरा हो जाना समझ लेते हैं। वह भी ठीक तरह नहीं कर पाते। जब कि उन पर शिक्षण के साथ-साथ अपने गौरवशाली पद के अनुरूप व्यक्तित्व को निखारने की भी सहज जिम्मेदारी होती है। स्कूली शिक्षा के साथ-साथ अध्यापक अपने व्यक्तित्व, प्रभाव का उपयोग करके छात्रों में अनेक सद्गुणों का— प्रतिभाओं का विकास कर सकते हैं। किन्तु वह भी उनसे नहीं बन पड़ता है।

क्या अध्यात्म और क्या भौतिक, दोनों ही क्षेत्रों में गुरुजन इन दिनों अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर रहे हैं। वे शिष्य का धन और समय जितना नष्ट कराते हैं उसके अनुरूप बदले का लाभ नहीं देते, जबकि उनका अनुदान बहुत बढ़ा-चढ़ा होना चाहिये। ऐसे कर्त्तव्यच्युत धूर्त गुरुजनों की रामायण में बहुत भर्त्सना की गई है। साथ ही मूढ़मति मूर्ख शिष्यों को भी लताड़ा गया है। एक को अन्धा और दूसरे को बहरा कहा गया है। जो शिष्य का शोक तो दूर नहीं करते किन्तु धन नष्ट कराते हैं, उन गुरुजनों को नरकगामी बताया गया है।

गुरु सिष बधिर अन्ध के लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महँ परई॥

आज आवश्यकता गुरुडम को समाप्त करने की है। उसके स्थान पर गुरु-तत्व का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिए और पात्रता के अनुरूप उनके वरण तथा सम्मान की मर्यादा रहनी चाहिये। अन्तरात्मा में अवस्थित गुरु-तत्व को प्रखर होना चाहिये। अध्यापक-वर्ग को शिक्षा-कर्मचारी से आगे बढ़कर छात्रों के चरित्र निर्माण में योगदान देना चाहिये।

रामायण में गुरु परम्परा इसी स्तर की है। उसी का पुनर्जीवन, पुनर्जागरण इस युग की महती आवश्यकता है।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धार्मिकता प्रकरण

धार्मिकता अर्थात् कर्तव्यपरायणता

व्यक्ति निर्माण के तीन आधार माने गये हैं । (१) आस्तिकता– ईश्वर पर विश्वास, ईश्वर की निष्पक्ष, न्यायकारी, कर्मफल देने की सुदृढ़ नीति पर आस्था (२) आध्यात्मिकता आत्म-बोध की, आत्म-जागरण की अनुभूति । आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण एवं आत्म-विकास की उत्कृष्ट रीति को हृदयंगम करना (३) धार्मिकता– अपने और समाज के प्रति अपने कर्तव्यों का निष्ठा और तत्परतापूर्वक पालन । इन तीन तत्वों की व्याख्या, विवेचना में ही सारा धर्म और अध्यात्म का सुविस्तृत ढाँचा खड़ा किया है । उपासनात्मक, दार्शनिक और विधि-निषेध के कर्मकाण्डों का सुविस्तृत ऊहापोह इसी आधार-शिला पर अवस्थित है ।

रामायण में इन तीनों ही आधारों पर सुविस्तृत प्रकाश डाला और लोकोपयोगी प्रेरणाओं का प्रकाश रामकथा में घुलाकर जन-मानस में उतारने का प्रयत्न किया गया है । रामावतार– उनका समस्त क्रिया-कलाप इन्हीं तीन प्रयोजनों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करने के लिए हुआ था ।

'मनुस्मृति' के अनुसार भगवान राम ने कभी धर्म की अवहेलना नहीं की थी । जाति का, जनपद का धर्म, श्रेणी, धर्म, कुलधर्म और स्वधर्म सबका वे पालन करते थे ।

जाति जार पदान्धर्मानश्रेणीधर्माश्च धर्मावत् ।
समीक्ष्य कुलधर्माश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥

मानस में भी यह तथ्य बार-बार उद्घाटित किया गया है । भगवान का अवतार ही धर्म-स्थापना के लिए कहा गया है–

जब जब होहि धर्म की हानी ।
बाढ़ै असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धर विविध सरीरा ।
हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग विस्तारहिं विसद यश, राम जन्म कर हेतु ॥

'श्रुति सेतु' का अर्थ शास्वत धर्म-मर्यादा है तथा 'यश विस्तार' का अर्थ है इसी के लिए लोगों को प्रेरित और उत्साहित करना ।

भगवान शिव भी काकभुशुण्डि के पूर्वजन्म प्रसंग में अपने श्रुति मार्ग की रक्षा का उल्लेख करते हैं–

काकभुशुण्डि मंदिर में भगवान का नाम जप रहे थे और पूजा विधान में निरत थे । इस अहंकार में ग्रसित होकर उन्होंने गुरु आगमन पर प्रणाम करने का अपना धर्म-कर्तव्य पालन नहीं किया । इस पर गुरु ने तो ध्यान नहीं दिया पर भगवान शिव अति क्रुद्ध हुए । उनकी दृष्टि में पूजा का नहीं कर्तव्य परायणता का महत्त्व है । वे धर्म-मर्यादाओं का पालन कठोरतापूर्वक किये जाने की आशा अपने भक्त से करते हैं, उसमें प्रमाद करने पर क्रुद्ध होते हैं । काकभुशुण्डि की पूजा को महत्त्व न देते हुए भगवान शिव ने उसकी धृष्टता को बहुत बुरा माना और उसे भक्ति का अहंकार करने वाला मानकर कठोर शाप का दण्ड दिया । ऐसा करना धर्म-मर्यादा को श्रुति के मार्ग को अक्षुण्ण बनाये रहने के लिए आवश्यक भी था–

एक बार हर मन्दिर, जपत रहेउँ सिव नाम ।
गुर आयउ अभिमान तें, उठि नहिं कीन्ह प्रनाम ॥
सो दयाल नहिं कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस ।
अति अघ गुरु अपमानता, सहि नहिं सके महेस ॥
मंदिर माझ भई नभवानी ।
रे हत भाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर कें नहिं क्रोधा ।
अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥
तदपि साप सठ दैहउँ तोही ।
नीति बिरोध सोहाइ न मोही ॥
जौं नहिं दण्ड करौं खल तोरा ।
भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥

भगवान की पूजा-आरती, धूप-दीप-नैवेद्य-अक्षत-पुष्प आदि पदार्थों से भी की जाती है, पर वह तो प्रतीक मात्र है । सद्गुण के उपचारों से जो पूजा की जाती है वही सच्चा सत्परिणाम उपस्थित करती है । इस तथ्य का स्पष्टीकरण 'विनय-पत्रिका' के एक पद में सुन्दर ढंग से मिलता है । उसका भाव है–

''जड़ चेतन सब जगत ईश्वर का रूप है, वे सर्वव्यापी और नित्य हैं । उन्हें वासना की धूप, आत्मज्ञान का स्वयं प्रकाश-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीप, श्रेष्ठ भाव का नैवेद्य, प्रेम का ताम्बूल, इंद्रिय रूपी बत्तियों को जलाकर भक्ति, वैराग्य, विज्ञान रूप आरती कर, भगवान की सेवा के लिए क्षमा, करुणा आदि दासी नियुक्त कर जिसके हृदय में हरि रहते हैं वहाँ दुर्गण नहीं रहते। तुलसी कहते हैं जो ऐसी आरती करता है वह दोषों से मुक्ति पा जाता है।'' पद इस प्रकार है—

ऐसी आरती राम रघुवीर करहिं मन ।
हरन दुख दुंद गोविंद आनन्द घन ।
अचर चर रूप हरि सरबगत सरबदा बसत इति
वासना धूप दीजै ।
दीप निज बोधगत कोह मद मोह तम, प्रौढ़
अभिमान चित वृत्ति छीजै ॥
भाव अतिसय विसद प्रवर नैवेद्य सुभ,
श्री रमण परम संतोष कारी ।
प्रेम-तांबूल गतशूल संशय सकल विपुल भव
वासना बीज हारी ॥
असुभ सुभ कर्म घृत पूर्ण दश वर्तिका, त्याग
पावक, सतोगुण प्रकाश ।
भक्ति वैराग्य विज्ञान दीपावली, अर्पिनी
नीराजनैं जग निवासं ॥
विमल हृदि भवन कृत शांति पयंक सुभ सयन
विश्राम श्री राम राया ।
क्षमा करुणा प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र
हरि तत्र नहिं भेद-माया॥
एहि आरती निरत सनकादिक श्रुति, सेष, सिव,
देवरिषि अखिल मुनि तत्व दरसी ।
करै सोई तरै परिहरै कामादि मल, वदति
इति अमल मति तुलसी ॥

ऐसी ही पूजा आरती धर्म-कर्म का मुख्य अंग मानी गई है। अगले पद में ऐसी ही आरती को पुण्य बतलाते हुए कहा है—

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहन दुखदोष निरमूलनी काम की ॥
सुरभ सौरभ धूप दीपवर मालिका ।
उड़त अघ विहँग सुनि ताल करतालिका ॥
भक्ति हृदि भवन अज्ञान तम हारिनी ।
विमल विज्ञान मय तेज विस्तारिनी ॥
मोह मद कोह कलि कंज हिम जामिनी ।
मुक्ति की दूतिका, देह दुति दामिनी ॥
प्रनत जन कुमुद वन इन्दु कर जालिका ।
तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥

आरती का मर्म न समझकर यदि हम केवल बत्ती जलाकर यह सब उपलब्धियाँ चाहें तो यह हमारा अविवेक ही कहा जायेगा। ऐसा ही भाव 'विनयपत्रिका' के एक अन्य पद में है, जिसमें जप के बाद हवन, तर्पण आदि की इसी तरह की व्याख्या की गई है। उसमें कहा गया है—

''राम नाम का जप करो, जपने के बाद इस प्रकार हवन करो— प्रेम जल से तर्पणन स्नेह का घी, संयम की समिधाएँ छमा की अग्नि और ममता की बलि देनी चाहिये। पापों का उच्चाटन, मन का वशीकरण, अहंकार और काम का मारण तथा संतोष और ज्ञान रूपी सम्पत्ति का आकर्षण करना चाहिये। जिसने इस प्रकार भजन किया उसे ही रघुनाथजी मिले हैं—

प्रेम वारि तरपन भलो, घृत सहज सनेहु ।
संयम समिधि, अगिनि छमा ममता बलि देहु ॥
अघ उचाटि मन बस करै, मार मद मारैं ।
आकरषै सुख संपदा संतोष विचार ॥
जिन यहि भाँति भजन कियो मिले रघुपति ताहि ।
तुलसीदास प्रभु पथ चढ़यो जौ लेहु निबाहि ॥

रामायण की धर्म-निष्ठा लम्बे-चौड़े ब्रह्म-विवेचन पर खर्चीले कर्मकाण्डों पर, प्रचलित प्रथा-परम्पराओं के अन्धानुकरण पर, मूढ़मान्यताओं के लिए दुराग्रही रहने पर टिकी हुई नहीं है। उसकी धर्मपरायणता विशुद्ध कर्तव्य परायणता है। धर्म का पर्यायवाची कर्म है। बोलचाल में भी धर्म और कर्म को मिला कर बोलते हैं— उन्हें एक-दूसरे का पूरक मानते हैं। धर्म के दो पक्ष है— एक चिन्तन और दूसरा व्यवहार। उत्कृष्ट विचारणा और आदर्श क्रियाशीलता को मिलाकर समूची धर्म धारणा बनती है। मन, वचन और कर्म तीनों गौरव के अनुरूप उच्च-स्तरीय तत्वों का समावेश हो तो समझना चाहिए कि धर्म का वास्तविक और व्यावहारिक रूप सामने आ गया।

कर्तव्यनिष्ठा की धार्मिकता गरिमा का प्रतिपादन रामायण में अनेक स्थानों पर किया गया है। भरत को कर्तव्य-पालन की प्रेरणा देते हुए राम कहते हैं कि जो करने योग्य है उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तुम करों और वैसा ही मुझ से कराओ । इस प्रकार सूर्यवंश के पालक की भूमिका निबाहो । कर्तव्य साधना ही सकल सिद्धियाँ देने वाली है । उसी से सुगति और कीर्ति मिलती है । ऐसा समझते हुए स्वयं कष्ट सहकर भी परिवार और प्रजा को सुखी बनाने को प्रयत्न करो–

सो तुम करहु करावहु मोहू ।
तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि दैनी ।
कीरति सुगति भूतिमय बैनी ॥
सो विचारि सहि संकट भारी ।
करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

अपने पुत्रों की धर्मपरायणता पर राजा दशरथ को भरोसा है । राम वन गमन के दुःख से व्याकुलता में भी उन्हें राम का स्वभाव स्मरण है । सुमंत को वे समझाते हैं कि दोनों भाइयों को वन दिखा कर लौटा लाना । किन्तु वे मानेंगे इसमें उन्हें सन्देह है । अतः वे विकल्प भी बताते हैं–

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई ।
सत्य संध दृढ़ व्रत रघुराई ॥
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी ।
फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी ॥

वन-गमन के समय श्रीराम सुमन्त को समझाते हुए धर्मनिष्ठ कर्तव्य का बोध कराते हैं–

मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा ।
तात धरम मत तुम सबु सोधा ॥
सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसा ।
सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंति देव बलि भूप सुजाना ।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥
धरमु न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि भावा ।
तजे तिहुँ पुर अपजसु छावा ॥

धर्मनिष्ठ मनुष्य को कामना न होने पर भी सुख सम्पत्ति की सहज प्राप्ति होती है । जिस प्रकार समुद्र में बिन बुलाये ही नदियाँ उससे मिलने के लिए दौड़ती चली जाती हैं उसी प्रकार धर्मशील व्यक्ति हर दृष्टि से समुन्नत बनता जाता है–

सुनि बोले गुरु अति सुख पाई ।
पुण्यपुरुष कहँ महि सुख छाई ॥
जिमि सरिता सागर महँ जाहीं ।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं ॥
तिमि सुख सम्पति बिनहिं बुलाये ।
धर्मसील पै जाहि सुभाये ॥

स्वभाव का प्रभाव पड़ता ही है । ऐसा नहीं हो सकता कि आग के पास बर्फ ले जाया जाय और वह पिघले नहीं । यही बात शिव के पास 'काम' के जाने पर हुई । जहाँ उच्च आदर्शवादिता मन में भरी होगी वहाँ वासनात्मक कुविचार सहज ही नष्ट हो जाते हैं । जिसके स्वभाव में ही धर्माचरण आ गया है उसके पास दोष आदि नहीं जाते । उमा-सप्तऋषि संवाद में कहा गया है–

तात अनल कर सहज सुभाऊ ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ ॥
गये समीप सो अबसि नसाई ।
जिमि मनमथ महेस की नाई ॥

श्रेष्ठ आचरण ही धर्माचरण है । यही मनुष्य का उत्थान करते हैं । कुकर्म ही अधर्म है, पाप है । यह मनुष्य का पतन करते हैं । पाप छोटे-छोटे हों तब भी उनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । स्वभाव में सम्मिलित होकर वे सुदृढ़ हो जाते हैं और फिर बढ़ते-बढ़ते सर्वभक्षी बन जाते हैं । पाप की शत्रु, रोग, अग्नि, सर्प से तुलना करते हुए शूर्पणखा विलाप करते हुए रावण से कहती है–

रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि ।
अस कहि विविध विलाप, करि लागी रोदन करन ॥

समझदार व्यक्ति इस सिद्धान्त को समझते हैं । जब श्री राम की सेना के समुद्र के किनारे पहुँचने की सूचना मिली तो रावण के दरबार के खुशामदी सभासद कहने लगे कि चिन्ता मत करो, बन्दरों को हम यों ही खा जायेंगे । किन्तु विभीषण ने रावण को अपनी भूल सुधारकर पापों की शृंखला वहीं समाप्त करने की सलाह दी और कहा कि कल्याण चाहने वाले को दुष्कर्म त्याग कर सन्मार्ग पर चलना चाहिए । सद्भाव अपनाना ही बड़ी नीति है–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो आपन चाहै कल्याना ।
सुजसु सुमित सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलार गोसाईं ।
तजउ चउथि के चन्द कि नाईं ॥
चौदह भुवन एक पति होई ।
भूत द्रोह तिष्ठइ नहिं सोई ॥
गुन सागर नागर नर जोऊ ।
अलप लोभ भल कहइ न कोऊ ॥
काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पन्थ ।
सब परिहरि रघुबीरहिं, भजहु भजहिं जे सन्त ॥

धर्म मर्यादा की अवज्ञा-उपेक्षा करके अनीति-पाप करते रहना, अपने लिए काल को आमंत्रित करना है । मन्दोदरी रावण को यही समझाती है कि धर्मबुद्धि तथा विचार शक्ति का क्षय ही काल का प्रत्यक्ष कोप है, वह किसी पर डंडा नहीं चलाता है—

काल दण्ड गहि काहु न मारा ।
हरइ धरम बल बुद्धि विचारा ॥

और बल, बुद्धि, तेज का क्षय कब होता है, इस मर्म को तुलसीदासजी रावण द्वारा सीताहरण के प्रसंग में उभारते हैं । वे समझाते हैं कि जब मनुष्य कुमार्ग पर पैर रखता है तो उसका तेज, बल बुद्धि आदि सभी विशेषताएँ नष्ट हो जाती हैं । प्रतापी रावण ने जब सीता को चुराने के लिए कदम बढ़ाया तो उसे चोर की तरह लुक-छिपकर डरते हुए वह कार्य करना पड़ा—

जाके डर सुर असुर डेराहीं ।
निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दस सोस स्वान को नाईं ।
इत उत चितइ चला भड़िहाई ॥
इमि कुपंथ जग देत खगेसा ।
रह न तेज तन बल बुधि लेसा ॥

जो यह मर्म नहीं समझते वे हर स्थिति में दुःखी रहते हैं और भगवान को दोष देते हैं । "विनिय-पत्रिका" में कहा है—

"ऐसी लोक रीति देखी सुनी गई है कि व्याकुल नर-नारी अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि दोनों में देव को गलियाँ देते हैं । जब ईश्वर भी निंदा से नहीं बच सकता तो हमें निंदा पर ध्यान न देकर कर्तव्य पालन करना चाहिये ।"

लोक रीति देखी सुनी, व्याकुल नर-नारी ।
अति बरषे अन बरषेहुँ देहिं देवहिं गारी ॥

धर्मशील व्यक्ति न तो स्वकर्तव्य से स्वयं डिगता है, न दूसरे को डिगने देता है । दशरथ जी अपना वचन पलटने को सोचते हैं और रामचन्द्रजी को अयोध्या में रोकने का प्रयत्न करते हैं । पर राम औचित्य को प्रधानता देते हैं और पिता की मोह ग्रस्तता को उपेक्षणीय मानते हैं । उनकी इच्छा पूरी करने की अपेक्षा वनवास जाने के निर्णय में मर्यादा का पालन देखते हैं । अस्तु वे पिता की इच्छा को अस्वीकार करके वन जाने की बात पर ही दृढ़ रहते हैं । उस समय मानस कथाकार कहते हैं—

रायँ राम राखन हित लागी ।
बहुत उपाय किये छल त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥

मन को संतुलित रखने वाले कठिन प्रसंग आने पर भी अविचल रह सकते हैं और धैर्यपूर्वक शान्त चित्त से अपना कठिन कर्तव्य भी पालन करते रह सकते हैं । श्री राम जंगल के लिए स्वाभाविक ढंग से ही चल पड़ते हैं—

पितु आयसु भूषन वसन, तात तजे रघुबीर ।
विस्मय हरश न हृदय कछु, पहिरे वल्कल चीर ॥

एक दिन पूर्व श्री राघवेन्द्र को युवराज पद देने की घोषणा की गई थी और दूसरे ही दिन वन जाने का आदेश मिल गया । वे यदि सब कुछ छोड़कर मुस्कराते हुए चले जाते हैं तो इसका कारण यही है कि वे ऐश्वर्य को बड़प्पन का चिह्न नहीं मानते थे । धर्म का मर्म समझने के कारण उन्हें कर्तव्य पालन में ही सुख की अनुभूति होती थी, ऐश्वर्य प्राप्ति में नहीं । इसका वर्णन करते हुए तुलसीदास जी "कवितावली" में लिखते हैं—

कीर के कागर ज्यों नृप चीर,
विभूषन उप्पम अंगनि पाई ।
औध तजो मग बास के रूख ज्यों,
पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संग सुबन्धु पुनीत प्रिया,
मनो धर्मक्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिब लोचन राम चले,
तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥

भरत अपने नियम के बड़े पक्के थे उनका भोजन, वस्त्र, बर्तन, व्रत-नियम सब कठिन ऋषि-धर्म के अनुकूल थे । धर्म प्रेमी को अपना आहार-विहार, व्यवहार सभी कुछ आदर्श बनाना पड़ता है, भले ही वह कष्टकारक प्रतीत क्यों न हो–

असन बसन बासन ब्रत नेमा ।
करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥

जप, तप, जोग आदि की प्रक्रिया सद्विचारों, शुभकर्मों और प्रभु समर्पण की प्रखरता के रूप में हो तभी जानना चाहिये कि साधना सफल हुई । ज्ञान, कर्म और भक्ति का त्रिविध समन्वय ही अध्यात्म का त्रिवेणी तीर्थ है–

जप तप नियम जोग निज धर्मा ।
श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥
ज्ञान दया दम तीरथ मज्जन ।
जहँ लगि धर्म कहिय श्रुति सज्जन ॥
आगम निगम पुरान अनेका ।
पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ॥
तब पद पंकज प्रीति निरन्तर ।
सब साधन कर यह फल सुन्दर ॥

राम-राज्य में सभी नागरिक धर्म का पालन करते हैं और रोग, शोक, भय आदि आधि-व्याधियों से मुक्त रहते हैं–

वरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग ॥

जो धर्म-कर्तव्यों में निरत है, रामायण की दृष्टि में वे ही धन्य है ।

धन्य देश सो जहँ सुरसरी ।
धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई ।
धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी ।
धन्य पुण्य रत मति सोई पाकी ॥
धन्य घरी सोई जप सतसंगा ।
धन्य जन्य द्विज भगति अभगा ॥

परोपकार उदार हृदय की प्रतिकृति

मानव शरीर के साथ जुड़ी हुई विशेष सुविधाएँ, विभूतियाँ एवं सम्पदाएँ ईश्वर की अमानत हैं, जो उसके विश्व-उद्यान को सुविकसित बनाने के लिए मिली हैं । अन्य प्राणियों से अधिक शरीर निर्वाह के अतिरिक्त जो कुछ उसे मिला है, वह विशुद्ध रूप से परमार्थ प्रयोजनों के लिए हैं ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है । उसकी प्रगति एवं सुविधाओं का प्रधान आधार समाज द्वारा मिला सहयोग है । अन्न, वस्त्र, शिक्षा, शासन, सुख-साधन, वाहन, आजीविका, चिकित्सा, पत्नी आदि प्रायः सभी सुविधाएँ एवं योग्यताएँ उसे समाज द्वारा मिली हैं । एकाकी मनुष्य तो भेड़िये की माँद में मिले अविकसित रामू बालक की तरह निरीह ही हो सकता है । जिस समाज से इतने अधिक अनुदान मिले उसका ऋण चुकाना मानवी कर्तव्य है ।

भारतीय संस्कृति के जननी जनक गायत्री और यज्ञ माने गये हैं । दोनों का युग्म अविच्छिन्न है । सद्बुद्धि रूपी गायत्री का प्रकाश जहाँ भी होगा वहाँ पवित्र जीवन एवं लोकमंगल के लिए बढ़-चढ़ कर त्याग बलिदान की प्रेरणा देने वाला यज्ञ भी जुड़ा रहेगा । जब कि बादल, नदियाँ, वृक्ष, पशु आदि सभी निरन्तर देते ही रहते हैं तो मनुष्य में परोपकार वृत्ति की कृपणता क्यों होनी चाहिये ? शरीर के अवयव एक-दूसरे को अपना श्रम एवं अनुदान प्रदान करते हैं तभी जीवन चलता है । समाज रूपी शरीर को ठीक तरह चलाने के लिए मनुष्यों में परस्पर स्नेह, सहयोग, उदारता एवं परोपकार की भावनाएँ उद्दीप्त रहनी चाहिये ।

परहित परायण रहकर सेवा-मार्ग अपनाने को रामायण सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती है और दूसरों का अहित करने को सबसे बड़ा पाप, सबसे बड़ी नीचता कहती है–

परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

परोपकार में अपना जीवनदान देने वाले की सदा-सर्वदा सत्पुरुष प्रशंसा करते रहते हैं–

परहित लागि तजइँ जो देही ।
सन्तत सन्त प्रसंसहि तेही ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जटायू परहित के लिए अपनी जान की बाजी लगा देता है । तब भगवान राम उसको परम धार्मिकों से भी श्रेष्ठ गति देते हुए कहते हैं—

परहित बस जिन्हके मन माहीं ।
तिन्ह तहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

परमार्थ की प्रेरणा देते हुए मानसकार ने प्रतापभानु की कथा के अन्तर्गत जड़ पदार्थों में भी परमार्थ वृत्ति के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

सन्त बिटप सरिता गिरि धरनी ।
परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥

काकभुशुण्डि जी सन्तों का स्वभाव भी प्रकृति की तरह परमार्थ-परायण बतलाते हैं—

पर उपकार वचन मन काया ।
संत सहज सुभाउ खगराया ॥
संत सहहिं दुख पर हित लागी ।
पर दुख हेतु असंत अभागी ॥

धर्म-चिन्तन का प्रकटीकरण सत्कर्मों के रूप में सामने आता है । धर्मात्मा और कार्यनिष्ठ एक ही स्तर के दो नाम हैं । मानवी गरिमा से अनुरूप मनुष्य का व्यक्तित्व, चरित्र एवं कर्तृत्व होना चाहिये । रामायण में व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने वालों को ही धर्म परायण माना गया है और धर्म को सद्भावनाओं एवं सत्प्रवृत्तियों को प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

देव काज सँवारने के लिए राम कमर कसकर उठे और उस प्रयोजन में बहुत ही प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ लग गये—

तब रघुपति जानत सब कारन ।
उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥

वन्दना प्रकरण में यह मत व्यक्त किया गया है कि कीर्ति, विद्या, ऐश्वर्य आदि सम्पतियों की सार्थकता एवं प्रशंसा तभी है जब वे गंगा के समान सर्वजनीन हित साधना में प्रयुक्त हो सकें ।

कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥

मानस के पात्र धर्म कर्तव्यों के निर्वाह के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं । विश्वामित्र जी दशरथ से उनके पुत्रों को माँगने आये ताकि उन्हें असुरता से लड़ाया जा सके । वे कहते हैं— हे राजन् ! मोह और अज्ञानजन्य उदासी छोड़कर पुत्रों को परमार्थ के लिए प्रदान करो । इससे तुमको धर्म सेवा का यश मिलेगा और इन बालकों का कल्याण होगा—

असुर समूह सतावहिं मोही ।
मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा ।
निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥
देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कहँ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥

प्रसन्नता के अवसरों पर सामर्थ्य के अनुसार दान देने की परम्परा है । राम जन्म के अवसर पर अयोध्यावासियों में दान का इतना उत्साह था कि अपने पास जो कुछ था वह सब दे डाला । किन्तु लेने वालों का स्तर देखिये उन्होंने भी अपने पास कुछ नहीं रखा, वरन् जो पाया वह दूसरों को दे डाला—

सर्वस दान कीन्ह सब काहू ।
जेहि पावा राखा नहिं ताहू ॥

इस दान की प्रक्रिया को सर्वत्र सराहा गया पर उसमें औचित्य का पूर्ण ध्यान रखा गया । जो लेने का अधिकारी था उसे वह ही दिया जो उचित है । कुपात्रों को अहितकर दान तो सर्वदा अहितकर परिणाम ही उत्पन्न करता है—

देखि कृपा कर सकल सराहें ।
दिये उचित जिन जिन तेइ चाहें ॥

जो माँगते नहीं, जो संग्रह नहीं करते, जो गिड़गिडाते- पूँछ हिलाते नहीं, ऐसे स्वाभिमानी सत्कर्म परायण परमार्थियों को बादल जैसे उदार हृदय लोग ही बिना माँगे सहायता देते हैं । सुपात्र को अपनी ओर से देने की महत्ता है । दोहावली में इस संदर्भ की उक्ति है—

नहिं जाचत नहिं संग्रहै, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी चातकहिं, को वारिद बिनु देइ ॥

तुलसीदासजी परमार्थ को सद्गति के लिए अनिवार्य बतलाते हुए विनयपत्रिका में कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जानत हूँ मन बचन कर्म परहित कीन्हे तरिये ।"

"मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मन, वाणी और कर्म से परोपकार करने से ही तर सकता हूँ, मुक्ति पा सकता हूँ ।"

वाणी का शील और सन्तुलन

वाणी की धारा मन:स्थिति की दिशा में प्रवाहित होती है । शराब पीकर, लहसुन खाकर आने वाले के पेट में जो कुछ भरा है उसी के अनुरूप गन्ध मुँह से आती है । इसी प्रकार मनोदशा के अनुरूप वचन बोले जाते हैं । ओछे, अहंकारी मनुष्य सदा आत्म प्रशंसा के गीत गाते हैं और दूसरों की निन्दा करके अपना बड़प्पन सिद्ध करने की विडम्बना में लगे रहते हैं । दुष्ट दुराचारियों के मुख से वैसी ही चर्चा सुनी जा सकती है, जिससे अनाचार उत्पन्न होता हो । सन्त सज्जन सदा हृदय को शान्ति देने वाले प्रेम, नम्रता और शालीनता भरे वचन बोलते हैं । जिस प्रकार मन की स्थिति के अनुरूप मुख से वचन निकलते हैं, उसी प्रकार वाणी को परिष्कृत बनाने का अभ्यास करते हुए मानसिक स्थिति को उच्चस्तरीय बनाने का अभ्यास किया जा सकता है ।

किसी की अन्त:स्थिति का पता उसके मुख से निकलने वाली वचन-चर्चा से सहज ही लगाया जा सकता है । दूसरों पर अपने व्यक्तित्व की जैसी छाप छोड़नी हो, उसी के अनुरूप वाणी को अभ्यस्त करना चाहिये । यदि सज्जन के रूप में अपने को प्रस्तुत करना है तो वाणी में नम्रता, मधुरता, गंभीरता, शालीनता एवं दूरदर्शिता का समुचित समावेश रहना ही चाहिए ।

वाणी उत्तरदायित्वों से भरी होनी चाहिये । जो किया जा सकता है वही कहना चाहिये । जो आश्वासन दिया गया है उसे पूरा करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये । वचनभंग का लांछन अपने ऊपर नहीं लगने देना चाहिये—

रघुकुल रीति सदा चलि आई ।
प्रान जाहिं पर बचन न जाई ॥

श्रीराम की वाणी के अद्भुत सन्तुलन का प्रमाण वनवास के प्रसंग में मिलता है । वे कितने धैर्यशील हैं कि इतनी बड़ी विपत्ति को हंसते हुए काट रहे हैं । यही नहीं शोक विह्वल पिता को स्वान्त्वना देते हुए आसन्न संकट को प्रसन्नता की बात, मंगल-समय कहते हुए टाल देने वाले मनस्वी के समान वचन कहते हैं—

अति लघुबात लागि दुखु पावा ।
काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइहि पूँछिउँ माता ।
सुनि प्रसंग भए सीतल गाता ॥

कैकेयी की कठोरता और दुष्टता को जानते हुए भी राम अपना सन्तुलन और सौजन्य नहीं खोते । सहज मुस्कान बनाये रहते हैं और शान्त चित से गुत्थी सुलझाते हैं—

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू ।
राम सहज आनन्द निधानू ॥

परशुराम जी के क्रोधित होने पर श्री राम अपने शीलयुक्त विनम्र वचनों से उन्हें शान्त कर देते हैं । भगवान राम का शील, व्यावहारिकता और दृढ़ता देखते ही बनती है । नम्रता से कठोरता को पिघलाना राम की प्रधान नीति थी—

अति बिनीत मृदु सीतल बानी ।
बोले राम जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना ।
बालक बचन करिअ नहिं काना ॥
बररै बालक एक सुभाऊ ।
इन्हहिं न सन्त बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा ।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपि बधु बँधव गोसाईं ।
मो पर करिअ दास की नाईं ॥

रुखाई के व्यवहार और प्रेम भरी दृष्टि से देखने में कितना अन्तर होता है, इसे उस मसय देखा गया जब राम की प्यार भरी दृष्टि से वानरों की युद्ध जनित सारी थकान दूर हो गई—

भये बिगत श्रम बानर सबहीं ।
राम कृपा करि चितवा जबहीं ॥

वनवास का शोक उद्वेग भरा कठिन प्रसंग सामने होने पर भी राम अपना धैर्य, सन्तुलन नहीं खोते । उत्तेजित आवेशग्रस्त नहीं होते । वरन् मधुरता, मृदुलता को स्थिर रखते हुए माता से निवेदन करते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धरम धुरीन धरम अति जानी ।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥

भरत का हठ राम के शील के सामने झुक गया । वे अपने मुँह से राम के सत्य पालन का समर्थन करके वन में रहने के औचित्य को स्वीकार करते हैं । हठ को छोड़कर औचित्य को ही अपनाना चाहिए, उसका समर्थन करना चाहिए—

राखा मोर दुलार गोसाईं ।
अपने सील सुभायँ भलाई ॥
नाथ निपट मैं कीन्ह ढिठाई ।
स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥

नीति का विरोध कभी नहीं किया जाना चाहिए । हितकर और कठोर वाणी बोलने वाले और सुनने वाले बहुत कम लोग है । मीठा बोलना उचित तो है, पर सत्य और हित मिश्रित बात यदि कठोर लगती हो तो भी उसकी उपयोगिता है । इसके विपरीत मधुरता के लिए चापलूसी करना निरर्थक है—

कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती ।
नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं ।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
वचन परम हित सुनत कठोरे ।
सुनहिं जे कहहिं ते नर प्रभु थोरे ॥

ठकुर सुहाती कहना— चापलूसी करना, सामने वाले का रुख देखकर उसकी हाँ में हाँ मिलाना स्वार्थसिद्ध करने वाले चाटुकारों का पेंशा हो सकता है । पर जिम्मेदार लोगों को तो निर्भयता पूर्वक यथार्थ अभिमत ही व्यक्त करना चाहिये । यदि बड़े और जिम्मेदार लोग सत्परामर्श न देकर हवा का रुख देख कर बोलने लगें तो फिर सर्वनाश ही प्रस्तुत होगा—

सचिव वैद गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धरम तन तीनि कर होइ बेगही नास ॥

मनुष्य का व्यवहार, वचन और विचार सत्यनिष्ठा पर आधारित होना चाहिए । छल, कपट एवं मिथ्या भाषण से बचने का प्रयत्न करना चाहिए । सत्य और प्रिय बचन बोलने वालों के अन्तःकरण भगवान के निवास के योग्य हैं यह वाल्मीकि जी का अभिमत है—

कहहिं सत्य प्रिय वचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥

चित्रकूट में भगवान राम ने सत्य को सर्वश्रेष्ठ धर्म बताया है—

धरमु न दूसर सत्य समाना ।
आगम निगम पुरान बखाना ॥

कैकेयी को समझाते हुए राजा दशरथ जी ने असत्य को सभी पापों से अधिक तथा सत्य को सभी सत्कर्मों का मूल बताया है—

नहिं असत्य सम पातक पुंजा ।
गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्यमूल सब सुकृत सुहाये ।
बेद पुरान बिदित मनु गाये ॥

श्री राम की वाणी का प्रभाव उनके परिजनों पर हर जगह अद्भुत पड़ा, किन्तु रावण के उपदेश निरर्थक गये । दूसरों को शिक्षा देने वाले और स्वयं अज्ञान में भटकने वालों की कमी नहीं । रावण मेघनाद की मृत्यु पर रानियों को तो ब्रह्मज्ञान सिखाता है, पर स्वयं उसी माया-मोह में चोटी तक फँसा हुआ है । ऐसे परउपदेश कुशल लोगों की संसार में कमी नहीं—

तब दसकन्धर बिबिध बिधि, समुझाई सब नारि ।
नश्वर रूप जगत यह, देखहु हृदय बिचारि ॥

वाणी में मनुष्य के आचरण से ओज आता है । उपदेश करने वाले तो बहुत है, पर आदर्श को काम में लाने वाले थोड़े ही लोग होते हैं । इन आचरणकर्त्ताओं को ही ज्ञान का सत्परिणाम मिलता है और वे ही दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं । जो उपदेश दूसरों को देना है और उनसे पालन कराना है, उसे कार्य रूप में करके भी दिखाना चाहिये । अपना आचरण उन उपदेशों के अनुकूल ढालना चाहिये ।

वाणी के सन्तुलन का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि जिस कथन से विग्रह उत्पन्न हो उसे सत्य होते हुए भी नहीं कहना चाहिए । बहुत से प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें गुप्त रखना ही लोकहित की दृष्टि से आवश्यक है । उन्हें प्रकट करने में सत्य का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता, वरन् उस तथाकथित सत्य भाषण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से असत्य आचरण जैसी स्थिति बन जाती है । अस्तु, ऐसे अवसरों पर गोपनीयता ही उचित है ।

भगवान राम सुमंत से लक्ष्मण द्वारा दशरथ, कैकेयी, भरत आदि के लिए कहे गये कटु वचनों को अयोध्या जाकर न कहने का निर्देश करते हैं और उसके लिए कसम तक खिलाते हैं—

लखन कहे कछु बचन कठोरा ।
बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ दिवाई ।
कहबि न तात लखन लरिकाई ॥

बोलने में केवल शब्दों का महत्त्व नहीं है, उसमें भी प्रधान है भाव । उन्हीं शब्दों का प्रयोग भिन्न-भिन्न भावों में किया जाता है । स्वयं अभिमान से दूर रहने के लिए अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को देना अच्छी बात है । भगवान इससे प्रसन्न होते हैं । हनुमान जी लंका जलाकर लौटते हैं । प्रभु प्रसन्नता व्यक्त करके उनकी सराहना करते हैं, तो वे कहते हैं—

सो सब तव प्रताप रघुराई ।
नाथ न कछु मोर प्रभुताई ॥

उनकी इस निरभिमानिता से प्रसन्न होकर उन्हें दुर्लभ भक्ति का वरदान देते हैं ।

इसी प्रकार अंगद जब रावण की सभा में खलवली मचाकर लौटते हैं तो वे भी अपनी विनम्रता ही दिखाते हैं—

रिपुबल धरषि हरषि कपि, बाल तनय बलपुंज ।
पुलक शरीर नयन जल, गहे राम पद कंज ॥

तब भी भगवान उन पर प्रसन्न होकर उनका आदर करते हैं, क्योंकि हुनमान जी और अंगद के वास्तविक भाव भी वही थे । किन्तु काम-विजय के प्रसंग में नारद के साथ भगवान का व्यवहार भिन्न प्रकार का था । भगवान काम-विजय पर उनकी प्रशंसा करते हैं तो वे उत्तर देते हैं ।

पुरुषार्थ एवं पराक्रम का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । मात्र नम्रता निरभिमानिता, सज्जनता ही पर्याप्त नहीं, वरन् मनुष्य को स्वाभिमानी, स्वावलम्बी, श्रमशील एवं अनीति से लड़ने के लिए शूरवीर भी होना चाहिए । शरीर बल, बुद्धिबल और धनबल से भी अधिक महत्त्व की वस्तु है । मनोबल और आत्मबल की तरह इसे संपादित किया जाना चाहिये । मनस्वी, तेजस्वी, ओजस्वी बनना और व्यक्तित्व को प्रखर बनाने वाले कर्तव्य भी तत्परतापूर्वक अपनाये जाने चाहिए । इसी अभ्यास को तप कहा गया है ।

संसार में विपत्तियाँ सभी पर आती हैं । जिन्हें कष्ट सहन का अभ्यास होता है वे कठिन कर्तव्यों के आ पड़ने पर अविचलित रहकर श्रेष्ठ मार्ग पर आगे बढ़ जाते हैं । देखने वाले उनकी कठिनाई देखकर भले ही सिहर उठें परन्तु तप के अभ्यास के कारण वे उन्हें सहज भाव से पार कर जाते हैं । राम वन-गमन के प्रसंग में जब सीताजी सहित दोनों भाई कुश बिछाकर सोते हैं, तो उन्हें देखकर निषाद कहते हैं—

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ ।
ससुर सुरेसा सखा रघुराऊ ॥
रामचन्द्र पति सो वैदेही ।
सोबत महि बिधि बाम न केही ॥
ते सिय रामु साथरी सोए ।
श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए ॥

असंभव लगने वाले प्रसंग आने पर सामान्य व्यक्ति निराश होकर बैठ जाते हैं, किन्तु संकल्प के धनी उसके अनुरूप शक्तियाँ जाग्रत करने में लग जाते हैं । महान कार्य इसी ढंग से होते हैं । तप के लिए तैयार पार्वती जी ने मात्र अपना स्वप्न बताया तथा हिमाचल से कहा—

मातु पितहि पुनि यह मत भावा ।
तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा ॥
तप बल रचइ प्रपंच विधाता ।
तप बल विष्नु सकल जग त्राता ॥
तप बल संभु करहिं संघारा ।
तप बल सेषु धरइ महि भारा ॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी ।
करहि जाइ तप अस जिय जानी ॥
जो तप करइ कुमारि तुम्हारी ।
भाविहुँ मेटि सकहिं त्रिपुरारी ॥

धर्मनिष्ठ सदैव मृदु ही बना रहे यह आवश्यक नहीं । दृष्टता से निपटने के लिए जो रोष उत्पन्न होता है उसे मन्यु कहते हैं और स्वार्थ की हानि या अहंकार में क्षति पड़ने पर जो उत्तेजना उत्पन्न होती है उसे क्रोध कहते हैं । क्रोध की निन्दा और मन्यु की उपयोगिता आवश्यकता है । सदुद्देश्य में अडंगा अटकाने वाले कुटिल कठोर हृदय समुद्र को प्रबोध करने के लिए लक्ष्मण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वारा उससे कड़ाई के साथ निपटने का आग्रह करने पर श्रीराम उसको दण्ड देने का निश्चय करते हैं—

लक्ष्मण बाण सरासन आनू ।
सोखौं वारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती ।
सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी ।
अति लोभी सन विरति बखानी ॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा ।
ऊसर बीज बएँ फल जथा ॥
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा ।
यह मत लछिमन के मन भावा ॥

जो लोग धर्म के नाम पर केवल भगवान से माँगने पर विश्वास करते हैं, उनके सम्बन्ध में तुलसीदास जी का मत है कि उनका दुख कोई दूर नहीं कर सकता । "विनय पत्रिका" के एक पद में वे लिखते हैं—

देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्‌यो ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हर्‌यो ॥

भीख माँगने, प्रार्थना करने से दुसह दरिद्र, दोष, दुःख से कोई भी नहीं बच सकता, अतः किसी से न मांग कर पुरुषार्थ करना चाहिये । याचना करने से न भक्ति मिलती है न मुक्ति, उन्हें तो प्रबल पुरुषार्थ द्वारा ही उपार्जन किया जाता है ।

जो लोग रूप तो धर्मात्माओं का बनाये फिरते हैं पर आचरण निकृष्ट रखते हैं, "दोहावली" मे उनकी भर्त्सना करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं—

सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति।
तुलसी ता पर चाहिये, कीरति विजय विभूति॥

यश और विजय प्राप्त करने के लिए सिंह जैसा शौर्य, साहस चाहिये । कुत्ते जैसी दीन मनःस्थिति और परमार्थ का स्वांग भरने की विडम्बना से कुछ हाथ नहीं लगता ।

भले व्यक्ति कभी भी भ्रमवश काल, स्वभाव, संग आदि के प्रभाव से, भलाई से हट जाते हैं किन्तु ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति उन्हें तुरन्त सुधार लेते हैं । ऐसा करने से दुःख और दोषों का नाश होकर सुन्दर यश की प्राप्ति होती है ।

भूल होने पर न तो हतोत्साह होकर बैठ जावें और न अहंकार पूर्वक अपने दोष को छिपाने की धृष्टता करें । दोष स्वीकार करके उन्हें ठीक करना भी बड़े साहस का काम है । यह सत् साहस ईश्वरनिष्ठों में, सच्चे आस्तिकों में स्वाभाविक रूप से होता है । अतः वे भूलों की शृंखला को वहीं तोड़कर दुःख से बच जाते हैं ।

काल सुभाउ करम बरि आई ।
भलेहु प्रकृति बस चुकइ भलाई ॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेंही ।
दलि दुख दोष विमल जसु देंही ॥

किसी का शरीर, वैभव, विद्या, विस्तार देखकर उसे बड़ा नहीं माना जा सकता । बड़प्पन का कारण मनुष्य का मनोबल, आत्मबल होता है । मनस्वी एवं तेजस्वी मनुष्य स्थूल दृष्टि से छोटे अथवा सामान्य दीखते हुए भी अपनी आन्तरिक प्रखरता के कारण वस्तुतः अत्यन्त सामर्थ्यवान होते और बड़े-बड़े प्रयोजन पूरे करते हैं । राम का शरीर सामान्य किन्तु शिव धनुष के असामान्य होने की बात सोच कर जब सीताजी की माता चिन्ता करने लगती है तो उनकी सखी तेजस्विता की महिमा बताती है, मनोबल और आत्मबल की शक्ति समझाती है—

बोली चतुर सखी मृदुवानी ।
तेजवन्त लघु गनिअ न रानी ॥
कहँ कुम्भज कहँ सिन्धु अपारा ।
सोषेउ सुजसु सकल संसारा ॥
रबि मंडल देखत लघु लागा ।
उदयँ तासु त्रिभुवन तम भागा ॥
मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्व ।
महामत्त गजराज कहुं, बस कर अंकुस खर्ब ॥

स्थान का मोह करना निरर्थक है, वहीं अपना प्रिय स्थान, प्रिय निवास अनुभव किया जाना चाहिए जहाँ सदुद्देश्यों की पूर्ति होती हो । सुमित्रा लक्ष्मण के घर-गाँव छोड़कर देश-विदेश में चले जाने में कुछ बुराई नहीं देखती और उन्हें समझाती हैं कि जहाँ सूर्य निकल रहा हो वहीं दिन, और जहाँ राम-काज करना पड़े वहीं अपना अयोध्या जैसा प्रिय निवास स्थान मानना —

अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहँइ दिबस जहँ भानु प्रकासू॥

कर्तव्य मार्ग में यदि कुटुम्बी जन बाधक होते हों और समझाने पर भी सही मार्ग पर चलने को सहमत न होते हों तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी उपेक्षा भी की जा सकती है, यहाँ तक कि उन्हें छोड़ा भी जा सकता है–

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये तिनहिं कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यौ पिता प्रह्लाद बिभीषण बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यौ कन्त ब्रज बनितन भे मुद मंगलकारी ॥

समय की आवश्यकता के अनुरूप युग-धर्म बदलता रहता है । एक परिस्थिति में जो तथ्य प्रयुक्त होने योग्य होते हैं, वे ही बदली हुई परिस्थितियों में अयोग्य हो जाते हैं । आपत्ति-धर्म का अनुसरण बदली हुई परिस्थितियों में करना पड़ता है । इसे युग-धर्म कहते हैं–

बुध जुग-धर्म जानि मन माहीं ।
तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥

कार्य सोच-विचार करके नहीं करने से, जल्दबाजी में बिना यथार्थता समझे कोई निष्कर्ष निकाल लेने वालों को अन्ततः पछताना ही पड़ता है । जिसका चिन्तन जितना प्रखर, परिष्कृत एवं गहराई में जा सकने वाला होगा वह उतनी ही स्पष्ट वस्तु स्थिति जान सकेगा और उसी आधार पर सही निर्णय करके सही काम कर सकेगा -

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा ।
सहसा करि पछिताहि बिमूढ़ा ॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझें ।
बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझें ॥
गहहु घाट भट सिमिट सब, लेउँ मरम मिलि जाइ ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तब तस करिहउं आइ ॥
अनुचित उचित काजु कछु होई ।
समुझि करिअ भल कह सब कोई ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं ।
कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥

दुनियाँ में भेड़ियाधसान चल रहा है । जड़बुद्धि जड़ता का सम्मान करती है । लोग वस्तुओं को ही चाहते हैं, किन्तु उन्हें प्राप्त करने से अभिमान बढ़ता है और खोने से शोक सन्ताप डूबना पड़ता है–

लसी भेड़ी को धसिनि, जड़ जड़ता सनमान ।
ये ते अभिमान पुनि, खोये मूढ़ अपान ॥

कथा, सत्संग, स्वाध्याय आदि से तो ज्ञान की आरंभिक भूमिका ही पूरी होती है । सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए तो सद्ज्ञान को सत्कर्म के रूप में परिणत करना पड़ता है । अन्यथा वह ज्ञान बुद्धिविलास मात्र बनकर रह जाता है । कर्म में ही ज्ञान की सार्थकता है–

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई ।
सम्यक ज्ञान सुकृत कोउ लहई ॥

नीति कहती है कि संकट में मनुष्य का कोई साथ नहीं देता और संकट में जो साथ दे वहीं हितैषी, बन्धु है । यह संकट हमारे लिए कसौटी बनता है और हमारे मित्र बाँधवों के लिए भी कसौटी बन कर उनकी पहँचान करा देता हे -

संकट परे परखिए चारी ।
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ॥

कर्म और उसका प्रतिफल

यह सृष्टि कर्म फल के आधार पर चल रही है । ईश्वर ने संसार को बनाया और उसे नियमबद्ध, क्रमबद्ध, सुसंचालित रखने के लिए कर्मफल का विधान रचा । कर्म करने की स्वतंत्रता तो हर किसी को दी, किन्तु साथ ही यह विधान भी बना दिया कि हर किसी को अपने कर्मों का कर्मफल भुगतना पड़ेगा । इस नियम से ईश्वर ने अपने को भी मुक्त नहीं रखा, वरन् वह भी उसी कार्य मर्यादा में बँध गया । भगवान राम ने छिपकर बालि को मारा । उसी का प्रतिफल उन्हें कृष्ण जन्म में बहेलिया द्वारा बाण से बेधे जाने के रूप में भुगतना पड़ा । राम के पिता दशरथ ने श्रवणकुमार को बाण से मार दिया । उसके पिता ने शाप दिया कि हमें जिस प्रकार पुत्रशोक में विलख कर मरना पड़ रहा है, वैसे ही तुझे भी मरना पड़ेगा । दशरथ की मृत्यु उसी प्रकार विलख-विलख कर हुई । राम अपने पिता को भी उस कर्मफल से छुड़ाने में समर्थ नहीं हुए । कृष्ण का भानजा सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु महाभारत में मारा गया । अपने सखा, बहनोई और भक्त अर्जुन पर पुत्र शोक की आपत्ति आई । अभिमन्यु की मृत्यु का समाधान करते हुए कृष्ण ने सुभद्रा और अर्जुन को कर्मफल की प्रबलता समझाई और कहा कि वे भगवान होते हुए भी प्रारब्ध भोग को टालने में असमर्थ है ।

यहाँ कर्म की ही प्रबलता है । ईश्वर का किसी के सुख-दुःख में हस्तक्षेप नहीं । भाग्य की अपनी अलग से कोई सत्ता नहीं । वह कर्म की परिणति मात्र है । बिजली हमारी विविध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधि सेवा साधना में लगी रहती है, पर यदि उसे गलत रीति से छुआ जाय तो प्राण हरण भी कर लेती है और इस बात का ध्यान नहीं करती कि फिटिंग कराने वाला उससे कितना प्रेम करता है। भगवान की भी ऐसी ही विधि-व्यवस्था है जो सत्पथगामी के लिए विविध विधि सुख, सुविधाएँ प्रस्तुत करती हैं और कुमार्ग पर चलने वाले को दण्ड देने से भी नहीं चूकती। भगवान का एक नाम रुद्र भी है जिसका अर्थ होता है भयंकर। सन्मार्ग गामी के लिए वे भक्त वत्सल, दीनदयाल, करुणानिधान, दयासिन्धु आदि हैं। पर कुकर्मी के लिए जल्लाद की तरह निर्दय बनकर पूरी कठोरता से दण्ड व्यवस्था भी करते हैं। इस कठोर व्यवस्था को भक्त लोग मवाद से भरे फोड़े में चीरा लगाना जैसा मानते हैं और वे यह आशा नहीं करते कि पूजा-पाठ से प्रसन्न होकर भगवान अपनी कर्म-व्यवस्था को पलट देंगे। वे भक्त-अभक्त का भेद किये बिना फल की यथोचित व्यवस्था करते हैं। रामायण में इसका उल्लेख अनेक स्थलों पर स्पष्टता से किया गया है।

"अयोध्याकाण्ड" में कर्म के अनुसार ही फल मिलने का सिद्धान्त शास्त्र तथा लोक सम्मत कहा गया है—

करइ जो कर्म पाव फल सोई।
निगम नीति अस कह सब कोई॥

इसी सन्दर्भ में एक मार्मिक प्रकरण "अरण्य काण्ड" में आता है जब जटायु को शरीर त्याग कर परम गति में जाते हुए देख कर राम आँखों में आँसू भर कर कहते हैं - 'हे तात ! तुमने सत्कर्म द्वारा ही यह श्रेष्ठ प्रतिफल पाया है"—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
तात कर्म निज तें गति पाई॥

परमात्मा मनुष्य के शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार निर्णय करके फल देता है, यह तथ्य "अयोध्याकाण्ड" में नगरवासियों की चर्चा में स्पष्ट उतरता है—

सुभ अरु असुभ कर्म अनुसारी।
ईस देइ फल हृदय विचारी॥

वन गमन के कथा — प्रसंग में जब भगवान राम एवं जानकी को धरती पर सोता देखकर निषादराज गुह दुःखी होता है तो लक्ष्मण जी उसे समझाते हुए कहते हैं—

कोउ न काहु दुख सुख कर दाता।
निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥

अस विचारि नहिं कीजिअ रोषू।
काहुहि व्यर्थ न दे इय दोषू॥

"अयोध्याकाण्ड" में देवगुरु बृहस्पति देवराज इन्द्र को भगवान की कर्म-मर्यादा का बोध कराते हुए कहते हैं—

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥

मानस के पात्र इस तथ्य को भली प्रकार जानते हैं कि मुख्य तो मनुष्य के कर्म हैं। भगवान का विधान तो उन भले बुरे कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुख की व्यवस्था भर करता है। श्री राम, लक्ष्मण एवं जानकी को वन में देखकर ग्रामवासी आश्चर्य करते हैं, किन्तु स्वतः अपना समाधान यही तथ्य समरण करके करते हैं—

जनम हेतु सब कहँ पितु माता।
करम सुभासुभ देइ बिधाता॥

चित्रकूट के प्रसंग में माता सुनयना दुःखी होकर विधि-विडम्बना को दोष देने लगती है, तब माता कौशिल्या उन्हें समझाती हुई कहती है कि विधाता को दोष देना उचित नहीं। कर्म का सिद्धान्त अकाट्य है और उसे विधाता ही जानता है। अपने अज्ञान के कारण उसे बुरा नहीं कहना चाहिए -

कौसल्या कह दोसु न काहू।
करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जानि विधाता।
जो सुभ असुभ कर्मफल दाता॥

यह मर्म समझने वाले बुद्धिमान भगवान से अपने स्वार्थ के लिए कर्म-बंधन तोड़ने का आग्रह नहीं करते। मरते समय बालि यही मांगता है कि कर्मवश जिस जोनि में भी जाऊँ वहाँ आपके प्रति प्रेम बना रहे -

"जेहि जोनि जन्मों कर्म बस तेहि राम पद अनुराग हूँ।"

स्वयं भगवान राम 'उत्तरकाण्ड' में भरत को समझाते हुए कहते हैं कि अनीति करने वालों के लिए मैं कठोर बनकर अपनी शुभाशुभ कर्म व्यवस्था को बनाये रखता हूँ -

काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता।
सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता॥

मनुष्य अपने कर्म से अधिक कुछ नहीं पा सकता। यह भाव बड़े सुन्दर ढंग से 'दोहावली' में समझाया गया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वहाँ पर गोस्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य अपने कर्मरूपी कमंडल को सागर, सरिता, कुआँ या जहाँ कहीं भी डुबाये उसमें जल उतना ही आवेगा जितना उसका पात्र है। अर्थात् मनुष्य प्रारब्ध को दोष न दें, अपने कर्मों से प्रति सजग रहें —

करम कमंडलु कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाय ।
सागर सरिता कूप जल, बूँद न अधिक समाय ॥

राम-जन्म में ही नहीं कर्म-व्यवस्था की मर्यादा भगवान ने अन्य अवतारों में भी रखी है। मानसकार 'विनय पत्रिका' में लिखते हैं—

हरिहु और अवतार आपने, राखी वेद बड़ाई ।
ले चिबरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मितई ॥

अर्थात् — हे प्रभु आपने सभी अवतारों में वेदों की मर्यादा पाली है। यद्यपि सुदामा से आपकी बचपन की मित्रता थी। पर जब सुदामा ने अपनी शक्ति के अनुसार चावल देने का साहस किया तभी भगवान ने उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार सम्पत्ति दी।

पाप फल का निराकरण होने का ईश्वरीय तथा सामाजिक दण्ड भुगतने के अतिरिक्त, दूसरे विकल्प यह है कि हम उनका प्रायश्चित करें। पूरा समाज एक इकाई है। किसी भी व्यक्ति के साथ किया गया अपराध समस्त समाज के प्रति किया गया है। उसका प्रायश्चित यही हो सकता है कि समाज के किसी घटक को जो क्षति पहुँचाई गई है उसकी पूर्ति समाज में सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन करके, पतन के लिए खोदे गड्ढे को उत्थान की मिट्टी से पाटकर करदें। पाप की क्षति को पुण्य की उदारता से पूरा करें। इसी से पापों का स्वेच्छा-दण्ड भुगता जा सकता है और संचित तथा क्रियमाण कर्मों के फल से निवृत्ति मिल सकती है। प्रारब्ध का परिपाक तो तब भी भुगतना ही पड़ता है। भगवान ने सबको कर्म स्वतन्त्रता दी है, किन्तु उसका फल देना अपनी निष्पक्ष न्यायसत्ता के अन्तर्गत रखा है। उस समदर्शी को किसी को दुख, किसी को सुख देने की क्या आवश्यकता ?

प्रारब्ध, कर्म-फल को ही विधि का विधान — ईश्वर का कानून कहा जाता है। उसकी अमिटता का उल्लेख मानस में किया गया है।

पार्वतीजी के तप का प्रसंग विख्यात है। वे जानती हैं कि पिछले जन्म में शिवजी की आज्ञा-भंग तथा भगवान के साथ किये कपट व्यवहार का प्रायश्चित प्रचण्ड तप से करना ही होगा। अत: विवाह का प्रकरण आने पर उनकी माता मैना देवी जब मोहवश दु:खी होती हैं तो वे उन्हें समझाती हैं और कहती है कि माताजी ! आप कर्म की व्यवस्था को मिटा नहीं सकतीं। जो कष्ट मुझे भोगना है वह हर हालत में कहीं न कहीं भोगना ही पड़ेगा। अत: कष्ट के भय से मुझे श्रेष्ठ जीवन-क्रम अपनाने से रोको मत —

तुम सन मिटहिं कि विधि के अंका ।
मात व्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥
दुख सुख जो लिखा लिलार हमरे ।
जाब जहँ पाउब तही ॥

इसी प्रकार का भाव गुरु वशिष्ठ राम-वन-गमन तथा दशरथ मरण के सन्दर्भ में भरतजी से व्यक्त करते हैं। कर्म के अनुसार अपने शिष्य राजा दशरथ के मरण तथा राक्षसों को दण्डित करने के लिए श्री राम का वनगमन अटल प्रसंग के रूप में सामने आ चुके थे। वे भरत से दु:खी होकर उसे टालने की अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते हैं—

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलख कहेउ मुनिनाथ ।
हानि लाभ जीवन मरनु,जसु अपजसु बिधि हाथ ॥

विधि ब्रह्मा को भी कहते हैं तथा कानून को भी। कर्म करने में मनुष्य स्वतन्त्र है, पर उसका फल देना ब्रह्मा अथवा भगवान की नियम-व्यवस्था के अन्तर्गत है। यही भाव गुरु वशिष्ठ जी का है।

यश-अपयश, हानि-लाभ, मर्यादा के अनुसार अथवा विधि (नियम-व्यवस्था) के अनुरुप ही मिलते हैं। इसकी पुष्टि मानस के अन्य स्थलों पर भी मिलती है। काकभुशुण्डि- संवाद में कहा गया है—

पावन जसु कि पुण्य बिनु होई ।
बिनु अघ अजसु कि पावइ कोई ॥

इसी प्रकार मानस के वन्दना प्रसंग में सन्तों और असन्तों की सद्गति और दुर्गति का कारण समझाते हुए कहा गया है कि यह सब यश-अपयश, सद्गति-दुर्गति अपने-अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त होती है—

भल अनभल निज-निज करतूती ।
लहत सुजस अपलोक विभूती ॥

यह मान्यता गलत नहीं है कि पुण्य कर्मों द्वारा पाप कर्मों का प्रभाव मिट जाता है किन्तु पड़े पापों को काटने के लिए अधिक पुण्यों की आवश्यकता है, तभी हिसाब बराबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होगा । जो लोग गंगास्नान, पंचगव्य-पान जैसे छोटे उपचारों से अपने बड़े दुष्कर्मों का शमन चाहते हैं वे भूल करते हैं । यथार्थता यही है कि जितना बड़ा पाप है उतना ही बड़ा पुण्य करने से प्रायश्चित हो सकना संभव है । "विनय पत्रिका" में तुलसीदास जी इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि मेरे पापों का तो जंगल लगा है और सत्कर्म इतने कम हैं कि उनसे पाप-कर्म कट नहीं सकते । जंगल काटने के लिए सबल कुल्हाड़ी चाहिए । नाखून की धार से वे कैसे कटेंगे –

तौ क्यों कटत सुकृत नख ते मो पै बिपुल वृन्द अघ बन के ।
कहि है कौन कलुष मेरे कृत करम बचन अरु मन के ॥

भगवान ने कर्म-व्यवस्था में कहीं ढिलाई नहीं रखी है । कर्म करने में मनुष्य को स्वतंत्र रखा है । भले-बुरे की बुद्धि देने के अतिरिक्त वे उसके कर्मों में हस्तक्षेप नहीं करते और जो भले-बुरे कर्म अपने निर्णय से कर लेता है । उसका उसे फल निश्चित रूप से देते रहते हैं । 'विनय पत्रिका' में तुलसीदासजी ने यह भाव बहुत स्पष्ट किया है । लिखा है कि हिरण्यकश्यपु को तप के अनुरूप बरदान तो दिया पर प्रहलाद के प्रसंग में उसे रोका नहीं । रावण को तप-प्रभाव से बार-बार सिर तो दिये पर राम विरोध के संदर्भ में कोई दबाव नहीं डाला –

कनक कशिपु विरंचि को जन करम मने अरु बात ।
सुतहिं दुखबत विधि न बरज्यो काल के घर जात ॥
शंभु सेवक जान जग बहु बार दिये दस शीश ।
करत राम विरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईश ॥

"विनय पत्रिका" में ही अन्यत्र इस दृढ़ व्यवस्था को प्रबल कर्म की डोरी बतलाते हुए लिखा है–

जिन बाँधे सुर-असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी ॥

अर्थात् ईश्वर ने देवता, राक्षस, नाग और मुनि सभी को कर्म की मजबूत रस्सी से बाँध रखा है ।

अन्य पद में कर्मफल-व्यवस्था पर विश्वास प्रकट करते हुए लिखा है कि – जो कोई दूसरे के गिराने के लिए कुआँ खोदता है वह दुष्ट स्वत: उसमें गिरता है –

जोइ जोइ कूप खनैगो पर कहँ,
सो सठ फिरि तेहि कूप रैगो।

समस्त मनुष्य जाति एक सूत्र में बँधी हुई है । प्रत्येक का कर्तव्य है कि वह अन्यों को दुष्कर्मों से रोके और सत्कर्मों में प्रवृत्त करे । अपना ही संशोधन करना पर्याप्त न समझे, वरन् पूरे समाज को अपना ही विराट रूप मान कर उसे परिष्कृत बनाने के लिए प्रयत्नशील रहे । अन्यथा दूसरों के दुष्कृत्यों का फल अपने को भी लपेट में ले लेगा । पड़ौसी के घर में लगी आग फैलती हुई अपना घर भी जला देगी – पड़ौस में फैली गन्दगी अथवा बीमारी अपने घर में भी प्रवेश करेगी । पड़ौस के दुष्ट लोग अपने को सज्जन होते हुए भी त्रास देंगे।

इसलिए अपनी ही तरह अपने समाज को समुन्नत, सुसंस्कृत बनाना उचित है । इस सामाजिक कर्तव्य की उपेक्षा करने पर उन्हें भी दण्ड भुगतना पड़ता है जो व्यक्तिगत रूप से देखने में निर्दोष लगते हैं, पर सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह न करने के कारण व्यापक दृष्टि से देखने पर वे भी दोषी हैं, और उन्हें भी दण्ड भुगतना पड़ता है । गाँव के जिस मुखिया के पास बन्दूक होती है उसका कर्त्तव्य है कि यदि उस गाँव में डकैती पड़े तो डाकुओं का मुकाबला करने के लिय बन्दूक का उपयोग करे । यदि वह कायरतावश छिपकर बैठा रहे, मूक दर्शक बना रहे, बन्दूक का उपयोग न करे, तो उसे भी सरकार और समाज अपराधी मानते हैं, भर्त्सना करते हैं और उसकी बन्दूक छिन जाती है । इसी सामाजिक कर्तव्य का उद्‌बोधन करते हुए रामायण में कहा गया है–

और करे अपराध कोइ, और पाव फल भोग ।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै जोग ॥

भगवान की इस कर्म व्यवस्था की तरफ से संसार बेखबर रहता है, किन्तु भक्त उसके महत्त्व को समझता है । इसीलिए अपनी करनी प्रभु-मर्यादा के विपरीत होने पर उसे भय लगता है । 'विनय पत्रिका' में यही भाव व्यक्त करते हुए तुलसीदासजी लिखते हैं–

जेहिनिशि सकल जीव सूतहिं तब कृपा पात्रजन जागै ।
निज करनी विपरीत देखि मोहि समुझि महाभय लागै ॥

यदि हम भगवान की इस कर्म व्यवस्था को ध्यान में रखें तो अपने प्रयासों तथा आचरणों को सही दिशा में चला कर जीवन की सार्थकता तथा भगवान का प्रेम प्राप्त कर सकते हैं।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार प्रकरण

परिवार का विकास नीतिनिष्ठा के आधार पर

परिवार को सुसंगठित, सुविकसित एवं समुन्नत बनाने की आधारशिला एक ही है कि घर के हर सदस्य को धर्म-कर्तव्यों के पालन की निष्ठा गहराई तक हृदयंगम कराई जाय। किसी को स्वार्थी, विलासी, व्यक्तिवादी दुर्गुणी न बनने दिया जाय। जिस परिवार में धर्म-कर्तव्यों के प्रति आस्था होगी, उसके हर सदस्य को स्वार्थपरता की निकृष्टता और स्नेह सहयोग की सद्भावी श्रेष्ठता का भली प्रकार ज्ञान होगा। इस भाव-प्रेरणा से प्रेरित होकर वे अधिकारों को भुलाकर कर्तव्य के लिए दत्तचित रहेंगे। फलस्वरूप स्नेह भरा सहयोग और उदार व्यवहार विकसित होगा। यह सुमति, सम्पत्ति जिस परिवार में होगी वह राम-परिवार की तरह आदर्श बनेगा और यशस्वी होगा।

भगवान राम के परिवार में सम्पन्नता तथा सुख शान्ति के साथ पराक्रम का अद्भुत समन्वय मिलता है। धनुष-यज्ञ में राम, लक्ष्मण के कृतित्व का बखान जनकपुर के दूत राजा दशरथ से करते हैं। राजा दशरथ जब गुरु वशिष्ठ से अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं तो वे इन सफलताओं का श्रेय उनकी धर्मपराणता को ही देते हुए कहते हैं—

सुनि गुरु बोले अति सुख पाई।
पुण्य पुरुष कहँ महि सुखदाई॥
जिमि सरिता सागर पहिं जाहीं।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख सम्पति बिनहि बुलाए।
धर्मसीलु पहिं जाहिं सुभाए॥

दशरथ धर्मपरायण थे। गुरु वसिष्ठ के निर्देशों पर चलते हुए उन्होंने स्वयं तथा अपने परिजनों को धर्मनिष्ठ बनाया था। यही कारण था कि हर जगह हर प्रकरण में यश, सराहना तथा सफलता मिलती गई। दैवयोग से विपरीत परिस्थितियाँ आई भी तो धर्मनिष्ठ सदस्यों के अविचलित भाव के आगे परास्त होती गयीं तथा प्रगति का मार्ग रुका नहीं।

गुरु वसिष्ठ को भी अपने शिष्यों पर विश्वास था। अतः उन्होंने केवल धर्मपरायण निर्णय लेने का संकेत ही उन्हें समय पर किया तथा वे उसी आधार पर आगे बढ़ते गये। चित्रकूट से वापस आकर भरत जी के पूछे जाने पर वसिष्ठजी ने कहा—

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरम सारु जग होइहि सोई॥

भरत की धर्मपरायणता पर गुरु को कितना अधिक विश्वास है।

लोक-कल्याण के लिए ही अवतीर्ण भगवान श्री राम ने अपने जीवन काल में अपने प्रत्यक्ष आचरण और उपदेशों के द्वारा बड़े प्रयत्न के साथ धर्मसेतु बाँधा। अपने पश्चात् भी इसकी रक्षा होती रहे, इसकी उन्हें चिन्ता थी। इसीलिए अपने भावी भूमिपालों से जो सविनय प्रार्थना की, वह उनके चरित्र का महत्त्वपूर्ण अंश है। वह कहते हैं—

भूयो भूयो भाविनी भूमिपाला,
नत्वा नत्वा याचत रामचन्द्रः।
सामान्योयं धर्मसेतुर्नराणां,
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

अर्थात् "हे भविष्य में होने वाले भूमिपालों। यह रामचन्द्र आप लोगों से विनम्रतापूर्वक बारम्बार प्रणाम कर याचना करता है कि आप लोग मेरे द्वारा बाँधे हुए धर्म सेतु की सुरक्षा सदा करते रहें।"

कुल मर्यादा का गौरव जाति-पाति, नीच ऊँच के आधार पर नहीं, श्रेष्ठ सत्कर्मों की परम्परा एवं उत्कृष्ट परम्पराओं के साथ जुड़ा रहना चाहिए। रघुवंशी अपनी कुल-मर्यादा का अभिमान इसलिए करते हैं कि उन्होंने कभी कुमार्ग पर पैर नहीं रखा। पर नारी को उन्होंने सपने में भी कुदृष्टि से नहीं निहारा सीता जी का प्रथम दर्शन करने पर राम के मन में जो हलचल उठती है उसका विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं—

रघुवंसनि कर सहज सुभाऊ।
मनु कुपंथ पग धरे न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी।
जेहि सपनेहुँ पर नारि न हेरी॥

सांसारिक कष्ट भले ही सहन करने पड़ें, पर आदर्श पालन हो सके तो सौभाग्य ही मानना चाहिए। यह जानते हुए राम माता कैकेयी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि आपके आदेश में मेरे लिए लाभ ही लाभ है। विपत्ति के पीछे झांकते हुए लाभों को भी देखा जा सके तो उनसे प्रकाश मिलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। दोषदृष्टि हटाकर आदि गुणग्राही दृष्टि रखी जाय तो अशुभ में भी शुभ खोजा जा सकता है। वनवास की सूचना दिये जाने पर राम कहते हैं–

मुनिगन मिलनु विशेष वन, सबहिं भाँति हित मोर ।
तेहि में पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

परिवार की नीति निष्ठा की परीक्षा कठिन परिस्थितियाँ आने पर होती है। परिस्थितियों की चोट से जो नीति-पथ से डिग जाते हैं, उन्हें कठिनाइयों-यातनाओं में फँस जाना पड़ता है। नीतिनिष्ठा बनाये रखने वाले व्यक्ति उसमें से स्वयं तो शीघ्र निकल ही जाते हैं, औरों को भी मार्ग दिखा देते हैं। ऐसे मनस्वी तात्कालिक कष्टों की चिन्ता न करके नीति-पथ ही अपनाते हैं।

राजा दशरथ मोहवश चाहते हैं कि राम अपने अधिकार का प्रयोग करके वन जाने से इन्कार कर दें, किन्तु राम वैसा करते नहीं–

राय राम राखन हित लागी ।
बहुत उपाय किए छलु त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥

नीति परायण श्रीराम सुख और अधिकार को नहीं वरन् कष्ट सहकर भी कर्तव्य पालन को प्रधानता देते हैं।

चित्रकूट में भरत आदि द्वारा आग्रह किये जाने पर भी राम निश्चित क्रम ही अपनाते हैं। दशरथ ने सत्य के लिए राम को त्यागा था और उनके प्रति प्रेम-निर्वाह के लिए प्राण दे दिये। महाराज दशरथ के ''सत्य-पालन'' के लिए किये गये महान बलिदान को राम निरर्थक सिद्ध होने देना नहीं चाहते। वनवास से लौटने के सुझाव को मोहग्रस्त मान कर वे अपने मुख्य कर्तव्य का ही समर्थन करते रहते हैं–

तात तुम्हें मैं जानउँ नीके ।
करौं काह असमंजस जी के ॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी ।
तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ॥

इसीलिए गुरु वसिष्ठ जी चित्रकूट में राम के स्वभाव का परिचय सबको देते हुये कहते हैं–

धर्म धुरीन भानुकुल भानू ।
राजा राम स्वयं भगवानू ॥

राम स्वयं भी धर्मनिष्ठ-नीतिनिष्ठ है और अपने भाइयों को भी यहीं प्रेरणा देते हैं। वन के लिए प्रस्थान करते हुए वे भरत के लिए सुमंत द्वारा संदेश देते हैं कि भरत से कहना कि वे नीति मार्ग न छोड़ें। परिवार, प्रजा, माता आदि सभी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें–

कहव सँदेश भरत के आए ।
नीति न तजिय राजपद पाए ॥
पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ।
सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥
और निवाहेहु भायप भाई ।
करि पितु मातु सुजन सेवकाई ॥

और भरत उसका पूर्ण रूप से पालन करके दिखा देते है। इसीलिए भरत के सम्बन्ध में कहना पड़ा–

जो न होत जग जनम भरत को ।
सकल धरम धुरि धरनि धरत को ॥

इस प्रकार दशरथ, राम, भरत सभी धर्म-धुरन्धर सिद्ध होते हैं। सारा परिवार नीति-निष्ठा की परीक्षा में सफल होता है और इसीलिए संसार उन्हें आदर्श मानकर प्रेरणा ग्रहण करता है।

धर्मनिष्ठा में माता कौशल्या भी अपना आदर्श उपस्थित करती हैं। अपने पराये का भेदभाव किये बिना सहज स्वाभाविक प्रेम करने की उदारता कौशल्या में है। वे राम और भरत को एक जैसा समझती हैं। कैकेयी के दोष का आरोपण भरत पर नहीं करती। वरन् घर के सभी बालकों को सहज एवं समान स्नेह देने की पारिवारिक उदारता प्रकट करती हैं–

ननिहाल से लौटने पर भरत को आया देखकर मूर्छित कौशल्या उत्साह से भर जाती है और उन्हें छाती से लगाकर भरपूर प्यार करती हैं, मानों वे राम के लौट आने जैसा अनुभव कर रहीं हों–

भरतहिं देखि मातु उठि धाई ।
मूर्छित अवनि परी झइ आई ॥
सरल सुभाय मायँ हियँ लाए ।
अति हित मनहुँ राम फिरि आये ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कौशिल्या राम और भरत दोनों को समान सनेह करना अपना धर्म मानती है–

बहुरि समझ तिय धरमु सयानी ।
रामु भरत दोउ सुत सम जानी ॥

भरत के उपरान्त माता कौशिल्या शत्रुघ्न को भी उसी प्रकार प्यार करती हैं, गोदी में बिठाती और आँसू पोंछती हैं । जहाँ महिलाओं में ऐसी उदारता होगी कहाँ स्वर्ग जैसा वातावरण सहज ही रहेगा । ऐसी उदारचित देवियाँ ही राम जैसी महान सन्तान को जन्म दे सकती है–

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई ।
सोकु सनेहु न हृदय समाई ॥
देखि सुभाउ कहत सबु कोई ।
राम मातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैंठारे ।
आंसु पोंछ मृदु बचन उचारे ॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाये ।
थन पय स्रवहिं नयन जल छाये ॥

एक पक्ष का खोट होने पर भी यदि दूसरा पक्ष उसे भुला दे, उस पर ध्यान ही न दे, उपेक्षा करदे, इतना ही नहीं बदले में स्नेह सम्बन्ध यथावत बनाये रह कर सद्व्यवहार भी करे तो खोट वाले पक्ष को स्वयं नतमस्मक होना पड़ेगा और विग्रह का संकट भी सहज ही टल जायेगा । भरत जब कैकेई को अपशब्द कहने लगते हैं तब कौशिल्या ने ही उन्हें रोका–

काहुहिं दोस देहु जनि ताता ।
भा मोहिं सब विधि बाम बिधाता ॥

मानस का आदर्श है कि गृहपति को अपने लाभ या स्वार्थ की बात को तिलांजलि देकर परिवार के सदस्यों के हित को प्रधानता देनी चाहिए । जैसे मुख जो खाना खाता है उसे शरीर के प्रत्येक अंग का पोषण करने के लिए बाँट देता है । उसी प्रकार मुखिया परिवार के हर सदस्य को पोषण तथा सुसंस्कार देने के लिए प्रयत्नशील रहे । भगवान राम भरत को उपदेश देते हुए अयोध्याकाण्ड में कहते हैं–

मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कौ एक ।
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित बिबेक ॥

दाम्पत्य की महत्ता

विवाह का उद्देश्य कामुकता की पूर्ति नहीं वरन् धर्माचरण के मार्ग पर दो साथी, सहचरों का परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होना है । दोनों में अनुरूपता होनी चाहिए । आयु की दृष्टि से ही नहीं, अन्य दृष्टियों से भी अनमेल विवाह होना उचित नहीं । रंग रूप की दृष्टि से भी सामान्य सौन्दर्य वाले लड़कों को अपने से कम रूप वाली लड़की ही ढूँढ़नी चाहिए । समानता में कुछ छोटी की तो गुंजायश है अधिक की आकाँक्षा न की जाय ।

विवाह अनुरूप वर के साथ किया जाना चाहिए । दोनों की योग्यता, आयु, शिक्षा, आदि समान होना चाहिए । वही सीता जी पुष्पवाटिका में गौरी मंदिर में माँगती है–

पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा ।
निज अनुरूप सुभग वर माँगा ॥

लड़कियों का विवाह अनुकुल घर, वर और कुल देखकर किया जाय । अनुरूप वर के साथ ही किया जाय । पार्वती जी के विवाह के लिए आग्रह करती हुई मैना अपने पति हिमाचल से कहती हैं–

जौ घरु वर कुल होइ अनूपा ।
करिअ विवाहु सुता अनुरूपा ॥

यही नहीं अनुरूप वर पाने के लिए पार्वती को तप साधना करने की स्वीकृति माता-पिता मोह छोड़कर देते हैं । यथा शक्ति सही वर का चुनाव करते हैं, किन्तु जब शिवजी बारात लेकर हिमांचल के दरवाजे पर पहुँचते हैं तो मैना उनको अपनी कन्या के अनुकूल न पाकर सत्याग्रह कर देती है । वे कहती हैं–

कस कीन्ह बर बौराहि बिधि जेहि तुमहिं सुन्दरता दई ।
जो फर चहिअ सुर तरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई ॥
तुम सहित गिरि ते गिरौं पावक जरौ जल निधि महँ परौ ।
घर जाउ अपयश होउ जग जीवित विवाहु न हौं करौ ॥

जब तक उन्हें यह समाधान नहीं हो जाता कि गुण और स्वभाव में वर उनकी पुत्री के अनुकूल है तब तक वे विवाह का अगला चरण रोक देती हैं । जब समाधान हो जाता है, शिवजी के गुणों को समझ लेती है, तो फिर उनके बाह्य रूप को महत्व न देकर प्रसन्नतापूर्वक विवाह कर देती है ।

विवाह का उद्देश्य काम-वासना की पूर्ति नहीं है । मानस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में यह भाव शिव-उमा-विवाह प्रकरण में उभारा गया है । तारकासुर के बध के लिए शिव-पार्वती के पुत्र की आवश्यकता थी, अत: देवगण भी उनके विवाह के लिए आतुर थे । उन्होंने कामदेव द्वारा शिवजी की समाधि भंग करवाई । उनकी कल्पना यही थी कि कामासक्त होकर ही विवाह संभव है । पर शिवजी ने कामदेव को ही भस्म कर दिया । बाद में कर्तव्य के नाते ब्रह्मा जी के कहने से विवाह करना स्वीकार कर लिया—

सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता ।
गए जहाँ सिब कृपानिकेता ॥
सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु ।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार बिबाहु ॥
सुनि बिधि बिनय समुझि प्रभु बानी ।
ऐसेइ होइ कहा सुख मानी ॥

इस प्रकार शिवजी ने स्पष्ट कर दिया कि विवाह काम-बुद्धि से नहीं, कर्तव्य बुद्धि से किया जाना चाहिए ।

उधर पार्वती जी ने भी यही सिद्ध किया । उनकी परीक्षा लेने सप्त ऋषि पहुँचे और कहा कि अब विवाह कैसे होगा शिव ने तो कामदेव को भस्म कर दिया । तब पार्वतीजी ने उत्तर दिया कि क्या तुम्हारी समझ में शिव अब तक काम विकार में ग्रस्त थे । मेरी समझ में तो वे सदा ही काम विकारों से मुक्त हैं—

तुम्हरे जान काम अब जारा ।
अब लगि सम्भु रहे सविकारा ॥
हमरी जान सदा, सिब जोगी ।
अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥

पार्वती ने स्पष्ट कर दिया कि न वे शिव की कामना कामभाव से करती हैं और न शिव ही इस विकार ही पकड़ में आने वाले हैं । दाम्पत्य का आदर्श ऐसा ही कर्तव्य-प्रधान होना चाहिए ।

मनु-शतरूपा प्रसंग में भी दाम्पत्य का यही स्वरूप कहा गया है । विवाह का उद्देश्य धर्माचरण है । धर्मपत्नी शब्द इसी लिए प्रयुक्त होता है कि दोनों मिलकर धर्माचरण को सहयोग पूर्वक आगे बढ़ायें—

दम्पति धरम आचरन नीका ।
अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ॥

दाम्पत्य के सही निर्वाह में तथा परिवार के संतुलन में नारी को पुरुष से हीन समझने की मान्यता बहुत बाधक है । यह गलत मान्यता हटाई जानी चाहिए । इसके बिना न तो नारी अपना आत्म-गौरव अनुभव कर सकती है और न समाज-निर्माण में अपना पूरा सक्रिय योगदान ही कर सकती है । नारी को समाज में सम्मान तथा प्रगति का अधिकार मिलना आवश्यक है । दाम्पत्य की गिरती हुई प्रतिष्ठा और मर्यादा इसके बिना सँभल नहीं सकती ।

वस्तुत: नारी का स्थान नर से ऊँचा है । उसे माता, भगिनी, पुत्री और धर्मपत्नी के रूप में पूज्य माना गया है । गायत्री, सरस्वती, लक्ष्मी, काली आदि देवियों के रूप में मातृशक्ति की पूजा की जाती है । लक्ष्मी- नारायण, सीता-राम, उमा-महेश, राधा-कृष्ण आदि युग्मों में पहले नारी का और पीछे नर का उल्लेख है । नर का कर्तव्य है कि नारी का अधिकाधिक सम्मान करे । जहाँ नारी की पूजा होगी वहाँ देवताओं का निवास होगा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।

स्त्रियों पर हाथ उठाना, उनके साथ मारपीट करना नर-पशुओं का कृत्य है । जिस पुरुष की सुरक्षा, आश्रय में वे हैं, उसका कर्तव्य उनकी रक्षा करना, सम्मान और स्नेह देना ही रह जाता है न कि त्रास देना । जो सामने आकर मुकाबिला करने की स्थिति में नहीं, उसके साथ मारपीट करना मनुष्यता को कलंकित करने वाला कृत्य ही कहा जायगा । ऐसे नर-पिशाचों से भगवान निश्चित रूप से रुष्ट होते हैं ।

शत्रुघ्न को मंथरा पर कुपित होते और मारने पर उद्यत देखकर भरत ने कहा—

इमांमपि हतां कुब्जा यदि जानासि राघवा ।
त्वांच मां चैव धर्मात्मा नाभिभीरुच्यते ध्रुवम् ॥

"कुब्जा (मंथरा) को तुम्हारे हाथों मारे जाने का समाचार सुनकर ही स्त्री-जाति को अबध्य मानने वाले श्री राम हम से बोलना भी छोड़ देंगे ।"

नारी पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगाना, उसे सेवा, परमार्थ के मार्ग के अयोग्य कहना 'मानसकार' की दृष्टि में सर्वथा अनुचित है । ऐसी स्थिति को अवांछनीय बताते हुए तुलसी दासजी कहते हैं कि भक्ति, परमार्थ मार्ग में चलने का नर और नारी दोनों को समान अधिकार है । श्रेष्ठ समाज के प्रतीक राम-राज्य में स्त्री-पुरुष सभी श्रेष्ठतम गति के अधिकारी माने जाते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम भगति रत नर अरु नारी ।
सकल परम गति के अधिकारी ॥

''उत्तरकाण्ड'' में ही भुशुण्डि-गरुड़ संवाद के प्रंसग में स्वयं भगवान नारी के लिए रास्ता खोलते हुए कहते हैं—

पुरुष नपुंसक नारि वा, जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव भजि कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोइ ॥

इतनी स्पष्ट बात कही जाने पर भी नारी पर अवांछनीय प्रतिबन्ध लगाना किसी भी विवेकशील के लिए उचित नहीं ।

मध्यकालीन अन्धकार युग में नारी का सम्मान गिराया गया, उसे नर की सम्पत्ति घोषित किया गया और तरह-तरह के बंधन लगा कर पराधीनता के पाश में जकड़ दिया गया । इस अनाचार से न केवल नारी ही गई गुजरी स्थिति में पहुँची वरन् नर का भी भारी पतन हुआ । इस अनाचार के लिए ब्रह्मा जी पर व्यंग्य एवं आक्रोश व्यक्त करते हुए तुलसीदासजी कहते हैं कि उसने नारी को ऐसी परिस्थितियों में क्यों डाला जिसमें उसे पराधीन रहना पड़े । पराधीनता में तो किसी को सपने में भी सुख नहीं मिल सकता—

कत बिधि रची नारि जग माहीं ।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ॥

आदि शक्ति नारी की वन्दना में सीताजी को माध्यम मान कर तुलसदासजी कहते हैं—

आदि सक्ति जेहि जग उपजाया ।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥
जनक सुता जग जननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुना निधान की ॥
जाके जुग पद कमल मनावउँ ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ ॥

जानकी जगज्जननी हैं । भगवान की अतिशय प्रिय हैं । उनके चरण कमलों की वन्दना करने से अति महत्त्वपूर्ण लाभ 'निर्मल मति' के रूप में मिलता है । नारी को सीता का प्रतीक माना गया है अपनी विशेषतओं के कारण उसे भगवान का अति प्रिय माना जाय, उसके चरण कमलों को ही निहारा जाय तो निर्मल विचार धारा उपलब्ध होती है ।

मानस में नारी की श्रेष्ठता और अधिकारों का समर्थन केवल सैद्धान्तिक ही नहीं बल्कि क्रियात्मक भी है । पत्नी को पति की सहयोगिनी होना चाहिए किन्तु पति द्वारा भूलें होने पर उन्हें सही आचरण के लिए परामर्श देने का पत्नी को समान अधिकार है । पतिव्रता होने का अर्थ पति की अनुचित बातों का भी समर्थन करना नहीं है । न उसकी अनुचित आज्ञाओं के पालन का ही औचित्य है । कुमार्गगामी, भ्रष्ट चिन्तन रत पति को पत्नी उसी प्रकार उद्‌बोधन कर सकती है जिस प्रकार पति पत्नी का करता है । मन्दोदरी, कौशिल्या आदि ने अपने पतियों को समय-समय पर रोका और समझाया है—

राम वन-गमन के समय राम विरह की अत्यन्त धधकती ज्वाला को कौशिल्या मां ने हृदय में दबाकर पति को सान्त्वना देने में रंचमात्र भी शिथिलता नहीं दिखाई । उसने राजा की बिगड़ती हालत देखकर समझ लिया कि अब इनका बच सकना कठिन है । तो भी उसने समझाया—

उर धरि धीर राम महतारी ।
बोली बचन समय अनुसारी ॥
करनधार तुम अवध जहाजू ।
चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरज धरिअ तो पाइअ पाररू ।
नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥

मन्दोदरी रावण को अनीति का मार्ग छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग अपनाने के लिए खुलकर समझाती है । उसने कहा— हे स्वामी ! राम विरोध त्याग दो और मेरा कहा मानकर क्रोध को छोड़ दो सीता को राम के लिए वापस करदो और उनसे क्षमा माँग लो । पुत्र को राज्य सौंप कर वन में जाकर ढलते जीवन के धर्म कर्तव्यों का पालन करो—

कन्त करष हरि सन परिहरहूँ ।
मोर कहा अति हित हिय धरहूँ ॥
रामहिं सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजहु रघुनाथ ॥

रावण अशोक वाटिका में सीता को प्रलोभन दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करना चहता है । किन्तु सीताजी उसे मुंहतोड़ जबाव देकर निरुत्तर कर देती हैं । तब वह खीझकर सीता को मारने दौड़ता है । उस समय मन्दोदरी उसे नीति बचन बताकर समझाती और रोकती है—

सुनत बचन पुनि मारन धावा ।
मय तनया कहि नीति बुझावा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सती मन्दोदरी पति को वर्णाश्रम धर्म के अनुसार मोह छोड़ कर वानप्रस्थ जीवन अपनाने की सलाह देती है और दृढ़तापूर्वक कहती है कि मेरा कहा मानोंगे तो आपका यश बढ़ेगा—

सन्त कहहिं अस नीति दसानन ।
चौथेपन जाइहि नृप कानन ॥
जौ पिय मानहु मोर सिखावन ।
सुजस होइ तिहुँ पुर अति पावन ॥

नारी का कहना न मानने, उसकी सीख पर ध्यान न देने की भर्त्सना करती हुई 'रामायण' कहती है कि मूढ़ बालि ने अपनी पत्नी का परामर्श नहीं माना इससे उसकी दुर्गति ही हुई। राम कहते हैं कि अहंकारी ही नारी की उपेक्षा करते हैं—

मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना ।
नारि सिखावन करेसि न काना ॥

दाम्पत्य के इन सूत्रों को स्मरण रखकर अपने जीवन में उनका अभ्यास करना चाहिये । नर-नारियों का एक-दूसरे के प्रति पवित्र सम्मानास्पद दृष्टिकोण रखना तथा तदनुसार व्यवहार करने का प्रयास करना चाहिये ।

पुरुष पत्नी-व्रत धर्म पालें

जिस प्रकार नारी के लिए पतिव्रत धर्म का पालन आवश्यक है, उससे भी अधिक यह आवश्यक है कि नर पत्नीव्रत धर्म का पालन करें । दोनों का स्तर एक है । दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं, दोनों के कर्तव्य और अधिकार समान है । कोई किसी से छोटा-बड़ा नहीं । यदि वैसा कुछ है भी तो उसमें नारी वरिष्ठ है और नर कनिष्ठ, क्योंकि मनुष्य का जन्म नारी के ही पेट से होता है । उसी का दूध पीकर और स्नेह, सहयोग पाकर वह सुखी रहता और समुन्नत बनता है ।

पतिव्रत की महिमा सर्वत्र गाई गई है, उसकी चर्चा भी बहुत होती है, जोर भी उसी पर बहुत दिया जाता है । किन्तु यह भुला दिया जाता है कि ठीक वैसा ही कर्तव्य पति का भी है । सीता जैसी पतिव्रता तभी हो सकती है जब राम जैसे एक पत्नीव्रत निवाहने वाले पति हों । रावण की पत्नी मन्दोदरी ने अपना पति मरते ही विभीषण के साथ विवाह कर लिया था । दुराचारी एवं कुदृष्टि रखने वाले पतियों को पत्नी से प्रतिव्रता होने की माँग करने का कोई अधिकार नहीं है । कुछ कहने या वैसी आशा रखने का अधिकार उसी पति को हैं जो स्वयं पूर्णतया सदाचारी रहा हो ।

रामायण ने पत्नीव्रत पालन करने पर ठीक उतना ही जोर दिया है जितना कि पतिव्रत धर्म पर । व्यभिचारी पुरुषों की कुलटा स्त्रियों की अपेक्षा कम निन्दा नहीं की गई है और उनको कम दण्डनीय नहीं कहा गया है । मानस के अनुसार स्त्री एवं पुरुषों को परस्पर एक-दूसरे के प्रति समान रूप से कर्तव्य परायण होना चाहिए । उल्लेख है कि राम-राज्य में समस्त पुरुष एक पत्नीव्रत धारण किये हुए थे और हर नारी मन कर्म से पतिव्रता थी—

एक नारि बत रत सब झारी ।
ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

हर श्रेष्ठ समाज में जहाँ बुद्धिमान व्यक्ति रहते हैं यही मर्यादा होती है । जनकपुरी के नर और नारी भी सभी पवित्र आचरण वाले और ज्ञानी गुणवान थे । कोई किसी से पीछे नहीं था—

पुर नर नारि सुभग सुचि सन्ता ।
धरमशील ग्यानी गुनवन्ता ॥

नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण को मानस में बहुत महत्त्व दिया गया है । अरण्यकाण्ड में महर्षि बाल्मीकि श्री राम से कहते हैं कि जो पराई नारी को माता के समान और पराये धन को विष के समान समझते हैं उनका मन ही तुम्हारा घर है—

जननी सम जानहिं पर नारी ।
धन पराय विष ते विषकारी ॥
जिनहिं राम तुम प्रान पियारे ।
तिनके मन शुभ सदन तुम्हारे ॥

पत्नीव्रत भंग और पर-स्त्री गमन एक ही तथ्य के दो नाम है । रामायण में पतिव्रत के पालन की तरह पत्नी व्रत पालन शब्द तो नहीं आता, तो भी पर-स्त्री गमन की निन्दा के रूप में तथ्य वही प्रतिपादित किया गया है । पर स्त्री, गमन की निन्दा अनेक प्रसंगों में आती है । राम वन गमन के प्रसंग में भरत जी शपथ खाकर कहते हैं कि यदि राम को वन भेजने में मेरी सम्मति हो तो लम्पट और परदार रत लोगों की जो दुर्गति होती है वही मेरी भी हो—

लोभी लंपट लोलुप चारा ।
जे ताकहिं परधन पर दारा ॥
पावौं मैं तिनकी गति घोरा ।
जो जननी यह सम्मत मोरा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्पष्ट है कि वे ऐसे व्यक्ति को बहुत निकृष्ट समझते थे। लक्ष्मण जी भी सूर्पनखा को समझाने का प्रयास करते हुए यही कहते हैं कि व्यभिचारी को सद्गति मिलना उतना ही कठिन है जितना आकाश से दूध दुहना—

सेवक सुख चह मान भिखारी ।
व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी ॥
लोभी जस चह चारु गुमानी ।
नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी ॥

यही मत काकभुशुण्डि जी गरुड़ के प्रति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि दुष्टों के संग रहने वाले को कभी सुमति नहीं मिलती और न पर स्त्रीगामी कभी कलंक और दुर्गति से बचता है—

परद्रोही कि होंहि निसंका ।
कामी पुनि कि रहहिं अकलंका ॥
कहू सुमति कि खल संग जामी ।
सुभ गति पाव कि परत्रियगामी ॥

मानसकार ने 'स्त्री चोर' शब्द को बहुत बुरी गाली माना है। अंगद रावण को उसी की भरी सभा में स्त्री-चोर कुमार्गगामी, कामी कह कर लज्जित करते हैं। रावण से प्रत्युत्तर भी देते नहीं बनता—

रे त्रिय चोर कुमारगगामी ।
खल मलरासि मंदमति कामी ॥

विभीषण अपनी बात और भी स्पष्ट करते हुए रावण को पर-स्त्री के प्रति मोह रखने की हानि बताते हैं वे कहते हैं कि इससे न केवल आपका वरन् समस्त परिवार का सर्वनाश होकर रहेगा—

तब कुल कमल विपिन दुखदायी ।
सीता सीत निशा सम आई ॥
जो आपन चाहै कल्याना ।
सुजस सुमति सुभ गति सुख नाना ॥
सो पर नारि लिलार गुसाईं ।
तजहु चौथ के चंद कि नाईं ॥

पर-स्त्री के प्रति कुदृष्टि रखने से मनुष्य मनुष्यता से गिर जाता है, वह पशु और राक्षस हो जाता है। शिवजी पार्वती को असुरों के लक्षण बताते हुए कहते हैं।

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लंपट परधन पर दारा ॥
जिनके अस आचरण भवानी ।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

यही नहीं ऐसे व्यक्ति की तेजस्विता भी नष्ट हो जाती है। कामुकता के दुराचार में लिप्त होने के कारण प्रतापी रावण कुत्ते की तरह सशंक होकर चलता है। कुपंथ अपनाने का यही परिणाम होता है—

जाके डर सुर असुर डेराहीं ।
निसि न नींद दिन अन्न न खाहीं ॥
सो दससीस स्वान की नाईं ।
इत उत चितइ चला भड़िहाई ॥

आशय यही है कि रावण जैसा प्रतापी भी इस दोष के कारण कायर हो गया। अंगद ने तो उसे मृतक के समान ही बतला दिया। तदनुसार काम वासना ग्रसित को मरा हुआ ही मानना चाहिए। उसके सारे जीवन-तत्व नष्ट चुके होते हैं—

कौल कामबस कृपनि बिमूढ़ा ।
अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥
तनु पोषक निन्दक अघ खानी ।
जीबित शव सम चौदह प्रानी ॥

और रावण बध के उपरान्त देवता अपना मत व्यक्त करते हुए कहते हैं कि रावण के सर्वनाश का कारण उसका समाज द्रोही, खल, कामुक होना ही था। यह कुमार्गगामी अपने पापों से आप ही मरा—

विश्व द्रोह रत यह खल कामी ।
निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥

न केवल परस्त्री-गमन पाप है वरन् स्व-स्त्री, को भी धर्म पत्नी, सहचरी की शालीन भावना छोड़कर रमणी, कामिनी की दृष्टि से देखना निन्दनीय है। सन्तानोत्पादन की नितान्त आवश्यकता हो तो बात दूसरी है अन्यथा अपनी स्त्री को भी स्नेह भाजन, साथी, सहचर की पवित्र दृष्टि से ही देखा जाना चाहिये। भले ही शरीर-सम्पर्क न हो पावे, पर यदि किसी पुरुष द्वारा किसी नारी के प्रति अथवा किसी नारी द्वारा पुरुष के प्रति कामुक, कलुषित दृष्टि रखी जाती है तो उस दृष्टि-दोषी को कामी ही कहा जायगा। कामुकों को भी लगभग व्यभिचारी की श्रेणी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में ही रखा गया है और रामायण में उस मानसिक व्यभिचारी की भी कम निन्दा नहीं की गई है। पापकाल कलियुग से भरे हुए मनुष्य किस प्रकार कामुकता की दुष्प्रवृत्ति से ग्रसित हो जाते हैं, इसका दुखद उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
सब नर काम लोभ रत क्रोधी।
बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
पर त्रिय लंपट कपट सयाने।
मोह द्रोह ममता लटपाने॥
कुलवन्त निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरि निवेर गती॥

कामी, क्रोधी, लोभग्रस्त मनुष्यों को राम-कथा सुनना सुनाना व्यर्थ होता है। क्योंकि उनका ध्यान भगवान की तरफ होता ही नहीं। वे केवल विकृत बातें ही सुनना चाहते हैं—

कहिय न लोभिह क्रोधिहि कामिहि।
जो न भजै सचराचर स्वामिहि॥

कामुक का एक और भी स्वरूप है, वह है गृहासक्त। घर वालों के मोह में ग्रसित रहकर उन्हीं के लिए मरना-खपना, अपने सामाजिक कर्तव्यों को भूल बैठना भी निन्दनीय है। कहा गया है कि जो कामी घर-परिवार में ही पूरी तरह आसक्त हैं वे अन्धकूप में पड़े हुए मूढ़मति लोग भला भगवान की बात क्या जानेंगे। काकभुशुण्डि जी कहते हैं कि ऐसा मोहग्रस्त व्यक्ति प्रभु को नहीं जान सकता—

काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुखरूप।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़ परे तम कूप॥

इसके विपरीत कामादि विकारों से मुक्त मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति का अधिकारी ही नहीं ईश्वर के समान कहा गया है। सुग्रीव श्री राम से कहते हैं कि जिसे विषय विकारों ने नहीं घेरा, जो कामुक कटाक्षों से नहीं विधा सो हे राम! तुम्हारे ही समान है—

नारि नयन सर जाहि न लागा।
घोर क्रोध तम निसि जो जागा॥
लोभ पाँस जेहि गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया॥

हम भी इन आदर्शों का अनुसरण करके क्यों न प्रभुप्रिय और ईश्वर तुल्य बनें।

पति-पत्नी की अनन्य एकता

पति-पत्नी की घनिष्ठता ऐसी होनी चाहिए जैसे वाणी और अर्थ, जल और लहर कहने भर को भिन्न होते हैं, वस्तुतः दोनों एक ही होते हैं। सीता और राम इसी प्रकार अभिन्न थे। ऐसे कोमल हृदय दम्पत्ति-युग्म की तुलसी दास जी भावपूर्वक वन्दना करते हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दौं सीताराम पद, जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥

भगवान राम अपनी पत्नी को असीम, अतिशय प्यार करते हैं। जहाँ ऐसा वातावरण होगा वहाँ दाम्पत्य-जीवन में तथा सारे परिवार में निर्मल मति का वातावरण बना रहेगा, कुविचार उत्पन्न नहीं होंगे।

जनक सुता जग जननि जानकी।
अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥

पति द्वारा पत्नी का भी सदा वैसा ही आदर किया जाना चाहिए जैसा कि पत्नी पति का करती है। एक सम्मान करे और दूसरा तिरस्कार, ऐसी रीति चल नहीं सकती। पत्नी की कोमल भावनाओं को समझकर पति को भी इस के स्नेह, सम्मान का और भी अधिक ध्यान रखना चाहिए तथा सदैव मीठे वचन ही बोलने चाहिए। इस मर्यादा का निवाह रामचरित मानस में अनेक स्थानों पर मिलता है—

बालकाण्ड का प्रसंग है कि शिवजी के पास जब पार्वती जी अपनी जिज्ञासा लेकर पहुँची तो वे उन्हें विशेष सम्मान प्रदान करते हैं—

जानि प्रिया आदर अति कीन्हा।
बाम भाग आसन हर दीन्हा॥

वनगमन के अवसर पर भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम प्रिय पत्नी को मीठे वचनों द्वारा समझाते हैं—

कहिं प्रिय बचन प्रिया समुझाई।
लगे मातु पग आसिष पाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब श्रीराम ने देखा कि उनके बिना सीता रह न सकेंगी तो अपनी कठिनाई को महत्त्व न देकर उन्होंने पत्नी की हार्दिक इच्छा का समादर किया और कहा कि सब सोच छोड़कर साथ वन चलो—

कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा ।
परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥

जहाँ पति, पत्नी का ध्यान रखते हैं वहाँ पत्नी भी पति के लिए अपने आपको न्यौछावर कर देती है—

पति अनुकूल सदा रह सीता ।
सोभा खानि सुसील विनीता ॥
जानहिं कृपासिन्धु प्रभुताई ।
सेवति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी ।
विपुल सदा सेवा विधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई ।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥

पति-पत्नी दो शरीर एक प्राण होते हैं। दु:ख-सुख में दोनों को एक साथ रहना चाहिए। पति से पृथक रहना पत्नी को और पत्नी से पृथक रहना पति को असहाय होना चाहिए। कोई अनिवार्य धर्म संकट आ खड़ा हो तो उस आपत्ति धर्म को पालने के लिए अलग भी रहा जा सकता है, अन्यथा भावना दोनों की यही होनी चाहिये, साथ-साथ रहेंगे, सुख-दु:ख भोगेंगे और मरेंगे-जियेंगे। एक-दूसरे का पूरक हो सकना साथ-साथ रहकर ही सम्भव हो सकता है। पृथक रहने का वियोग दु:ख पति और पत्नी को समान ही होता है।

राम को वनवास होता है, सीता को नहीं। पर सीता उस कष्टसाध्य समय में पति के साथ रहने को व्याकुल है। श्री राम ने उनसे वन के कष्टों की चर्चा करते हुए उन्हें सुकुमारि कहा तो उनकी भावना फूट पड़ी। वे कहने लगी कि क्या आप कष्ट सहने के लिए और मैं सुख भोगने के लिए हूँ। ऐसी बात सुनकर तो मेरा हृदय फट ही जाना चाहिए—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू ।
तुम्हें उचित तप मो कहँ भोगू ॥
ऐसे बचन कठोर सुनि, जौं न हृदय विलगान ।
तौ प्रभु विषम वियोग दुख, सहहहिं पामर प्रान ॥

सीता जी पति के साथ निरन्तर रहने की अपनी अदम्य भावना व्यक्त करते हुए कहती हैं कि उन्हें तो छाया की तरह पति के साथ रहना चाहिये—

सुनि पति वचन कहत वैदेही ।
सुनहु प्रानपति परम सनेही ॥
प्रभु करुनामय परम विवेकी ।
तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ॥
प्रभा जाँइ कहँ भानु बिहाई ।
कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई ॥

वे श्री राम से दूर रहना सबसे कठिन दु:ख मानती हैं। भौतिक सुखों को छोड़ना उन्हें आसान लगता है—

मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं ।
पिय वियोग सम दुख जग नाहीं ॥
प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान ॥
प्राननाथ तुम बिनु जग माहीं ।
मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं ॥

उन्हें विश्वास है कि वे अपने प्रेम के बल पर जंगल में भी मुख का अनुभव कर सकेंगी—

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे ।
सरद विमल विधु बदनु निहारे ॥
खग मृग परिजन नगर बनु, बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर सदन सम, परन साल सुखमूल ॥

सीता जी को भय है कि भगवान साथ ले चलने से इनकार न कर दें। अत: वे और भी स्पष्ट कहती है कि उनके साथ उन्हें कुशों के बिछौने, कन्द-मूल-फल तथा पर्वत आदि सुन्दर सेज, अमृत और सैकड़ों अयोध्या जैसे सुखकारी लगेंगे—

कुस किसलय साथरी सुहाई ।
प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिअ अहारू ।
अवध सौंध सत सरिस पहारू ॥

सीता जी पति के साथ वन गमन का आग्रह करती हुई उन शंकाओं का निवारण करती हैं जिनसे राम सोचते हैं कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीता वनवास के कष्ट न सह सकेगी और मेरे लिए सुरक्षा-व्यवस्था आदि की दृष्टि से भार होकर रहेंगी। वे कहती हैं कि मैं भार नहीं बनूँगी वरन् आपकी सहायक बनकर रहूँगी—

मोहि मग चलत न होइहि हारी।
छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहिं भांति पिय सेवा करिहौं।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥

वाल्मीकि रामायण में भी सीता यही भाव व्यक्त करती हुई कहती है—

यदित्वं प्रस्थितो दुर्ग वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्धती कुश कटकान॥

अर्थात् मैं अपने पति का न केवल अनुसरण ही करूँगी, अपितु घने जंगल में उनके मार्ग के काँटों का उन्मूलन करती हुई आगे-आगे चलूँगी।

पति के साथ कष्टसाध्य वनवास सहन करते हुए भी सीता प्रसन्न हैं और उन कठिन परिस्थितियों के अनुकूल भी अपने को ढाल लेती हैं और उसी में प्रसन्नता एवं संतोष अनुभव करती हैं। वे पति की इच्छा और आवश्यकता का ध्यान रखती है और बिना कहे ही उसकी पूर्ति करने को तैयार रहती हैं। केवट को भगवान राम कुछ देना चाहते हैं, यह अनुमान उन्होंने किसी के बिना कहे ही कर लिया तथा अपनी अंगूठी उतार कर आगे कर दी—

पिय हिय की सिय जाननि हारी।
मनि मुँदरी मन मुँदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥

राम और सीता का प्रेम निरन्तर बढ़ता ही गया। इससे वे दोनों सदा प्रसन्न और सन्तुष्ट रहे। सच्चा दाम्पत्य प्रेम हो तो जंगल में भी मंगल है।

नाह नेह नित बढ़त बिलोकी।
हरषित रहत दिवस जिमि कोकी॥
सिय मन राम चरन अनुरागा।
अबध सहस सम बन प्रिय लागा॥
परन कुटी प्रिय प्रियतम संगा।
प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥
सासु ससुर मुनितिय मुनिवर।
असन अमिअ सम कन्द मूल फर॥

पत्नी के गुणों का ही निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। कोई दोष हों भी तो उनकी उपेक्षा करनी चाहिये। सीता हरण होने के उपरान्त शोकाकुल राम उनके गुणों का ही बखान करते हैं—

हा गुन खानि जानकी सीता।
रूप शील बत नेम पुनीता॥

आश्रम में जानकी को न देखकर स्वाभाविक दीन के समान भगवान राम व्याकुल हो गये—

आश्रम देखि जानकी हीना।
भए विकल जस प्राकृत दीना॥

सीता के दुख और अपने सुख की तुलना करके राम मर्माहत होते हैं और आँखें में आँसू भर लाते हैं—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना।
भरि आये जल राजिब नयना॥

वियोग का दुःख राम को सीता की अपेक्षा कम नहीं हुआ। वे हनुमान के द्वारा सीता को सन्देश भिजवाते हैं कि "हे प्रिय! मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्व जानता है एक मात्र मेरा मन, और वह मन रहता है तुम्हारे पास। बस इतने में ही मेरे प्रेम का सार समझ लो।"

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं।
जान प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

हनुमान स्वयं श्री राम का प्रेम देख चुके थे। अतः सीताजी को आश्वस्त करते हुए वे कहते हैं— हे माता! हृदय में शंका न करें प्रभु श्री राम जी के हृदय में आपके प्रति दोगुना प्रेम है—

जनि जननी मानहुँ जिय ऊना।
तुम्ह ते प्रेमु राम के दूना॥

पतिव्रत शिक्षा सीता जी के माध्यम से महासती अनुसूया देती हैं और बताती हैं कि स्त्रियों को अपने पति के लिए मधुर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदार व्यवहार एवं सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं रखनी चाहिए। पर पुरुष का चिन्तन नहीं करना चाहिए। अपने पति से ही सन्तुष्ट रहना चाहिए–

उत्तम के अस बस मन माहीं।
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखइ कैसे।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥

अनुसूयाजी कहती हैं कि पति, पत्नी को अपना सर्वस्व सौंप देता है अत: स्त्री को उसके प्रति कर्तव्य परायण रहना चाहिए–

मातु पिता भ्राता हितकारी।
मित प्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता वैदही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

पति से धोखा करने वाली स्त्री को मानसकार उसी तरह निकृष्ट कहता है जैसे परनारी सेवी पुरुष को कहा है–

पति बंचक परपति रति करई।
रौरव नरक कल्प सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी।
दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई।
विधवा होइ पाइ तरुनाई॥

कामी के प्रलोभन सती-साध्वी पतिव्रता नारी के मन को डिगा नहीं सकते। संसार में बहकाने वाले दुराचारियों की कमी नहीं। शीलवान नारियाँ उनकी चिकनी-चुपड़ी बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं करतीं और उनसे अपने शील की रक्षा कर लेती हैं। धनुष-यज्ञ के प्रसंग में यह तथ्य सुन्दर अलंकारिक शैली में प्रकट किया गया है–

डिगइ न संभु सरासन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे॥

निर्लज्ज छेड़-छाड़ करने वाले दुराचारियों से शालीन नारियाँ विशेषतया नीची आँख करके ही आवश्यकता पड़ने पर बातें करती हैं। संकोच वश चुपचाप उनका अनर्गल-प्रलाप सुनती नहीं रहतीं वरन् खूब खरी-खोटी सुना कर उसे यह जता देती हैं कि उसकी कुचेष्टा सफल होने की यहाँ तनिक भी संभावना नहीं है सीता रावण को इसी प्रकार का उत्तर देती है–

तृन धरि ओट कहत वैदेही।
सुमिरि अवध पति परम सनेही॥
सुनु दस मुख खद्योत प्रकासा।
कबहुँ कि नलिनी करइ विकासा॥
अस मन समुझु कहति जानकी।
खल सुधि नहिं रघुबीर बान की॥
सठ सूनें हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

पति-पत्नी परस्पर अनन्य निष्ठा तथा कर्तव्य परायणता बनाये रख कर जीवन की विषमताओं को जीत कर स्वर्गीय सुख अनुभव कर सकते हैं।

ससुराल पक्ष का शील और मर्यादा

परिवार में ससुराल पक्ष का भी महत्त्व कम नहीं है। लड़के एवं लड़की दोनों के ससुरालपक्ष वालों के भी परस्पर कर्तव्य और मर्यादाएँ हैं। सास-ससुर का अपनी बहुओं के प्रति इतना मधुर व्यवहार रहना चाहिए कि उन्हें पराये घर आने का, पराये लोगों के साथ रहने में अजनबीपन न लगे। उन्हें ऐसा अनुभव हो मानो इसी घर में जन्मी और बड़ी हुई है। सास ससुर का स्नेह माता-पिता से कम नहीं अधिक है। अपनी कन्या से भी अधिक प्यार दुलार बहुओं को देना उनका कर्तव्य है। दशरथ अपनी रानियों को ऐसी ही शिक्षा देते हैं कि वे अपनी ओर से इन नवागत लड़कियों के साथ स्नेह-दुलार में किसी प्रकार की कमी न रहने दें। जब वे चारों पुत्रों का विवाह करके अयोध्या लौटते हैं, तो वे राजमहल में बहुओं को रख कर उनकी सासों को आदेश देते हैं कि लड़कियाँ अभी वधू बन कर दूसरे घर में आई है। उनको इस तरह स्नेहपूर्वक सँभाल कर रखना जैसे नेत्रों को पलक रखते हैं–

बधू लरिकिनी पर घर आई।
राखेउ नयन पलक की नाई॥

राजा ने केवल कहा ही हो ऐसी बात नहीं है, कौशिल्यादि ने दशरथ जी के कथन को चरितार्थ करके दिखा दिया। वन गमन के समय वे अपनी भावना व्यक्त करती हुई कहती हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई ।
राखेउँ प्रान जानकिहिं नाई ॥

यह परिवार का आदर्श है जिसमें सास-बहू के मधुर सम्बन्ध परिवार को स्नेह का आगार बना सकते हैं । बहुओं को वे कैसे रखती थीं, इसका वर्णन करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं कि सर्प मणि के बिना बहुत दुःखी होता है, इसलिए उसकी प्राणों के समान रक्षा करता है । कुण्डली मार कर बैठता है तो मणि को बीच में रख लेता है, उसी प्रकार सासें बहुओं को प्रेम से लेकर सोई—

सुन्दर बधुन्ह सासु लै सोई ।
फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई ॥

सीता के विछोह की कल्पना माँ कौशिल्या को सचमुच विकल कर देती है । वनगमन के अवसर पर विलाप करती हुई वे राम से कह रही हैं कि हे तात ! सीता अत्यन्त सुकुमारी है । सास, ससुर और परिजनों के दुलार में पलने वाली है । कोई कष्ट न होने पावे—

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी ।
सास सुसर परिजनहि पिआरी ॥

माता कौशिल्या ने पुत्र को ही स्नेह पिलाकर नहीं पाला बहू को भी स्नेह से सींचकर उसको दुलार दिया—

कलप बेलि जिमि बहु विधि पाली ।
सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
जियन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ ।
दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥

एक सास अपनी बहू के लिए इससे अधिक क्या कह सकती है ? कौशिल्या कितनी गम्भीरता पूर्वक राम को सीता के सम्बन्ध में कह रही है कि सीता चकोरी और हंसनी की तरह है । वह चन्द्र की शीतलता तथा गंगा की धारा में खेलती है । वन के कष्ट, धूप और दलदल आदि को कैसे सहन कर सकेगी—

चन्द किरन रस रसिक चकोरी ।
रबि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥
सुरसरि सुभग बनज बनचारी ।
डाबर जोग कि हंस कुमारी ॥

दशरथ जी का स्नेह भी बहू के प्रति पुत्री जैसा ही है । जब वन जाने लगीं तब महाराज दशरथ ने सीता जी को हृदय से लगाकर अनेक प्रकार से हितकारी उपदेश दिये—

तब नृप सीय लाय उर लीन्हीं ।
अति हित बहुत भाँति सिख दीन्हीं ॥

उसी प्रसंग में महाराज दशरथ सुमंत्र से कहते हैं कि यदि समझाने पर भी राम-लक्ष्मण वन से न लौटें तो सीता को वापिस ले आना । यदि यह लौट आयेगी तो मेरे प्राणों को सहारा मिल जायगा—

एहि विधि करेहु उपाय कदंबा ।
फिरइ त होइ प्रान अवलंबा ॥

ठीक मृत्यु के पूर्व भी वे मूर्च्छित अवस्था से उठकर पूछते हैं—

कहाँ लखन कहँ राम सनेही ।
कहँ प्रिय पुत्र बधू वैदेही ॥

जहाँ ऐसा स्नेहसिक्त व्यवहार होगा वहाँ बहुएँ भी कर्तव्य पालन और सेवा-भाव में कमी न रखेंगी । दशरथ जैसे ससुर और कौशिल्या जैसी सासों को सीता जैसी बधुओं की सेवा सहज ही मिल जाती है । सीता का व्यवहार भी कम भाव भरा न था ।

वन जाते समय सीता जी सास से कहती है— मेरे मन में इस बात का बड़ा दुःख है कि आपकी सेवा का जो अवसर था वह विमाता ने मुझसे छीन लिया—

तब जानकी सास पद लागी ।
सुनिअ मात मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैव बनु दीन्हा ।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहूँ ।
करमु कठिन कछु दोसु न मोहूँ ॥

सीता जी को वन में पहुँच कर भी सास-ससुर का ध्यान रहता है । वे सुमंत्र से कहती है कि सासु-ससुर से मेरी ओर से पाँव पकड़ कर विनय पूर्वक कहना कि मेरे लिए जरा भी सोच न करें । मैं वन में भी सुखी रहूँगी । वे विपत्ति का साहस पूर्वक स्वागत करती हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सासु ससुर सन मोरि हुति, विनय करिब परि पाँय ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मैं वन सुखी सुभाय ॥

सीता जी की यह भावना दिखावटी न थी चित्रकूट में अवसर मिलते ही उन्होंने अपनी सेवा-भावना का प्रमाण प्रस्तुत किया—

सीय सासु प्रति भेष बनाई ।
सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्हीं ।
तिन्ह लगि सुख सिख आसिष दीन्हीं ॥

सीता जी की सेवा और राम-लक्ष्मण के व्यवहार से महारानी कैकेयी के मन की कुटिलता धुल गई । उन तीनों की सरलता देखकर अपनी करनी पर उन्हें अत्यन्त पश्चाताप हुआ—

लखि सिय सहित सरल दोउ भाई ।
कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥

चौदह वर्ष पूरे होने पर जब सीताजी अयोध्या पहुँच गई और महारानी बन गई तब भी उनकी सेवा-भावना उनके आचरण में दिखाती रहीं । वे निरभिमान होकर पति एवं सासों की सेवा करती हैं—

जेहि बिधि कृपासिन्धु सुख मानइ ।
सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं ।
सेबइ सबहिं मानमद नाहीं ॥

जामाता के लिए श्वसुर भी अपने सगे पिता की तरह ही पूज्य हैं । श्वसुर के लिए जामाता पुत्र तुल्य है । चित्रकूट में जनक के पहुँचने पर राम उन्हें गुरुजनों की श्रेणी में रखकर ही सम्मान देते हैं—

करि वन विनय ससुर सनमाने ।
पितु कौसिक बसिष्ठ सम जाने ॥

वस्तुत: जनक जी ने कठिन परिस्थिति आ पड़ने पर अपने कर्तव्य का पालन उच्च आदर्शानुकूल ही किया । रामचन्द्र जी को स्वीकार करना पड़ा कि बिगड़ती बात को गुरु वशिष्ठ तथा जनक जी ने ही सँभाल लिया—

जौं बिनु अबसर अँथव दिनेसू ।
जग केहि कहहु न होय कलेसू ॥
तस उत्पात तात बिधि कीन्हा ।
मुनि मिथिलेस राखि सब लीन्हा ॥

चित्रकूट प्रसंग के बाद भी उनकी कर्तव्य परायणता का क्रम चलता रहा । राम वन चले गये थे, किन्तु उन्होंने भरत के प्रति भी अपने कर्तव्य को उतना ही महत्त्वपूर्ण माना । वे साथ-साथ अयोध्यापुरी गये तथा अपने अनुभव के आधार पर चार दिन में वहाँ की सारी व्यवस्थाएँ सँभाल कर तथा मंत्रियों को सौंपकर तब जनकपुरी गये—

जनक रहे पुर बासर चारी ।
राम काज सब साज सम्हारी ॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू ।
तेरहुति चले साजि सब साजू ॥

माता-पिता द्वारा कन्या को ससुराल के अनुरूप कर्तव्य पालन की शिक्षा देना आवश्यक है । विवाह के बाद जनकपुर से विदाई के अवसर पर सुनयना जी, जनक जी सभी सीता को पति के अनुकूल रह कर सास- ससुर की सेवा करने का उपदेश देते हैं । माता-पिता को अपनी कन्याओं को ऐसी ही शिक्षा देनी चाहिए कि वे केवल पति की ही नहीं वरन् उस सारे परिवार की सेवा सहायता करें—

पुनि पुनि सीय गोद कर लेहीं ।
देइ असीस सिखाबुन देहीं ॥
होएहु संतत पियहिं पियारी ।
चिरु अहिबात असीस हमारी ॥
सास ससुर गुरु सेवा करेहू ।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥

लड़कियों को स्वार्थी बनने की नहीं वरन् आदर्श बनने की प्रेरणा देनी चाहिये, भले ही इसके लिए उन्हें कष्ट उठाना पड़े या अभावग्रस्त रहना पड़े । आदर्श प्रस्तुत करने के लिए सीता जब तपस्विनी का वेष बनाती है तो जनक दुखी नहीं होते वरन् संतोष मानते हैं और सीताजी के उस साहस की प्रशंसा करके प्रोत्साहन देते हैं । वे आनन्द मग्न होकर पुत्री को आशीर्वाद और कल्याणकारी शिक्षा भी देते हैं । वे उन्हें बार-बार हृदय से लगाकर कहते हैं कि पुत्री तुमने दोनों कुलों को पवित्र कर दिया । संसार भर में तुम्हारी कीर्ति फैल गई—

तापस वेष जनक सिय देखी ।
भयउ प्रेम परितोष विसेषी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ ।
सुजस धवल जग कह सब कोऊ ॥
पुनि पितुमातु लीन्ह उर लाई ।
सिख आसिष हित दीन्ह सुहाई ॥

ससुराल में जाकर बहुओं को कुछ मर्यादाओं का पालन करना चाहिये । पिता के घर आना हो तो ससुराल वालों का परामर्श लेकर ही वैसा करना चाहिये । शिव-पत्नी सतीजी ने उक्त मर्यादा के पालन में ढिलाई की, फलस्वरूप उन्हें दुख उठाना पड़ा । शिवजी ने उनको समझाया कि यद्यपि मित्र, स्वामी पिता, गुरु के घर बिना बुलाये जाने में भी हर्ज नहीं, फिर भी स्त्रियों के बिना बुलाये पिता के घर जाने में शील सनेह चला जाता है—

जौ बिनु बोले जाहु भवानी ।
रहइ न सीलु सनेहु न कानी ॥

चित्रकूट प्रसंग में सीताजी अपनी सासुओं की सेवा छोड़कर माता-पिता के डेरे में उस समय तक नहीं गई जब तक स्वयं सुनयनाजी ने माता कौशिल्या के पास जाकर उन्हें कुछ समय के लिए अपने डेरे में ले जाने की स्वीकृति प्राप्त न करली । तब सीताजी वहाँ जाकर सबसे यथायोग्य मिलीं—

अस कहि पगपरि प्रेम अत, सिय हित बिनय सुनाइ ।
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥

इतने प्रेम पूर्ण वातावरण में भी सीता ने पिता के डेरे में रात्रि निवास करना अपनी साधना में बाधक माना और सासुओं के पास जाना ही उचित समझा । लेकिन वे स्पष्ट रूप से माता पिता से वैसा कह नहीं सकती थी । महारानी सुनयना ने सीता का रुख समझ कर महाराज जनक को उससे अवगत कराया और हृदय से उनके शील स्वभाव की सराहना करने लगीं । स्त्रियों के अपने पितृ-गृह में बहुत अधिक अनुरक्त न होकर पति गृह को अपना घर मानना और वहीं रहने की बात सोचने का औचित्य इस प्रसंग में है—

कहत न सीय सकुचि मन माहीं ।
इहाँ बसब रजनी भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ ।
हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ ॥

अनेक परिवारों के सन्तुलन ससुराल-पक्ष की मर्यादाओं के भंग होने से बिगड़ते रहते हैं । मानस से प्रेरणा लेकर कर्तव्यों का निर्वाह करना वे सीख लें तो परिवारों में सुख-शान्ति कर संचार सहज हो जाय—

सन्तानोत्पादन की मर्यादा और जिम्मेबारी

कुटुम्ब बढ़ाना, सन्तानोत्पादन करना वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टि से असाधारण रूप से भारी उत्तरदायित्व है । इसे वहन करने के लिए अपनी तथा पत्नी की शारीरिक, मानसिक और आर्थिक स्थति को देखकर ही कदम बढ़ाना चाहिये । देश, काल, समाज की स्थिति को भी देखना चाहिए कि सन्तान वृद्धि में क्या प्रतिक्रिया होगी और इससे निर्वाह की तथा सुविधा-साधनों की कमी को और भी जटिल तो न होना पड़ेगा । शरीरों में रक्त माँस की कमी रहते हुए भी जो उसे अविवेक पूर्वक सन्तानोत्पादन में नष्ट करते हैं वे स्वयं भी रोग एवं अकाल मृत्यु के मुँह में जाते हैं और बच्चों को भी अविकसित, अभावग्रस्त रखकर उनके साथ अन्याय करते है ।

यदि सन्तान करना ही हो तो दो से अधिक नहीं करना चाहिए । राम के दो पुत्र थे । लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ने भी उसी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया । वे जानते थे कि अधिक सन्तान उत्पन्न करने से समुचित स्नेह एवं साधन दे सकने के अभाव में उनका स्तर ऊँचा नहीं उठाया जा सकता । अधिक बच्चे पैदा करने से लंका निवासी असुरों को क्या-क्या दुष्कर्म नहीं करने पड़े, यह उन्हें भली प्रकार विदित था । इसलिए आवश्यक संतान उत्पन्न करने का उन्होंने पहले से ही ध्यान रखा । उन पर समुचित ध्यान भी दिया जा सका और उन्हें सुयोग्य सुविकसित भी बनाया जा सका ।

दशरथ जी के चारों बालक वीर, विनीत, धर्मव्रत-धारी और गुणसागर थे । इसीलिए रामायण के सराहनीय नायक और अवतारी भगवान कहलाने योग्य हो सके-

वीर विनीत धरमव्रत धारी ।
गुन सागर वर बालक चारी ॥

दो पुत्र सीताजी के हुए, जिनका वेद और पुराणों ने लव-कुश नाम से गान किया है । दोनों समर विजय, शूर एवं विनम्र गुणों के मन्दिर है मानों श्री राम के सुन्दर प्रतिबिम्ब ही हों—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाए ।
लव कुस बेद पुरानन्ह गाए ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोउ बिजई विनई गुनमन्दिर ।
हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर ॥

दो-दो पुत्र सब भाइयों के हुए । सभी रूप गुण और शील के भण्डार थे—

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे ।
भए रूप गुण सील घनेरे ॥

जिन बच्चों की समुचित शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध नहीं किया जा सकता, जिनके अभिभावक शिशु-विकास की क्षमता एवं साधन-सामग्री जुटाने में असमर्थ हैं, उनके बच्चे कुपुत्र ही बनेंगे और वे कुपुत्र अपना, अपने परिवार का तथा श्रेष्ठ मर्यादाओं का विनाश करते हैं, जिसका पाप उन अविवेकी अभिभावकों को लगता है, जो सामर्थ्य के देखे बिना सन्तानें उत्पन्न करते जाते हैं—

कबहुँ प्रबल मारुत चलत इत उत मेघ विलाहिं ।
जिमि कुपुत्र के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥

अस्तु, यह सोचना गलत है कि पुत्र हर हालत में कुल का गौरव बढ़ायेंगें और माता-पिता को पुण्य और सद्गति देने वाले होंगे । कुपुत्र होने से तो पुत्र न होना अच्छा यदि बच्चे के भरण-पोषण अथवा उन्हें श्रेष्ठ संस्कार देने की अपनी क्षमता न हो तो बच्चे पैदा न करना ही उचित है ।

इसी तथ्य का समर्थन लक्ष्मण को उपदेश देती हुई माता सुमित्रा करती है । वे कहती है कि सन्तान उत्पन्न करना उसी का सार्थक है, जिसके बच्चे राम-काज के योग्य बन सकें । कर्तव्य विमुख धर्म विरोधी एवं आस्तिक आस्थाओं से रहित धरती का भार बढ़ाने वाली औलाद की अपेक्षा तो बाँझ रहना ही अच्छा है । जो सुयोग्य सन्तान का निर्माण न कर सकें वे व्यर्थ ही कुतिया की तरह 'व्याती' फिरती हैं—

पुत्रवती जुवती जग सोई ।
रघुबर भगत जासु सुत होई ॥
नतरु बाँझ भलि वादि बिआनी ।
राम विमुख सुत से हित हानी ॥

अयोध्याकाण्ड में निषाद राज गुह भी अपने अनुयायियों को राम कार्य में मर मिटने का उत्साह दिलाता हुआ कहता है कि ऐसी सन्तान अपनी माता के यौवन रूपी वृक्ष को काट कर बर्बाद करने वाली कुल्हाड़ी की तरह है, जिससे पृथ्वी का भार बढ़ता है और जिसकी गणना सज्जन, सत्कर्मियों में नहीं होती । बच्चे को जन्म देने में माँ को अपने यौवन की बलि देनी पड़ती है । यदि पुत्र कुछ उल्लेखनीय कार्य न कर सका तो यौवन का बलिदान व्यर्थ ही चला जाता है—

साधु समाज न जाकर लेखा ।
राम भगत में जासु न रेखा ॥
जायँ जियत जग सो महि भारू ।
जननी जौवन बिटप कुठारू ॥

माता-पिता अपना तपस्वी एवं आदर्श जीवन बनाकर अपने सांचे में बच्चों को उच्च स्तर का ढाल सकते हैं । स्वयंभू मनु और सतरूपा रानी ने यही किया और दशरथ तथा कौशिल्या के रूप में भी उन्होंने अपना व्यक्तित्व ऊँचा रखा, तभी उनकी गोद में महान सन्तानों का अवतरण हो सका—

तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला ।
प्रभु आयसु सब बिधि प्रतिपाला ॥
बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा ।
नारि समेत गमन बन कीन्हा ॥
पंथ जात सोहहि मतिधीरा ।
ग्यान भगति जनु धरे सरीरा ॥

दोनों ने मिलकर अगले जन्म में सुसंतति के लिए विशेष तप किया । दशरथ और कौशिल्या के रूप में भी उन्होंने उन आदर्शों का बराबर ध्यान रखा जिनके आधार पर सुसंतति पायी जा सकती है । इसके लिए पति-पत्नी में परस्पर अगाध प्रेम पवित्र आचरण, गुणों का भण्डार, धर्म ज्ञान तथा भक्ति का होना आवश्यक है । उन्हीं के सद्गुण बच्चों में प्रकट होते हैं—

अवध पुरी रघुकुल मनि राऊँ ।
बेद विदित तेहि दसरथ नाऊँ ॥
धरम धुरन्धर गुन निधि ग्यानी ।
हृदय भगति मति सारंग पानी ॥
कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत ।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरिपद कमल विनीत ॥

सुसंतति का निर्माण करने के कारण कौशिल्या की कीर्ति सर्वत्र फैली । संसार को सुख देने वाली और अवांछनीयताओं को निरस्त करने वाली सन्तानें ऐसी सुयोग्य सुसंस्कारी माताओं की गोद में ही विकसित होती हैं । तुलसीदास जी ने उनकी वन्दना 'पूर्व दिशा' कहकर की है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन्दौं कौसल्या दिशि प्राची ।
कीरति जासु सकल जग माची ॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति शशि चारू ।
विश्व सुखद खल कमल तुषारू ॥

दशरथ ने पुत्र प्राप्ति के लिए उतावली नहीं की । श्रेष्ठ भक्ति के अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने तथा अपने संस्कार जाग्रत करने तक उन्होंने इस कामना पर संयम रखा । जब अवस्था बढ़ती देखकर योग्य उत्तराधिकारी की आवश्यकता अनुभव की तभी पुत्र इच्छा प्रकट की—

गुरुगृह गयउ तुरत महिपाला ।
चरन लागि करि विनय विसाला ॥
निज दुख सुख सब गुरुहिं सुनायहु ।
कहि बसिष्ठ बहु बिधि समझायहु ॥

संतति पर श्रेष्ठ संस्कार पड़े इसलिए साधनात्मक तथा यज्ञीय वातावरण का निर्माण किया गया—

श्रृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा ।
पुत्रकाम शुभ जग्य करावा ॥

इन्हीं सब साधनों से वे आदर्श सन्तति उत्पन्न करके संसार का हित तथा अपना यश एवं संतोष दोनों ही लाभ प्राप्त कर सकें ।

माता-पिता का जैसा स्वभाव, आचरण होता है उसी के अनुरूप संतान भी बनती है । सती जी अपनी मन्द मति का एक कारण पिता दक्ष की दुर्बुद्धि को भी मानती है और सोचती है कि उनसे उत्पन्न मेरी देह भी वैसी ही होनी चाहिए—

पिता मन्दमति निन्दित तेही ।
दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥

सन्तान के लिए शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तथा श्रेष्ठ संस्कार दोनों की व्यवस्था अभिभावकों को करनी पड़ती है । आर्थिक तंगी की दशा में तो सन्तानोत्पादन करना पहले सिरे की मूर्खता है । ऐसे लोगों को कष्ट कठिनाइयों में दिन पर दिन अधिक गहराई तक फँसते जाना पड़ता है । उन्हें कम पानी में रहने वाली मछली की तरह तड़पना पड़ता है—

जल संकोच विकल अति मीना ।
अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना ॥

धनहीन हो और सुसंस्कारी हो तो वह अपनी बुद्धि, प्रतिभा तथा योग्यता से अपना रास्ता बना लेते हैं । किन्तु न तो बुद्धि हो और न साधन हों तब तो सन्तान को सब प्रकार कष्ट ही उठाने पड़ते हैं । पर ध्यान रहें कि केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति संतान का भला नहीं कर सकती । रावण के पास लौकिक साधनों की कमी नहीं थी । उसने अधिक संतान पैदा कर लीं, उनका पालन पोषण भी कर लिया । पर वह सब संस्कारों के अभाव में उसे प्रसन्नता न दे सके । इससे उसका अहंकार ही बढ़ा—

दसमुख बैठि सभा इक बारा ।
देखि अमित आपन परिवारा ॥
सुत समूह जन परिजन नाती ।
गनै को पार निसाचर जाती ॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी ।
बोला वचन क्रोध मद सानी ॥

उसको शक्ति का अहंकार हो जाने से वह निरंकुश होकर अनीति करने लगा । किन्तु वह अनीति उसे सपरिवार ले डूबी । यदि उसने अपने दूसरे उत्तरदायित्व अर्थात् पोषण के साथ संतान में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ पैदा करने पर ध्यान दिया होता तो उसका गौरव स्थायी हो सकता था ।

इस दृष्टि से बालि ने समझदारी की । वह स्वयं अपने को अहंकार तथा लोकेषणा के बंधन से मुक्त न कर सका किन्तु पुत्र के सम्बन्ध में वह सतर्क रहा । एक ही पुत्र उसने पैदा किया और उसे बल, विक्रम में अपने समान बनाया । इससे आगे के श्रेष्ठ संस्कार पुत्र में पैदा कर सकने की अपनी असमर्थता को समझकर उसने उसे युग पुरुष की सेवा में सौंप दिया—

यह तनय मम सम विनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए ।
गहि बाँह सुर नरनाह आपन दास अंगद कीजिए ॥

बालि ने पुत्र को विनय बल आदि दिया तथा उसे कल्याण-प्रद बनाने का उत्तरदायित्व श्री राम पर सौंप कर संतान के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा किया । अंगद पिता से बल तथा भगवान राम से सुसंस्कार पाकर अद्भुत व्यक्तित्व के धनी बने । रावण जैसे को उसी की भरी सभा में चुनौती देकर राक्षसों का मनोबल तोड़ने में समर्थ हुए ।

इस प्रकार मानस में विविध प्रकार संतान के प्रति उत्तरदायित्वों तथा मर्यादाओं के निर्वाह के प्रसंगों से प्रेरणा प्राप्त कर अपने उत्तरदायित्वों को समझा जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावकों और सन्तान के पारस्परिक कर्तव्य

माता-पिता तथा उनके समकक्ष ताऊ, चाचा आदि पितृजनों का सम्मान करना पुत्रों का, छोटों का कर्तव्य है । उनके सत् परामर्श और उपयोगी अनुभव का लाभ उठाने के लिए अनुशासन भी मानना चाहिये । पितृ-ऋण चुकाने के लिए उनकी सेवा सुश्रूषा भी भरपूर करनी चाहिए । यह सन्तान के लिए छोटों के लिए परम पवित्र कर्तव्य है । इसी प्रकार पितृजन भी बच्चों के भौतिक एवं आत्मिक विकास के लिए शक्ति भर प्रयत्न करें तथा सुसंस्कारी बनाने में किसी प्रकार त्रुटि न रखें । बच्चों का सर्वोत्तम संस्कार, शिक्षण अभिभावक अपने उज्ज्वल चरित्र से ही कर सकते हैं । बच्चों पर उपदेशों का कम और घर में जो देखते हैं उसका प्रभाव अधिक पड़ता है । इसलिए बच्चों का सच्चा विकास एवं हितसाधन करने के लिए न केवल अभिभावकों का वरन् समूचे घर, परिवार का वातावरण सद्भावना सम्पन्न एवं सत्प्रवृत्तियों का केन्द्र बनाया जाना चाहिए । ऐसे ही परिवारों में से नररत्न एवं महामानव निकलते हैं । राम परिवार में ऐसे ही मधुर सम्बन्ध भरे हुए थे । अतएव वहाँ रामावतार के मर्मस्पर्शी आदर्श उपस्थित हो सकें ।

मानस का आदर्श है कि न केवल छोटों को बड़ों का वरन् बड़ों को भी छोटों का आदर करना चाहिए । स्नेह के साथ-साथ बच्चों का स्वाभिमान जगाने के लिए उनको सम्मान भी दिया जाना चाहिए । विश्वामित्र जी जब राम-लक्ष्मण को दशरथ से माँगने आये तब वे पुत्रों को बड़े आदरपूर्वक ही बुलाते हैं—

अति आदर दोउ तनय बोलाए ।
हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए ॥

छोटों को सम्मान देने से बड़ों के बड़प्पन में कुछ भी कमी नहीं आती । वरन् उसमें और वृद्धि ही होती है । पर्वत अपने द्वारा उत्पन्न तिनकों को अपने सिर पर स्थान देते हैं, अगाध समुद्र फेन को ऊपर रखता है तथा पृथ्वी अपने ऊपर रज को बनाये रखती है । इसी प्रकार बड़ों को चाहिए कि छोटों को स्नेह और सम्मान देते रहें—

बड़े सनेह लघुन्ह पै करहीं ।
गिरि निज सिरन सदा तृन धरहीं ॥
जलधि अगाधि मौलि वह फेनू ।
संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥

बच्चों को प्यार तो पूरा करना चाहिए, किन्तु यदि उन्हें किसी कठोर धर्म कर्तव्य का पालन करने के लिए जाना है तो फिर उस मोह के कारण उन्हें घर ही रोक रखने का कोई औचित्य नहीं ।

यज्ञ में विघ्न डालने वाले असुरों से लड़ाने के लिए जब विश्वामित्र दशरथ जी से उनके पुत्रों को माँगने आते हैं तो पहले वे मोहवश देने में संकोच करते हैं—

देह प्रान ते प्रिय कछु नाहीं ।
सोउ मुनि देउं निमिष एक माहीं ॥
सब सुत मोही प्रिय प्राण की नाईं ।
राम देत नहिं बनत गुसाईं ॥

किन्तु विश्वामित्र जी ने राम-लक्ष्मण में योग्यता तथा सुसंस्कार बढ़ने का पक्ष भी सामने रखा । पुत्रों का कल्याण इसी तरह से हो सकेगा, यह कहा—

अनुज समेत देहु रघुनाथा ।
निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥
देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अज्ञान ।
धर्म सुंजसु प्रभु तुम्ह कौं, इन्ह कँह अति कल्यान ॥

गुरु वसिष्ठ जी ने भी इस बात का समर्थन किया । तब राजा दशरथ ने कर्तव्य के आगे अपने मोह को महत्व नहीं दिया । ऋषि को पिता का अधिकार भी देते हुए अपने पुत्रों को सौंप दिया—

मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ ।
तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥
सौंपे भूप रिषहिं सुत, बहु बिधि देइ असीस ।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥

राजा दशरथ यदि पुत्र मोह कर जाते तो अपने कर्तव्य से विमुख होकर अपयश के भागी बनते तथा राम का विकास भी रुक जाता । वन में ऋषियों के सान्निध्य में उन्हें ज्ञान, पुरुषार्थ, अस्त्र-शस्त्र सभी की प्राप्ति हुई । अभिभावकों को चाहिए कि अपने मोह को पुत्रों के विकास तथा अपने कर्तव्य में बाधक न बनने दें ।

माता सुमित्रा भी पुत्र-मोह को आदर्श के मार्ग में बाधक नहीं बनने देती । श्री राम वन जाने को तैयार होते हैं तो वे अपने पुत्र लक्ष्मण को अपनी आँखों के आगे सुख-सुविधा में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखनें की बात न सोचकर उन्हें कर्तव्य-पालन तथा अपने श्रेष्ठ संस्कारों का उद्‌बोधन देती हुई कहती है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही ।
पिता राम सब भाँति सनेही ॥
तहाँ अवध जहँ राम निवासू ।
तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू ॥
जोपै सीय राम वन जाहीं ।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥
राग रोस इरषा मद कोहू ।
जनि सपनेहुँ इनके बस होहू ॥
सकल प्रकार विकार विहाई ।
मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥
जेहि न राम बन लहहिं कलेसू ।
सुत सोइ करहु इहै उपदेसू ॥

माता से इस प्रकार की प्रेरणा मिलने से लक्ष्मण का अपने कर्तव्य के प्रति उत्साह बढ़ गया और वे एक अनुपम आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत करके स्वयं अपने आपको, माता को तथा सारे कुल को गौरवान्वित कर सके ।

माता कौशिल्या का उदाहरण भी इस प्रसंग में अवलोकनीय है । राम जैसे पुत्र को निरपराध बन जाने देना उन्हें अनुचित लगता है । किन्तु रोकने से राम में बड़ों की मर्यादा तोड़ने का कुसंस्कार न आ जाये, इसलिए वे अपना अधिकार प्रकट करती हुई कहती हैं—

जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ माता ॥

माँ का पुत्र पर अधिक अधिकार है, इस नैतिक आदर्श के सहारे वे राम को रुकने की सलाह देती हैं । किन्तु मातायें सब बराबर हैं यह स्मरण करती हुई वे पुत्र-विछोह के दुःख तथा पुत्र के कष्टों को महत्त्व न देकर कहती हैं—

जौ पितु मातु कहेउ बन जाना ।
तौ कानन सत अवध समाना ॥

पुत्र के प्रति स्नेह तथा उस संस्कारों के प्रति उत्तरदायित्वों के निर्वाह का ऐसा समन्वय दुर्लभ है ।

बड़ों की आज्ञा मानना तो उचित है, पर उन्हें उनके कर्तव्य का बोध भी कराना चाहिये । यदि वे अनुचित आज्ञा देते हों या कर्तव्य-पालन में अड़चन डालते हों तो आदेश मानने की अपेक्षा उन्हें प्रबोध करना ही उचित है । दशरथ जी मोहग्रस्त होकर वन जाने का स्पष्ट आदेश नहीं देते, संकोच में पड़ते हैं, तब राम कहते हैं—

पितु असीस आयसु मोहि दीजै ।
हरष समय बिसमय कत कीजै ॥
तात किये पुनि प्रेम प्रमादू ।
जसु जग जाइ होई अपबादू ॥

भरत जब राम को वापस अयोध्या लौटने के लिए कहते हैं तब राम उन्हें समझाते हैं कि तुम्हारे आग्रह का तो मुझे बहुत संकोच है, पर पिताजी ने सत्य की रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्यागे । उन सत्यवादी पिता के वचनों का उल्लंघन करना कहाँ तक उचित है, यह भी विचारणीय है ।

राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी ।
तनु परिहरेउ प्रेम पन लागी ॥
तासु वचन मेटत मन सोचू ।
तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू ॥

राम भरत के स्नेह को भी मान्यता देते हैं । किन्तु पिता के आदर्शों के प्रति उनका ध्यान दिलाकर आदर्श पुत्र के उत्तर दायित्वों का भी निर्वाह करते हैं । भाई को भी ऐसा ही करने की सलाह देते हैं, जिससे कुल की प्रतिष्ठा बढ़े-

सो तुम करहु करावहु मोहू ।
तात तरनि कुल पालक होहू ॥

ऐसा ही प्रसंग उमा तप के संदर्भ के सामने आता है । नारद जी पार्वती को तप करने की सलाह देते हैं किन्तु माता मैना मोहवश पुत्री को रोकती हैं । पार्वती उसको महत्त्व नहीं देती । वह विवेक और तर्क द्वारा उनका समाधान करके अपनी साधना में प्रवृत्त हो जाती हैं । वे कहती है "माँ, तुम कर्म व्यवस्था को नहीं बदल सकतीं । जो मुझे अपने तप-पुरुषार्थ से पाना चाहिये वह उसी ढंग से मिलेगा । अतः मुझे अपने कर्तव्य पथ पर बढ़ने दो"—

मातु पितहिं बहु बिधि समुझाई ।
चली उमा तप हित हरषाई ॥

वैमनस्य के बीज जहाँ हों उन्हें अपनी ओर से पहल करके समाप्त करना चाहिए । यों कैकेई ने ही वनवास दिया था, इस

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए मन मुटाव होना स्वाभाविक था । उसे समाप्त करने के लिए राम ने अन्य माताओं से पहले कैकेयी से ही भेंट करना उचित समझा ।

प्रथम राम भेंटी कैकेयी ।
सरल सुभायँ भगत मति भेई ॥

अपनी सांस्कृतिक परम्परा यही है कि बड़ों से भूल हो तो उसका सुधार तो करा लिया जाय, किन्तु उनके प्रति अपने कर्तव्य में कमी न आने दी जाय । श्री राम, लक्ष्मण, सीताजी ने चित्रकूट प्रसंग में बिना किसी भेदभाव के सभी माताओं की सेवा की, फलस्वरूप कैकेई का दुर्भाव उस प्रवाह में बह गया ।

भरत जी भी अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग हैं । माँ कैकेयी की अनीति पर वे उसकी भर्त्सना तो करते हैं, यहाँ तक कह देते हैं कि तू कोई भी सही, पर आँख की ओट होजा–

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई ।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

किन्तु उनकी सेवा व्यवस्था के अपने कर्तव्य में कमी नहीं आने देते । सब माताओं के साथ उन्हें भी चित्रकूट ले जाते हैं । चित्रकूट से लौटने पर भरत ने माताओं की सेवाओं की पूरी व्यवस्था की और छोटे भाई शत्रुघ्न को इसकी शिक्षा दी–

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई ।
सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥

जहाँ अभिभावकों तथा बच्चों में परस्पर कर्तव्य पालन की उच्च स्तरीय भावना होगी वहाँ अनेक कठिनाइयों के बीच भी परिवार गौरव तथा सुख संतोष के मार्ग पर बढ़ता चला जायगा ।

शिष्टाचार का अभ्यास बचपन से हो

शिष्टाचार का अर्थ है दूसरों के सम्मान की रक्षा करने वाला सज्जनता का व्यवहार । सुसंस्कृत 'स्व' का अर्थ समझते हैं और उसका सम्मान करते हैं । स्वाभिमान की तरह उन्हें पर सम्मान भी आवश्यक लगता है । मनुष्यता की माँग है कि व्यक्ति दूसरों पर अपनी शालीनता की छाप डाले और हर व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर उसके साथ सद्व्यवहार करे । नागरिक कर्तव्यों का पालन अपनी कर्तव्य-निष्ठा और सभ्यता को प्रमाणित करता है और शिष्टाचार यह बताता है कि हम मनुष्यता का, मनुष्य का सम्मान करना सीख गये ।

बड़ों के साथ नम्रता, विनय एवं उनका गौरव स्वीकार करने वाला व्यवहार किया जाता है । ऐसे व्यवहार में चरण स्पर्शपूर्वक अभिवंदन भी आता है । भेंट होने पर नैमित्तिक रूप में और प्रातःकाल नित्य नियम के रूप में बड़ों के चरण स्पर्श करना भारतीय शिष्टाचार का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । इसमें अनुशासन की स्वीकृति है । पिता, बाबा, बड़े भाई, ताऊ, चाचा, माता, ताई, चाची, बड़ी भाभी, भुआ, बड़ी बहिन आदि को गुरुजनों की श्रेणी में रखा गया है और उनके नित्य प्रति प्रातः काल चरण स्पर्श करने की अपनी परम्परा है । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने बड़ों का चरण स्पर्श करती हैं । शास्त्र का कथन है कि जो मनुष्य अभिवादनशील है तथा नित्य बड़े-बूढ़ों की सेवा एवं आज्ञा पालन करता है, उसकी आयु, विद्या, यश, बल ये चार चीजें बढ़ती हैं–

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

रात्रि को जल्दी सोने और प्रातः जल्दी उठने की आदत बचपन से ही डाली जानी चाहिये । शौच, स्नान आदि नित्य कर्म उठते ही करने चाहिये । देर तक सोने वाले और नित्य कर्म में आलस्य प्रमाद करने वाले अपने स्वास्थ्य और स्वभाव को बिगाड़ कर पीछे बहुत दुःख पाते और पछताते हैं । संध्या वन्दन, ईश्वर उपासना एवं बड़ों का चरण स्पर्श भी आवश्यक नित्य कर्म के साथ जुड़े हुए हैं । दशरथ के चारों पुत्र इस अनुशासन का भली प्रकार पालन करते थे । अयोध्या में उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी–

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे ।
अरुनचूड़ बन बोलन लागे ॥
प्रात काल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

जनकपुर में भी राम-लक्ष्मण की दिनचर्या इसी प्रकार प्रारम्भ होती है–

नित्य क्रिया करि गुरु पहिं आए ।
चरन सरोज सुभग सिर नाए ॥

शौच, स्नान, संध्यावन्दन तथा बड़ों का अभिवादन का क्रम उनके नित्यकर्म का अंग है–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकल सौच करि जाइ नहाए ।
नित्य निवाहि मुनिहि सिर नाए ॥
समय जानि गुरु आयसु पाई ।
लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥

अनुशासन के नाते फूल लेने भी पूछ कर जाते हैं । गुरु के पास बैठते थे हैं तो प्रेम, आदर और विनय का भाव रखते हैं–

सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ ।
गुरु पद पंकज नाइ सिर, बैठे आयस पाइ ॥

उपासना, संध्यावन्दन सायंकाल भी करने का नियम है । यह क्रम श्री राम, लक्ष्मण तथा मानस के अन्य पात्रों के स्वभाव में देखने को मिलता है–

पुरजन करि जोहारु घर आये ।
रघुबर संध्या करन सिधाये ॥
... ...
विगत दिवस गुरु आयसु पाई ।
संध्या करन चले दोउ भाई ॥
... ...
निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा ।
सबही संध्या वन्दन कीन्हा ॥

दोनों भाई गुरु के प्रति तथा परस्पर शिष्टाचार में चूकते नहीं । रात्रि में शयन के पूर्व गुरु की सेवा करते हैं–

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई ।
लगे चरन चापन दोउ भाई ॥

लक्ष्मण जी भाई की सेवा सुश्रूषा बड़ों की भावनापूर्वक करते हैं ।

बार बार मुनि आज्ञा दीन्हीं ।
रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं ॥
चापत चरन लखन उर लाये ।
परम बिनीति सभय सचु पाये ॥

रात्रि को शिष्टाचार के नाते बड़ों के पहले सयन नहीं करते फिर भी प्रात: उठने में आलस्य नहीं । लक्ष्मण सबसे पहले मुर्गे की बांग सुनते ही उठ जाते हैं तथा श्री राम भी गुरु के पूर्व उठ बैठते हैं–

उठे लखन निसि विगत सुनि, अरुणसिखा धुनि कान ।
गुरु ते पहले जगतपति, जागे राम सुजान ॥

गुरु वसिष्ठ जब अभिषेक की सूचना देने श्रीराम के पास पहुँचते हैं तब भी उनका शील शिष्टाचार देखने योग्य है–

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा ।
द्वार आइ पद नायउ माथा ॥
सादर अरघ देइ घर आने ।
सोलह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी ।
बोले राम कमल कर जोरी ॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू ।
मंगल मूल अमंगल दमनू ॥

तुलसी के राम इतने लोकप्रिय इसलिए हुए कि उनमें शील, बौद्धिक और हार्दिक गुणों का समन्वय है । कर्तव्य और प्रेम तथा ग्राम्य और नागारिक गुणों का भी समन्वय हुआ है । लोक नेता का यही आदर्श है । बचपन से ही उनके स्वभाव का विकास सबको सुख पहुँचाने वाला है–

सुन सीतापति सील सुभाउ ।
मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ ॥
सिसुपन ते पितु मातु बन्धु गुरु सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम बिधु बदन रिसौहें सपनेहुँ लखेउ न काउ ॥

बड़ों से आज्ञा मांग कर, उनकी सलाह लेकर काम करने से उनको बड़ा सन्तोष होता है और आनन्द मिलता है । सुयोग्य समर्थ होने पर भी छोटों को यह मर्यादा पालन करनी चाहिए । इससे छोटों को अपने अनुभव की कमी को पूरा करने का अवसर मिलता है । दशरथ जी को अपने बच्चों को पूछकर काम करने की रीति से बड़ी प्रसन्नता होती है–

आयसु माँगि करहिं पुर काजा ।
देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

लंका विजय के बाद जब श्री राम अयोध्या लौटते हैं तब का भी वे शिष्टाचार भूलते नहीं । धनुषवाण पृथ्वी पर रखकर गुरु अभिवादन करते हैं–

बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक ।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह ।
अनुज सहत अति पुलक तनोरुह ॥

शिष्टाचार स्वयं भी पालना चाहिए तथा अपने साथ सहयोगियों को सिखाना चाहिए । भगवान् राम ने अपने सभी सखाओं-सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, जामवन्त, अंगद, हनुमान आदि को भी मुनि वसिष्ठ के चरण छूने की सीख दी ।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए ।
मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥

देवर और भाभी के सम्बन्ध भी माता और पुत्र जैसे पावन होने चाहिए । दोनों के बीच किसी प्रकार के कलुष का सूत्रपात नहीं होना चाहिए । सीता तथा लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आदि देवरों के बीच स्नेहपूर्ण भावना तथा शिष्टाचार के आदर्श प्रमाण मिलते हैं ।

सीता जी की खोज के प्रकरण में सुग्रीव ने श्रीराम जी को सीता द्वारा गिराये वस्त्राभूषण बताये तो लक्ष्मण तो पहचानने के लिए कहा गया । तब लक्ष्मण बोले— न तो मैं उनके बाजू बन्द को जानता हूँ और नहीं कुण्डलों को । परन्तु उनके नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ, जिन्हें मैं नित्य प्रति चरन वन्दना के समय देखा करता था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभि वदनात् ॥

चित्रकूट पहुँचने पर भरत एवं शत्रुघ्न अपनी भाभी सीता के चरणों पर सिर रख कर बार-बार प्रणाम करते हैं । वे उनके सिर पर हाथ फिरा कर आशीर्वाद देती हुई, मातृवात्सल्य के साथ पास बिठाती हैं—

सानुज भरत उमंगि अनुरागा ।
धरि सिर सिय पग पदम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये ।
सिर कर कमल परसि बैठाये ॥

बालकों को सुसंस्कारी बनाने का प्रयास छोटेपन से ही किया जाना चाहिये । उनके खेल-कूद, खान-पान, क्रिया-कलाप, वेष-विन्यास, विनोद, व्यवहार, शिष्टाचार में शालीनता का समुचित समावेश किया जाय तभी वे बड़े होकर प्रखर व्यक्तित्व सम्पन्न महामानव बन सकते हैं । भगवान राम तथा उनके भाइयों की बाल लीलाएँ इसी स्तर की बनाने का सफल प्रयास उनके अभिभावकों ने किया था । उन्हें अनुशासन पालन और शिष्टाचार का अभ्यास कराया गया था—

अनुज सखा सन भोजन करहीं ।
मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ॥
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा ।
करहिं कृपानिधि सोइ सँजोगा ॥

प्रारम्भ से ही अभ्यास कराने से भाई-भाई परस्पर भी एक दूसरों को सिखाने-समझाने लगते हैं । श्री राम का यही क्रम है—

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं ।
देखि सकल जननी सुख भरहीं ॥
राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥

बच्चों को ऐसे खेल खिलाने चाहिए जो भावी जीवन में उनके लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकें । राम-बन्धु राजकाज के खेल खेलते हैं—

विद्या विनय निपुण गुन सीला ।
खेलहिं खेल सकल नृप लीला ॥

बच्चों को सुरुचिपूर्ण कथा कहानियाँ कह कर सरलता पूर्वक सुसंस्कारी, सदाचारी, शिक्षा दी जा सकती है । बड़ों का कर्तव्य है बच्चों के उत्तम शिक्षण का एक आवश्यक अंग सुरुचिपूर्ण कथा कहानियाँ कहने को मानें । मनोरंजन एवं विचार निर्माण का यह बहुत ही उपयोगी मार्ग है । विष्णुशर्मा ने पंच-तंत्र की पुस्तक राजकुमारों को विचारशील बनाने के लिए ही लिखी थी । राम परिवार में भी कथा कहानियाँ सुनने और शास्त्रों की चर्चा का बड़ा उत्साह था । राम बड़े होते के नाते स्वयं भी इस कार्य में पूरा उत्साह रखते और रस लेते थे ।

वेद पुरान सुनहिं मन लाई ।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥

सज्जन व्यक्ति बालकों के छोटे-छोटे दोषों को छमा कर देते हैं । किन्तु साथ ही उनका सुधार भी करते हैं, जिससे वे बढ़े नहीं । परशुराम जी से विवाद हो जाने पर राम ने केवल लक्ष्मण को शान्त ही करते हैं वरन् लक्ष्मण द्वारा बोले कटु वचनों के लिए क्षमा माँगते हैं । बच्चों से भूलें होती रहती हैं, उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका अपराध नहीं अज्ञान समझकर संभालने और सुधारने से ही काम चलता है। झल्लाने और मार-पीट, गाली गलौज करने से नहीं–

कौसिक कहा छमिअ अपराध ।
बाल दोष गुन गनहिं न साधू ॥
बररै बालक एक सुभाऊ ।
इनहिं न सन्त विदूषहिं काऊ ॥

छोटों की गलती को उछालने के स्थान पर उसे मिट्टी से ढकना ही उचित है । लक्ष्मण ने सुमन्त्र के विदा होते समय परिवार के लोगों के प्रति दुर्भाव व्यक्त किये । राम सुमंत्र को शपथ देकर अनुरोध करते हैं कि वे घर जाकर उन कटु वचनों की चर्चा न करें । परिवार में द्वेष विग्रह बढ़ाने वाली नहीं, सद्भावों को स्थिर रखने वाली नीति ही बरती जानी चाहिये । इसके लिए निन्दनीय प्रसंगों की उपेक्षा और प्रशंसनीय गति विधियों की सराहना करनी पड़ती हैं । अत: राम ने सुमन्त्र से लक्ष्मण की कठोर बातें पिता से न कहने का आग्रह करके कहा–

पुनि कछु लखन कही कटु बानी ।
प्रभु बरजेऊ बड़ अनुचित जानी ॥
सकुचि राम निज सपथ दिवाई ।
लखन संदेसु कहिय जनि जाई ॥

पारिवारिक तथा सामाजिक शिष्टाचारों से परस्पर स्नेह तथा सद्भाव बढ़ता है । इन नियमों का पालन करना और कराना सभी दृष्टियों से हितकारी है ।

भाई भाइयों का स्नेह सहयोग

भाई-भाइयों के बीच घनिष्ठ स्नेह सौजन्य के बीज बचपन से ही बोये उगाये जाने चाहिए । बड़े होने पर वे तभी घनिष्ठ रह सकते हैं जब उसके लिए आरम्भ से ही प्रयास किया गया हों। बचपन का लड़ना-झगड़ना, खींच तान, ईर्ष्या-द्वेष यों बाल-विनोद सा लगता है, पर वस्तुत: वह उपेक्षणीय नहीं है । उनमें पारस्परिक सद्भावना, सहयोग वृत्ति, आत्मीयता, उदारता और सम्मान का गहरा पुट बचपन में ही लगाना चाहिए। राम-बन्धुओं का आदर्श भ्रातृप्रेम सर्वविदित है । उसका बीजारोपण बचपन से ही हो गया था । बड़े छोटों को भरपूर स्नेह करते थे और छोटे बड़ों का पूरा-पूरा सम्मान ।

भगवान श्रीराम अपने भाइयों पर अतिशय प्रीति रखते हैं । अनेक प्रकार से उन्हें नीति की शिक्षा देते हैं–

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥

भाइयों में श्रीराम के प्रति वैसे ही भाव हैं। तीनों भाई उनकी आज्ञानुसार कार्य करते हैं । सबके हृदय में अत्यन्त प्रेम है । तीनों भाई इस आशा से उनकी ओर देखा करते थे कि कोई आज्ञा वे दें, जिसके पालन से वे भी धन्य बनें ।

सेवहिं सानुकूल सब भाई ।
राम चरन रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल विलोकत रहहीं ।
कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं ॥

भाई-भाई परम्परा पूरक हैं । चित्रकूट में श्री राम भरत को भ्रातृत्व का आदर्श बतलाते हुए कहते हैं कि कुठौर अर्थात् कुअवसर में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं–

होहिं कुठायँ सुबन्धु सहाए ।
ओड़िहि हाथ असनिहु के घाए ॥

भाई हाथ के समान है जो शरीर रक्षा के लिए वज्र की चोट भी सहन करने के लिय स्वयं आगे जाता है । रामचरित मानस में भाइयों की यही मर्यादा देखने को मिलती हैं ।

धनुषयज्ञ के प्रसंग में परशुराम जी जैसे व्यक्ति से जिसके आतंक से सारे राजा काँपते थे, उनसे लक्ष्मण इसीलिए उलझ पड़ते हैं कि वे श्री राम द्वारा धनुष भंग पर क्रोध कर रहे थे । परशुराम जी द्वारा राम को धमकी दी जाने पर वे कह बैठते हैं–

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े ।
द्विज देवता घरहि के बाढ़े ॥

उधर राम देखते हैं कि लक्ष्मण पर ऋषि का क्रोध बढ़ रहा है तो उन्हें एक तरफ करके वे सामने आ जाते हैं और कहते हैं–

नाथ करिय बालक पर छोहू ।
सूध दूध मुख करिय न कोहू ॥

दोनों भाइयों का प्रयास यही है कि परशुराम जी के क्रोध से दूसरे भाई को बचालें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वन में खरदूषण की सेना आने पर श्री राम-सीता एवं लक्ष्मण को सुरक्षित गुप्त स्थान में भेजकर स्वयं उनसे लड़ने को आगे आ जाते हैं–

लै जानकिहि जाहु गिर कंदर ।
आवा निशिचर कटक भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी ।
चले सहित श्री सर धनु पानी ॥

दूसरी ओर लक्ष्मण भरत सहित अयोध्या की सेना से टक्कर लेने के लिये इसी लिये तैयार हो जाते हैं कि कहीं वे श्री राम का अपमान न करें-

जिमि करि निकरि दलइ मृग राजू ।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता ।
सानुज निदरि निपातौं खेता ॥

श्रीराम का भ्रातृ प्रेम अद्भुत है । भगवान राम को राज गद्दी दी जा रही है । राजाओं में ऐसी परम्परा चिरकाल से चली आ रही थी और ज्येष्ठ-कनिष्ठ का भेद किया जाता रहा था । राम इस परम्परा को कलंक बताते हैं । उसके अनौचित्य की भर्त्सना करते हैं और सोचते हैं कि जब हम सब भाई एक साथ जन्में, बड़े हुए, खेले और खाते रहे, तो हम लोगों के बीच किसी प्रकार की विषमता क्यों होनी चाहिए । उनमें अन्तर क्यों किया जाय ? सब को समान अवसर क्यों न मिलें ? सब के साथ एक-सा व्यवहार क्यों न हो ?

गुरु सिख देइ राम पहिं गयऊ ।
राम हृदय अस बिसमय भयऊ ॥
जनमे एक संग सब भाई ।
भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
... .
बिमल बंस यह अनुचित एकू ।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिसेकू ॥

जहाँ सांसारिक लोग अधिकार के लिये अपने भाइयों का भी हक हड़पने का प्रयास करते हैं वहाँ भगवान राम अपना उचित अधिकार भी अकेले स्वीकार करने में दु:ख पाते हैं । इस पवित्र भावना से लोगों के मनों के कलुष धुल जायें ऐसी कामना करते हुए तुलसी दास जी लिखते हैं–

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई ।
हरउ भगत मन कै कुटिलाई ॥

जैसे राजपद की प्राप्ति की चर्चा चली तो राम को भरत शत्रुघ्न की अनुपस्थिति खटकने लगी । ''अण्डन्हि कमठ हृदय जेहि भाँति'' से सुन्दर उपमा प्रेम के प्रदर्शन के लिए कोई दूसरी नहीं हो सकती । राम सदैव अपने भाइयों के हित की चिन्ता किया करते थे । उनके विकास, उन्नति, सम्मान तथा स्नेह का पूरा ध्यान रखते हैं ।

भए बहुत दिन अति अबसेरी ।
सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥
भरत सरिस प्रिय को जग माहीं ।
इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं ॥
रामहि बँधु सोच दिन राती ।
अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती ॥

श्री राम को वन जाते हुए भी भरत की चिन्ता रहती है । वे सुमंत से कहते हैं– भरत के आने पर मेरा संदेश यह कहना कि नीति का त्याग राजपद पाकर न करें और प्रजा का पालन मन कर्म वचन से करें । सभी माताओं को समान जानकर सेवा करना । भाइयों के साथ प्रेम को निभाना । माता-पिता और स्वजनों की सेवा करना । छोटों को नीति धर्म की शिक्षा अपनी वाणी और क्रिया से देते रहकर बड़े उन्हें सुयोग्य और सन्मार्ग गामी बना सकते हैं । बड़े होने के नाते राम ने सदा छोटे भाइयों के लिए यह कर्तव्य निवाहा और उन्हें सत्परामर्श दिया–

कहब सन्देसु भरत के आए ।
नीति न तजिअ राजपद पाएँ ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी ।
सेएहु मातु सकल सम जानी ॥

भरत पर बालपन से ही राम के आदर्श व्यवहार की छाप थी । चित्रकूट पहुँचने पर वे बचपन में राम के द्वारा किये गये सद्व्यवहार का स्मरण करते हैं और विश्वास करते हैं कि उनकी सरलता, आत्मीयता अभी तक वैसी ही है ।

मैं जानउँ निज नाथ स्वभाऊ ।
अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मो पर कृपा सनेहु विसेषी ।
खेलत खुनिस न कबहुँ देखी ॥
सिसु पन ते परिहरउँ न संगू ।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही ।
हारेहुँ खेल जिताबहिं मोही ॥

भरत को श्रीराम की सद्भावना पर अटूट विश्वास है। कैकेयी के कारण भरत पर भी राम को वन भेजने को लांछन आता है, किन्तु उन्हें विश्वास है कि श्री राम उनके हृदय का भाव सही सही समझ सकते हैं–

आन उपाय मोहि नहिं सूझा ।
को जिय की रघुवर बिनु बूझा ॥

श्रीराम भी भरत की सद्वृत्ति पर अटल विश्वास रखते हैं। दल-बल सहित भरत के चित्रकूट जाने पर बहुतों को उन पर शंका होती है, किन्तु श्री राम का विश्वास है–

भरतहि होइ न राज मदु, विधि हरि हर पद पाइ ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर सिंधु विनसाय ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

चित्रकूट प्रसंग में दोनों भाइयों का परस्पर विश्वास ही प्रधान भूमिका निभाता है। अपने आग्रह पर चलने के लिए दूसरे को बाध्य करने की अपेक्षा यह अधिक उदात्त नीति है कि कर्तव्य और मर्यादा का उल्लंघन न होने देने की शर्त लगा कर दूसरे पक्ष को किसी असमंजस के प्रसंग पर फैसला करने का अवसर दिया जाय। राम जब भरत पर यह फैसला छोड़ते हैं कि चित्रकूट से अयोध्या वापस चलने के सम्बन्ध में उन्हें क्या करना है इसका निर्णय वे ही करें, तब भरत को अधिक गहराई में सोचना पड़ता है और अपना आग्रह छोड़कर वे राम पर ही फैसला करने का भार छोड़ते हैं। आग्रह छोड़कर आदेश लेने की नीति उदात्त है। रामायण का यह प्रसंग बहुत ही मार्मिक है–

अब कृपाल मोहि सो मत भावा ।
सकुच स्वामि मन जाइ न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ ।
जग मंगल हित एक उपाऊ ॥
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव ।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेव ॥

श्रीराम को लौटाने का आग्रह छोड़कर भरत औचित्य स्वीकार करते हैं तथा अयोध्या चलने को तैयार होकर भगवान से विदा माँगते हैं। तब राम उन्हें समयोचित उपदेश देकर चौदह वर्षों तक गुरु वसिष्ठजी के आदेशों के अनुसार कार्य करने एवं मर्यादाएँ एवं अनुशासन पालने का निर्देश देते हैं–

दीन बन्धु सुनि बंधु के, वचन दीन छलहीन ।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रवीन ॥
तात तुम्हार मोरि परिजन की ।
चिंता गुरहि नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुरु मुनि मिथिलेसू ।
हमहि तुम्हहि सपनेहुँ न कलेसू ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहुँ भाई ।
लोक वेद भल भूप भलाई ॥
गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले ।
चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले ॥
अस विचारि सब सोच बिहाई ।
पालहु अवध अवधि भर जाई ॥

राम ने अपनी उदारता से छोटे भाइयों को कितना महान बना दिया यह उन अनुचरों के असंख्य उद्गारों से एवं व्यवहार से प्रकट होता है। राम को वन जाते देख करके लक्ष्मण उनकी सुरक्षा एवं सेवा के लिए पूरी तरह कटिबद्ध हो जाते हैं। वे कहते हैं–

यदि गन्तुं कृता बुद्धि वन मृग गजा युतम् ।
अहं त्वानुम गमिष्यामि वनमग्रे धुरन्धुरः ॥

"प्रभो यदि आपने हजारों जंगली पशुओं और हाथियों से भरे हुए वन में जाने का निश्चय किया है तो मैं भी धनुष ले कर आपके साथ आगे-आगे चलूँगा।"

भरत शत्रुघ्न का भी ऐसा ही व्यवहार है। वे राम वन गमन के उपरान्त उसी प्रकार का जीवन घर को तपोवन बना कर बिताते रहे और अपने अनन्य भ्रातृ प्रेम का परिचय देते रहे–

राम लखन सिय कानन बसहीं ।
भरत भवन बसि तप तन कसहीं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक चरित्र में लक्ष्मण ने भाई की सेवा अपने निजी सुखों को आहूत करते हुए उनके उद्देश्यों के लिए की। उनके इस गुण पर मुग्ध होकर तुलसीदास जी उनकी वन्दना करते हुए लिखते हैं—

बन्दौं लछमन पद जलजाता।
सीतल सुभग भगत सुख दाता॥
रघुपति कीरति विमल पताका।
दण्ड समान भयउ जस जाका॥

छोटे बड़े भाइयों के परस्पर एक-दूसरे के प्रति स्नेहपूर्ण दृष्टिकोण की सुन्दर झांकी राम और लक्ष्मण के दृष्टिकोण का वर्णन करते हुए तुलसीदास जी प्रस्तुत करते हैं।

छोटे भाई लक्ष्मण चकोर के बच्चे की तरह श्रीराम रूपी चन्द्र को देखते हैं—

रामहिं लखन विलोकत कैसे।
ससिहि चकोर किसोरक जैसे॥

अर्थात् लक्ष्मणजी को बड़े भाई के अतिरिक्त और किसी का आकर्षण नहीं है। तो राम भी लक्ष्मण की देख रेख इस प्रकार रखते हैं जैसे पलक आँख की रक्षा करते हैं

जोगवहिं प्रभु सिय लषन नहिं कैसे।
पलक विलोचन गोलक जैसे॥

जब लक्ष्मण जी मेघनाद के शक्ति प्रहार से मूर्छित हो जाते हैं तब छोटे भाई के प्रति पिता के समान स्नेह दिखाते हुए श्री राम जी कहते हैं कि हे पुत्र ! तुम्हारा शोक यह कठोर हृदय निष्ठुरता पूर्वक सह रहा है इसका मुझको बड़ा दुःख है। अपनी व्यथा वे भाँति-भाँति से व्यक्त करते हैं—

अब अबलोकु सोकु सुत तोरा।
सहिहि निठुर कठोर उर मोरा॥

भाइयों के प्रति श्रीराम के स्नेह का एक और नमूना देखें। सिंहासन पर बैठने पूर्व भरत जी को बुलाया। उनकी जटा अपने हाथों से सुलझाई, फिर तीनों भाइयों को भगवान ने स्वयं नहलवाया। भगवान श्री राम भक्त वत्सल हैं, कृपालु हैं—

पुनि करुनानिधि भरत हँकारे।
निज कर राम जटा निरुआरे॥
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई।
भगत बछल कृपाल रघुराई॥

राज्याभिषेक के बाद श्रीराम का व्यवहार भाइयों के साथ आदर्श ही रहता है। वे अपने और भाइयों के बीच भेद नहीं मानते। उत्तरकाण्ड में वे हनुमान जी से कहते हैं—

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ।
भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ॥

ऐसे पवित्र, प्रखर और उदार भातृ प्रेम को तुलसी जी अपने रामचरित मानस रूपी सरोवर के जल की मधुरता और सुगन्धि कहते हैं, तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं—

अबलोक निबोलनि मिलनि, पीति परस्पर हास।
भाइय भलि चहुँ बन्धु की, जलमाधुरी सुवास॥

मानस की प्रेरणा से जन जीवन में भी यही भाईचारा जागृत हो तो हम सब धन्य हो जावें।

संस्कार और आश्रम धर्म

परिवार निर्माण के लिए संस्कार परम्परा का बहुत महत्त्व है। गुरुजनों द्वारा परिवार, समाज की श्रेष्ठता अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए उपयोगी प्रशिक्षण इस माध्यम से मिलता है। घर के हर व्यक्ति को अपने निजी आचरण को तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निवाहने के लिए आवश्यक कर्तव्य पालन की प्रेरणा मिलती है। घर में जल्दी-जल्दी धार्मिक वातावरण बनने का सुयोग बनता है। जिस बालक या वयस्क का संस्कार उत्सव मनाया जा रहा है उसे गौरवान्वित होने का अवसर मिलता है। स्वजन सम्बन्धियों को ऐसे आयोजनों में सम्मिलित करके पारस्परिक घनिष्ठता बढ़ाने की बात बनती है, सामाजिकता का विस्तार होता है।

यों अच्छी शिक्षाएँ कभी भी दी जा सकती है, पर उत्साह उमंग भरे धर्मानुष्ठानों के भाव भरे वातावरण में सोद्देश्य कर्मकाण्डों के साथ दी गई शिक्षा अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है। अग्नि को साक्षी में विशेष धर्मोत्सव के साथ किया गया विवाह संस्कार पति-पत्नी के मन पर एक अमिट मनोवैज्ञानिक छाप छोड़ता है। यों विवाह ऐसे भी बातचीत मात्र कर लेने से सम्पन्न हो सकता है, पर उसके पीछे मनोवैज्ञानिक छाप न होने के कारण स्थायित्व का वैसा भरोसा नहीं रहता जैसा धर्मोत्सव के रूप में किये गये सर्व विदित विवाह संस्कार के

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने पर होता है । गरम भट्टी में तपाया हुआ लोहा गरम हो जाता है, उसे आसानी से मोड़ा, मरोड़ा और ढाला जा सकता है । संस्कारों के धर्मोत्सवों में उस व्यक्ति को तथा उपस्थित लोगों की मनोभूमि ऐसी हो जाती है कि पुरोहित द्वारा दी गई अभीष्ट प्रेरणाएँ अन्तरंग की गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं और चिरकाल तक अपना सत्प्रभाव बनाये रहती है । उससे न केवल संस्कार वाला व्यक्ति वरन् सारा परिवार एवं उपस्थित मित्रों, पड़ोसियों के परिवार लाभान्वित होते हैं । परिवार परिष्कार का महान प्रयोजन पूरा करने के लिए घरों में धार्मिक वातावरण बनाये रहने के लिए संस्कारों की धर्मप्रक्रिया शास्त्रकारों ने प्रचलित की है । जहाँ उसे श्रद्धापूर्वक कार्यान्वित किया जाता है, वहाँ बाल, तरुण, वृद्ध, नरनारी सभी को सुसंस्कारी बनने का अवसर मिलता है ।

दशरथ जी के परिवार में सभी प्रकार संस्कार श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किये जाते थे । रामायण में उनका उल्लेख मिलता है । पुत्र जन्म के समय नन्दीमुख श्राद्ध की परिपाटी है । सत्कार्यों के लिए दानादि द्वारा बालक के चारों ओर श्रेष्ठ वातावरण बनाया जाता है—

नदीमुख सराध करि, जात करम सब कीन्ह ।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥

बच्चों के विकास की सही दिशायें निर्धारित करके अभिभावकों को उनके कर्तव्य समझाने के लिये पुरोहित नामकरण संस्कार कराते हैं—

नाम करन कर अवसरू जानी ।
भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाषा ।
धरिअं नाम जो मुनि गुनि राखा ॥

''गीतावली'' मे बाल्मीकि द्वारा लवकुश के संस्कारों का भी वर्णन मिलता है—

मुनिवर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति ।
बन बसन पहिराइ तापस तोषि पोषे प्रीति ॥
नाम करन सुअन्नप्रासन बेद बाँधो नीति ।
समय सब रिषि राज करत समाज साज समीति ॥

बालकों के कुछ बड़े होने पर उनके बौद्धिक विकास तथा शिखा स्थापना के लिये मुंडन संस्कार कराया जाता है ।

कछुक काल बीते सब भाई ।
बड़े भये परिजन सुखदाई ॥
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु आई ।
बिप्रन्ह पुनि दछिणा बहु पाई ॥

यज्ञोपवीत मानवोचित वृतशील जीवन जीने का संकल्प है । किशोर अवस्था में ही बालकों का यह संस्कार करा देना उचित है—

भए कुमार जबहिं सब भ्राता ।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥

विद्या पढ़ने का सच्चा लाभ उन्हें मिलता है, जो गुरुकुल के पवित्र वातावरण में रहकर न केवल शिक्षा का वरन् व्यवहार और चरित्र का भी लाभ प्राप्त करते हैं । घर के वातावरण में रहते हुए बच्चे वही संस्कार ग्रहण करते हैं जो वहाँ छाया रहता है । ऐसी दशा में पुस्तकों में पढ़ा और अध्यापकों का पढ़ाया ज्ञान भी निरर्थक चला जाता है—

गुरु गृह गये पढ़न रघुराई ।
अल्प काल विद्या सब आई ॥

विवाह व्यक्ति के सामाजिक-जीवन में प्रवेश का संस्कार है । इसे केवल समारोह के रूप में नहीं, संस्कार के उपयुक्त वातावरण में किया जाना चाहिये । चारों भाइयों के विवाह इसी ढंग से हुए—

बर कुँअरि करतल जोरि साखौचारु दोउ कुलगुर करैं ।
भयो पानिगहनु बिलोकि बिधि सुर मनुज मुनि आनंद भरैं ॥
सुखमूल दूलहु देखि दंपति पुलक तन हुलस्यों हियो ।
करि लोक बेद बिधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो ॥

कन्यादान का उद्देश्य बड़ा महान है । समाज निर्माण में नारी की भूमिका प्रधान है । सद्गुणी गृहस्थ श्रेष्ठ समाज की रचना के लिये कन्या में श्रेष्ठ गुणों का विकास करके उस पर से अपना अधिकार छोड़ देते हैं । कन्यादान राजा जनक ने किया और ऋषियों ने वर वधू को प्रसन्नता पूर्वक दाम्पत्य सूत्र में बाँध दिया—

प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरीं ।
नेगसहित सब रीति निबेरीं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम सीय सिर सेंदुर देहीं ।
सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ॥
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन ।
बरु दुलहिनि बैठे एक आसन ॥

आयु के अनुसार वानप्रस्थ ग्रहण करने का नियम है । दशरथ जी ने दर्पण में देखा कि कान के पास बाल सफेद हो गये हैं, अर्थात् बुढ़ापे का सन्देश आ गया । ढलती आयु में घर के समर्थ बच्चों को उत्तराधिकार देकर स्वयं वानप्रस्थ में प्रवेश करना चाहिये, ऐसा उन्होंने निश्चय किया । तदनुसार राम का युवराज घोषित करने की तैयारी आरंभ करदी गई । ढलती आयु में भी जो मोहवश घर में ही घुसे रहते हैं, तप का मार्ग छोड़ कर लोभ-मोह में ग्रसित रहते हैं, उनकी स्थिति पर क्षोभ, रोष असंतोष व्यक्त करते हुए रामायण कहती है—

वैखानस सोइ सोचइ जोगू ।
तप विहाइ जेहि भावइ भोगू ॥

असुर पत्नी मन्दोदरी भी अपने पति रावण तक को वानप्रस्थ के लिए प्रोत्साहित करती है—

सन्त कहहिं अस नीति दसानन ।
चौथेपन जाइअ नृप कानन ॥

भारतीय संस्कृति यज्ञीय जीवनक्रम की शिक्षा देती है । मृत्यु के पश्चात् शरीर को भी यज्ञार्पण करके अन्त्येष्ठि संस्कार किया जाता है । राजा दशरथ के देहान्त पर भरत ने सारे कृत्य किये—

एहि विधि दाह क्रिया सबु कीन्हीं ।
विधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्हीं ॥

चित्रकूट में श्रीराम ने भी इसी मर्यादा का पालन किया—

करि पितु क्रिया वेद जस बरनी ।
भे पुनीत पातक तम तरनी ॥

बालि के मरने पर श्री राम सुग्रीव से उसकी अन्त्येष्ठि क्रिया कराते हैं—

तब सुग्रीवहिं आयसु दीन्हा ।
मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ॥

गीधराज जटायु को उसके त्याग के कारण श्री राम पिता तुल्य सम्मान देते हैं तथा स्वयं उसकी अन्त्येष्ठि भी करते हैं—

अविरल भगति माँग वर, गीध गयो हरिधाम ।
तेहि की क्रिया यथोचित, निज कर कीन्ही राम ॥

इसी प्रकार रावण के मारे जाने पर श्रीराम की आज्ञानुसार विभीषण समयानुसार कर्म करते हैं—

कीन्ह क्रिया प्रभु आयसु मानी ।
विधिवत देश काल जिय जानी ॥

अन्त्येष्ठि के बाद श्राद्ध की भारतीय परिपाटी है । दुर्भाग्य से उसमें अब मृतक भोज जुड़ गया है । श्राद्ध का उद्देश्य यह था कि मृतक द्वारा संचित धन को समाज की सम्पत्ति मानकर उसे लोकोपयोगी कार्यों में लगा दिया जाय । भरत ने दशरथ के श्राद्ध में सत्कार्यों के लिये दान का उल्लेखनीय आदर्श उपस्थित किया ।

भये विशुद्ध दिये सब दाना ।
धेनु बाजि गज वाहन नाना ॥
सिंहासन भूषन बसन, अन्न धरनि धन धाम ।
दिये भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥
पितुहित भरत कीन्ह जस करनी ।
सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥

इसी प्रकार संस्कारों के शुद्ध रूपों का प्रचलन करके श्रेष्ठ परिवार और समाज रचना में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज प्रकरण

आदर्श समाज की स्थापना के लिए आदर्श लीलाएँ

मानवी गरिमा को सुस्थिर रखने के लिए आदर्श समाज बनाया जाना आवश्यक है । यह ठीक है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों से श्रेष्ठ समाज बनता है, पर यह भी गलत नहीं कि सामाजिक वातावरण आदर्शपूर्ण होगा तो उसके प्रवाह में सामान्य नागरिक भी श्रेष्ठता की दिशा में बहते जायेंगे । लोकमंगल का महान लक्ष्य प्राप्त करने के लिए व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण तीनों के सम्मिश्रित प्रयास गतिशील होने चाहिये ।

रामायण के रामचरित्र में समाज-निर्माण के लिए किये गये सत्प्रयत्न का भावभरा उल्लेख है । युग प्रवर्तक भगवान राम स्वयं नीतिनिष्ठ बनते हैं । अपने अनुयायियों में उसी स्तर के सद्गुण प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रयत्नों से उत्पन्न करते हैं । न्याय-निष्ठ धर्मराज की स्थापना करते हैं । युगान्तरकारी सत्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करते हैं । मनुष्य के बीच चल रही विषमता को दूर करते हैं । श्रम और कर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं । मूढ़ताओं को निरस्त करते हैं । अनीति के विरुद्ध संघर्ष खड़ा करते हैं । यह समस्त प्रयास तत्कालीन अवांछनीयताओं को हटाकर, उनके स्थान पर आदर्श समाज का ढाँचा खड़ा करने के लिए हैं । भगवान राम की लीलाएँ इन्हीं गति-विधियों से भरी पड़ी हैं । उन्हें आदर्श समाज सुधारक एवं सफल युग-निर्माता भी कह सकते हैं । भगवान के अवतार लेने का यही प्रयोजन भी है । तुलसीदास जी ने मानस में राम-जन्म के उद्देश्य के सम्बन्ध लिखते हुए अन्त में कहा है—

"जग विस्तारहिं बिसद यश, राम जनम कर हेतु ।"

भगवान को यश की कामना नहीं है । किन्तु लोग आचरण के लिए उदाहरण चाहते हैं । अत: यश विस्तार का आशय यही है कि अपने आचरण की मिसाल समाज के सामने प्रस्तुत करके उन्हें भी वैसे ही कर्तव्यों-उत्तरदायित्वों के पालन का ढंग समझने का अवसर देते हैं । भगवान के भक्त|उनकी योजना, उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनते हैं । अत: वे भगवान का यश-चरित्र लोगों को सुनाकर उन्हें प्रेरणा देते हैं । जामवंतजी हनुमान जी को समुद्र लांघने की प्रेरणा देते हुए यही कहते हैं—

त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं ।

हनुमान जी भी सीता जी को भगवान की योजना बताते हुए कहते हैं—

निसिचर मारि तोहिं लै जइहैं ।
तिहुपुर नारदादि जसु गइहैं ॥

स्पष्ट है कि भगवान के जन्म के उद्देश्य में अनैतिकता को समाप्त कर नैतिकता की स्थापना के साथ उसी प्रकार का जीवनक्रम अपनाने की प्रेरणा जन-साधारण को देना भी जुड़ा है ।

राम की नीतिनिष्ठा

राम नीति के प्रतीक हैं । वे नीतिनिष्ठा की स्थापना के लिए जन्मे और आजीवन उसका प्रशिक्षण अपने चरित्र द्वारा करते रहे । उन्हें सद्गुणों की खान कहा गया है । मर्यादा पालन और कर्तव्यपरायणता में सदा उन्होंने अपना अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया । इन्हीं विशेषताओं के कारण उन्हें भगवान कहा जाता है और उनके जन्म जीवन को अवतार का सम्मानास्पद नाम दिया जाता है । "वाल्मीकि रामायण" में उल्लेख है—

सत्यं दानं तपस् त्यागो मित्रता शौचमार्जवम् ।
विद्या च गुरुसुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे ॥

"सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुसुश्रूषा— ये सभी सद्गुण श्रीराम में स्थिर, रूप से रहते हैं ।"

राम की प्रीति अन्धी भावुकता नहीं वरन् नीति पर आधारित हैं । उनका कोई मित्र नहीं, कोई शत्रु नहीं, वे नीति से प्रीति रखते हैं । अस्तु जहाँ नीति का जितना अंश होगा वहाँ उनकी प्रीति भी सहज ही उस अनुपात से बढ़ेगी । महामानवों का उद्देश्य नीति की स्थापना और अनीति का उन्मूलन होता है । वे अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी ही शिक्षा, प्रेरणा एवं सहायता देते हैं । राम की नीतिनिष्ठा और उसके प्रति उनकी सतत् चेष्टा का विवरण रामायण में जगह-जगह उपलब्ध है ।

सामाजिकता का नियम है कि सभी लोग परस्पर प्रेम-भाव रखें, स्वयं अपना कर्तव्य पालें और अपने स्वजनों को उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेरणा दें । राम-कथा में यह शृंखला बराबर चलती है । "उत्तरकाण्ड" में उल्लेख है–

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीति ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥

काकभुशुण्डि जी नीच व्यक्ति से भी घृणा न करके, उससे भी प्रेम करने के सामाजिक सिद्धान्त को हितकारी बताते हैं–

पन्नगारि असि नीति, श्रुति सम्मत सज्जन कहहिं ।
अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित ॥

भगवान स्वयं कहते हैं–

"नीति विरोध सुहाइ न मोही।"

... ...

भगवान की नीतिनिष्ठा के सम्बन्ध में कहा है–

देसु कालु लखि समय समाजू ।
नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥

यह क्रम उनका बचपन से ही चलता है–

लारिकाइहि तै रघुबर बानी ।
पालन नीति प्रीति पहिचानी ॥

उन्हें सामाजिक सिद्धान्तों का सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता मानते हुए–

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ ।
कोउ न राम सम जान जथारथ ॥

राम अपने पुरुषार्थ का बखान नहीं करते । सफलताओं की डींग नहीं हाँकते । वानरों को गुरु वसिष्ठ का परिचय कराते हुए कहते हैं कि इनकी कृपा से ही हम असुरों को मारने में समर्थ हुए । साथ ही वसिष्ठ जी को वानरों को परिचय देते हुए कहते हैं कि समर-सागर में इन्हीं ने बेड़ा बना कर हमें पार किया । ये लोग मुझे भरत के समान प्रिय हैं । इस कथन में विनयशीलता, कृतज्ञता और सफलता का श्रेय दूसरों को देकर अपनी निरहंकारिता का सुन्दर समन्वय है–

गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे ।
इन्ह की कृपा दनुज रन मारे ॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे ।
भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे ।
भरतहु ते मोहि अधिक पियारे ॥

श्री राम यश कामना से दूर रहने तथा समाज में शेखीखोरी की प्रवृति न पनपने देने को आवश्यक मानते हैं । रावण जब युद्ध भूमि में अपनी शक्ति का बखान करने लगता है तो वे उसे यही नीति सिखाते हुए कहते हैं–

नीतिवान व्यक्ति बकवास और शेखीखोरी में समय नहीं गँवाते और ढपोरशंख, शेखचिल्ली की तरह उपहासास्पद नहीं बनते । संसार में तीन प्रकार के व्यक्ति हैं– (१) गुलाब (२) आम (३) कटहल के वृक्ष के समान । इनमें से एक केवल फल देते हैं । दूसरे सुमन और फल दोनों देते हैं । तीसरे केवल फल ही फल देते हैं । अर्थात् एक केवल कहते ही हैं करते नहीं । दूसरे कहते तो हैं पर करते भी है । तीसरे कहते तो नहीं, पर करने में रात-दिन जुटे रहते हैं । क्रमश: यह तीनों एक से दूसरा दूसरे से तीसरा अधिक सराहनीय है–

जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा ।
संसार में पुरुष त्रिविध पाटल रसाल पनस समा ॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलहिं केवल लागहीं ।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं ॥

सामाजिकता का नियम है कि उपेक्षित क्षेत्र की सेवा और व्यवस्था को अधिक महत्त्व दिया जाय । अधिकांश लोग शहरों को ही अपना क्षेत्र बना लेते हैं– श्री राम वनवास को अपेक्षा कृत अधिक बड़ा कार्यक्षेत्र मानते हैं । वे पिता के द्वारा दिये गये विशाल वन-राज्य पर बड़ा सन्तोष और हर्ष व्यक्त करते हैं । माता कौशिल्या से कहते हैं कि पिता ने मुझे अयोध्या के छोटे राज्य की तुलना में कहीं अधिक वैभव प्रदान किया है । इस क्षेत्र की सेवा करके मैं अधिक सौभाग्यशाली बनूँगा–

पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू ।
जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥

श्री राम ने केवल यह कहा ही नहीं कर भी दिखाया । ऋषि मुनियों से लेकर आदिवासी कोल-किरात सभी उनके सम्पर्क

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लाभ उठाने को आतुर हो उठे। उनके आगमन को सुनकर ऋषि मुनि उनके पास आने लगे तब रघुकुल के चन्द्रमा राम जी ने सबको आदर सत्कारपूर्वक दण्डवत प्रणाम किया—

चित्रकूट रघुनन्दन छाए।
समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥
आवत देखि मुदित मुनि वृन्दा।
कीन्ह दण्डवत रघुकुल चंदा॥

यही प्रतिक्रिया कोल-भीलों की भी होती है—

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई॥

सामाजिकता का नियम है कि अनीति का उचित प्रतिकार किया जाय। भगवान राम इस दृष्टि से भी आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने अनीति को निरस्त करने के लिए बालि और रावण को मारा था, उनकी सम्पत्ति का लाभ लेने के लिए नहीं। स्वार्थपूर्ति के लिए जो आक्रमण किया जाता है, वह हत्या की संज्ञा में आता है। किन्तु अनीति से जूझने में यदि अपना या पराया प्राण जाता हो तो उसकी परवा न करना क्षत्री-धर्म है। राम ने सदा क्षत्री-धर्म निवाहा। बालि का राज्य उसके भाई को दिया और उसके पुत्र अंगद को युवराज बनाया।

बालि-वध के पश्चात् उन्होंने स्वयं नगर में प्रवेश भी नहीं किया। लक्ष्मण जी को निर्देश दिया कि राज्य के सच्चे और सच्चरित्र उत्तराधिकारियों को वह सौंप दिया जाय। लक्ष्मण जी ने उस आज्ञा का तुरन्त पालन किया—

लछिमन तुरत बोलाए, पुरुजन विप्र समाज।
राज दीन्ह सुग्रीव कहँ, अंगद कहँ जुवराज॥

समाजहित की दृष्टि से ही बालि का वध किया तथा समाज की सहमति से ही चरित्रवान शासक उन्हें प्रदान कर दिया। बालि के पुत्र के अधिकार की भी रक्षा की।

लंका में भी रावण वध के बाद विभीषण ने श्री राम से प्रार्थना की कि लंका में चलकर कोष-संपत्ति आदि देखकर उसको इच्छानुसार वानरों में वितरित करें, तो उन्होंने विभीषण का मन रखते हुए यह कहकर कि "सब हमारा ही तो हैं, उपयोग तुम करो" बात टाल दी—

तोरकोष गृह मोर सब, सत्य वचन सुन भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि, निमिष कल्प सम जात॥

भरत का प्रसंग लाकर उन्होंने विषय ही बदल दिया, तब विभीषण पुष्पक विमान को रत्नों और वस्त्रों से भरकर भगवान के पास ही ले आते हैं। भगवान स्वयं कुछ न लेकर रीछ वानरों पर उनकी वर्षा कर देने को कहते हैं—

चढ़ि विमान सुन सखा बिभीषन।
गगन जाइ बरसुहु पटभूषन॥

इस प्रकार श्री राम जी ने क्षत्री के नाते अपने सामाजिक दायित्व का पालन आदर्श ढंग से करके दिखाया। अपने पुरुषार्थ से सबकी समस्याओं का समाधान किया तथा किसी भी प्रकार के प्रतिदान के प्रति पूर्ण रूप से निस्पृह बने रहे।

नागरिक कर्तव्यों का पालन

राम की नीतिनिष्ठा से प्रभावित होकर सामान्य जन भी अपने नागरिक कर्तव्यों के पालन की प्रेरणा लेते हैं और मनुष्यता का गौरव बढ़ाने वाली रीति-नीति अपनाते हैं।

आदर्शवादी राम देव-प्रयोजन के लिए वनवास में जा रहे हैं, यह समाचार पाकर निषादराज गुह को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने बन्धुओं सहित उनका स्वागत सहयोग करने पहुँचा—

यह सुधि गुह निषाद जब पाई।
मुदित लिए प्रिय बन्धु बुलाई॥

स्वागत-सम्मान के लिए आवश्यक नहीं कि बहुत खर्चीले उपकरण ही हों अथवा शिष्टाचार की विशेष जानकारी हो। स्नेह, सद्भावनाएँ वाणी से भी व्यक्त की जा सकती है। राह चलते पथिक अपने नागरिक कर्तव्यों से प्रेरित होकर कहते हैं कि इन रास्ता न जानने वाले अनभ्यस्त राम-लक्ष्मण को इस हाथी और सिंहों से भरे वन में हम यथास्थान पहुँचाकर हम वापस लौट आवेंगे। वे लोग यह प्रस्ताव राम से करते हुए अपनी सज्जनता का परिचय देते हैं—

अगम पंथ गिरि कानन भारी।
तेहि महँ साथ नारि सुकुमारी॥
करि केहरि वन जाइ न जोई।
हम सँग चलहि जो आयसु होई॥
जाब जहाँ लगि तहँ पहुँचाई।
फिरब बहोरि तुम्हहि सिर नाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीराम उनकी भावना का आदर करते हुए, मीठे शब्दों में उनका आभार व्यक्त करते हुए आग्रहपूर्वक उन्हें वापस कर देते हैं—

एहि विधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जल नैन ।
कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहिं, कहि बिनीत मृदुबैन ॥

अन्य स्थानों पर ग्रामवासी निश्छल भाव से वृक्ष की छाँह में तिनकों और पत्तों के आसन पर बैठकर विश्राम करने तथा ताजा जल से हाथ मुँह धोने का स्नेह भरा आमंत्रण देते हैं । जो भी साधन उनके पास है, उन्हें प्रेमपूर्वक अर्पित करते हैं—

एक देखि वट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहि गँवाइअ छिनुक श्रमु गवनव अबहिं कि प्रात ॥
एक कलस भरि आनहि पानी ।
अंचइ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥

मानस के पात्र हर स्थल पर अपने सामयिक कर्तव्यों के प्रति सजग हैं । श्रीराम को छोड़कर जाते समय सुमंत्र शोक विकल स्थिति में रथ ठीक तरह चला नहीं पा रहे हैं । उनकी इस कठिनाई को देखकर निषादराज गुह मानवीय सहयोग एवं सहायता के कर्तव्य को ध्यान में रखकर चार व्यक्ति रथ चलाने में मदद करने के उद्देश्य से साथ भेज देता है । सज्जनों को सहयोग का अभाव नहीं सहना पड़ता—

सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी ।
रघुबर विरह पीर उर बाँकी ॥
भयउ निषादु विषादु बस, देखत सचिव तुरंग ।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिए सारथी संग ॥

राज्य की सम्पत्ति सार्वजनिक है । उसे ईश्वर की सम्पदा मान कर सुरक्षा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय । भरत चित्रकूट जाने से पूर्व राज्य सम्पत्ति की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करते हैं—

भरत आय घर कीन्ह विचारू ।
नगर बाजि गज भवन भंडारू ॥
सम्पति सब रघुपति करि आही ।
जो बिन जतन किए बन जाही ॥
तो परिनाम न मोर भलाई ।
पाप सिरोमनि सोइ दुहाई ॥

जिनको बड़प्पन मिला है उनका कर्तव्य है कि पीछे वालों के लिए आदर्शों के पद-चिह्न छोड़े, जिन्हें देखकर अनुसरण करते हुए वे भी सरलतापूर्वक लक्ष्य प्राप्त कर सकें—

अति अपार जे सरित बर, जो नृप सेतु करहिं ।
चढ़ि पिपीलिकहु परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहिं ॥

सज्जनता, शालीनता

नागरिक कर्तव्यों का पालन तो उतना भर है कि हम अपने उत्तरदायित्व को निवाहें और दूसरों के अधिकारों का व्यतिक्रम न करें । पर सज्जनों की शालीनता इससे भी आगे बढ़ जाती है वे अपने उदार व्यवहार से दूसरों के सामने आदर्श उपस्थित करते हैं और अनुकरण की प्रेरणा देते हैं । मनुष्यता का गौरव बढ़ाने वाले श्रेष्ठ नागरिक अपनी सम्पदा और विभूतियों को समाज का ऋण और अमानत मानते हैं और उसका सदुपयोग लोकमंगल के लिए करते हैं—

कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कर हित होई ॥

कीर्ति (प्रभाव) कविता (साहित्य) और सम्पत्ति वही श्रेष्ठ है जो गंगाजी की तरह सबका भला कर सके । अर्थात् जो विभूतियाँ लोकहित में न लग सकें निकृष्ट हैं । विभूति वालों को जो विशेषताएँ ईश्वर ने दी है उन्हें भगवान की धरोहर मान कर लोक-कल्याण में ही उनका प्रयोग करना चाहिए । आवश्यकता से अधिक मात्रा में जमा सम्पत्ति का यही सदुपयोग है कि उसे जल्दी से जल्दी सत्प्रयोजनों के लिए वितरित कर दिया जाय । रावण ने प्रचुर सम्पत्ति जमा कर रखी थी । सिंहासनारूढ़ होने पर वह विभीषण को मिली । इस संचय का क्या किया जाय यह बात उन्होंने श्री राम से पूछी । राम ने उसे तुरन्त वितरण करके संग्रह के पाप का तत्काल प्रायश्चित करने की सलाह दी । तदनुसार वह सम्पदा आवश्यकता वाले लोगों एवं कार्यों के लिए अविलम्ब दे दी गई—

बहुरि विभीषण भवन सिधायो ।
मनि गन बसन विमान भरायो ॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा ।
हँसि करि कृपा सिन्धु तब भाषा ॥
चढ़ि विमान सुनु सखा विभीषन ।
गगन जाइ वरषहु पट भूषन ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नभ पर जाइ विभीषण तब ही ।
वरषि दिए मनि अम्बर सबही ॥

दूसरों के सुखों को बढ़ाने के लिए जो अपने सुखों का बलिदान करते हैं, दूसरों के दु:खों को बटाने के लिए जो आतुर रहते हैं, वे मनुष्यता के गौरव हैं । सामाजिक हितों की रक्षा को काकभुशुण्डि जी भी सर्वश्रेष्ठ धर्म तथा दूसरों को कष्ट देने को निकृष्टतम पाप मानते हैं–

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥

मानस का मत है कि जो मनुष्य शरीर पाकर भी अपने सामाजिक दायित्व को नहीं समझ पाते और दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं, वे स्वयं भी भयंकर कष्ट पाते हैं–

नर शरीर धरि जो पर पीरा ।
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥

भगवान राम सत् कार्य में सहयोग देने वालों को प्रोत्साहन देते हैं चाहे वह गीधराज जटायु हो चाहे रीछवानर । वाल्मीकि रामायण में वे वानर योद्धाओं से कहते हैं–

सुहृदो में भवन्तश्च शरीर भ्रातरस्तथा ॥
युष्माभिरुद्धृतश्चाहं व्यसनोत् काननौकस: ।
धन्यो राजा च सुग्रीवा भवद्भि सुहृदां वरै: ॥

"हे वनवासी वानरों आप लोग मेरे मित्र हैं, भाई हैं तथा शरीर हैं एवं आप लोगों ने मुझे संकट से उबारा है, अत: आप सरीखे श्रेष्ठ मित्र तथा आपके राजा सुग्रीव धन्य हैं ।"

सच्ची और झूठी मित्रता

मित्रता एक दिव्य गुण है । जड़ पदार्थ एक और एक मिल कर दो होते हैं, पर मनुष्य एक और एक मिलकर ग्यारह बन जाते हैं । मैत्री स्नेह, सद्भाव और सहयोग की प्रतीक है । वह यदि सच्चे लोगों के बीच सदुद्देश्य से हो तो उन मित्रों का ही नहीं समस्त समाज का हित साधन करती है 'रामायण' ऐसी मैत्री को प्रोत्साहित करती है–

निज दुख गिरि समरज करि जाना ।
मित्रक दुख रज मेरु समाना ॥
देत लेत मन संक न धरई ।
बल अनुमानि सदा हित करई ॥
कुपथ निबारि सुपंथ चलावा ।
गुन प्रगटे अवगुनन्हि दुरावा ॥
विपत्ति काल कर सत गुन नेहा ।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा ॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई ।
ते सठ हठि कत करत मिताई ॥

मित्र वे हैं जो मित्र के चरित्र और व्यक्तित्व को ऊँचा उठायें । अपना स्वार्थ साधन करने को मित्र का धन, समय और चरित्र हरण करते हैं वे तो मित्र के वेश में छद्म किन्तु पक्के शत्रु है, इस जमानें में शत्रु जैसा आचरण करने के लिए लोग मित्र का आवरण ओढ़ कर ही शिकार खेलते हैं । इनसे पूरी तरह सावधान रहना चाहिए और देखना चाहिए कि जिससे मित्रता की जा रही है उसका व्यक्तित्व सद्गुण-सम्पन्न, आदर्श-वादिता का और नि:स्वार्थता से भरा हुआ है कि नहीं । ऐसे ही मित्र के प्रति कर्तव्य पालन करने वाले लोगों से घनिष्ठता बढ़ानी चाहिए ।

राम-रावण युद्ध में एक बार क्रुद्ध हो रावण ने विभीषण पर शक्ति का प्रहार किया । झट प्रभु ने विभीषण को अपने पीछे कर दिया और स्वयं उस शक्ति को अपने ऊपर ले लिया । मित्र के प्रति मित्र का क्या कर्तव्य होना चाहिए, मित्र को संकट से छुड़ाने के लिए किस प्रकार अपने को भी जोखिम में डालना चाहिए, यह प्रसंग इस कर्तव्य पर प्रकाश डालता है–

आवत देखि सक्ति अति घोरा ।
प्रनतारति भंजन प्रन मोरा ॥
तुरत विभीषण पाछे मेला ।
सन्मुख राम सहेउ सो सेला ॥

मित्र यदि कर्तव्य पालन में भूल करने लगे तो उसे दबाव देकर भी सही मार्ग पर लाना मित्र का कर्तव्य है । सुग्रीव राज्य पाकर जब सुख सुविधाओं को उपभोग करने में मग्न हो गया, तो उसे पाप पंक से निकालने के लिए भय दिखाना आवश्यक समझा गया । राम इसके लिए लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तब अनुजहिं समझायऊ, रघुपति करुणा सीव ।
भय दिखाय लै आबऊ, तात सखा सुग्रीव ॥

सही लोगों के बीच सही आधार पर बनी हुई मित्रता की जहाँ सराहना है वहाँ कुटिल लोगों की दुरभिसंधियाँ जब छद्म मित्रता बनकर सामने आती हैं तो वह अति भयंकर भी होती हैं । उस चिड़ीमार मित्रता से सावधान रहने और जाल में न फँसने के लिए भी कहा गया है—

जे न मित्र दुख होंहि दुखारी ।
तिनहि बिलोकत पातक भारी ॥
आगे कह मृदु बचन बनाई ।
पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई ।
अस कुमित्र परिहरे भलाई ॥
सेवक सठ नृप कृपन कुनारी ।
कपटी मित्र शूल सम चारी ॥

भगवान अनुशासन रूप हैं । वे स्वयं एक नियम-व्यवस्था में बँधे हैं । उनकी प्रत्येक जड़-चेतन कृति अनुशासन में बँधकर अपना काम कर रही है । यदि उच्छृंखलता उत्पन्न हो जाय तो विग्रह और विस्फोट की अराजकता इस सुन्दर संसार को नष्ट-भ्रष्ट करके रखदे । अनुशासन को अपना सर्वोपरि प्रगति आधार बताते हुए भगवान कहते हैं—

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई ।
मम अनुशासन मानें जोई ॥

क्योंकि भगवान की चर्चा मात्र से समस्याओं का समाधान नहीं होता । "विनय पत्रिका" में कहा गया है—

वाक्य-ग्यान अत्यन्त निपुन, भव पार न पावै कोई ।
निसि गृह मध्य दीप की बातन, तम निवृत नहिं होई ॥

अर्थात् "ब्रह्मज्ञान की निपुण बकवास से कोई भव-सागर पार नहीं कर सकता । इसके लिए तो वैसा ही आचरण होना चाहिए । अंधेरे में दीपक की चर्चा करने मात्र से प्रकाश कैसे हो सकता है ?"

रामराज्य, धर्मराज्य की शासन पद्धति

रामराज्य अर्थात् धर्मराज्य । राम अर्थात् नीतिनिष्ठा का जीवन्त प्रतीक प्रतिनिधि । रामराज्य में शासन का आदर्श प्रस्तुत किया गया है और बताया गया है कि जनता में धर्मनिष्ठा को सुरक्षित रखने एवं बढ़ाने का उत्तरदायित्व साधु-ब्राह्मणों के अतिरिक्त शासन का भी है । नीति, सदाचार का वातावरण बनाये रहने से यदि शासन सफल होता है तो उस देश में न आर्थिक कठिनाइयाँ रहेंगी न अन्यान्य प्रकार के संकटों में लोगों को फँसना पड़ेगा, न विग्रह रहेंगे, न अपराधों की अराजकता फैलेगी । स्वस्थ समाज का निर्माण शासन का प्रथम कर्तव्य है । भौतिक प्रगति के लिए प्रयास तो किये जायें किन्तु नीतिनिष्ठा के प्रति उपेक्षा बरती गई तो लोगों में बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्तियाँ उस भौतिक उन्नति का लाभ लेने की अपेक्षा उलटा अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने और अनाचार, भ्रष्टाचार बढ़ाने का ही कारण बनेंगी । धर्म को प्रथम और धन को द्वितीय स्थान देकर रामराज्य में सतयुगी सुखद वातावरण बना था । भविष्य में भी यही श्रेष्ठ समाधान अपनाना पड़ेगा । रामराज्य में नागरिक कैसे धर्म-कर्तव्यनिष्ठ थे इसकी झलक देखिये—

सब निर्दम्भ धर्म रत गुनी ।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी ।
सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

इसके विपरीत अवांछनीय शासन का प्रमुख चिह्न यह है कि उसके अन्तर्गत खल, चोर, जुआरी, व्यसनी, छली और लम्पटों की वृद्धि होती जाती है । अर्थात् उन पर नियंत्रण करने में बहुत ढील देकर एक प्रकार से उन्हें प्रोत्साहित ही किया जाता है । रावण-राज्य में ऐसा ही हुआ था—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लम्पट पर धन परदारा ॥

यह गलत समाज-व्यवस्था की प्रतिक्रिया है । जहाँ अनीति का वातावरण हो तथा उसी के लिए प्रोत्साहन दिया जाता हो, वहाँ विकृतियाँ ही बढ़ती हैं । रावण ने सामाजिक शील का ध्यान न रखकर सबकी स्वतन्त्रता हरण करके अपने सिकंजे में कस लिया था । वह अपनी मनमर्जी का शासन करता था । उसके राज्य में धर्मनीति को कोई मान्यता न थी वरन् सारे कार्य औचित्य के विपरीत ही चलते थे—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भुज बल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र ।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥
जेहि बिधि धर्म होइ निर्मूला ।
सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ॥

राम-राज्य की पृष्ठभूमि में सामाजिक मर्यादाओं का निर्वाह अनिवार्य है । शासक के पीछे जनमत और जनसहयोग होना आवश्यक है । इस लिए शासकों की नियुक्ति विचारशील पंचों के मत से होनी चाहिये । राम को सिंहासन देने के सम्बन्ध में यही सोचा गया था कि यदि पंच लोगों का मत हो तो राम को राज्य दिया जाय । प्रजातन्त्र की यही पद्धति है—

जौ पाँचहिं मत लागइ नीका ।
करहु हरष हिय रामहिं टीका ॥

श्री राम जब राज्य सिंहासन पर बैठे तब भी वे भय और आतंक उत्पन्न नहीं करते । उन्होंने प्रजा से कहा कि राजा से भी डरने की आवश्यकता नहीं है । यदि वह अनीति बरते तो उसे साहसपूर्वक निर्भयता के साथ रोकना चाहिए । राजा पर प्रजा का अंकुश रहना चाहिए—

जो अनीति कछु भाषौं भाई ।
तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥

मानसकार के अनुसार शासक को प्रजा के हित को ही प्रधानता देनी चाहिये । जिस राज्य में प्रजा दुःख पाती है, कष्ट सहती है और पतनोन्मुख बनती है, वह सत्ताधीश निश्चित रूप से नरक में धकेल दिया जाने योग्य है । वह इसी बात का अधिकारी है कि उसे सत्ताच्युत करके दण्ड का भागी बना दिया जाय—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी ।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

श्री राम इसका आदर्श अपने शासनकाल में उपस्थित करते हैं । वे सिंहासनारूढ़ होने पर प्राणी मात्र के कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । जिस प्रकार सब आनन्द अनुभव करें । वे वैसी ही व्यवस्था करते हैं ।

जेंहि बिधि सुखी होइ सब लोगा ।
करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा ॥

अयोध्या में ही नहीं वन में भी श्रीराम का वही प्रभाव दिखता है । राम के वन में बसने से उस क्षेत्र की सम्पत्ति बढ़ने लगी । सुराज्य में प्रजा के सुख बढ़ते ही जाते हैं—

राम बास बन सम्पति भ्राजा ।
सुखी प्रजा जिमि पाइ सुराजा ॥

सुराज्य की एक पहिचान यह है कि उसमें खल लोगों के उद्योग बन्द कर दिये जाते हैं । वे फलने-फूलने नहीं दिये जाते । उन्हें अवसर ही नहीं मिलता—

अर्क जवास पात बिनु भयऊ ।
जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥

राज्य सत्ता उत्कृष्टतम व्यक्तित्वों के हाथ में ही होनी चाहिए यदि वह ओछे लोगों के हाथ में चली जाय तो धरती के रसातल चले जाने जैसी विपत्तियाँ उत्पन्न होंगी । भरत अपने को शासन सत्ता सँभालने योग्य पात्रता से रहित अनुभव करते हैं और वसिष्ट जी के सम्मुख उसे स्वीकार करने से अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं ।

श्रेष्ठ शासन व्यवस्था के लिए आवश्यक है कि लोग सत्ता हथियाने के लिए होड़ न करें ।

कहउँ साँच सब सुनि पतिआहू ।
चाहिअ धरम सील नरनाहू ॥
मोहि राज हठ देइहहु जब ही ।
रसा रसातल जाइहि तबही ॥

रामराज्य भरत राज्य की पृष्ठभूमि पर स्थापित होता है । भरत त्याग और निस्पृहता और संयम साधना के मूर्तिमान प्रतीक हैं । उन्हें राज्य सँभालना भी पड़ा तो राज्य को भगवान की अमानत समझकर भरत मात्र मुनीम की तरह उसकी देखभाल करते हैं । उसमें से कोई विलास उपभोग अपने लिए नहीं लेते । घर को तपोवन मान कर एक निस्पृह संत की तरह मितव्ययी सरल निर्वाह करते हैं । भगवान की चरण पादुकाओं को सम्पत्ति की स्वामिनी मानते हैं, जो-जो करते हैं उन प्रतीकों को सूचना देकर ही कदम उठाते हैं, ताकि अपने में स्वामित्व का अहंकार पैदा न होने पाये । सम्पत्ति के ट्रस्टी अपने को मानकर ही वैभव का उपयोग करना हर किसी के लिए उचित है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जटाजूट सिर मुनि पटधारी ।
महि खनि कुस साथरी सँवारी ॥
असन वसन वासन व्रत नेमा ।
करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥
नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति ।
माँगि माँगि आयसु करत, राजकाज बहुभाँति ॥

रामराज्य की पृष्ठभूमि बनाने में भरत जैसे निर्लिप्त निस्पृह व्यवस्था करने वाले समाज हितैषी मुखिया ही नहीं श्रेष्ठ आचरण-निष्ठ नागरिक भी चाहिये । भरत ही नहीं नागरिक भी रामराज्य के अनुरूप बनने के लिए साधना करते हैं–

राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास ।
तजि तजि भोजन भोग सुख, जियत अबधि की आस ॥

रामराज्य की कल्पना के साथ हम चाहते हैं कि हमें किसी प्रकार का कष्ट न हो । वह संभव भी है किन्तु उसके लिये जिस प्रकार की जीवन पद्धति नागरिकों को अपनानी चाहिये वह समझना आवश्यक है । मानस के रामराज्य वर्णन में लिखा है कि दैहिक, दैविक एवं भौतिक तत्व रामराज्य में किसी को नहीं सताते थे । पर उसके पूर्व यह भी लिखा है कि वे लोग रहते कैसे थे–

रामराज बैठे त्रैलोका ।
हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई ।
राम प्रताप विषमता खोई ॥

इसी तथ्य को और भी स्पष्ट करते हुए तुलसीदास जी ने रामराज्य वर्णन में आगे बढ़ाया है । उन्होंने रामराज्य के सुपरिणाम तथा उन लाभों के कारण एक साथ प्रस्तुत किये हैं । जैसे सब जगह धर्म है पाप कहीं नहीं, क्योंकि वे सब लोग परस्पर प्रेम करते हुए अपने-अपने कर्तव्यों पर दृढ़ रहते हैं । सभी लोग श्रेष्ठ गति के अधिकारी हैं क्योंकि वे स्त्री पुरुष का भेद न करके सभी भक्तों के श्रेष्ठ आचरण की साधना में लगे रहते हैं । शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देने से रोग और अल्प मृत्यु नहीं और कोई मूर्ख अथा गुणहीन न होने से दरिद्रता और दु:ख किसी को नहीं भोगने पड़ते–

सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं ।
पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी ।
सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा ।
सब सुन्दर सब विरज सरीरा ॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना ।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥

मनुष्य की मन:स्थिति और गति विधि की शिक्षा जिधर भी चलती है उसी का प्रभाव अन्य प्राणियों, वनस्पतियों एवं प्रकृति की हलचलों पर भी पड़ता है । मनुष्य यदि कुमार्गगामी होगा तो न केवल मानव प्राणियों की दुर्गति होगी, वरन् अन्य प्राणी भी संत्रस्त रहेंगे-दुर्बल एवं विनष्ट होंगे । वृक्ष, वनस्पतियों का स्तर गिरता जायगा, साथ की प्रकृति विपरीत चलेगी । अकाल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, भूकम्प, बाढ़, तूफान, पशु एवं वनस्तियों के रोग फैलने से कष्ट कारक परिस्थतियाँ उत्पन्न होंगी । यदि मनुष्य का मानसिक प्रवाह सन्मार्गगामी है तो सतयुगी सुख-शान्ति के दृश्य उपस्थित होंगे । राम राज्य में त्रेता होते हुए भी सतयुग की परिस्थितियाँ थीं–

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥

ऐसी आदर्श समाज व्यवस्था में दण्ड आदि की व्यवस्था तो रहती है पर उसकी आवश्यकता नहीं पड़ती । रामराज्य में दण्ड यतियों के पास ही सुना जाता है अर्थात् दमन अपनी ही दुष्प्रवृत्तियों का किया जाता है अन्य का नहीं । भेद केवल कलाओं में उभारा जाता है, व्यवहार में नहीं । संघर्ष और विजय के प्रकरण केवल अपने ही मन को जीतने के लिये सुनाई पड़ते हैं । तात्पर्य यह कि जहाँ आन्तरिक शत्रुओं, अनीति तथा भेद बुद्धि को पराजित करने में सतर्कता बरती जाय वहाँ बाह्य जगत में उनका विस्तार ही नहीं होने पाता–

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचन्द्र के राज ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वास्तव में बाह्य जगत में रामराज्य के लक्षण तभी होते हैं जब अन्त: जगत में उसकी स्थापना हो जाय । रामराज्य सद्प्रवृत्तियों की ही शुभ प्रतिक्रिया है । अन्त:करण में जब भगवान का प्रकाश भर जाता है तो विकार नष्ट हो जाते हैं तथा श्रेष्ठ परिस्थितियाँ बनने लगती हैं । काकभुशण्डि जी गरुड़जी को यह मर्म समझाते हुए कहते हैं–

जबते राम प्रताप खगेसा ।
उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका ।
बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका ॥
जिन्हहि सोक ते कहउँ बखानी ।
प्रथम अविद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने ।
काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥
विविध कर्म गुन काल सुभाऊ ।
ए चकोर सुख लहहिं न काऊ ॥
मत्सर मान मोह मद चोरा ।
इन्ह कर हुनर न कबनिहुँ ओरा ॥
धरम तड़ाग ग्यान बिग्याना ।
ए पंकज बिकसे विधि नाना ॥
सुख सन्तोष विराग विवेका ।
विगत शोक ए कोक अनेका ॥

इस प्रकार भगवान का प्रकाश मानवीय अन्त:करण में जब भी उदय हो सके तभी रामराज्य जैसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है । इसके लिये गणित की गणनानुसार किसी काल विशेष की आवश्यकता नहीं । रामराज्य के वर्णन में भी यह कहा गया है कि इन दिनों त्रेता होते हुए भी सतयुग जैसी स्थिति हो गयी–

सस सम्पन्न सदा रह धरनी ।
त्रैता भई कृतयुग की करनी ॥

जब मनुष्यों के आंतरिक विकारों का शमन हो जाता है तो उनकी करनी श्रेष्ठ हो जाती है, तथा करनी की प्रतिक्रिया के रूप में शुभ परिस्थितियाँ स्वत: पैदा होने लगती है ।

श्रेष्ठ सामाजिक सत्प्रवृत्तियाँ

युग निर्माण अभियान जिन भावनात्मक एवं क्रियात्मक गतिविधियों को आगे बढ़ा रहा है, वे राम के समय में भी श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा चलाई जाती थीं । व्यक्ति और समाज निर्माण के लिए इन सत्प्रयत्नों की सदा आवश्यकता रही है और आगे भी बनी रहेगी ।

जलाशयों के निकट सर्वत्र न केवल देवमंदिर बने थे वरन् सुरम्य उपवन भी लगे हुए थे । लोगों को तुलसी के, जड़ी-बूटियों के तथा पुष्पों के पौधे लगाने का, हरियाली उगाने का बड़ा चाव था-

तीर तीर देवन्ह के मंदिर ।
चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुन्दर ॥
तीर-तीर तुलसिका सुहाई ।
बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई ॥

उस काल में लोग बाग बगीचों के बड़े प्रेमी होते थे । सुन्दर ढंग से जीवन जीने की कला वे जानते थे । रामराज्य में सुन्दर लतायें अनेक प्रकार की शोभा देती थीं और सब सदा बसन्त ऋतु की भाँति फूलती-फलती रहती थीं । वृक्ष, पौधे और पुष्प लगाना हर किसी की सुरुचि में सम्मिलित था–

सुमन वाटिका सबहि लगाईं ।
विविध भाँति कर जतन बनाईं ॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं ।
फूलहिं सदा बसन्त की नाईं ॥

राम-राज्य में कला के विकास पर भी जोर दिया जाता था । घर-घर में सुन्दर एवं प्रेरक चित्र लगे थे जिन्हें देखकर मुनियों का मन भी मोहित हो जाता था । चित्रों द्वारा श्रेष्ठ आदर्शों की प्रेरणा बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी को रोचकता पूर्वक दी जा सकती है–

चारु चित्रसाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहि चोराई ॥

भरत अपने हाथ के बनाये वस्त्र सुग्रीव को पहनाते हैं । इससे स्पष्ट है कि उन दिनों घरों में कताई, बुनाई, सिलाई आदि की कला गृह उद्योगों के रूप में प्रचलित थीं–

सुग्रीवहिं प्रथमहि पहिराये ।
बसन भरत निज हाथ बनाये ॥

स्वाध्याय और सत्संग का लाभ जानकार, अनजान सभी को लेना चाहिए । सत्प्रेरणाएँ जितनी अधिक बार सुनी-समझी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायेंगी उतना ही वे अधिक हृदयंगम होंगी और हित साधन करेंगी । ऐसी विचार गोष्ठियों और सभाओं की सदा ही उपयोगिता है । श्री राम स्वयं जानकार होते हुए भी उनमें उपस्थित रहते थे । अधिकाधिक ज्ञानार्जन की जिज्ञासा तथा लोगों को उसके लिए प्रेरणा देना इसका उद्देश्य है–

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन ।
बैठहि सभा संग सब सज्जन ॥
वेद पुराण बसिष्ठ बखानहिं ।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं ॥

समाज में सद्ज्ञान का प्रसार होते रहना हर स्तर पर आवश्यक है । सामूहिक आयोजनों में घर के सभी सदस्य एक साथ उपस्थित नहीं हो सकते, अत: घर-घर ज्ञान चर्चा की व्यवस्था करके परिवार के सभी सदस्यों में ज्ञान का विकास किया जाता रहता था ।

सबके गृह गृह होहि पुराना ।
राम चरित सुन्दर बिधि नाना ॥

श्रेष्ठ कथाओं का कहना सुनना ही पर्याप्त नहीं । उनके अनुसार आचरण बनाने का भी प्रयास किया जाना चाहिये । अयोध्यावासी नागरिक भगवान श्रीराम के गुणों की चर्चा करते हैं और एक-दूसरे को वही सिखाते भी हैं–

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं ।
बैठ परस्पर यहई सिखावहिं ॥

समाज के श्रेष्ठ विचारकों और विद्वानों का कर्तव्य है कि समाज में ज्ञान की धाराओं को सही दिशा देते रहें इसके लिये समय-समय पर विशाल सम्मेलन आवश्यक हो जाते हैं । विचारक लोग परस्पर विचार-विमर्श करके ज्ञान प्रसार सम्बन्धी रूपरेखा निर्धारित करें और उसी को समाज में प्रचारित करें यह आवश्यक है । मानस में ऐसे सम्मेलनों का भी वर्णन मिलता है–

भरद्वाज आश्रम अतिपावन ।
परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥
तहाँ होय मुनि ऋषिय समाजा ।
जाहि जे मज्जन तीरथ राज ॥
ब्रह्म निरूपन धरम विधि, बरनहिं तत्व विभाग ।
कहहि भगति भगवन्त कै, संयुत ज्ञान विराग ॥

ऐसे सम्मेलन और लोकशिक्षण के लिए ही ऋषि लोग सुन्दर एवं श्रेष्ठ वातावरण युक्त आश्रम बनाकर रखते थे । ब्रह्म निरूपण अर्थात् आस्तिकता का शुद्ध रूप, धार्मिक मर्यादाओं तथा तत्व विभाग अर्थात् आध्यात्मिक तथ्यों को समाजोपयोगी रूप में प्रस्तुत करते थे । ज्ञान वैराग्य युक्त भक्ति का स्वरूप समझाते थे ।

श्रम करने वाले और श्रम कराने वालों के बीच अति मधुर स्नेह सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध रहने चाहिए । उनके बीच शोषित और शोषक की मान्यता एवं भावना मन के किसी कोने में भी नहीं रहनी चाहिए । उत्पादन एवं व्यवस्था के लिए जितनी श्रम की महत्ता है उतनी ही पूँजी व्यवस्था और बुद्धि की । एक के बिना दूसरा पक्ष अपंग है । इसलिए एक-दूसरे का पूरक बनकर चलना चाहिए । यह कार्य बिना एक-दूसरे के सुख दु:ख में साझीदार हुए और सम्मान का समुचित आदान-प्रदान किये बिना संभव नहीं ।

श्रमिकों को मानना चाहिये कि वे किसी व्यक्ति विशेष या संस्थान के कर्मचारी या श्रम विक्रेता नहीं वरन् अपनी श्रम पूँजी से समस्त समाज की भलाई एवं उन्नति करने में संलग्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं । धर्म को सार्थक करने में किसी से पीछे नहीं हैं ।

श्रम कराने वालों का कर्तव्य है कि अपना काम करने वालों को, अपने कुटुम्बियों, स्वजनों की तरह मानें और उनके निवाह, उत्थान, सम्मान के लिए शक्ति भर प्रयत्न करते रहें । सेवा-धर्म के दोनों ही पूरक, रथ-चक्र हैं । वैतनिक या अवैतनिक होने से उनकी स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता । रामायण में इसी मान्यता का परिपोषण है ।

सेवा धर्म को कठिन माना गया है । स्वार्थ और स्वाभिभक्ति में प्राय: बैर पाया जाता है । बैर अन्धा होता है और कुछ भी उपद्रव खड़ा कर सकता है । किन्तु प्रेम तो बालक के समान है उसे स्वार्थ का कुछ भी बोध नहीं होता । स्वामी का हित अपना हित मानने वाला ही सच्चा सेवक कहला सकता है–

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना ।
सेवा धर्म कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरम स्वारथहि विरोधू ।
बैरु अन्ध प्रेमहि न प्रबोधू ॥
... ...
सहज सनेह स्वामि सेवकाई ।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवक का परम धर्म (कर्तव्य) है कि वह स्वामी की भलाई में ही कार्यरत रहे। सेवा धर्म को जीवन का आदर्श मानने वाले श्री भरत जी अयोध्याकाण्ड में चिन्तन के क्षणों में रास्ता चलने तथा व्यावहारिक चर्चा-प्रसंगों में भी सेवा धर्म की मर्यादाएँ बतलाते हैं। चित्रकूट प्रस्थान के पूर्व नगर की सुरक्षा की बात सोचते हुए उनका मत प्रकट होता है—

करइ स्वामि हित सेवक सोई।
दूषन कोटि देइ किन कोई॥

चर्चा के बीच वे कहते हैं—

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई।
सो सेवक लखि लाज लजाई॥

मार्ग में चलते हुए सेवकों द्वारा वाहन का उपयोग करने का आग्रह करने पर भरत कहते हैं—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा।
सब ते सेबक धर्म कठोरा॥

श्रमिकों को उचित पारिश्रमिक देना सज्जनोचित कार्य है। अपनी कठिनाई एवं सुविधा की तरह उनकी आवश्यकताओं का ध्यान भी रखा जाना चाहिए। राम को केवट ने नाव द्वारा पार उतारा था। उसका पारिश्रमिक देना आवश्यक था। पर राम की जेब खाली थी। स्थिति की विषमता तथा कर्तव्य की माँग को देखकर सीताजी रास्ता निकालती है और अपनी अँगूठी उतार कर केवट को देती हैं। उधर केवट भी कम कर्तव्यनिष्ठ नहीं हैं। सत्प्रयोजन में निरत महामानवों के कार्य में बिना कुछ लिए सहायता करने के अपने कर्तव्य से वह भी परिचित है—

केबट उतरि दण्डवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि कछु नहिं दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननि हारी।
मनि मुदरी मन मुदत उतारी॥
बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ, नहि कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ॥

सुमंत यद्यपि राज्य कर्मचारी होने के कारण छोटे हैं और राम अपने अधिकार के कारण बड़े हैं तो भी सेवक स्वामी की बात न सोच कर बड़ी आयु के कर्मचारी को भी राम पिता तुल्य मानते हैं, वैसा ही आदर करते हैं और पीछे से पिता को सुखी रखने का अनुरोध करते हैं—

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे।
बिनती करउँ तात कर जोरे॥
सब बिधि सोइ कर्तव्य तुम्हारे।
दुख न पाव पितु सोच हमारे॥

जनक के दूत जब सिया स्वयम्बर में राम की विजय के समाचार लेकर अयोध्या आते हैं तो दशरथ उनका भी सहज सम्मान करते हैं और उन्हें सेवक, नौकर आदि न मानकर उनके साथ भाई जैसा व्यवहार करते हैं और वैसा ही सम्बोधन कुशल-समाचार पूछते हुए करते हैं—

भैया कहहु कुशल दोउ बारे।
तुम नीके निज नयन निहारे॥

तब वे दूत सारा विवरण सुनाते हुए दोनों भाइयों के प्रेम का बखान करते हैं। जब राजा दशरथ उनके संवाद से प्रसन्न होकर उन्हें इनाम देने लगते हैं तो उन्हें जो वेतन मिलता उसके अतिरिक्त वे कुछ भी अपने कार्य के बदले लेना नहीं चाहते—

सभा समेत राउ अनुरागे।
दूतन्ह देन निछावर लागे॥
कहि अनीति ते मूंदहि काना।
धरम बिचारि सबहि सुख माना॥

उत्पादक श्रम करने वाले श्रमिक ही समाज की सम्पन्नता के आधार होते हैं। उनके प्रति समाज तथा शासन को अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक पालन करना चाहिये ताकि वे प्रवृत्तियाँ अधिक बढ़े और फलतः देश की सम्पन्नता भी बढ़े। वाल्मीकि रामायण में श्री राम भरत को इस कर्तव्य के प्रति सतर्क करते हैं वे उनसे कुशल-मंगल पूछते हुए यह भी प्रश्न करते हैं—

"किंचित ते दयिताः सर्वे कृषि गोरक्ष जीविनः।"

"भरत ! तुम कृषि करने वाले और गोपालन से जीविका चलाने वाले श्रमिकों को प्यार करते हो न ?" राज्य को भी श्रमिकों के प्रति उदार एवं सहयोग भरी नीति बरतनी चाहिये।

अध्यात्म दरिद्रता का प्रतीक नहीं है। उसकी प्रेरणा, विभूतियाँ और सम्पत्तियाँ दोनों को उपार्जित करने की हैं, ताकि आत्म-कल्याण और लोक-कल्याण सुविधापूर्वक किया जा सकें। पर उपार्जित सम्पदा को संग्रह करते जाना, उत्तराधिकारियों को व्यसनी बनाने के लिए छोड़ जाना, सत्कर्मों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में प्रयुक्त न करना ही सम्पन्नता के दोष हैं । उनसे बचकर सम्पत्ति का उपार्जन और सदुपयोग सब प्रकार सराहनीय है । दरिद्रता को दु:ख और सन्त मिलन को सुख बताया गया है । सन्तों की प्रेरणा हर दृष्टि से सुसम्पन्न बनने की सम्पदा बढ़ाने की होती है–

नहिं दरिद्र सम दु:ख जग माहीं ।
सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं ॥

जहाँ सुमति होती है वहाँ सम्पति भी रहती है । विवेक शीलता, दूरदर्शिता, श्रमशीलता, मितव्ययता जैसी सुमति जहाँ होगी वहाँ भौतिक धन सम्पत्ति की भी कमी न रहेगी । आर्थिक तथा दूसरी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ तो दुर्गुणी, व्यसनी, आलसी, अपव्ययी, अस्त-व्यस्त लोगों को ही घेरती सताती है–

जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपत्ति निदाना ॥

सम्पत्ति उसी की सार्थक है जो उसका उपयोग सत्प्रयोजनों में कर सके । अन्यथा दुर्बुद्धि के साथ बढ़ी हुई सम्पत्ति सर्वत्र त्रास एवं विनाश ही उत्पन्न करेगी–

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी ।
उपकारी की सम्पति जैसी ॥

भगवान के, परमार्थ के मार्ग पर चलने में सहायता न देकर जो सम्पत्ति व्यक्ति को मोहग्रस्त, कृपण, व्यसनी बनाती हो, वह धन सम्पदा निन्दनीय है–

जरहु सो सम्पत्ति सदन सुखु, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद, करै न सहस सहाइ॥

यह सत्प्रवृत्तियाँ श्रेष्ठ समाज की रचना और स्थायित्व के लिए परम उपयोगी हैं । प्रगति चाहने वाले समाज के नागरिकों को इनकी अभिवृद्धि पर ध्यान देना चाहिये ।

धर्म-स्थापना के लिए अनीति के विरुद्ध संघर्ष

अनीति का विरोध करना मानवता का अत्यन्त पवित्र कर्तव्य है । इसके बिना नीति का समर्थन हो ही नहीं सकता नीति का पोषण अनीति के उन्मूलन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है ।

अनीति के अवरोध के चार चरण है– (१) असहयोग (२) निन्दा (३) विरोध (४) संघर्ष । अपनी स्थिति के अनुरूप इन चारों में से जहाँ जिसके लिए जितना संभव हो उतना अनीति का विरोध उसे करना ही चाहिए ।

सब से दुर्बल एवं संघर्ष की प्रथम स्थिति यह होनी चाहिए कि कम से कम अनीति के साथ सहयोग करने से, उसमें सम्मिलित होने से सर्वथा दूर रहें । किसी भी लोभ या भय के कारण अनुचित का सहायक या समर्थक न बने । उस प्रकार के कार्यों में सम्मिलित रहना भी एक प्रकार का समर्थन है । अस्तु ऐसे कार्यों में साथ रहना सम्मिलित होना या उन प्रसंगों को रुचि पूर्वक सुनना भी नहीं चाहिये । उन प्रसंगों के प्रति घृणा, अरुचि एवं उपेक्षा ही व्यक्त करना चाहिए ।

दूसरा चरण है– निन्दा । अनीति-प्रसंगों का प्रत्यक्ष नाम लेकर अथवा बिना नाम लिए ही निन्दा करते रहना चाहिए ताकि सुनने वालों के मन में दुष्प्रवृत्तियों के प्रति रोष जागृत हो और वे उससे सावधान रहने, बचने की सतर्कता प्राप्त कर सकें और विरोध के लिए किसी हद तक तैयार हो सकें ।

तीसरा चरण है विरोध, अर्थात् अनैतिक कार्यों में रुकावट डालना । उन्हें सफल न होने देने के लिए यथास्थिति जो अवरोध उत्पन्न किया जा सकता हो, उसे करना । दूसरों को उस कार्य में भाग लेने से रोकना ।

चौथा चरण है संघर्ष अर्थात् डट कर मुकाबला करना । अनीति कर्ताओं से जूझना, इस धर्मयुद्ध में आक्रमणकारियों के आघात सहने को जोखिम उठाने के लिए प्रसन्नतापूर्वक तैयार रहना ।

गाँधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम में इन चारों चरणों का देश की स्थिति देखते हुए प्रयोग किया था । सन् १९१९ में उनका असहयोग आन्दोलन आरम्भ हुआ । पीछे जलियांवाला बाग के घटनाक्रमों को लेकर देशव्यापी निन्दा-अभियान चलाया और विरोधी वातावरण तैयार किया । सन् ३० में सत्याग्रह आन्दोलन में धरना देने, कानून तोड़ने एवं प्रतिरोध खड़ा करने के अनेक कार्यक्रम थे । अन्त में सन् ४२ का ''करो या मरो'' अभियान अत्यन्त उग्र हो गया और उसमें हिंसा-अहिंसा के सभी प्रतिबन्ध हटा दिये गये । यह लड़ने वालों की शक्ति और शत्रु की परिस्थिति को देखते हुए रण-कौशल का निर्धारण था । कब, कहाँ, क्या, कितना किया जाय यह पीछे की बात है । मूल प्रश्न अनीति के उन्मूलन का है ताकि धर्म की स्थापना हो सके ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भगवान का अवतार भी इन्हीं दो प्रयोजनों के लिए हुआ करता है ।

भगवान का अवतार धर्म की स्थापना और अधर्म के उन्मूलन के लिए ही होता है । वे इसी प्रयोजन के लिए अपने समस्त क्रिया-कलाप नियोजित करते हैं । मनुष्य के अन्तःकरण में भी जब भगवान का अवतरण होता है तो वह अपनी अधर्ममूलक दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन और धर्ममूलक सत्प्रवृत्तियों के अभिवर्धन-परिपोषण में लग जाता है । बहिर्जगत में अथवा अन्तर्जगत में भगवान के जन्म का यही प्रयोजन है । गीता में भगवान ने यही प्रतिज्ञा की है—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

यही बात ''रामायण'' में कहीं गई है—

जब जब होइ धर्म कै हानी ।
बाढ़हि असुर महा अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि मनुज सरीरा ।
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।

भगवान राम इन्हीं दो प्रयोजनों के लिए अपनी गति विधियों को केन्द्रित करते हैं । उनके सहयोगियों के क्रिया-कलाप इन्हीं प्रयोजनों के लिए गतिशील हैं—

मानसकार का मत है कि अत्यन्त सीधापन और सज्जनता भी अवाँछनीय है । उसे सामान्य लोग भोलापन, बेबकूफी या कायरता समझ बैठते हैं । सज्जनों के प्रति सज्जनता का व्यवहार करना और दुष्टता के प्रति कठोर रहना संतुलित नीति समन्वय है, स्थिति के अनुरूप सज्जनता एवं कठोरता का ही औचित्य है—

गुनहु लषन कर हम पर रोषू ।
कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू ॥
टेढ़ जानि संका सब काहू ।
बक्र चन्द्रमहिं ग्रसइ न राहू ॥

समय के अनुसार मनुष्य को कठोर और मृदुल बनना पड़ता है । नीतिनिष्ठा में वज्र की तरह कठोर और उदारता, करुणा के अवसरों पर फूल की तरह कोमल होना चाहिए । भगवान राम के सम्बन्ध में काकभुशुण्डिजी ऐसा ही मत प्रकट करते हैं—

कुलिसहु चाहिं कठोर अति, कोमल कुसुमहिं चाहि ।
चित खगेश राम कर, समुझि परइ कहु काहि ॥

उनकी करुणा और कठोरता की झलक एक साथ ही इस प्रसंग में मिलती है । हड्डियों का ढेर देखकर श्री राम उनका विवरण पूछते हैं । जब यह मालूम होता है कि निशाचरों ने ऋषियों को खा डाला है, यह उन्हीं की हड्डियों का ढेर है तो राम को आँखों में आंसू आ गये । वे दीन, दुर्बल, असाहयों के आँसू न थे । उन्होंने तत्काल प्रतिकार का निश्चय किया और हाथ उठा शपथ पूर्वक प्रतिज्ञा की कि इस पृथ्वी को असुर विहीन करूँगा । इस संघर्ष के अतिरिक्त उन्होंने ऋषियों के कष्ट निवारण के लिए सहायता की भी व्यवस्था की । धर्म की स्थापना अधर्म के विनाश का यह उभय पक्षीय उपक्रम है ।

अस्थि समूह देखि रघुराया ।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाये ।
सुनि रघुबीर नयन जल छाये ॥
निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ प्रन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रम, जाइ जाई सुख दीन्ह॥

लंका अभियान में भी ऐसा ही उदाहरण सामने आता है । समुद्र से रास्ता देने के लिए राम विनती कर रहे हैं । किन्तु कुछ फल नहीं निकलता । लक्ष्मण दैव के भरोसे रहने की बात को निरर्थक बताकर कहते हैं कि अब पुरुषार्थ करके समुद्र को सुखाने से काम चलेगा ।

नाथ दैव कर कवन भरोसा ।
सोखिय सिन्धु करिअ मन रोसा ॥

किन्तु श्रीराम नीति मार्ग से चलते हैं । पहले सज्जनता का ढंग अपनाते हैं, किन्तु जब समुद्र के आचरण से यह प्रकट होता है कि वह शालीनता के ढंग से नहीं समझता तो वे उसकी जड़ता का उपचार करने को तैयार हो जाते हैं ।

कुटिल खल दुष्ट स्तर के लोगों को प्रबोध करने के लिये उन्हें आक्रोश की कड़ुई दवा भी पिलानी पड़ती है । सड़े फोडे में नश्तर लगाना भी आवश्यक है । निकृष्ट स्तर के मनुष्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

को विनय के स्थान पर भय दिखाने से ही सुधार होता है। एक ही नीति हर जगह सफल नहीं होती—

बिनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, बिनु भय होइ न प्रीति ॥
लछिमन बान सरासन आनू ।
सोखहुँ बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती ।
सहज कृपन सन सुन्दर नीती ॥

ऐसा ही उदाहरण जयंत को दण्डित करने के प्रकरण में मिलता है। जयन्त कौए के रूप में अकारण सीता के पाँव में चोंच मारता है। इस आततायी आक्रमण से क्रुद्ध होकर भगवान उसे कर्मफल भुगतान के लिए दण्ड देने की व्यवस्था करते है।

सीता चरण चोंच हति भागा ।
मूढ़ मंद मति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना ।
सींक धनुष सायक संधाना ॥
निज कृत कर्म जनित फल पायउँ ।

जयन्त दण्ड से भयभीत होकर आर्त वचन बोलता है और पश्चाताप करता है। पर इतने पर से पाप क्षमा नहीं हो सकते। पश्चाताप बिना प्रयश्चित के सर्वथा अपूर्ण है। इस लिए पश्चाताप को देखते हुए भगवान थोड़ी रियायत करते हैं और एक आँख हरण करके छोड़ देते हैं—

सुनि कृपाल अति आरत बानी ।
एक नयन करि तजा भवानी ॥

दुष्टों को दण्ड से ही सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। मान विनय, शिक्षा से उनकी कठोर मनोभूमि प्रभावित नहीं होती। नर पशुओं को भी डण्डे के बल पर ही सुधारा जा सकता है। काकभुशुण्डि के पूर्व जन्म प्रसंग में शिवजी भी अपराध को क्षमा करने के लिये तैयार नहीं है। वे कहते हैं—

जौं नहिं दण्ड करौं खल तोरा ।
भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा ॥

श्री राम बालकपन से ही अनीति-उन्मूलन में लग गये विश्व-कल्याण के लिए लोकमंगल के लिए अवतरित हुए राम और लक्ष्मण का शौर्य और साहस सिंहों जैसा था। उनकी धैर्ययुक्त दूरदर्शिता अद्भुत थी। उन्होंने सत्रयोजनों में लगे हुए मुनियों को निर्भय करने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर संभाला। विश्वामित्र जी के साथ असुरों से यज्ञ की रक्षा करने वे निकल पड़े।

पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपासिन्धु मतिधीर, अखिल विश्व कारन करन ॥

सत्कर्मों में सहयोग देना उनकी सुरक्षा व्यवस्था के लिए-कटिबद्ध रहना और जो उन सर्व हितकारी कामों में विघ्न उत्पन्न करते हैं, उनसे निपटने के लिए बड़े से बड़ा खतरा उठाकर भी संघर्ष रत होना प्रत्येक शक्तिशाली व्यक्ति का कर्तव्य है। राम ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए उसी पुनीत कर्तव्य का पालन किया—

प्रात कहेउ मुनि सन रघुराई ।
निर्भय यज्ञ करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी ।
आपु रहे मख की रखवारी ॥

रामायण में निसिचर, असुर आदि शब्द दुष्ट दुराचारी मनुष्यों के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे लोग न केवल क्रूर आक्रमण करते हैं, वरन् मीठे व्यवहार के जाल में फँसाकर चिड़ी-मार का, मच्छीमार का कपट व्यवहार भी करते हैं। ऐसे लोगों के दांवघातों से रक्षा करने के लिये संकेत किया गया है—

करहिं उपद्रव असुर निकाया ।
नाना रूप धरहिं करि माया ॥
जिनके अस आचरन भवानी ।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

ऐसे अनैतिक तत्वों को समाज से उन्मूलन किया ही जाना चाहिए।

श्रीराम इस प्रकार के अनीति उन्मूलन के लिये सदा तत्पर रहे। वे धनुषयज्ञ प्रकरण में परशुराम जी को समझाते हुए कहते हैं कि अनीति के विरुद्ध संघर्ष करना पुनीत क्षत्री धर्म है, इससे जो भी कतराता है वह निन्दा का पात्र है—

देव दनुज भूपति भट नाना ।
सम बल अधिक होउ बलवाना ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो रन हमहिं प्रचारै कोई ।
लरहिं सुखेन काल किन होई ॥
क्षत्रिय तनु धरि समर सकामा ।
कुल कलंकु तेहि पाँवर जाना ॥

खरदूषण से सामना होने पर श्रीराम वही अनीति प्रतिरोधी प्रखर रूप प्रकट करते हैं । शत्रु दूत उन्हें बिना लड़े बात मान लेने को कहता है तो वे उसे लज्जित करते हुए कहते हैं—

रन चढ़ करिअ कपट चतुराई ।
रिपु पर कृपा परम कदराई ॥

वे तो खर जैसे दुष्टों को खोज-खोज कर मारने में ही अपने क्षत्री धर्म की पूर्ति मानते हैं । कहते हैं—

हम क्षत्री मृगया वन करहीं ।
तुम्ह सम खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवान देखि नहिं डरहीं ।
एक बार कालहु सन लरहीं ॥

अनीति के प्रति संघर्ष का ऐसा ही साहस जटायू ने दिखाया जब सीता को हरण करके रावण लिये जा रहा था और माता सीता के विलाप से दिशाएँ करुणामय हो रही थीं । तब गीधराज जटायु ने यह सुना और उससे रहा न गया । रावण का विरोध करने के लिये जटायु ने अपने प्राणों की आहुति दे दी—

गीधराज सुनि आरत बानी ।
रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई ।
जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा ।
करिहउँ जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवन्त खग कैसे ।
छूटइं पवि परबत कहुँ जैसे ॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही ।
निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
चोंचन्ह मारि बिदारेसि देही ।
दंड एक भइ मुरछा तेही ॥

घायल पड़े हुइ जटायु को श्रीराम तात जैसे सम्मानास्पद शब्द से स्मरण करते हैं और कहते हैं कि जिनके मन में पर हित बसा हुआ है उनके लिए इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । भगवान उसका क्रियाकृत्य अपने हाथ से करते हैं और शहीद का सबसे बड़ा पद-सम्मान प्रदान करते हैं—

परहित बस जिनके मन माहीं ।
तिन कहँ जग दुरलभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा ।
देउँ काह तुम पूरण कामा ॥

दोहावली में तुलसी दास जी कहते हैं— यों मरने को तो आज या कल सभी मरते हैं, पर निःस्वार्थ परमार्थ के लिए प्राण त्याग कर जटायु ने जैसी मृत्यु पाई वैसी किन्ही विरले भाग्यशालियों को ही मिलती है—

मुये मरत मरि है सकल घरी पहर के बीचु ।
लही न काहू आज लौं गीधराज की मीचु ॥

निषाद राज गुह की भूमिका भी कम प्रेरक नहीं है । जब निषाद को ऐसा अनुमान हुआ कि भरत दुर्भावना से राम-लक्ष्मण से लड़ने आ रहे हैं तो वह अनीति के विरुद्ध लड़ने के लिए अपने स्वल्प साधनों से ही तैयार हो जाता है और हार-जीत की परवा किये बिना लड़ने के साधन धनुष वाण सहित अपने साथियों को एकत्रित करता है और उनका उत्साह बढ़ाता है—

समाचार सब सुने निषादा ।
हृदय बिचार करइ सविषादा ॥
कारन कवन भरत बन जाहीं ।
है कछु कपट भाव मन माहीं ॥
जौ पै जिय न होति कुटिलाई ।
तो कत लीन्ह संग कटकाई ॥

भरत का उद्देश्य गलत हो सकता है यह विचार आते ही गुह ने अपने कर्तव्य का निर्धारण किया । जीते जी अनीति न होने देने का संकल्प करके मोर्चाबन्दी प्रारंभ कर दी ।

अस विचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु ।
हथबाँसुह बोरहु तरनि कीजिअ घाटा रोहु ॥
होहु संजोयल रोकहु घाटा ।
ठाठहु सकल मरै के ठाठा ॥
सनमुँख लोह भरत सन लेऊँ ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अयोध्या की चतुरंगिनी सेना से लोहा लेने में निषाद को जरा भी भय नहीं है। क्योंकि उसका उद्देश्य जय-पराजय से नहीं यथा शक्ति अनीति का प्रतिरोध करके कर्तव्य का निर्वाह से था।

विगत विषाद निषादपति सबहि बढ़ाइ उछाहु ।
सुमिरि राम माँगेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु ॥

वह मानता है कि सदुद्देश्य के लिए संघर्ष करने में यदि प्राण जाता हो तो भी उसको चिन्ता नहीं। ऐसे धर्मयुद्ध में मरण तो किन्हीं पुण्यात्माओं को ही मिलता है—

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा ।
राम काजु छनभंगु सरीरा ॥

यही प्रतिक्रिया लक्ष्मण की भी होती है। उन्हें लगा कि भरत अनीति पर उतर आये हैं, तो लक्ष्मण अनीति करने वाले भाई से भी लड़ने और मारने को तैयार हो जाते हैं—

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी ।
जानि राम बनवास एकाकी ॥
वैसेहि भरतहिं सेन समेता ।
सानुज निदरि निपातहुँ खेता ॥

मानस के पात्रों को किसी भी सांसारिक सम्बन्ध का मोह नीति पथ से विचलित नहीं कर सकता। अनीति होती देखकर वे निकटतम सम्बन्धी को भी क्षमा नहीं करते। भरत जी भी ऐसे ही प्रखर पात्र है। उन्होंने माता की आज्ञा मानकर राजगद्दी स्वीकार करना तो दूर कैकेयी की कटु भर्त्सना की। बड़े होने के कारण किसी का भी अनुचित आदेश स्वीकार न करने की विवेकयुक्त परम्परा अपना कर भरत ने धर्मयुक्त कार्य ही किया। इसमें असहयोग और निन्दा दोनों का समन्वय है—

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्हीं ।
मरन काल बिधि मति हरि लीन्हीं ॥
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई ।
आँख ओट उठि बैठहिं जाई ॥

अनीति होने पर यह कहना काफी नहीं कि हमसे तो किसी ने पूछा ही नहीं। यदि उसका थोड़ा भी पता लगे तो यथा साध्य तुरन्त उसका प्रतिकार करना चाहिये। विभीषण सभा में स्वयं पहुँचकर रावण को सत्परामर्श देते हैं—

अवसर जानि विभीषनु आवा ।
भ्राता चरन सीसु तेहि नावा ॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन ।
बोला बचन पाइ अनुसासन ॥
जौ कृपाल पूछिहु मोहि बाता ।
मति अनुरूप कहहुँ हित ताता ॥
जो आपन चाहै कल्यान ।
सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना ॥
तो परनारि लिलार गोसाईं ।
तजउ चउथ के चंद कि नाईं ॥

बुद्धिमान और वयोवृद्ध मन्त्री माल्यवन्त भी विभीषण के मत का समर्थन करता है—

माल्यवन्त अति सचिव सयाना ।
तासु बचन सुनि अति सुख माना ॥
तात अनुज तव नीति विभूषन ।
सो उर धरहु जो कहत विभीषन ॥

चापलूस स्वार्थवश और कायर नाराजी के डर से यथार्थ बात न कहकर ठकुर सुहाती कहते रहते हैं, यह नीति बुरी है। उससे कहने वाला अपना आत्म हनन करता है और अपने यथार्थ मत को छिपाकर अपने और सुनने वाले का अहित करता है जहाँ मत व्यक्त करना हो वहाँ तो भय छोड़ कर न्याय और विवेकयुक्त उचित बात ही कहनी चाहिए। रावण की सभा में सभी उपस्थित लोग उसको प्रिय लगने वाली सलाह दे रहे थे, तब रावण पुत्र प्रहस्त ने साहसपूर्वक वह कह डाला जिसमें बलवान पिता और सभासदों के क्रोध का भाजन बनने का तो खतरा था पर औचित्य उसी में भरा पड़ा था।

रावण के सभासद राम की सेवा सहित आने की बात सुन कर रावण की चापलूसी करते हुए कहने लगे कि भय की क्या बात बन्दरों और मनुष्यों को तो हम यों ही खा डालेंगे। प्रहस्त उनके अविवेक पर मर्यादापूर्वक कड़ा प्रहार करते हैं—

सबके वचन श्रवण सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि ।
नीति विरोध न करिअ प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥
कहँहि सचिव सठ ठकुर सोहाती ।
नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाँघि एक कपि आवा ।
तासु चरित मन महुँ सब गावा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षुधा न नरही तुम्हहिं तब काहू ।
जारत नगरु कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगे दुख पावा ।
सचिबन अस मत प्रभुहि सुनावा ॥
सो कपि मनुज खाब हम भाई ।
बचन कहहिं सब गाल फुलाई ॥
तात बचन मम सुनु अति आदर ।
जनि मन गुनह मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं ।
ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे ।
सुनहिं जे कहहि ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीष्ठ पठउ सुनु नीती ।
सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥
नारि पाइ फिर जाहि जो तौं न बढ़ाइअ रारि ।
नाहिं त सनमुख समर महि तात करिअ हठि मारि ॥
यह मत जौं मानहुँ प्रभु मोरा ।
उभय प्रकार सुजस जगतोरा ॥

हितैषी कहलाने वाले लोग भी यदि सत्परामर्श न दें, संकोच-वश चुप रहें हाँ में हाँ मिलाये तो समझना चाहिए कि अब सर्वनाश ही होने वाला है—

सचिव वैद गुरु तीनि जौ प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगि ही नास ॥

सत्परामर्श शत्रु को भी देना चाहिए । किसी ने अपमान या अहित किया हो, फिर भी उसे गिराने वाली नहीं, कल्याणकारी सलाह ही देना चाहिए । विभीषण रावण के द्वारा किये गये अपमान का ध्यान न रखकर उसे पिता समान ही कहते हैं और राम का भजन करने की सलाह देते हैं—

तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा ।
राम भजे हित नाथ तुम्हारा ॥

किन्तु जब वह अनीति मार्ग छोड़ने के लिये किसी प्रकार भी तैयार न हुआ तो फिर उन्होंने उसका मोह भी नहीं किया । अपने औचित्य की सार्वजनिक घोषणा करते हुए विभीषण ने रावण का साथ छोड़कर उचित मार्ग पकड़ लिया-

सचिव संग ले नभ पथ गयऊ ।
सबहिं सुनाय कहत अस भयऊ ॥
राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा कालवश तोरि ।
मैं रघुवीर सरन अब, जाहुँ देहु जनि खोरि ॥

नीति की स्थापना के लिए अनीति का उन्मूलन आवश्यक है । उस संघर्ष के लिए हर धर्म प्रेमी को तैयार रहना चाहिए । राम कथा में यह शिक्षा पग-पग पर भरी पड़ी है ।

जन्म वंश से कोई ऊँच नीच नहीं

हिन्दू धर्म वर्णाश्रम धर्म है । चार वर्ण है । ब्राह्मण, संसार के अज्ञान निवारण में निरत । क्षत्रिय, संसार में अनीति एवं अशक्ति के उन्मूलन में तत्पर । वैश्य, संसार में अभाव असुविधा को हटाने में प्रवृत्त । शूद्र संसार में श्रम निष्ठा से प्रगति की संभावनाएँ साकार करने में संलग्न । यह चारों ही वर्ण कर्म प्रधान हैं । जाति वंश तो उन परम्पराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी सुविधापूर्वक चलते रहने की दृष्टि से थे, उनमें नीच-ऊँच का कोई प्रश्न नहीं । एक पिता के सभी बेटे समान है । छोटा-बड़ा, सेवा, ज्ञान, एवं चरित्र के आधार पर तो हो भी सकता है । पर वंश के आधार पर किसी को नीच-ऊँच माने जाने का कोई तुक नहीं ।

मध्यकाल के अज्ञानान्धिकार युग में जाति वंश के नाम पर किन्हीं को नीच-ऊँच माने जाने की प्रथा चल पड़ी थी । संभवत: वह राम काल में भी किसी रूप में थी । राम परिवार ने सदा उसका विरोध किया और अपने व्यवहार में छोटी समझी जाने वाली जातियों को समान समझा, उनका मान बढ़ाया । जाति-पाँति जिस रूप में चल पड़ी थी उससे उन्होंने असहमति ही व्यक्त की है ।

ऐसी ही स्थिति श्रीराम जी की है । निषाद, निशाचर और वानर उनके मित्र हैं । वे उन्हें दीन हीन मानकर उन पर दया नहीं करते अपितु उन्हें मित्र मानकर प्रेम करते हैं—

सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहे सकुचि सिर नाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु बड़ाई ॥

श्री रघुबीर की यह नीति कितनी उदात्त है—

नीचहूँ सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि
परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और रामराज्य में भी जातिगत ऊँच-नीच को महत्त्व नहीं दिया जाता। राजघाट का उपयोग चारों व समान रूप से करते थे।

राजघाट सब ही विधि सुन्दर।
मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥

भगवान की तरह उनके अनुयायी भक्त भी जाति वर्ण की अपेक्षा वृत्ति और कर्म को प्रधानता देते हैं। तुलसीदासजी अपनी मान्यता स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जो राम रत हो और वह ऊँचे कुल वाला निकम्मा है जो ईश्वर परायण नहीं।

तुलसी भगति सुपथ भलो, भजे रैनि दिन राम।
ऊँचे कुल केहि काम का, जहाँ न हरि को नाम॥

भगवान राम शबरी से कहते हैं जाति-पाँति कुल वंश आदि से मुझे कोई वास्ता नहीं। बस, मुझे तो केवल एक ही नाता सुहाता है वह है भक्ति भावना का, प्रेम साधना का।

धन, बल, कुटुम्ब, कुशलता, चतुरता आदि विशेषताएँ रहते हुए भी यदि मनुष्य का अन्त:करण प्रेम भाव से भरा हुआ नहीं है तो उसे ऐसा ही नीरस निरर्थक समझना चाहिए जैसा बिना पानी का बादल।

पानी में ही कमल और जोंक दोनों पैदा होते हैं, समुद्र से अमृत तथा सुरा दोनों निकले हैं, किन्तु कुल की एकता होते हुए भी उन्हें भला बुरा कहना पड़ता है।

एक स्थान, घर, जाति, वंश में उत्पन्न होना एकता का चिह्न नहीं हैं। न इसका कारण गुण स्वभाव ही बनते हैं। एकता तो एक राहे पर चलने से होती है। कहीं भी उत्पन्न हुए श्रेष्ठ श्रेष्ठता की ओर और दुष्ट दुष्टता की ओर बढ़ते जाते हैं। इसमें प्रान्तवाद और जातिवाद की निरर्थकता सिद्ध की गई है। किसी वंश जाति में जन्म लेने के कारण कोई नीच-ऊँच कैसे हो सकता है—

उपजहिं एक संग जग माहीं।
जलज जौंक जिमि गुन विलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू।
जनक एक जल जलधि अगाधू॥

भगवान श्रीराम जाति वंश को नहीं व्यक्ति भावना और कर्म को महत्त्व देते हैं। जाति-पांति की दृष्टि से शबरी निम्न वर्ग की थी, अशिक्षित भी थी किन्तु उसके प्रीति भरे व्यक्तित्व को महत्त्व देते हुए भगवान ने उसे अपनाया। विनय पत्रिका के एक पद में वर्णन है—

अधम जाति शबरी जोषित, जड़ लोक वेद ते न्यारी।
जानि प्रीति दै दरश कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उबारी॥

भगवान स्वयं अपने श्रीमुख से इस तथ्य की पुष्टि करते हुए रामचरित मानस में शबरी से कहते हैं कि मैं साँसारिक जाति वर्ण के आधार पर नहीं आन्तरिक भावना के आधार पर भक्तों से सम्बन्ध बनाता हूँ—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुलधर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल वारिद देखिअ जैसा॥

'विनय पत्रिका' के पद १६४ में उनके इस भाव की व्याख्या करते हुए लिखा है—

प्रभु केवल प्रीति की रीति ही जानते हैं। घर में, गुरु वशिष्ठ के आश्रम में प्रिय मित्रों के यहाँ या ससुराल में जब जब जहाँ जहाँ मेहमानी हुई प्रभु ने यही कहा कि मुझे शबरी के बेरों में जैसी मिठास, और स्वाद मिला, वैसा कहीं नहीं मिला।

जानत प्रीति रीति रघुराई।
घर गुरु गृह प्रिय सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि शबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥

शबरी ही नहीं जंगलवासी कोल-किरातों को श्रीराम की यह विशेषता ज्ञात है। वन-प्रसंग में वर्णन है कि पिछड़ी जातियों के वनवासियों को जब यह मालूम हुआ कि उनके परम हितैषी राम वन आ रहे हैं तो उन्हें बहुत हर्ष हुआ और अपने विकास के सहयोग में साधन संभावनाएँ देखने लगे—

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई।
हरषे जनु नव निधि घर आई॥

अछूत कोल किरात राम को पूरा-पूरा सहयोग करते हैं और उनके वनवास प्रयोजन को सरल और सफल बनाने के लिए भाव भरी तत्परता प्रस्तुत करते हैं, और कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कीन्ह बासु भल ठाउं बिचारी ।
इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥
हम सब भाँति करब सेवकाई ।
करि केहरि अहि बाघ बराई ॥

मानस में सत्प्रवृत्तियों का रोपण एवं अभिवर्धन करने के लिए व्रतशील होते हैं । यदि वे पाखण्ड, मुफतखोरी के शिकार होकर निकृष्ट जीवन जियें, अपने लोक मंगल कर्त्तव्य से पीछे हट कर धर्माडम्बर की आड़ में स्वार्थ एवं अहंकार की पूर्ति करने, जन साधारण को भ्रांतियों में उलझाते रहे, तो यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है । रामायण ऐसे लोगों के लिए दुःख और रोष प्रकट करती है ।

ऐसे लोग शोक करने योग्य, अफसोस करने और धिक्कारने योग्य हैं जो अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करते हैं, जो करना चाहिये उसे न करके विपरीत आचरण में निरत रहते हैं—

सोचिय विप्र जो वेद विहीना ।
तजि निज धरम विषय लय लीना ॥
सोचिय नृपति जो नीति न जाना ।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥
सोचिय वैश्य कृपन धनबानू ।
जो न अतिथि शिव भक्त सुजानू ॥
सोचिय शूद्र विप्र अवमानी ।
मुखर मानप्रिय ज्ञान गुमानी ॥
सोचिय पुनि पति बंचक नारी ।
कुटिल कलह प्रिय इच्छाचारी ॥
सोचिय गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग ।
सोचिय जती प्रपंच रत, विगत बिबेक विराग ॥
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी ।
जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी ॥
सब बिधि सोचिअ पर उपकारी ।
निज तनु पोषक निरदय भारी ॥

संसार के सभी धर्मों की सुदृढ़ता का एक ही कारण है, उनकी एक निश्चित अनुशासित और सुगठित प्रक्रिया । मुसलमानों की कुरान एक, पैगम्बर एक, कलमा एक, प्रथा-प्रचलन एक । ईसाइयों की बाइबिल एक, अवतार एक, बपतिस्मा एक, परम्परा एवं मान्यताएँ एक । सारे विश्व में उनकी यह एकता कहीं भी देखी जा सकती है । यही बात यहूदी, पारसी आदि उन धर्मों की है जो बिखरने से बचे हुए हैं । हिन्दू-धर्म में पिछले एक हजार वर्ष से एक प्रकार धार्मिक अराजकता ही फैली रही है । हर चालाक और महत्वाकांक्षी और व्यक्तिवादी महन्त ने अपने नाम का एक अलग पंथ सम्प्रदाय बनाने की कुचेष्टा की है । फलस्वरूप वह व्यक्ति तो/पूजा, उसका अलग संगठन भी खड़ा हुआ, पर मूल हिन्दू धर्म के टुकड़े-टुकड़े होते चले गये । वह बिखरा, दुर्बल हुआ और आन्तरिक कलह का अखाड़ा बनता चला गया । इस वर्तमान दुर्दशा को तुलसीदास जी कलियुग असुर का प्रभाव कहते हैं—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन निज मत कल्पि कर, प्रकट किये बहु पंथ ॥

तीर्थों की आज जो दयनीय दुर्गति है उसका चित्रण करते हुए तुलसीदासजी दोहावाली में अत्यन्त दुख व्यक्त करते हैं और कहते हैं कि तीर्थ, मंदिर और उनसे सम्बन्धित पंडा-पुजारियों के परिकर की स्थिति तो आज ऐसी बनी हुई है मानों कलियुग ने अपनी सेना सहित किलेबन्दी इसी क्षेत्र में सुदृढ़ कर रखी हो—

सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाजु ।
मनहुँ मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज ॥

इसका कारण यह है कि लोग धर्म-मार्ग पर भावना से प्रेरित होकर नहीं अपनी कमजोरी छिपाने तथा मिथ्या प्रदर्शन करने जाते हैं—

नारि मुई गृह सम्पति नासी ।
मूड़ मुड़ाइ होंहि संन्यासी ॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा ।
जाइ न बरनि अनीति अपारा ॥

मनोभूमि दृढ़ बने बिना वेष बना लेना अनिष्टकारक होता है । कच्चे घड़े में पानी भर देने से वह स्वयं ही गल कर नष्ट हो जायेगा और उस पानी को भी निरर्थक बना देगा । इसी प्रकार ज्ञान-वैराग्य से परिपक्व मनःस्थिति न बनने पर भी, जो लोग मुफत का निर्वाह पाने, पैर पुजाने और धर्म कर्तव्यों की कठिनाई से बचने के लिए साधु, बाबाजी का वेष बना लेते हैं, वे सब प्रकार निन्दनीय हैं ।

वे अपना और समाज का सर्वनाश ही करते हैं । यह भाव 'विनय-पत्रिका' के एक पद में इस प्रकार मिलता है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

काम क्रोध मद लोभ मोह मिल ग्यान विराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम धरों सो॥

कलियुगी साधु बाबाजियों की चांडाल चौकड़ी किस स्तर की जमा होती चली जाती है, इसकी लज्जास्पद स्थिति का वर्णन इस प्रकार है—

मिथ्यारंभ दंभरत जोई ।
ताकहँ संत कहइ सब कोई ॥
सोइ सयान जो पर धन हारी ।
जोकर दंभ सो बड़ आचारी ॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी ।
कलियुग सो ग्यानी सो विरागी ॥
जाकें नख अरु जटा विसाला ।
सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥
असुभ वेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहें ।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग माहिं ॥

परत्रिय लंपट कपट सयाने ।
मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेई अभेदवादी ज्ञानी नर ।
देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥
बहु दाम सँवारहिं धाम जती ।
विषया हरि लीन्ह न रहि बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही ।
कलि कौतुक तात न जात कही ॥
नहिं मान पुरानन वेदहिं जो ।
हरि सेवक संत सही कलि सो ॥

हर व्यक्ति को अपने पसीने की कमाई खाना ही न्यायोचित है । वे समस्त धन चोरी के है जो बिना परिश्रम के मिले हैं । दान का धन केवल अपंग अथवा पूरा समय लोकोपकार में लगाने वाले साधु ब्राह्मण ही खा सकते हैं । शेष सभी के लिए यही उचित है कि वे श्रम करें और उसी से शरीर निर्वाह करें ।

बाप दादों की छोड़ी हुई कमाई यदि हराम के माल की तरह मिली है और संतानें उसे बैठकर खाती है तो उनके लिए यह मुफतखोरी चोरी तरह ही है । कमाने में असमर्थ छोटे बच्चों एवं महिलाओं को तो उत्तराधिकार में मिले धन पर निर्वाह करना उचित भी है, पर जो सन्तानें स्वावलम्बी हो चुकी है, उन्हें पूर्वजों के छोड़े धन का उपयोग नहीं करना चाहिए । जो उन्हें मिला हो उसे सत्कर्मो के लिए दान कर देना चाहिए । उसमें स्वर्गीय आत्माओं को भी शान्ति, सद्गति मिलती है और समाज में स्वस्थ परम्परा भी पैदा होती है । श्राद्ध परम्परा इसी प्रयोजन के लिए हैं कि उत्तराधिकार में मिला धन स्वावलम्बी सन्तानें स्वयं उपयोग न करके उसे सार्वजनिक उपयोग के लिए देदें । इस श्राद्ध समारोह में अपनी शुभ कामना व्यक्त करने और प्रेरणा लेने के लिए स्वजन, सम्बन्धी पड़ोसी भी एकत्रित होते होंगे । आज उसकी भोंडी नकल मृतक भोजों के रूप में पीटी जाती है, पर उस मूल उद्देश्य को भुला दिया गया है जिसमें उस बचे हुए धन को सत्कार्यों के लिए परखे हुए सत्पात्रों के हाथ सौंपा जाता था । भरत ने अपने पिता का श्राद्ध उसी प्राचीन परिपाटी के अनुसार किया था ।

राजा दशरथ के देहावसान के बाद भरतजी उनकी अन्त्येष्ठि तथा श्राद्ध करते हैं । उसमें सत्कार्यों के लिए भरपूर दान का उल्लेख तो मिलता है, पर मृतकभोज वे भी नहीं करते-

भये बिसुद्ध दिए सब दाना ।
धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥

मानस में फलित ज्योतिष के प्रपंच को भी महत्त्व नहीं दिया गया है । राज लक्षण की आकृति और अंग देखकर रास्ता चलते पथिक कहते हैं कि ज्योतिष विद्या झूँठी है । जो लक्षण सुख भोगने वालों के ज्योतिषियों ने बताये हैं वे सब उनमें मौजूद है, फिर भी वह लोग इतने कष्ठ साध्य परिस्थितियों में निर्वाह कर रहे हैं ।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता ।
कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लखन सब अंग तुम्हारे ।
देखि सोचु अति हृदय हमारे ॥
मारग चलहु पयादेहि पाएँ ।
ज्योतिषु झूँठ हमारे भाएँ ॥

विवाह में भी वर-वधू की अनुकूलता ही देखनी चाहिए । कुण्डली मिलाने ग्रह दिशा आदि देखने की भ्रान्ति में नहीं पड़ना चाहिये । सीता राम का विवाह कुण्डली के आधार पर नहीं सीता स्वयम्बर के आधार पर हुआ था । अन्य भाइयों के विवाह भी वरवधू की अनुकूलता देखकर किये गये थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी भाई युवावस्था में पदार्पण कर चुके तब उनके विवाह किये गये । लोकोक्ति है कि—

बरस अठारह की सिया, सत्ताइस के राम ॥

अनुरूप वर मिलने पर ही कन्या का विवाह करना चाहिए । अन्यथा अयोग्य वर के साथ उसे बांध देने और पीछे सदा के लिए पश्चाताप करते रहने से क्या लाभ । ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की अपेक्षा तो सुयोग्य जोड़ा मिलने के अभाव में कन्या राज कुमारी रहना ही अधिक उचित है । दहेज के लोभ ने आजकल अनमेल विवाहों की विवशता उत्पन्न करदी है । यह सब प्रकार निन्दनीय है ।

विवाह में वरवधू की अनुकूलता को प्रधानता देने का प्रसंग पार्वती विवाह प्रकरण में भी स्पष्टत: मिलता है । देवी मैना अपने पति हिमाचल से कहती हैं—

जो घरु वरु कुल होई अनूपा ।
करिय विवाह सुता अनुरूपा ॥
न तु कन्या वरु रहउ कुँवारी ।
कन्त उमा मम प्रान पियारी ॥
सोइ बिचारि पति करेउ विवाहू ।
जेहि न बहोरि होइ उर दाहू ॥

परम्परा और शास्त्रों की आड़ में होने वाली धर्म क्षेत्र की अनीति को समाप्त करना आवश्यक है । मानस से प्रेरणा लेकर मनस्वी मनोबल सम्पन्न पुरुषों को इस कार्य के लिये आगे आना चाहिये ।

रामकथा का उद्देश्य और उपयोग

तुलसीदास जी अपने समय के असाधारण क्राँतिकारी थे । उन्होंने तत्कालीन अवाँछनीय परम्परा पर साहसपूर्वक कुल्हाड़ा चलाया । धर्म के नाम पर उन दिनों इतनी ही मान्यता थी कि राम का जप करने से, तीर्थ स्नान से, नामधारी साधु ब्राह्मणों को धुन लुटाने से, कर्मकाण्डों की छुटपुट टंटघंट से धर्मोद्देश्य की पूर्ति हो जायगी और स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, प्रभुप्राप्ति, आदि के पुण्य परिणाम वे सहज ही प्राप्त कर लेंगे । इसी धर्म विडम्बना के सहारे वे आजीवन किये दुष्कर्मों के पाप-दंड से, ईश्वरीय कोप से बच जायेंगे । उन दिनों भाग्यवाद, पलायनवाद का बोलवाला था । गुण कर्म स्वभाव को परिष्कृत बनाने की कोई उपयोगिता नहीं समझी जाती थी । धर्म के नाम पर पाखण्ड और गुरुडम का बोलवाला था । जनता उसी भ्रम जंजाल में उलझी हुई असंख्य प्रकार विपत्तियों में धँसती चली जा रही थी ।

देश बुरी तरह पराधीनता के पाश में जकड़ा हुआ पाशविक अत्याचारों का शिकार बना हुआ था । लोग अपना पौरुष, मनोबल, स्वास्थ्य और चरित्र खो चुके थे । शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक हर क्षेत्र में अनाचार का बोलबाला था, समाज बिखर और टूट रहा था । उसकी जीवित लाश को स्वार्थी तत्व नोंच-नोंच कर खा रहे थे । ऐसी दशा में उन्होंने रामकथा को अवलम्बन बनाया और उसके सहारे उन सभी प्रेरणाओं को प्रस्तुत किया जो पतन और पिछड़ेपन से उवार कर मानवोचित स्थिति तक पहुँचाने में समर्थ हो सकती थी ।

उनका यह प्रयास देखने में धर्म-चर्चा भर लगता था पर उसके अन्तराल में जो क्रान्तिकारी तत्व भरे पड़े थे वे देर तक छिपे न रह सके । लोगों ने उस चिनगारी को देखा जो रामकथा के साथ-साथ जल रहीं है । वह राम भक्ति के प्रचार के साथ-साथ दावानल का रूप धारण कर सकती थी । इस तथ्य को देखकर निहित स्वार्थ चौकन्ने ही नहीं हुए उन्होंने तुलसीदास जी को तरह-तरह से लाँछित और अपमानित करना आरम्भ कर दिया और उनकी जान के ग्राहक बने गये ।

अपनी इस विषम स्थिति की चर्चा तुलसीदास जी ने अपनी पुस्तकों में की है । साथ ही अपने अविचल धैर्य एवं साहस का परिचय देते हुए यह भी लिखा है कि वे इन सारे आक्रमणों को प्रसन्नतापूर्वक सहने के लिए तैयार है, उन्हें किसी उपहास अपमान या आक्रमण की चिन्ता नहीं । वे इन सभी संकटों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करेंगे ।

रामायण जिन दिनों लिखी गई थी, जिस उद्देश्य से लिखी गई थी प्रकारान्तर से आज भी वे परिस्थितियाँ थोड़े हेर-फेर के साथ मौजूद हैं । अस्तु उस प्रयास की उपयोगिता अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई है । जनता का पिछड़ापन-निहित स्वार्थों का अनाचार अभी भी कम नहीं । अस्तु रामायण कथा की आवश्यकता, उपयोगिता अभी भी ज्यों की त्यों है । उसमें सामयिक समाधान तो हमें मिलते ही है । साथ ही सनातन, शास्वत मानव धर्म का वास्तविक स्वरूप भी जिस कुशलता के साथ गुथा हुआ है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । उसका प्रतिपादन मानवी गरिमा को ऊँचा उठाने और विश्व-कल्याण का लक्ष्य पूरा करने में उज्ज्वल भविष्य के अभिनव सृजन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम कथा के गतिशील तत्वों का प्रकाश जब जन मानस को हृदयंगम कराया जायगा तो उन कथाकारों को आज भी निन्दा, विरोध, उपहास एवं आक्रमण का भाजन बनना पड़ेगा। इसके लिए उन्हें तुलसीदास जी की तरह ही धैर्यवान और साहसी बनना चाहिए।

सामान्य रूप से लोग संत तुलसी के उद्देश्य को न समझकर कहते हैं कि उन्होंने तो कथा स्वान्तः सुखाय लिखी थी। वन्दना प्रसंग में उन्होंने लिखा भी है।

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा।
भाषानिबद्ध मति मंजुलमातनोति॥

स्वान्तः सुखाय का अर्थ हम संसारी अपने ढंग का लगा लेते हैं कि उन्होंने अपने सुख के लिये कथा लिखी। किन्तु संत की परिभाषा स्वान्तः सुखाय की दूसरी है। तुलसीदास जी के ही शब्दों में—

पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।

संत तुलसी द्वारा मानस की रचना इसी स्तर के स्वान्तः सुखाय हेतु लिखी गयी है। उन्होंने देखा कि जिन दोषों के कारण समाज दुःखी है, उनका निवारण मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र के आधार पर हो सकता है। अतः उन्होंने मानस रचा और घोषणा की कि वे यशादि की लालसा से ऐसा नहीं कर रहे हैं। इसके प्रभाव से लोगों के दुःख संताप दूर होंगे इससे उन्हें सुख मिलेगा। यही उनका स्वान्तः सुखाय का मर्म है। इसकी पुष्टि कवितावली में भी उनके ही शब्दों से होती है—

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी॥
... ...
दारिद दसानन दबाई दुनी दीन बंधु।
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥

गोस्वामीजी के समक्ष भी देश दरिद्रता के दशानन से संत्रस्त हो रहा था। उन्हें लगा कि अभाव जन्य दरिद्रता तो समय पाकर मिट जायगी, किन्तु आंतरिक दरिद्रता से पीड़ित समाज तो पूरी तरह समाप्त जाएगा। समाज की इस स्थिति को देखकर उनका हृदय हाहाकार कर उठा।

विमल कथा कर कीन्ह अरंभा।
सुनत नसाहिं काम मद दंभा॥

दीनता, दरिद्रता, रुग्णता, पराधीनता आदि असंख्य संकटों का एक मात्र लोकमानस का अज्ञान और पाप पंक में डूब जाना है। तुलसी दास जी ने अपनी सारी शक्ति, सामर्थ इसी प्रयोजन के लिए झोंक दी। उन्होंने लोगों को सम्पन्न बनाने की अपनी असमर्थता स्वीकार करते हुए यह घोषणा की कि वे समस्त दुःखों के मूल पर कुठारघात करने वाली धर्म धारणा को परिष्कृत करेंगे।

संस्कृत भाषा को ही धर्म-चर्चा का माध्यम बना रहने दिया जाय यह आवश्यक नहीं। किसी समय संस्कृत सर्वसाधारण की लोक-भाषा थी, तब उसी में शास्त्र रचे गये। अब जब कि वह स्थिति नहीं रही तो लोकभाषाओं में धर्म-चर्चा होनी चाहिए। इसी युग-आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तुलसी दास जी ने राम कथा को सामयिक भाषा में प्रस्तुत किया। स्वान्तः सुखाय के साथ 'भाषा निबध' करने का उल्लेख कथा को लोकोपयोगी बनाने की उनकी भावना का ही प्रतीक है। अन्यथा संस्कृत में कथा की परिपाटी तोड़ कर तत्कालीन पंडित वर्ग का भयंकर विरोध मोल लेने की उन्हें क्या आवश्यकता थी, दोहावली में वे लिखते हैं—

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आव कामरी, का लै करिअ कुमाच॥

अपनी इस भावना की पुष्टि उन्होंने मानस के 'बन्दना प्रसंग' में भी की है। तुलसीदास जी ने अपने लिए लोकमानस के परिष्कार करने को सर्वश्रेष्ठ एवं चिरस्थायी सेवा-कार्य सत्साहित्य का निर्माण चुना और आजीवन उसी कार्य को भगवान की अति महत्त्वपूर्ण उपासना मानकर लगे रहे। किन्तु उनका स्पष्ट मत है कि साहित्य ऐसा सरल रोचक और श्रेष्ठ प्रेरणाप्रद होना चाहिये कि एक बार शत्रु भी शत्रुता भूलकर उसका वर्णन करने लगे। उन्होंने लिखा है—

सरल कवित्त कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान॥

ऐसे सत्साहित्य की रचना सदुद्देश्यपूर्ण निर्मल मति वाले व्यक्तित्व ही कर सकते हैं। इस बहुमूल्य सृजन का उत्तरदायित्व तत्वदर्शी महामानवों के हाथ में ही होना चाहिए। दुष्ट लोग तो माता सरस्वती को भी कुलटा वेश्या बना कर रख देते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो न होइ बिनु बिमल मति, मोहि मति बल अति थोर ।
करहु कृपा हरि जस कहउँ, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥

संत तुलसीदास साहित्य रचना को सरस्वती की श्रेष्ठ आराधना मानते हैं । साहित्य सत्परिणाम उत्पन्न कर सके ऐसी कृपा उन्होंने बार-बार माँगी है । जो लोग साहित्य की गरिमा नहीं समझकर साहित्यिक क्षमता का दुरुपयोग करते हैं उन्होंने उनकों धिक्कारा भी है । कहा है कि ऐसे कवियों को देख कर माँ सरस्वती को दु:खा होता है–

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना ।
सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥

वे अपनी रामकथा को कथोपकथन से विस्तार देते हैं और चाहते हैं कि वह गंगा की तरह सारे संसार को पवित्र करने वाली सिद्ध हो–

पूछेहु रघुपति कथा प्रसंगा ।
सकल लोक जग पावनि गंगा ॥

वे मानते हैं कि भगवान राम के गुण-समूह, कुमार्ग, कुतर्क, कुचाल, कपट, दम्भ व पाखंड को जलाने के लिए प्रचंड ईंधन के समान हैं । अत: उन्हीं गुणों को कथा के माध्यम से वे जनता तक पहुँचाने के लिए पूरी तन्मयता से लग गये–

कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दम्भ पाखण्ड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचण्ड ॥

'वन्दना प्रसंग' में मानसकार अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं । कथा ऐसी हो जो मन के संदेह, मोह, भ्रम का नाश करके मानव शरीर धारण करने को सार्थक करने वाली हो । सब लोगों के मन को प्रसन्न करने वाली, बुद्धिमानों को आनंद देने वाली एक राम कथा है, जो कलियुग के कषाय कल्मषों को काट फेंकती है–

निज सन्देह मोह भ्रम हरनी ।
करउँ कथा भव सरिता तरनी ॥
बुध विश्राम सकल जनरंजनि ।
रामकथा कलि कलुष विभंजनि ॥

रामचरित मानस ऐसे ही महान लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिखा गया है । स्वयं तुलसीदास जी ने इसका उद्देश्य स्पष्ट किया है–

जस मानस जेहिविधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु ।
अब सो कहउँ प्रसंग सब, सुमिर उमा वृष केतु ॥

केवल अपने सुख 'स्वान्त: सुखाय' लिखी गयी कथा को जग में प्रचारित करने की आवश्कता नहीं । उसका सार्वजनिक उद्देश्य है । उस संदर्भ में लिखा है–

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी ।
रामचरित मानस कवि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी ।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

भगवान शिव की प्रसन्नता अथवा कल्याणकारी भावना के फलस्वरूप अन्दर से सुमति जागी (सुमति जन कल्याण के लिये प्रेरणा देने वाली वुद्धि ही कही जाती है) उससे प्रेरित होकर मानस की रचना हुई । कवि ने अपनी बुद्धि के अनुसार उसे सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

सुजन सुचित सुनिलेहु सुधारी के दो अर्थ होते हैं । (१) इस प्रस्तुतीकरण में लेखक से यदि दोष रह गये हैं तो उन्हें सज्जन सुधार लें । (२) इस चरित्र को पढ़कर सुनकर सज्जन व्यक्ति अपने अन्त:करणों को शुद्ध और श्रेष्ठ बनायें । दोनों ही अर्थों में कवि की यह भावना झलकती है कि लोग इससे सद् प्रेरणा पाकर सद्गति पायें ।

वह चाहते हैं कि चित्र रूपी चित्रकूट में रामकथा मंदाकिनी की तरह बहें, श्रेष्ठ स्नेह रूपी बन में श्री सीता राम जी विहार करें । अर्थात् राम चरित्र कानों में नहीं चित्त में भी स्थान बनावे और भगवान का स्मरण स्वार्थवश नहीं प्रेम भाव से किया जाय, तभी उसकी सार्थकता है–

राम कथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह वन सिय रघुवीर विहारु ॥

यही भाव दूसरे शब्दों में प्रस्तुत है–

राम चरित चिंता मनि चारू ।
सन्त सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥

सद्बुद्धि का श्रृंगार रामचरित्र से किया जाना चाहिये-अर्थात् रामचरित्र केवल सुनने के लिये नहीं बुद्धि में इसी कारण शिवजी ने मोह निवारण के लिये गरुड़ को काकभुशुण्डि के पास भेजा था । वहाँ अपने अनुरूप कथा का श्रवण करके उनके संदेह का निवारण हुआ–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कथा समस्त भुसुण्ड बखानी ।
जो मैं तुम्ह सन कही भवानी ॥
सुनि सब राम कथा खगनाहा ।
कहत बचन मन परम उछाहा ॥
गयउ मोर संदेह सुनेउ सकल रघुपति चरित ।
भयउ रामपद नेह तब प्रसाद बायसतिलक ॥

क्योंकि शास्त्र तो समुद्र है, उनमें से अमृत अर्थात् उपयोगी हितकारी तत्व सन्त ही उभार सकते हैं । मानसकार का मत है, ब्रह्मरूपी समुद्र को, ज्ञानरूपी मन्दराचल के द्वारा सन्तरूपी देवता मथकर कथारूपी अमृत निकालते हैं, जिससे भक्ति रूपी मधुरता प्राप्त होती है ।

ब्रह्म पयोनिधि मन्दर, ग्यान संत सुर आहिं ।
कथा सुधा मथि काढ़हिं, भगति मधुरता जाहिं ॥

शंकर भगवान का मन जब सती वियोग में खिन्न रहने लगा तो वे हंस का रूप बनाकर काकभुशुण्डि से रामकथा सुनने के लिए चले गये । उससे उन्हें शान्ति मिली ।

सुनने वाले की मन:स्थिति नीरक्षीर विवेक कर सकने की, मोती चुगने या लंघन करने की हंस जैसी होनी चाहिए । उसे सामान्य लोगों की लोभ मोह वाली नीची धरती से ऊँचे कैलाश शिखर पर अपने चिन्तन को ले जाकर इस अमृत का पान करना चाहिए । विनोद या कौतूहल से कथा सुनने से उसका अभीष्ट लाभ कहाँ मिलता है—

तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास ।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलास ॥

राम कथा को कहने— समझने के लिए कोमल भावना एवं सचेत मन:स्थिति की आवश्यकता है । अन्यथा केवल कहानी कहने-सुनने, पढ़ते पाठ करते रहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा । जो राम के चरण-चिह्नों पर चलने का साहस, अनुराग धारण करेंगे वे ही दुष्कर्मों की मलीनता से बचकर सत्पथगामी बनेंगे और मंगल लाभ करेंगे-

जे एहि कथहिं सनेह समेता ।
कहहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥
होइहहिं रामचरन अनुरागी ।
कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥

राम चरित्र को समय विषेश पर सुन लेना ही पर्याप्त नहीं । उसमें उनका बार-बार स्मरण किया जाना चाहिए, सुना जाना चाहिए, गाया कहा जाना चाहिए, राम ही चरित्र का मेरुदंड है, राम के गुण समूह को समझना, हृदयंगम करना और व्यावहारिक जीवन में समावेश करना—

रामहि सुमिरिय गाइय रामहिं ।
सन्तत सुनिय राम गुन ग्रामहिं ॥

रामायण पढ़ने का, रामकथा सुनने का निष्कर्ष यह होना चाहिए कि लोग राम की तरह श्रेष्ठ आचरण करें, रावण की तरह अनाचारी न बनें । ''योगवासिष्ठ'' में कहा हैं—

रामवद् व्यवहर्तव्यं न रावण विलासवत् ।

रामचरित्र की ऐतिहासिक पुष्टि पर लोगों को संदेह है । धारण करने के लिये हैं । हीन चरित्रों का स्मरण न करके श्रेष्ठ चरित्रों का चिंतन करने से मनुष्य वैसा ही बनता जाता है । इसीलिये वे यह नहीं चाहते कि यह कथा अन्धानुकरण के रूप में अविवेक पूर्वक प्रचारित की जाय । वे लिखते हैं—

जे गावहिं यह चरित संभारे ।
तेई एहि ताल चतुर रखबारे ॥

इस चौपाई की प्रथम अर्द्धाली में रामचरित मानस रूपी तालाब के चतुर रक्षकों की मर्यादा बताई है । इसके दो अर्थ निकलते हैं (१) जो इस चरित्र को संभाल कर गाते हैं अर्थात् पात्र और परिस्थिति के अनुकूल बनाकर गाते हैं (२) जो अपना चरित्र संभालकर इसे गाते हैं वे इसके चतुर रखवाले हैं—

रक्षक का काम सरोवर को विकृत होने से रोकना है । पात्र और परिस्थितियों के अनुरूप संभालकर न गाये जाने से वह अव्यावहारिक हो जायेगा अथवा गाने वाले का स्वयं का चरित्र ठीक न होगा तो इस सर की प्रतिष्ठा घटेगी । अत: 'चरित संभारे' दोनों अर्थों में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हैं । अर्थात् मानसकार चाहता है कि इस सर की प्रतिष्ठा बनी रहे और लोग इसका लाभ उठायें । आगे इस सर के लाभ बताते हुए कहा है—

काम क्रोध मद मोह नसावन ।
विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सादर मज्जन पान किये ते ।
मिटहि ताप परिताप हिये ते ॥

मानसकार चाहते हैं कि इससे लोगों के काम क्रोधादि अपना दोष धुल जायें और दुःख कष्ट समाप्त हो जावें । इसके लिए सादर मज्जन पान की बात कही है, अर्थात् उसमें सराबोर हों और उसे धारण करें । यह मानसिक धुलाई साहस का काम है–

जिन्ह एहि वारि न मानस धोये ।
ते कायर कलि काल बिगोये ॥

अपनी धुलाई का साहस न कर सकने वाले कायर हैं और कलि के प्रभाव में फँस जाते हैं । इसमें स्पष्ट आग्रह है कि लोग इसे केवल सुनें नहीं, इसका लाभ भी उठावें ।

वेद और पुराण समुद्र की तरह हैं, संत मेघ बनकर रामकथा रूप जल की वर्षा करते हैं । जिनमें सुमति को पृथ्वी और विशाल हृदय को गहराई विद्यमान है, वह इसका सही लाभ उठा सकते हैं ।

सुमति भूमि भल हृदय अगाधू ।
वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी ।
मधुर मनोहर मंगलकारी ॥

कथा विचारवान श्रेष्ठ व्यक्तिओं से, सन्तों से, सुननी चाहिये क्योंकि वे ही उसे सही ढंग से प्रस्तुत कर सकते हैं । तभी कथा भगवान के प्रति प्रेम पैदा करने वाली सिद्ध होगी–

बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग ॥

उस कथा के भिन्न-भिन्न आधार ग्रन्थों में उपलब्ध घटनाक्रमों में इतना अधिक अन्तर एवं मतभेद है कि विवेचना पर उतरने वाले की बुद्धि थक जाती है । इतने पर भी उसका आध्यात्मिक महत्त्व असंदिग्ध रूप प्रामाणिक एवं उपयोगी है । तुलसीदास जी ने अपनी विनयपत्रिका में रामचरित्र को आध्यात्मिक समस्याओं के समाधान का एक स्वरूप भी माना है । उसमें आस्तिकता, आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता का समुचित समावेश है–

विनयपत्रिका के पद में तुलसीदास जी ने राम रावण-युद्ध को मनुष्य के अन्तःकरण का सत्-असत् प्रवृत्तियों का संघर्ष सिद्ध किया है । पद यह है–

देव देहि अबलम्ब कर कमल कमला रमन ,
दमन दुःखशमन संताप मारी ।

इस पद का भावार्थ है, शरीर रूपी ब्रह्माण्ड में प्रवृत्ति ही लंका का किला है । मनरूपी मय दानव ने इसे बनाया है । इसके पाँच कोश ही महल हैं । तीनों गुण सेनापति हैं । देहाभिमान समुद्र है, मोह रावण, अहंकार कुंभकरण, काम मेघनाद तथा अन्य दुर्गुण राक्षस हैं । इन राक्षसों के साथ इन्द्रिय रूपी राक्षसियाँ भी हैं । जीव विभीषण है जो इन राक्षसों के राज्य में भयभीत होकर निवास कर रहा है । ज्ञान दशरथ, भक्ति कौशिल्या के द्वारा राम अवतार लेते हैं । व्यावहारिक ज्ञान सुग्रीव समुद्र में पुल बाँधने में सहायता करते हैं, वैराग्य हनुमान लंका को जला देते हैं । तथा राम-रावण युद्ध में राक्षसों का नाश होने पर जीव विभीषण राजा बनता है । इस प्रकार राम के हृदय में अवतार लेने पर दुर्गुण का समूल नाश होकर सद्गुणों का साम्राज्य स्थापित होता है ।

तुलसी के मतानुसार रामकथा को-राम भक्ति को लोक हितकारी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए । उपासना और धर्म चर्चा का एक मात्र प्रयोजन अज्ञान एवं अनाचार का निवारण करना है । लोगों ने उसे भुला दिया और धर्मध्वजी बनने का ढोंग करने के लिए अथवा लोक परलोक की विविध विधि सम्पदायें प्राप्त करने के लिये उस पुण्य प्रसंग का उपयोग करने लगे । इस पुण्य प्रक्रिया का उपयोग जब पेट भरने के लिए किया जाने लगा तो उसकी गरिमा एक प्रकार से नष्ट हो गई–

दंभ, लोभ, लालच उपासना विनाश नीके ।
सुगति साधन भई उदर भरनि ॥

इस प्रकार ढोंगियों की भर्त्सना करने पर वे लोग उनका उपहास करने लगे । किन्तु विवेकवन व्यक्ति मूर्खों द्वारा उपहास उड़ाये जाने की चिन्ता नहीं करते । सुधारकों को सदा ही प्रतिगामी लोगों की गालियाँ खानी पड़ी हैं । सन्निपात-ग्रस्तरुग्ण पागल व्यक्ति अपने हितैषियों एवं चिकित्सकों को भी गाली देते हैं, पर उनके प्रलाप की उपेक्षा करते हुए वे शुभ चिन्तक उनके हित साधन का प्रयत्न करने में ही लगे रहते हैं । ऐसे प्रसंगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में विवेकावान नहीं होते वरन् अपने धैर्य एवं विवेक की परिपक्वता से अपना हित साधन ही अनुभव करते हैं–

खल परिहास होइ हित मोरा ।
काक कहहिं कल कंठ कठोरा ॥
हंसहि वक दादुर चातक ही ।
हँसहि मलिन खल विमल बतकही ॥

विरोधी लोग उन्हें ब्राह्मणेत्तर जाति में जन्मा कह कर लोगों में आश्रद्धा उत्पन्न करते थे । जनता में उन दिनों पिछड़ापन इस सीमा तक फैला हुआ था कि वे ब्राह्मण कुल में जन्मे लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी जाति में जन्मे लोगों को धर्म चर्चा का अधिकारी एवं पूजनीय नहीं मानते थे । उन दिनों ब्राह्मण ऊँच तथा और सब लोग नीच थे । अस्तु विरोधियों ने जनता में यह भ्रम फैलाया था कि वे ब्राह्मण नहीं हैं, जबकि वे वस्तुत: सनाढ्य ब्राह्मणों के उच्च समझे जाने वाले वंश में जन्मे थे । तुलसी दास जी ने साहसपूर्वक यही कहा कि किसी वंश होने से मेरी स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता । जिस काम को करना है उसे करूँगा, मुझे किसी की जाति से कुछ लेना देना नहीं है । विनय पत्रिका के पद ७६ में उन्होंने लिखा है कि मैं तो भगवान की प्रसन्नता को ही ध्यान में रखता हूँ, दुनियाँ उससे नाराज होकर कुछ भी कहे इसकी चिन्ता नहीं-

लोग कहें पोच, सो न सोच न संकोच मेरे ,
ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं ।
तुलसी अकाज-काज रामही के रीझे-खीझे ,
प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ।

कवितावली में भी उन्होंने लिखा है–

साधु कै, असाधु कै, भलौ कै पोच सोच कहा ,
का काहु के द्वार परौ जो हौं सो हौं रामु को ।

वे सबकी भली बुरी टिप्पणियों को निर्लिप्त भाव से सुनते रहे । न भले से राग न बुरे से रोष । वे अपने कर्तव्य में लगे रहे किसी प्रकार की ऊब खीझ या झुंझलाहट उन्हें नहीं आयी । यह भाव उन्होंने एक पद में व्यक्त किया है–

कोउ कहै करन कुसाज दगावाज बड़ो ,
कोउ कहै राम को गुलाम खरो खूब है ।
साधु जानै महासाधु, खल जानै महाखल ,
बानी झूठी साँची कोटि उठत हबूब है ।
चाहत न काहू सौं, न कहत काहू को कछु ,
सबकी सहत उर अन्तर न ऊब है ।

इस प्रकार तुलसीदास आदर्श और सिद्धान्त के प्रति दृढ़ता बनाये रखकर अपने लक्ष्य की ओर बराबर बढ़ते गये । यही सलाह उन्होंने अन्य जिज्ञासुओं को दी । मीराबाई ने भी उनसे इस संदर्भ में मार्गदर्शन माँगा था ।

मीरा जब अपने घर के लोगों की ताड़नाओं के कारण परेशान हो गईं तो उसने तुलसी को पत्र लिखा–

स्वति श्री तुलसी गुण-भूषण दूषन-हरण गुसाईं ।
बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब, हरहु शोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोहिं, देत कलेस महाई ॥
मेरे मात पिता के सम हो, हरि भगवत सुखदाई ।
हमहू कहा उचित करवो हैं, सो लिखियो समझाई ॥

उत्तर भी तुलसी दास जी ने पद्य में ही दिया और कहा-आदर्शों के लिए सब कुछ छोड़ा जा सकता है, घर परिवार एवं परम्पराओं का प्रचलित प्रवाह भी । जिससे आदर्श की दिशा में प्रेरणा मिले वही सबसे पूज्य और प्यारा मानने योग्य है–

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण, बन्धु भरत महतारी।
गुरु बलि तज्यो कन्त ब्रज वनितन, भे सब मंगलकारी॥
नाते नेह राम को मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहिं फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम पद एतो मतों हमारो ॥

इस प्रकार संत तुलसीदास जी ने रामकथा-रामचरित्र को लोकोपयोगी बनाने के लिए साहस और विवेकपूर्ण निर्णय लिये और उनका निर्वाह भी किया । उनकी इस पुण्य आकाँक्षा तथा इस दिशा में किये गये श्रम को सार्थक बनाने के लिए उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले हर व्यक्ति को यथासाध्य प्रयास करना उचित है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम नाम परायण ही नहीं गुण-परायण भी बनें

मनुष्य जन्म की सार्थकता तथा श्रेष्ठ समाज की रचना के लिये जनजीवन में गुणों का समावेश होना आवश्यक है। मनुष्य का बुद्धि-भ्रम उसे गुणों का संग्रह नहीं करने देता, अन्यथा मानव प्रकृति के साथ गुणों का समावेश स्वाभाविक ही है। इस भ्रान्ति के कारण मनुष्य गुणों का लाभ, उनका फल तो चाहता है, परन्तु गुणों का विकास अपने जीवन में करने की मुख्यशर्त की उपेक्षा कर जाता है। यही भूल उसके जीवन की विडम्बना का कारण बन जाती है। जो व्यक्ति और समाज गुणों के विकास और व्यवहार को महत्त्व देते हैं वे सब प्रकार सुख सम्पत्ति से युक्त देखे जाते हैं।

जीवन में गुणों के विकास के अनेक मार्ग शास्त्रों और विद्वानों द्वारा सुझाये जाते रहे हैं। उन मार्गों में श्रेष्ठ-गुण सम्पन्न महामानवों के जीवन का अध्ययन तथा उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करना भी एक अति महत्त्वपूर्ण मार्ग है। इस प्रकिया को समय और परिस्थिति भेद से सत्संग, कथा, मनन, चिन्तन, स्वाध्याय आदि भी कहा जाता है। ईश्वर स्वयं सद्गुणों का पुंज है। अस्तु ईश्वरोपासना भी गुण संवर्धन का एक अनूठा और अति प्रभावशाली मार्ग है।

रामचरित्रमानस द्वारा संत तुलसीदास जी ने भी मनुष्यों को प्रेरणा देने का बड़ा सुन्दर और प्रभावशाली प्रयास किया। उनके सभी पात्र गुणागार हैं। सामान्य व्यक्ति गुणों को सिद्धान्तों के रूप में सुगमता से याद रख लेता है। इसीलिए उन्होंने रामकथा के घटनाक्रम और उसके पात्रों को आदर्श गुणों से युक्त बनाकर जनभाषा में समाज के समाने प्रस्तुत कर दिया। उनका उद्देश्य श्रेष्ठ आदर्शों का ही लोक प्रेरणा के लिये प्रस्तुत करने का था। किन्तु मानवीय दुर्बलता जन्य कुछ दोष उसमें आ भी गये हों तो वे चाहते हैं कि बस तथ्य को ध्यान में रखकर लोग केवल श्रेष्ठ गुण ही ग्रहण करें। उनका मत यह है, श्रेष्ठजनों में गुणों के चयन की क्षमता होनी चाहिए—

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार ॥

गुण ग्राहकता के वे प्रबल समर्थक हैं। भक्ति मार्ग में बहुधा लोग बिना शुभाशुभ सोचे चल पड़ने का आग्रह करते हैं। किन्तु मानस में भक्तों को भी गुण चयन में कुशल होना आवश्यक माना गया है। वाल्मीकि जी द्वारा भगवान के निवास स्थान बतलाने के प्रसंग में वर्णन आता है—

जस तुम्हार मानस विमल, हंसिन जीहा जासु ।
मुकता हल गुन गन चुनइ राम बसहु हिय तासु ॥

मानस का मत है कि भगवान के चरित्र में से भी उनके श्रेष्ठाचरण-यशरूपी मोतियों को चुना जाय। इसी प्रकरण में संसार से भी गुणों के ही चयन की आशा भक्त से की जाती है—

अबगुन तजि सबके गुन गहहीं ।
विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन कै जग लीका ।
घर तुम्हार तिन कर मन नीका ॥

भगवान की कथा भी गुणों को लक्ष्य करके सुनी जानी चाहिये। भगवान शंकर जी भी भगवान के गुणों की चर्चा सुनते हैं, हंस रूप से तात्पर्य श्रेष्ठताओं को चयन करने की क्षमता से ही है। राम कथा का श्रवण भी इसी ढंग से सार्थक है। स्वयं भगवान शिव इसी प्रकार का उदाहरण उपस्थित करते हैं—

सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयउँ कैलाश ॥

मानसकार ने श्री राम को भगवान माना है अथवा आदर्श मानव, यह बात विवादास्पद भी हो सकती है किन्तु मानस के राम गुणों के भण्डार हैं, गुण रूप हैं, इस तथ्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। सारे मानस में विविध भक्तों, ऋषियों, तथा देव शक्तियों ने भगवान राम की चर्चा, स्तुति आदि की है। उनमें बार-बार उन्हें गुणों के भण्डार अथवा सद्गुण रूप ही कहा गया है—

श्री ब्रह्मा जी द्वारा भगवान राम की स्तुति में यही भाव बार-बार आता है—

भव वारन दारन सिंह प्रभो ।
गुन सागर नागर नाथ विभो ॥
तन काम अनेक अनूप छवी ।
गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवी ॥
अवतार उदार अपार गुनं ।
महि भार विभंजन ज्ञान घनं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गुन ग्यान निधान अमान अजं ।
नित राम नमामि विभुं विरजं ॥

उत्तरकाण्ड में वेदों द्वारा स्तुति में भी ऐसा ही सम्बोधन भगवान राम के लिये है—

करुना यतन प्रभु सद्गुनाकर देव यह वर माँग ही ।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥

मानस के प्रारम्भ में वन्दना प्रसंग में भी श्रीराम को तथा उनकी कथा को गुण प्रधान ही कहा गया है—

राम नाम गुन चरित सुहाये ।
जनम करम अगनित श्रुति गाये ॥
जथा अनंत राम भगवाना ।
तथा कथा कीरति गुन नाना ॥

श्रेष्ठ भक्त जटायू भी दिव्य धाम जाने के पूर्व स्तुति में उनके गुण प्रेरक रूप को ही यथार्थ रूप मानते हैं—

जय राम रूप अनून निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।

श्री काकभुशुण्डि जी भी यह स्वीकार करते हैं कि श्रीराम गुणों के समुद्र हैं, उनके गुणों की थाह कोई नहीं पा सकता—

राम अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ ।
संतन्ह सन जस कछु सुनेउँ तुमहिं सुनायउँ सोइ ॥

भगवान श्रीराम का गुण रूप ही सबसे अधिक प्रभावशाली है । भक्त मित्र, शत्रु तथा सामान्य व्यक्ति, जो भी उनके गुणों के सम्पर्क में आता है उनके प्रभाव से बचने नहीं पाता । सारे रामचरित मानस में श्री राम के गुणों का जादू सभी के सिर चढ़कर बोलता है । उनके व्यवहार से वानर और रीछ भी बेतरह प्रभावित होते हैं—

बानर भालु सकल हरषाने ।
गहि प्रभु पद गुन विमल बखाने ॥

उनकी सेना के रीछ बन्दर ही नहीं, शत्रु पक्ष का जासूस शुक भी उनके गुणों की सराहना करने लगता है—

सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह ।
प्रभु गुन हृदय सराहहिं, सरनागत पर नेह ॥

युद्ध प्रकरण में जब रावण अपने भाई कुंभकर्ण को जगा कर सारा विवरण सुनाता है तो उस पर भी श्रीराम के गुणों की मोहिनी चल जाती है । रावण कुंभकरण को उस स्थिति से निकालने के लिये माँस मदिरा आदि का सहारा लेता है—

राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक ।
रावन माँगेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक ॥

भगवान श्रीराम स्वयं गुणी हैं अस्तु गुणों से ही प्रसन्न होते हैं । उन्हें किन्हीं छुट-पुट पूजा उपचारों से प्रसन्न करने की मान्यता भ्रामक है । उनकी सच्ची पूजा सद्गुणों द्वारा ही की जा सकती है । उसी से वे प्रसन्न होते हैं । इसके प्रमाण राम चरित मानस में यत्र-तंत्र सर्वत्र मिल जाते हैं—

सीता जी, अशोक वाटिका में हनुमान जी से प्रसन्न होकर उन्हें भगवान की प्रसन्नता का आशीर्वाद देती हैं । उसमें वे भगवान की अनुकूलता का मर्म बताती हुई कहती हैं कि हे पुत्र तुम्हारे अन्दर सभी सद्गुण निवास करें, इसी से प्रभु की अनुकूलता तुम्हें सदा मिल सकेगी—

सुनु सुत सद्गुन सकल तब, हृदय बसहु हनुमंत ।
सानुकूल कौशलपति रहहुँ समेत अनंत ॥

शिवजी भी पार्वती जी को मर्म बताते हुए इसी का समर्थन करते हैं । वे कहते हैं कि भगवान के गुण बड़े गूढ़ हैं । जो उन्हें समझ लेता है वह मुक्ति पा जाता है और जो प्रभु विमुख हैं, वे मोहग्रस्त हो जाते हैं—

उमा राम गुन गूढ़, पंडित मुनि पावहिं विरति ।
पावहिं मोह विमूढ़ जे हरि विमुख न धर्म रति ॥

भगवान स्वयं अपनी रुचि अरण्यकाण्ड में श्री लक्ष्मणजी से बतलाते हैं । वे कहते हैं कि जो प्रेम पूर्वक मेरे गुणों का गायन चर्चा करता है ऐसे व्यक्ति के मैं वशीभूत रहता हूँ—

मम गुन गावत पुलक सरीरा ।
गदगद गिरा नयन वह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाके ।
तात निरंतर बस मैं ताके ॥

देवता गण भरतलाल जी के वश में भगवान को मानते हैं और उसका श्रेय उनके गुणों को ही देते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हियँ सप्रेम सुमिरहु सब भरतहिं ।
निज गुन शील राम बस करतहिं ॥

भगवान संतों के वश में रहने का कारण उनके गुणों को ही बताते हैं–

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ ।
जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ ॥

सीता जी का हरण होने पर वे सबसे पहले उनके गुणों का ही स्मरण करके दु:खी होते हैं–

हा गुन खानि जानकी सीता ।
रूप शील ब्रत नेम पुनीता ॥

गुणी व्यक्ति किसी भी वेष अथवा वंश का हो वह भगवान को प्रिय है । राक्षस होते हुए भी विभीषण को वे इसी कारण प्रिय मानते हैं–

सुन लंकेश सकल गुन तोरे ।
ताते तुम अतिशय प्रिय मोरे ॥

भगवान की स्पष्ट घोषणा है कि गुणवान सज्जन उन्हें प्राणों के समान प्रिय है । उत्तर काण्ड में भरतजी को संतों के लक्षण समझाते हुए वे कहते हैं–

विषय अलंपट शील गुनाकर ।
पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
निंन्दा अस्तुत उभय सम, समता मम पद कंज ।
ते सज्जन मम प्रान सम, गुन मन्दिर सुख पुंज ॥

वे किसी को दण्ड देते हैं तो उसे दुर्गुणों के कारण ही देते हैं । उनकी इस मर्यादा को जानने के कारण बालि श्री राम का वाण खाकर कहता है कि हे प्रभु मेरा कौन-सा अवगुण है जिसके कारण आपने मुझे मारा–

मैं बैरी सुग्रीव पियारा ।
अवगुन कवन नाथ मोहिं मारा ॥

मानस में दुष्टों की भर्त्सना भी उनके अवगुणों के कारणों से की गयी है । उनके संबन्ध में कथन है–

अवगुन सिंधु मंद मति कामी ।
वेद विदूषक परधन स्वामी ॥

मानसकार की आकांक्षा है कि लोग गुणों को ग्रहण करें और अवगुणों को त्यागें । किन्तु गुण-अवगुणों का ठीक प्रकार भेद किये बिना लोग उन्हें छोड़ने अथवा अपनाने में सफल नहीं हो सकते । इसीलिये संतों तथा असन्तों की विवेचना द्वारा उन्हें स्पष्ट करके वे अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि गुण दोषों का विवरण इसीलिये प्रस्तुत किया है कि लोग उन्हें पहचान कर उनका संग्रह त्याग कर सकें–

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा ।
उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने ।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥

इसी उद्देश्य से कथा प्रसंगों में भगवान श्रीराम के गुणों का ही विवरण कहा-सुना जाता है, ऋषि याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज जी के प्रश्न के उत्तर में राम कथा प्रारम्भ करते हुए स्पष्ट निर्देश देते हैं कि कथा में गुणों का प्रकरण प्रधान है, उसे ध्यान पूर्वक सुनना धारण करना चाहिये–

कहउँ राम गुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु ।
भव भंजन रघुनाथ भजि तुलसी तजि मान मद ॥

तुलसीदास जी ऐसी ही गुण प्रधान कथा कहना चाहते हैं । अत: विद्वान पूर्व पुरुषों से प्रेरणा लेकर अपनी लेखनी संभालते हैं–

तेहि बल मैं रघुपति गुन गाथा ।
कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥

मानस में हर भक्त भगवान की कथा का विस्तार करने के लिये उनके गुणों का बखान ही करते हैं । नारद जी भी गुणों की गंगा प्रवाहित करने की कला में प्रवीण है–

अस कहि चले देव रिषि करत राम गुन गान ।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान ॥
एक बार करतल बर बीना ।
गावत हरि गुन गान प्रवीना ॥

भगवान तो गुणसिंधु हैं ही, उनके भक्त और परिजन भी गुणी हैं । भक्त भगवान मय हो जाता है, ईश्वर चेतना रूप है, सच्चे भक्त में उसकी आभा सद्गुण एवं प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्फुटित हो उठती है । मानस के भगवान की निकटता प्राप्त

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने वाले सभी सौभाग्यशाली पात्र प्रभु की तरह गुणों के भण्डार हैं। भरत जी के सद्गुणों को देखकर भक्त राज हनुमान उन्हें सद्गुण सिन्धु स्वीकार करते हैं। भगवान के सच्चे भक्त को स्वभावत: ऐसा होना ही चाहिये यह उनका मत है—

रघुवीर निज मुख जासु गुन गन कहत अग जग नाथ जो।
काहे न होय विनीत परम पुनीत सद्गुन सिन्धु सो॥

भरत जी के गुणों को देखकर, भगवान के प्रति उनकी सच्ची प्रीति और भक्ति की सार्थकता से वे गद्गद् हो जाते हैं और मार्ग में उनकी सराहना मन ही मन करते जाते हैं—

भरत बाहुबल शील गुन, प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत, पुनि पुनि पवन कुमार॥

भगवान का काम करने में गुणी ही समर्थ होते हैं। भगवान गुण सम्पन्न व्यक्तियों को ही अपने कार्य का उत्तरदायित्व सौंपते हैं। अंगद को दूत के रूप में लंका भेजते समय वे उन्हें गुणधाम कहकर संबोधित करते हैं—

बालि तनय बुधि बल गुन धामा।
लंका जाहु तात मम कामा॥

भक्तराज हनुमान को तो सुन्दरकाण्ड के पूर्व वेदना में सब गुणों का भण्डार कहा गया है। इसी कारण उन्हें रघुवीर जी के मुख्य दूत बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ—

सकल गुण निधान वनराणांधीशं।
रघुपति वरदूतं वात जातं नमामि॥

और भी सभी भक्तों में भगवान के गुणों के प्रति प्रेम है और वे स्वयं गुणी हैं। काकभुशुण्डि जी गरुण जी द्वारा भगवान के गुणों से प्रेम किये जाने के कारण अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं—

राम कृपा भाजन तुम ताता।
हरि गुन प्रीति मोहि सुख दाता॥

गुणों से प्रेम करने के कारण गरुड़ जी भगवान के भी गुण राशि हो गये और भगवान के सान्निध्य के अधिकारी बने—

गरुड़ महा ग्यानी गुन रासी।
हरि सेवक अति निकट निवासी॥

काकभुशुण्डि जी के बारे के पार्वती जी का भी ऐसा ही मत है। वे उन्हें गुणागार मानती हैं—

नाम परायन ग्यान रत, गुनागार मतिधीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पायउ काक शरीर॥

मानस में भक्त भी भगवान की तरह गुणयुक्त हैं। इसका कारण यही है कि वे ध्यान और चिन्तन उनके गुणों का ही करते हैं। चिन्तन का प्रभाव यही होता है कि जिस प्रकार का चिन्तन मनुष्य का चलता रहता है उसी प्रकार की उसकी प्रवृत्तियाँ बनती चली जाती हैं। भगवान का गुण रूप में चिन्तन करना ही सबसे उत्तम ढंग है। नाम जप का उद्देश्य भी यही है। जब हम किसी व्यक्ति का नाम लेते हैं तो तुरंत उसके आकार, प्रकार, गुण स्वभाव का चित्र हमारे मानस में खिंच जाता है। भगवान के सम्बन्ध में हमारी जैसी मान्यता होगी उसके नाम स्मरण के साथ वैसी ही मानसिक प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक है। इसीलिये रामचरित मानस में सभी प्रियजन, परिजन, भक्त आदि श्री राम के गुणों का स्मरण करते हुए मिलते हैं—

अशोक वाटिका में राक्षस राक्षसियों से घिरी सीता जी अपने हृदय में प्रभु के गुणों का जप ही करती रहती हैं—

कृश तनु शीश जटा एक बेनी।
जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी॥

हनुमान जी भी इस मर्म को जानते हैं। जब वे वहाँ पहुँचते हैं तो सीता जी के ध्यान को आकर्षित करने के लिए श्री रामजी के गुणों का वर्णन प्रारम्भ कर देते हैं—

रामचन्द्र गुन बरनै लागा।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा॥

अयोध्यावासी नागरिक भी इसी क्रम को अपनाते हैं। चित्रकूट से लौटते हुए मार्ग में कोई किसी से बात नहीं करता, सभी भगवान के गुणों के चिन्तन में डूबे हुए चलते जाते हैं—

प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं।
सब चुपचाप चले मग जाहीं॥

गुण रूप में भगवान का प्रकाश जब हृदय में भासित होता है तो भक्त का हृदय उल्लास से भर जाता है। श्री काकभुशुण्डि जी भगवान के गुणों का ही स्मरण किया करते हैं और इसीलिए उनके मन में उल्लास की तरंगें उठती रहती हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुमिरि राम के गुन गन गाना ।
पुनि पुनि हरष भुसुंडि सुजाना ॥

चिन्तन के अतिरिक्त चर्चा में भी भक्त भगवान के स्थूल स्वरूप का कथन श्रवण नहीं करते बल्कि उनके गुण रूप का ही विवेचन करते हैं । जहाँ भी श्रोता या वक्ता अपनी इच्छा प्रकट करते हैं, गुणों के सम्बन्ध में ही आग्रह होता दिखाई देता है ।

पार्वती जी शिवजी से आग्रह करती हैं कि श्री राम के गुणों की कथा सुनाइये—

कहहु पुनीत राम गुन गाथा ।
भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥

शिवजी उनके आग्रह पर रामकथा उन्हें सुनाते हैं और फिर कहते हैं कि भगवान राम के गुण तो अपार हैं, उनमें से कुछ हमने सुनाए । हे पार्वती जी, अब आप क्या सुनना चाहती है सो कहिए—

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी ।
अब का कहौं सो कहहु भवानी ॥

उमा भी भगवान के गुणों पर ही रीझती हैं । उनके गुणों के श्रवण से उनके मन में जो प्रतिक्रिया होती है उस आधार पर वे अपना जीवन धन्य मानती हैं—

धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी ।
सुनेउँ राम गुन भव भय हारी ॥

सभी भाइयों को भी श्री राम के गुणों की चर्चा बहुत भाती है । राज्याभिषेक के बाद भरत आदि बन्धु हनुमान जी से भगवान के गुणों की गाथा बार-बार आग्रह पूर्वक सुनते हैं । वन तथा लंका की विषम परिस्थितियों में श्री राम अपने गुणों के सहारे सफल होते गये यह प्रसंग हनुमान जी सुनाते हैं—

बूझहिं बैठि राम गुन गाहा ।
कह हनुमान स्वमति अवगाहा ॥
सुनत विमल गुन अति सुख पावहिं ।
बहुरि बहुरि करि विनय कहावहिं ॥

भगवान के पास चित्रकूट जाते हुए भी भरत जी तथा अन्य परिजन प्रभु के गुणों की ही चर्चा करते हुए चलते हैं—

सुनत राम गुन ग्राम सुहाये ।
भरद्वाज मुनिवर पहिं आये ॥

वनगमन प्रसंग में सीता जी एवं रामचन्द्र जी शयन करने लगते हैं और लक्ष्मण जी एवं निषाद उनके गुणों की चर्चा प्रारम्भ कर देते हैं । वही चर्चा करते हुए सारी रात बीत जाती है—

कहत राम गुन भा भिनुसारा ।
जागे जग मंगल सुख दारा ॥

चित्रकूट में पुरजन भी प्रभु गुण चर्चा में ही समय बिताते हैं—

कहत राम गुन गन अनुरागे ।
सब निज भाग सराहन लागे ॥

राजा जनक जी तो अपनी पत्नी से इसी चर्चा में सारी रात बिता देते हैं । उन्हें श्री राम और भरत दोनों के ही गुण समान रूप से प्रिय हैं—

राम भरत गुन गनत सप्रीती ।
निसि दम्पतिहि पलक सम बीती ॥

चित्रकूट प्रसंग में सभी के लिये भगवान के गुण ही अवलम्ब बने हुए हैं । माता कौशिल्या भी दुःखी रानियों को श्री राम के गुण स्मरण दिलाकर समझाती हैं—

राम मातु दुख सुख सम जानी ।
कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥

अन्य भक्तों का भी यही क्रम चलता है, प्रभु का स्मरण होते ही काकभुशुण्डि जी के मन में उत्साह का संचार होता है तथा वे श्रोताओं को उनके गुणों की गाथा सुनाने लगते हैं—

भयउ तासु मन परम उछाहा ।
लाग कहैं रघुपति गुन गाहा ॥

उत्तरकाण्ड में अयोध्यावासी नर नारी भी प्रभु के नाम गुणों की ही चर्चा करते दिखाई देते हैं—

पुन नर नारि राम गुन गानहिं ।
करहिं दिवस निसि जात न जानहिं ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं ।
बैठि परसपर इहइ सिखावहिं ॥
एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुन गान ।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपा निधान ॥

भगवान के गुणों को समझने तथा उनमें रस लेने वाला व्यक्ति ही भगवान के आदर्शों का सही निर्वाह कर सकता है । ऐसे ही व्यक्ति प्रभु की अनुकूलता प्राप्त कर पाते हैं–

यह मर्म समझने वाले ऋषिगण भी माघ स्नान के समय एकत्रित होकर एक दूसरे को तथा जनसाधारण को भगवान के गुणों की ही शिक्षा तथा प्रेरणा देते रहते हैं–

मज्जहिं प्रात समेत उछाहा ।
कहहिं परस्पर हरि गुन गाहा ॥

सभी ऋषि भगवद् गुणों के ज्ञाता हैं, पर उनका अध्ययन और भी अधिक गहराई से करने के लिये जिज्ञासु बनकर परस्पर चर्चा करते हैं । भरद्वाज जी के प्रश्न को सुनकर याज्ञवल्क्य भाव प्रकट करते हैं–

चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा ।
कीन्हेहु प्रश्न मनहु अति मूढ़ा ॥

स्वयं भगवान शिव भी ऋषियों को यही प्रेरणा देते रहते हैं । अगस्त्य ऋषि के आश्रम में उनकी चर्चा का वर्णन इस प्रकार मिलता है–

कहत सुनत रघुपति गुन गाथा ।
कछु दिन तहाँ रहे गिरि नाथा ॥

भगवद्भक्त उनके गुणों की ही सामर्थ्य से जीवन लक्ष्य की ओर अवाध गति से बढ़ते चले जाते हैं । यह गुण बड़े सामर्थ्यवान हैं । संसार के विकार सभी पर आक्रमण करते हैं किन्तु जो व्यक्ति प्रभु गुणों को अपनाये रहते हैं, उन पर यह दोष अपना प्रभाव नहीं जमाने पाते । इसीलिये मानसकार इन गुणों से अपनी बुद्धि का शृंगार करने का आग्रह करते हैं । क्योंकि यह गुण लौकिक और पार-लौकिक विभूतियों की उपलब्धि कराने में समर्थ हैं–

राम चरित चिन्तामनि चारू ।
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू ॥
जग मंगल गुन ग्राम राम के ।
दानि मुकुति धन धरम धाम के ॥

जो दोष मनुष्यों की प्रगति में बाधक बनते हैं उनके निवारण की अनुपम सामर्थ्य इन गुणों में है–

कुपथ कुतर्क कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड ।
दहन राम गुन ग्राम जिमि, ईंधन अनल प्रचंड ॥

इसीलिए इस तथ्य के मर्मज्ञ मोह और शोक निवारण के लिये इन्हीं गुणों का सहारा लेने का परामर्श देते हैं । शिवजी गरुड़ जी को काकभुशुण्डि जी के पास इसी उद्देश्य से भेजते हैं–

राम भगति पथ परम प्रवीना ।
ग्यानी गुन गृह बहु कालीना ॥
जाय सुनहु तहँ हरि गुन भूरी ।
होइहि मोह जनित दुख दूरी ॥

और भुशुण्डि जी से रामगुणों का विवेचन सुनकर गरुड़ जी को शान्ति मिलती भी है–

सुनत पुनीत राम गुन ग्रामा ।
तुम्हारी कृपा लहेउँ बिश्रामा ॥

ऐसे प्रमाण रामचरितमानस में स्थान-स्थान पर प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । भव बाधाओं की भँवर से बचने के लिए गुणों का ही सहारा लेने का परामर्श उत्तरकाण्ड में मिलता है–

संत असंतन के गुन भाखे ।
ते न परहिं भव जिन लखि राखे ॥

भगवान का केवल नाम रटना पर्याप्त नहीं उनके गुणों के प्रति अनुराग उत्पन्न करना आवश्यक है । अयोध्यावासियों को यह मर्म समझाते हुए स्वयं भगवान श्री राम कहते हैं कि परमानन्द की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब मेरे नाम के माध्यम से लोग मेरे गुणों को आत्मसात करें । उनके द्वारा ही मदमोहादि विकारों का निवारण होता है तथा अनुपम सुख एवं आनन्द की अनुभूति होती है–

मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह ।
ताकर सुख सोइ जानइ, परानंद संदोह ॥

भगवान के निर्देश और उनके सच्चे भक्तों के जीवन के उदाहरणों से प्रेरणा लेकर हम भी ऐसा ही क्रम अपना कर जीवन धन्य बना सकते हैं । समाज में इस प्रकार गुणों के प्रति आकर्षण

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उत्पन्न हो जाय तो आदर्श समाज की स्थापना सहज ही हो जाय ।

सद्बुद्धि की अनिवार्यता और महत्ता

जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्तिगत पारिवारिक तथा सामाजिक स्तरों पर सफलता और सद्गति के लिए सद्बुद्धि अनिवार्य है । अन्य साधनों में शक्ति तथा सम्पन्नता का भी जीवन में महत्त्व है, किन्तु उनकी सार्थकता तो सदुपयोग की संभावना सद्बुद्धि के सहारे ही बनती है । अन्यथा शक्ति तथा सम्पन्नता मनुष्य को सुख शान्ति और सद्गति देने में असमर्थ ही रहती है उल्टे दुर्गति का भी कारण बन जाती है । यह तथ्य आज की परिस्थितियों पर विवेकपूर्ण दृष्टि डालने से सहज ही स्पष्ट हो जाता है ।

इसीलिये हर शास्त्रकार सन्त एवं चिन्तक मनुष्य ने सद्गति के विकास का आग्रह और प्रयास किया है । रामचरित मानस में भी यह तथ्य स्पष्टता से उभारा गया है । संत तुलसी दास जी यह मानते हैं कि बुद्धि जब ईश्वरोंमुख, आदर्शपरायण होती है तभी वह सद्बुद्धि कहलाती है इसी भाव को उन्होंने अलंकारिक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि सुमति रूपी नारी को रामचरित्र रूपी मणि से अपना शृंगार कर लेना चाहिये । कहा है—

संत सुमति तिय सुमन सिंगारू ॥

रामचरित मानस का निर्माण भी सुमति के कारण हो सका तथा उसके द्वारा सज्जन अपनी सुबुद्धि पा सकेंगे ऐसी आशा और कामना की जाती हैं—

शम्भु प्रसाद सुमति हिय हुलसी ।
राम चरित मानस कवि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी ।
सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी ॥

रामचरितमानस की रचना का लक्ष्य बहुत उत्कृष्ट है । श्रेष्ठ कार्य के लिये श्रेष्ठ साधनों की ही आवश्यकता पड़ती है । भक्त के नाते तुलसीदास जी की आकाँक्षायें (मनोरथ) श्रेष्ठतम परमार्थ परायण थीं । उन्हें लगा कि इन श्रेष्ठ भावनाओं की पूर्ति के लिए बुद्धि भी उसी स्तर की चाहिए । अपनी इस भावना की अभिव्यक्ति वे इस प्रकार करते हैं—

मति अति नीच ऊँच रुचि आछी ।
चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी ॥
सूझ न एकउ अंग उपाऊ ।
मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥

अस्तु उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे अपनी बुद्धि की सीमा स्वीकार करते हुए श्रेष्ठ बुद्धि निर्मल मति की कामना याचना करते हैं । श्रेष्ठ आत्माओं से वे कहते हैं—

सोम होब बिनु बिमल मति मोहि बुद्धिबल अति थोर ।
करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर ॥

जगद् जननी माँ सीता से भी वे निर्मल मति माँगते हैं—

जनक सुता जग जननि जानकी ।
अतिसय प्रिय करुना निधान की ॥
ताके जगु पद कमल मनावउँ ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ ॥

जीवन में भले बुरे प्रसंग उतार-चढ़ाव तो अनिवार्य रूप से आते ही हैं । सद्बुद्धि के अभाव में मनुष्य उनमें उलझ जाता है तथा कष्टों की लम्बी शृंखला खड़ी कर लेता है । किन्तु सुमति युक्त पुरुष सद्भाव से उनका हल निकाल कर प्रगति पथ पर बढ़ते चले जाते हैं । राम चरित्रमानस के पात्रों में यह विशेषता भली प्रकार दिखाई देती है । मानसकार ने ऐसे व्यक्तियों को बहुधा मतिधीर कहा है । बुद्धि-निधान, पावन-मति आदि सम्बोधन भी मिलते हैं ।

भगवान राम गुण, धर्म, बल तेज आदि के साथ बुद्धि में भी अग्रणी हैं । जामवन्त जी का कथन है—

सुनु सर्बग्य सकल उरवासी ।
बुधि बल तेज धर्म गुन रासी ॥

जब दोनों भाई ऋषियों के यज्ञ की रक्षार्थ प्रस्थान करते हैं तब मानसकार उन्हें मतिधीर कहकर संबोधित करते हैं—

पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपा सिंधु मति धीर, अखिल विश्व कारन करन ॥

सद्बुद्धि को विकसित करने के लिये उपयुक्त साधना में, प्रयास भी आवश्यक है । गायत्री मंत्र सद्बुद्धि का प्रेरक मन्त्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । संध्या वन्दन में गायत्री मन्त्र का विनियोग अनिवार्य होता है । मानस में प्रमाण मिलता है कि महर्षि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को आज्ञा देकर सद्बुद्धि दायक साधना नियमित रूप से कराते हैं—

विगत दिवस गुरु आयसु पाई ।
संध्या करन चले दोउ भाई ॥

सद्बुद्धि का प्रवाह सारे रामचरित मानस में अविरल रूप से होता दिखाई देता है । भगवान राम से लेकर अन्य सभी पात्र सद् कार्य परायण हैं । वे आदर्श परायण बुद्धि से युक्त हैं ।

मनु एवं शतरूपा जब लोक कल्याण के लिए वानप्रस्थ ग्रहण करके तप के लिये निकल पड़ते हैं तब मानसकार की टिप्पणी हैं—

पंथ जात सोहहिं मतिधीरा ।
ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा ॥

भगवान के संदेश वाहक बनकर लंका में जाने के लिये तैयार अंगद भी बलवान के साथ बुद्धिमान भी है । स्वयं रामचन्द्र जी कहते हैं—

बालि तनय बुधि बल गुन धामा ।
लंका जाहु तात मम कामा ॥

देवर्षि नारद भी मतिधीर हैं—

ब्रह्मचर्य बत रत मतिधीरा ।
तुमहिं कि करइ मनोभव पीरा ॥

शुभ संकल्प युक्त शिवजी के लिये भी मानसकार मतिधीर का ही संबोधन प्रयुक्त करते हैं—

अस विचारि शंकर मति धीरा ।
चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥

पार्वती जी द्वारा प्रभु चरित्र के प्रति जिज्ञासा प्रकट की जाने पर शिवजी उनकी बुद्धि की पवित्रता की सराहना करते हैं । शुद्ध बुद्धि के बिना शुभ आकांक्षायें नहीं जागतीं—

धन्य सती पावन मति तोरी ।
रघुपति चरन प्रीति नहिं थोरी ॥

भगवान का कार्य करने में अग्रणी श्री हनुमान जी भी बुद्धि निधान हैं । बुद्धि के बिना श्रेष्ठ कार्य संभव नहीं । उन्हें अकेला लंका जाते देखकर देवता उनकी बुद्धि की परीक्षा करना उचित समझते हैं—

जात पवन सुत देवन्ह देखा ।
जानै कहुँ बल बुद्धि विसेषा ॥

देवताओं द्वारा भेजी गयी सुरसा की परीक्षा में वे सफल घोषित होते हैं और रामकार्य के लिये आगे बढ़ जाते हैं—

राम काज सब करिहहु, तुम बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हरषि चले हनुमान ॥

लंका में सीता जी की उन्हें अगला चरण बढ़ाने की स्वीकृति उनके बुद्धि बल का प्रमाण पा कर ही देती हैं—

देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु ।
रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु ॥

सुबुद्धि का उपयोग लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार की सफलताओं के लिये करना पड़ता है । मनुष्य के अन्तर जगत को जो उलझनें उसकी प्रगति में बाधक बनती हैं उनको सुलझाना भी बुद्धि के सहयोग से ही संभव होता है । बुद्धि को प्रखर तथा निष्पक्ष बनाकर ही आंतरिक ग्रन्थिओं का निवारण संभव है । बुद्धि के प्रकाश में ग्रन्थि छोड़ने के प्रयास में बुद्धि को बिचलित करने के लिये कई प्रकरण आकर्षण उपस्थित हो जाते हैं । बुद्धि उनकी उपेक्षा कर सके तभी दिशा ठीक बनाये रहना संभव होता है । ऐसी बुद्धि ही स्थिर, निर्मल अथवा सुबुद्धि कहलाती है । ऐसी बुद्धि के सम्बन्ध में तुलसीदास जी लिखते हैं—

तब सोइ बुद्धि पाइ उजियारा ।
उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुआरा ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई ।
बुद्धिहिं लोभ दिखावहिं आई ॥
होइ बुद्धि जो परम सयानी ।
तिन्ह तन चितवन अनहित जानी ॥

सुबुद्धि अर्थात् जो बुद्धि भगवत् परायण होती है उसे कोई भी विघ्न या आकर्षण विचलित नहीं कर पाते । भरत जी की बुद्धि को बहकाने के लिये प्रबल माया भी असमर्थ सिद्ध होती है । भरत ऐसी ही आदर्शनिष्ठ बुद्धि के स्वामी हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधि हरि हर माया बड़ि भारी ।
सोउ न भरत मति सकइ निहारी ॥
सो मति मोहि कहत कर भोरी ।
चंदिनि कर कि चंड कर चोरी ॥

किन्तु जहाँ बुद्धि आदर्शनिष्ठ नहीं होती वहाँ पर व्यक्ति को भटकते देरी नहीं लगती । विपरीत परिस्थितियाँ और सलाहें तो हर व्यक्ति के सामने आती ही रहती हैं किन्तु कुबुद्धि के कारण उन्हें जमने और फलित होने का अवसर मिल जाता है । मनुष्य को कष्ट और अपयश की ओर धकेल देने वाली कुबुद्धि ही होती है । राम-वन प्रसंग में कैकेयी और मन्थरा की कुबुद्धि ही अनर्थ का कारण बनती है । तुलसी दास जी कहते हैं कि विपत्ति रूपी बीज कुमति रूपी भूमि में ही जमता है–

विपत्ति बीज बरसा रितु चेरी ।
भुईं भई कुमति कैकेई केरी ॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा ।
बर दोउ दल दुखफल परिनामा ॥

कैकेयी की कुमति ने ही उसे राज सम्मान से वंचित कर अपयश का भागी बना दिया–

कोप समाजु साजि सब सोई ।
राज करत निज कुमति बिगोई ॥
कुमतिहिं कसि कुवेषता फाबी ।
अन अहिवात सूच जनु भाबी ॥

राजा को बचनबद्ध करके वह अनर्थ करने को तैयार होती है यह उसकी कुमति का ही सूचक है–

यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि, बिहसि उठी मति मंद ।
भूषन सजत बिलोकि मृग, मनहुँ किरातिनि फंद ॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली ।
कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली ॥

राजा दशरथ उन्हें समझाने के लिए प्रयास करते हैं, पर कुमति का प्रभाव देखकर खीझ कर रह जाते हैं–

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँका ।
देखि कुभाति कुमति मन माखा ॥

निष्ठुरता अपना प्रभाव कुबुद्धि के सहारे से ही दिखा पाती है–

मूठि कुबुद्धि धार निठुराई ।
धरी कूबरी सान बनाई ॥

कुबुद्धि ग्रस्त प्राणी मीठे वचन सुनकर भी रुष्ट होता हैं, कैकेई का यही हाल हो जाता है–

सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई ।
मनहु अनल आहुति घृत परई ॥

राजा दशरथ जानते हैं कि भरत को राज्य की आकाँक्षा नहीं किन्तु कुबुद्धि ग्रस्त कैकेयी यह नहीं समझ पाती-

चहत न भरत भूपतिहि भोरे ।
बिधि बस कुमति बसी जिय तोरे ॥

कैकेई की करनी सुनकर नगरवासियों की भी यही प्रतिक्रिया होती है । वे भी उसे कुबुद्धि के कारण अभागी मानते हैं तथा राजा दशरथ पर भी दोष लगाते हैं कि उसकी कुमति को देखे बिना ही वचनबद्ध क्यों हो गये

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी ।
भइ रघुबंश बेनु बन आगी ॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा ।
बर बिचारि नहिं कुमतिहिं दीन्हा ॥

नगर की महिलायें उसे समझाने का प्रयास करती हैं किन्तु जब वह समझती नहीं तो वे भी उसे मतिमन्द अभागी कहकर जाती हैं–

ब्याधि असाधि जान तिन्ह त्यागी ।
चली कहत मतिमंद अभागी ॥

निषाद राज को जब पता लगता है तो वे भी कैकेई की कुमति और मन्दमति ही कहते हैं–

कैकय नंदनि मंदमति, कठिन कुटिल पन कीन्ह ।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुख दीन्ह ॥
भई दिनकर कुल बिटप कुठारी ।
कुमति कीन्ह सब बिश्व दुखारी ॥

भरत जी भी रोष में यही कहते हैं कि हृदय में कुमति का निवास होते ही हृदय टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो गया-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब तें कुमति कुमत जिय ठयऊ ।
खंड खंड होइ हृदय न गयऊ ॥

भरद्वाज जी से भी भरत यही कहते हैं कि माता की कुमति ही सारे अनर्थ का कारण बनी-

मातु कुमति बढ़ई अघ मूला ।
तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥

उक्त प्रकरण से सिद्ध होता है कि विपत्ति का कारण कुमति ही है । रावण भी उसी का शिकार होता है । विभीषण उसे यह कहता है कि कुमति को न पनपने देकर सुमति को विकसित करना चाहिए । सुमति से सम्पत्ति तथा कुमति से विपत्ति मिलती है । कुमति के कारण सब कुछ उल्टा दीखने लगता है—

सुमति कुमति सबके उर रहहीं ।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं ॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥
तब उर कुमति बसी बिपरीती ।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीती ॥

मन्दोदरी के कई बार समझाने पर भी जब रावण इतने स्पष्ट कथन पर भी ध्यान नहीं देता तो वह समझ लेती है कि वह नष्ट ही होना चाहता है—

मंदोदरि मन महँ अस ठयऊ ।
पियहिं काल बस मति भ्रम भयऊ ॥

क्योंकि उसका विश्वास है कि मतिभ्रम ही दुर्गति का कारण बनता है । सद्बुद्धि का लुप्त हो जाना ही नाश का प्रत्यक्ष चिह्न है । वह कहती है—

काल दंड गहि काहु न मारा ।
हरइ धर्म बल बुद्धि विचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साईं ।
तेहि भ्रम होय तुम्हारिह नाईं ॥

यही निष्कर्ष हनुमान जी भी निकालते हैं । रावण शेखी बघारते हुए सेना सहित श्री राम को मारने की बात कहता है तो स्पष्ट कह देते हैं कि तेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी है, यह मैं समझ गया । तू जो कहता है उसका उल्टा ही होगा ।

उलटा होइहिं कह हनुमाना ।
मति भ्रम तोर प्रगट मैं जाना ॥

काकभुशुण्डि जी कलि वर्णन में ऐसे मूर्खों पर व्यंग्य करते हैं जो अपनी कठोर बुद्धि के द्वारा ही सुख की आकांक्षा करते हैं—

सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता ।
मति थोरि कठोरि न कोमलता ॥

उन्हें भी शिवजी का श्राप नीच मति के कारण ही उठाना पड़ा था । वे अपनी उस समय की स्थिति बताते हुए कहते हैं—

मैं खल मत संकुल मति, नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरउँ, करउँ विष्नु कर द्रोह ॥

मनुष्य को पतित बनाने वाले कषाय-कल्मषों के निवारण में सुमतिपूर्ण समर्थ है । मानसकार ने दोषादि को कालनेमि तथा सुमति को हनुमान की उपमा दी है—

कालनेमि कलि कपट निधानू ।
नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥

संसार समर में बुद्धि को प्रचंड शक्ति माना गया है । विजय रथ प्रसंग में श्री रामचन्द्र जी विभीषण को यह मर्म बतलाते हैं—

दान परसु बुधि शक्ति प्रचंडा ।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥

जिस प्रकार कुमति में विपत्ति के बीज फलते हैं, इसी प्रकार सुमति सद् प्रवृत्तियों के लिये उचित भूमि सिद्ध होती है—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू ।
वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
मेघा महि गति सो जल पावन ।
सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥

भक्ति रूपी मणि प्राप्त करने की विधि बतलाते हुए कहा है कि खान में से मणि निकालने के लिये सुमति रूपी कुदाली की आवश्यकता पड़ती है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मर्मी सज्जन सुमति कुदारी ।
ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥

मानस रोग प्रकरण में सुमति को सद्ज्ञान पचाने वाली शक्ति कहा है । यदि भूख न हो तो भोजन की उपयोगिता नहीं रह जाती । बगैर भूख के खा लेने से भी हानि की ही संभावना रहती है । जब सुमति रूपी पाचन शक्ति बढ़ जाने पर ज्ञान आत्मसात होने लगता है तथा विषय आदि दुर्बलतायें मिट जाती हैं, तो मनुष्य नर श्रेष्ठ बन जाता है–

सुमति क्षुधा बाढ़इ नित नई ।
विसय आस दुर्बलता गई ॥

अस्तु सुमति का महत्त्व हम समझें तथा उसको जाग्रत करने के लिये प्रयास करें तो सब प्रकार के अभाव मिटाकर सुख समृद्धि सहज ही प्राप्त की जा सकती है–

'विवेक' युक्त हंस वृत्ति

मनुष्य में क्षमतायें बहुत हैं । उनका उपयोग करके वह वाँछनीय वस्तु की प्राप्ति अथवा अवाँछनीय से अपना बचाव कर सकता है । किसी भी मार्ग को वह धैर्यपूर्वक चलता हुआ पार कर सकता है । किन्तु उचित अनुचित के निर्धारण-सही मार्ग का निर्णय लेने में मनुष्य से भूल हो जाती है । जिस वस्तु को सारी शक्ति लगाकर पा लेता है, बाद में लगता है कि वह निरर्थक है और जिसे उपेक्षित करके आगे बढ गया उसके बिना सारी प्रगति निरर्थक सिद्ध हो जाती है । अस्तु सही निर्णय के अभाव में मनुष्य की शक्तियाँ या तो कुंठित रह जाती हैं अथवा उनका दुरुपयोग होने लगता है । कठिनाई से उतारने वाली शक्ति की क्षमता जो सही निर्णय ले लेती है, उचित अनुचित का विश्लेषण कर सकती है, उसे विवेक कहते हैं । इसी विवेक के बारे में तुलसीदास जी लिखते हैं–

कठिन परिस्थिति में सामान्य बुद्धि की क्षमता समाप्त हो जाती है । निर्णय के अभाव में शक्तियाँ किस ओर लगायी जावें इस असमंजस में निष्क्रियता आ जाती है । यदि कोई विवेकवान व्यक्ति उस समय सहारा देवे तो असमंजस समाप्त हो जाने सबकी बुद्धि सक्रिय हो जाती है । चित्रकूट में ऐसा ही प्रकरण प्रस्तुत होता है । शोक रूपी हिरण्याक्ष मानो सबकी बुद्धि का अपहरण कर लेता है । किन्तु भरत का विवेक वाराह बनकर उसे उबार लेता है–

शोक कनक लोचन मति छोनी ।
हरी विमल गुन गन जग जोनी ॥
भरत विवेक बराह विसाला ।
अनायास उधरी तेहि काला ॥

मानस में ऐसे विवेकवान पात्र बहुतायत से हैं । उनको बहुत सराहा गया है । नीर-क्षीर, विवेक तथा मुक्ता चुनने के कारण हंस को विवेक का प्रतीक माना गया है । भरत जी के प्रसंग में यही उक्ति है–

भरत विनय सुनि सबहिं प्रशंसी ।
खीर नीर विवरन गति हंसी ॥

चातक जैसी टेक और हंस जैसे विवेक का समर्थन निम्न दोहे में भी मिलता है–

राम प्रेम भाजन भरत, बड़े न एहि करतूति ।
चातक हंस सराहियत, टेक विवेक विभूति ॥

श्रेष्ठ पुरुषों में यह क्षमता होनी चाहिये क्योंकि संसार के गुण-दोषों के बीच सही-गलत का निर्णय लेकर स्वयं अपना मार्ग बनाने तथा समाज को मार्ग-दर्शन देने का उत्तरदायित्व उन पर होता है–

जड़ चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहर बारि बिकार ॥

यह विवेक हंस वृत्ति मानस के सभी प्रधान पात्रों में पाई जाती है । हंस बार-बार प्रत्यक्ष रूप से विवेकवान अथवा परोक्ष रूप से हंस कहकर सराहा जाता है । भगवान श्री राम के लिये विविध श्रेष्ठ जन यही सम्बोधन प्रयुक्त करते हैं । परशुराम जी उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

करौं काह मुख एक प्रशंसा ।
जय महेश मन मानस हंसा ॥

लगभग ऐसी ही उक्ति विदेह राज जनक की है–

राम करौं केहि भाँति प्रशंसा ।
मुनि महेश मन मानस हंसा ॥

गुरु वसिष्ठ जी श्रीराम के वंश को ही हंस वृत्ति युक्त कहते हैं तथा उन्हें उस वंश में श्रेष्ठ कहकर सम्मानित करते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुबरहिं प्रशंस ।
राम कस न तुम कहहु अस, हंस वंश अवतंस ॥

देवी सीता उन्हें प्रत्यक्ष रूप से ही परम विवेकवान कहती हैं—

प्रभु करुनामय परम विवेकी ।
तनु तजि रहित छाहँ किमि छेकी ॥

अरण्य काण्ड में ऋषि शरभंग तथा सुतीक्षणजी भी उन्हें मराल कहकर ही संबोधित करते हैं ।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला ।
शंकर मानस राज मराला ॥
हर हृदि मानस बाल मरालं ।
नौमि राम उर बाहु विशालं ॥

भगवान राम ही नहीं मानस के प्रधान पात्र सभी विवेकवान् हैं । मानस कथा का प्रारम्भ परम विवेकी याज्ञवल्क्यजी द्वारा होता है । भरद्वाज जी इनसे ही कथा कहने का आग्रह करते हैं । वस्तुत: विवेकवान व्यक्ति ही कथा कहने के अधिकारी भी हैं—

जागबलिक मुनि परम विवेकी ।
भरद्वाज राखे पद टेकी ॥

रघुवंश के कुलगुरु वसिष्ठ जी भी विवेक के समुद्र हैं । भरत जी राजा दशरथ के मरण के बाद चर्चा प्रसंग में कहते हैं—

गुरु विवेक सागर जग जाना ।
जिन्हहिं विश्व कर बदर समाना ॥

स्वयं भरत विवेक में अग्रणी हैं । श्रीराम जी उनके विवेक की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उन्होंने हंस वंश में पैदा होकर अपने विवेक से यश का नया कीर्तिमान स्थापित किया है—

सगुन खीर अवगुन जल ताता ।
मिल रचइ परपंच विधाता ॥
भरत हंस रविवंश तड़ागा ।
जनमि कीन्ह गुन दोष विभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन वारी ।
निज जस जगत कीन्ह उजियारी ॥

भक्त राज हनुमान जी बल बुद्धि के साथ ही साथ विवेक के भी भण्डार हैं । समय पर उचित निर्णय लेने में उन्हें कभी देरी नहीं लगी । जामवंत जी कहते हैं—

पवन तनय बल पवन समाना ।
बुधि विवेक विज्ञान निधाना ॥

अशोक वाटिका में त्रिजटा नामक राक्षसी सीता जी की सेवा सहायता करती रही । उसमें विवेक था इसीलिये स्वतंत्र निर्णय लेकर अकेले ही औचित्य का निर्वाह कर सकी ।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका ।
राम चरन रति निपुन विवेका ॥

विवेक का महत्व समझने वाले उसे अपने अन्दर विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । सतरूपा रानी के रूप में माँ कौशिल्या ने अन्य गुणों के साथ विवेक भी मांगा ।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहुँ ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु ॥

भगवान उनके द्वारा विवेक माँगे जाने से विशेष प्रसन्न हुए अत: उन्हें माँ सम्बोधित करते हुए विशेष रूप से अलौकिक विवेक बने रहने का वरदान दिया ।

मातु विवेक अलौकिक तोरे ।
कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे ॥

ऐसी ही विवेक के कारण कठिन परिस्थितियों में माँ कौशिल्या को सही निर्णय लेने में कभी विलम्ब नहीं हुआ ।

कठिन परिस्थितियों से सुरक्षित निकाल लाने की सामर्थ्य विवेक में है । भरत जी समाज सहित विरह रूपी समुद्र में डूबने से विवेकरूपी जहाज के सहारे ही बच सके—

रघुवर बरन विलोकि बर, वारि समेत समाज ।
होत मगन वारिधि विरह, चढ़े विवेक जहाज ॥

शिवजी भी सती को विवेक पूर्वक चलने की सलाह देते हैं । भगवान राम के सम्बन्ध में जब उनका समाधान शिवजी के समझाने से नहीं होता तो वे परीक्षा द्वारा भ्रम निवारण की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वीकृति देते हैं, किन्तु विवेक पूर्वक चलने का निर्देश भी देते हैं। सती ने जल्दबाजी की, कौतूहल वश यह नहीं सोचा कि सीता का रूप बनाना उनके लिये उचित है या अनुचित। इसी कारण उन्हें अपमान और कष्ट उठाना पड़ा, शिवजी ने कहा था—

जैसे जाइ मोह भ्रम भारी।
करेहु सो जतन विवेक विचारी॥

किसी को समझाने के लिए विवेकपूर्ण वचन बोलना आवश्यक है। श्री राम ऐसा ही करते हैं। वन जाने के प्रसंग में वे माता कौशिल्या और सीता जी को समझाने के लिये विवेक का ही सहारा लेते हैं—

कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि विपिन गुन दोष॥

जब ननिहाल से लौटकर भरत जी श्रीराम तथा पिता के विरह में अधिक दुःखी हो उठते है, माता कौशिल्या भी उन्हें विवेक युक्त वचनों से ही समझाती हैं—

भाँति अनेक भरत समुझाये।
कहि विवेकमय बचन सुहाये॥

चित्रकूट प्रकरण में आर्तजनों को समझाने में ऋषिगण भी इसी शाश्वत सिद्धान्त को अपनाते हैं—

लगे कहन उपदेश अनेका।
सहित धरम नय विरति विवेका॥

बोलने में ही नहीं परिस्थितियों का सही अध्ययन करने में भी विवेक आवश्यक है। भरत जी चित्रकूट में विवेक चक्षुओं से ही समाज में वेदना को समझकर तदनुसार निर्णय लेते हैं—

निरख विवेक विलोचनन्हि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनाम बोले भरत, सुमिरि सीय रघुराजु॥

कर्तव्यपालन के लिये भी विवेक का उपयोग करना चाहिये। निर्देश के रूप में केवल मुख्य सिद्धान्त बतलाया जाता है। व्यावहारिक निर्णय तो विवेक से ही लेने पड़ते हैं। श्री रामचन्द्र जी सीता की रक्षा के लिये लक्ष्मण को यही निर्देश देकर जाते हैं—

सीता केरि करेहु रखवारी।
बुधि विवेक बल समय विचारी॥

विवेक जीवन के हर स्तर पर उपयोगी है। काकभुशुण्डि से भगवान राम यह मर्म बतलाते हैं कि विवेक ऐसे गुणों में से हैं जिनके लिए जन सामान्य ही नहीं विरक्त मुनियों को भी प्रयास करना चाहिये—

ग्यान विवेक विरति विग्याना।
मुनि, दुरलभ गुन जे जग नाना॥

मानस रूपी सरोवर में इन विवेक आदि गुणों को हंस की उपमा दी गई है—

सुकृत पुंज मंजुल अलि माला।
ज्ञान विराग विचार मराला॥

इसी प्रकार विजय-रथ प्रकरण में विवेक को जीवन रथ खींचने वाले घोड़े की संज्ञा दी गयी है—

बल विवेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु छोरे॥

साधकों और सन्तों के लक्षणों में विवेक भी है। भगवान राम नारद जी को संतों के लक्षण बतलाते हुए उन्हें विवेकशील होना भी आवश्यक बतलाते हैं—

विरति विवेक विनय विग्याना।
बोध जथारथ वेद पुराना॥

वर्षा वर्णन में श्रीराम कहते हैं कि साधक का मन विवेकवान बनने पर ऐसे शोभा पाता है जैसे नयी कोपलों युक्त वृक्ष अर्थात् विवेक विकास का परिचायक है।

नव पल्लव भये विटप अनेका।
साधक मन जस मिले विवेका॥

विवेक और ईश्वरनिष्ठा-भक्ति आदि एक दूसरे के पूरक गुण हैं। विवेक में ईश्वर परायणता से दृढ़ता आती है तथा विवेकपूर्वक साधना पथ पर बढ़ने से शीघ्र लाभ मिलता है। भुशुण्डि जी का मत है कि भगवान राम के चरित्र सुनने से विवेक आदि गुण पुष्ट होते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विरति विवेक भगति दृढ़ करनी ।
मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी ॥

रामराज्य वर्णन में आता है कि भगवान का प्रकाश अन्तर में उदय होते ही वैराग्य विवेक आदि सक्रिय हो जाते हैं–

सुख संतोष विराग विवेका ।
विगत शोक ये कोक अनेका ॥

सनकादि मुनि ईश्वरनिष्ठा को दोष निवारक तथा विवेक, विनय, वैराग्य की वृद्धि करने वाली कहते हैं–

आस त्रास इरिषादि निवारक ।
विनय विवेक विरति विस्तारक ॥

उक्त प्रसंगों में विवेक की पुष्टि ईश्वर निष्ठा से होती बतलायी गयी है । उसी प्रकार लक्ष्मण जी निषाद को उपदेश देते हुए बतलाते हैं कि विवेक द्वारा मोहादि का शमन हो जाने पर भगवान के चरणों में प्रेम उत्पन्न हो जाता है–

होय विवेक मोह भ्रम भागा ।
तब रघुनाथ चरन अनुरागा ॥

ऐसी ही भाव निम्न चौपाइयों से प्रकट होता है, उक्ति है कि विवेक चक्षु खुल जाने पर दोषों का निवारण होता है, तथा भगवान के गुप्त गुण भी प्रकट हो जाते हैं–

उघरहिं विमल विलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहि राम चरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥

इस प्रकार विवेक और भक्ति आदि अन्योन्याश्रित सिद्ध होते हैं । एक-दूसरे के सहारे इन्हें बढ़ाया, विकसित किया जा सकता है । इस भाव को भुशुण्डि जी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि भक्ति पथ विवेक और वैराग्य से युक्त ही है । जो इसे नहीं समझते वे मोहग्रस्त प्राणी है–

श्रुति संमत हरि भक्ति पथ, संजुत विरत विवेक ।
तेहि न चलहिं नर मोह वश, कल्पहिं पंथ अनेक ॥

ईश्वरीय सिद्धान्तों को विवेकपूर्वक समझ लेने पर मनुष्य की गति अमोघ हो जाती है । शिवजी काकभुशुण्डि जी को यही समझाते हुए कहते हैं–

अस विवेक राखेहु मन माहीं ।
तुम कहँ जग दुरलभ कछु नाहीं ॥

यह स्थिति तब आती है जब मनुष्य के अन्त:करण में विवेक का राज्य हो जाय । विवेक रूपी राजा तब मोह रूपी राजा को दलबल सहित परास्त कर देता है और जीवन स्थायी सुख-शान्ति का अधिकारी बन जाता है–

सचिव विराग विवेक नरेसू ।
विपिन सुहावन पावन देसू ॥
भट जम नियम सैल रजधानी ।
साँति सुमति सुचि सुंदर रानी ॥
जीत मोह महिपाल दल, सहित विवेक भुआल ।
करत अकंटकु राज पुर, सुख संपदा सुकाल ॥

यज्ञीय संस्कृति का संरक्षण और प्रसार

यज्ञ भारतीय धर्म का पिता कहा जाता है । श्रेष्ठ कर्म का प्रेरक यज्ञ भारतीय संस्कृति का अविभाज्य अंग है । सामाजिक जीवन में सामूहिक, सहकारिता, अनुशासन, संगठन, समता आदि आवश्यक सत् प्रवृत्तियों और व्यक्तिगत जीवन में शुचिता, शौर्य, ऊष्मा, ऊर्ध्वगामिता, प्रगतिशीलता, त्याग, बलिदान आदि की प्रेरणायें भारतवासी यज्ञ से ही लेते रहे हैं । यज्ञीय जीवनक्रम में ही भारतीय नागरिक जीता रहा है । यह क्रम जब से बिगड़ा तभी से देश समाज एवं व्यक्ति का पतन प्रारम्भ हो गया । यज्ञीय जीवन-दर्शन की पुनर्स्थापना से प्राचीन गौरव एवं वर्चस्व पुन: प्राप्त किया जा सकता है ।

रामकथा में यज्ञीय संस्कृति की रक्षा और संवर्धन के प्रयास सतत् चलते रहते हैं । सारी रामकथा यज्ञमय है । श्रीराम का जन्म यज्ञीय वातावरण में होता है । यज्ञ की रक्षार्थ ही वे अयोध्या छोड़कर निकलते हैं और विवाह भी धनुषयज्ञ में होता है । सारे जीवन वे ऋषियों की रक्षा करते हुए यज्ञीय जीवन बिताते हैं । स्वयं भी अन्त में अश्वमेध करते हैं । राम कथा यज्ञमय ही है ।

हर शुभ कार्य में यज्ञ किया जाता है । दक्ष प्रजापति बनते हैं तो यज्ञ का आयोजन करते हैं–

दच्छ लिये मुनि बोलि तब, करन लगे बड़ जाग ।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी ऋषि मुनि तथा ब्राह्मण यज्ञीय भावना को जन-जीवन में सबल बनाये रखते थे। इससे देव वृत्तियाँ पुष्ट रहती थीं तथा समाज में सुखशान्ति का वातावरण रहता था। असुरों को श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ सहन नहीं होतीं।

अस्तु, रावण का संरक्षण पाकर उन्होंने श्रेष्ठ वृत्तियाँ नष्ट करने के लिए उनके मूल यज्ञीय परम्परा को नष्ट करना प्रारम्भ किया। उसके लिये विधिवत् अभियान छेड़ दिया। रावण ने असुरों से कहा-

द्विज भोजन मख होम सराधा।
सबकै जाइ करहु तुम बाधा॥

राक्षस यज्ञों में विघ्न पैदा करने लगे और यज्ञ कर्ताओं को सताने लगे। फलस्वरूप भय फैल गया—

जहँ जप जग्य योग मुनि करहीं।
अति मारीचि सुबाहुहिं डरहीं॥
देखत जग्य निशाचर धावहिं।
करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं॥

इन उपद्रवों के कारण यह स्थिति हो गयी कि श्रेष्ठ प्रेरणा देने वाले यज्ञादि कर्म लुप्त होने लगे—

नहिं हरि भगति जग्य तप ज्ञाना।
सपनेहुँ सुनियन बेद पुराना॥

इस अनीति को मिटाने के लिए भगवान का अवतार आवश्यक हो गया। इसके लिए वातावरण बनाने के लिये वसिष्ठ जी तथा श्रृंगी ऋषि से मिलकर कामेष्टि यज्ञ कराया—

श्रृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा।
पुत्र काम शुभ जग्य करावा॥

यज्ञीय सन्तति, यज्ञीय जीवनक्रम का ज्वलंत उदाहरण बनकर सामने आयी। चारों भाइयों के जीवन में यज्ञीय भावना का समावेश हर दृष्टि से दिखाई देता है।

उनके किशोर होते ही विश्वामित्र जी उन्हें यज्ञ रक्षा के लिए अपने साथ ले गये। राजा दशरथ ने भी मोह छोड़कर जन कल्याण के लिए बच्चों को भेजकर यज्ञीय भावना का परिचय दिया। श्री राम और लक्ष्मण जी ने ऋषियों को निर्भय होकर यज्ञ करने आ अवसर दिया—

प्रात कहा मुनि सन रघुराई।
निरभय जग्य करहु तुम जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी।
आपु रहे मख की रखवारी॥

यज्ञीय संस्कृति का पुनः प्रसार हुआ। गुरु वसिष्ठ तो यात्रा में भी यज्ञ की व्यवस्था रखकर चलते थे। चित्रकूट यात्रा के प्रसंग में उल्लेख है—

अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥

यज्ञों का उपयोग पारिवारिक प्रकरणों में भी होने लगा। राजा जनक ने पुत्री के स्वयंवर के अवसर पर भी यज्ञ का आयोजन किया। राम लक्ष्मण भी उसमें विश्वामित्र जी के साथ गये। उसी यज्ञीय वातावरण में उनका विवाह हुआ—

धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा।
हरषि चले मुनिबर के साथा॥

फिर यज्ञीय प्रवृत्तियों में बाधा पहुँचाने के लिये वे जंगल में गये, ऋषियों को निर्भय बनाया।

एक ओर उन्होंने श्रेष्ठ यज्ञों की रक्षा की वहाँ निकृष्ट उद्देश्य से किये जाने वाले यज्ञों का विध्वंस भी कराया, क्योंकि जिनके साथ लोक कल्याण की भावना नहीं जुड़ी रहती वे दुर्बुद्धि जनित यज्ञ परिणाम में समाज के लिये दुःखदायी होते हैं। ऐसे यज्ञों के बारे में मानसकार कहते हैं—

तासम धर्म करहिं नर, जप तप मख व्रत दान।
देव न बरषहि धरनी, बये न जामहि धान॥

मेघनाद ऐसा ही यज्ञ करने लगा था। उसकी सूचना विभीषण ने श्रीराम को दी—

मेघनाद मख करइ अपावन।
खल मायावी देव सतावन॥

उन्होंने उसे नष्ट करने का आदेश लक्ष्मण सहित वानरों को दिया—

लछिमन संग जाहु सब भाई।
करहु विधंस जग्य कर जाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसके बाद युद्ध में मेघनाद मारा गया । पर रावण भी लक्ष्मण जी के हाथों घायल होने के बाद लंका में वैसा ही यज्ञ करने लगा । वह चाहता था कि राम के आदर्शों की उपेक्षा करके यज्ञ के प्रभाव से विजय हो जाय—

उहाँ दसानन जागि कर, करै लाग कछु जग्य ।
राम विरोध विजय चह, सठ हठ बस अति अग्य ॥

उस यज्ञ को भी नष्ट करने का आदेश मिला तथा वानर योद्धा उसका भी विध्वंस कर आये—

जग्य विधंस कुसल कपि, आये रघुपति पास ।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस ॥

अस्तु स्पष्ट है कि श्री राम जिस यज्ञीय परम्परा की रक्षा करना चाहते थे वह मात्र स्थूल अग्निहोत्र तक सीमित नहीं थी, उसके साथ 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया' की भावना ही प्रधान थी । भारत की इस मूल यज्ञीय भावना का संरक्षण और प्रसार समाज की सुखशान्ति तथा समृद्धि के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सामूहिकता, सहयोग और संगठन की प्रवृत्तियाँ

व्यक्ति अपने आप में बहुत नेक और गुणवान हो तो भी उसमें यदि सामूहिक दृष्टिकोण का अभाव हो, सहयोग और संगठन का महत्त्व वह न समझता हो, अथवा उसके अनुरूप अपनी प्रवृत्तियाँ न बना सके, तो उसकी स्वयं की प्रगति भी कुण्ठित हो जाती है और समाज के लिये भी वह उपयोगी नहीं बन पाता। व्यक्तिगत जीवन में बड़े-बड़े समझदार और योग्य व्यक्ति इसी कारण असफल होते देखे जाते हैं। वे न किसी से ताल-मेल बिठा पाते हैं और न मिलजुल कर बड़े कार्यों को हाथ में ले पाते हैं । सार्वजनिक जीवन में तो यह कमी और भी अधिक अखरती है । अच्छी-अच्छी संस्थाओं और संगठनों में व्यक्तिगत रूप से नेक व्यक्ति भी सामूहिक प्रवृत्तियों के अभाव में असफलता और निंदा के पात्र बन जाते हैं। सार्वजनिक संस्थाओं के असंतुलन तथा सामूहिक प्रयासों की असफलता का दोष अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा स्वभाव में सामूहिक दृष्टिकोण, सहिष्णुता, एक-दूसरे के बारे में संतुलित मान्यतायें, सहयोगियों की भावनाओं को समझना तथा अपने गौरव से उनके गौरव को जोड़ कर चलना इत्यादि के न होने का ही दिया जाना उचित है ।

इस तथ्य को खिलाड़ियों की टीम के माध्यम से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। खिलाड़ी अपने आप में बहुत अच्छा हो सकता है, किन्तु टीम की मजबूती इतने भर से नहीं बनती । उसमें हर स्थान पर खेलने वाले खिलाड़ी चाहिए । यही नहीं उन्हें परस्पर ताल-मेल बिठाने, एक-दूसरे के पूरक और सहायक बनने का उच्च स्तरीय अभ्यास भी आवश्यक है। समाज भी एक टीम है। टीम-स्प्रिट, टोली-भावना का विकास हर व्यक्ति में होना चाहिए। हर सदस्य को अपने व्यक्तिगत स्तर के गौरव का बोध तो हो किन्तु वह गौरव टीम के संतुलन पर ही टिका है, यह भी ध्यान रहे । अपनी विशेषताओं को बढ़ाये और उपयोग में लाये यह तो ठीक है, किन्तु व्यक्ति की सीमा तथा समूह की महत्ता को भी भूले नहीं ।

समाज में इन प्रवृत्तियों को सतत् विकसित किया जाना आवश्यक है । इसके अभाव में समाज की प्रगति में सदा रुकावट बनी ही रहेगी। शिकायत करने की अपेक्षा इन प्रवृत्तियों के विकास के लिये प्रयास किये जाने चाहिए। श्रेष्ठ समाज की रचना तथा सामाजिक सुख-सुविधा का विकास इसी आधार पर हो सकता है ।

प्राचीनकाल में समाज के प्रमुख विचारक तथा व्यवस्थापक इस संदर्भ में पर्याप्त सचेत और सचेष्ठ रहते थे। ''रामचरित मानस'' में भी इसके प्रमाणस्वरूप अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं ।

समाज में सत् प्रवृत्तियों के विकास का प्रमुख कार्य ऋषिमुनि किया करते थे। उनके आश्रम स्थान-स्थान पर थे और वहाँ गुरुकुलों तथा साधना केन्द्रों में शिक्षार्थियों और साधकों को सामूहिक जीवन का अभ्यास कराया जाता था। सभी ऋषियों के आश्रम में ऐसी ही व्यवस्था थी। विश्वामित्र जी के आश्रम का वर्णन करते हुए मानस में लिखा है–

विश्वामित्र महामुनि ज्ञानी ।
बसहि विपिन शुभ आश्रम जानी ॥
जहँ तप यज्ञ योग मुनि करहीं ।

... ...

ऋषि वन में रहते थे अपनी शोध और साधनों की सुविधा के लिये वे समाज की ओर से बेखबर नहीं रहते थे। समाज को मार्ग दर्शन देने के लिये वे सामाजिक उतार-चढ़ावों पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। भरत जब भरद्वाज ऋषि के पास पहुँचते हैं और अपनी व्यथा बतलाने लगते हैं तो ऋषि उन्हें रोक कर स्वयं कहते हैं कि हमें सारा विवरण ज्ञात है–

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई ।
विधि करतब पर कछु न बसाई ॥

अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सजग ऋषि इसी कारण भरत तथा अयोध्यावासियों के दु:ख को कम करने और उन्हें सही दिशा प्रदान करने में सफल हुए ।

ऋषिगण आश्रमों में तो सामूहिक प्रवृत्तियाँ चलाते ही थे किन्तु विशेष अवसरों पर सारे ऋषि-मुनि एक स्थान पर एकत्रित होकर विचार-विमर्श भी किया करते थे। यही कारण था कि समाज के हर क्षेत्र की परिस्थितियों का बारीकी से अध्ययन करके समयानुकूल कार्यक्रम बनाने तथा सभी आश्रमों में समान रूप से जनकल्याण हेतु उसे कार्यान्वित करने में वे सफल होते थे। ऐसे ऋषि सम्मेलनों में निर्धारित रूपरेखा की जानकारी लेकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऋषिगण अपने-अपने आश्रमों में जाकर अपने-अपने क्षेत्र को उसी आधार पर सभालने लगते थे—

माघ मकर गत रवि जब होई ।
तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥
देव दनुज किन्नर नर श्रेनी ।
सादर मज्जहिं सकल त्रिवेनी ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन ।
परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥
तहाँ होय मुनि रिषय समाजा ।
जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥
ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, वरनहिं तत्व विभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत ज्ञान विराग ॥
एहि प्रकार भरि माघ नहाहीं ।
पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं ॥

एक ओर जहाँ ऋषि मुनि सामूहिकता तथा सहयोगात्मक पद्धति अपनाये रहते थे, वहाँ समाज में व्यस्थापक वर्ग भी उसी आदर्श का पालन करते थे । राजा भी अकेले अपनी मनमर्जी से कुछ भी नहीं कर डालते थे । वे सामूहिकता की मर्यादा का पालन करते हुए सबके साथ विचार-विमर्श करके ही कार्य प्रारम्भ करते थे ।

जब राजा दशरथ ने देखा कि श्रीराम उत्तरदायित्व संभालने योग्य हो गये हैं तो स्वयं वानप्रस्थ में प्रवेश के लिए उत्तरदायित्वों से मुक्त होने की योजना बनाई । किन्तु उसके सम्बन्ध में अकेले निर्णय नहीं लिया । वे पहले गुरु वसिष्ठ जी से परामर्श करते हैं और फिर सभी सहयोगी कार्यकर्ताओं की सहमति प्राप्त करते हैं—

कहइ भुआलु सुनिय मुनि नायक ।
भये राम सब विधि सब लायक ॥
नाथ राम करिअहि जुबराजू ।
कहिय कृपाकरि करिय समाजू ॥
मुदित महीपति मंदिर आये ।
सेवक सचिव सुमंत्र बुलाये ॥
जो पाँचहि मत लागइ नीका ।
करहु हरषि हिय रामहिं टीका ॥

व्यवस्थात्मक उत्तरदायित्व जिस किसी पर भी हो उसे सामूहिकता की मर्यादा बनाये ही रखनी चाहिए । उससे परस्पर स्नेह भाव भी बढ़ता है तथा अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी हल भी निकाले जा सकते हैं । राजा दशरथ की मृत्यु के बाद गुरु वसिष्ठ पर राज्य व्यवस्था का प्रधान उत्तरदायित्व आ पड़ा । भरत को राज्य देने के प्रसंग में वे भी उसी पद्धति का निर्वाह करते हैं—

सुदिन सोधि मुनिवर तब आये ।
सचिव महाजन सकल बोलाये ॥
बैठे राज सभा सब जाई ।
पठये बोलि भरत दोउ भाई ॥

इस चर्चा का फल यह निकला कि द्वेष-दुर्भाव जरा भी न पनप सका और श्रीराम को चित्रकूट जाकर वापस लाने की सर्वसम्मत से योजना बन सकी ।

चित्रकूट में भी श्री रामचन्द्र जी के पास कोई प्रस्ताव रखने के पूर्व गुरु वसिष्ठ भरत सहित सभी प्रधान नागरिकों को एकत्रित करके चर्चा करते हैं—

गुरु पद कमल प्रनाम करि, बैठे आयसु पाय ।
बिप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आय ॥
बोले मुनिवर समय समाना ।
सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥

यही क्रम मानस में आगे भी चलता रहता है । भगवान राम सब कुछ जानते हुए भी सामूहिकता की मर्यादा निभाते हैं । सहयोगियों से परामर्श करते रहते हैं । लंका विजय के लिए समुद्र पार करने की समस्या वे सबके सामने रख कर सलाह माँगते हैं—

सुनु कपीश लंकापति वीरा ।
केहिं विधि तरिय जलधि गंभीरा ॥
संकुल मकर उरग झष जाती ।
अति अगाध दुस्तर सब भाँती ॥

व्यवस्थापक ही नहीं सामान्य नागरिक तथा कार्यकर्ता भी यदि सामूहिकता का लाभ उठाने के अभ्यस्त हैं तो विषम परिस्थितियों में भी मार्ग निकाल लेते हैं । सीता की खोज में निकले योद्धा जब अवधि पूरी होने पर भी कोई सूत्र नहीं पा सके तो उन्होंने भी सामूहिक परामर्श एवं चितन का मार्ग पकड़ा—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इहाँ विचारहिं कपि मन माहीं ।
बीती अवधि काज कछु नाहीं ॥
सब मिलि कहहिं परसपर बाता ।
बिनु सुधि लये करब का भ्राता ॥

उनकी सामूहिकता एवं सहयोग की प्रवृत्ति फलित हुई और संपाती से मित्रता करके क्रमशः अगले चरण पूरे करने में सफल हुए ।

सामूहिकता की अपनी अनौखी महत्ता है । राक्षसों से त्रस्त होकर सभी देवता, ऋषि आदि भगवान से प्रार्थना करते ही रहते थे । उससे मुक्ति के लिये प्रयास करते ही रहते थे किन्तु समाधान तभी निकाल सका जब सबने मिलकर प्रयास करना प्रारम्भ किया । भगवान ने भी उनकी प्रार्थना तभी सुनी जब वे सामूहिक रूप से एकत्रित होकर उन्हें पुकारने लगे । धर्म के पतन से व्याकुल होकर पृथ्वी सामूहिकता की शरण लेती हैं–

अतिसय देख धर्म की हानी ।
परम सभीत धरा अकुलानी ॥
धेनुरूप धरि हृदय विचारी ।
गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी ॥

वे सब मिल जुलकर ही आगे बढ़ते हैं–

सुर मुनि गंधर्वा मिलकर सर्वा गे विरंच के लोका ।

उनकी सामूहिकता से ब्रह्मा जी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । उन्होंने भी उन्हें भगवान के अवतार के लिए सामूहिक रूप से कदम बढ़ाने की सलाह दी । भगवान तक अपनी समस्या पहुँचाने के लिए भी वे सामूहिकता को भुलाते नहीं–

बैठे सुर सब करहिं विचारा ।
कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥

फिर उनका सामूहिक प्रयास सफल हुआ । भगवान ने अवतार लेने का आश्वासन दिया । ब्रह्मा जी ने उन्हें सामूहिकता और सहयोग की प्रवृत्ति अपनाये रख कर भगवान के कार्य के लिए तैयार रहने को सलाह दी । ब्रह्माजी जानते थे कि भगवान जब भी अवतार लेते हैं तब लोगों में सहयोग सद्भाव का विस्तार करते हैं । जो इस प्रकार की मनोवृत्ति के व्यक्ति होते हैं उन्हें ही अपना सहयोगी बनाते हैं । यह मर्म समझ कर देवताओं ने उनकी आज्ञा का तुरन्त पालन किया–

जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा ।
हरषे देव विलंब न कीन्हा ॥
बनचर देह धरी छिति माहीं ।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं ॥
गिरि तरु नख आयुध सब बीरा ।
हरि मारग चितवहिं रनधीरा ॥
गिरिकानन जहँ तहँ भरि पूरी ।
रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥

श्री रामचन्द्र जी अपनी वन यात्रा में जन-जन की सद्भावना जीतते हुए उन्हें स्नेह सूत्र में आबद्ध करते हुए चलते हैं, उनमें सहयोग वृत्ति जागृत करते चलते हैं । वन में इसी उद्देश्य से निकल पड़ते हैं और नगर में वह प्रवृत्ति जाग्रत रखने के लिये आग्रह करके जाते हैं । भरत के लिए उन्होंने यही संदेश छोड़ा कि सामूहिक हित को ध्यान में रखकर चलें । गुरु वशिष्ठ जी से भी यही आग्रह करते हैं–

सब के साज संभार गुसाईं ।
करबि जनक जननी की नाईं ॥

वन में वे वनवासियों में भी वही भाव भर देते हैं । जब कोल-भील मिलते हैं तो वे उन सबको सम्मान देते और सामाजिक गौरव का बोध कराते हैं ।

राम सकल वनचर परितोषे ।
कहि मृदु वचन प्रेम परिपोषे ॥

फलतः उनके जीवन में सामाजिकता के बीज अंकुरित हो जाते हैं । चित्रकूट में जब अयोध्यावासी और जनकपुर के नागरिक दल बल सहित पहुँचते हैं तो वनचरों का सामाजिक आतिथ्य उभरकर सामने आता है । लोग उनकी सराहना करते हैं तो वे निष्कपट भाव से यह स्वीकार करते हैं कि श्री राम ने ही उन्हें यह सामाजिक शिष्टाचार सिखाया है, अन्यथा वे तो लोगों की चोरी करके उन्हें सताया ही करते थे । वे कहते हैं-

इहइ हमारि बड़ी सिवकाई ।
लेहिं न बासन बसन चुराई ॥

भगवान राम इसी क्रम में राक्षसों के वध का प्रण करते हैं और असुरता के प्रतिकार के लिए भिन्न-भिन्न आश्रमों में जा-जाकर वहाँ के साधकों को जाग्रत करते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निशिचर हीन करउँ महि भुज उठाय पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाय-जाय सुख दीन्ह ॥

वे अपने इस अभियान में सफल भी हो जाते हैं । सबको एकत्रित करके असुरता के उन्मूलन की योजना समझाते हैं और उनसे अगले चरण बढ़ाने के सम्बन्ध में परामर्श मांगते हैं ।

जहँ लगि रहे अपर मुनि वृन्दा ।
हरषे सब विलोक सुख कंदा ॥
मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सबकी ओर ।
शरद इन्दु तन चितवत, मानहु निकर चकोर ॥
तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं ।
तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ ।
ताते तात न कहि समुझायउँ ॥
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही ।
जेहि प्रकार मारो मुनि द्रोही ॥

भगवान राम सहयोग देने और प्राप्त करने में कुशल हैं । उनके संगठन का अर्थ न तो आंतक है और न रूखी सैद्धान्तिकता । वे प्रेम भावना, उच्चस्तरीय संवेदना के आधार पर जन-भावना को सूत्रबद्ध करते हैं और अपने प्रयास में हर जगह सफल भी होते हैं । ऋषि वनचर आदि के अतरिक्त साथ-साथ गीधराज को भी अपना सहयोगी बना लेते हैं—

गीधराज सों भेट भइ, बहु बिधि प्रीति बढ़ाय ।
गोदाबरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाय ॥

इसी सहयोग भाव तथा संवेदना जनित सामाजिक दृष्टिकोण ने ही गीधराज जटायु को शहीदों में अग्रणी बना दिया । श्री राम को सीता के सम्बन्ध में पहली जानकारी उसी से मिली । आगे भी उनकी सहयोग और संगठन वृत्ति ही सफलता के द्वार पर द्वार खोलती चली गयी । रीछ वानरों को संगठित करके ही वे सीता की खोज करने और असुरत्व के विरुद्ध वातावरण तैयार करने में समर्थ हुए । उनके इस संगठन में भाँति-भाँति के वानर सम्मिलित थे ।

एहि बिधि होत बतकही, आये बानर जूथ ।
नाना बरन सकल दिसि, देखिय कीस बरूथ ॥

यह संगठन कितने विशाल स्तर पर किया गया था, इसका उल्लेख करते हुए भगवान शिव देवी पार्वती से कहते हैं—

बानर कटक उमा मैं देखा ।
सो मूरख जो करन चह लेखा ॥

जहाँ सामूहिकता और संगठन की शक्ति है वहाँ बड़े से बड़े काम खेल की तरह हो जाते हैं । वानर संख्या में ही अधिक नहीं थे उनमें सामूहिकता की वृत्ति तथा अनीति के प्रतिरोध के सामाजिक उतरदायित्व की बुद्धि भी प्रखरता से जाग चुकी थी । इसी लिए समुद्र पर पुल बनाने जैसा कठिन कार्य भी उन्होंने खेल की तरह कर डाला । जिसमें जैसी योग्यता थी उसको पूरे मनोयोग से लगाता गया ।

जामवंत बोले दोउ भाई ।
नल नीलहिं सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिर मन माहीं ।
करहु सेतु प्रयास कछु नाहीं ॥
बोलि लिये कपि निकर बहोरी ।
सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ॥
राम चरन पंकज उर धरहू ।
कौतुक एक भालु कपि करहू ॥
धावहु मर्कट विकट वरूथा ।
आनहु विटप गिरिन के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा ।
जय रघुवीर प्रताप समूहा ॥
अति उतंग गिरि पादप, लीलहिं लेहिं उठाय ।
आनि देहिं नल नीलहिं रचहिं ते सेतु बनाय ॥
सैल विसाल आनि कपि देहीं ।
कंदुक इव नल नील ते लेहीं ॥
बांधा सेतु नील नल नागर ।
राम कृपा जस भयउ उजागर ॥
बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा ।
देखि कृपानिधि के मन भावा ॥

रीछ वानरों की संघशक्ति और सहयोग वृत्ति देवताओं के लिए भी अजेय राक्षसों पर हावी हो गयी । उनके सामने राक्षस टिक नहीं पाते । रीछ वानरों की उपलब्धि को मानसकार अद्भुत कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भागत भट पटकहिं धरि धरनी ।
करहि भालु कपि अद्भुत करनी ॥

और इसी प्रकार सामूहिक सहयोग के बल पर राक्षसों का विनाश हुआ तथा रामराज्य की स्थापना हुई । किन्तु सामूहिकता के दृष्टिकोण का विकास और शिक्षण बराबर चलता रहा ताकि आदर्श समाज-व्यवस्था बराबर बनी रहे । अयोध्यावासी स्वयं भगवान के गुणों को जीवन में स्थान देते हैं तथा समाज को भी उनकी प्रेरणा देकर अपना सामाजिक उत्तरदायित्व निभाते हैं—

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं ।
बैठि परस्पर यहहि सिखावहिं ॥

भगवान राम भी सामूहिकता के दृष्टिकोण को बनाये रखने के लिये सामूहिक वार्ताओं द्वारा जन जीवन को प्रेरित करते रहते हैं ।

एक बार रघुनाथ बुलाये ।
गुरु द्विज पुरवासी सब आये ॥

बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन ।
बोले वचन भगत भव भंजन ॥

अपना सहयोगी योद्धाओं का बैर वापस करते हुए यही उपदेश देते हैं कि सार्वजनिक हित का दृष्टिकोण बनाये रखना । उसके लिये प्रयत्नशील रहना भक्ति का ही एक अंग है ।

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्व हित, जानि करेहु अति प्रेम ॥

रामचरितमानस से सामाजिक, दृष्टिकोण सहयोग और संगठन की महत्ता समझकर प्रेरणा लेकर यदि हम इस दिशा में सक्रिय हो सकें तो कठिन से कठिन बाधाओं को पार करते हुए सुख शांति एवं समृद्धि युक्त आदर्श समाज की स्थापना करने में सफल हो सकते हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ उपयोगी संकेत

'रामचरित मानस' बड़ा लोकप्रिय ग्रन्थ है, और उपयोगी भी । किन्तु उसकी उपयोगिता का लाभ जन-जीवन को मिल नहीं पा रहा है । कई बुद्धिवादी व्यक्ति इस ग्रन्थ के कुछ विवादास्पद प्रसंगों को लेकर इतने नाराज हो जाते हैं कि उसके अन्य सभी उपयोगी और निर्विवाद रूप से प्रामाणिक अंशों की भी उपेक्षा कर जाते हैं । श्रद्धालु वर्ग में से भी कुछ तो केवल पुण्य कमाने के लिए उसके पाठ तक सीमित रह जाते हैं । कुछ उसके विचार पक्ष में उतरते भी हैं तो ग्रन्थ के एक-एक शब्द को प्रामाणिक सिद्ध करने के प्रयास में उन्हीं विवादस्पद प्रसंगों में उलझ कर रह जाते हैं, जिनमें आलोचक-वर्ग उलझा रह जाता है । उन्हीं गिने-चुने विवादास्पद प्रसंगों पर दोनों पक्षों का बौद्धिक दंगल होता रहता है । जन साधारण उसे देखकर एक कौतुक का मजा भले ले लें, ग्रन्थ के वे अंश जिनसे जन-जीवन को सही दिशा मिल सके, न तो उभारे जाते हैं और न जनता उन्हें समझकर लाभ उठा पाती है ।

आवश्यकता है ग्रन्थ के उपयोगी पक्ष को उभारने की । देश काल एवं पात्र के अनुसार अनेक बातें उचित और अनुचित की परिधि में आती-जाती रहती हैं । अस्तु या तो सभी उचित अथवा सभी अनुचित का मिथ्या आग्रह छोड़कर विवेकपूर्वक उपयोगी तत्वों को उभारने तथा जन-जीवन में प्रविष्ट कराने का प्रयास किया जाना चाहिये । कुछ विवादास्पद प्रकरणों में ही उलझकर ढेरों उपयोगी प्रकरणों के लाभ से वंचित रह जाना कोई समझदारी नहीं । खजाने के कुछ सिक्कों की प्रामाणिकता शेष सिक्कों का उपयोग किया जाय यही उचित है । इससे खजाने की उपयोगिता घटती नहीं । इसी प्रकार 'रामचरित मानस' के कुछ विवादास्पद प्रसंगों को छोड़कर शेष का लाभ उठाने का उपक्रम किया जाय तो उससे न तो ग्रन्थ की उपयोगिता कम होगी और न निरर्थक विवाद बढ़ेगा ।

प्रस्तुत भाग में यही प्रयास किया गया है । विद्वान् अपनी विद्वता की धाक जमाने के लिये विवादास्पद प्रसंगों की ही चर्चा करते हैं और पाठक कौतूहलवश उन्हीं चर्चाओं को सुनना और पढ़ना चाहते हैं । यह दोनों ही कार्य प्रयासों की सार्थकता घटाने वाले सिद्ध होते हैं । इसे उन चर्चाओं से मुक्त रखा गया है । विवादास्पद प्रसंग ही सब कुछ नहीं हैं । वे सही हों या गलत, उपयोगी हो या अनुपयोगी इस पर शंका हो तो रहे, किन्तु यह तथ्य एकदम स्पष्ट है कि उन्हे छोड़ देने पर भी ग्रन्थ में इतने उपयोगी तत्व इतनी प्रचुर मात्रा में हैं कि उनके उपयोग से भी वे सभी लाभ उठाये जा सकते हैं जिनके लिए जन-जीवन लालायित रहता है और सत् पुरुष प्रयास किया करते हैं ।

''राम चरित मानस प्रगतिशील प्रेरणा'' उद्देश्य को पूरी तरह स्पष्ट करता है । प्रेरणा के अभाव में जीवन की शक्तियाँ कुण्ठित-सी निष्क्रिय-सी पड़ी रहती हैं । प्रेरणा गलत दिशा में मिल जाये तो व्यक्ति गलत मार्ग पर ही पूरी ताकत से चल पड़ता है और यदि सही प्रेरणा मिले तो सही दिशा पकड़ लेता है । प्रेरणा ऐसी हो जो दुर्गति की दिशा में नहीं प्रगति की दिशा में सद्गति की दिशा में मनुष्य को ठेल दे ।

इस दृष्टि से रामचरित्र प्रेमी महानुभाव स्वयं प्रेरणा पाने के लिये भी इस का अध्ययन कर सकते हैं और जन साधारण तक सद्प्रेरणा पहुँचाने के उद्देश्य से भी । स्वयं प्रेरणा प्राप्त करने के लिये अध्ययन और चिंतन का सहज क्रम चलाया जाना कठिन नहीं । जन जीवन को प्रेरणा देने के लिये भी इस पुस्तक के आधार पर सामान्य बौद्धिक क्षमता वाले परिजन थोड़ा-सा प्रयास और श्रम करके अपने को तैयार कर सकते हैं । छोटी-बड़ी सत्संग गोष्ठियों अथवा सभाओं में इस आधार पर प्रवचन द्वारा श्रोताओं को रामचरित मानस के माध्यम से जीवनोत्कर्ष की दिशा दी जा सकती है । इस तैयारी में निम्नलिखित सुझाव उपयोगी तथा लाभदायक सिद्ध होंगे ।

(१) वक्ता ध्यान रखें कि उन्हें विद्वता प्रदर्शन के लिये नहीं लोगों तक उपयोगी बातें पहुँचाने के लिये ही कुछ बोलना है । स्थानीय परिस्थितियों, श्रोताओं के स्तर और आवश्यकता के अनुसार प्रसंग चुनकर उन्हें सुनाये जा सकते हैं ।

(२) विवादास्पद प्रसंगों की चर्चा न करें न होने दें । कोई श्रोता यदि उस प्रकार के प्रश्न करें तो भी उन प्रसंगों को आगे न बढ़ाया जाय । उनसे नम्रतापूर्वक कह दिया जाय कि हम रामायण के हर प्रसंग और हर शब्द को सही सिद्ध करने नहीं आये है, रामचरितमानस का अध्ययन हंस वृत्ति से करने का विधान है । हमें जो जीवनोपयोगी मोती इसमें दीख पड़े वह आपके सामने रख दिये । यदि इनसे आप लाभ उठा सकें तो हमें प्रसन्नता होगी । जिन प्रसंगों की चर्चा आप चलाना चाहते हैं उनके कारण संभवत: आपके और हमारे जीवन की किसी भी समस्या का समाधान रुका नहीं है । केवल बुद्धि के कौतुक के लिये चर्चा का आग्रह छोड़ सकें तो अच्छा है, अन्यथा जितनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेवा हम से हो सकी हमने कर दी शेष का समाधान किन्हीं मानस मर्मज्ञ से करालें । ऐसा कहने से निरर्थक प्रश्नोत्तरों के चक्कर से सहज ही बचा जा सकेगा ।

(३) भाषण का क्रम और ढंग भी इसी उद्देश्य के अनुरूप रहे । प्रवचन का भाव यह नहीं रखा जाय कि रामचरित मानस में अमुक बात लिखी है इसलिये ही उसे मान लेना चाहिए, बल्कि यह रखें कि वर्तमान समय में विवेकपूर्ण मार्ग यही है और इस विवेकपूर्ण मार्ग का समर्थन रामचरित मानस में भी मिलता है ।

(४) इस संदर्भ प्रस्तुत सभी प्रसंग जीवन को सद्प्रेरणा देने वाले ही हैं । किन्तु नये वक्ता उन सभी का निर्वाह नहीं कर सकते । इसी प्रकार एक भाषण में उस विषय के अन्तर्गत पुस्तक में छिपी सभी चौपाइयों-दोहों का समावेश संभव नहीं । उनमें से कुछ का ही उपयोग किया जा सकता है । इसलिये आवश्यक है कि पहले सामान्य व्यावहारिक विषयों पर भाषण तैयार किये जावें और उनके लिये आवश्यक चौपाइयाँ उपयुक्त संख्या में निर्धारित कर ली जावें ।

(५) युग निर्माण योजना के अन्तर्गत कथा आयोजनों के लिये तो कार्यकर्ताओं को कुछ विषयों का निर्धारण करके उन्हीं की तैयारी और उपयोग करना अधिक सुविधाजनक रहेगा । इस दृष्टि से नीचे कुछ विषय तथा उनके संदर्भ दिये जा रहे हैं । परिजन उन्हीं के माध्यम से आयोजनों में सुविधापूर्वक प्रभावशाली भाषण शृंखला चला सकेंगे । विषय इस प्रकार हैं—

१. रामकथा का उद्देश्य जनकल्याण २. धर्म अर्थात् कर्तव्य परायणता ३. कर्मफल की अनिवार्यता ४. संत असंत, वेष से नहीं गुण कर्म स्वभाव से ५. अपने दोष हटायें पात्रता बढ़ायें ६. गुण ग्राहक बनें ७. ज्ञान और भक्ति में भेद नहीं ८. दाम्पत्य जीवन की मर्यादाएँ ९. पारिवारिक शील शिष्टाचार १०. संतान के प्रति दृष्टिकोण और कर्तव्य ११. सामूहिकता सहकार, संगठन १२. अनीति के विरुद्ध संघर्ष ।

यह १२ विषय एक आयोजन शृंखला के लिये पर्याप्त हैं । साप्ताहिक आयोजनों में प्रथम छः दिन दो-दो भाषणों के क्रम से १२ भाषण पूरे किये जा सकते हैं । अन्तिम दिन पूर्णाहुति के बाद सामान्यतः सभाएँ नहीं होती । यदि हों तो इस भाग के अन्त में १. सद्बुद्धि, २. विवेक, ३. यज्ञ ४. रामपरायण ही नहीं गुणपरायण बनें, सम्बन्धी लेखों के आधार पर भाषण तैयार किये जा सकते हैं । आवश्यकता अथवा सुविधा की दृष्टि से कार्यकर्तागण चाहे तो १२ भाषणों में से किन्हीं को हटा कर इन्हें उनके स्थान पर भी रख सकते हैं । इन विषयों पर संतुलित भाषण सुविधापूर्वक तैयार किए जा सकें इसके लिये नीचे उनके संदर्भ दिये जा रहें हैं—

(१) राम कथा का उद्देश्य जनकल्याण– इस सबंन्ध में पृष्ठ ३५८ पर एक पूरालेख प्रकाशित है । समय का ध्यान रखते हुए इसमें से ही भाषण के प्रसंग चुने जा सकते हैं ।

(२) धर्म अर्थात् कर्तव्यपराणता:– इस विषय पर पुस्तक के पृष्ठ १८० से १९२ तक के लेख से विषयवस्तु का चुनाव किया जा सकता है ।

(३) कर्मफल की अनिवार्यता:– इस भाषण के लिये पृष्ठ २१२ से आरम्भ लेख कर्म और उसका प्रतिफल का सहारा लिया जाय ।

(४) संत असंत, वेष से नहीं गुण कर्म स्वभाव से:– संत असंत-देव दानव लेख में पृष्ठ १३२ से १४६ के अन्तर्गत पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है ।

(५) अपने दोष हटायें, पात्रता बढ़ायें– इस विषय के प्रतिपादन के लिये पृष्ठ १२७-१२८ पर मानस रोगों का प्रकरण देखा जाय । मनोविकारों तथा उनकी प्रतिक्रियाओं का उल्लेख इस स्थल पर है । पृष्ठ १२९-३० पर उनके उपचार के संकेत हैं । आंतरिक शक्तियों के विकास का महत्त्व तथा उनका स्वरूप समझाने के लिय पृष्ठ ८८ पर दिये गये विजयरथ प्रकरण को लिया जाना चाहिए । इतने से यह भाषण पर्याप्त प्रभावशाली बनाया जा सकता है ।

(६) गुण ग्राहक बनें:– पृष्ठ ८९ से ११४ तक श्री राम उनके सखाओं और भक्तों के गुणों का उल्लेख किया गया है उन्हीं में से समय की सीमा के अनुसार प्रसंग चुन लेना चाहिये ।

(७) ज्ञान और भक्ति में भेद नहीं:– पृष्ठ ६८ पर इस विषय पर लेख है । ज्ञान और भक्ति परस्पर पूरक अथवा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं यह तथ्य भाषण में सिद्ध किया जाना चाहिए ।

(८) दाम्पत्य की मर्यादायें:– इस भाषण के लिए पृष्ठ २३० के अन्तिम पैराग्राफ से प्रारम्भ किया जा सकता है । फिर पृष्ठ २३३ तक दाम्पत्य में नारी की उपेक्षा न करने, समान अधिकार आदि का प्रसंग है । इसी शृंखला में पत्निव्रत वाला प्रकरण (पृष्ठ २३७) तथा पति-पत्नी की अनन्य एकता (पृष्ठ २४४) के प्रसंग भी जोड़ देने चाहिए । इतने प्रयास से भाषण का गठन सुन्दर बन जायेगा ।

(९) पारिवारिक शील शिष्टाचार :- इस भाषण में बड़ों का छोटों के प्रति-छोटों का बड़ों के प्रति तथा समान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवस्था वालों के परस्पर के शील शिष्टाचार का उल्लेख किया जाना चाहिए । इसके लिये पृष्ठ २७५, २८३ तथा २५३ के लेखों में बच्चों, भाइयों तथा ससुराल पक्ष के शिष्टाचार का उल्लेख हैं । हर अध्याय से थोड़ी-थोड़ी चौपाइयाँ चुनकर भाषण को परिपूर्ण बना लेना चाहिए ।

(१०) संतान के प्रति दृष्टिकोण तथा कर्तव्य:– इस प्रसंग में पृष्ठ २६१ के लेख 'सन्तान' की मर्यादा और 'जिम्मेदारी' तथा २७८ से प्रारम्भ होने वाले लेख से अभिभावकों के कर्तव्य विषयक प्रसंग मिला कर भाषण का संतुलन बनाया जाना चाहिए ।

(११) सामूहिकता सहकार एव संगठन की प्रवृत्ति:– इस विषय पर पुस्तक के अन्त में विशेष लेख जोड़ा गया है । उसमें से भाषण के लिये पर्याप्त प्रसंग चुने जा सकते हैं ।

(१२) अनीति के विरुद्ध संघर्ष:– इस विषय पर एक पूरा लेख पृष्ठ ३३१ पर है । उसमें से प्रसंग चुनकर समय की अवधि के अनुरूप भाषण तैयार किया जा सकता है ।

इन भाषणों का क्रम भी इसी प्रकार रखा जा सकता है । आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत बदलना पड़े तो कोई हानि नहीं ।

भाषण के लिये दोहे चौपाई आदि का निर्धारण करते समय यह बातें भी ध्यान में रखें–

(१) दोहे चौपाई यदि याद किये जा सकें तो सबसे अच्छा है । यदि याद न किये जा सकें तो उन्हें बार-बार पढ़कर यह स्थिति प्राप्त कर लेना चाहिए कि थोड़े संकेत से उन्हें बोला जा सके । ऐसा होने से भाषण के बीच मोटे अक्षरों में नोट की हुई चौपाइयाँ सामने रखकर उन पर निगाह डालते हुए सुविधापूर्वक प्रभावशाली ढंग से भाषण किया जा सकता है । निर्दिष्ट चौपाइयों में से जो अपनी स्मृति के समीप हो उन्हें चुनाव में प्राथमिकता दें । परन्तु ध्यान रखें कि जो चौपाइयाँ पहले से याद उन्हें विषय में जबरदस्ती ठूंसा न जाय । ऐसा करने से सारा विषय ही लड़खड़ा जायेगा ।

(२) जिन चौपाइयों को भाषण में स्थान दें उनसे सम्बन्धित कथा प्रसंग की जानकारी वक्ता को होनी चाहिये । इससे भाषण में निखार आता है । हर चौपाई या दोहे के आगे पीछे के घटना क्रम का संकेत देकर श्रोताओं को यह बतलाना चाहिए कि यह बात किन परिस्थितियों में कही गयी है । इन टिप्पणियों को अनावश्यक रूप से लम्बा न किया जाय परन्तु इतना संक्षिप्त भी न रखा जाय कि सामान्य श्रोता उन्हें समझा ही न सकें ।

(३) भाषण में कितने दोहे चौपाइयों को स्थान दिया जाय इसका निर्णय समय की अवधि तथा व्याख्या करने की अपनी क्षमता पर ध्यान रखकर किया जाय । जो वक्ता रोचक ढंग से व्याख्या अधिक कर सकते हैं वे कम चौपाइयों से भी काम चला सकते हैं, किन्तु जो अधिक व्याख्या नहीं कर सकते उन्हें अधिक संख्या में दोहे चौपाइयों तथा कथा प्रसंगों का उपयोग करना चाहिए ।

(४) ध्यान रहे कि हमारा उद्देश्य जनता तक सही विचार पहुँचाना तथा दिशा-निर्देश देना है । रोचक उसे बनाया जा सके तो प्रसन्नता की बात है, किन्तु रोचकता के प्रयास में मूल विषय अस्त-व्यस्त न हो जाय यह बात स्मरणीय है । प्राथमिकता उद्देश्य को दी जाय रोचकता को नहीं ।

इन संकेतों के आधार पर रामचरित मानस का उपयोग करके विचारशील एवं भावना सम्पन्न व्यक्ति, स्वयं भी उल्लेखनीय लाभ उठा सकेंगे, समाज का हित साधन कर सकेंगे तथा रामचरित मानस तथा मानसकार के प्रति सार्थक श्रद्धांजलि अर्पित कर सकेंगे ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वाल्मीकि रामायण से प्रगतिशील प्रेरणा

उद्देश्य— मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के जीवन से प्रेरणा लेकर संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने उसके चरित्र का गान अपनी शैली में किया है । उसमें हिन्दी में संत तुलसीदास कृत ''रामचरित मानस'' और संस्कृत में महर्षि वाल्मीकि कृत ''रामायण'' ने अपना विशेष स्थान बना रखा है। महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि और रामचरित को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने वाले प्रथम मनीषी का गौरवपूर्ण पद भी प्राप्त है । इतने पर भी तुलसी कृत ''रामचरित मानस'' के जन भाषा में होने के कारण अधिक लोक-प्रिय हो गया तथा जन-जन के कंठ में स्थान पा गया । इसीलिए लोक शिक्षण के प्रयास में पहला स्थान उसे दिया गया। फिर भी वाल्मीकि रामायण की अपनी विशेषता समाप्त नहीं हो जाती। उन्होंने श्री राम को मर्यादा पुरुषोत्तम्, लोक नायक के रूप में उभारा है। इस लिए वाल्मीकि के राम के जीवन में मनुष्योचित उतार-चढ़ाव अधिक स्वाभाविकता से समाविष्ट हो सके हैं। तुलसीदास जी ने श्रीराम का दिव्य अलौकिक रूप अधिक उभारा है। दोनों के प्रयास के पीछे उच्च उद्देश्य रहे हैं और अपनी साधना द्वारा उन्होंने उन श्रेष्ठ उद्देश्यों की स्थापना में सफलता भी पायी है । इसलिए दोनों ही अपने-अपने स्थान पर अनुपम हैं और लोक शिक्षण की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक कहे जाने योग्य हैं ।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का उभार तुलसी कृत रामचरित मानस में अच्छे ढंग से बन पड़ा है तो कुछ का वाल्मीकि रामायण में। इस संग्रह में उन उपयोगी पक्षों के प्रतिपादनों को प्राथमिकता दी गयी है जो 'रामचरित मानस' के आधार पर गठित भाग में उतनी सजीवता से नहीं उभारे जा सके थे। इस दृष्टि से यह दोनों ही खण्ड श्री राम के आदर्श चरित्र को उभारने में, उनके अनुज लक्ष्मण और भरत की तरह अपने-अपने स्तर पर अनुपम कही जाने योग्य हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आस्तिकता प्रकरण

आस्तिकता को ईश्वर विश्वास के साथ से भी कहा-समझा गया है । ईश्वर का अर्थ कोई मूर्ति, व्यक्ति अथवा नाम विशेष न होकर एक उच्चतम्, श्रेष्ठतम् सर्वव्यापी सत्ता है, जिसे विभिन्न नामों और रूपों के माध्यम से याद रखने का प्रयास किया जाता है ।

उच्चतम सत्ता के सम्बन्ध में सही दृष्टिकोण होना तथा उसको बराबर याद रखना मनुष्य के उत्थान और विकास के लिए आवश्यक है । अपने संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण ही मनुष्य उचित की अपेक्षा करके अनुचित रीति से सोचने और करने लग जाता है । यही उसकी व्यक्तिगत दुर्गति एवं सामाजिक पतन का कारण बनता है । ईश्वर के नाम से जानी समझी जाने वाली उच्चतम् सत्ता उसके अनुरूप उदात्त भावनाओं, उत्कृष्ट विचारणाओं, श्रेष्ठ आदर्शों सिद्धान्त एवं नियम-मर्यादाओं के प्रति आस्थावान व्यक्ति स्वयं महान् बनता है और अगणित मनुष्यों को सही राह पर बढ़ाने में सफल होता है ।

ईश्वर के नाम से न सही श्रेष्ठ आदर्शों, मान्यताओं, नियमों एवं कर्तव्यों के रूप में भी उसका बोध और स्मरण किया जा सकता है । मनुष्य मात्र, प्राणि मात्र के प्रति सहानुभूति, सामाजिक आदर्शों, मानवीय सिद्धान्तों के रूप में भी उसे समझा और अपनाया जा सकता है । इसलिए उस सत्ता के प्रति तथा उससे सम्बन्धित व्यक्ति, भक्त, सन्त, महापुरुषों आदि के आचार-विचारों के प्रति मनुष्य का दृष्टिकोण साफ होना चाहिए तभी उसका लाभ ठीक प्रकार उठाया जा सकता है ।

अवतारी पुरुष एवं उनके लक्षण

महर्षि वाल्मीकि ने रामायण में अवतार के उद्देश्य और सिद्धान्त को सुन्दर ढंग से प्रतिपादित किया है । उनका मत है कि परमात्मा तत्कालीन विकृतियों के समाधान के लिए किसी सर्वगुण सम्पन्न ऐसे व्यक्तित्व का सृजन कर देते हैं जो अपने पुरुषार्थ द्वारा समाज की विकृतियों का समाधान कर अपने नेतृत्व में लोगों को इच्छित दिशा में बढ़ने की प्रेरणा देता है । उत्तर काण्ड में वामन भगवान के सम्बन्ध में बलि कहते हैं—

प्रादुर्भावं विकुरुते येनैतन्निधन नयेत् ।
पुनरेवात्मनात्मानमधिष्ठाय स तिष्ठति ॥

ये किसी ऐसे को उत्पन्न कर देते हैं, जो उपद्रवी का नाश कर डालता है और यह स्वयं अधिष्ठाता के अधिष्ठाता ही बने रहते हैं ।

अवतारी पुरुष अपनी श्रेष्ठता प्रकट करने के उद्देश्य से आचरण नहीं करते । उनका उद्देश्य यह होता है कि मनुष्य अपने जीवन में श्रेष्ठता को जागृत करने का मर्म एवं ढंग उनको देखकर सीख सके । इसलिए वे अपने आपको सामान्य मनुष्य की मर्यादा में रखकर ही कार्य करते हैं । श्रीराम रावण वध के बाद देवताओं से कहते हैं—

अब्रवीत्रिदशश्रेष्ठान्रामो धर्मभृतां वरः ।
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ॥

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ने उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा मैं तो अपने को महाराज दशरथ का पुत्र राम नाम का एक मनुष्य ही मानता हूँ ।

किन्तु वे महान् उद्देश्यों को लेकर आते हैं और उसको पूरा करके ही जाते हैं । अपने लक्ष्य को वे भूलते नहीं । श्रीराम काल द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति की सूचना प्राप्त होने पर अपने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करते हुए कहते हैं—

त्रयाणामपि लोकानां कार्यार्थं मम सम्भवः ।
भद्रं तेऽस्तु गमिष्यामि यत एवाहमागतः ॥

तीनों लोकों का कार्य सिद्ध करने ही के लिए मेरा यह अवतार है । तुम्हारा मंगल हो । मैं जहाँ से आया हूँ, वहाँ ही चला जाऊँगा ।

जागृतात्मा व्यक्ति में भगवान की आभा प्रकट होती है । आत्मा परमात्मा का ही अंश है और ईश्वर अपने आपको अनेक रूपों में व्यक्त करते हैं । अपनी वास्तविकता को न समझ पाने के कारण ही हम मूर्छित से रहते हैं । यदि हम अपनी शक्ति को समझ जायें तो कठिनाइयों पर विजय पा सकते हैं । अवतारी पुरुष इस रहस्य को जानते हैं । लंका में युद्ध के समय लक्ष्मण चरित्र में यह तथ्य बड़ी सुन्दरता से उभरकर सामने आता है । लक्ष्मण जी युद्ध में घायल होकर मूर्छित हो गये । श्री राम ने उन्हें आत्म-स्मरण कराया । उन्हें बोध हुआ और—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मण: शत्रुसूदन: ।
विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यपुस्मरन् ॥

शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी अपने को अचिन्त्य विष्णु भगवान का अंश समझ सचेत हुए । उनकी छाती का घाव पुर गया ।

अवतार के रूप में दिव्य सत्ता मानवी पुरुषार्थ के माध्यम से प्रस्फुरित होती है । अवतारी पुरुष इसीलिए मानवीय पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं करते वरन् उसे बड़ी तत्परता से पूरा करते हैं । लक्ष्मण लंका युद्ध के अवसर पर श्रीराम को यही स्मरण दिलाते हुए कहते हैं–

दिव्यं च मानुषं च त्वमात्मनश्च पराक्रमम ।
इक्ष्वाकुवृषभावेक्ष्य यतस्व द्विषतां वधे ॥

हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ ! आप अपने दिव्य और मानवी पराक्रम की ओर देखकर, शत्रुवध का प्रयत्न कीजिये ।

भगवान के अवतार का उद्देश्य धर्म रक्षा तथा अधर्म का नाश होता है, वे स्वत: तो अपने इस कर्तव्य को समझते ही हैं अन्य पात्र भी उसे जानते हैं । राक्षस मारीच रावण से कहता है–

रामो विग्रहवान्धर्म: साधु: सत्यपराक्रम: ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव ॥

राम तो धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं, वे बड़े साधु और सत्यपराक्रमी हैं । जिस प्रकार इन्द्र देवताओं के नायक हैं, उसी प्रकार राम भी सब लोगों के नायक हैं ।

सत्पुरुष तो श्रीराम के इस रूप से परिचित हैं ही । रामायण के प्रारम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि को राम का परिचय देते हुए नारद जी कहते हैं–

एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वर: ।
एष बुद्धयाधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥

वे धर्म की मूर्ति ही हैं, तथा तेजस्वी बुद्धिमान एवं लोक कल्याण के लिए सब प्रकार से तप साधना में तत्पर हैं ।

कर्तव्य-परायणता ही धर्म है तथा संयम और सेवा द्वारा ही धर्म लाभ और उसका संरक्षण सम्भव है, उसी प्रसंग में नारद कहते हैं–

धर्मज्ञ: सत्यसन्धश्च प्रजानां च हिते रत: ।
यशस्वी ज्ञानसंपन्न शुचिर्वश्य: समाधिमान् ॥

वे धर्म के जानने वाले सत्य-प्रतिज्ञ प्रजा की भलाई करने वाले कीर्तिवान, ज्ञानी, पवित्र, मन और इन्द्रियों को वश में करने वाले तथा योगी हैं ।

स च सर्वगुणोपेत: कौसल्यानन्दवर्धन: ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥

वे सद्गुणों के भण्डार, माँ कौशल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले, समुद्र के समान गम्भीर तथा हिमालय के समान धैर्यवान एवं दृढ़ हैं ।

राम में गुण एवं विभूतियाँ इतनी प्रखर दिखाई देती हैं कि उनकी उपमा मनुष्यों से नहीं दी जा सकती । उनमें अतिमानवीयता, ईश्वर की झलक मिलती है । नारद जी आगे कहते हैं–

विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शन: ।
कालाग्निसदृश: क्रोधे क्षमया पृथिवीसम: ॥

वे विष्णु के समान पराक्रमी, चन्द्रमा के समान शीतल एवं प्रिय, क्रोधित होने पर मृत्यु के समान तथा पृथ्वी के समान क्षमा करने वाले हैं ।

धनुषयज्ञ के प्रकरण में राम की सफलता के बाद राजा जनक ऋषि विश्वामित्र जी से ऐसे ही भाव व्यक्त करते हैं–

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मज: ।
अत्यद्भुत मचिन्त्यं च न तर्कितमिदं मया ॥

हे भगवान ! मैंने दशरथ पुत्र राम का अद्भुत, अचिन्त्य तथा तर्क से परे, पराक्रम देखा ।

महावीर हनुमान भी इन्हें इसी रूप में देखते हैं । अशोक वाटिका में वे सीताजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं–

स्थानक्रोध: प्रहर्ता चं श्रेष्ठो लोके महारथ: ।
बाहुच्छायातवष्टब्धो यस्य लोको महात्मन: ॥

जो उचित क्रोध कर दण्ड देने वाले हैं, जो सर्वश्रेष्ठ और महारथी हैं, जिनकी भुजा की छाया में रह कर लोग सुखी रहते हैं ।

उनके सहयोगी और भक्त ही नहीं उनके विरोधी राक्षस भी उनकी विशेषताओं को स्वीकार करते हैं । समुद्र के किनारे रामदल की सूचना देते हुए रावण के गुप्तचर रावण को बताते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यादृशं तस्य रामस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लंङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥

जिस प्रकार का श्रीराम का रूप है जैसे उनके हथियार हैं; उनको देखते हुए कहा जा सकता है कि श्रीराम अकेले ही लंका का नाश कर सकते हैं । लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण, इन तीनों की सहायता की भी उनको आवश्यकता नहीं है ।

रामो नाम महातेजाः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ।
दिव्यास्त्रगुणसम्पन्नः पुरन्दरसमा युधि ॥

हे रावण ! श्रीरामचन्द्र बड़ा तेजस्वी और धनुषधारियों में श्रेष्ठ हैं । युद्ध में दिव्यास्त्रों के चलाने में उसकी इन्द्र की तरह सामर्थ्य है ।

यो भिन्द्याद्गगनं वाणैः पर्वतानपि दारयेत् ।
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ॥

जो अपने वाणों से आकाश को छेद सकते हैं और पर्वतों को विदीर्ण कर सकते हैं, जिनका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र की तरह है ।

यस्मिन्न चलते धर्मो यो धर्मान्नातिवर्तते ।
यो ब्राह्ममस्त्रं वेद श्च वेद वेदविदां वरः ॥

जो धर्म से न तो कभी डिगते हैं और न धर्म की मर्यादा का उल्लंघन ही करते हैं, जो ब्रह्मास्त्र का चलाना जानते हैं, जो वेदों को केवल जानते ही नहीं, बल्कि वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ माने जाते हैं ।

दूतों के वर्णन की सार्थकता लंका युद्ध में प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है । राक्षस उनके युद्ध कौशल से चकित रह जाते हैं । उन्हें बार-बार लगता है कि एक नहीं हजारों राम युद्ध कर रहे हैं—

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनःपश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥

कभी तो उन राक्षसों को युद्ध-भूमि में हजारों श्रीरामचन्द्र दिखलाई पड़ते और कभी वे एक ही श्रीरामचन्द्र जी को देखते थे ।

असुरता के निवारण के लिए किये गये राम के संघर्ष की उपमा अन्यत्र नहीं मिलती यह तथ्य युद्ध देखने वाले गन्धर्व और अप्सराओं के मुख से व्यक्त होता है—

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम् ॥

"श्रीराम-रावण के युद्ध की उपमा श्रीराम-रावण ही का युद्ध है ।" इस प्रकार कहते हुए वे सब श्रीरामचन्द्र और रावण का युद्ध देख रहे थे ।

अवतारी पुरुषों की आत्मीयता का विस्तार मनुष्य मात्र से आगे बढ़कर प्राणिमात्र तक हो जाता है । सीता खोज के प्रकरण में जामवन्त जी वानरों को समझाते हुए कहते हैं—

तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ।
प्रियं कुर्वन्ति रामस्य त्यक्त्वा प्राणान्यथा वयम् ॥

क्या पशु और क्या पक्षी, जितने प्राणी हैं, वे सब अपने प्राणों को देकर भी श्रीरामचन्द्रजी के प्रियकार्य को वैसे ही करते हैं, जैसे कि हम सब ।

राम अपनी श्रेष्ठता का निर्वाह बराबर करते रहे, उन्हें कोई विचलित न कर सका । सीता वियोग की दुःखपूर्ण स्थिति आ पड़ने पर लक्ष्मणजी उनसे सन्तुलित रहने का आग्रह करते हुए उन्हें उन मूल विशेषताओं का स्मरण दिलाते हैं जिनसे व्यक्ति महान् बनता है । लक्ष्मणजी कहते हैं कि हे राम आपको शोक में विचलित नहीं होना चाहिए क्योंकि—

भवा न्कथापरो लोके भावन्दैवपरायणः ।
आस्तिको धर्मशीलश्च व्यवसायो च राघव ॥

आप कर्मठ हैं, दिव्यता को पोषण देने वाले हैं, आस्तिक हैं, धर्मशील हैं और उद्यमी हैं ।

श्री राम अपने गुणों के विकास और रक्षण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं । सन्ध्योपासना-नियमादि का वे दृढ़ता से पालन करते हैं । विवाह के बाद श्री राम की दिनचर्या के सम्बन्ध में वाल्मीकि जी लिखते हैं—

तत्र श्रृण्वन्मुखा वाचः सूत मागध वन्दिनाम् ।
पूर्वां सन्ध्या मुपासीनो जजाप यतमानसः ॥

प्रातःकाल मागध, सूत और वन्दीजनों की मंगल वाणी सुनकर राम ने मन को नियन्त्रित कर प्रातः सन्ध्योपासन एवं गायत्री जप किया ।

राम का गायत्री जप और उपासना आदि केवल औपचारिक नहीं है । राम उन्हें जीवन में इस गहराई से अपनाते हैं कि वे तद्रूप हो जाते हैं । अपने अवतार के उद्देश्य को पूरा करने की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्षमता उनसे प्राप्त कर दिखाते हैं। यहाँ तक कि वेद गायत्री आदि उनके अनुगामी बन जाते हैं। राम के महाप्रयाण प्रसंग में लिखा है—

वेदा ब्राह्मण रूपेण गायत्री सर्वरक्षिणी।
ओंकारोऽथ वषट्कारः सर्वे राममनुव्रताः॥

ब्राह्मण रूप धारी वेद सबकी रक्षा करने वाली गायत्री, ओंकार और वषट्कार सब राम के साथ-साथ चले।

दिव्यता को इस स्तर तक जीवन में स्थान देने के कारण ही वे अपने महान् उद्देश्य में सफल हो सके। नारदजी महर्षि वाल्मीकि से कहते हैं—

बभौ रामः संप्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्य सचराचरम्॥

सब देवताओं से पूजित होकर राम सन्तुष्ट हुए तथा उनके इस महान् कार्य से तीनों लोकों के सभी प्राणियों का दुःख दूर हो गया।

इस प्रकार श्रीराम में मनुष्य शरीर की मर्यादाओं के ठीक-ठीक पालन के साथ-साथ ईश्वरीय शक्तियों का समावेश स्पष्ट दिखाई देता है। इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम् कह कर सम्बोधित किया जाता है।

भक्ति और भगवान के सम्बन्ध

भक्त रूप और वेष बनाने से ही नहीं बन जाते, वे पूरी तरह प्रभुसमर्पित जीवन जीते हैं। वे मानते हैं कि सारी शक्तियाँ और विभूतियाँ भगवान द्वारा उन्हीं का कार्य करने के लिए प्राप्त हुई हैं। अतः न तो वे उनका दुरुपयोग होने देते हैं, न सदुपयोग में ढिलाई होने देते हैं और न अपने कार्य के बदले में प्रभु से कुछ चाहते हैं। संसार की दृष्टि में वे अद्भुत पुरुषार्थ करते हैं, आत्म-विश्वासपूर्वक बड़े से बड़ा कार्य कर दिखाते हैं, फिर भी कर्तापन का किंचित भी अहंकार नहीं होता, वे सारा श्रेय भगवान को ही देते हैं।

भरत जी ऐसे ही भक्त हैं। राम वन-गमन के समय राज्य संचालन का उत्तरदायित्व वे स्वीकार तो कर लेते हैं किन्तु राजा स्वयं को नहीं प्रभु की पादुकाओं को ही मानते हैं। वे श्री राम से कहते हैं—

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥

हे आर्य! इन सुवर्ण भूषित पादुकाओं पर आप अपने चरण रखिये, क्योंकि ये ही दोनों खड़ाऊँ सब के योगक्षेम का निर्वाह करेंगे।

भरत ने राज्य को राम की धरोहर समझा। पूरी, तत्परता से उसकी व्यवस्था की तथा बनवास के बाद राम के वापिस अयोध्या लौटने पर राज्य उन्हें सौंपते हुए कहा—

एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया।
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृतश्च मनोरथः॥

हे राजन्! इस राज्य को जो मेरे पास इतने दिनों से धरोहर रखा था, अब आप ग्रहण कर इसे सम्हालें। आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा मनोरथ भी पूरा हुआ।

भरत यह सन्तोष किस आधार पर कर सके? वह है उनकी तत्परता जिससे उन्होंने भगवान द्वारा सौंपी सम्पत्ति एवं विभूतियों को अनेक गुना बढ़ा लिया, निस्पृह भाव से उस पर अपना अधिकार न मानते हुए उन्हें ही सौंप दिया। भरत के शब्द हैं—

भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुण मया।
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्टा तं भ्रातृवत्सलम्॥

आपके प्रताप से मैंने पहले से सब दस गुने अधिक बढ़ा दिये हैं। इस प्रकार कहते हुए भ्रातृवत्सल भरत को देख (राक्षसराज विभीषण तथा वानरों की आँखों से आँसू निकल आये।)

अपने को भगवान का भक्त कहने वाला हर व्यक्ति यदि इसी प्रकार उनके द्वारा प्रदत्त विभूतियों को बढ़ाकर उन्हीं को अर्पित कर सके तो उनकी भक्ति सार्थक हो जाये, जीवन धन्य हो जाये।

हर भक्त के लिए कुछ विशेष भूमिका निर्धारित रहती है, उसे निभाने के लिए उसे बहुत सतर्क रहना होता है। भक्त हनुमान सीता की खोज में अकेले ही लंका में घुस जाते हैं किन्तु भावावेश में बहक नहीं जाते। वे अपने कर्तव्य की गम्भीरता को समझते हैं, इसलिए अपनी सुरक्षा का भी ध्यान रखते हैं। उन्हें शरीर का मोह नहीं किन्तु यह चिन्ता है कि भगवान का कार्य अधूरा न रह जाये, वे सोचते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नान्यं पश्यामि रामस्य साहारय्यं कार्यसाधने ।
विमृशंश्च न पश्यामि यो हत मयि वानरः ॥

बहुत सोचने पर भी मैं ऐसा कोई दूसरा नहीं देख पाता जो मेरे मारे जाने पर श्रीराम के कार्य को पूरा करने में उनका उपयुक्त, सहायक सिद्ध हो सके ।

यही सोचकर वे अपने प्राणों की रक्षा की सावधानी बरतते हैं । वैसे उन्हें मान-अपमान, शारीरिक कष्ट आदि का कोई भय नहीं । राक्षसों की पकड़ में वे आ जाते हैं, राक्षस उन्हें अपमानित करते हैं और सताते हैं, तो वे सोचने लगते हैं—

किंतु रामस्य प्रीत्यर्थं विषहिष्येऽहमीदृशम् ।
लंका चरियितव्या वै पुनरेव भवेदिति ॥

श्रीरामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिए मैं इस प्रकार के अनादर को भी सहलूँगा । ये लोग मुझे लंका में घुमायें तो इससे अच्छा ही होगा ।

ऐसे भक्तों को कोई भी कष्ट नहीं होता । अपनी पूँछ में लगी हुई आग द्वारा पूरी लंका जला देने पर भी हनुमान की पूँछ में आग का असर नहीं हुआ । वे यह तथ्य समझते हैं—

नूनं रामंप्रभावेन वैदेह्याः सुकृतेन च ।
यन्मां दहनकर्मांऽयं नादहद्धव्यवाहनः ॥

तभी तो श्री रामचन्द्र जी के प्रताप और सीता जी के पुण्य-प्रभाव से जलाने वाले अग्नि ने मुझे नहीं जलाया— यह निश्चय बात है ।

ऐसे भक्तों को ही भगवान अपना विश्वासपात्र बनाते हैं और उनका सहारा लेकर उनका सन्मान बढ़ाते हैं । लंका विजय के लिए वानरी सेना के प्रस्थान करते समय राम युद्ध की योजना बनाते हुए सुग्रीव से कहते हैं—

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥

मैं हनुमान के कन्धे पर सवार हो, ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र की तरह, सेना के मध्य भाग में रह कर सेना को हर्षित अथवा उत्साहित करता हुआ चलूँगा ।

हनुमान की तरह निस्पृह, समर्पित भावना से कार्य करने वाले भक्तों के प्रति भगवान बड़ा आदर का भाव रखते हैं, उनका बहुत अनुग्रह मानते हैं । लंका में अकेले सफलता से अपना कार्य करके लौटे हुए हनुमान के प्रति उनके भाव हैं—

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृश प्रियम् ॥

इस घड़ी मुझ दीन को एक बात बहुत सता रही है । वह यह है कि मैं इस प्रिय संवाद देने वाले हनुमान को इस कार्य के अनुरूप कुछ भी पारितोषिक नहीं दे सकता ।

भगवान भक्त के समर्पण के बदले में स्वयं को भक्त के प्रति समर्पित कर देते हैं । भक्त हनुमान के कार्य का यही पारितोषिक वे उचित समझते हुए कहते हैं—

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वंङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तश्चास्तु महात्मनः ॥

जो हो, इस समय, मेरा यह सर्वस्वदान रूप आंलिङ्गन ही महात्मा (महाबली) हनुमान जी के कार्य के योग्य पुरस्कार है ।

इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टांङ्गो रामस्तं परिषस्वजे ।
हनूमन्तं महात्मानं कृतकार्यमुपागतम् ॥

महात्मा (महाबली) और काम पूरा करके आये हुए हनुमान जी से यह कहकर और प्रीति-पुलकित शरीर से, श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमान को अपने गले से लगा लिया ।

यह बात श्रीराम भूल नहीं जाते अयोध्या लौटने पर राज्याभिषेक के बाद वे हनुमान से कहते हैं—

एकैकस्योपकारस्य प्राणान्दास्यामि ते कपे ।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम् ॥

हे वानर ! तुम्हारे एक ही उपकार पर (प्रसन्न हो) मैं तुम्हें अपने प्राणदान करता हूँ । तुम्हारे बचे हुए उपकारों के लिए हम लोग तुम्हारे ऋणी बने रहेंगे ।

भगवान की कृतज्ञता भी कितनी उच्चकोटि की है ? अपना सब कुछ भक्त को देकर भी अपने को ऋणी मानते हैं । यही नहीं वे चाहते हैं कि यह ऋण कभी उतरे भी नहीं । वे चाहते हैं कि उनका भक्त कभी किसी से, स्वयं उनसे भी कुछ लेने की स्थिति में न रहे, देने की स्थिति में ही बना रहे । वे कहते हैं—

मदङ्गेजीर्णतां यातु यत्वयोपकृतं कपे ।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम् ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे वानर ! तुमने जो उपकार किये हैं, वे मेरे अंगों में जीर्ण हो जायें, क्योंकि मनुष्य आपत्तियों ही में प्रत्युपकार के पात्र हुआ करतें हैं अथवा जो तुमने मेरे प्रति उपकार किये हैं, वे सब मेरे हृदय में बने रहेंगे । क्योंकि उपकारी के प्रति बिना, उस पर विपत्ति पड़े, प्रत्युपकार किया नहीं जा सकता (और मैं यह नहीं चाहता कि तुम पर कभी विपत्ति पड़े ।)

भगवान के साथ-साथ ऐसे भक्तों की कीर्ति भी अमिट हो जाती है । अपने महाप्रयाण से पूर्व राम ने हनुमान से कहा—

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर ।
तावद्रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥

हे वानर राज ! जब तक इस लोक में मेरी कथा का प्रचार रहेगा, तब तक तुम हर्षित हो मर्त्य लोक में वास करना ।

भगवान और भक्तों के इन सम्बन्धों पर विचार कर हमें भी वास्तविक भक्त बनने का प्रयास करना चाहिए ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आध्यात्मिकता प्रकरण

गुणों की उपयोगिता और महत्ता

आध्यात्मिक व्यक्ति यह मानकर चलता है कि मनुष्य के विकास और प्रगति का मूल केन्द्र व्यक्ति के अन्दर ही है, बाह्य साधन और परिस्थितियाँ उन्हीं के सहयोग के लिए हैं। मनुष्य आन्तरिक रूप से अस्त-व्यस्त और दुर्बल हो तो बाहर की कोई व्यवस्था और शक्ति साधन उसके किसी काम नहीं आ सकते। इसीलिए आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाला व्यक्ति आत्म-चिन्तन, आत्म-शोधन, आत्म-निर्माण तथा आत्म-विकसित के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है। इसी आधार पर वे सतत् विकसित होते हुए श्रेष्ठता के उच्च सोपान पार करते चले जाते हैं। रामायण के पात्र भी इस दृष्टि से अनुकरणीय हैं। उनके गुण अपना-अपना महत्व रखते हैं। स्वयं राम गुणों की मूर्ति हैं। उनके राज्याभिषेक का समाचार सुनकर अयोध्यावासी कहते हैं।

तथा सर्वप्रजाकान्तैः प्रीतिसज्जननैः पितुः।
गुणैर्विरुरुचे रामो दीप्तैः सूर्य इवांशुभिः॥

राम सभी प्रजाजनों को प्रिय हैं तथा पिता के हृदय में उनके लिए बहुत प्रेम है। गुणों से निर्मित राम किरणों सहित सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हैं।

रामायण में जगह-जगह राम के गुणों की चर्चा है। राम को वनवास देने के लिए कैकेयी ने दशरथ जी से वर माँगा तब उन्होंने राम के सम्बन्ध में कहा—

सत्यं दानं तपः त्यागो मित्रता शौच मार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥

सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, प्रसन्नता, विद्या और गुरुजनों की सेवा— ये सब गुण राम में निश्चित रूप से हैं।

श्री राम ने आत्मशोधन द्वारा स्वयं को कितना निर्मल बना लिया है, इसका एक सुन्दर प्रमाण वन गमन प्रसंग में मिलता है। राम के वनवास की खबर सुनकर नागरिक आपस में कहते हैं।

न हि कश्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम्।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशाङ्कस्येव कल्मषम्॥

हमको तो श्रीराम में कोई भी दोष दिखाई नहीं पड़ता, प्रत्युत हम तो इनमें दोष का मिलना उसी प्रकार असम्भव समझते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा में मलिनता का मिलना।

वनवास के समय जब राम लक्ष्मण और सीता अगस्त ऋषि के आश्रम में पहुँचे तब राम में सभी गुण होने का कारण बताते हुए महर्षि अगस्त ने कहा।

त्वयि सत्य च धर्मश्च त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
तच्च सर्वं महाबाहो शक्यं धर्तुं जितेन्द्रियैः॥

हे महाबाहो! आप में सत्य और धर्म आदि सब शुभ गुण विद्यमान हैं और ये गुण उसी में ठहर सकते हैं, जो जितेन्द्रिय होता है। अर्थात् आपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखता है।

स्वयं लक्ष्मण राम के प्रति अपने समर्पण का मुख्य कारण उनके गुणों को ही मानते हैं। सुग्रीव के कहने पर जब हनुमान पहली बार राम, लक्ष्मण से मिले तो लक्ष्मण ने परिचय देते हुए कहा—

अहमसयावरो भ्राता गुणदास्यमुपागतः।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः॥

मैं इनका छोटा भाई हूँ। ये कृतज्ञ और बहुज्ञ हैं। मैं इनके गुणों पर मोहित हो, इनकी सेवा किया करता हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है।

राम अपने बारे में ही नहीं अपने स्वजनों के गुणों के सम्बन्ध में भी सावधान हैं। सीता और लक्ष्मण के गुणों के विकास का उन्हें ध्यान है। वन में अगस्त्य ऋषि ने जब सीता और लक्ष्मण के गुणों की प्रशंसा की तो राम ने हार्दिक सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा—

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य मे मुनिपुंगवः।
गुणैः सभ्रातृभार्यस्य वरदः परितुष्यति॥

मैं अपने को धन्य और अनुगृहीत समझता हूँ कि, आप जैसे ऋषि श्रेष्ठ वरदाता मेरे, मेरे भाई और भार्या के गुणों से परम सन्तुष्ट हैं।

ऋषि ने कोई मुँह देखी बात नहीं कही थी। सत्य सिर चढ़कर बोलता है, गुणों की प्रशंसा वैरी भी करते हैं। यद्यपि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मण ने सूर्पनखा की नाक और कान काटे थे, किन्तु उसने रावण को राम, लक्ष्मण के बारे में बताते हुए कहा—

भ्राता चास्य महातेजा गुणतस्तुल्यविक्रमः ।
अनुरक्तश्च भक्तश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान ॥

रामचन्द्र जी का छोटा भाई लक्ष्मण, पराक्रमी और महातेजस्वी है । गुणों में तथा पराक्रम में वह अपने भाई ही के समान है । वह अपने भाई में अनुरागवान् भी है और उनकी सेवा में भी लगा रहता है ।

इसी प्रकार राम की सेना को दिखाते हुए रावण का दूत उसे समझाता हुआ कहता है—

एषोऽस्य लक्ष्मणो नाम भ्राता प्राणसमः प्रियः ।
नये युद्धे च कुशलः सर्वशस्त्रभृता वरः ॥

जिस पुरुष को तुम देख रहे हो, वह श्रीरामचन्द्र के प्राणसम प्यारे भाई लक्ष्मण हैं । क्या नीति, क्या युद्ध ये सब विषयों में निपुण हैं और शस्त्रधारियों में सर्वश्रेष्ठ हैं ।

गुणों के कारण हर जगह कोई न कोई सहयोगी मिल जाता है । सीता जब लंका में थीं तब युद्ध के समय रावण ने राम के मारे जाने की अफवाह फैलाई । सीता दुःखी हो गयीं तो उन्हें समझाते हुए विभीषण की पत्नी ने उनसे कहा—

अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥

हे सीते ! मैंने न कभी तुमसे झूठ कहा और न कहूँगी । क्योंकि तुमने अपने शुभाचरणों के प्रभाव से मेरे मन में अपने लिए स्थान बना लिया है ।

गुणी और सच्चरित्र व्यक्ति को ही महत्वपूर्ण कार्य सौंपे जाते हैं । जब लंका में सीता को हनुमान ने अपने रामदूत होने का विश्वास दिलाया तब सीता ने कहा—

प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो न ह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥

यह तो जानी-बूझी बात है कि दुर्धर्ष श्री रामचन्द्र जी, बल-पराक्रम बिना जाने और परीक्षा लिए किसी को अपना दूत बना कर नहीं भेजेंगे—सो भी यहाँ और मेरे पास ।

हनुमान के गुणों की प्रशंसा करते हुए सीता ने कहा—

बलं शौर्यं श्रुतं सत्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ।
तेजः क्षमा धृतिर्धैर्यं विनीतत्व न सशयः ॥

प्रयास, सहिष्णुता, युद्धोत्साह, शास्त्रज्ञान, शारीरिक बल, पराक्रम, सामर्थ्य, शत्रु का पराभव करने की शक्ति, अपराध सहिष्णुता, धैर्य, विनम्रता अथवा नीति का विशेष ज्ञान तुम में सब से श्रेष्ठ है—इसमें सन्देह नहीं ।

गुणी और शक्ति सम्पन्न व्यक्ति से ही कार्य सिद्धि की आशा की जाती है । सीता की खोज के लिए समुद्र लाँघने के सम्बन्ध में जब विचार विमर्श चल रहा था तब जामवन्त ने हनुमान से कहा—

वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविशारद ।
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनुमन्कि न जल्पसि ॥

हे समस्त वानर कुलों में श्रेष्ठ हनुमान ! हे सर्वशास्त्र विशारद ! तुम अकेले और चुपचाप क्यों बैठे हो ? क्यों नहीं कुछ कहते ।

हनुमन्हरिराजस्य सुग्रीवस्य समो ह्यसि ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि तेजसा च बलेन च ॥

हे हनुमान ! तुम सुग्रीव के तुल्य हो । यही नहीं बल्कि तेज और बल में तुम्हें श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण के भी बराबर समझता हूँ ।

हनुमान ही नहीं अन्य वानर भी गुणी हैं । गुणों और बल-पराक्रम सम्पन्न व्यक्ति ही कठिन दीखने वाले कार्य सम्पन्न कर सकते हैं । सीता की खोज के लिए प्रस्तुत वानर वीरों से सुग्रीव ने कहा—

अमितबलपराक्रमा भवन्तो
विपुलगुणेषु कुलेषु च प्रसूताः ।
मनुजपतिसुतां यथा लभध्वं
तदधिगुणं पुरुषार्थमारभध्वस् ॥

हे वानरो ! तुम लोग अमित बल विक्रम वाले और बड़े गुणवान हो तथा तुम्हारा जन्म उत्तम कुल में हुआ है । इस समय तुम बस ऐसा पुरुषार्थ करके दिखलाओ, जिससे श्रीरामचन्द्र जी की भार्या सीता जी मिल जायँ ।

ऐसे सहायकों की भगवान भी प्रशंसा करते हैं । रावण वध के पश्चात् वानरों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए राम ने विभीषण से कहा—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सहैभिरजिता लंका निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टै: प्राणभयं त्वक्त्वा संग्रामे ष्वनिवर्तिभि: ॥

हे राक्षसनाथ ! इन सब ने अपनी जानों को हथेलियों पर रख, हर्षित अन्त: करण से युद्ध किया । इन लोगों ने रण में कभी पीठ नहीं दिखलायी । इन्हीं लोगों की सहायता से मैं इस दुधर्ष अजेय लंका की फतह कर सका हूँ ।

अत: यदि हम आध्यात्मिक या भौतिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें गुण ग्रहण एवं दुर्गुण त्याग का प्रयास ही चाहिए ।

मन और बुद्धि का परिष्कार

अध्यात्म मार्ग का साधक अपने मन और बुद्धि को अधिक से अधिक परिष्कृत बनाने का प्रयास करता है । मन में—उसके संकल्प में बड़ी शक्ति हैं, बुद्धि की दृष्टि बड़ी पैनी और दूरगामी है । यह दोनों मिलकर मनुष्य को किसी भी विपरीत परिस्थिति से उबार सकते हैं और किसी भी लक्ष्य तक पहुँचा सकते हैं ।

अपने ही विकार हमारे विकास में बाधक सबसे बड़े शत्रु सिद्ध होते हैं । मन बुद्धि के परिष्कार से ही इन्हें जीता जा सकता है । अपने आपको जीत लेना सच्चा शौर्य है । इसके बिना सारे संसार की विजय भी अधूरी है । रावण को भी इसी भूल का अनुभव हुआ । युद्ध प्रसंग में कुम्भकर्ण को जगा कर उसने कहा है—

द्विधा भज्येयमप्येवं नमेयं तु कस्यचित् ।
एष मे सहजो दोषा: स्वभावो दुरतिक्रम: ॥

मैं क्या करूँ— मेरा यह स्वाभाविक दोष है कि, भले ही मेरे दो टुकड़े हो जायें पर मैं किसी के सामने नवने वाला नहीं । स्वभाव होता ही दुरतिक्रम है ।

स्पष्ट है कि रावण अहंकार के दुष्परिणाम समझता था किन्तु उससे अपने को बचाने के लिए उसने पर्याप्त पुरुषार्थ नहीं किया । इसलिए समय निकल जाने पर उसे पश्चाताप करना पड़ा ।

विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद्वयर्थास्तस्य पुन: कथा: ॥

मैंने चित्तविभ्रम से, अज्ञानवश अथवा अपने बलवीर्य के अहंकार से जो कार्य नहीं किया उसको अब बारम्बार कहना व्यर्थ है ।

गुण और दोष जानकर भी गुण ग्रहण और दोष त्याग का साहस बिरले ही कर पाते हैं । इसके लिए अपने दोष स्वीकार कर उनका निराकरण करना पड़ता है । राम के कहने पर सुग्रीव को सीता की खोज कराने का उसका दायित्व बोध कराने हेतु गये हुए लक्ष्मण से जब सुग्रीव ने अपने दोषों के बारे में बताया तब लक्ष्मण ने उनकी सराहना करते हुए कहा—

दोषज्ञ: सति सामर्थ्ये कोऽन्यो भाषितुमर्हति ।
वर्जयित्वा मम ज्येष्ठं त्वां च वानरसत्तम् ॥

हे वानरोत्तम् ! मेरे ज्येष्ठ भ्राता को और तुमको छोड़, सामर्थ्य रखने वाला कौन पुरुष ऐसा होगा जो अपने दोषों को जानकर, उन्हें अपने मुख से कहे ।

लक्ष्मण जी का तात्पर्य है कि झूठे अहंकार की उपेक्षा करके अपने दोषों को स्वीकार करना और उन्हें हटाना श्रेष्ठ सामर्थ्य का लक्षण है । सामान्य लोग अपमान के भय से ऐसा नहीं कर पाते और बुद्धि के निर्णय की उपेक्षा करके प्रगति के स्थान पर पतन अपना लेते हैं । उनका मत है कि कठिन से कठिन स्थिति में भी सन्तुलित बुद्धि का निर्णय स्वीकार करना चाहिए । उसमें यदि खतरा उठाना पड़े तो भी दु:खी और विचलित नहीं होना चाहिए । जब विभीषण श्री राम की शरण में आते हैं और सब मन्त्री मिलकर किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं तो लक्ष्मण श्री राम से कहते हैं कि आप अपनी सन्तुलित बुद्धि से इस समय निर्णय करें—

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा जीवितान्तके ।
विमृशन्वै स्वया बुद्धया धृतिमान्नावसीदति ॥

धैर्यवान् पुरुष, स्वजन-वियोग के समय, धननाश के समय, भय उपस्थित होने पर प्राणों की शंका उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते हैं और उसी से वे कभी दु:खी नहीं होते ।

श्री राम में यह क्षमता है कि वे विपरीत परिस्थितियों में भी मन को नियन्त्रण में रख सकें । लंका में जब हनुमान जी सीता जी से मिले तो वे श्री राम की कुशलता पूछती हुई उनकी इस विशेषता का उल्लेख करती हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्मापदेशात्त्यजतश्च राज्यं ।
मां चाप्यरण्यं नयतः पदातिम् ॥
नासीद्व्यथा यस्य न भीर्न शोकः ।
कच्चित्स धैर्यं हृदये करोति ॥

धर्म के लिए राज्य त्याग कर और मुझको साथ ले पैदल ही वन में आने पर भी, जिनका मन पीड़ित, भयभीत अथवा शोकान्वित नहीं हुआ, वे श्री रामचन्द्र इस समय हृदय में धैर्य तो रखते हैं ?

लोग बहुधा दूसरे अस्थिर बुद्धि व्यक्तियों से प्रभावित होकर उचित निर्णय से डिग जाते हैं । श्री राम इस कमजोरी को समझते हुए कहते हैं कि हजार बुद्धिहीनों की अपेक्षा एक समझदार को महत्व देना उचित है—

कच्चित्सहस्रान्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम् ।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्नि श्रेयसं महत् ॥

तुम हजार मूर्खों को त्याग कर एक पण्डित (सलाहकार) का आश्रय ग्रहण करते हो न ? क्योंकि यदि संकट के समय एक भी पण्डित पास हो तो बड़े ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है अर्थात् बड़ा लाभ होता है ।

इसी प्रकार की बात सीता हरण प्रसंग में लक्ष्मण से कहते हैं । मारीच को मारने वे गये और लक्ष्मण को सीता की सुरक्षा के लिए छोड़ गये । किन्तु लक्ष्मण शंका से अधीर हुई सीता के शब्दों को महत्व देकर राम के पास चले गये । तब राम ने कहा कि तुमने यह अनुचित किया क्योंकि–

न हि ते परितुष्यामि त्यक्त्वा यद्यामि मैथिलीम् ।
क्रुद्धायाः परुषं वाक्यं श्रुत्वा यत्वमिहागतः ॥

हे लक्ष्मण ! तुम सीता को छोड़कर चल खड़े हुए—इस बात से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हूँ । क्योंकि तुम क्रुद्ध स्त्री का कठोर वचन सुन यहाँ चले आये ।

जानन्नपि समर्थं मां राक्षसां विनिवारणे ।
अनेन क्रोधवाक्यन मैथिल्या निःसृतो भवान् ॥

आप तो यह जानते ही थे कि राम राक्षसों को मारने में समर्थ हैं फिर क्यों मैथिली के कठोर वचन सुन आप चल खड़े हुए ।

अप्रिय प्रसंग सभी के जीवन में आते हैं, किन्तु यदि बुद्धि का सन्तुलन न बिगड़ने दिया जाये तो उनसे निकलने का मार्ग निकल ही आता है । रावण द्वारा हरण किये जाने पर सीता ने भी अपनी बुद्धि का सन्तुलन खोया नहीं । मार्ग में श्री राम का नाम लेकर अथवा अपने वस्त्र और आभूषण गिरा कर अपने हरण के प्रमाण छोड़ती गयीं । यह बुद्धिमानी बाद में बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई ।

तेषां मध्ये विशालाक्षी कौशेयं कनकप्रभम् ।
उत्तरीयं वरारोह शुभान्याभरणानि च ॥

उन विशालाक्षी वरारोहा जानकी जी ने सुवर्ण की तरह चमकीले चंपई रंग के वस्त्र में बाँध अपने कुछ उत्तम गहनों को उन बन्दरों के बीच में गिरा दिया ।

लंका में भी सीता अपनी बुद्धि को सन्तुलित बनाये रहीं । किसी भी कार्य के करने न करने के सम्बन्ध में स्वतः ही सोच-विचार कर निर्णय करना चाहिए । परिष्कृत बुद्धि ही ऐसा कर सकती है । जब हनुमान ने सीता से कहा आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये मैं आपको राम के पास ले जा सकता हूँ, तब सीता ने हनुमान से कहा—

जानामि गमने शक्तिं नयने चापि ते मम ।
अतश्यं सप्रधार्याशु कार्यसिद्धिर्महात्मनः ॥

मैं जानती हूँ कि, तुममें बहुत दूर चलने और मुझको अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाने की शक्ति है, किन्तु शीघ्रता-पूर्वक कार्य सिद्धि होने के सम्बन्ध में मुझे स्वयं भी सोच-विचार लेना आवश्यक है ।

शोक सन्तप्त होने पर भी सीता ने हनुमान को अचानक ही अपना हितैषी नहीं मान लिया, बुद्धि संगत ढंग से परीक्षण करने के बाद ही विश्वास किया—

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैर भिज्ञानैर्दूतं तमवगच्छति ॥

शोकसन्तप्ता सीता ने अनेक कारण और श्री रामचन्द्र लक्ष्मण जी के शारीरिक चिन्हों का यथार्थ पता पाकर, हनुमान जी की बातों पर विश्वास किया और उनको श्री रामचन्द्र जी का दूत समझा ।

किसी भी कार्य के करने से पूर्व उसके सभी पक्षों पर बारीकी से सोच-विचार कर समयानुसार कार्य करना चाहिए । लक्ष्मण में यह गुण था । सुग्रीव से सीता की खोज करने के बारे में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम का सन्देश कहने जा रहे लक्ष्मण मार्ग में विचार करते जा रहे हैं ।

यथोक्तकारी वचनमुत्तर चैव सोत्तरम ।
वृहस्पतिसमो बुद्धय्या मत्वा रामानुजस्तथा ॥

भ्राता के वचनानुसार कार्य करने वाले अथवा भाई के वचन को पूरा करने वाले, बुद्धि में वृहस्पति के समान लक्ष्मण जी अपने मन में श्री रामचन्द्र जी के अतिरिक्त अपनी ओर से जो कुछ और कहना था सो विचारते जाते थे ।

लक्ष्मण की बुद्धि बहुत ही परिष्कृत थी । सीता के वियोग में शोकाकुल राम को समझाते हुए लक्ष्मण ने उनसे कहा—

यदि दु:खमिदं प्राप्तं काकुत्स्थ न सहिष्यसे ।
प्राकृतश्चाल्पसत्वश्च दृतर: क: संहिष्यति ॥

हे काकुत्स्थ ! यदि आप ही इस प्राप्त हुए दु:ख को न सहेंगे, तो अज्ञानी और अल्प बुद्धि वाले दूसरे लोगों में कौन सह सकेगा ।

हमारी बुद्धि में सही निर्णय लेने की क्षमता होती है किन्तु हम उसका ठीक-ठीक उपयोग नहीं करते और अकारण भ्रान्ति में फँस जाते हैं । लक्ष्मण जी श्री राम को इस सन्दर्भ में सावधान करते हुए कहते हैं—

तत्वतो हि नरश्रेष्ठ बुद्धया समनुचिन्तय ।
बुद्धया युक्ता महाप्राज्ञा विजानन्ति शुभाशुभे ॥

हे नर श्रेष्ठ ! आप अपनी बुद्धि से इसका ठीक-ठीक विचार कीजिये । क्योंकि जो बुद्धिमान होते हैं, अपनी बुद्धि से शुभ और अशुभ जान लेते हैं ।

बुद्धि जब आवेश ग्रस्त हो जाती है तो इसकी ठीक-ठीक निर्णय की क्षमता लुप्त हो जाती है । अस्तु आवेश आने नहीं देना चाहिए, किन्तु यदि आ जाये तो उस स्थिति में कोई महत्वपूर्ण निर्णय अथवा कार्य नहीं करना चाहिए । आवेग शान्त होने तक रुकना चाहिए । वालि वध के उपरान्त जब राम और लक्ष्मण प्रवर्षण पर्वत पर रहे थे तब राम के विचलित होने पर लक्ष्मण ने उन्हें समझाया—

किमार्य कामस्य वशंगतन ।
किमात्मपौरुष्यपराभवन ॥
अय सदा संहियते समाधि: ।
किमत्र योगेन निवर्तितेन ॥

हे भाई ! आप जो काम के वश में हो, आत्म पौरुष को त्याग बैठे हैं, सो यह आप क्या करते हैं ? आपके चित्त की स्थिरता नष्ट हुई जाती है । सो क्या आप इसका निवारण नहीं कर सकते ?

उसी समय सीता के वियोग में व्याकुल हो रहे राम क्रोधित हो गये, लक्ष्मण ने उन्हें शान्त करते हुए कहा—

नियम्य कोपं प्रतिपाल्यतां शर- ।
त्क्षमस्व मासांश्चतुरो मया सह ॥
वसाचलेऽस्मिन्मृगराजसेविते ।
संवर्धयन्शत्रु वधे समुद्यमम् ॥

आप क्रोध को रोक कर, शरत्काल तक शान्त रहिये और वर्षा ऋतु भर मेरे साथ इस मृगराजसेवित पर्वत पर रहिये, तदनन्तर शत्रु वध की तैयारी कीजियेगा ।

मनुष्य के लिए उचित है कि सही निर्णय लेने की अपनी क्षमता बनाये रखे किन्तु मन में इस बात का अहंकार न आने दें तथा दूसरे समझदार व्यक्तियों से भी परामर्श किया करे । श्री राम में यह गुण था वनवास के समय लक्ष्मण जी राम के प्रति यही भाव व्यक्त करते हुए उनसे कहते हैं—

न त्वां प्रव्यथयेदु:ख प्रीतिर्वा न प्रहर्षयेत् ।
सम्मतश्चासि वृद्धानां तांश्च पृच्छसि सशयान् ॥

न तो आपको दु:ख दु:खी कर सकता है और न हर्ष हर्षित कर सकता है । सब बड़े-बूढ़े आपको मानते हैं, तथापि धर्म के विषय में सन्देह होने पर उन लोगों से पूँछा करते हैं ।

अधूरे मन से कार्य करने वाले अथवा बुद्धिहीन व्यक्ति समर्थ होने पर भी कार्य में सफल नहीं होने पाते । बड़े कार्य सदैव मनोयोगपूर्वक तथा बुद्धिमानी से ही सम्भव हैं । श्री राम के सर्वश्रेष्ठ भक्त और सहायक हनुमान जी में यह विशेषतायें हैं । समुद्र लाँघने के लिए तैयार हनुमान के सम्बन्ध में कहा गया है—

स वेगवान्वेगसमाहितात्मा ।
हरि प्रवीर: पर वीरहन्ता ॥
मन: समाधाय महानुभावा ।
जगाम लंका मनसा मनस्वी ॥

शत्रुहन्ता, वेगवान, मनस्वी, महानुभाव और कपिश्रेष्ठ हनुमान जी सागर लाँघने का दृढ़ विचार कर, मन से लंका में पहुँच गये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हनुमान जी अपने कार्य में सफल हो सकेंगे या नहीं। इस शंका के समाधान हेतु देवताओं ने उनकी परीक्षा लेने के लिए सुरसा को भेजा। परीक्षा में उत्तीर्ण हनुमान की प्रशंसा करते हुए सुरसा ने कहा—

साधयार्थमाभिप्रेतमरिष्ट गच्छ यथा मारुते ।
यस्य त्वतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव ॥
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मस न सीदति ॥

अब तुम निर्विघ्न हो अपना कार्य सिद्ध करो। हे वानरेन्द्र ! तुम्हारी तरह जिसमें धीरता, सूक्ष्मदृष्टि, बुद्धि और चतुराई। ये चार गुण होते हैं, वह कभी किसी काम के करने में नहीं घबराते। ये चारों गुण तुममें मौजूद हैं।

हनुमान को आगे चलकर पग-पग पर अपनी बुद्धि का उपयेग करना आवश्यक हो गया। लंका की सुरक्षा व्यवस्था एवं सतर्क रक्षकों को देख हनुमान ने अपने मन में सोचा—

उग्रौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः ।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥

तब मुझे, जानकी जी का पता लगाने के लिए, इन सब महाबली और महापराक्रमी राक्षसों को धोखा देना होगा। हनुमान के सारे कार्यों में उनके बल, पराक्रम के अलावा उनकी सतर्कता एवं बुद्धिमत्ता का भी परिचय मिलता है। वे प्रतिक्षण अपने कार्य के सम्बन्ध में विचार कर उचित निर्णय लेते हैं—

भूताश्चार्था विपद्यन्ते देशकालविरोधिताः ।
विक्लब दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥

देश और काल के प्रतिकूल कार्य करने वाला और कादर दूत, बने बनाये कार्य को उसी प्रकार नष्ट कर डालता है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को।

अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चिताऽपि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पाण्डितमानिनः ॥

कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में निश्चित कर लेने पर भी, ऐसे दूतों के कारण कार्य की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि वे अपनी बुद्धिमानी के अभिमान में चूर हो, कार्यों को बना कर उन्हें बिगाड़ डालते हैं।

न विनश्येत्कथं कार्य वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लंकनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद्यथा ॥

अतः अब किस उपाय से मैं काम लूँ जिससे न तो कार्य ही बिगड़े और न मुझमें कादरता आये। साथ ही मेरा समुद्र लाँघना वृथा भी न हो।

इस प्रकार बिना भयभीत या उद्विग्न हुए हनुमान जी ने उचित योजना बनाई, अपनी शक्ति के अहंकार में कुछ भी कर डालना उचित नहीं समझा। लंका में समझदारी से प्रवेश किया।

अद्वारेण कहाबाहुः प्राकारमभिपुप्लुवे ।
निशि लंका महासत्वो विवेशकपिकुञ्जरः ॥

महाबली होते हुए भी हनुमान जी ने द्वार से न जाकर रात्रि के समय परकोटे की दीवाल फाँदी और लंका प्रवेश किया।

माता सीता की खोज में हनुमान को लंका में सोती हुई स्त्रियों को देखना पड़ता है। किन्तु उनकी बुद्धि वहाँ भी सावधान है और मन नियन्त्रण में रहता है। वे अपने कार्य के औचित्य पर विचार करते हुए सोचते हैं—

निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ।
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ॥
न हि मे मनसः किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते ।
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ॥
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ।
नान्यत्र हि मया शंक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।

उनके मन में स्थिरता और निश्चय पूर्वक यह बात आई कि यद्यपि मैंने इन स्त्रियों को देखा, तथापि मेरे मन में तिल भर भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। फिर मन ही तो पाप और पुण्य करने वाली सब इन्द्रियों का प्रेरक है। सो वह मन मेरे वश में है। अतः मुझे सोती हुई पराई स्त्रियों के देखने का पाप नहीं लग सकता। फिर अन्यत्र मैं सीता को ढूंढ़ भी तो कहाँ सकता था।

परिष्कृत मन और बुद्धि के स्वामी होने के कारण ही हनुमान जी को अद्भुत् सफलता मिली उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए सीता ने कहा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विक्रान्तस्त्व समर्थस्त्व प्रांशुस्त्व वानरोत्तम् ।
येनेद् राक्षसपद त्वश्यैकेन प्रधर्षितम् ॥

सीता जी कहने लगीं—हे कपिश्रेष्ठ ! तुमने अकेले ही रावण की राजधानी को सर कर लिया— इससे जान पड़ता है कि तुम कोरे पराक्रमी और शरीर बल सम्पन्न ही नहीं हो बल्कि बुद्धिमान भी हो ।

मन आवेश-ग्रस्त हो या अवसाद-ग्रस्त दोनों ही स्थितियों में हानिकारक है । इस सन्दर्भ में समुद्र किनारे बैठे बन्दरों को सावधान करते हुए जामवन्त ने कहा—

न वषादे मनः कार्य विषादो दोषवत्तमः ।
विषादो हन्ति पुरुषं बालं क्रुद्ध इषोरग ॥

हे वानरो ! विषाद मत करो, क्योंकि विषाद अत्यन्त दोषकारक है । क्रुद्ध सर्प जिस प्रकार बालकों को मार डालता है, उसी प्रकार विषाद भी पुरुषों को मार डालता है ।

हमारी मनोभूमि और चिन्तन की स्थिति ही हमारे दुःख का कारण है । वनवास प्रसंग में माँ कौशल्या को दुःखी देखकर श्री राम, लक्ष्मण जी को समझाते हुए कहते हैं ।

स्पष्ट है कि देव और असुर शरीर से नहीं अपने गुणों के कारण माने जाते हैं रावण का वर्णन करते हुए बाल्मीकि जी कहते हैं ।

क्षेप्तारं पर्वतेन्द्रणां सुराणां चा प्रमर्दनम् ।
उच्छेत्तारं च धर्माणां परदाराभिमर्शनम् ॥

वह बड़े-बड़े पर्वतों को उखाड़कर फेंकने वाला, देवताओं को मर्दन करने वाला, सब धर्मों की जड़ काटने वाला, परस्त्रीगामी था ।

कर्कशं निरनुक्रोशं प्रजानामहिते रतम् ।
रावणं सर्वभूतानां सर्वलोकभयावहम् ॥

रावण कर्कश, दया-शून्य, प्रजाजनों का अहित करने वाला, सब प्राणियों और सब लोगों को भयभीत करने वाला था ।

रावण अपनी इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के कारण राक्षस की कोटि में गिना गया । हीन आचरण युक्त हर व्यक्ति की निन्दा होती है । कैकेयी राजा दशरथ की पत्नी तथा भरत जैसे पुत्र की माँ थीं, किन्तु उसकी भर्त्सना किसी के कम नहीं हुई । कारण यही कि उसने जान-बूझ कर सन्तों देवों के अनुरूप धर्मानुकूल न्याय संगत मार्ग की उपेक्षा की । राम-वन-गमन प्रसंग से जब राजा दशरथ ने उसके वरदान माँगने पर कहा कि यह धर्म संगत नहीं तो उसने औचित्य को नहीं अपने स्वार्थ को ही प्रधानता देते हुए कहा—

भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वाऽनृतम् ।
यत्त्वया संश्रुतं मह्यं तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥

अब चाहे धर्म हो या अधर्म, चाहे सत्य हो चाहे झूठ आपने मुझसे जो कुछ सुना है (मैंने जो वरदान तुमसे माँगा है) उसके विपरीत कुछ नहीं हो सकता ।

श्रेष्ठ और हीन मार्ग, धर्म और अधर्म समझ में तो सबकी आ जाता है पर उसके अनुरूप आचरण में चुनने से ही व्यक्ति का पतन होता है । सन्त बनने, देव पक्ष में जाने के लिए रूप और शरीर नहीं, श्रेष्ठ मार्ग अपनाने योग्य सत्-साहस की आवश्यकता होती है ।

सत्संग और कुसंग का प्रतिफल

हर जीव में वातावरण से प्रभावित होने का गुण होता है । सत्संग से सद्गुणों और कुसंग से दुर्गुणों की प्राप्ति होती है । शबरी, महर्षि मातंग और जिन महात्माओं के आश्रम के समीप रहती थी उसमें उन महात्माओं ने न होने पर भी वातावरण का सूक्ष्म प्रभाव विद्यमान था । उस आश्रम को देख राम ने लक्ष्मण से कहा—

दृष्टोऽयमाश्रमः सौम्य यह्माश्चर्यः कृतात्मनाम् ।
विश्वस्तमृगशार्दूलो नानाविहग सेवितः ॥

हे सौम्य ! मैंने उन महात्माओं का यह आश्रम देखा । यहाँ तो अनेक आश्चर्यमय वस्तुयें देख पड़ती हैं । देखो यहाँ पर हिरन और सिंह तथा अनेक पक्षी आपस का वैर-भाव त्याग कर बसे हुये हैं ।

संसार की हर जड़ चेतन वस्तु में गुण और दुर्गुण विद्यमान हैं, तामसी पदार्थों के सेवन से तमोगुण की वृद्धि और सतोगुण का ह्रास होता है । राम के कहने पर सुग्रीव को समझाने को गये हुए लक्ष्मण ने तारा से कहा—

न हि धर्मार्थसिद्धय्यर्थं पानमेव प्रशस्यते ।
पानादर्थश्च धर्मश्च कामश्च परिहीयते ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिए शराब पीना अच्छा नहीं है। क्योंकि शराब पीने से धर्म, अर्थ और काम नष्ट हो जाते हैं।

कुसंग के प्रभाव से व्यक्ति राक्षस हो जाता है तथा उसकी सारी विभूतियाँ दूसरों के उत्पीड़न में ही लगती हैं तथा उसे इसका दण्ड सर्वनाश के रूप में भोगना ही पड़ता है।

मेघनाद द्वारा अशोक वाटिका से बाँध कर ले जाये गये हनुमान ने जब रावण को देखा तब उन्होंने अपने मन में सोचा—

यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥

हाँ ! यदि यह कहीं ऐसा पापाचारी न होता, तो यह राक्षसराज इन्द्र सहित देवताओं का भी रक्षक हो सकता था।

इस तरह कुसंग के कारण अधर्माचरण करने वाले रावण का पतन हुआ। क्या हम इससे कुछ सबक लेंगे ?

मनुष्य जीवन का सदुपयोग

मानव जीवन ईश्वर का अमूल्य उपहार है। आत्मा मानव देह पाकर ही अपने उद्धार का उपाय कर सकती है। देह रहित आत्मा कुछ नहीं कर सकती। रामायण में इसके बारे में कहा गया है—

सर्वेषां देहहीनानां महद्दुःखं भवष्यति।
लुप्यन्ते सर्वकार्याणि हीनदेहस्य वै प्रभो॥

हे प्रभो ! देह न होने से बड़ा कष्ट है क्योंकि देह रहने ही से सब काम किये जा सकते हैं। अथवा देहहीन मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता।

मनुष्य देह सौभाग्य से मिलती है किन्तु निश्चित समय के लिए ही। मनुष्य अपनी समय की मर्यादा भूलकर उसका लाभ उठाने की जगह मौज-मजे में बिताने लगता है। वह भूल जाता है कि जीवन की अवधि समाप्त होती जा रही है। यह तथ्य बराबर याद रखने का संकेत देते हुए ग्रन्थकार ने लिखा है—

नन्दन्त्युदित आदित्ये नन्दन्त्यस्तमिते रवौ।
आत्मनो नावबुध्यन्ते मनुष्या जीवितक्षयम्॥

मनुष्य सूर्य के उदय होने पर और अस्त होने पर नित्य ही प्रसन्न होते हैं, किन्तु इससे उनकी आयु घटती है—इस बात को वे नहीं समझते।

मृत्यु की कल्पना से भयभीत नहीं होना चाहिए, बल्कि कर्तव्य बोध होना चाहिए। क्योंकि वह जीवन की सखी है—सहयोगिनी है—

सहैव मृत्युर्व्रजति सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते॥

मौत मनुष्य के साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और दूर जाने पर भी साथ नहीं छोड़ती और साथ जाकर साथ ही लौट भी आती है।

श्री राम भरत जी को चित्रकूट में यही स्मरण दिलाते हुए उन्हें आत्मोत्कर्ष की प्रेरणा देते हैं।

आत्मानमनुशोच त्वं किमन्यमनुशोचसि।
आयुस्ते हीयते यस्य स्थितस्य च गतस्य च॥

अतः हे भरत ! तुम अपने लिए (अर्थात् अपने आत्मा के उद्धार के लिए) सोचो तो सोचो, दूसरों के लिए सोच क्यों करते हो ? आयु तो सभी की घटाती है, चाहे कोई बैठा रहे, चाहे चला-फिरा करे।

मनुष्य सुख की आकांक्षा रखता है, यह अस्वाभाविक नहीं, किन्तु आत्मिक सुख ही स्थायी है अन्य तो अस्थायी हैं, क्षणिक हैं, अस्तु ग्रन्थकार आत्मिक सुख के लिए प्रयास करने की प्रेरणा देते हुए लिखते हैं—

वयसः पतमानस्य स्रोतसो वाऽनिवर्तिनः।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यःसुखभाजःप्रजाःस्मृताः॥

जिस प्रकार नदी की धारा आगे ही बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती, उसी प्रकार आयु केवल जाती ही है अर्थात् घटती ही है और आती नहीं अर्थात् बढ़ती नहीं। अतः यह देखकर आत्मा को सुख देने वाले सत् कार्यों में लगना उचित है। सुख की आकांक्षा सभी के मनों में होती है।

सांसारिक सुख तो सामान्य घटनाओं से छिन्न-भिन्न होने लगते हैं। संयोग और वियोग साथ-साथ लगे हैं। संसार का नियम ही ऐसा है कि इनसे बचकर नहीं रहा जा सकता—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च धनानि च ।
समेत्य व्यवधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः ॥

जिस प्रकार महासागर में अन्य स्थानों से बह कर आयी हुई दो लकड़ियाँ एक स्थान पर पहुँचकर मिल जाती हैं और फिर काल पा पृथक् हो इधर-उधर बहती चली जाती हैं, इसी प्रकार भार्या, पुत्र, भाई-बन्द और धन-सम्पत्ति जो आकर अपने को मिलते हैं, इन सब का कालान्तर में वियोग होना भी निश्चय ही है ।

अत: सांसारिक सम्बन्धों के प्रति मोह न होने देना ही श्रेयस्कर है । मोह में पड़कर व्यक्ति अपने कर्तव्यों को भूलने लगता है । यह मर्म लक्ष्मण जी समझते हैं । सीता जी को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ कर लौटते समय वे सुमन्त्र को समझाते हुए कहते हैं–

तस्मात्पुत्रेषु दारेषु मित्रेषु च धनेषु च्।
नातिप्रसंगः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्ध्रुवम्॥

अत: एक न एक दिन पुत्रों, कलत्रों और मित्रों एवं धन, ऐश्वर्य से तो अलग होना ही पड़ता है । सो इनमें अधिक अनुरक्त होना ठीक नहीं ।

यह कल्पना करना भूल है कि श्रेष्ठ मार्ग पर चलने से कोई दु:ख प्रसंग नहीं आयेगा, वह तो स्वाभाविक रूप से सभी के जीवन में आते ही हैं । उनसे विचलित होकर श्रेष्ठ मार्ग नहीं छोड़ देना चाहिए । राम के जीवन में भी दु:ख के प्रसंग बहुतायत से आये । दुर्वासा ऋषि ने उन्हें इस सन्दर्भ में पहले ही सावधान कर दिया था । सुमन्त्र को यह विदित था । उन्होंने लक्ष्मण जी को बतलाया कि ऋषि दुर्वासा ने पहले ही यह कहा था कि–

भविष्यति दृढ़ रामो दु:खप्रायो विसौख्यभाक् ।
प्राप्स्यते च महाबाहुविप्रयोगं प्रियैर्द्रुतम् ॥

श्री रामचन्द्र जी प्राय: दु:खी ही रहेंगे और उन्हें सुख नहीं मिलेगा । उनको अपने प्यारे जनों से शीघ्र ही वियोग होगा । अत: सुख-दु:ख और संयोग-वियोग पर विशेष ध्यान न देकर अपने कर्तव्य पालन पर ही अटल रहना चाहिए ।

राम ने यही आदर्श उपस्थित किया । वे सुख-दु:ख के प्रसंगों से अप्रभावित रहकर अपने जीवन के उद्देश्य को पूरा करने में हर क्षण सतर्कतापूर्वक लगे रहे । वन गमन प्रसंग में वे माता कैकेयी से कहते हैं–

शारीरो मानसो वाऽपि कच्चिदेनं न बाधते ।
सन्तापो वाऽभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥

हे माता ! शारीरिक एवं मानसिक ताप किसे पीड़ित नहीं करते, सदा सुख ही सुख मिलना दुर्लभ है ।

अपने कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों का ठीक प्रकार निर्वाह करने वाले को मृत्यु भी भयभीत नहीं कर पाती । वह स्वाभाविक रूप से कर्तव्य शृंखला में ही उसे अपना लेता है, लिखा है–

यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद्भयम् ।
एवं नारस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद्भयम् ॥

जिस प्रकार पके हुए फल को गिरने से डरना नहीं चाहिए–उसी प्रकार उत्पन्न हुए नर को मरने से नहीं डरना चाहिए ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धार्मिकता प्रकरण

धार्मिकता अर्थात् कर्त्तव्यपरायणता

भारत धर्म प्राण देश कहा जाता है, धार्मिकता के प्रति लोगों की आस्था बड़ी गहरी है । किन्तु दुर्भाग्य यह है कि धर्म के सम्बन्ध में लोगों की मान्यतायें बहुत अधिक भ्रान्तिपूर्ण हो गई हैं । धर्म मात्र कहने-सुनने का विषय नहीं वह तो सर्वहितकारी-आदर्श, आचरण पद्धति है जिस पर चलकर मनुष्य और समाज प्रगति पथ पर सतत् बढ़ता रह सकता है । चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, में, धर्म का सर्वोपरि स्थान है । स्पष्ट है कि धर्म भी पुरुषार्थ है । दूसरे शब्दों में धर्म परायण व्यक्ति के कुछ विशिष्ट कर्तव्य और उत्तरदायित्व होते हैं उसे उन्हीं के अनुरूप आचरण करना चाहिए । रामायण में कहा गया है—

त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥

धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में जो श्रेष्ठ है (अर्थात् धर्म को) उसको जान कर भी जो धर्मानुसार आचरण नहीं करता—वह चाहे राजा हो अथवा राजा के सदृश कोई बड़ा आदमी हो—उसका बहुत-सा शास्त्र सुनना व्यर्थ है ।

धार्मिक आचरण से ही चरित्र निर्माण होता है, चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ॥

चरित्र ही अकुलीन को कुलीन, भीरू को वीर और अपावन को पावन प्रसिद्ध करता है ।

धर्म का आचरण करने से लोक और परलोक दोनों सुधरते हैं—

एष राजन्परोधर्मः फलवान्प्रेत्य राघवः ।
न हि धर्माद्भवेत्किञ्चिदुष्प्रापमिति मे मतिः ॥

हे राजन् ! धर्म ही सब से बढ़कर है और मरने पर परलोक में धर्म ही सहायक होता है । यह मेरा दृढ़ मत है कि, धर्म पर आरूढ़ रहने वाले को कोई भी पदार्थ दुष्प्राप्य नहीं है ।

यह उपलब्धियाँ किन्हीं छोटे-मोटे कर्मकाण्डों के सहारे प्राप्त करने की आशा करना भूल है । धर्म सिद्धान्तों को जीवन में उतार लेने से ही धर्म का लाभ उठाया जा सकता है, लिखा भी है—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेणं विधृताः प्रजाः ।
यसमाद्धारयते सर्व त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

धारण करने ही से धर्म रह सकता है और धर्म ही से प्रजा जन (यथावस्थित) रह सकते हैं । अतः धर्म का धारण करने वाला, चराचर सहित तीनों लोकों को धारण कर सकता है ।

श्रेष्ठ सिद्धान्तों को जीवन में अपनाते समय मनुष्य को कुछ कष्ट कठिनाइयाँ विचलित कर देती हैं पर जो कष्ट सहने की सामर्थ्य रखते हैं, वे आगे बढ़ जाते हैं । यह सामर्थ्य जिस अभ्यास से बढ़ती है उसे तप कहते हैं । धर्मपरायण व्यक्ति को तप परायण भी होना चाहिए ।

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोर्जनम् ।
स पश्चात्तप्यते मूढो मृतो गत्वात्मनो गतिम् ॥

जो इस नाशवारन शरीर से तप नहीं करता, वह मूढ़जन मरने पर अपने कर्म से प्राप्त अपनी गति को पा कर सन्तापित होता है ।

धर्मशील मनुष्य भी कई बार दूसरों के गलत आचरण से प्रभावित होकर वैसा ही करने को तैयार हो जाते हैं । अपने कर्तव्यों की जिम्मेदारी हमारी है । दूसरों से अप्रभावित रहकर हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये । रावण वध के बाद सीता को सताने वाली राक्षसियों को दण्ड देने को उत्सुक हनुमान को रोकते हुए सीता ने कहा—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥

दूसरे के बुरे काम देखकर वैसा ही बुरा बर्ताव करना उचित नहीं । प्रत्येक जन को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए । क्योंकि आचार रक्षा ही साधुजनोचित भूषण है ।

अपने धर्म कर्तव्य का बोध होना और आत्म विश्वासपूर्वक उस पर आरूढ़ रहना धार्मिकता का मुख्य लक्षण है । भगवान राम का सारा जीवन इसी कर्तव्य निष्ठा से ओत-प्रोत है । वन-गमन से पूर्व राम ने कैकेयी से कहा—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तु मुत्सहे ।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्ममास्थितम् ॥

हे देवी ! मैं अर्थ परायण (धन लोभी नहीं हूँ तथा मुझे संसार की किसी वस्तु की इच्छा नहीं है । आप मुझे ऋषि तुल्य ही समझें), क्योंकि में केवल धर्म में ही स्थित हूँ और उसी में मेरी आस्था है ।

धर्म परायण व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अहंकार में बहक नहीं जाता, धर्म मर्यादा के अनुकूल ही सामर्थ्य का उपयोग करता है । श्री राम को भी अपनी सामर्थ्य पर विश्वास होने के साथ-साथ धार्मिक उत्तरदायित्व का भी बराबर ध्यान है । राम से राज्याधिकार छीन लिया जाने और उन्हें वन भेजने को अनुचित कहते हुए लक्ष्मण उत्तेजित हो उठते हैं और बल प्रयोग द्वारा प्रतिकार करने के लिए तैयार हो जाते हैं तब श्री राम उन्हें समझाते हुए कहते हैं—

एको ह्यहमयोध्यां च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
तरेयमिषुभिः क्रुद्धो ननु वीर्यमकारणम् ॥

हे लक्ष्मण ! क्रुद्ध होने पर मैं अकेला ही अयोध्या क्या—सारी पृथ्वी को बाणों से अपने वश में कर सकता हूँ, किन्तु यह धर्म संकट का समय है, ऐसे समय पराक्रम प्रदर्शन उचित नहीं ।

राम के पराक्रम और धर्म निष्ठा से सारी अयोध्या परिचित थी । अयोध्यावासियों में चर्चा चलती है और वे परिस्थितियों की समीक्षा करते हुए कहते हैं—

नैतस्य सहिता लोक भयं कुर्युर्महामृधे ।
अधर्म त्विह धर्मात्मा लोकं धर्मेणं योजयेत् ॥

क्या सब लोग यहाँ संग्राम में श्री रामचन्द्र जी से नहीं डरते (अर्थात् सब डरते है) । अतः वे बलवान हैं, वे चाहते तो यह राज्य अपने बाहुबल से ले सकते थे, (किन्तु) वे धर्मात्मा हैं और अधर्मियों को भी धर्म पर चलने की शिक्षा देते हैं । तब वे ही क्यों कर अधर्म करें ? (अर्थात् बलपूर्वक राज्य लें) ।

धर्म का क्षेत्र व्यापक है वह हमारे जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रभाव डालता है, अर्थ भी धर्म के नियन्त्रण में आता है । हमें ईमानदारी और परिश्रम की कमाई ही ग्रहण करनी चाहिए तथा यथा समय उसे लोक मंगल के लिए वितरित करते रहना चाहिए । संगति का अनावरण के मोह परिग्रह कहलाता है जो धर्म विरुद्ध है । वन-गमन से पूर्व भगवान राम ने अपनी सम्पत्ति सुपात्रों में वितरित कर दी—

स चापि रामः परिपूर्णमानसो ।
महद्धनं धर्मबलैरुपार्जितम् ॥
नियोजयामास सुहृज्जने चिरा- ।
द्यथार्हसम्मानवचःप्रयोदितः ॥

श्री रामचन्द्र जी ने धर्म युक्त और परिश्रम पूर्वक कमाई हुई विशाल सम्पत्ति को बड़े आदर के साथ, प्रसन्नतापूर्वक अपने सुहृदों को बाँट दी ।

कर्तव्य पथ मात्र भावुकता का खेल नहीं दृढ़ता का मार्ग है इसमें भौतिक आकर्षणों से बचकर चलना पड़ता है । वन जाने के लिए तैयार राम को रोकने की असफल चेष्टा के बाद राजा दशरथ ने राम से कहा—

न हि सत्यात्मनस्तात धर्माभिमनसस्त ।
विनिवर्तयितुं बुद्धिः शक्यते रघुनन्दनव ॥

हे श्री रामचन्द्र ! तुम सत्य के पालन में तत्पर और धर्म कार्य करने में दत्तचित्त हो, अतः तुमको इनसे हटाकर, दूसरे मार्ग पर चलने की बुद्धि (केवल मुझी में नहीं प्रत्युत) किसी में नहीं है ।

धर्मनिष्ठ व्यक्ति को उसके कर्तव्य से कोई डिगा नहीं सकता । राम कर्तव्य परायणता की मूर्ति थे । वन जाने के पूर्व लक्ष्मण ने अपने पराक्रम से राम को सिंहासनारूढ़ कराने की बात कही उन्हें समझाते हुए राम ने कहा—

नेयं मम मही सौम्य दुर्लभा सागराम्बरा ।
न हीच्छेयमधर्मेण शक्रत्वमपि लक्ष्मण ॥

हे सौम्य ! संसागरा पृथ्वी का राज्य हस्तगत करना मेरे लिए दुर्लभ नहीं, किन्तु पृथ्वी तो है ही क्या, मैं अधर्मपूर्वक इन्द्र पद को भी नहीं लेना चाहता ।

श्री राम की कर्तव्य निष्ठा से सभी परिचित हैं । चित्रकूट प्रसंग में भरत जी अयोध्यावासी नागरिकों से कहते हैं कि श्री राम को लौटा ले चलने के लिए वे सब मिलकर आग्रह करें, तो नागरिक उत्तर देते हैं—

एषोऽपि हि महाभागाः पितुर्वचसि तिष्ठति ।
अतएव न शक्ताः स्मो व्यावर्तयितुमञ्जसा ॥

परन्तु श्री रामचन्द्र जी से हम लोग आग्रह नहीं कर सकते क्योंकि महाभाग श्री रामचन्द्र, पिता की आज्ञा पालन करने को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृढ़ संकल्प किये हुए हैं। अत: हम लोगों में यह सामर्थ्य नहीं कि, इनको तुरन्त लौट चलने को कहें।

चित्रकूट प्रसंग में राम की दृढ़ता राम के शब्दों में–

लक्ष्मीश्चन्द्रदपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात्सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहुं पितु: ॥

चन्द्रमा की शोभा चन्द्रमा को भले ही छोड़ दे, हिमालय भले ही हिम को छोड़ दे। भले ही समुद्र अपनी सीमा को लाँघ जाये, किन्तु मैं पिता की प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता।

भौतिक आकर्षण ही नहीं स्नेह सम्बन्ध भी मनुष्य को विचलित कर देते हैं पर कर्तव्य धर्म का सच्चा साधक स्नेह की रक्षा करता हुआ भी कर्तव्य से डिगता नहीं। राम, भरत को प्राणों से भी बढ़कर मानते थे, किन्तु उनका अनुरोध भी राम को कर्तव्य पथ से विचलित नहीं कर सका। चित्रकूट प्रसंग में वाल्मीकि जी कहते हैं–

तथा हि रामो भरतेन ताम्यता।
प्रसाद्यमान: शिरसा महीपति: ॥
न चैव चक्रे गमनाय सत्ववान।
मति पितुस्तद्वचने व्यवस्थित: ॥

यद्यपि भरत जी इस प्रकार गिड़गिड़ा और चरणों पर अपना सिर रखकर श्री रामचन्द्र जी को मना रहे थे, तथापि श्री रामचन्द्र पिता के वचन पर ऐसे दृढ़ थे कि, वे जरा भी उससे विचलित न हुए अर्थात् किसी प्रकार भी अयोध्या लौट जाना उन्होंने स्वीकार न किया।

धर्म कर्तव्य पालन यद्यपि कठिन है किन्तु यदि दृढ़तापूर्वक धर्माचरण किया जाये और अनुकूल सहायक मिल जायें तो यह मार्ग सुगम भी है। भरत को समझाते हुए तथा वापिस अयोध्या लौटकर कर्तव्य पालन करने को कहते हुए चित्रकूट प्रसंग में राम ने कहा–

शत्रुघ्न: कुशलमतिस्तु ते सहाय:।
सौमित्रिर्मम विदित: प्रधानमित्रम् ॥
चत्वारस्त नयवरा वयं नरेन्द्रं।
सत्यस्थं भरत चराम मा विषादम् ॥

हे भरत ! यह अमित बुद्धि वाले शत्रुघ्न तुम्हारे सहायक रहेंगे और सर्वलोकों में प्रसिद्ध यह लक्ष्मण मेरी सहायता करेंगे। इस प्रकार नृपश्रेष्ठ महाराज दशरथ के हम चारों पुत्र महाराज को सत्यवादी करें। अत: अब तुम दु:ख मत करो।

व्यक्ति को धर्म निष्ठा स्वयं उसे तो पतन से बचाती ही है और को भी उससे सही दिशा मिल जाती है। चित्रकूट में राम का प्रभाव सब पर छा जाता है–

अथानुपूर्व्यात्प्रतिनन्द्य तं जन।
गुरूंश्च मन्त्रिप्रकृतीस्तथाएनुजौ ॥
व्यनर्जयद्राघववंशवर्धन:।
स्थिर: स्वधर्मे हिमवानिवाचल: ॥

तदनन्तर हिमालय की तरह अपने धर्मपालन में अटल, अचल, रघुवंश के बढ़ाने वाले श्री रामचन्द्र जी ने यथाक्रम गुरू, मन्त्री, प्रजा और दोनों छोटे भाइयों का सत्कार कर, उन सब को विदा किया।

श्री राम में अपना कर्तव्य पहचानने, उसे स्वीकार करने तथा दृढ़तापूर्वक उसे क्रियान्वित करने की अद्भुत क्षमता है। रामायण में उसकी झलक अनेक स्थानों पर मिलती है। राक्षसों से पीड़ित ऋषियों के अनुरोध से राम ने राक्षसों का समूलोच्छेद करने की प्रतिज्ञा की। सीता ने उनसे इस झंझट में न पड़ने का अनुरोध किया तो राम ने सीता से कहा–

अप्यहं जीवितं जह्यां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां सश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषत: ॥

मुझे भले ही अपने प्राण गँवाने पड़ें अथवा लक्ष्मण सहित तुम्हें ही क्यों न त्याग देना पड़े, किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता। विशेष कर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों से कर सका हूँ।

इस तरह राम दृढ़ता पूर्वक कर्तव्य का पालन कर अपने चरित्र की रक्षा तथा धर्म रक्षा करते रहे। अशोक वाटिका में सीता को राम का परिचय देते हुए हनुमान ने कहा–

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तप: ॥

यह (श्री राम जी) अपने चरित्र की रक्षा करने वाले और अपने जनों का प्रतिपालन करने वाले हैं। यही नहीं, बल्कि ये संसार के जीव-मात्र के रक्षक तथा धर्म की भी मर्यादा रखने वाले और शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले हैं।

श्री राम ने अपने आचरण द्वारा धर्म मर्यादा स्थापित की। वे जाति भेद से परे मानव मात्र के रक्षक हैं। अशोक वाटिका में ही हनुमान जी सीता जी से कहते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामो भामिनि लोकेऽस्मिश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥

हे देवी ! श्री रामचन्द्र जी इस लोक में चारों वर्णों के रक्षक और लोक की मर्यादा बाँधने वाले और मर्यादा की रक्षा करने वाले हैं ।

यह श्रेष्ठता हर मनुष्य अपने अन्दर विकसित कर सकता है । इसमें नियमित उपासना तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों से परामर्श बहुत लाभप्रद सिद्ध हो सकता है । राम स्वयं नियमित रूप से उपासना करते हैं–

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायामभिषिच्य हुताग्निकान् ।
आपृच्छेतां नरव्याघ्रौ तापसान्वनगोचरान् ॥

जब रात बीती और सवेरा हुआ, तब दोनों पुरुषसिंहों ने स्नेह और सन्ध्योपासन अग्निहोत्रादि कर्मों से निश्चिन्त हो वनवासी तपस्वियों से पूछा ।

उपासना इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना धर्म कर्तव्य का ठीक-ठीक बोध और उसका निर्वाह बहुत मुश्किल हो जाता है । धर्म स्थूल कर्मकाण्ड नहीं सूक्ष्म सिद्धान्त है, इसका बोध प्रयास करने पर अपने अन्त:करण में होता है । यह तथ्य श्री राम अपने बाण से घायल बालि को समझाते हुए कहते हैं–

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम् ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥

हे वानर ! सज्जनों का धर्म ऐसा सूक्ष्म है कि सहज ही उसे कोई जान नहीं सकता । परन्तु वह धर्म प्रत्येक प्राणी के हृदय में वर्तमान है । इसी से अन्तरात्मा द्वारा ही शुभाशुभ का ज्ञान हुआ करता है ।

सामान्य रूप से किसी को मारना या सताना अधर्म कहा जाता है किन्तु धर्म की सूक्ष्म विवेचना के अनुसार आततायी को मारना अधर्म नहीं है । श्री राम बालि से कहते हैं–

तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः ।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥

हे वानरोत्तम् ! अब तुम्हारा पछतावा व्यर्थ है । क्योंकि यह तुम्हारा वध धर्मानुसार ही किया गया है और मैं धर्मशास्त्र के वश में हूँ; स्वतन्त्र नहीं हूँ ।

श्री राम ही नहीं रामायण के अन्य प्रमुख पात्र अपने कर्तव्य के प्रति बहुत जागरूक हैं । वन गमन प्रसंग में जब सीताजी एवं श्री राम सो जाते हैं तो लक्ष्मण सावधानी से चौकसी करने लगते हैं निषाद राज गुह स्वयं सुरक्षा का उत्तरदायित्व लेते हुए लक्ष्मणजी से भी विश्राम करने का आग्रह करता है, तब लक्ष्मण कहते हैं–

लक्ष्मणस्तं तदोवाच रक्ष्यमाणास्त्वयानघ ।
नात्र भीता वयं सर्वे धर्ममेवानुपश्यता ॥

हे पुण्यात्मन् ! तुम्हारी रखवाली का तो हमें पूरा भरोसा है । मुझे डर किसी बात का नहीं है, किन्तु अपने कर्तव्य-पालन का पूरा ध्यान है ।

कथं दाशरथौ भूमौ शयाने सह सीतया ।
शक्या निद्रा मया लब्धु जीवितं वि सुखानि वा ॥

जब चक्रवर्ती महाराज दशरथ के कुमार, जनक की बेटी सीता जी सहित, भूमि पर पड़े सो रहे हैं, तब मेरा यह कर्तव्य नहीं कि मैं पड़कर सुख से सोऊँ अथवा अपने जीते रहने या अपने आराम के लिए प्रयत्न करूँ ।

महाराजा जनक भी आदर्श कर्तव्य परायण व्यक्ति थे । राजा होते हुए भी वे अपने निर्वाह के लिए अपने हाथों कृषि कार्य करते थे । सीता ने अनुसूया को अपनी उत्पत्ति के बारे में बताया–

तस्य लांगलहस्तस्य कर्षतः क्षेत्रमण्डलम् ।
अहं किलोत्थिता भित्वा जगती नृपतेः सुता ॥

जब हल हाथ में ले वे क्षेत्र जोतने लगे, तब मैं पृथ्वी को भेद कर, उनकी पुत्री के रूप में निकल आयी ।

स मां दृष्ट्वा नरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः ।
पांसुकुण्ठितसर्वांगीं जनको विस्मताऽभवत् ॥

उस समय राजा जनक मुट्ठी में बीज लें उन्हें बोने में तत्पर थे, मेरे सारे शरीर में धूल लगी देख वे विस्मित हुये ।

धर्म की उपेक्षा से मनुष्य पर विपत्ति आती है । श्री राम के वन जाने के प्रसंग में सारी स्थिति का अध्ययन करके अयोध्यावासी नागरिक परस्पर कहते हैं–

अर्थधर्मौ परित्यज्य यः काममनुवर्तते ।
एवमापद्यते क्षिप्रं राजा दशरथो यथा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो मनुष्य अर्थ ओर धर्म को छोड़ केवल काम का अनुगामी बन जाता है, उस पर तुरन्त उसी प्रकार विपत्ति पड़ती है, जैसे महाराज दशरथ पर ।

सैद्धान्तिक रूप से तो धर्म मनुष्य मात्र के लिए समान ही होता है किन्तु व्यक्तिगत सत्-कर्तव्य भी धर्म कहे । उन्हें स्वधर्म कहा जाता है । स्वधर्म का त्याग बहुत बड़ा पाप माना है । भरत जी श्री राम के वन गमन से दु:खी होकर माता कौशल्या से कहते हैं—

मा स्म धर्मे मनो भूयादधर्म स निषेवताम् ।
अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गत: ॥

जिस मनुष्य की सलाह से श्री राम वनवासी हुए हों, उसे वहीं पाप हो, जो स्वधर्म-त्यागी, अधर्म अनुरागी एवं कुपात्र को दान देने वाले का होता है ।

भरत धर्मनिष्ठ हैं वे धर्मानुमोदित कार्य ही करना चाहते हैं । जब सबने उन्हें राज्य ग्रहण करने को कहा तो राज्य के आकर्षण को नगण्य मानते हुए उन्होंने धर्म पालन की ही आकांक्षा व्यक्त की । उन्होंने कहा—

कथं दशरथाज्जातो भवेद्राज्यापहारक: ।
राज्यं चाहं च रामस्य धर्म वक्तुमिहार्हसि ॥

महाराज दशरथ से उत्पन्न कोई क्यों कर धर्मानुमोदित दूसरे के राज्याधिकार को अपहृत कर सकता है । केवल यह सारा राज्य ही नहीं, बल्कि मैं स्वयं भी श्री रामचन्द्र का हूँ । हे पुरोहित जी ! आप जो कुछ कहें, वह धर्मानुमोदित ही कहें ।

भूल किसी से भी हो कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति उसके सुधार के लिए अपनी भूमिका चुन लेता है । भरत राम को मनाकर वापिस लाने के लिए कृत संकल्प हुए । उनके इस आचरण पर सबने प्रसन्नता व्यक्त की—

धन्यस्त्वं न त्वया तुल्यं पश्यामि जगतीतले ।
अयत्नादागतं राज्यं यस्त्वं त्यक्तुमिहेच्छसि ॥

हे भरत ! आप धन्य हैं । आपके समान इस धराधाम पर मुझे दूसरा कोई नहीं देख पड़ता । क्योंकि आप बिना प्रयत्न किये हाथ लगे हुए राज्य का त्याग करना चाहते हैं ।

कर्तव्य एकांकी नहीं होता । उसकी अनेक धारायें होती हैं तथा श्रेष्ठ व्यक्ति उन सबका निर्वाह करते हैं । अर्थोपार्जन अर्थात् साधनों की एक उपलब्धि तथा धर्मानुष्ठान अर्थात् प्राप्त साधनों का सद् कार्यों में उपयोग इन दोनों पक्षों का ध्यान रखने तथा सावधानी बरतने के लिए श्रीराम चित्रकूट में भरत को प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुन: ।
उभौ का प्रीतिलोभेन कामेन च न बाधसे ॥

कहीं धर्मानुष्ठान के समय को अर्थोपार्जन में या अर्थोपार्जन के समय को धर्मानुष्ठान में तो नष्ट नहीं कर देते ? अथवा सुखाभिलाषा के लिए विषय-वासना में फँस, अर्थो-पार्जन और धर्मानुष्ठान दोनों का समय तो नहीं गँवा देते ?

भरत ने धर्म का ठीक-ठीक पालन किया, धर्म को अपने आचरण में उतार लेने के कारण वे धर्म स्वरूप ही हो गये । लंका विजयी राम भारतद्वाज के आश्रम में रुक गये और हनुमान को भरत की कुशल जानने और अपना समाचार सुनाने भेजा। अयोध्या में भरत के पास पहुँच कर हनुमान ने भरत को किस रूप में पाया इसका उल्लेख करते हुए वाल्मीकि जी कहते हैं—

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मज: ॥

धर्म की मूर्तिमान दूसरी मूर्ति, धर्म के जानने वाले भरत जी से पवन नन्दन हनुमान जी ने हाथ जोड़कर कहा ।

किन्तु यह स्तर पाने के लिए उपासनात्मक कर्मकाण्ड और कोराशास्त्र ज्ञान पर्याप्त नहीं । यदि हम धार्मिक सिद्धान्तों को आचरण में न उतार सके और कर्तव्य परायण न बन सके तो सारा ज्ञान निरर्थक है । यों तो रावण भी बड़ा ज्ञानी था । सीता को वापिसकर तथा राम से सन्धिकर धर्माचरण करने के बारे में विभीषण ने रावण से कहा—

न धर्मवादे न च लोकवृत्ते ।
न शास्त्रबुद्धिग्रहणेषु चापि ॥
विद्येत कश्चित्तव वीर तुल्य ।
त्वंह्युत्तम: सर्वसुरासुराणाम् ॥

हे वीर ! धर्मशास्त्र के ज्ञान में लोकाचार में और शास्त्र के विचार में तुम्हारी टक्कर का कोई भी तो नहीं दीख पड़ता । इस समय तो इन विषयों के ज्ञान में तुम सुर और असुर सब ही में सर्वोत्तम् माने जाते हो ।

किन्तु रावण कोरा ज्ञानी बना रहा तथा अधर्माचरण करता रहा अत: सपरिवार नष्ट हो गया । रावण को समझाते हुए माल्यवान ने कहा था—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधर्मः प्रगृहीतश्च तेनास्मद्बलिनः परैः ।
स प्रमादाद्विवृद्धस्तेऽभिग्रसते हि नः ॥

हे रावण ! तुमने अधर्म बटोरा है, इसी से शत्रु हम लोगों से बलवान हो गये हैं । तुम्हारे प्रमाद से अधर्म बढ़ कर, हम लोगों को ग्रास कर रहा है ।

मनुष्य की श्रेष्ठ उपलब्धियाँ उनका गलत उपयोग करने से क्षीण हो जाती हैं । यह तथ्य रावण को समझाते हुए हनुमान जी ने भी कहा था—

तपः सन्तापलब्धस्ते योऽयं धर्मपरिग्रहः ।
न स नाशयितुं न्याय्य आत्मप्राणपरिग्रहः ॥

तुमने कठोर तप कर जिस धर्मफल स्वरूप ऐश्वर्य और दीर्घ कालीन जीवन को पाया है, उसे धर्म विरुद्ध कार्य कर नष्ट करना उचित नहीं ।

किन्तु रावण ने किसी की बात नहीं मानी । उसके साथी भी कर्मकाण्डात्मक प्रक्रियायें करते थे किन्तु वे अधर्म के समर्थक थे तथा अधर्माचरण करते थे । राक्षसों के हवन आदि के बारे में वाल्मीकि जी ने लिखा है—

हताशनं तर्पयतां ब्राह्मणांश्च नमस्यताम् ।
आज्यगन्धप्रतिवहः सुरभिर्मरुतो ववौ ॥

मंगलकामना के लिए अनेक राक्षस हवन करने लगे । वहनों ने ब्राह्मणों की वन्दना की । होम किये हुए घी की सुगन्धि मिलने के कारण सुगन्धित हवा चलने लगी ।

लेकिन यह कोरे कर्मकाण्ड उन्हें बचा न सके, क्योंकि उनके आचरण धर्मानुकूल नहीं थे । बाहर से धर्मावलम्बी दिखने पर भी वे धर्म को नष्ट कर रहे थे । केवल विभीषण ने धर्म का मर्म समझकर उसका पालन किया और उसका लाभ भी मिला । कुम्भकर्ण ने अपनी मृत्यु के पूर्व विभीषण की प्रशंसा करते हुए कहा था—

त्वमेको रक्षसां लोके सत्यधर्माभिरक्षिता ।
नास्तिधर्माभिरक्तस्य व्यसनं तु कदाचन ॥
सन्तानार्थं त्वमेवैकः कुल्स्यास्य भविष्यसि ॥

समस्त राक्षसों में तुम्हीं अकेले ने सत्य और धर्म की रक्षा की है । जो धर्म में रत हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ता । सन्तानोत्पत्ति कर इस कुल का नाम रखने को भी तुम्हीं जीवित रहोगे और सब मारे जायेंगे ।

इन तथ्यों पर विचार कर हमें कर्मकाण्ड और जानकारी को धर्म न मानकर मन, वाणी और कर्म से धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए ।

वाणी का शील और सन्तुलन

मनुष्य को मिले हुए दिव्य अनुदानों में से वाणी भी एक है । वाणी का उपयोग सज्जनतापूर्वक करना चाहिए । सुसंस्कृत वाणी सुनने वाले को बोलने वाले व्यक्ति का परिचय देती है तथा प्रभावित करती है । राम, लक्ष्मण को आते देख सुग्रीव ने उनका परिचय जानने के लिए हनुमान को भेजा । हनुमान की बातचीत से प्रभावित राम, लक्ष्मण कहते हैं—

नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥

अवश्य ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण बहुधा सुना है (अर्थात् पढ़ा है) क्योंकि इन्होंने इतनी बातें कहीं, किन्तु इनके मुख से एक भी बात अशुद्ध नहीं निकली ।

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ॥

क्योंकि जिस प्रकार की बातचीत इन्होंने हमसे की है, वैसी बातचीत ऋग्वेद-यजुर्वेद और सामवेद के जाने बिना, कोई कर नहीं सकता ।

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि सामने वाले को खुश करने के लिए उसके गलत कार्यों का समर्थन करने वाली बात कहा जाये । वह चापलूसी कहलाती है । सत्य, मधुर एवं हितकारी वाणी ही बोलनी चाहिए । जब रावण ने मारीच को सीता हरण में सहयोगी होने को कहा, तब उसे इस गलत कार्य को न करने को समझाते हुए मारीच ने कहा—

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

हे राजन् ! मुँह सोहनी बात कहने वाले लोग बहुत सहज में मिल सकते हैं किन्तु सुनने में अप्रिय और यथार्थ में हितकारी वचनों के कहने और सुनने वाले लोग संसार में कम मिलते हैं ।

कभी-कभी गलतफहमी के कारण कटुवाणी बोलकर हम अपने हितैषियों के हृदय को चोट पहुँचाकर अपना ही अनिष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं। मारीच के छल के कारण सीता ने राम को संकट में पड़ा समझ लक्ष्मण को वहाँ भेजना चाहा। उनके न जाने पर उन्हें कठोर वचन कहे। लक्ष्मण ने कहा—

न्यायवादी यथान्यायमुक्तोऽहं पुरुषं त्वया।
धिक्त्वामद्य प्रणश्य त्वं यन्मामेवं विशंकसे॥

मेरे यथार्थ कहने पर भी तुमने मुझसे कठोर वचन कहे अतः तुमको धिक्कार है। जान पड़ता है, आज तुम्हारा अन्त होने वाला है, तभी तुमको मुझ पर ऐसा निर्मूल सन्देह हुआ है—

सीता के कठोर वचनों के कारण लक्ष्मण उन्हें छोड़कर चले गये मार्ग में राम के पूँछने पर लक्ष्मण ने कहा—

न स्वयं कामकारेण तां त्यक्त्वाहमिहागतः।
प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः॥

मैं अपनी इच्छा से जानकी को छोड़ यहाँ नहीं आया, बल्कि उनके उग्र वचन कहने पर ही मैं आपके पास आया हूँ।

हमारे हितैषी कभी-कभी हमें हमारे हित की शिक्षा दिया करते थे; किन्तु हम उसे नहीं मानते तथा परिणाम स्वरूप हानि उठाते हैं। रावण को समझाते हुए विभीषण ने कहा—

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।
बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणां॥

अप्रिय, किन्तु न्याययुक्त बातें कहने वाले और सुनने वाले मनुष्यों का मिलना कठिन है। सब प्राणियों के प्राण हरण करने वाले काल के पाश में फँसे हुए हैं।

शौर्य साहस पराक्रम एवं पुरुषार्थ

धर्मपरायण व्यक्तियों में सज्जनता सौम्यता नम्रता आदि गुण भी होने ही चाहिए किन्तु शौर्य, साहस, पराक्रम आदि भी उनके लिए अनिवार्य है। समय पर इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। परिस्थितियों के आघातों से प्रतिरोध और कठिनाइयों से अविचलित एवं अप्रभावित प्रखरता से कार्य किये बिना किसी भी क्षेत्र में सफलता नहीं मिल सकती, धर्म मार्ग में भी यह नियम लागू होता है। यह प्रखरता उपर्युक्त गुणों से ही सम्भव है। दिन और रात्रि के समान इस संसार में मनुष्य पर सुख और दुःख आते ही रहते हैं। यदि हम विपत्तियों से हार मानकर बैठे रहें तो कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। हर परिस्थिति का उत्साहपूर्वक शौर्य और साहस से मुकाबला करना चाहिए। सीता हरण के बाद व्याकुल राम को समझाते हुए लक्ष्मण ने कहा कि पराक्रम और शौर्य को क्षीण करने वाला शोक न करें—

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति॥

देखिये, उत्साह शून्य, दीन और शोक से विकल मनुष्य के समस्त कार्य नष्ट हो जाते हैं और इसलिए उसे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है।

पुरुषस्य हि लोकेऽस्मिन्शोकः शौर्यापकर्षणः।
यत्तु कार्यं मनुष्येण शौण्डीर्यमवलम्बता॥

क्योंकि शोक मनुष्य के शौर्य को नष्ट कर डालता है और जो काम शूरता का अवलम्बन करके किया जाता है, वह पूर्ण होता है।

विषादोऽयं प्रसहते विक्रमे पर्युपस्थिते।
तेजसा तस्य हीनस्य पुरुषार्थो न सिध्यति॥

पराक्रम दिखाने का समय उपस्थित होने पर जो पुरुष विषाद करता है, वह तेजहीन तो होता ही है, साथ ही उसका कार्य भी सिद्ध नहीं होता।

पुरुषार्थी व्यक्तियों के पास विषाद यातो आता ही नहीं, यदि आता भी है तो टिक नहीं पाता। अपनी वृत्तियों पर उनका अधिकार होता है और उचित समय पर उनमें परिवर्तन लाना और उपयोग करना उनके लिए सम्भव होता है। लक्ष्मण जी के संकेत से सावधान हो गये बोले—

एष शोकः परित्यक्तः सर्वकार्यावसादकः।
विक्रमेष्वप्रतिहतं तेजः प्रोत्साहयाम्यहम्॥

यह लो, मैंने समस्त कार्यों के विनाश करने वाले शोक को त्याग दिया। अब में अपने पराक्रम सम्बन्धी दुराधर्ष तेज को प्रोत्साहित करता हूँ।

तेजस्विता आव्हान् करते ही अवसाद का लोप हो गया और वे लक्ष्मण जी से उत्साहपूर्वक कहने लगे—

निःसंशयं कार्यमवेक्षितव्यं।
क्रियाविशेषो ह्यनुवर्तितव्यः॥
ननु प्रवृत्तस्य दुरासदस्य।
कुमार कार्यस्य फलं न चिन्त्यम्॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे लक्ष्मण ! धैर्य धारणपूर्वक ऐसा उत्साह करना चाहिए जिससे सीता अवश्य मिल जाये और इस कार्य की सिद्धि में जो असह्य कष्ट झेलने पड़ें, उनकी चिन्ता भी न करनी चाहिए ।

चित्त वृत्ति के बदलते ही प्रखरता का उद्भव हुआ और श्री राम अनीति निवारण के लिए अदम्य-अबाध गति से बढ़ने के लिए कृत संकल्प हो गये—

युगान्ताग्निरिव क्रुद्ध इदं वचनमब्रवीत् ।
यथा जरा यथा मृत्युर्यथा कालो यथा विधि ॥
नित्यं न प्रतिहन्यन्ते सर्वभूतेषु लक्ष्मण ।
तथाऽहं क्रोधसंयुक्ता न निवार्योऽस्मि सर्वथा ॥

प्रलय कालीन अग्नि की तरह क्रुद्ध हो यह वचन बोले—हे लक्ष्मण ! जिस प्रकार से बुढ़ापा, मृत्यु और भाग्य प्राणी मात्र के रोके नहीं रोके जा सकते, उसी प्रकार क्रोध से युक्त मुझको भी कोई किसी प्रकार भी नहीं रोक सकता ।

पराक्रम से ही समस्याओं का समाधान निकलता है, अस्तु ये अपने प्रियजनों को भी उसी की प्रेरणा देते हैं । सीता की खोज के लिए हनुमान को निर्देश देते हुए राम ने कहा—

अतिबल बलमाश्रितस्तवाहं ।
हरिवरविक्रम विक्रमैरनल्पैः ॥
पवनसुत यर्थाभिगम्यते सा ।
जनकसुता हनुमंस्तथा कुरुष्व ॥

हे सिंह जैसे पराक्रम वाले ! हे अति बलशालिन ! मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है । हे हनुमान ! तुम इस समय ऐसा उद्योग करो, जिससे मुझे जानकी जी मिल जायें ।

सीता जी उनकी इन विशेषताओं को भली प्रकार जानतीं हैं, हनुमान जी से अशोक वाटिका में वे कहती हैं—

उत्साहः पौरुषं सत्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥

वे उत्साही, पुरुषार्थी, वीर्यवान्, दयालु, कृतज्ञ, विक्रमी और प्रतापी हैं ।

किन्तु परिस्थितियाँ व्यक्ति को प्रभावित करती हैं । यदि इनसे अप्रभावित रहकर पुरुषार्थ किया जाये तो कठिनाइयों पर अवश्य विजय पाई जा सकती है । इस तथ्य को ध्यान में रखकर सीता जी हनुमान से पूछती हैं कि कहीं परिस्थिति वश राम ने अपने इन गुणों को भुला तो नहीं दिया ? वे कहती हैं—

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥

वे दीन तो नहीं रहते ? वे घबड़ाते तो नहीं ? काम करने में वे भूलते तो नहीं ? वे राजकुमार अपने पुरुषार्थ का निर्वाह तो भली भाँति किये जाते हैं ।

राम और लक्ष्मण का जीवन पग-पग पर इस सत्य का बोध कराता है कि पराक्रमी सब कठिनाइयों पर विजय पाता है । वन यात्रा के समय यमुना का दृश्य ।

चिन्तामापेदिरे सर्वे नदीजलतितीर्षवः ।
तौ काष्ठसंकाटमथो चक्रतुः सुमहाप्लवम् ॥

वे सब उसको पार करने के लिए चिन्ता करने लगे । उन दोनों राजकुमारों ने बहुत-सी लकड़ियाँ एकत्र कर एक बड़ा बेड़ा बनाया ।

ततः प्रतेरतुर्युक्तौ वीरौ दशरथात्मजौ ।
कालिन्दीमध्यमायाता सीता त्वेनामवन्दत ॥

तदनन्तर दोनों वीर दशरथनन्दनों ने उस बेड़े के माध्यम से यमुना पार की । जब बेड़ा बीचों-बीच धार में पहुँचा, तब सीता जी ने यमुना जी को प्रणाम किया ।

वन में निवास करते हुए वे राक्षसों को निर्मूल करते हुए ऋषियों को निर्विघ्न कार्य का अवसर देने लगे । अपने और भाई लक्ष्मण के पराक्रम पर उन्हें पूरा विश्वास है, वे ऋषियों से कहते हैं—

तपस्वनां रणे शत्रून्हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥

मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों का युद्ध क्षेत्र में वध करना चाहता हूँ । तपोधन ऋषिगण मेरे और मेरे भाई के पराक्रम को देखकर समर्थ होते हुए भी वे शील का निर्वाह करते हैं, समुद्र का सम्मान रखते हुए वे उससे लंका के लिए मार्ग माँगते हैं । किन्तु उसकी जड़ता देखकर उन्हें कठोरता का मार्ग अपनाते देर नहीं लगती । वे लक्ष्मण से कहते हैं—

अवलेपः समुद्रस्य न दर्शयति यत्स्वयम् ।
प्रशमश्च क्षमा चैव आर्जवं प्रियवादिता ॥

देखो समुद्र को इतना अभिमान है कि, वह स्वयं प्रकट नहीं होता । इसका कारण भी स्पष्ट ही है । वह यह कि, अक्रोधता,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शान्ति, अपराध-सहिष्णुता, दूसरे के मन के अनुसार वर्ताव अथवा सीधा-साधा (कपट रहित) वर्ताव प्यारा बोल आदि गुण ही पर्याप्त नहीं है ।

प्राप्तुं लक्ष्मण लोकेऽस्मिञ्ज्यो वा रणमूर्धनि ।
अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैर्मकरालयम् ॥

हे लक्ष्मण ! शान्त बने रहने से युद्ध में जीत भी नहीं होती । सो आज तुम मेरे बाणों से कटे हुए मगरमच्छों के जल के ऊपर उतराने से समुद्र के जल को सर्वत्र ढंका हुआ देखोगे ।

भगवान राम का स्पष्ट मत है कि जहाँ सज्जनता के व्यवहार को दुर्बलता समझा जाये वहाँ शौर्य का प्रदर्शन करके उस भ्रान्ति का निवारण किया जाये ।

मृदुं लोकहिते युक्तं दान्तं करुणवेदिनम् ।
निर्वीर्य इति मन्यन्ते नूनं मां त्रिदशेश्वराः ॥

हे सौम्य ! देवता लोग तो मेरे कोमल-हृदय, लोकहित में तत्परता, जितेन्द्रिय और दयालु होने के कारण मुझको पराक्रम से हीन मानते हैं ।

ममास्त्रबाणसम्पूर्णमाकाशं पश्य लक्ष्मण ।
निःसम्पातं करिष्यामि ह्यद्य त्रैलोक्यचारिणाम् ॥

हे लक्ष्मण ! देखो, मैं अपने अस्त्र रूपी बाणों से आकाश को ढंके देता हूँ, जिससे तीनों लोकों में आने जाने वाले विमानों का रास्ता ही बन्द हो जायेगा ।

यह कोई शेखी नहीं थी, उनके पराक्रम को देखकर दृष्टा दंग रह जाते थे । युद्ध के समय उनका पौरुष पुरुषार्थ एवं पराक्रम दर्शनीय है । जब लक्ष्मण को शक्ति लगी ।

सौमित्रिं सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ।
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहम् ॥

वह शक्ति इतने जोर से चलाई गई थी कि, लक्ष्मण जी के शरीर को फोड़कर वह पृथ्वी में घुस गई थी । इस भयानक शक्ति को बलवान श्री रामचन्द्र जी ने दोनों हाथों से पकड़कर खींच लिया और क्रोध में भर उसको तोड़कर फेंक दिया ।

दुर्बल व्यक्ति केवल शेखी बघारते हैं और कठिन मुकाबला आ पड़ने पर घबड़ा जाते हैं । असन्तुलित हो जाते हैं । किन्तु श्री राम कठिन प्रसंग आने पर अपने पराक्रम के सदुपयोग का अवसर देखकर प्रसन्न होने लगते हैं । बिना क्षुब्ध या उत्तेजित हुए प्रबल पराक्रम का प्रदर्शन उनकी विलक्षण विशेषता है ।

रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धाय समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥

राक्षसराज रावण को लड़ने के लिए आया हुआ देख, श्री राम जी ने हर्षित मन से, उसका वध करने को, सब प्रकार से बड़े-बड़े प्रयत्नों से काम लिया ।

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्चं संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकांक्षिणः ॥

जब श्री रामचन्द्र जी ने युद्ध में रावण के वध करने की अभिलाषा की, तब उनके शरीर का बल, अस्त्रबल, पराक्रम और मन की प्रसन्नता दूनी हो गई ।

वे अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए अपने साथियों से कहते हैं—

पराक्रमस्य कालोऽयं समप्राप्तो मे चिरेप्सितः ।
पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ॥

क्योंकि बहुत दिनों पीछे मुझे आपना यह पराक्रम दिखाने का अवसर हाथ लगा है । इस पापात्मा और निश्चय पापी का वध अवश्य ही करना है ।

वे सज्जनों के लिए सहृदय है और दुष्ट पापियों के लिए भयंकर पराक्रमयुक्त । उन्हें फूल से भी अधिक कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर कहा गया है । वे रावण के साथ घनघोर युद्ध के लिए तत्पर हैं किन्तु देवताओं को आश्वस्त करते हुए कहते हैं—

आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ।
अद्य रामस्य रामत्वं पश्यन्तु मम संयुगे ॥
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ।
अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ॥
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावभदूमिर्धरिष्यति॥

'हे (वानर) श्रेष्ठ !' तुम लोग स्वस्थ होकर पर्वत शिखर पर बैठे-बैठे मेरी और रावण की लड़ाई देखो । आज मेरे इस युद्ध में, गन्धर्वों, सिद्धों, ऋषियों और चारणों सहित तीनों लोक मेरा अद्वितीय (बेजोड़) वीरत्व देखें । आज मैं वह काम करूँगा कि, जब तक यह संसार रहेगा, तब तक देवताओं सहित चर और अचर जीव उसका बखान करते रहेंगे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार देवताओं को खेल देखने जैसा आमन्त्रण देकर उन्होंने कैसा विकट युद्ध किया उसका अनुमान केवल इतने से ही लगाया जा सकता है–

नैव रात्रं न दिवसं न मुहूर्त न च क्षणम् ।
रामरावणोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥

रात या दिन में एक मुहूर्त्त अथवा एक क्षण के लिए भी श्री रामचन्द्र जी और रावण का यह युद्ध बन्द न हुआ ।

अविचलित भाव से सतत् संघर्ष में ही मनुष्य के शौर्य और धैर्य की परीक्षा होती है । श्रीराम इस दिशा में अद्वितीय सिद्ध होते हैं, देवगण भी उनकी सराहना करने लगते हैं–

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति रामस्य तत्कर्म समपूजयन् ॥

देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि श्रीरामचन्द्र जी के इस पराक्रम को देख और ''धन्य धन्य'' कह कर, उनकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे ।

श्री राम ने अपने आचरण से पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा की । लोगों को प्रेरणा देने के लिए उन्होंने रावण वध के बाद सीता से कहा–

एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा मया रणे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम् ॥

वे कहने लगे–हे भद्रे ! मैंने युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुमको पुनः प्राप्त कर लिया । पुरुषार्थ जैसे किया जा सकता था वह मैंने कर दिखाया ।

जन-जन में धर्म रक्षा आदर्श की स्थापना के लिए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा का संचार करना वे अपना उत्तरदायित्व मानते हैं । केवल वाणी से नहीं आचरण से उसे स्पष्ट करने के बाद वे अपने कर्तव्य की पूर्ति का सन्तोष अनुभव करते हुए कहते हैं–

अद्य मे पौरुषंह्रष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञत्वात्प्रभवामीह चात्मनः ॥

आज लोगों ने मेरा पुरुषार्थ देख लिया । आज मेरा सारा परिश्रम सफल हुआ । आज मैं अपनी प्रतिज्ञा से पार हुआ, आज मैं स्वतन्त्र हो गया ।

श्री राम ही नहीं उनके सहयोगी भी शौर्य साहस के धनी थे । लक्ष्मण तो शौर्य, और साहस की सजीव प्रतिमा ही थे । जब दशरथ एवं कैकेयी ने राम को वनवास दिया लक्ष्मण ने इसे अन्याय समझा और इसका दृढ़तापूर्वक प्रतिकार करने को तैयार हो गये । वे दृढ़ता से आत्म-विश्वास युक्त वचन कहते हैं–

मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः ॥

हे राघव ! जब मैं आपके बगल में धनुष लेकर तैयार खड़ा हूँ, तब काल की भी क्या सामर्थ्य जो टिक सके ।

विपरीत परिस्थितियाँ आने पर हीन मनः व्यक्ति उसे भाग्य कहकर चुपचाप बैठ जाते हैं, किन्तु लक्ष्मण जी का मत है कि भाग्य अपने ही कर्मों की प्रतिक्रिया है इसलिए पुरुषार्थी व्यक्ति अपने प्रबल पुरुषार्थ से भाग्य को भी बदल सकते हैं–

वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ।
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ॥

जो वीर और पुरुषार्थी होते हैं, वे भाग्य के भरोसे नहीं रहते । वे अपने पुरुषार्थ से भाग्य को बाधित करने (बदल देने) की क्षमता रखते हैं ।

दुःख के समय संवेदना व्यक्त करना अच्छी बात है किन्तु दुःख के कारण का निवारण तो पुरुषार्थ से ही होता है । माता कौशल्या को दुःखी देखकर वे कहते हैं–

हरामि वीर्यद्दुःखंते तमः सूर्य इवोदितः ।
देवी पश्यतु मे वीर्य राघवश्चैव पश्यतु ॥

जिस प्रकार उदित हुआ सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है मैं अपने पराक्रम से उसी प्रकार इस दुःख का नाश कर दूँगा । हे देवि ! आप और श्रीराम मेरे इस पराक्रम को देखिये ।

परिस्थितियों का रोना रोते रहने से काम नहीं बनता परिस्थिति को बदलने के लिए प्रयत्न एवं पुरुषार्थ की आवश्यकता है । लक्ष्मण जी अपने बड़े भाई श्रीराम को सीता हरण प्रसंग में यही प्रेरणा देते हुए कहते हैं–

तस्या ह्यन्वेषणे श्रीमन्क्षप्रमेव यतावहै ।
वनं सर्वं विचिनुवो यत्र सा जनकात्मजा ॥

हे श्रीमान् ! हम दोनों का उनके खोजने में शीघ्र यत्नवान होना चाहिए । जहाँ हो वहाँ जानकी को पाने के लिए हमको यह सारा वन समझाना चाहिए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवसाद मनुष्य की तेजस्विता को ढंक लेता है उसका निवारण करके शौर्य को जगाने की आवश्यकता समय-समय पर पड़ती है । लक्ष्मण भी यही करते हैं वे राम से कहते हैं—

अहं खलु ते वीर्यं प्रसुप्तं प्रतिवोधये ।
दीप्तैराहुतिभिः काले भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥

राख से ढंकी हुई आग को आहुति देकर प्रज्ज्वलित करने की तरह आपके सोते हुए पराक्रम को मैं जगाता हूँ ।

अपने उच्चलक्ष्य का स्मरण विषाद को दूर करके पराक्रम के जागरण में सहायक होता है लक्ष्मण जी सीता के वियोग से दुःखी विषादग्रस्त राम को प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

न ह्याव्यवसितः शत्रुं राक्षसं तं विशेषतः ।
समर्थस्त्वं रणे हन्तुं विक्रमैर्जिह्मकारिणम् ॥

यदि आप किसी प्रकार का उद्योग न कर, अपना चित्त विकल रखेंगे, तो उस कपटाचारी राक्षस रावण को युद्ध में आप कैसे मार सकेंगे ?

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्यास्ति लोकेऽस्मिन्न किञ्चिदपि दुर्लभम् ॥

हे भाई ! उत्साह बड़ा बलवान होता है । क्योंकि उत्साह से बढ़ कर दूसरा कोई बल ही नहीं है । जो उत्साही लोग हैं, उनके लिए इस संसार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ।

शोकं विमुञ्चार्य धृतिं भजस्व ।
सोत्साहता चास्तु विमार्गणेऽस्याः ॥
उत्साहवन्तो हि नरा न लोके ।
सीदन्ति कर्मस्वति दुष्करेषु ॥

हे आर्य ! शोक को त्यागिये और धैर्य को धारण कीजिये । तदनन्तर उत्साहपूर्वक जानकी जी को ढूँढ़िये, क्योंकि जो लोग उत्साही होते हैं वे दुष्कर कार्यों के करने में भी कभी दुःख नहीं पाते ।

शौर्य और साहस के गुण भी संक्रामक होते हैं । लक्ष्मण के उद्बोधन से प्रभावित हो राम ने सीता को पाने का भागीरथ प्रयास किया और सफलता पाई । हनुमान का पराक्रम भी अद्वितीय है । सतत् कार्यशीलता से ही कार्य सिद्ध होता है । सीता खोज के लिए समुद्र लाँघते हुए हनुमान से जब मैनाक ने विश्राम् का आग्रह किया तब उन्होंने कहा—

त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥

एक तो मुझे कार्य करने की जल्दी है, दूसरे समय भी बहुत हो चुका है, तीसरे मैंने वानरों के सामने यह प्रतिज्ञा भी की है कि मैं बीच में कहीं न ठहरूँगा ।

महान् कार्य करने को प्रस्तुत व्यक्ति के बल और पराक्रम की परीक्षा ली जाती है । दुर्बल हृदय मनुष्य उनसे घबड़ा कर कार्य छोड़ बैठते हैं किन्तु साहसी उसमें सफल होकर कंचन की तरह चमक उठते हैं ।

देवता लंका की ओर जाते हुए हनुमान की परीक्षा की व्यवस्था बनाते हैं और उसके लिए नियुक्त सुरक्षा से कहते हैं—

बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन निषादं वा गमिष्यति ॥

हम सब हनुमान जी के बल और पराक्रम की परीक्षा लेना चाहते हैं या तो हनुमान जी तुझको किसी उपाय से जीत लेंगे अथवा दुःखी होकर चले जायेंगे ।

कभी-कभी कार्य की दुरूहता के कारण हम हतोत्साहित होने लगते हैं ऐसे समय में सशक्त आदर्श का स्मरण करने से हममें बल का संचार होता है, लंका में सीता की खोज में रत हनुमान का वर्णन—

समीक्ष्य च महाबाहू राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विक्रान्तमभवत्प्रीतिमान्कपिः ॥

इस प्रकार सोच-विचार कर, जब हनुमान जी ने श्री रामचन्द्र के पराक्रम और लक्ष्मण के विक्रम की ओर, दृष्टि डाली, तब तो वे प्रसन्न हो गये ।

पराक्रमी और पुरुषार्थी व्यक्ति बाधाओं को जीतकर अपना कार्य सम्पन्न करते हैं । लंका प्रवेश के समय राक्षसी लंका ने हनुमान को रोका तब—

लंकायो वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
यत्नवान्स हरिश्रेष्ठः स्थितः शैल इवापरः ॥

उद्योगी एवं कपिश्रेष्ठ पवन पुत्र हनुमान जी ने लंका की ये बातें सुनीं, तो उसे परास्त करने के लिए उसके सामने एक-दूसरे पर्वत की तरह अचल भाव से खड़े हो गये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हनुमान जी ने एक ही प्रहार से लंका को वश में कर लिया । पराक्रम से प्रभावित शत्रु भी व्यक्ति की सराहना और सहयोग करने लगता है ।

निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबल ।
इदं च तथ्यं शृणु वै ब्रुवन्त्या मे हरीश्वर ॥

सो हे महाबली ! तुमने मुझे अपने पराक्रम से जीत लिया । महाकपीश्वर ! मैं जो अब यथार्थ वृत्तान्त कहती हूँ, उसे तुम सुनो ।

हनुमान ने पूरी लंका में खोज की किन्तु सीता नहीं मिलीं, हनुमान हतोत्साहित होने लगे तब उन्होंने सोचा—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ॥

हताश होकर भी पवन-नन्दन से पुनः मन ही मन कहा कि मुझे अभी हतोत्साह न होना चाहिए—क्योंकि उत्साह ही परम् सुख का देने वाला है और उत्साह ही मनुष्यों को सदैव सब कामों में लगाने वाला है ।

करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ।
तस्मादनिर्वेदकरं यत्नं कुर्यादनुत्तमम् ॥

उत्साहपूर्वक जीव जो काम करते हैं, उत्साह उनके उस काम को सिद्ध करता है । अतः मैं अब उत्साहपूर्वक सीता जी को ढूंढ़ने का प्रयत्न करता हूँ ।

पुरुषार्थी हारना नहीं जानता उसे अपने कार्य एवं उसकी गुरुता का बोध होता है हनुमान जी ने सोचा—

भवेदिति मतं भूयो हनुमान्प्रविचारयन् ।
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः ॥
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ।
ममेदं लंघनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ॥

इस प्रकार अपने मन में विचारों की ऊहापोह करते-करते, हनुमान बड़े विचार में पड़ गये । वे सोचने लगे कि, यदि सीता को देखे बिना किष्किन्धा को लौट चलूँ, तो इसमें मेरा पुरुषार्थ ही क्या समझा जायेगा । बल्कि मेरा सौ योजन समुद्र का लांघना भी व्यर्थ ही हो जायेगा ।

और हनुमान जी ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर सीता को खोज ही लिया उनका पुरुषार्थ सार्थक सिद्ध हुआ । उन्होंने सीता से कहा—

कृत्वा मुर्ध्नि पदन्यासं रावणस्य दुरात्मनः ।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ॥

मैं अपने बल, पराक्रम के बूते, दुष्ट रावण के सिर पर पैर रखकर, (अर्थात् रावण का तिरस्कार करके) तुम्हें देखने के लिए यहाँ आया हूँ ।

पुरुषार्थी व्यक्ति एक कार्य करके उतने में ही अहंकार से फूल नहीं उठता, वह क्रमशः अगली सीढ़ियाँ निश्चिय करके आगे बढ़ता है । हनुमान सीता जी खोज करके उनके समाचार पा लेने के बाद सोचते हैं ।

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत ।
पूर्वकार्या विरोधेन स कार्य कर्तुमर्हति ॥

मुख्य कार्य को पहले करके और मुख्य कार्य को हानि न पहुँचाते हुए, जो दूत और भी कई एक कार्य पूरा कर डाले तो वही दूत वास्तव में कार्य करने के योग्य कहा जा सकता है ।

वे लंका को अस्त-व्यस्त करने, राक्षसों का मनोबल तोड़ने की योजना बनाते हैं और सच्चे पुरुषार्थी के आदर्श को स्मरण करते हैं—

नह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापोह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहूधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥

जो व्यक्ति छोटे से किसी एक काम को बड़े प्रयत्न से पूरा करता है, वह कार्य साधक नहीं कहा जा सकता । किन्तु जो सामान्य प्रयास से अपने कार्य को अनेक प्रकार से पूरा कर डाले उसी को कार्य करने के योग्य कहना चाहिए ।

उनके आचरण से प्रभावित होकर माता सीता उनकी प्रशंसा करती हुई कहती है—

शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः ।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमताः गोष्पदीकृतः ॥

तुमने इस सौ योजन विस्तार वाले एवं मगर आदि भयानक जलजन्तुओं के आवासस्थान समुद्र को गोपद की तरह समझा और उसे लांघ लिया अतएव तुम्हारा विक्रम सराहने योग्य है ।

पुरुषार्थी और पराक्रमी व्यक्ति आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न कर के स्वामी का प्रिय पात्र बनता है । लंका से वापिस आने पर हनुमान ने अपने कार्यों का विवरण दिया । जिस लंका की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर देवता ताकने की भी हिम्मत नहीं कर पाते थे वहाँ अकेले हनुमान क्या-क्या कर आये –

यातुधाना दुराधर्षाः साग्रकोटिश्च रक्षसाम् ।
ते मया संक्रमा भग्नाः पारिखाश्चावपूरिताः ॥

उनमें से एक करोड़ से ऊपर बड़े दुर्धर्ष राक्षस सैनिक हैं। हे राम ! मैंने (खाई पार करने के) पुलों को तोड़ डाला है और खाई पाट दी है।

दग्धा च नगरी लंका प्राकाराश्चावसादिताः ।
बलैकदेशः क्षपितो राक्षसानां महात्मनाम् ॥

मैंने लंका जला डाली है और लंका का परकोटा गिरा दिया है। मैंने महाकाय वाले राक्षसों की एक चौथाई सेना मार डाली है।

पुरुषार्थी सेवक को अपने स्वामी का और अपने गौरव का बोध रहता है तथा वह घोषणापूर्वक अनीति मिटाने को कटिबद्ध रहता है। सीता की खोज में लंका गये हुये हनुमान ने घोषणा करते हुए राक्षसों से कहा–

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्या क्लिष्टकर्मणः ।
हनुमाञ्शत्रुसैन्यानां निहान्तां मारुतात्मजः ॥

मैं उन कोसलपति श्री रामचन्द्र जी का दास हूँ, जिनके लिए कोई काम कठिन नहीं है। मेरा नाम हनुमान है और युद्ध में शत्रुसैन्य का नाश करने वाला मैं पवन का पुत्र हूँ।

अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समुद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥

मैं समस्त राक्षसों के सामने लंकापुरी को ध्वंस कर और जनक नन्दनी को प्रणाम कर तथा अपना काम पूरा कर चला जाऊँगा।

हनुमान जैसे पराक्रमी और पुरुषार्थी सेवकों पर ही माँ शक्ति प्रसन्न होती हैं, राज्य सिंहासन पर विराजमान राम ने सीता से कहा–

प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भीमिनि ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेनानि सर्वशः ॥
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ।
हनुमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ॥

हे भामिनि ! हे सुभगे ! तुम जिस पर प्रसन्न हो, उसे यह हार दे दो। तब सीता जी ने पुरुषार्थ, विक्रम, बुद्धि आदि समस्त गुणों से युक्त श्री हनुमान जी को वह हार दे दिया। उस हार को पहिन कर हनुमान जी सुशोभित हुए।

पुरुषार्थी व्यक्ति गई-गुजरी परिस्थितियों में भी बहुत कुछ करने की हिम्मत रखता है। सीता को चुराकर भागते हुए रावण को बूढ़े जटायु ने ललकारा–

कथं त्वं तस्य वैदेहीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
इच्छसि प्रसभं हर्तुं प्रभामिव विवस्वतः ॥

उन राम की सीता को, जो अपने पतिव्रत-धर्म से आप सुरक्षित है, तुम किस प्रकार सूर्य की प्रभा की तरह बरजोही करना चाहते हो ?

अपने पुरुषार्थी सहायकों के कारण ही राम महान् कार्य सम्पादित करने में समर्थ हो सके। समुद्र पर पुल बाँधने जैसे असम्भव कार्य को भी सम्भव बनाने वाले और वीर नल ने कहा–

पितुः सामर्थ्य मासथाय तत्त्वमाह महोदधिः ।
दण्ड एवं वरो लोके पुरुषस्येति ये मतिः ॥

मैं पिता के वरदान के प्रभाव से इस विस्तृत वरुणालय महासागर पर पुल बाँधूगा। इस सम्बन्ध में मैं यह अवश्य कहूँगा कि, संसार में दण्ड ही सब से बढ़कर काम बनाने वाला है।

आखिर वानरों के पुरुषार्थ ने असम्भव को सम्भव कर दिया।

नलश्चक्रे महासेतुं मध्यं नद नदीपतेः ।
स तथा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभि ॥

इस प्रकार नल ने घोरकर्मा वानरों की सहायता से नदी-पति समुद्र के ऊपर पुल बांधा।

वानरों की लगन, साहस पराक्रम और पुरुषार्थ को देख राम ने अपनी विजय निश्चित समझी–

राघवस्य प्रियार्थं तु धृतानां वीर्यशालिनाम् ।
हरीणां कर्मचेष्टाभिस्तुतोष राघुनन्दनः ॥

श्री रामचन्द्र जी की प्रसन्नता के लिए धैर्यवान और बलवान वानरों की युद्ध के लिए कर्म और चेष्ठा द्वारा तत्पर देख, (अर्थात्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन वानरों में युद्ध की उमंग या चाव देख) सन्तुष्ट हुए ।

पराक्रम और पुरुषार्थ मात्र पुरुष के अधिकार क्षेत्र की ही बात नहीं है । अवसर मिलने पर नारियों ने भी शौर्य प्रदर्शन किया है । दशरथ जी से वर माँगने के लिए कैकेयी को प्रोत्साहित करते हुए मन्थरा उसे उसके विगत जीवन की घटना की याद दिलाती है—

अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः ।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते पक्षितस्त्वया ॥

हे देवि ! देवासुर संग्राम में जब तुम्हारे पति शस्त्रों से घायल हो मूर्च्छित हो गये थे तब अपने पौरुष से तुमने उनकी रक्षा की थी ।

इस प्रकार रामायण में हर क्षेत्र में पुरुषार्थ पराक्रम शौर्य एवं साहस के प्रेरक उदाहरण भरे पड़े हैं । श्री राम की कृपा की आकांक्षा करने वाले उनके प्रति निष्ठा रखने वालों को यह तथ्य समझना और उसे जीवन में धारण करना चाहिए ।

कर्म और उसका प्रतिफल

ईश्वर द्वारा सृष्टि संचालन के लिए बनाया गया विधान ही कर्म प्रधान है । वह स्वयं उसकी मर्यादा मानते हैं । वह जब कभी अवतार लेते हैं तो अपने आचरण द्वारा कर्म मार्ग का प्रचार करते हैं । अशोक वाटिका में सीता को राम के बारे में बताते हुए हनुमान कहते हैं—

अर्चिष्मानर्चितो नित्यं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥

वे दमकते हुए चेहरे वाले, पूज्यों के भी पूज्य तथा ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित हैं । साधु पुरुषों के प्रति उपकार करने की विधि जानने वाले तथा कर्मों के प्रचार की विधि जानने वाले हैं ।

लौकिक और पारलौकिक सभी उपलब्धियाँ सत्कर्मों पर ही आधारित रहती हैं । राम अपने कर्मों द्वारा ही लोक पूजित हैं । रावण के बाद राम की झाँकी प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार कहता है—

इतीदमुक्त्वा विजयी महाबलः ।
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ॥
समेत्य रामः प्रियया महायशाः ।
सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥

विजयी, महाबली, महायशस्वी और सुख भोगने योग्य श्री रामचन्द्र जी, अपने कर्मों द्वारा लोकपालों से प्रशंसित हो, सीता जी को अपने समीप बिठाकर अत्यन्त हर्षित हुए ।

कोई किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता हमारे पिछले कर्म ही भाग्य के रूप में सामने आते हैं । राम के साथ वन गमन को उद्यत सीता ने राम से कहा—

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा ।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते ॥

हे आर्य पुत्र ! पिता, माता, भाई, पुत्र और पुत्रवधू ये सब अपने पुण्यों को भोगते हुए, अपने-अपने हिस्से के फल पाते हैं ।

संसार की सारी विभूतियाँ पुण्य कर्मों पर आधारित हैं—

ऋद्धिं रूपं बलं पुत्रान्वित्तं शूरत्वमेव च ।
प्राप्नुवन्ति नरा लोके निर्जितं पुण्यकर्मभिः ॥

सब लोग अपने ही पुण्य कर्मों से धन, रूप, बल, पुत्र, सम्पत्ति और शूरता पाते हैं ।

सुबुद्धि सत्कर्मों की और कुबुद्धि दुष्कर्मों की प्रेरक है । सुबुद्धि अपने आप नहीं उपजती उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है—

कस्यचिन्नहि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥

किसी भी दुर्बुद्धि जन को आप सुमति नहीं उपजती । वह जैसे कर्म करता है, वैसा ही उसे फल भी मिलता है ।

कर्म ज्ञानपूर्वक किये जायें या अज्ञानपूर्वक फल अवश्य भोगना पड़ता है । समझदार व्यक्ति कर्मफल के नियम को समझकर तदनुसार कर्म करता है, मूर्ख व्यक्ति बिना सोचे कर्म कर लेता है, किन्तु जब फल भोगना पड़ता है तब उसे होश आता है ।

यो हि मोहाद्विषं पीत्वा नावगच्छति दुर्मतिः ।
स तस्य परिणामान्ते जीनीते कर्मणः फलम् ॥

जो मूर्ख बिना सोचे विषपान कर लेता है, कर्मफल का सिद्धान्त तब समझ में आता है, जब उसे अपने कर्म का फल मिलने लगता है ।

जो कर्म हम कर चुके हैं उनका फल हमें भोगना ही पड़ेगा । आध्यात्मिकता का लाभ यही है कि आगे दुष्कर्म न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करें। कर्म शरीर से होते दिखते हैं, किन्तु मन और वाणी द्वारा भी उनका स्वरूप बनता है। रामायण का मत है–

कायेन कुरुते पापं मनसा सम्प्रधार्य च।
अनृतं जिह्वया चाह त्रिविधं कर्म पातकम्॥

पहले तो पाप का मन में संकल्प उदय होता है, फिर वाणी द्वारा वह प्रकट किया जाता है और फिर वह शरीर से किया जाता है।

कभी-कभी व्यक्ति गलत आचरण करते हुए कहते हैं कि ''हमारी क्या हानि हुई ?'' यह भ्रान्ति है कर्म भी समय पाकर फलित होता है। श्रीराम राक्षस खर से कहते हैं–

अवश्यं लभते जन्तुः फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम्॥

जिस प्रकार समय पाकर, पेड़ फूलते हैं, उसी प्रकार समय प्राप्त होने पर जीवों को उनके किये पाप कर्मों का घोर फल अवश्य प्राप्त होता है।

न चिरात्प्राप्यते लोके पापाणां कर्मणां फलम्।
सविषाणामवान्नानां भुक्तानां क्षणदाचर॥

हे निशाचर ! जिस प्रकार विषमिश्रित अन्न खाने से शीघ्र ही आदमी मर जाता है, उसी प्रकार पापी को किये हुए पापो का फल प्राप्त होने में विलम्ब नहीं होता, अर्थात् शीघ्र मिलता है।

रावण के अत्याचारों से दुःखी सीता भी अशोक वाटिका में यही निष्कर्ष निकालती हैं। वे स्वयं ही प्रश्न करती हैं और स्वयं ही उत्तर दे लेती हैं–

कथमें वंविध पाप न त्वं शास्सि हि रावणम्।
ननुसद्योऽविनीतस्य दृश्यते कर्मणः फलम्॥

प्रभु ! आप इस प्रकार के पाप करने वाले इस पापी रावण को क्यों दण्ड नहीं देते हैं ? दुष्ट कर्म का फल तुरन्त ही नहीं मिलता।

भाग्यवैषम्य योगेन पुरा दुश्चरितेन च।
मयैतत्प्राप्यते सर्व स्वकृतं ह्युपभुज्यते॥

मैं अपने ही भाग्य दोष से और अपने पूर्वकृत दुष्कृतों के द्वारा ये समस्त दुःख पाती हूँ और अपना भोगमान भोग रही हूँ।

राम भी वन गमन के समय कर्म फल की अकाट्यता का समर्थन करते हुए लक्ष्मणजी से कहते हैं–

नूनं जात्यन्तरे कस्मिंस्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः।
जनन्या मम सौमित्रे तस्मादेतदुपस्थतम्॥

हे लक्ष्मण ! पूर्व जन्म में मेरी माता ने अवश्य स्त्रियों को पुत्रहीन किया था, इस जन्म में उसका यह फल उसके सामने आया है।

व्यक्ति अपने कर्मों के कारण ही लोक श्रद्धा का पात्र बनता है– राम के अत्रि आश्रम् पधारने पर अत्रि ने सती अनुसूया के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहा–

अनसूयेति या लोके कर्मभिः ख्यातिमागता।
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वमभिगम्यां तपस्विनीम्॥

जो अपने उत्कृष्ठ कर्मों के कारण लोकों में अनुसूया के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन तपस्विनी एवं साथ जाने योग्य देवी के पास जानकी जी शीघ्र जायें।

जिस प्रकार अन्न को सोच-समझकर खाया जाता है उसी प्रकार कर्म भी विचार पूर्वक किया जाना चाहिए अन्यथा, हानि उठानी पड़ती है। कर्म सिद्धान्त का आदर्श समझते हुए गीधराज जटायू रावण से कहते हैं–

तदन्नमपि भोक्तव्यं जीर्यते यदनामयम्।
यत्कृत्वा न भवेद्धर्मो न कीर्त्तिर्न यशो भुवि॥
शरीरस्य भवेत्खेदः कस्यत्कर्म समाचरेत्।

वही अन्न खाना चाहिए जो किसी प्रकार के रोग को उत्पन्न न करे। जिस कार्य के करने में न तो पुण्य ही होता है और न संसार में कीर्ति और यश ही फैलता है, बल्कि जिसके करने से शरीर को क्लेश हो ऐसे कर्म को कौन (समझदार) पुरुष करेगा ?

विनाशायात्मनोऽधर्म्यं प्रतिपन्नोऽसि कर्म तत्।
पापानुबन्धो वै यस्य कर्मणः कर्म को नु तत्॥

जब (जटायु रावण से कहता है) मरते समय मनुष्य अपने नाश के लिए अधर्म के काम किया करते हैं, वैसे ही तू भी कर रहा है। जिस कर्म का सम्बन्ध पाप से है उस कर्म को कौन पुरुष करेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सृष्टि रचयिता का कर्म विधान अटल है उसे कोई बदल नहीं सकता । बालि वध के बाद तारा को समझाते हुए राम ने कहा—

त्रयो हि लोका विहितं विधानं ।
नातिक्रमन्ते वशगा हि यस्य ॥
प्रीति परां प्राप्स्यसि तां तथैव ।
पुत्रस्तु ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ॥

देखो, तीनों लोक उस विधाता के रचे हुए विधान को नहीं मेंट सकते । क्योंकि सब ही तो उसके वश में है । तुम पहिले की तरह सुखी होगी और तुम्हारे पुत्र को यौवराज्य पद मिलेगा ।

तस्यायं कर्मणो देवि विपाकः समुपस्थितः ।
अपथ्यैः सह सम्भुक्ते व्याधिमन्नरसो यथा ॥

हे देवी ! जिस प्रकार खाये हुए अपथ्य अन्न के रस से रोग उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उस पाप कर्म को फल स्वरूप यह कर्म विपाक आकर उपस्थित हुआ है ।

राजा दसरथ की मृत्यु के पूर्व कर्म सिद्धान्त का विशद विवेचन किया गया है । मरने से पहले दसरथ अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करते हुए सोचने लगे—

तस्य चिन्तयमानस्य प्रत्यभात्कर्म दुष्कृतम् ।
यदनेन कृतं पूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना ॥

सोचते-सोचते उनको अपना दुष्टकर्म याद आ पड़ा । (वह था) पहले किसी समय अनजाने एक तपस्वी का शब्दवेधी बाण से वध ।

उन्होंने कौशल्या से कहा—

यदाचरित कल्याणि शुभ वा यदि वाऽशुभम् ।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥

हे कल्याणि ! मनुष्य भला या बुरा—जैसा कर्म करता है, उस कर्म का फल, कर्त्ता को अवश्य मिलता है ।

गुरुलाघवमर्थाना मारम्भे कर्मणां फलम् ।
दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते ॥

अतएव कर्म करने के पूर्व जो मनुष्य कर्म के फल का गुरुत्व लघुत्व (भलाई-बुराई) अथवा उसके दोष (त्रुटि) को नहीं जानता, वह अज्ञानी कहलाता है ।

कश्चिदाम्रवणं छित्त्वा पलांशाश्च निषिञ्चति ।
पुष्पं दृष्ट्वा फले गृध्नुः स शेचति फलागमे ॥

जो आदमी फ्लाश के लाल-लाल फूलों को देख, फल पाने की अभिलाषा से, आम के पेड़ को काट कर, फ्लाश वृक्ष को सींचता है, फल लगने का समय आने पर वह अवश्य ही पछताता है ।

सोऽहमाम्रवणं छित्त्वा फ्लाशांश्च न्यषेवयम् ।
रामं फलागमेत्यवत्वा पश्चाच्छोचामि दुर्मतिः ॥

हे देवी ! मैंने भी आम के वृक्ष को काटकर फ्लाश के वृक्ष को सींचा है । सो फल आने के समय, श्रीराम को त्याग कर मुझे दुष्टमति को भी पछताना पड़ता है ।

लब्धशब्देन कौशल्ये कुमारेण धनुष्मता ।
कुमारः शब्दवेधीति मया पापमिदं कृतम् ॥

हे कौशल्ये ! मैंने अपनी कुमारावस्था में अपने को शब्द वेधी कहलाकर, प्रसिद्ध होने की अभिलाषा से धनुष धारण कर यह पाप किया ।

इसके बाद श्रवण की हत्या का प्रसंग बताकर श्रवण के पिता द्वारा दिये गये श्राप के बारे में दसरथजी ने कहा कि श्रवण के पिता ने मुझे श्राप दिया था—

त्वामप्येतादृशो भावः क्षिप्रमेव गमिष्यति ।
जीवितांन्तकरो घोरो दातारमिवं दक्षिणां ॥

जिस प्रकार दाता को दान का फल अवश्य मिलता है, उसी प्रकार तुमको भी घोर दुःख प्राप्त होगा और उसी दुःख से तुम्हें प्राण भी त्यागने पड़ेंगे ।

तदिदं मेऽनुसम्प्राप्तं देवि दुःख स्वयं कृतम् ।
सम्मोहादि बलयेन यथा स्याद्दक्षितं विषम् ॥

सो हे देवी ! मैं इस दुःख का कारण स्वयं ही हूँ । जिस प्रकार बालक अज्ञान-वश विष खा ले, वैसे ही मैंने भी अज्ञान में पाप कर अपना सर्वनाश अपने आप किया है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति के कर्म ही उसकी प्रसिद्धि के कारण बनते हैं। अशोक वाटिका में सीता को अपना परिचय देते हुए हनुमान ने कहा—

तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो बातेन मैथिलि।
हनुमानिति: चिख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥

हे मैथिली ! उसी केसरी नामक वानर की अंजना नामक स्त्री के गर्भ से, पवन द्वारा मेरी उत्पत्ति हुई है और मैं अपने कर्म द्वारा ही हनुमान के नाम से संसार में प्रसिद्ध हूँ।

हमें सावधानीपूर्वक अपने हर क्रिया-कलाप पर कड़ी नजर रखनी चाहिए। शक्ति मिल जाने पर व्यक्ति सोचने लगते हैं कि अब हम कुछ भी मनमानी करें हमारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। इस भ्रमका निवारण करते हुए श्री राम राक्षस खर से कहते हैं—

उद्वेजनीयो भूतानां नृशंसः पापकर्मकृत्।
त्रयाणामपि लोकानामीश्वरोपि न तिष्ठति॥

जब (कदाचित् इन पाप कर्मों को करते समय तुझे यह नहीं मालूम था कि), प्राणियों को दुःख देने वाला घातक (अत्याचारी) और पाप कर्म करने वाला पुरुष भले ही वह त्रिलोकीनाथ ही क्यों न हो—(अधिक दिनों) नहीं जी सकता। फिर तुझ जैसे तुच्छ जीव की तो बिसात ही क्या है।

कर्म लोकविरुद्धं तु कुर्वाणं क्षणदाचर।
तीक्ष्णं सर्वजनो हन्ति सर्पं दुष्टमिवागतम्॥

हे रजनीचर ! लोक विरुद्ध कर्म करने वाले, अत्याचारी को सब लोग वैसे ही मारते हैं जैसे घर में आये हुए दुष्ट सर्प को।

जो इस तथ्य को भूल जाता है वह सनातन सत्ता की उपेक्षा करके अपने अहंकार के कारण दुष्कर्म कर बैठता है और पतित हो जाता है। रावण को समझाते हुए मन्त्री माल्यवान कहता है—

प्रथमं वै महाराजा कृत्यमेतदचिन्तितम्।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः॥

महाराज ! इस पाप कर्म को करने के पूर्व तुमने भली-भाँति विचार नहीं किया। केवल अपने बल के अहंकार से तुमने इस कुकर्म के दुष्परिणाम् की ओर ध्यान ही न दिया।

शीघ्र खल्वम्युपेतं फलं पापस्य कर्मणः।
निरयेष्वेव पतन यथा दुष्कृतकर्मणः॥

जिस प्रकार महापातकियों को शीघ्र नरक में गिरना पड़ता है, उसी प्रकार सीताहरण रूपी पाप कर्म का फल तुम्हें शीघ्र मिल गया।

उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च।
कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम्॥

अभिमान में चूर होकर तूने जो निन्दित और अहितकर कर्म किया है, अब उसका फलभी तुझको बहुत बड़ा मिलेगा।

पापी को भी अन्त में होश आता है किन्तु उस समय पश्चाताप से कुछ नहीं होता दण्ड, मिलकर ही रहता है। रावण के साथ भी ऐसा ही हुआ। अपने अधिकांश सहायकों की मृत्यु के बाद रावण ने सोचा—

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरसतो विभीषणः॥

हाँ ! मैंने जो धर्मात्मा विभीषण का कहना नहीं माना और उसे अपमानपूर्वक निकाल दिया सो आज उसी दारुण कर्म के फलस्वरूप यह शोकप्रद परिणाम मेरे सामने आया है।

रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी ने यही निष्कर्ष निकाला कि कोई व्यक्ति कितना ही शक्ति सम्पन्न क्यों न हो कर्म फल के सिद्धान्त से बचकर नहीं रह सकता है।

देवा विभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः।
अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः॥
घोरं पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः।
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत्पापमश्नुते॥

इन्द्र अग्नि आदि समस्त देवता तुमसे डरते थे, किन्तु तुरन्त मिले अथवा कुछ समय बाद मिले, कत्ता को घोर पाप का फल परिपाक के समय अवश्य मिलता है, इसमें सन्देह नहीं। पुण्यप्रदकर्म करने वाला आनन्द भोगता है और पापकर्म करने वाला दुःख पाता है।

उपरोक्त व्यवस्था को समझकर सावधानीपूर्वक उपर्युक्त कर्म का निर्धारण और उस पर आचरण करना चाहिए।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार प्रकरण

दाम्पत्य की महिमा

नर और नारी एक दूसरे के पूरक हैं। विवाह का उद्देश्य एक दूसरे की सहायता करते हुए आध्यात्मिक उन्नति तथा सामाजिक सुव्यवस्था है। पुरुष और नारी में कोई छोटा बड़ा नहीं है। दाम्पत्य जीवन समानता पर आधारित है। नर को भी नारी की उतनी ही आवश्यकता है जितनी नारी को नर की। यद्यपि राम ने स्वयंवर की शर्त पूरी की थी किन्तु वैवाहिक परम्परा के अनुसार राम और लक्ष्मण के लिये सीता और उर्मिला की याचना करते हुये वशिष्ठ जी जनक से कहते हैं—

रामलक्ष्मणयोरर्थे त्वत्सुते वरये नृप ।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठ सदृशे दातुमर्हसि ॥

हे राजा हम राम और लक्ष्मण के लिये आपकी कन्याओं का वरन करना चाहते हैं। आपकी दोनों कन्याएँ राम और लक्ष्मण के समान हैं, अत: आप इनका विवाह कर दीजिये।

इस तरह समानता के आधार पर पति पत्नी विवाह द्वारा दाम्पत्य के पवित्र बंधन में बँधते और उस समय की गई प्रतिज्ञाओं का आजीवन पालन करते हैं। विवाह संस्कार के माध्यम से उपयुक्त वातावरण बनाकर वर वधू को उनके उत्तरदायित्वों का बोध कराया जाता है वन मार्ग में सीताजी ऋषि पत्नी अनुसूइया से कहती हैं—

पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्निसन्निधौ ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम् ॥

विवाह के समय अग्नि के सामने मेरी माता ने मुझे जो उपदेश दिया था, वह भी मुझे याद है।

दम्पति एक दूसरे के धार्मक गुणों एवं परस्पर प्रेम के आधार पर समर्पण भाव से रहते हैं। बधू नये घर तथा नये वातावरण में आती है, उसे उसके अनुरूप बदलना और ढलना पड़ता है। पति को चाहिए कि स्नेह और शील के निर्वाह के साथ यह परिवर्तन पत्नी में लाये। राम ने यही किया था—

गुणाद्भू यगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोभ्यवर्धत ।
तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिबर्तते ॥

परस्पर गुण, शील और प्रेम के प्रभाव से सीता का हृदय परिवर्तित होकर पति के प्रति दूना प्रेम हो गया है।

दाम्पत्य जीवन में दोनों के भाग्य परस्पर जुड़ जाते हैं। वन गमन से पूर्व सीता राम से कहती हैं—

भर्तुर्भाग्यं तु भार्यैका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतंश्चैवाहमादिष्टा बने वस्तव्यिमत्यपि ॥

हे पुरुषर्षभ ? पति के भाग्य के अनुसार प्राप्त फल पत्नी भी पाती है अतः आपके साथ मेरा वनवास भी निश्चित है।

पति के सहायक रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है। राम की वन यात्रा से पूर्व सीता ने अपने यही भाव व्यक्त करते हुए श्रीराम से कहा—

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्ग वनमद्यैव राघव ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्गन्ती कुशकण्टकान् ॥

यदि तुम आज ही वन को जा रहे तो मैं तुम्हारे आगे आगे कुश और काँटों को हटा, रास्ता साफ करती पैदल ही चलूँगी।

विवाह का उद्देश्य काम सेवन नहीं है जीवन यात्रा में दो सच्चे वफादार मित्रों की तरह परस्पर पूरक बनकर उन्हें रहना चाहिए। सीताने वन में साथ चलने के आग्रह के समय अपने इस आदर्श को ध्यान में रखते हुए कहा—

शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ।
सह रंस्ये त्वया वीर वनेषु मधुगन्धिषु ॥

हे वीर ? मैं नित्य नियमपूर्वक, काम-भोग विवर्जिता हो, आपके साथ उन मधुर गन्धयुक्त वनों में विचरूँगी।

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदु:खयों।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समानसुखदु: खिनीम् ॥

हे काकुत्स्थ ? आपमें पूर्ण भक्ति रखने वाली, दीन सुख-दु:ख में साथ रहने वाली और आपके सुख में सुखी तथा आपके दु:ख से दु:खी मुझको आप अपने साथ ले चलिये।

राम के प्रति सीता का अपनत्व और समर्पण भाव कितना प्रखर है वह उनके अगले कथन से स्पष्ट होता है। वे बोली—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थातुमर्हसि ।
तपो वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गो वा स्यात्त्वया सह ॥

अत: आप मुझे अपने साथ ही वन में लें चलिये । चाहे आप तप करें, चाहे आप वनवास करें और चाहे स्वर्गवास करें— मुझे तो आपके साथ ही रहना उचित है ।

सीता यह सब चापलूसी नहीं कर रही थीं । उन्हें अपने कर्तव्य और अधिकार दोनों का बोध था । राम ने सोचा कि वन में सीता को कष्ट होगा । अतः उन्होंने बहाना बनाते हुए कहा कि वन में हिंसक जीव जंतु तथा राक्षसों से सीता की रक्षा करना कठिन होगा । यह कथन पुरुषत्व के अनुकूल नहीं था, अस्तु सीता ने उन्हें सावधान करते हुए कहा—

किं त्वाऽमन्यत वैदेहः पिता में मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रिय पुरुषविग्रहम् ॥

हे राम ? यदि मेरे पिता मिथिलेश यह जानते कि, आप आकार मात्र के पुरुष हैं और व्यवहार में स्त्री हैं, तो वे कभी मेरा विवाह आपके साथ कर आपको अपना दामाद न बनाते ।

राम, सीता की भावनाओं का आदर करते थे, अतः उनके इस स्पष्ट कथन पर रुष्ट नहीं हुए बल्कि उनहोंने अपने मन की यथार्थ बात सामने रख दी और कहा—

तव सर्वमभिप्रायमविज्ञाय शुभानने ।
वासं न रोचयेऽरण्ये शक्तिमानपि रक्षणे ॥

मैं सब भाँति तुम्हारी रक्षा कर सकता हूँ, किन्तु मुझे तुम्हारे मन का अभिप्राय मालूम नहीं था, इसीलिये मैंने तुम्हें वन ले जाना उचित नहीं समझा ।

स्त्री और पुरुष का सहयोग हर क्षेत्र में दृष्टि गोचर होता है । वे यज्ञ, अर्चादि कार्यों में संयुक्त रूप से क्रियाशील होते हैं वन में सीता-राम आदि की एक झलक—

अथ तेऽग्निं सुरांश्चैव वैदेही रामलक्ष्मणो ।
काल्यं विधिवदभ्यर्च्य तपस्विशरणे वने ॥

फिर श्रीरामचन्द्र, लक्ष्मण और बैदेही ने उस तपोवन में विधिवत् और यथासमय हवन कर परिवार सहित नारायण का पूजन किया ।

दम्पति एक दूसरे को उन्नति पथ पर अग्रसर देखना चाहते हैं । राम के राज्याभिषेक के पूर्व सीता चाहती हैं कि राम अपने पौरुष से विश्व भर में राज्य तंत्र को संगठित एवं व्यवस्थित करने के लिए राजसूययज्ञ करें, तब उनका अभिषेक हो । सीता राम से कहती हैं—

राज्यं द्विजातिर्भिजुष्टं राजसूयाभिषेचनम् ।
कर्तु मर्हति ते राजा वासवस्येव लोककृत ॥

जिस तरह सबने इन्द्र का अभिषेक किया था उसी तरह राजसूय यज्ञ के बाद राजा द्विजों से तुम्हारा अभिषेक करायें ।

(हिंरण का सींग राजसूय यज्ञ की पुरातन परिपाटी थी जिसका भाव था दुर्बलों के भी न्यायोचित अधिकारों के रक्षण का उत्तरदायित्व स्वीकार करना)

दीक्षितंवतसम्पन्नं वराजिनधरं शुचिम् ।
कुरंगशृंगपार्णि च पश्यन्ती त्वां भजोम्यहम् ॥

मैं तुम्हें यज्ञ दीक्षित, ब्रत युक्त, पवित्र वेष धारण किये मृग का सींग हाथ में धारण किये हुये देखना चाहती हूँ ।

पत्नी अपने सुख की अपेक्षा पति के उत्कर्ष-यश और उद्देश्य की पूर्ति को महत्व दे यह दाम्पत्य का आदर्श है । लंका में हनुमान जी सीता से कहते हैं कि मैं तुम्हें पीठ पर बिठा कर अभी राम के पास ले चलता हूँ । किन्तु सीता जी उसे स्वीकार नहीं करती, वे कहती हैं ।

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे ।
विजयी स्वां पुरीं रामो नयेतत्स्याद्यशस्करम् ॥

यदि श्री रामचन्द्रजी रावण को उसकी सारी सेना के साथ मार एवं विजय प्राप्त कर मुझे अयोध्या ले चलें, तो उनकी नामवरी हो ।

सीता एवं राम की परस्पर निष्ठा अद्वितीय थी । रावण सारे प्रयास करके भी सीता को विचलित न कर सका । सीता को देखकर हनुमान जी को उनकी विशेषता का आभास हुआ और वे सोचने लगे—

इयं सा धर्मशीलस्य मैथिलस्य महात्मनः ।
सुता जनकराजस्य सीता भर्तृदृढवता ॥

क्योंकि धर्मात्मा जनक की यह सुता सीता, पातिव्रत धर्म का निर्वाह करने में पूर्ण रूप से दृढ़ है ।

दाम्पत्य धर्म परस्पर विश्वास एवं प्रेम के आधार पर टिका हुआ है । उत्कृष्ट स्तर का प्रेम अपने आप में संजीवनी होता है । हनुमान जी इसी शृंखला में आगे सोचते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कामभगै परित्यवता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयत्यात्मनो देहं तत्सनागमलालसा ॥

माला चन्दनादि सुख भोगों से वञ्चित और बन्धुबान्धवों में रहित यह जानकी श्रीरामचन्द्र जी से मिलने की आशा ही से प्राण धारण किए हुए हैं ।

अशोक वाटिका में रावण से वार्तालाप के समय सीता का आत्मविश्वास दर्शनीय है उन्होंने रावण से कहा—

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥

हे रावण ? मैं चाहू तो तुझको अपने पातिव्रत धर्म के प्रभाव में अभी जला कर भस्म कर डालूँ, परन्तु इसके लिए मुझे श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा नहीं है और मैं पातिव्रतधर्म पालन में तत्पर हूँ ।

इस प्रकार व्रत पालन करना अच्छा गुण है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि नारी पुरुष से हीन समझी जाय और उसके गौरव का ध्यान न रखा जाय । श्रीराम ने रावण विजय के बाद सीता के गौरव के प्रतिकूल कुछ शब्द कह दिये तो उन्होंने उन्हें मर्यादा का ध्यान बताते हुए कहा—

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥

हे नरशार्दूल : तुमने तो ओछे मनुष्यों की तरह क्रोध के वशवर्ती हो साधारण स्त्रियों की तरह मुझको भी समझ लिया ।

जीवन में उतार चढ़ाव आते ही रहते हैं । यदि साथी गलत कार्य कर रहा है तो उसे रोकना चाहिये । बालि ने सुग्रीव का अधिकार छीन लिया था, तथा उससे लड़ने को भी तैयार हो गया तो तारा ने उसे रोकने का यथा शक्ति प्रयास किया—

तदा हि तारा हितमेव वाक्यं
तं बालिनं पथ्यमिदं वभाषे ।
न रोचते तद्वचनं हि तस्य
कालाभिपानस्य विनाशकाले ॥

तारा इस प्रकार पथ्यरूप हितकर वचन कह रही थी, किन्तु बालि को वे वचन अच्छे नहीं लगते थे, क्योंकि उसके सिर पर तो काल खेल रहा था ।

दाम्पत्य धर्म के अनुसार समर्थ साथी को आगे आकर विपत्ति को रोकने का प्रयास करना चाहिये । लक्ष्मण के क्रोध से आतंकित सुग्रीव जब उनके सामने नहीं जा सके तब तारा ने आगे आकर लक्ष्मण को समझाया ।

प्रसादये त्वां धर्मज्ञ सुग्रीवार्थे समाहिता ।
महान्रोषसमुत्पन्नः संरम्भः त्यज्यतामयम् ॥

हे धर्मज्ञ ? सुग्रीव की भलाई के लिये मैं एकग्रचित्त हो आपको मनाना चाहती हूँ । इस महान क्रोध को और क्षोभ को त्यागिये ।

साथी के गलत कार्यों का विरोध एवं सही कार्यों का समर्थन करना चाहिये । राम को वनवास दिये जाने पर कौशल्या ने दशरथ से कहा—

द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रदृष्टः सनातनः ।
यदि ते धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते ॥

यदि आप द्विजों द्वारा आचरित, शास्त्रोक्त सनातन धर्म मानते होते, तो ऐसे धर्मनिरत पुत्र को देश निकाला कभी न देते ।

दाम्पत्य धर्म का तालमेल प्रशंसनीय है । पुत्र शोक में व्याकुल दसरथ को धैर्य धारण कराते हुये कौशल्या ने उनसे शोक त्याग देने का आग्रह किया—

शोको नाशयते धैर्य शोको नाशयते श्रुतम् ।
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमा रिपुः ॥

क्योंकि शोक (मनुष्य का केवल) धैर्य और शास्त्रज्ञान ही नष्ट नहीं करता, प्रत्युत सर्वनाश कर देता है । अतः शोक से बढ़ कर (मनुष्य का) शत्रु दूसरा कोई नहीं है ।

अस्तु पति-पत्नी को परस्पर सच्चे सहयोगी और समर्थ हितैषियों की तरह अहंकार या दीनता छोड़कर स्नेह पूर्वक जीवनयापन करना चाहिए ।

पुरुष पत्नी व्रत पालें

दाम्पत्य जीवन समानता, परस्पर धर्म पालन और पवित्रता पर आधारित है । पतिव्रत धर्म की तरह पत्नी व्रत धर्म भी अनिवार्य है । अपनी धर्म पत्नी को छोड़ पर पत्नी में अनुरक्त व्यक्ति की जगह-जगह निन्दा की गई है । कौशल्या को अपनी निर्दोषिता का विश्वास दिलाते हुये भरत ने जिन पापों का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उल्लेख किया है उसमें परस्त्री गमन को बड़ा भारी पाप बताया गया है, भरत कहते हैं—

धर्मदारान्परित्यज्य परदारान्निषेवताम् ।
त्यक्तधर्मरतिर्मूढो यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

जिसकी अनुमति से श्रीरामचन्द्र जी वन में गये हों, उसे वही पाप हो, जो उस मूढ को होता है, जो धर्मानुराग को त्याग देता है और अपनी धर्मपत्नी को छोड़, पराई स्त्री में अनुरक्त होता है ।

भागवान राम आदर्श एकपत्नीव्रती थे । सीता हरण के बाद उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

पतित्वममराणां वा पृथिव्याश्चापि लक्ष्मण ।
तां विना तपनीया भां नेच्छेयं जनकात्मजाम् ॥

हे लक्ष्मण ? मैं उस सुवर्ण-वर्ण जनकात्मजा के बिना, स्वर्ग राज्य या भूमण्डल का राज्य भी नहीं चाहता ।

भगवान राम सीता के लिये सब कुछ करने को तैयार हैं । सीता हरण के अपमान का बदला लेने को तैयार राम का पौरुष दर्शनीय है—

समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण ।
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकं दुरासदैः ॥
करिष्ये मैथिलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ।
मम रोषप्रयुक्तानां सायकानां बलं सुराः ॥

हे लक्ष्मण ? देखना, सारा जगत् घबड़ा कर मर्यादा त्याग देगा । सीता के लिये मैं कमान का रोदा कान तक खींचकर ऐसे बाण छोड़ूँगा, जिन्हें कोई न सह सकेगा और मैं इस जगत् को पिशाचों और राक्षसों से शून्य कर दूँगा ।

भगवान राम ने नारी जाति का अपमान करने वालों को मिटाकर ही दम लिया । रावण की मृत्यु के बाद राम ने सीता से कहा—

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषों मानुषेण मया जित ॥

मेरों अनुपस्थिति में चंचलमना रावण जो तुमको पंचवटी से हर कर यहाँ ले आया था, वह दैवकृत दोष अर्थात् अपमान था । उस अपमान को मुझ जैसे मनुष्य ने दूर कर दिया ।

लक्ष्मण का पत्नी व्रत अनोखा था । राम की सेवा के कारण उर्मिला से अलग रहते हुये लक्ष्मण मातृवत परदारेषु के साकार प्रतीक थे । सुग्रीव ने सीता के आभूषण राम को दिये । राम ने लक्ष्मण से उन्हें पहचानने को कहा लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

नाहंजानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

मै सीता के बाजूबंद और कुण्डलों को नहीं पहचानता, किन्तु हाँ मैं उनके (पैर के) बिछुओं को अवश्य पहचानता हूँ, क्योंकि चरणवंदना के समय इनको मैं नित्य ही देखा करता था ।

सीता हरण के बाद सीता की तरह राम भी सदा सीता को स्मरण करते रहे । सीता विरह में व्याकुल राम का विवरण—

आश्वासितो लक्ष्मणेन राम सन्ध्यामुपासत ।
स्मरन्कमलपत्राक्षीं सीतां शोकाकुलीकृतः ॥

लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्रजी को समझाया— तब उन्होंने सन्ध्योपासन किया, किन्तु वे अपने मन में सीता का स्मरण करते हुए, शोक से विकल हो रहे थे ।

सीता के प्रति राम की निष्ठा अन्त तक एक सी रही । रामराज्य में, जब सीता वाल्मीकि आश्रम में निवास कर रही थीं तब अश्वमेध यज्ञ में सीता की अनुपस्थिति के कारण धार्मिक कर्मकांड की पूर्ति हेतु उन्होंने भरत को आज्ञा दी—

कांचनीं मम पत्नीं च दीक्षायां त्वाश्च कर्मणि ।
अग्रतो भरत कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशा ॥

महायशस्वी भरत जी यज्ञदीक्षा के लिये मेरी पत्नी सीता की सुवर्ण की प्रतिमा बनवा कर, अपने साथ ले कर आगे जायँ ।

सीता राम की इस निष्ठा से परिचित थीं, तभी उनके मन में राम के प्रति इतना प्रेम था । अशोक वाटिका में उन्होंने हनुमान से कहा—

न चास्य माता न पिता च नान्य
स्नेहाद्विशिष्टोऽरित मया समो वा ।
तावत्त्वहं दूत जिजीविषेयं
यावत्प्रवृत्ति शृणुयां प्रियस्य ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हे दूत ? क्या माता ? क्या पिता ? क्या कोई अन्यपुरुष कोई भी क्यों न हो, मुझसे अधिक या बराबर उनका अनुराग किसी मैं नहीं है। सो जब तक में परम्प्रिय श्रीरामचन्द्र जी का वृत्तान्त सुनती हूँ, तभी तक मैं जीवित भी हूँ।

राम ने अपने पत्नी व्रत का महान मूल्य चुकाया। अशोक वाटिका में सीता को देख हनुमान ने मन में सोचा—

अस्यां हेतोर्विशालक्ष्या हतो वाली महाबलः ।
रावणप्रतिमो वीर्ये कबन्धश्च निपातितः ॥

इन विशालाक्षी सीता के लिए ही तो श्रीरामचन्द्र जी ने महाबली बालि को और रावण की तरह पराक्रमी कबन्ध को मारा था।

राम का सीता से प्रेम इतना प्रकट था कि उसे मित्र शत्रु सभी मानते और जानते थे। सीता हरण से पूर्व मारीच रावण संवाद में मारीच ने रावण से कहा—

तस्य सा नरसिंहस्य सिंहोरस्कस्य भामिनी ।
प्राणेभ्योऽपि प्रियतरा भार्या नित्यमनुव्रता ॥

पुरुष सिंह और सिंह जैसे वक्ष स्थल वाले रामचन्द्र अपनी पतिव्रता भार्या को अपने प्राणों से बढ़कर प्यारी समझते हैं।

परस्त्री गमन सभी संस्कृतियों में बड़ा भारी पाप माना जाता था मारीच ने रावण से कहा—

परदाराभिमर्शात्तु नान्यत्पापतरं महत् ।
प्रमदानां सहस्राणि तव राजन्परिग्रह ॥

हे रावण ? पराई स्त्री को हरने से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है। फिर तुम्हारे रनवास में तो हजारों स्त्रियाँ मौजूद हैं।

राम स्वतः एक पत्नी व्रती थे तथा वे संसार में इस मर्यादा की स्थापना भी करना चाहते थे। राम के वाण से मरणासन्न बालि ने जब राम से अपने मारने का कारण पूछा तब राम ने कहा—

तद्व्यतीतव्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर ।
भ्रातृभार्याविमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादित ॥

तुमने कामासक्त हो धर्ममार्ग का उल्लंघन किया है। भाई की स्त्री के साथ अनुचित आचरण के कारण मैंने यह दण्ड तुमको दिया है।

रामायण में कई स्थलों पर नारी मात्र के प्रति आदर और श्रद्धा पूर्ण व्यवहार के दर्शन होते हैं। क्रोधित लक्ष्मण को शान्त करने के लिये तारा को भेजते हुये सुग्रीव ने उससे कहा—

त्वद्दर्शनविशुद्धात्मा न स कोपं करिष्यति ।
न हि स्त्रीषु महात्मान क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ॥

लक्ष्मण जी शुद्धान्तकरण वाले हैं अतःवे तुझे देख कुपित न होंगे। क्योंकि महात्मा लोग (अर्थात् सभ्य लोग) स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते।

सुग्रीव के कथनानुसार ही हुआ। लक्ष्मण ने तारा को देखते ही अपने आप को संयत कर लिया—

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नी
तस्थाबुदासीनतया महात्मा ।
अवाङ् मुखोऽभून्मनुजेन्द्र पुत्रः
स्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥

उस समय वीरवर राजकुमार लक्ष्मण जी, कपिराज की पत्नी को देख, उदास हुए और नीचे मुख कर खड़े रहे ? तारा को दख कर, उनका क्रोध भी दूर हो गया।

तारा ने लक्ष्मण के आचरण की प्रशंसा करते हुए कहा—

तदागच्छ महाबाहो चारित्रं रक्षितं त्वया ।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥

हे महावाहो : आपने अन्तःपुर में प्रवेश न कर, सदाचार की भली भाँति रक्षा की है। अब रनवास में चलिये क्योंकि खोटी दृष्टि से मित्र की स्त्री को न देखना चाहिये अर्थात् कपट रहित, मित्र भाव से मित्र की स्त्री को देखना दोषावह नहीं है।

पत्नीव्रत का उल्लंघन कर परस्त्री को बुरी नजर से देखने वाले का पतन अवश्यम्भावी है। रावण की दुरवस्था का वर्णन करते हुए वाल्मीकि कहते हैं—

स बभूव कृशो राजा मैथिलीकाममोहितः ।
असम्मानाच्च् सुहृदां पापः पापेन कर्मणा ॥

सीता पर आसक्त, विभीषणादि सुहृदों का निरादर करने वाले और भार्याहरण का पापकर्म करने वाले रावण का शरीर दुबला होने लगा। क्योंकि पापी अपने पापकर्मों द्वारा ऐसी ही दशा को प्राप्त होता है।

स्त्री सम्मानास्पद है, उसे कुदृष्टि से देखने वाले को अपमानित होना पड़ता है। रावण की सभा में उसे धिक्कारते हुये अंगद ने कहा—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शक ।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥

अरे पराई स्त्रियों पर हाथ डालने वाले, अनाथ स्त्रियों के सामने अपनी बहादुरी दिखाने वाले ? कापुरुषों का काम करके भी तू अपने को बहादुर मानता है ।

रावण का वहीं अंत हुआ जो दुराचारियों का होता है । रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी कहती है–

पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो।
तदैव यत्न दग्धस्त्वं धर्षयं स्तनुमध्यमाम्॥

हे प्रभो ? प्रत्युत निश्चय ही तुम उस पतिव्रता के तप रूप अग्नि से भस्म हो गये । तुमने जिस समय जानकी को हरा था उसी समय तुम भस्म हो जाते ।

नारी के प्रति रावण का दृष्टकोण रखने वाले व्यक्ति स्वयं भी नष्ट होते हैं और समाज को भी अव्यवस्थित बनाते हैं । नारी के प्रति राम जैसा दृष्टकोण अपना कर ही व्यक्ति और समाज सुख शान्ति की उपलब्धि कर सकता है ।

पति पत्नी की अनन्य एकता

दाम्पत्य सूत्र में बँधने के बाद, पति पत्नी दो शरीर एक प्राण हो जाते हैं । परस्पर समर्पण की इसके सिवा अन्य परिणति हो ही नहीं सकती । इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये राम वन गमन के समय सीता को रोकते हुये वशिष्ठ जी ने कैकेयी से कहा–

आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥

सभी गृहस्थों की स्त्रियाँ उनकी आत्मा ही हो जाती हैं, अतः सीता भी राम की आत्मा है । वह यहाँ रहकर राज सिंहासन पर बैठ पृथ्वी का पालन करेंगी ।

पति पत्नी की अनन्य एकता ही दाम्पत्य जीवन की वास्तविकता है । अपनी मृत्यु के पूर्व बालि ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहा था–

शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदा
दात्मा ह्यनन्य पुरुषस्य दाराः।

अनेक शास्त्रों और वेदों में भी यह बात लिखी है कि, स्त्री और पुरुष की आत्मा अलग-अलग नहीं होती ।

दाम्पत्य जीवन का लक्ष्य भोग नहीं संयम पूर्वक कर्तव्य पालन है चित्रकूट निवास के समय राम सीता से कहते हैं–

वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।
पश्यन्ती विविधान्भावान्मनोवाक्कायसंयतान् ॥

हे वैदेही ! मेरे साथ इस चित्रकूट पर्वत पर मन, वचन और देह को वश में कर लेने वाले इन विविध साधनों को देख, तेरा मन प्रसन्न होता है कि नहीं ?

दाम्पत्य सुख भोग और परिस्थितियों पर आधारित न होकर परस्पर तालमेल एवं प्रेम भाव पर आधारित है । चित्रकूट में निवास कर रहे राम के सुखी गृहस्थ जीवन की झाँकी राम के इन वचनों से प्रकट होती है–

लक्ष्मणश्चापि धर्मात्मा मन्निदेशे व्यवस्थितः ।
त्वां चानुकूला वैदेहि प्रीतिं जनयतो मम ॥

हे वैदेही यह धर्मात्मा लक्ष्मण मेरे आज्ञाकारी हैं और तुम भी मेरी आज्ञा के अनुसार काम किया करती हो । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है ।

उपस्पृशंस्त्रिषवणं मधुमूलफलाशनः ।
नायोध्यायै न राज्याय स्पृहयेऽद्य त्यया सह ॥

त्रिकाल स्नान, और तुम्हारे साथ मधु मूल और फल का भोजन करता हुआ, मैं अयोंध्या के निवास की और राज्य की आकाँक्षा नहीं करता ।

राम सीता को हर प्रकार से सुख पहुँचाने का प्रयत्न करते थे । शूर्पनखा के भय से सीता को भयभीत देख राम ने लक्ष्मण से कहा–

क्रू रैरनार्यै सौमित्रे परिहासः कथञ्चन ।
न कार्यः पश्य वैदेहीं कथञ्चित्सौम्य जीवतीम् ॥

हे लक्ष्मण ! ऐसे असभ्य और क्रूर जनों से परिहास नहीं करना चाहिये । हे सौम्य ? शूर्पनखा की यह क्रूरता देख कर सीता कैसे स्वस्थ् रह सकती है ?

परस्पर सुख पहुँचाने की भावना पति पत्नी की अनन्यता की द्योतक है । इस अनन्यता ने शूर्पनखा को भी प्रभावित किया । वह रावण को सीता का परिचय देती हुई कहती है ।

रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दुसदृशानना ।
धर्मपत्नी प्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते रता ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामचन्द्र जी की जो धर्मपत्नी है उसके बड़े बड़े नेत्र हैं उसका चेहरा पूर्णमासी के चन्द्रमा की तरह सुन्दर है । वह रामचन्द्र को अत्यन्त प्रिय है और सदा रामचन्द्रजी के हित-साधन में और प्रिय कामों के करने में तत्पर रहती है ।

सीता का हरण करके जब रावण उन्हें लंका में ले आया और अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करने लगा तो उसे सीता का उत्तर मिलता है—

महागिरिमिवाकम्प्यं महेन्द्रसदृशं पतिम् ।
महोदधिमिवाक्षोभ्यमहं राममनुव्रता ॥

महेन्द्राचल पर्वत की तरह अचल अटल और समुद्र की तरह क्षोभरहित श्रीरामचन्द्र की मैं अनुगामिनी हूँ ।

परस्पर अनुराग ही दाम्पत्य जीवन का आधार है राम किष्किन्ध्या कांड में लक्ष्मण से कहते हैं—

मयि भावस्तु वैदेह्याप्तत्त्वतो विनिवेशितः ।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशतः ॥

क्योंकि मेरे मन में सीता का और सीता के मन में मेरा पूर्ण और यथार्थ अनुराग है ।

लक्ष्मण को राम और सीता की अनन्यता का बोध था, इसी प्रसंग में उन्होंने राम से कहा—

न जानकी मानववंशनाथ
त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
ज चाग्नचूडां ज्वलितामुपेत्य
न दह्यते वीरवराह कश्चित् ॥

हे मानव वंश-नाथ ! सीता के आप ही एकमात्र नाथ अर्थात् स्वामी हैं । उसका दूसरा कोई स्वामी नहीं हो सकता है । हे वीरवर पूज्य ? भला बतलाइये तो प्रज्वलित अग्नि की शिखा को पकड़कर कौन बिना जले बच सकता है ।

अशोक वाटिका में सीता को देख हनुमान राम सीता की अनन्यता के विषय में सोचने के लिए बाध्य हो गये । वे सोचने लगे ।

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥

इस देवी का मन श्रीरामचन्द्र जी में है और श्रीरामचन्द्र जी का मन इसमें है । इसीलिए ये सीता देवी और वे धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी, अब तक जी रहे हैं । नहीं तो (ये दोनों) एक क्षण भी नहीं जी सकते थे ।

गुण, और चरित्र की समानता से ही दाम्पत्य जीवन सफल होता है । अशोक वाटिका में सीता को देख हनुमान ने सोचा—

तुल्यशीलवयोवृत्तां तुल्याभिजनलक्षणाम् ।
राघवोर्हति वैदेहीं तं चेयमसितेक्षणा ॥

सचमुच स्वभाव, वय, चरित्र, कुल और शुभलक्षणों से सीता जी रामचन्द्र जी की भार्या होने ही योग्य हैं और वे इनके ही योग्य पति हैं ।

अलग रहते हुये भी सीता को अपने ऊपर और अपने राम पर पूरा विश्वास है । वे अशोक वाटिका में हनुमान से कहती हैं—

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यत पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिश्च बहवो गुणाः ॥

हे वानरश्रेष्ठ ! मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि, श्रीरामचन्द्र जी मुझे शीघ्र मिलेंगे । क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है और श्रीरामचन्द्र जी में बहुत गुण हैं ।

नारी पुरुष के सद्गुणों की प्रेरक हैं । हनुमान द्वारा राम के पराक्रम को प्रखर करने वाला संदेश भेजते हुए सीता ने कहा—

यदि रामो दशग्रीवमिहि हत्वा सबान्धवम् ।
ममितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥

यदि श्री रामचन्द्र जी बन्धुबान्धव सहित रावण को मार मुझे लेकर यहाँ से जायँ, तो ऐसा कार्य उनकी पद मर्यादा के अनुकूल होगा ।

उन्होंने आगे कहा—

कस्माद्धो मां हरेत्त्वत्त क्षमसे तं महीपते ।
स कुरुष्व महोत्साहः कृपां मयि नरर्षभ ॥

सो हे महाराज ? जिसने मेरा हरण किया है उसे क्यों क्षमा कर दिया ? हे नरश्रेष्ठ आप अति प्रबल उत्साह का अवलंबन कर, मेरे ऊपर कृपा कीजिए ।

उन्होंने हनुमान से आग्रह किया—

तद्यथा तस्य विक्रान्तामनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतएव हे वीर ! जिससे महात्मा रणविजयी श्रीरामचन्द्र जी के पराक्रम की धाक बैठे तुम वैसा ही प्रयत्न करना ।

जहाँ पति पत्नी के विचारों और संवदेनाओं में इतनी समानता होगी वहाँ घर में स्वर्ग का वातावरण बना रहेगा ।

अविभावकों और सन्तान के पारस्परिक कर्तव्य

समाज को सुनागरिक प्रदान करना अपने आप में एक महान उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है । सन्तान पैदा करने से पहिले हजार बार अपने इस दायित्व पर विचार करना चाहिये । यदि क्षमता हो तभी सन्तानोत्पादन करना चाहिये । माता पिता संतान के निर्माता है । वाल्मीकि अयोध्या कांड में कहते हैं –

पुरुषस्यैह जतस्य भवन्ति गुरुवरत्रयः ।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव ॥

हे काकुत्स्थ ? हे राम ? पुरुष जब जन्मता है, तब उसके तीन गुरु होते हैं । पिता, माता और अचार्य ।

पुत्र का निर्माण माता पिता के शरीर से ही नहीं हो जाता बल्कि भावनाओं से भी होता है । अस्तु बच्चे पैदा करने के पूर्व माता पिता को अपना शरीर तो स्वस्थ बना ही लेना चाहिए किन्तु विचारणाओं एवं भावनाओं का भी शोधन कर लेना चाहिए ।

अंगप्रत्यंगजः पुत्रों हृदयाच्चापि जायते ।
तस्मात्प्रियतमो मातुःप्रियत्वान्न तु बान्धवः ॥

यों तो देखा जाय तो बन्धुबान्धव सभी प्रिय होते हैं, किन्तु सबसे अधिक पुत्र ही माता को प्रिय होता है– क्योंकि वह माता के अंग प्रत्यंग से और हृदय कमल से भी जन्म ग्रहण करता है–

पुत्र पाना सरल है किन्तु सुपुत्र दुर्लभ है । जो पिता एक भी सुपुत्र तैयार कर लेता है उसका हृदय गौरव से फूल उठना स्वाभाविक है । घायल अवस्था में पड़ा हुआ बालि श्रीराम से कहता है–

सुतः सुलभ्य सुजन सुवश्य
कुतः सुपुत्रः सदृशोंगदेन ।

हे राम ? पुत्र की प्राप्ति सहज है और अपने सब सुजन भी सहज में अपने वश में किये जा सकते हैं, किन्तु अंगद जैसा गुणवान् पुत्र कहाँ मिल सकता है ?

माता पिता पुत्रों से प्रेम तो करें पर मोहग्रस्त न हों । कर्तव्य पथ पर बढ़ती हुई सन्तान के मार्ग में बाप का स्नेह बाधक नहीं होना चाहिये । वन गमन के लिये तैयार राम से कौशल्या ने कहा–

यं पालयसि धर्मं त्वं धृत्या च नियमेन च ।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥

हे रघुकुलसिंह ? तुम जिस धर्म को धारण कर नियम पूर्वक जिसका पालन कर रहे हो वही धर्म तुम्हारी रक्षा करें ।

योग्य संतान माँ बाप का यश संसार में उजागर कर देती है राम वनगमन के बाद सुमंत्र कौशल्या से कहने हैं –

न शोच्यास्ते न चात्मान शोच्यों नापि जनाधिपः ।
इदं हि चरितं लोके प्रतिष्ठास्यति शाश्वतम् ॥

हे देवी ! तुम उन तीनों के लिये, अपने लिये और महाराज के लिये जरा भी चिन्ता न करों । पिता की आज्ञा मान कर वन जाने का श्रीराम जी का चरित्र इस संसार में स्थाई प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा ।

संतान को सुसंस्कार देना माता-पिता का इतना बड़ा अनुदार माना जाता है कि उसकी बराबरी अन्य अनुदानों से नहीं की जा सकती ।

यन्मातापितरौ वृत्तं तंनये कुरुतः सदा ।
न सुप्रतिकरं तत्तु मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥

माता पिता, अपने पुत्र की जो सेवा या उपकार करते हैं उसके बदले में प्रत्युपकार करना सहज नहीं है ।

माता पिता का सम्मान किया जाना उचित है किन्तु यदि वे कोई गलत कार्य करते हैं तो उसका शिष्टता पूर्वक विरोध करना चाहिये । वन गमन से पूर्व लक्ष्मण ने कौशल्या से कहा–

अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता चबन्धुश्च पिता च मम राघवः ॥

मुझे तो महाराज में पितृकर्त्तव्य का पालन कुछ भी नहीं देख पड़ता । अतः अब तो मेरे भाई, स्वामी, बन्धु और पिता (जो कुछ हैं– सो) श्रीरामचन्द्र ही हैं ।

पिता और माता सन्तान से समान रूप से आदर पाने के अधिकारी हैं । वन गमन से पूर्व कौशल्या ने राम से कहा–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यावत्पितरि धर्मज्ञे गौरवं लोकसत्कृतम ।
तावद्धर्मभृतांश्रेष्ठ जनन्यामपि गौरवम् ॥

है धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! जितना गौरव लोकपूजित पिता का है, उतना ही माता भी है । अर्थात् जितना आदर सन्मान पिता का करना चाहिये उतना ही आदर और सन्मान माता का भी करना चाहिये ।

किन्तु यदि माता पिता या अन्य संबंधी मोह वश होकर धर्म का उल्लंघन करें तो दृढ़तापूर्वक उनकी बात मानने से इनकार कर देना चाहिये । ननिहाल से लौटे हुये भरत का जब कैकेयी ने अपनी कहानी सुनाई तब भरत ने कैकेयी से कहा—

न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये ।
त्वया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥

हे पापिन ? याद रख, चाहे जो कुछ हो मैं तेरी साध कभी पूरी न करूँगा । क्योंकि तूने मेरे प्राण लेने वाले प्रपञ्च का सूत्रपात किया है ।

जिस सन्तान को माता पिता ने श्रेष्ठ संस्कार दिये हों उनसे माता पिता का गौरव बढ़ता हैं । राम वन गमन के बाद सुमंत्र ने कौशल्या से कहा—

नार्हा त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः ।
न हि रामात्परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥

हे देवि ! आप शोक करने योग्य नहीं हैं क्योंकि इस लोक में श्रीरामचन्द्र जी से बढ़ कर सुमार्ग पर चलने वाला अर्थात् धर्म पालन करने वाला अन्य कोई भी नहीं है ।

अपने व्यक्तित्व को प्रयास पूर्वक उज्ज्वल बनाने वाले माता पिता की सेवा करने की भावना बच्चों में होनी चाहिए ।

मया हि चिरपुष्टेन दुःखसंवर्धितेन च ।
विप्रयुज्यत कौसल्या फलकाले धिगस्तु माम् ॥

मुझे धिक्कार है ? जिस माता ने बड़े-बड़े दुःख सह कर मेरा इतने दिनों तक लालन पालन कर मुझे इतना बड़ा किया उसी माता को, जब उसको मुझसे सुख मिलने का समय आया, तब मैंने उसको त्याग दिया ।

योग्य पुत्र सदैव माँ बाप का गौरव बढ़ाने का ध्यान रखते हैं । वन गमन से पूर्व राम ने दसरथ से कहा—

भवान्वर्षसहस्राय पृथिव्या नृपते पतिः ।
अहं अरण्ये वत्स्यामि न में कार्यं त्वयानृतम् ॥

हे महाराज ? (परमात्मा करें) आप आगे और भी हजारों वर्ष की आयु पाकर, पृथिवी का पालन करते रहें । मैं आपको मिथ्यावादी बनाना नहीं चाहता । मैं अवश्य वन में वास करूँगा ।

योग्य पुत्रों से ही माँ बाप का गौरव बढ़ता है । चित्रकूट में राम भरत का वार्तालाप सुनकर ऋषियों ने कहा—

स धन्यो यव्य पुत्रौ द्वौ धर्मज्ञौ धर्मविक्रमौ ।
श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे ॥

ये दोनों धर्मज्ञ और धर्मवीर राजकुमार जिन महाराज दशरथ के पुत्र हैं, वे धन्य है । इन दोनों की बातचीत सुन, हम लोगों की यह इच्छा हो रही है कि, इन दोनों का वार्तालाप हम बार-बार सुना कर ।

माता पिता की संतान के प्रति जिम्मेबारियों का अन्त नहीं । संतान चाहे पुत्र हो या कन्या उसके योग्य पति या पत्नी का चुनाव भी माँ बाप की जिम्मेवारी है । अपनी योग्य कन्या के लिये योग्य वर के चयन हेतु जनक जी ने शिव धनुष तोड़ने को शर्त रखी थी ताकि सीता के लिये योग्य एवं पराक्रमी वर उपलब्ध हो सके । उन्होंने विश्वामित्र से कहा—

वीर्यशुल्केति में कन्या स्थापितेयनमयोनिजा ।
भूतलादुत्थिता तां तु वर्धमानां मात्मजाम् ॥

मेरी अयोनिजा कन्या जो कि पृथ्वी पुत्री है तथा जिसका पालन मैंने अपनी आत्मजा के समान किया है वीर्य शुल्का है (पराक्रमी पुरुष को वरण करेगी)—

संतान पुत्र हो या पुत्री उसे अच्छे संस्कार और शिक्षा देना माता पिता का अनिवार्य कर्तव्य है जनकजी ने सीता को समुचित शिक्षा दी थी । राम ने स्त्री धर्म का हवाला देकर सीता को वन जाने से रोकना चाहा तो आत्मविश्वास पूर्वक सीता ने राम से कहा—

अनुशिष्टाऽस्मि माता च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रतिवक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥

स्त्री को अपने पति के प्रति किस प्रकार से व्यवहार करना चाहिये— यह बात मुझे मेरे माता पिता ने अनेक प्रकार से समझा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दी है। अतः इस विषय में मुझे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

संतान के प्रति अपने गंभीर उत्तर दायित्व को समझकर माता पिता को चाहिए कि वे कम से कम ही संतान उत्पन्न करें। अधिक संतान पैदा करने वाले पापी है। भरत जी माँ कौशल्या को अपनी निर्दोषिता का प्रमाण देते हुये शपथ पूर्वक कहते हैं –

बहुपुत्रों दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः।
स भूयात्सततं क्लेशी यस्यार्योऽनुमते गतः॥

जिसकी सलाह से श्रीरामचन्द्र जी वन में गये हों, वह बहुत सन्तति वाला होकर दरिद्र हो, ज्वर रोग से पीड़ित हो और सदा क्लेश पावे।

टिप्पणी– बहुत सन्तान होना भी दरिद्रता का सूचक है। स्मृतिकारों के मतानुसार ज्येष्ठ पुत्र को छोड़ शेष सन्तान कामज है।

संतान के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझकर और उनका तत्परता पूर्वक पालन करके ही ऐसी श्रेष्ठ संतति पैदा की जा सकती है जो कुल और राष्ट्र के लिए गौरव सिद्ध हो सके।

शिष्टाचार का अभ्यास बचपन से ही

कोमलता और कठोरता दोनों को मिलाकर ही आदर्श जीवन का निर्माण होता है। राम "वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुपुमादपि" थे। उनके व्यक्तित्व निर्माण में उनके निर्माताओं द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया का ही हाथ था। विश्वामित्र से शिक्षा ग्रहण करते हुये राम और लक्ष्मण द्वारा व्यतीत किया जा रहा कठोर जीवन क्रम इस प्रकार है। विश्वामित्र के आश्रम की ओर जाते हुये राम लक्ष्मण का रात्रि कालीन विश्राम–

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां
तृणशयनेनुचिते सहोपिताभ्याम्।
कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां
सुखमिव सा विवभौ विभावरी च॥

राजकुमार होने के कारण घास के बिछौने पर भूमि पर सोने का अभ्यास न होने पर भी दसरथ पुत्र दोनों वीरों ने विश्वामित्र जी के मधुर वचन सुनते हुये सुख पूर्वक वह रात बिताई।

उन्हें प्रातः काल ब्रह्ममूहूर्त में जागने का अभ्यास भी कराया था। प्रातकाल विश्वामित्र जी ने दोनों राजकुमारों को जगाया–

तस्यर्षे परमोदारं वचः श्रुत्वा नृपात्मजौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरो जेपतुः परमं जपम्॥

परमोदार ऋषि के वचन सुन दोनों राजकुमार उठे स्नान और अर्ध्यदान कर गायत्री मंत्र जप किया। विश्वामित्र के आश्रम (सिद्धाश्रम) में निवास के समय राम लक्ष्मण की दिनचर्या अनुकरणीय थी–

प्रभातकाले चोत्थाय पूर्वा सन्ध्यामुषास्य च।
स्पृष्टोदकौ शुची जप्य समाप्य नियमेन च।
हुताग्निहोत्रामासीनं विश्वामित्रमवन्दताम्॥

प्रातः काल उठकर दोनों राजकुमारों ने प्रातः संध्या की, आचमन पूर्वक पवित्र हो गायत्री जप किया। फिर अग्नि से हवन कर आसन पर विराजमान विश्वामित्र जी की वन्दना की। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में रत राम लक्ष्मण की मुस्तैदी और कष्ट सहन दर्शनीय हैं।

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम्॥

ऋषियों के वचन सुन उन दोनों यशस्वी राजपुत्रों ने लगा तार छः दिन रात जागकर तपोवन की रक्षा की।

बच्चों को प्रेम पूर्वक ही कठोर जीवन का अभ्यस्त बनाना चाहिये। जनकपुर जाते हुये सोने के किनारे रात्रि व्यतीत की गई। प्रातः काल राम को जगाते हुये विश्वामित्र ने कहा–

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठोतिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय॥

हे राम सुन्दर प्रभात काल है। तुम्हारा मंगल हो। शीघ्र उठो और प्रातः सन्ध्योपासन कर चलने की तैयारी करो।

इस तरह के अभ्यास के कारण ही राम लक्ष्मण सुखपूर्वक कठोर जीवन बिता सके।

भाई भाइयों का स्नेह सहयोग

भाइयों के सहयोग की कहानी से रामायण भरी पड़ी है, यदि इसे भाइयों के सहयोग की कहानी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। माता पिता के बाद छोटे भाई बहिनों को सम्हालना बड़े भाई की जिम्मेवारी होती है। महाराजा जनक ने राम विवाह के पूर्व वशिष्ठ से बताया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् ।
भ्रातरं दवसंकाशं स्नेहात् पश्यन् कुशध्वजम् ॥

जब मेरे बूढ़े पिता धर्म पूर्वक राज्य संचालन कर स्वर्ग वासी हुये तब मैंने अपने देवता स्वरूप छोटे भाई कुशध्वज का स्नेह पूर्वक पालन किया ।

राम के हृदय में भाइयों के प्रति अपार स्नेह था । वनवास के समय चित्रकूट में उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

धर्ममर्थं च पृथिवी चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थं एतत्प्रतिशृणोमि ते ।

हे लक्ष्मण ! मैं तुमसे यह बात दावे के साथ कहता हूँ कि, मैं तो केवल अपने भाइयों ही के लिये धर्म, अर्थ, काम अथवा पृथिवी का राज्य चाहता हूँ ।

श्री राम का भातृ प्रेम कितना प्रखर है यह अगले श्लोक से और भी अधिक स्पष्ट होता है ।

यद्विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखी ॥

हे मान देने वाले तुम्हारे बिना, भरत के बिना और शत्रुघ्न के बिना मुझे जिस किसी वस्तु से सुख मिलता हो, उसे अग्निदेव भस्म कर डालें ।

विपत्ति के समय तो लोग भाइयों के प्रति बड़ी आत्मीयता दिखाते हैं किन्तु सत्ता-सम्पत्ति मिलते ही उनके दिमाग कुछ के कुछ हो जाते हैं । परन्तु श्रीरामचन्द्र जी का भाव भाइयों के प्रति सदैव वैसा ही शुद्ध बना रहता है । अपने राज्याभिषेक के बाद वे भाइयों से कहते हैं—

भवन्तो मम सर्वस्वं भवन्तो जीवितं मम ।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वरा ॥

हे नरवरो ! आप लोग मेरे सर्वस्व हैं । आप लोग मेरे जीवनाधार हैं । आपही के सम्पादित राज्य का मैं पालन करता हूँ ।

उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां योवराज्यों धुरमुद्वहस्व ॥

हे धर्मज्ञ ! जिस पृथिवी का राज्य मन्वादि हमारे पूर्वज कर चुके हैं, उस पृथिवी का आओ हमारे साथ तुम शासन करो । जैसे हमारे पिता पितामहादि ने अपने बड़ों की उपस्थित में यौवराज्य स्वीकार किया था, वैसे ही तुम भी युवराज बन कर राजकाज में मेरी सहायता करो ।

राम जिस प्रकार सभी भाइयों से प्रेम करते थे भाई भी उनसे उसी प्रकार प्रेम करते थे । दशरथ जी के अन्त्येष्ठि संस्कार से निवृत्त होकर भरत ने सभासदों से कहा—

पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः ।
तस्य पादौ गृहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम् ॥

धर्मज्ञ और विवेकी जन का जेठा भाई पिता के तुल्य होता है । अतः मैं उनके-श्रीराम के पैर पकड़ूँगा क्योंकि अब तो मुझे उन्हीं का सहारा है ।

भरत चाहते हैं कि श्री राम के अधिकार की रक्षा के लिए पिता का प्रतिवाद भी किया जाना चाहिए था । वे कहते हैं—

बलवान्वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽप्यसौ ।
किं न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम् ॥

(यदि मान लिया जाय कि, श्रीरामचन्द्र ने संकोचवश उस समय कुछ न कहा तो) बलवान् और वीर्य सम्पन्न लक्ष्मण ने पिता को रोकर, श्रीरामचन्द्र को क्यों न बचाया ?

भरत भाई की अपेक्षा थोड़ी भी अधिक सुख सुविधा स्वीकार नहीं करते । शृंगवेरपुर में जब उन्होंने श्री राम की तृणशैया देखी तो तुरन्त निर्णायक स्वर से निषाद से बोले—

अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेषु वा ।
फलमूलाशनो नित्यं जटाचीराणि धारयन् ॥

आज से मैं भी खाली जमीन पर अथवा चटाई पर ही सोऊँगा, और नित्य फल मूल ही खाऊँगा और जटा चीर धारण करूँगा

भरत की सदाशयता पर श्री राम को पूरा विश्वास है । उन्हें भरोसा है कि उनके एक सामान्य आग्रह मात्र से भरत कुछ भी समर्पित कर सकते हैं । चित्रकूट में भरत के आने पर लक्ष्मण द्वारा शंका और रोष प्रकट किए जाने पर वे कहते हैं ।

यदि राज्यस्य हेतोस्त्वगिमां वाचं प्रभाषसे ।
वक्ष्यामि भरतं दृष्टा राज्यमस्मै प्रदीयताम् ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और यदि तुमने ये सब बातें राज्यप्राप्ति के लिये ही कहीं तो मैं भरत से कह कर राज्य तुमको दिलवा दूँगा ।

उच्यमानोऽपि भरतो मया लक्ष्मण तत्वतः ।
राज्यमस्मै प्रयच्छेति बाढमित्येव वक्ष्यति ॥

हे लक्ष्मण ! मैं सत्य कहता हूँ कि, मेरे यह कहते ही कि राज्य इसे दे दो भरत सिवाय "बहुत अच्छा" कहने के ना तो कभी कहेगा ही नहीं ।

भरत और राम का स्नेह कितना उच्चस्तरीय था इसका अन्दाज राम के इस कथन से सहज ही लगाया जा सकता है । वन में वे लक्ष्मण से कहते हैं—

निश्चिताऽपि हि में बुद्धिर्वनवासे दृढव्रता ।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशीक्रियते पुनः ॥

यद्यपि मैं १४ वर्ष तक वनवास करने का अब तक दृढ़ निश्चय किये हुए हूँ और उसके लिये दृढ़व्रत हूँ, तथापि भरत के स्नेह का जब मुझे स्मरण आता है, तब मैं विकल हो जाता हूँ और मेरी बुद्धि बालकों जैसी हो जाती है ।

लंका में रावण विजय के पश्चात जब विभीषण ने राम से कुछ दिन रुक कर विश्राम करने को कहा, तब राम ने भरत का स्मरण करते हुए उत्तर दिया—

न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ।
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम् ॥

स्नान करना, वस्त्र और अलंकार धारण करना मुझे अच्छा नहीं लगता । सो कोई ऐसा उपाय देख भाल कर बतलाओ, जिससे मैं तुरन्त श्री अयोध्यापुरी में पहुँच जाऊँ ।

सभी भाइयों में अद्भुत ताल मेल था । लंका युद्ध में जब मेघनाद ने माया सीता की हत्या कर दी उसके बाद व्याकुलता वश राम अचेत से हो गये तो लक्ष्मण ने उन्हें समझाते हुये कहा—

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो दृढ़व्रत ।
किमात्मानं महात्मानं मात्मानं नावबुध्यसे ॥

हे नरशार्दूल, हे महाबाहो, हे दृढ़व्रत आप उठें ! हे महात्मन् आप अपने सर्वप्रवर्त्तक रूप को क्यों भूले हुए हैं ।

राम के साथ वन जाने को प्रस्तुत लक्ष्मण ने अपनी उपयोगिता बताते हुये कहा—

धनुरादाय सशरं खनित्रपिटकाधर ।
अग्रतस्ते गमिष्यामि पन्थानमनदर्शयन ॥

मैं तीरों सहित धनुष, खंता (जमीन से कंदमूल खोदने का औजार) और बाँस की बनी फल फूल रखने की कंडी लिये हुए, आपके आगे-आगे मार्ग बतलाता हुआ चलूँगा ।

लक्ष्मण की उपयोगिता देखते हुए वन में राम ने उससे कहा—

स्निग्धो धर्मरतो वीरः सततं सत्पथे स्थितः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो भ्राता चापि सखा च मे ॥

हे लक्ष्मण ! तुम मेरे स्नेही, धर्म में रत शूर, सदैव सन्मार्ग पर चलने वाले, प्राण के समान प्रिय, मेरे दास, छोटे भाई और मित्र भी हो ।

किसी भी परिस्थिति में लक्ष्मण सदैव आगे रहे । वन में रहने के लिये लक्ष्मण ने तत्काल व्यवस्था की ।

एवमुक्तस्तु रामेणः लक्ष्मणः परवीरहा ।
अचिरेणाश्रमं भ्रातुश्चकार सुमहाबलः ॥

जब श्रीरामचन्द्र ने यह कहा, तब लक्ष्मण जी ने अति शीघ्र श्रीरामचन्द्र जी के रहने के लिए एक आश्रम बनाया ।

लक्ष्मण को राम छोटा भाई ही नहीं पुत्र की तरह स्नेह करते थे, किन्तु लक्ष्मण उनकी देख रेख जिस तत्परता से करते थे उसे देखकर राम उन्हें पितृ तुल्य अनुभव करते थे । उन्होंने यह भाव व्यक्त करते हुए कहा—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्त पिता मम ॥

हे लक्ष्मण ! तुम जैसे, मन की बात जान लेने वाले, उपकार को मानने वाले और धर्मज्ञ पुत्र के विद्यमान होते हुए, मुझे यह नहीं जान पड़ता कि मेरे पिता मर गये ।

जीवन में मनोरंजन भी आवश्यक है । जब पंचवटी में शूर्पनखा राम के पास आई तब उन्होंने उसे लक्ष्मण के पास भेजते हुये परिहास करते हुए कहा—

अपूर्वी भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः ।
अनुरूपश्च ते भर्ता रूपस्यास्य भविष्यति ॥

यह तरुण है और इसे बहुत दिनों से स्त्री सुख भी प्राप्त नहीं हुआ । अतः इसे भार्या की आवश्यकता भी है । देखने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

में भी बड़ा सुस्वरूप होने के कारण, यह तुम्हारे अनुरूप ही पति होगा ।

लक्ष्मण कब चूकने वाले थे । सूर्पनखा ने सीता के प्रति जिन विशेषणों का प्रयोग किया था, लक्ष्मण ने उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हुये शूर्पनखा को राम के पास भेजा—

एनां विरूपामसतीं करालां निर्णतोदरीम् ।
भार्या वृद्धां परित्यज्य त्वामेवैष भजिष्यति ॥

जब तुम इनसे विवाह कर लोगी तब ये इस कुरूपा, कुलटा, कराली, बड़े पेट वाली और बूढ़ी स्त्री को छोड़, तुम्हारे ही अनुरागी वन जायँगे ।

राम और लक्ष्मण के बीच इतना अधिक तालमेल था कि उनसे अपमानित होने पर भी शूर्पनखा प्रशंसा किये बिना न रह सकी । उसने रावण से बताया—

अमर्षी दुर्जयो जेता वक्रान्तो बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्य प्राणो बहिश्चरः ॥

लक्ष्मण अपने बड़े भाई के प्रति अपराध करने वाले का अपराध सह नहीं सकता । स्वयं किसी से जीता भी नहीं जा सकता । वह बड़ा पराक्रमी बुद्धिमान् और बलवान है । वह रामचन्द्र का दहिना हाथ अथवा शरीर के बाहिर रहने वाला प्राण है । अर्थात् अत्यन्त प्रिय है ।

लक्ष्मण अपने भाई के स्वभाव से भली प्रकार परिचित थे तथा हर प्रकार उनकी सहायता करने की क्षमता रखते थे । सीता के वियोग में व्याकुल राम को उन्होंने तथ्य पूर्ण सुन्दर वचन कह कर शान्त कर ही लिया ।

पूर्वजोऽप्युक्तमात्रस्तु लक्ष्मणेन सुभाषितम् ।
सारग्रही महासारं प्रतिजग्रह राघव ॥

जब लक्ष्मण ने श्रीरामचन्द्र को इस प्रकार समझाया, तब सारग्रही श्रीरामचन्द्र शान्त हुए ।

राम लक्ष्मण को अपना दूसरा प्राण ही मानते थे । अयोध्या में पिता द्वारा राज्य दिये जाने की खबर सुन राम ने लक्ष्मण से कहा—

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुन्धराम् ।
द्वितीयं मेन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरूपस्थिता ॥

हे लक्ष्मण ? तुम मेरे साथ इस पृथ्वी का पालन करों क्योंकि तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो और यह राज्य लक्ष्मी तुम्हारे लिये ही मिल रही है ।

लक्ष्मण भी पूरी तरह राम के प्रति समर्पित थे । राम वन गमन को तैयार हो गये तो लक्ष्मण ने कौशल्या से कहा—

दीप्तगग्निमरण्यं वा यदि रामः प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥

हे देवि यदि राम जलती हुई आग हो या घोर वन में कहीं भी प्रवेश करना चाहें तो आप मुझे उनके आगे ही प्रवेश करते देखेंगी ।

अपने कथन का लक्ष्मण ने भली प्रकार पालन कर दिखाया । राम के साथ वन में चलते हुए लक्ष्मण की झांकी रामायणकार इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं ।

तं मत्तमतिगंविलासगामी
गच्छन्तमव्यग्रामना महात्मा ।
स लक्ष्मणो राघवमप्रमतौ
ररक्ष धर्मेण बलेन चैन ॥

मतवाले हाथी की तरह चलने वाले, अव्यग्रगना, महात्मा लक्ष्मण जी, श्रीरामचन्द्र जी की धर्म से और बलसे भी सावधानता पूर्वक रक्षा करते थे ।

सीताजी भी लक्ष्मण के महत्व तथा दोनों भाइयों के परस्पर प्रेम को अच्छी तरह समझती थीं । अशोकवाटिका में हनुमान जी से वे अपना मत प्रकट करती है ।

स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया यश्च वरागंना ॥
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।
पितरं मातरं चैव संपान्याभिप्रसाद्य च ॥
अनुप्रवजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।
आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥

मालाओं, रत्नों, प्यारी स्त्री और पृथिवी के दुलर्भ ऐश्वर्य को त्याग तथा माता एवं पिता को प्रसन्न करके जो श्रीराम के अनुगामी बन, वन में आए, जिनके होने से सुमित्रा देवी सुपुत्रवती कहलाती हैं, जिन्होंने भाई की भक्ति के वश हो, उत्तम सुखों को त्याग, दिया है ।

पितृवद्धर्तते रामे मातृवन्मां समाचरन् ।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥

जो श्रीराम को पिता और मुझे माता समझ बर्ताव करते हैं, उन वीर लक्ष्मण को, उस समय रावण द्वारा मेरा हरा जाना न विदित हुआ ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ।
नियुक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥

लक्ष्मण, मुझसे भी अधिक श्रीराम को प्यारे हैं और जो किसी कार्य में नियुक्त किए जाने पर उस कार्य को बड़ी चतुराई से पूरा करते हैं ।

यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरेत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान्मम ॥

जिनको देखने से श्रीरामचन्द्र जी को पिता की याद नहीं आती, उन लक्ष्मण से मेरे कथनानुसार कुशल कहना ।

लक्ष्मण राम के लिए सब कुछ करने को तैयार थे । रावण के गुप्तचर ने उसे लक्ष्मण के बारे में बताया ।

न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान्॥

ये श्रीरामचन्द्र जी की रक्षा के लिये अपने प्राणों को हथेली पर रखे हुए, सदा तैयार रहते हैं । युद्ध में ये अकेले ही समस्त राक्षसों को मार डालने का उत्साह रखते हैं ।

जब राम मेघानाद द्वारा पीड़ित हुये तब लक्ष्मण के स्नेह और आत्मसंतुलन की अनुपम झलक मिलती है । वे इसे सर्वाधिक दुःखद घटना मानते हैं पर आत्मविश्वास के साथ श्रीराम को उद्बोधन तथा आश्वासन देते हैं—

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्राजिता कृतम्।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव॥

हे वीर ! उससे भी बढ़ कर बहुत अधिक दुःखदायी काम इन्द्रजीत ने कर डाला है । किन्तु मैं अपने पुरुषार्थ से इस दुःख को दूर कर दूँगा । इसलिये हे राघव ! अब आप उठ बैठिये ।

और लक्ष्मण ने अपने पुरुषार्थ का प्रमाण मेघनाद बध के रूप में प्रस्तुत कर ही दिया । राम ने उस प्रसंग से संतोष व्यक्त करते हुए कहा—

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्मणा सकृतं कृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥

हे लक्ष्मण ! तुम धन्य हो ? तुम्हारे इस उत्तम कर्म को देख मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ हूँ । क्योंकि जब इन्द्रजीत मारा जा चुका, तब अपनी जीत ही समझनी चाहिये ।

मेघनाद की शक्ति से मूर्छित लक्ष्मण के प्रति कहे गये राम के हृदयोद्गार लक्ष्मण की महत्ता प्रगट करते हैं—

शवया सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता ।
न लक्ष्मणसमों भ्राता सचिवः साम्परायिक ॥

इस संसार में खोजने पर सीता के समान स्त्री भले ही मिल जाय, किन्तु लक्ष्मण के समान भाई, सहायक और चतुर योद्धा नहीं मिल सकता ।

सुरुष्टेनापि वीरेण लक्ष्मणेन न संस्मरे ।
पुरुषं विप्रिय वाऽपि श्रावितं न कदाचन ॥

मुझे स्मरण नहीं आता कि, शूरवीर लक्ष्मण ने क्रुद्ध होने पर भी कभी मुझसे कठोर या अप्रिय वचन कहे हों ।

रामायण से भाइयों के आदर्श की प्रेरणा प्राप्त कर उसे जीवन में स्थान दे सकें तो हमारी प्रगति के अनेक द्वार स्वतः खुल जावें ।

संस्कार और आश्रम धर्म

परिवार व्यक्ति और समाज के बीच की कड़ी है । व्यक्ति जितने सुसंस्कारी होंगे, परिवार उतना ही श्रेष्ठ होगा । किन्तु व्यक्ति को संस्कारवान बनाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना परिवार द्वारा ही संभव है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही परिवारों में संस्कार आयोजनों का विकास किया गया है । इसी प्रकार व्यक्ति की बदलती हुई एवं मनोभूमि के अनुसार उसकी भूमिकाओं में भी परिवर्तन लाया जाना आवश्यक हो जाता है । आश्रम व्यवस्था का निर्माण इसी आदर्श के निर्वाह के लिए किया गया है । इन दोनों आदर्श पद्धतियों की उपेक्षा हो जाने अथवा विकृत हो जाने के कारण व्यक्ति और समाज की प्रगति तथा परिवारों के सन्तुलन एवं उपयोगिता पर भारी आघात पड़ा है । इनको शुद्ध रूप में पुनः प्रतिष्ठित करना आवश्यक है । रामायण काल में इन पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था । उसके प्रभाव से व्यक्तित्वों में निखार आता रहता था । दशरथ राज्य के वर्णन में लिखा है—

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मण विजितेन्द्रियाः ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥

सभी ब्राह्मण स्वकर्म निरत थे, वे जितेन्द्रिय, दाता, अध्ययन शील तथा स्वल्प संतोषी थे ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यज्ञीय जीवन के आदर्श का शिक्षण भली प्रकार किया जाता था इसीलिए संस्कार के पूर्व अज्ञीय वातावरण बनाया जाता था । राम और सीता के विवाह के पूर्व राजा जनक जी दशरथ जी से अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहते हैं ।

यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसम्मतम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः ॥

हे नरश्रेष्ठ यज्ञ के अन्त में ऋषि सम्मत विवाह होगा । ऋषियों के बीच बैठे हुये दशरथ जी ने जनक की यह बात सुनी ।

सद्गृहस्थ माया मोह ग्रस्त व्यक्ति नहीं होता, उस पर समाज के विभिन्न अंगों के पोषण एवं पालन का उत्तरदायित्व होता है । इसीलिए गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता ऋषि भी स्वीकार करते थे । श्रीराम भरत जी को यह तथ्य समझाते हुए चित्रकूट में कहते हैं—

धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नेहि।
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमाश्रमम्॥

धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णों के पालन करने का कष्ट आप स्वीकार कीजिये । क्योंकि हे धर्मज्ञ ! चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही को धर्मज्ञशील लोग सर्वोत्तम बतलाते हैं ।

संस्कारों को प्राणवान तथा आश्रम व्यवस्था को सटीक बनाये रखने का उत्तरदायित्व तेजस्वी ब्राह्मण संभालते थे— इसीलिए वे श्रद्धा और सन्मान के पात्र समझे जाते थे । चित्रकूट में राम भरत जी से राज्य व्यवस्था के बारे में पूछते हुए इस प्रसंग को भी उठाते हैं—

स कच्चिद्ब्राह्मणी विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युतिः ।
इक्ष्वाकूणामुषाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥

क्या उस विद्वान एवं महातेजस्वी ब्राह्मण का, जो नित्यकार्यों में तत्पर रहता है और इक्ष्वाकुकुल का उपाध्याय है, यथावत् सत्कार किया जाता है ।

कच्चिदग्निषु ते युक्तों विधिज्ञों मतिमानृजुः ।
हुतं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥

अग्निहोत्र के कार्य में नियुक्त, हवन की विधियों का साङ्गोपांग जानने वाला, मतिमान और सरल स्वभाव पुरोहित हवनकाल उपस्थित होने पर, तुमको सदा सूचना देता रहता है कि, नहीं ?

तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण अपने महान् उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रहें और समाज उनकी उपयोगिता समझता रहे तो सन्तुलन और विकास का क्रम बना रह सकता है । सामान्य रूप से आश्रमों का अपना क्रम है गृहस्थ आश्रम के उत्तरदायित्व से निवृत्त होने के बाद ही वानप्रस्थ लिया जाता है किन्तु यह कोई बन्धन नहीं है । आवश्यकता होने पर वे व्यक्ति जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व कम हैं वे भी निश्चित अवधि के लिए वानप्रस्थ ले सकते हैं । और अवधि समाप्त होने पर पुनः गृहस्थ धर्म का पालन कर सकते हैं । तत्कालीन आवश्यकता को ध्यान में रखकर राम लक्ष्मण ने भी १४ वर्ष के लिए वानप्रस्थ धारण किया था ।

ततौ वैखानसं मार्गमास्थित सहलक्ष्मण ।
बतमादिष्टवान् राम सहायं गुहमब्रवीत् ॥

तदनन्तर श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण वानप्रस्थ होकर और ब्रह्मचर्य ग्रहण कर अपने सहायक रूप गुह से बोले ।

वानप्रस्थ जीवन बिताते हुये ऋषि श्रेष्ठ सामाजिक सत्प्रवृत्तियाँ संचालित करते थे । अरण्यकांड में ऋषि आश्रमों का वर्णन करते हुये कहा गया है—

कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मच्या लक्ष्म्या समावृतम् ।
यथा प्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमण्डलम् ॥

इन आश्रमों में जगह जगह यज्ञ में काम आने वाले कुशों के ढेर लगे थे । आश्रमवासियों के चीर जगह-जगह सूखने के लिये फैलाये हुए थे । वेदाध्ययन और वैदिक कर्मानुष्ठान के कारण, इन आश्रमों में एक प्रकार का ऐसा तेज व्याप्त था, जिसे राक्षसादि उसी प्रकार नहीं सहन कर सकते थे, जिस प्रकार आकाशस्थ सूर्य का तेज सहन नहीं किया जाता ।

शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टजिरं सदा ।
मृगैर्वहुभिराकीर्ण पक्षिसंघैः समावृतम् ॥

ये आश्रम प्राणि मात्र के लिये सुखप्रद आश्रयस्थल थे और स्वच्छ स्थानों से सुशोभित थे । इन आश्रमों में बहुत से हिरन निर्भय घूमा-फिरा करते थे और पक्षियों की टोलियाँ आश्रमों के वृक्षों पर रहा करती थीं ।

भारतीय दर्शन शरीर के अन्त के साथ जीवन का अंत नहीं मानता, अतः मृत्यु के बाद भी संस्कार का क्रम मृतात्मा की शान्ति, सद्गति तथा परिजनों के शिक्षण एवं समाधान के लिए चलाया जाता हैं । अन्त्येष्ठि तथा श्राद्ध आदि इसी उद्देश्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सेकिए जाते हैं । राजा दशरथ के मरण के बाद ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ के माध्यम से सत्कर्म तथा वेदों से सद्ज्ञान का वातावरण बनाने का प्रमाण रामायण में मिलता है—

ये त्वग्नयो नरेन्द्रस्य चाग्न्यगाराद्बहिष्कृताः ।
ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैव तेहूयन्ते यथाविधि ॥

महाराज के अग्न्यागार में जो अग्नि स्थापित थीं, उन सब को बाहर निकाल कर ऋत्विज और याचक यथाविधि होम करने लगे ।

तथा हुताशनं दत्त्वा जेपुस्तस्य तमृत्विजः ।
जगुश्च ते यथाशास्त्रं तत्र सामानि सामगाः ॥

तदनन्तर ऋत्विज लोग महाराज की परमगति के लिये प्रेत्याग्नि में आहुति देकर, पैतृमेधिक मंत्र विशेषों का जप करने लगे और सामगायी ब्राह्मणों ने सामवेद का गान किया ।

शोधन तथा प्रचार करके हम परिवारों को पुनः श्रेष्ठ व्यक्तियों के निर्माण की टकसाल तथा समाज की सुदृढ़ इकाई के रूप में विकसित कर सकते हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समाज प्रकरण

नागरिक कर्तव्यों का पालन

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम व्यक्तिगत रूप से तो आदर्श हैं ही रामराज्य भी श्रेष्ठतम समाज व्यवस्था का पर्यायवाची बन गया है । समाज व्यवस्था निश्चित रूप से नागरिकों द्वारा ही बनती बिगड़ती है । सामाजिक दृष्टिकोण का अभाव हो तो व्यक्तिगत रूप से अच्छे व्यक्ति भी सामाजिक दृष्टि से अप्रमाणित सिद्ध हो जाते हैं । रामचन्द्र और उसके पूर्व दशरथ जी के राज्य में भी नागरिकों के सामाजिक दृष्टिकोण के विकास पर ध्यान दिया जाता था— फलस्वरूप वे अपने नागरिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक थे । सभी सद्गुणी थे ।

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥

उस समय अयोध्या में कोई भी नागरिक कामी, कायर, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक नहीं दिखाई पड़ता था ।

अयोध्या में सभी आध्यात्मिक वृत्ति के थे— किसी के अधिकार अथवा धन का अपहरण करने की कामना भी उनके मन में नहीं आती थी । लिखा है—

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टा धनैः स्वै स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥

उस पुरी के सभी निवासी संतुष्ट, धर्मात्मा, अनुभवी, अपने धन से ही संतुष्ट निर्लोभी तथा सत्य आचरण करने वाले थे ।

आध्यात्मिक प्रबृत्ति होने का यह अर्थ नहीं कि मनुष्य सांसारिक एवं शारीरिक दृष्टि से दीन हीन हो ।

दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्म सत्यं च संश्रिताः ।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभि पुरात्तमे ॥

अयोध्या के सभी नागरिक, दीर्घायु धर्म और सत्य में स्थिति तथा स्त्री पुत्र पौत्रों सहित सुखपूर्वक उस उत्तम पुर में रहते थे ।

हमारे समाज में पनपने वाली बुराइयों की रोकथाम भी हमारा नागरिक कर्तव्य है यदि हम इसका प्रतिकार नहीं करते तो छोटी सी बुराई बढ़कर सारे समाज को नष्ट कर देगी । हर नागरिक इस दिशा में सावधान रहे यह प्रयास किया जाता था । श्रीराम स्वयं नागरिकों से कहते हैं—

एको हि कुरुते पापं कालपाशवशं गतः ।
नीचेनात्मापचारेण कुलं तेन विनश्यति ॥

देखो, मृत्यु के पाश में फँस, एक जीव पाप करता है किन्तु उस एक नीच के अपराध से उसके सारे कुल का नाश होता है ।

इसी बात को समझाते हुये माल्यवान ने रावण से कहा—

अकुर्वन्तोऽपि पापनि शुचयः पापसंश्रयात् ।
परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा ॥

जो लोग पाप नहीं करते वे भी पापी जनों के संसर्ग से नष्ट हो जाते हैं । जैसे सर्पयुक्त जल के कुण्ड की मछलियाँ सर्पों के संसर्ग से (गरुड़ द्वारा) नष्ट होती हैं ।

समाज में जिम्मेवारी के पदों पर स्थित व्यक्तियों का कर्तव्य है कि वे दृढ़तापूर्वक समाज में पनपने वाली बुराइयों को दूर करें । सत्ताधारियों का इस संदर्भ में विशेष उत्तरदायित्व बतलाते हुए लिखा है—

यथा दृष्टिः शरीरस्य नित्यमेव प्रवर्तते ।
तथा नरेन्द्रो राष्ट्रस्य प्रभवः सत्यधर्मयोः ॥

जिस प्रकार दृष्टि, या आँखें शरीर की भलाई करने और बुराई दूर करने में सदा ही तत्पर रहती हैं— उसी प्रकार श्रेष्ठ शासक भी अपने राज्य में सत्य व धर्म का प्रचार कर राष्ट्र की भलाई करने में और दुष्टात्माओं का शासन कर बुराई दूर करने में सदा तत्पर रहता है ।

समाज में समानता होनी ही चाहिये । स्वार्थपूर्ण भेद भाव नहीं । हर सदस्य को सम्मान पूर्ण जीविका का अधिकार है । जो अपने आश्रित जनों से भेदभाव बरतते हैं वे पापी हैं । राम वनगमन के बाद अपनी निर्दोषिता सिद्ध करते हुये भरत ने कौशल्या से कहा—

पुत्रैदरैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः ।
स एको मृष्टमश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसकी अनुमति से श्रीरामचन्द्र वन में भेजे गये हों, उसे वह पाप हो, जो उस मनुष्य को होता है, जो सामने बैठे हुए नौकर चाकर, स्त्री, पुत्रों को न देकर, स्वयं अकेले ही अच्छा खाने वाले को होता है ।

कारयित्वा महत्कर्म भर्ता भृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मो योऽस्य सौस्यास्तु यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

अथवा श्रीरामचन्द्र जी जिसकी अनुमति से वन भेजे गये हों, उसे वह पाप लगे, जो बड़ा काम करा लेने पर भी नौकर का वेतन न देने के कारण मालिक को होता है ।

स्वयं राम सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि कहीं भी भेदभाव की नीति न बरती जाय । रावण बध के बाद जब सीता राम के पास आ रही थी वानर उन्हें देखने दौड़े विभीषण के सेवकों ने वानरों को रोका तब राम ने विभीषण से कहा—

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयैनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥

तुम मेरा अनादर कर (बिना मेरी आज्ञा पाये) मेरे जनो को क्यों सता रहे हो ? अपने लोगों को मना कर दो कि, वे लोग इन लोगों को न सतावें । क्योंकि ये सब तो मेरे स्वजन ही है । अर्थात् ये सब तो मेरे घर के लोगों जैसे हैं ।

राम की सबके प्रति यही एकात्मता ही उनकी श्रेष्ठता का कारण थी । समाज में हर व्यक्ति अपने-अपने कर्तव्य के प्रति सतर्क थे, तभी आदर्श समाज की रचना सम्भव हुई थी ।

सच्ची और झूठी मित्रता

सच्चे मित्र दुर्लभ हैं किन्तु झूठे मित्र सुलभ हैं । सत्पुरुषों की मित्रता ही चिरस्थाई होती है । दुष्ट की मित्रता अस्थाई होती है । रामायण में उल्लेख है ।

यथा पुष्करपर्णेषु पतितास्तोयविन्दवः ।
न श्लेषमुपगच्छन्ति तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥

जैसे कमल के पत्ते पर की बूंदें नहीं ठहर सकतीं, वैसे ही क्रूरस्वभाव वाले पुरुष के साथ मैत्री करने से वह उसके टिकाऊ नहीं होती ।

स्वार्थ पर आधारित मित्रता की निंन्दा करते हुये राम किष्किन्धा कांड में कहते हैं—

कृतार्था ह्याकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नांन्नोपुभुञ्जते ॥

मित्र द्वारा अपना काम निकाल, जो पुरुष मित्र का काम नहीं करते, उन कृतघ्नों के मरने पर उनका माँस वे जीव जन्तु भी नहीं खाते, जो कच्चा माँस खाया करते हैं ।

दो सच्चे मित्र मिल जायें तो राम और सुग्रीव की मैत्री के समान चमत्कार उत्पन्न हो जाता है—

अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमुपजग्मतुः ।
त्वं वयस्योऽसि में हृद्यो ह्येकं दुःख सुखं च नौ ॥

(श्रीराम और सुग्रीव आपस में एक दूसरे को देखने लगे और बहुत देर तक) एक दूसरे को देखते रहने पर भी दोनों में से एक को भी तृप्त नहीं हुई । (तदनन्तर श्रीरामचन्द्र ने प्रसन्न हो, सुग्रीव से कहा) तुम हृदय के प्यारे सखा हो । आज से तुम्हारा दुःख-सुख मेरा दुःख-सुख और मेरा दुःख-सुख तुम्हारा दुःख-सुख हुआ ।

श्रेष्ठ पुरुषों की मैत्री व्यक्ति को धन्य बना देती है । सुग्रीव ने राम से कहा—

सोऽहं सभाज्यो बन्धूनां सुहृदां चैव राघव ।
यस्याग्निसाक्षिकं मित्रं लब्धं राघववंशजम् ॥

हे राघव ! अब तो मैं अपने मित्र बांधवों का पूज्य हो गया । क्योंकि मेरे अब महाराज रघु के वंश वाले अग्निसाक्षिक मित्र हुए हैं ।

महात्मनां तु भयिष्ठं त्वद्विधानां कृतात्मनाम् ।
निश्चला भवति प्रीतिर्धैर्यमात्मवता मिव ॥

आप जैसे महात्मा और पूर्ण स्वाधीन पुरुषों की प्रीति और धैर्य अटल होते हैं ।

वह मित्रता ही क्या जो व्यवहार में परिणित न हो सके । मित्र के प्रति किये गये अन्याय का विवरण सुन राम ने कहा—

उपकारफलं मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ।
अद्यैव तं हनिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥

मनुष्य उपकार करने ही से मित्र और अपकार करने से ही शत्रु हो जाता है । मैं फिर भी कहता हूँ कि मैं आज ही तुम्हारी भार्या के हरने वाले उस बालि को मार डालूँगा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मित्रता करना सरल है पर उसे निभाना कठिन है, राम ने सुग्रीव से कहा—

त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यों मेऽग्निसाक्षिकम् ।
कृतः प्राणैर्बहुमतः सत्येनापि शपामि ते ॥

आपने अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़ अग्नि के सामने मुझे अपना मित्र बनाया है । मैं सत्य शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि, आप मुझे निज प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं ।

अच्छे मित्र सदैव हितकारी सलाह ही दिया करते हैं रावण को समझाते हुये विभीषण ने कहा—

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा
न रोचते ते वचनं निशाचर ।
परीतकाला हि गतायुषो नरा
हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ॥

हे निशाचर ! मैं तो तुम्हें तुम्हारी भलाई के लिये ही रोकता था, किन्तु मेरी बात तुम्हें अच्छी ही नहीं लगीं । ठीक है, जिन लोगों की आयु पूरी होने को होती है और जिनके सिर पर काल खेलता है, वे मित्रों की कही हुई हितकर बातों को नहीं मानते ।

मित्र से भूले भी हो सकती हैं उसे समझाकर सही रास्ते पर लाना चाहिये । सुग्रीव की लापरवाही से उत्तेजित होकर उसे दंड देने को प्रस्तुत लक्ष्मण को समझाते हुये राम ने कहा—

न हि वै त्वद्विधो लोके पापमेवं समाचरेत ।
पापमायण यो हन्ति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥

हे लक्ष्मण! तुम जैसे पुरुष को मित्रवध रूपी पाप कर्म का करना उचित नहीं । जो मनुष्य अच्छी तरह विवेचना कर अपने क्रोध को मारता है, वही वीर और वहीं पुरुषों में श्रेष्ठ कहलाता है ।

सच्चा मित्र अपने मित्र के हितों को अपने लाभ से अधिक महत्व देता है । लंका में सुग्रीव अकेले ही जाकर रावण से भिड़ गये, उनके लौटने पर राम ने कहा—

इदानीं मा कृथा वीर एवंविधमचिन्तितम् ।
त्वयि किञ्चित्समापन्ने किं कार्यं सीतया मम ॥

हे वीर! इस प्रकार बिना समझे बूझे फिर कोई काम मत करना । कहीं तुम्हारा कुछ भी अनभल हो जाता तो, मैं सीता को लेकर ही क्या करता ?

सुग्रीव राम के आदर्श मित्र थे । उत्तेजित लक्ष्मण को सुग्रीव के बारे में बताते हुये तारा ने कहा—

रुमां मां कपिराज्यं च धनधान्यवसूनि च ।
रामप्रियार्थं सुग्रीवस्त्यजेदिति मतिर्मम ॥

मेरा तो यह मत है कि सुग्रीव आवश्यकता आ पड़ने पर श्रीरामचन्द्रजी के काम के लिये रुमा को, मुझको, कपिराज्य को, पशुओं को, धान्य को और रत्नादि को भी त्याग देंगे । मित्रता समानता पर आधारित है । रावण बध के बाद अयोध्या पधारे सुग्रीव से मिलकर भरत ने कहा—

परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ।
त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ॥

महातेजस्वी राजकुमार भरतजी ने (वानर राज सुग्रीव को गले लगाकर कहा)— हे सुग्रीव ! हम तो चार भाई थे ही तुम हमारे पाँचवे भाई हुये—

सुग्रीव को ठहराने के बारे में राम ने भरत से कहा—

यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं सोशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैडूर्यसङ्कीर्ण सुग्रीवाय निवेदय ॥

अशोक वाटिका वाले मेरे विशाल एवं सर्वोत्तम भवन में, जिसमें मोती, पन्ने आदि मणियाँ जड़ी हैं, ले जाकर सुग्रीव को ठहराओ ।

यदि कभी आपस में गलत फहमी हो जाय तो इसका निराकरण कर मन साफ कर लेना चाहिये । लक्ष्मण ने सीता की खोज में सुग्रीव द्वारा तत्परता न बरती जाने पर उत्तेजित होकर कठोर शब्द कहे थे । उनके सम्बन्ध में बाद में दुःख प्रकट करते हुए कहते हैं—

यच्च शोकाभिभूतस्य श्रुत्वा रामस्य भाषितम् ।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तच्च त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥

हे मित्र ! शोक से विकल श्रीरामचन्द्र जी की बातें सुन, तुमसे जो कठोर बचन कहे— इसके लिये तुम मुझे क्षमा करो ।

राम और उनके सभी भाई सुग्रीव के प्रति आदर का बर्ताव करते थे । राम राज्याभिषेक के पूर्व भरत ने सुग्रीव से वानरों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

द्वारा समुद्रों का जल लाने का आग्रह किया तो उनको प्रभु कहकर संबोधित किया—

उवाच च महातेजाः सुग्रीव राघवानुजः ।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥

महातेजस्वी भरत जी ने सुग्रीव से कहा— हे प्रभो ! श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक के लिये समुद्रों के जल लाने के लिये अपने वानरों को आज्ञा दीजिये ।

सत् पुरुष अपने प्रति किये गये उपकार को कभी नहीं भूलते । सीता की खोज से पूर्व हनुमान ने राम के बारे में सुग्रीव से कहा—

प्राणत्यागविशांकेन कृतं तेन तव प्रियम् ।
तस्य मार्गामि वैदेहीं पृथिव्यामपि चाम्बरे ॥

उन्होंने अपनी जान हथेली पर रखकर, आपका काम कर, आपको प्रसन्न किया । अतः हम लोग सीता जी को पृथिवी व आकाश में, जहाँ कहीं भी वे हों, ढूँढ लावेंगे ।

सच्चे मित्र मिलना दुर्लभ है अतः सोच समझकर मित्रता करनी चाहिये । विभीषण शरणागति से पूर्व राम ने सुग्रीव और लक्ष्मण से कहा—

इति भेदं गमिष्यन्ति तस्मद्ग्राह्यो विभीषणः ।
न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ॥
मद्विधा वां पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ।
एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ॥

और इससे इनके मन में भेद हो जाना भी सम्भव है । अतः विभीषण को मिला लेना ठीक है । हे तात ! सब भाई, भरत जी से और सब पुत्र मेरे समान पिता के आज्ञाकारी और सब मित्र आप लोगों जैसे नहीं हुआ करते, ऐसा राम ने सुग्रीव और लक्ष्मण से कहा ।

श्रेष्ठ सामाजिक सत्प्रवृत्तियाँ

समाज में श्रेष्ठ व्यक्ति अपने प्रयास से श्रेष्ठ सामाजिक प्रवृत्तियाँ पैदाकर सकते हैं । जिस समाज में श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का प्रचलन होता है वही सशक्त और प्रगतिशील हो सकता है । दशरथ जी के राज्य का वर्णन रामायण में श्रेष्ठ प्रवृत्तियों की ही झलक देता है—

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसयताः ।
उदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥

दशरथ जी के राज्य में निवास करने वाले स्त्री पुरुष धर्म-शील, सुसंयत आचरण वाले, शीलवान तथा महर्षियों के समान निर्मल थे ।

इसी प्रसंग में वे आगे लिखते हैं—

कश्चिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतो नरः ।
प्रशान्त सर्वमेवासीद्राष्ट्र पुरवरं च तत् ॥

दशरथ के राज्य और अयोध्यापुरी में कोई दुष्ट और परस्त्रीगामी नहीं था । सब निर्मल मन वाले थे ।

मन्दिरों द्वारा भी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों और आस्तिकता का प्रसार होता है । वनवास काल में राम अगस्त आश्रम में पहुँचे तो—

स्थानं तथैव गायत्र्यावसूनां स्थानमेव च ।
स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः ॥

रामचन्द्र जी ने अगस्त्य मुनि के आश्रम में पहुँचकर देखा कि वहाँ गायत्री, वसु, वरुण इत्यादि के मन्दिर बने हुये हैं ।

सामाजिक नियम और मर्यादाओं का सबको पालन करना चाहिये समाज के शीर्षस्थ व्यक्तियों की जिम्मेवारी अधिक है । चित्रकूट में भरत से कुशल प्रश्न करते हुये राम ने कहा कि क्या तुम नौकरों को समय पर भोजन और वेतन देते हो ?

कालातिक्रमणाच्चैव भक्तवेतनयोर्भृताः ।
भर्तु कुप्यन्ति दुष्यन्ति सोऽर्नः सुमहान्स्मृतः ॥

क्योंकि भोजन और वेतन समय पर न मिलने से, नौकर लोग कुपित होते हैं और मालिक की निन्दा करते हैं । नौकरों का ऐसा करना, एक बड़े भारी अनर्थ की बात है ।

आय-व्यय का संतुलन और बचे हुये धन को श्रेष्ठ कार्यों में व्यय एक ऐसी सत्प्रवृत्ति है जिससे समाज में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं । राम ने इस सम्बन्ध में कहा—

आयस्ते विपुलः कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव॥

भरत ! तुम्हारे कोश में आमदनी अधिक और आमदनी से कम व्यय है कि नहीं, तुम्हारे कोश का धन कहीं नाचने गाने वालों को तो नहीं लुटाया जाता ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धन् का व्यय किन कार्यों में करना चाहिये इसका संकेत करते हुए राम ने भरत से पूछा—

देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषु च ।
योधेषु मित्रवर्गेषु कच्चिद्गच्छति ते व्ययः ॥

देवता, पितर, ब्राह्मण, अभ्यागत, योद्धा और मित्रगण् इन सबके लिये तुम्हारे कोश का धन व्यय किया जाता है कि नहीं !

सच्ची न्याय व्यवस्था श्रेष्ठ परम्पराओं की रक्षक और गलत कार्यों को कठोर दण्ड द्वारा रोकने में सहायक होती है । यदि इन परम्पराओं का मुस्तैदी से पालन न किया जाय तो अव्यवस्था फैलते देर नहीं लगती । राम ने प्रश्न किया—

कच्चिदार्यो विशुद्धात्माऽऽक्षारितश्चोरकर्मणा ।
अपृष्ट शास्त्रकुशलैर्न लोभाद्वध्यते शुचिः ॥

जब अच्छे चरित्र वाले साधु लोग जो झूठे चोरी आदि अपवादों से दूषित हो, विचारार्थ, न्यायालय में उपस्थित किये जाते हैं, तो तुम्हारे नीतिशास्त्रकुशल लोग उनसे जिरह कर सत्यासत्य का निर्णय किये बिना ही, लालच में फँस, उनको कहीं दण्ड तो नहीं दे देते ?

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥

हे पुरुष श्रेष्ठ ! जो चोर चोरी करते समय पकड़ा गया और जिरह से जिसका चोरी करना सिद्ध हो चुका, वह चोर, कहीं घूस के लालच से छोड़ तो नहीं दिया जाता ।

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यस्राणि राघव ।
तानि पुत्रपशून्घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ॥

क्योंकि भरत ! झूठे दोषारोपण के लिये दण्डित लोगों के नेत्रों से गिरे हुये आँसू उस राजा के, जो केवल अपने शारीरिक सुख (ऐश, आराम) के लिये राज्य करता है और न्याय की ओर ध्यान नहीं देता, पुत्रासें और पशुओं का नाश कर डालते हैं ।

समर्थ व्यक्ति के लिए उचित है कि अपने आश्रितों को उनका हिस्सा देने के बाद ही किसी बस्तु का उपयोग करें । इस सन्दर्भ में भरत को सावधान करते श्री राम कहते हैं—

कच्चित्स्वादुकृतं भोज्यमेको नाश्नासि राघव ।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्य सम्प्रयच्छसि ॥

हे भरत ! तुम स्वादिष्ट भोजन अकेले ही तो नहीं खा लेते ? जो मित्र खाते समय उपस्थित हो उनको देकर खाते हो न ।

स्वावलम्बन श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का जनक है । चित्रकूट में राज्य संचालन में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये भरत ने राम से कहा—

सुजीवं नित्यशस्तस्य य परैरूपजीव्यते ।
राम तेन तु दुर्जीवं यः परानुपजीवति ॥

जिससे पीछे अनेक लोग जीते हैं उसी पुरुष का जीना, जीना है और जो दूसरों के सहारे जीता है, उसका जीना और न जीना बराबर है ।

समाज विराटपुरुष है तथा व्यक्ति उसके अंग, सभी परस्पर जुड़े प्रवृत्ति है । पराई संतान का अपनी संतान के समान पालन एक श्रेष्ठ प्रवृत्ति है । अनुसूया को अपने जन्म की कहानी सुनाते हुये सीता ने कहा कि राजा जनक हल जोत रहे थे कि उन्होंने मुझे पृथ्वी पर पड़ी देखा तो तुरन्त मुझे उठा लिया—

अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम् ।
ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः ॥

सन्तान हीन होने के कारण, उन्होंने स्नेह से स्वयं मुझे अपनी गोदी में उठा लिया और यह कहा कि, यह मेरी बेटी है— मेरे ऊपर बड़ा स्नेह करने लगे ।

नारी के लिये पर्दा घृणित प्रथा है । रावण विजय के बाद विभीषण पालकी में पर्दा लगाकर सीता को राम के पास ला रहे थे । राम ने उसका विरोध करते हुए कहा—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥

स्त्रियों के लिये न घर, न चादर का घूँघट, न कनात आदि की चहारदीवार, न चिक आदि परदा और न इस प्रकार का राजसत्कार हीं आड़ (औट) करने वाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो) ।

तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषण ।
सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्गणवृतं स्थितम् ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सो हे विभीषण ! तुम शीघ्र (बिना पर्दा के ही) सीता को मेरे पास ले आओ, जिससे ये सब मेरे सुहृदयगण सीता को देख सके ।

समाज में श्रेष्ठ सामाजिक प्रवृत्तियों को विकसित करने का प्रयास किया जाना चाहिए । तभी सशक्त और आदर्श समाज की स्थापना सम्भव है ।

धर्म स्थापना के लिये अनीति से संघर्ष

अनीति से संघर्ष राम के अवतार का मुख्य प्रयोजन था, इसके लिये उन्होंने क्षात्र धर्म का अवलम्बन किया था । वन में राक्षसों के अत्याचारों से दुःखी मुनियों को अभय दान देते हुये राम ने राक्षस वध की प्रतिज्ञा की । उन्हें इस प्रतिज्ञा से विरत करने हेतु सीता ने अकारण संघर्ष में उलझने से रोका तो राम ने कहा—

किंतु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त शब्दो भवेदिति ॥

किन्तु अभी तुम कह चुकी हो कि, क्षत्रिय लोग धनुष धारण इसलिये करते हैं कि जिससे किसी दुःखिया का आर्त शब्द न सुन पड़े । अर्थात् कोई बली किसी निर्बल को सताने न पावे ।

महर्षि अगस्त को राम के उद्देश्य का पता था । उन्होंने राम को पंचवटी में निवास करने को कहा—

भवानपि सदारश्च शक्तश्च परिरक्षणे ।
अपि चात्र बसन्राम तापसान्पालयिष्यसि ॥

हे श्रीराम ! आप सीता जी सहित तपस्वियों की रक्षा कर सकते हैं । सो वहाँ रह कर आप तपस्वियों का पालन भी कर सकेंगे ।

अपने ऊपर आक्रमण करने वाले खर आदि राक्षसों को अपने वन में आने का कारण बताते हुये राम ने कहा—

युष्मान्पापात्मकान्हन्तु विप्रकारान्महाहवे ।
ऋषीणां तु नियोगेन प्राप्तोऽहं सशरायुधः ॥

हम तपस्वी तो हैं, किन्तु हम लोगों के धनुष धारण करने का कारण यह है कि, हम इस महावन में तुम्हारे जैसे पापिष्टों को, जो ऋषियों को सताया करते हैं, ऋषियों की आज्ञा से मारने के लिये, धनुष बाण लेकर आये हैं ।

अनीति मिटाने के लिये जब राम खर आदि चौदह हजार राक्षसों को मारने के लिये प्रस्तुत हुये उस समय राम के रौद्र की झाँकी—

क्रोधमाहारयत्तीवं वधार्थं सर्वरक्षसाम् ।
दुष्प्रेक्षः सोऽभवत्क्रुद्धो युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥

सब राक्षसों के वध के लिये (रामचन्द्र जी) अत्यन्त क्रुद्ध हुये । उस समय क्रोध में भरे श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखना उसी प्रकार दुष्कर था जिस प्रकार प्रलयकालीन अग्नि को देखना दुष्कर होता है ।

राम के बैरी भी उनके पराक्रम को अच्छी तरह जानते थे । सीता हरण से पूर्व मारीच ने रावण से कहा—

न हि रामं पराक्रम्य जीवन्प्रतिनिवर्तते ।
वर्तते प्रतिरूपोऽसौ यमदण्डहतस्य ते ॥

क्योंकि कोई भी पुरुष रामचन्द्र के सामने जा, अपने पराक्रम से जीता जागता नहीं लौट सकता । क्योंकि रामचन्द्र यमदण्ड के समान हैं । सो तुम और मैं दोनों ही मारे जायेंगे ।

कुछ ऐसे दुष्ट होते हैं जो दण्ड के सिवा अन्य कोई भाषा नहीं समझते उनके लिये दंड का प्रयोग उचित ही है । अपने बाण से घायल बालि के प्रश्न का उत्तर देते हुये राम ने कहा—

न हि धर्मविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।
दण्डान्यत्र चश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥

हे हरियूथप ! धर्म की मर्यादा को उल्लंघन करने वाले और लोक-व्यवहार की मार्यादा के विरुद्ध चलने वाले को मारने के सिवाय मुझे और कोई दण्ड नहीं देख पड़ता ।

हर सम्भव तरीके से अन्याय का विरोध करना हमारा नैतिक दायित्व है, यदि हम ऐसा नहीं करते तो समाज के अभिन्न अंग के नाते अपराधी के अपराध का दंड हमें भी भोगना पड़ सकता है । सीता हरण से पूर्व मारीच ने रावण से कहा—

बहवः साधवो लोके युक्ता धर्ममनुष्ठिताः ।
परेषामपराधेन विनष्टा सपरिच्छदाः ॥

हे रावण ! अनेक धर्मज्ञ जो धर्मानुष्ठान में तत्पर और नीति मार्ग का अनुसरण करते थे, दूसरों के अपराध से अपने परिवार सहित नष्ट हो चुके हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि अत्याचारी हमारा कहना नहीं मानता तो वह हमारा कुटुम्बी ही क्यों न हो हमें दृढ़ता पूर्वक उसका परित्याग कर देना चाहिये। मेघनाद ने अपने मारे जाने के पूर्व विभीषण की अपने बड़े भाई के परित्याग एवं उसके खिलाफ, संघर्ष की निंदा की तब विभीषण ने उससे कहा—

गुणान्नेच्छादयामासु पर्वतानिय तोयदाः ।
दोषैरेतै परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ॥

जैसे मेघ पर्वत को ढक लेते हैं, वैसे ही इन दोषों ने उसके गुणों को छिपा दिया है। इन्हीं बुराइयों के कारण मैंने अपने भाई और तुम्हारे पिता का त्याग किया है।

त्वक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ।
हिंसापरस्वहरणे परदाराभिमर्शनम् ॥

ऐसे को त्यागने से वैसा ही सुख प्राप्त होता है, जैसे हाथ से विषधर सर्प को छोड़ देने से प्राण बचते हैं। जो हिंसा करता हो, दूसरों का धन छीनता हो और पराई स्त्री को हरता हो उसका त्याग कर देना चाहिये।

भरत के द्वारा गलत आचरण का संदेह मात्र होने से लक्ष्मण उनका विरोध करने को तैयार हो गये। उन्होंने राम से कहा—

सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव मे ।
भरतस्य वधे दोषं न हि पश्यामि राघव ॥

वहीं भरत शत्रुभाव से आया है। अतः वह मार डालने योग्य है। हे राघव ! भरत के मार डालने में मुझे कुछ भी पाप नहीं जान पड़ता।

धर्मात्मा महर्षि लोग जिन लोकों में विहार करते थे, शबरी भी अपने समाधिबल से जा पहुँची।

रामायण में इस प्रकार के स्पष्ट उल्लेखों के आधार पर यहीं निष्कर्ष निकलता है कि भेदभाव की भ्रांतियाँ बाद में पैदा हुई हैं और उनका निवारण किया ही जाना चाहिए।

यज्ञीय संस्कृति का संरक्षण और प्रचार

यज्ञ भारतीय धर्म का पिता है। राम जिस परम्परा में उत्पन्न हुये थे वह यज्ञीय परम्परा ही थी। राम के पूर्वज सदैव बड़े—बड़े यज्ञ करते रहे। पुष्पक में लंका से लौटते हुये श्रीराम ने सीता जी को विभिन्न स्थल दिखलाते हुए कहा—

शृंङ्गिबेरपुरं चैतद्गुहो यत्र समागतः ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यपमालिनी ॥

आगे देखो वह शृंङ्गवेरपुर है। यहीं पर गुह से मेरा समागम हुआ था। हे सीते ! यह देखों यह सरयू नदी है जिसके तट पर इक्ष्वाकुकुलोद्भव राजाओं के किये हुए यज्ञों के स्मारक स्वरूप पत्थर के खंभों की पाँति खड़ी है।

राम का अवतार यज्ञीय संस्कृति के संरक्षण एवं प्रचार प्रसार के लिये ही हुआ था। वे स्वतः प्रतिदिन यज्ञ किया करते थे। चित्रकूट में भरत ने देखा।

प्रागुदक्प्रवणां वेदिं विशालां दीप्तपावकाम् ।
ददर्श भरतस्तत्र पुण्यां रामनिवेशने ॥

तदनन्तर भरत जी ने श्रीरामचन्द्र जी के वासस्थान में प्रज्ज्वलित अग्नियुक्त ईशानकोण में अति विशाल एवं पवित्र वेदी देखी।

यज्ञ के बाधक असुरों का विनाश राम के जीवन के महान कार्यों में से सबसे प्रधान कार्य था। दण्डकारण्य निवासी राक्षस खर को मारने के पहिले राम ने कहा—

नृशंस नीच क्षुद्रात्मन्नित्यं ब्राह्मणकण्टक ।
यत्कृते शङ्कितैरग्नौ मुनिभिः पात्यते हविः ॥

रे निष्ठुर ! रे नीच ! रे क्षुद्र बुद्धि वाले ! अरे ब्राह्मणों को सदा सताने वाले ! तुम जैसे लोगों के डर ही से मुनि लोग निःशङ्क हो हवन नहीं करने पाते।

प्रतिदिन हवन नियमित दिनचर्या का एक अनिवार्य कर्तव्य था। सभी स्त्री पुरुष प्रतिदिन हवन किया करते थे। वन गमन से पूर्व राम जब माँ कौशल्या से विदा लेने गये तब उन्होंने देखा—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तद मन्त्रवत्कृतमंगला ॥

माँ कौशल्या रेशमी साड़ी पहिने हुये व्रत में स्थित प्रसन्नता पूर्वक मंगलाचार कर मन्त्रोंच्चारण पूर्वक हवन कर रही थीं।

प्रविश्य च तदा रामो मातुरन्तःपुरं शुभम् ।
ददर्श मातरं तत्र हावयन्ती हुताशनम् ॥

राम माता के आन्तःपुर में गये और देखा कि माँ अग्नि में हवन कर रही हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मात्र हवन ही यज्ञ नहीं है । यज्ञ दर्शन के अनुसार जीवन के क्रिया कलापों का संचालन ही यज्ञ है । सिर्फ कर्मकाण्ड महत्वहीन है । रावण वेदपाठी और अग्निहोत्री था किंन्तु उसका जीवन यज्ञ दर्शन के विपरीत था । अशोक वाटिका में जब रावण सीता को मारने दौड़ा तब उसकी पत्नी ने उसे समझाते हुये कहा—

हन्तु मिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि ।
वेदविद्या व्रतस्नातः स्वकर्म्मनिरतः सदा ॥

क्रोध के वशवर्ती हो और धर्म को त्याग कर, सीता का आप वध करना चाहते हैं । आपने यथाविधि वेदाध्ययन किया है और तदनुसार अग्निहोत्रादि अपने कर्त्तव्यकर्मों में आप सदा निरत रहते हैं ।

रावण के गलत कार्यों के कारण उसका सदल बल नाश कर राम ने यज्ञीय संस्कृति का विस्तार किया । राम ने अपने राज्य काल में अनेकों यज्ञ किये—

पौण्डरींकाश्वमेधाभ्यां बाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैः यजत्पार्थिवात्मजः ॥

नृपतिनन्दन श्रीरामचन्द्रजी ने पौण्डरीक, अश्वमेघ, बाजपेय तथा अन्य विविध प्रकार के यज्ञ, एक ही बार नहीं अनेक बार किये । इस प्रकार विशाल स्तर पर यज्ञायोजन करने का उद्देश्य जन जीवन में यज्ञीय आदर्शों की स्थापना करना ही था ।

ooo

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामचरित मानस के प्रेरक तत्त्व

राम कथा का उद्देश्य—लोक मंगल

राम कथा भारतवर्ष में ही नहीं विदेशों में भी दूर-दूर तक प्रचलित है। भारत में तो जन-जन में उसके प्रति अगाध आस्था है। तुलसीकृत रामचरित मानस के राम तो भारतीय नागरिकों के जीवन में विभिन्न पक्षों से घुल मिल गये हैं। राम कथा का पाठ, कथन और श्रवण नित्य नियमित विषय है। यह है भी उचित क्योंकि भगवान राम के जीवन वृतान्त से उनकी लीलाओं से हर स्तर का व्यक्ति प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है।

परन्तु राम जैसे सर्वतोमुखी व्यक्तित्त्व के चरित्र से इतना निकटतम होते हुए भी भारतीय जनमानस उनके गुणों से, जीवन दर्शन से लाभ नहीं उठा पा रहा है। यह आश्चर्य और दुःख का विषय है। उसका मुख्य कारण यह है कि लोग केवल उसके कथन, श्रवण, पाठ आदि से ही पुण्यार्जन की बात सोचते हैं। उसे समझने, आत्मसात करने, अपनाने की ओर ध्यान ही नहीं देते। जब कि रामकथा तो क्या राम जन्म के साथ भी यह उद्देश्य जुड़ा है कि लोग उनके चरित्र से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को उसी के अनुसार बनाकर धन्य हो जावें। हर व्यक्ति को उसे समझने और अपनाने का अवसर मिले। इसीलिए तुलसीदासजी ने संस्कृत में ही रामचरित की परिपाटी तोड़कर हिन्दी में उसे लिखा और प्रचारित किया। स्वयं भगवान भी मनुष्य देह में इसलिये अवतरित होते हैं कि उनके उदाहरण से हर व्यक्ति जीवन के उच्च आदर्शों को व्यवहार में लाना सीख ले।

राम जन्म के उद्देश्य के सम्बन्ध में भी रामचरित मानस में तुलसीदासजी ने यह उद्देश्य स्पष्ट रूप से घोषित किया है। मानस के प्रारम्भिक प्रसंग में ही उमा को राम के अवतार का कारण बताते हुए शिव कहते हैं—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह,
राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं विशद यश,
राम जनम कर हेतु॥

वे असुरों को मारते हैं, देवताओं की स्थापना करते हैं, अपने वेद-पुल (वेद मर्यादा) की रक्षा करते हैं, तथा संसार में अपने निर्मल यश का विस्तार करते हैं। राम जन्म का यही कारण है।

असुरता का विनाश और देवत्व की स्थापना के साथ यश विस्तार का उल्लेख यों अटपटा लग सकता है। भगवान क्या लोकेषणा से ग्रस्त हैं, जो अपनी वाहवाही के लिये यश का विस्तार करते हैं? वस्तुतः बात यह है कि मनुष्य मात्र उनके चरित्र को जाने समझे बिना उसका अनुकरण कर ही नहीं सकता। बिना अनुकरण के उसका लाभ लोगों को नहीं मिल सकता।

अतः उनके दिव्य चरित्र का प्रचार विस्तार हो, तभी उनके जन्म के उद्देश्य, लोक मंगल की पूर्ति होती है। लोक मंगल ही उनके जन्म का उद्देश्य है। यह तथ्य गुरु वशिष्ठजी चित्रकूट में सभा के बीच इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

सत्य सिंधु पालक श्रुति सेतू।
राम जन्म जग मंगल हेतू॥

वे सत्य प्रतिज्ञा और वेद की मर्यादा का पालन करने वाले हैं। श्रीराम जी का अवतार संसार के कल्याण के लिये हुआ है।

राम कैसे जग मंगल करते हैं? जिस काल में अवतरित होते हैं, उसमें तो वे स्थूल रूप से कुछ कर भी सकते हैं? किन्तु उसके बाद क्या उनकी लोक मंगल की क्षमता समाप्त हो जाती है। ऐसा सोचना भ्रामक हैं। वस्तुतः भगवान अपने अवतार काल में जिन गुणों को चरितार्थ करके दिखा देते हैं, उनसे प्रेरणा प्राप्त करके उन्हें अपनाने से लोक मंगल का क्रम चलता रहता है। लौकिक से लेकर पारलौकिक सफलतायें उन गुणों के वरदान स्वरूप पाई जा सकती हैं यह भाव रामकथा की उपयोगिता का वर्णन करते हुए मानस के प्रारम्भ में ही तुलसीदास जी ने व्यक्त किये हैं।

जग मंगल गुन ग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धर्म धाम के॥

राम के गुण समूह लोक मंगल करने वाले, तथा धन, धर्म, आश्रय और मुक्ति देने वाले हैं।

वस्तुतः यह गुण और विशेषतायें भगवान अपने साथ कहीं से लेकर नहीं आते। वे सब स्वतः हैं। किन्तु मनुष्य उनका स्वरूप और उपयोग का ढंग भूल जाते हैं।

अपने अवतार में भगवान उन्हीं गुणों और सद्प्रवृत्तियों को पुनः प्रकाश में ले आते हैं। इस प्रकार से वे लुप्तप्राय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

कल्याणकारी मालूम पुनः जन सुलभ हो जाते हैं । यह तथ्य भाई भरत भी राम को मनाने के लिये चित्रकूट जाते हुए, मार्ग में प्रकट करते हैं । राज महलों के वैभव में रहने वाले, राम वन के पत्तों पर भी उसी सहज भाव से विश्राम करते हुए आगे बढ़ गये हैं, यह देखकर भरत कहते हैं –

राम जनम जग कीन्ह उजागर ।
रूप शील सुख सब गुन सागर ॥

रूप शील सुख और सब गुणों के समुद्र राम ने जन्म लेकर संसार को प्रकाशित कर दिया ।

श्रीराम अपने आचरण से सिद्ध कर देते हैं, कि व्यक्ति की सुख शान्ति में परिस्थितियाँ बाधक नहीं बन सकतीं । यह सिद्धान्त लोग भूल जाते हैं और जड़ परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव में पत्ते की तरह डोलने लगते हैं । भरतजी ने भी राम के आचरण को अपने शब्दों से जन सामान्य के सामने निखार कर रख दिया ।

भगवान राम भी यही चाहते हैं । वे अपने मित्रों को राज्याभिषेक के बाद विदा करते समय यही कहते हैं–

अब गृह जाहु सखा सब
भजेहु मोहि दृढ़ नेम ।
सदा सर्वगत सर्वहित
जानि करेहु अति प्रेम ॥

हे मित्र गण ! अब सभी लोग घर जाओ, वहाँ दृढ़ नियम पूर्वक मुझे भजते रहना । मुझे सदा सर्वव्यापक और सबका भला करने वाला जानकर बहुत प्रेम करना ।

प्रभु स्वयं सर्वहितैषी हैं तो उनके भक्त भी वैसे ही होंगे । तथा उनकी कथा का उद्देश्य भी निश्चित रूप से सबका हित ही होना चाहिये । तुलसीदास जी की भी यही मान्यता थी । कविता ही नहीं मनुष्य को प्राप्त यश और अन्य विभूतियों की भी उपयोगिता लोकहित में लग जाने में ही है । मानस के वन्दना प्रसंग में ही उन्होंने स्पष्ट लिखा है–

कीरति भनिति भूति भलि सोई ।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई ॥

कीर्ति, (कविता या साहित्य) और विभूति (ऐश्वर्य) वही अच्छी है जो गंगा के समान सबका हित करने वाली हो ।

काव्य रचना का यह मापदण्ड सामने रखकर उन्होंने रामचरित मानस की रचना उद्देश्य पूर्ण ढंग से योजना बद्ध रूप में की है । मात्र अपने मन की तरंग में यह सब नहीं लिख डाला है । रामचरित मानस विशेष रूप में विशेष ढंग से तथ विशेष उद्देश्य के लिए रचा गया है । वन्दना प्रसंग के बाद कथा प्रकरण प्रारम्भ करने के पूर्व वे लिखते हैं–

जस मानस जेहि विधि भयउ,
जग प्रचार जेहि हेतु।
अब सोइ कहउ प्रसंग सब
सुमिरि उमा वृषकेतु॥

रामचरित मानस जैसा है, जिस प्रकार तैयार हुआ तथा जिस कारण संसार में इसका प्रचार किया गया, अब वही सब वर्णन उमा महेश्वर का स्मरण करके करता हूँ ।

तुलसीदास जी ने देखा कि लोग संसार में भ्रमित होकर ही अनेक प्रकार के दुख उठाते हैं, पतन के गर्त में गिर जाते हैं । भगवान श्री राम के प्रेरक चरित्र से उनके जीवन में चरितार्थ होने वाले उदाहरणों को देखकर लोगों का भ्रम दूर हो सकता है तथा वे अपने कल्याण का मार्ग पकड़ सकते हैं । इसलिए उन्होंने रामकथा का सहारा लिया । किन्तु लोगों को सही दिशा मिल सके, इसलिए अपनी विवेक दृष्टि उन्हें ठीक करना आवश्यक लगा । इसके लिऐ उन्होंने गुरु का सहारा लिया । गुरु के प्रसाद से अपनी विवेक दृष्टि परिष्कृत करके उन्होंने संसार के कष्ट से मुक्ति दिलाने वाली राम कथा लिखी । वन्दना प्रसंग में ही उन्होंने लिखा है –

तेहि कर विमल विवेक विलोचन ।
बरनउ राम चरित भव मोचन ॥

गुरु-पंद-रज से विवेक नेत्र निर्मल बनाकर मैं अज्ञान को दूर करने वाले व ससांर रूपी बन्धन से छुड़ाने वाले श्रीराम के चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ ।

श्रीराम के उज्ज्वल चरित्र में वह क्षमता उन्होंने देखी कि वह भव रोग से जन-जन को मुक्त करा सकता है । सद्गुरु की तरह भटकते हुओं का मार्गदर्शन देकर उन्हें लक्ष्य की ओर गतिशील बना सकता है । इसीलिए उन्होंने इसको माध्यम बनाया । अपनी इस मान्यता को उन्होंने कथा भूमिका प्रकरण में स्पष्ट किया है । श्रीराम चरित्र और उनके गुण समूह के सम्बन्ध में वे लिखते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सदगुरु ज्ञान विराग जोग के ।
विबुध बैद भव भीम रोग के ॥

श्रीराम के गुण समूह ज्ञान, वैराग्य और योग के सदगुरु हैं तथा भयंकर भव रोग (अज्ञान) के निवारण के लिए देव वैद्य (अश्विनीकुमार) हैं ।

वे चाहते हैं कि श्रीराम का चरित्र गंगा जल की तरह प्रवाहित हो । उनका विश्वास है कि इस जल का ठीक प्रकार उपयोग किया जाय तो वह मनुष्य को ताप पहुँचाने वाले तापों दोषों को दूर कर सकता है और सुख-शान्ति देने वाले निर्मल विवेक और वैराग्य को बढ़ा सकता है लिखा है—

काम क्रोध मद मोह नसावन ।
विमल विवेक विराग बढ़ावन ॥

यह रामचरित रूपी जल काम, क्रोध मद, मोह आदि विकारों को नष्ट करता है तथा निर्मल विवेक तथा वैराग्य भावना की वृद्धि करता है ।

यही मान्यता तत्त्व ज्ञानी श्री कागभुशुण्ड जी की है । उन्होंने गरुड़जी को श्रीराम कथा की उपयोगिता बतलाते हुए इन्हीं विचारों की पुष्टि की है—

बिरति विवेक भगति दृढ़ करनी ।
मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी ॥

यह कथा वैराग्य विवेक और भक्ति को दृढ़ करने वाली तथा मोह रूपी नदी के लिए सुन्दर नौका के समान है ।

इस सबसे स्पष्ट होता है कि रामकथा का विकास और विस्तार लोक कल्याण की पुण्य भावना से ही किया गया है । इस प्रयास में तुलसीदास जी को अनेक परंपरागत रुढ़िवादी मान्यताओं का खण्डन करना पड़ा और उस कारण उपहास और विरोध का भी सामना करना पड़ा । परन्तु वे अविचलित रहे । रामकथा के लोक मंगलकारी उद्देश्य को न समझने वाले उनकी दृष्टि में मूर्ख या दुष्ट हैं । उनके उपहास से वे निरुत्साहित नहीं और उत्साहित ही हुए । उनकी भावना की झलक नीचे की चौपाई में मिलती है—

खल परिहास होइ हित मोरा ।
काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥

यदि दुष्ट मेरे लोक मंगल के कार्य की निन्दा करते हैं, तो इससे मेरी भलाई ही होगी । क्योंकि कौआ मधुर कंठ वाली कोयल को कठोर बोलने वाली कहता ही है ।

इसलिए उन्होंने कथा के माध्यम से संसार के हित के अपने प्रयास में कमी नहीं की । कथाओं का प्रयोग बहुधा इसी लक्ष्य को ध्यान में रख कर होता ही रहा है । जीवन कला के विशेषज्ञ ऋषि महर्षि उपयुक्त अवसरों पर सामूहिक रूप से योजनाबद्ध ढंग से यह कार्य किया करते थे । रामचरितमानस में कथा आरम्भ के समय माघस्नान के समय प्रयाग में एक ऐसे ही समारोह का विवरण मिलता है । वहाँ ऋषि एकत्रित होते हैं और उपयोगी चर्चा करते हैं—

बह्म निरूपन धरम बिधि,
बरनहिं तत्व बिभाग ।
कहहिं भगति भगवंत कै,
संजुत ज्ञान बिराग ॥

ब्रह्म विद्या, कर्तव्य परायणता तथा भौतिक समस्याओं के समाधान और ज्ञान वैराग्य सहित भगवान की भक्ति के सम्बन्ध में चर्चा करते थे ।

स्पष्ट है कि वह चर्चा मात्र मनोरंजन या पुण्यार्जन की दृष्टि से नहीं होती थी । बल्कि जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों का उसमें व्यावहारिक समावेश होता था । जीवन के सिद्धान्तों को घटना-क्रम में बांधकर कथा रूप में प्रस्तुत करने से उसे सामन्य बुद्धि के व्यक्ति भी भली प्रकार समझ लेते हैं । इसलिए कथा का माध्यम विशेष रूप से पकड़ा जाता था । किसी भी घटना या पात्र को आधार बनाकर संसार के हित की दृष्टि से कथा कही जाती थी । कथा की इस विधि का स्पष्ट उल्लेख वन प्रसंग में सती अनुसुइया और सीता के सम्वाद में मिलता है । अनुसुइया जी कहती हैं—

सुनु सीता तव नाम सुमिरि,
नारि पतिव्रत करहिं ।
तोहि प्रान प्रिय राम,
कहिउँ कथा संसार हित ॥

सुनो सीता तुम्हारा आचरण तो ऐसा है कि उसका स्मरण करके संसार की महिलायें अपने कर्तव्य को समझेंगीं । श्रीराम तुम्हें प्राण के समान प्रिय हैं किन्तु मैंने संसार के हित के लिए कथा कही है ।

पत्नी को सहधर्मिणी रूप से पति की पूरक कैसे बनना चाहिए, यह बात संसार को अनुसुइया ने सीता के माध्यम से समझाई । इसी प्रकार कथा में विभिन्न व्यक्तिगत तथा सामाजिक आदर्शों का संयोग करना, उन्हें उभारना कुशल कथाकार जानते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं। कथा को लोक मंगल में समर्थ बनाने के लिए तुलसीदास जी ने भी इन परिस्थितियों के अनुरूप आदर्शों को कथा में बड़ी खूबी से उभारा है। जैसे अधिकार प्राप्त करके भी शासक मनमानी न करे। विचारकों और अनुभवी व्यक्तियों से परामर्श करके ही किसी कार्य का निर्णय करें। यह बड़ा उपयोगी सिद्धान्त है। राजा दशरथ यही करते हैं। राम के राज्याभिषेक के लिए वे गुरु से आज्ञा लेने के बाद राज्य के अनुभवी समाज से भी परामर्श करते हैं—

जौ पाँचहि मत लागै नीका।
करहु हरषि हियँ रामहिं टीका॥

यदि पंचों को यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचन्द्र को युवराज तिलक कीजिये।

समाज में अधिकारी वर्ग और कर्मचारियों का अपना-अपना स्थान सदैव रहता है। आदर्श समाज में उनका क्या रूप हो, इसे बड़े सुन्दर ढंग में कथा में प्रस्तुत किया गया है। चित्रकूट से श्रीराम भरत को राजव्यवस्था के बारे में समझाते हुए कहते हैं कि अधिकारी और कर्मचारियों में कैसा तालमेल होना चाहिए। वे कहते हैं—

सेवक कर पद नयन से,
मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति की रीति सुनि,
सुकवि सराहहिं सोइ॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्र के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदास जी कहते हैं कि स्वामी सेवक की प्रीति की ऐसी रीति सुनकर सुकवि उसकी प्रशंसा करते हैं।

तुलसीदास जी का स्पष्ट मत है कि ऐसे ही सम्बन्धों की सराहना की जानी चाहिए। जिस प्रकार के कार्यों की सराहना होती है उनका अनुकरण करने की प्रवृत्ति जनसाधारण में बढ़ती है। सच्चे साहित्यकारों पर ऐसे आदर्शों की सराहना करके समाज को उस दिशा में प्रोत्साहन देने का उत्तरदायित्व होने का संकेत भी इस दोहे में किया गया है।

कर्मचारियों में अनैतिक कमाई करने की प्रवृत्ति भी बड़ी हानिकारक है। मानस में आदर्श सेवकों को इस दुर्गुण से बिल्कुल मुक्त रखा गया है। जनक जी के दूत धनुषयज्ञ में श्रीराम जी की सफलता का समाचार देने अयोध्या पहुँचते हैं। वहाँ राजा शुभ समाचार देने की खुशी में कुछ धन देने लगते हैं। किन्तु वे जिस कार्य के लिऐ वेतन पाते हैं, उसके बदले कुछ भी लेना तो क्या सुनना भी अनीति मानते हैं—

कहि अनीति ते मूँदहि काना।
धरम विचारि सबहिं सुख माना॥

न्योछावर लेना अनीति है, ऐसा कहकर जनकपुरी के दूतों ने अपने कान बन्द कर लिये। अर्थात् पुनः आग्रह सुनने से भी इन्कार कर दिया। उनका आचरण धर्म के अनुरूप देखकर सभा वालों को प्रसन्नता हुई।

समाज में विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्त्व व्यक्तियों पर होता है। परन्तु उनके ठीक-ठीक संचालन के लिए परस्पर ताल-मेल आवश्यक है। यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य करना ऋषियों का कार्य है। किन्तु दुष्ट प्रकृति के मनुष्य उसमें बाधा पैदा करते हैं। ऋषि वह कार्य भी करें तथा दुष्टों से सुरक्षा के लिए भी वही खड़े हों तो कार्य का स्तर गिर जाना स्वाभाविक है। अतः क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए राम एवं लक्ष्मण उन्हें निर्भय होकर यज्ञ करने के लिए कहकर स्वयं सुरक्षा के लिए खड़े हो जाते हैं—

होम करन लागे मुनि झारी।
आपु रहे मख की रखबारी॥

भगवान राम के वचनों को सुनकर समस्त मुनियों ने हवन करना प्रारम्भ कर दिया और भगवान राम यज्ञ की रक्षा (रखवाली) के लिए उपस्थित रहे।

ऐसा आदर्श तालमेल जहाँ भी बन पड़ेगा वहाँ चमत्कारी परिणाम सामने आना स्वाभाविक है। श्रीराम इस कला में निपुण हैं। वे सामान्य वनचरों का आदर्शवादी संगठन खड़ा कर लेते हैं और उनमें तालमेल पैदा करके समुद्र पर पुल बाँधने जैसा अद्भुत कार्य सम्पन्न करा लेते हैं। पुल किस प्रकार बन रहा है इसका विवरण देखें—

अति उतंग गिरि पादप,
लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहिं
रचहिं ते सेतु बनाइ॥

बानर बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षों को खेल-खेल में उखाड़ लेते हैं और ला-लाकर नल-नील को देते हैं। वे अच्छी तरह गढ़ कर सेतु को तैयार करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बड़े से बड़ा काम तालमेल के साथ वह भी बिना किसी तनाव के खेल की तरह किया जाना सामाजिक और व्यक्तिगत दृष्टि से बड़ा उच्चस्तरीय गुण माना जाता है। रीछ वानरों में यह गुण आ गया तो उन्होंने चमत्कार कर ही दिखाया। खेल खेल की तरह कार्य करने का यह अर्थ नहीं कि कार्य का स्तर घट जाय। पुल पूरा होने पर उसकी दृढ़ता देखकर श्रीरामचन्द्रजी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो जाते हैं–

बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा।
देखि कृपानिधि के मन भावा॥

वानरों ने पुल बहुत सुदृढ़ बनाया। उसे देखकर दया के सागर श्रीराम जी के मन को बहुत अच्छा लगा।

वह श्रेष्ठ भावना तभी विकसित होती है जब परस्पर स्नेह हो। श्रीराम छोटे बड़े का भेद न रखकर सदैव अपने स्नेह से सबको सन्तुष्ट करते रहे। चित्रकूट निवास के समय सामान्य वनचरों के प्रति उनका व्यवहार इस चौपाई से प्रकट होता है।

राम सकल बनचर तब तोषे।
कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥

तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेम भरे कोमल वचन सुनाकर उन सब वन में रहने वालों को सन्तुष्ट किया।

जो भी सामाजिक कार्यकर्ता यह गुण अपनाएगा वह सबका स्नेह पाता हुआ बराबर प्रगति करता रहेगा।

राम ही नहीं मानस के सभी विचारशील पात्र समता के उपासक हैं। जन्म से छुआछूत या छोटे-बड़े के भाव उनमें नहीं हैं। निषादराज गुह को भरतजी उसके गुणों के आधार पर अपने भाई लक्ष्मण की तरह हृदय से लगाकर हर्षित होते हैं।

करत दंडवत देखि तेहि,
भरत लीन्ह उर लाय।
मनहु लखन सन भेट भई
प्रेम न हृदय समाय॥

निषादराज को दंडवत करते देखकर भरतजी ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। भरतजी के हृदय में प्रेम समा नहीं रहा है। उन्हें लगा कि मानो लक्ष्मण जी से ही उनकी भेंट हो गई है।

गुरु वशिष्ठ के सम्बन्ध में सभी की मान्यता बहुत ऊँची थी। निषाद संकोचवश उनसे दूर से ही प्रणाम करता है। किन्तु वे उसे जबरदस्ती पकड़कर हृदय से लगा लेते हैं।

राम सखा ऋषि बरबस भेंटा।
जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

ऋषि वशिष्ठ जी ने राम सखा जानकर निषादराज को जबरदस्ती हृदय से लगा लिया। मानो जमीन पर बिखरे हुये प्रेम को समेट लिया है।

यही आदर्श अयोध्या के जनजीवन में दिखाई देता है। सरयू नदी के किनारे सुन्दर घाट बना है, जिसमें हर जाति के व्यक्ति को स्नान करने का समान अधिकार है।

राज घाट सब ही बिधि सुन्दर।
मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर॥

राजघाट सब प्रकार सुन्दर ढंग से बनाया गया है, जहाँ चारों वर्ण के नागरिक स्नान करते हैं।

भेद भाव अवर्ण-सवर्णों की तरह नर-नारियों में भी देखा जाता है किन्तु रामायण के पात्रों में वह नहीं। नारी पर पर्दा आदि का प्रतिबन्ध नहीं है। उन्हें पवित्र दृष्टि से देखने की परम्परा है।

लंका विजय के बाद विभीषण के सेवक सीताजी को बन्द पालकी में लाते हैं, तो श्री रामचन्द्रजी उन्हें खुले रूप में पैदल ही लाने की आज्ञा देते हैं। वानरों से वे संकेत करते हैं कि सीता को मातृभाव से देखें।

देखहुँ कपि जननी की नाई।
बिहँसि कहा रघुनाथ गुसाई॥

बन्दर सीताजी को माता की तरह देखें श्रीराम ने हँसकर ऐसा कहा।

वानर चंचल प्रवृत्ति के होते हैं। श्रीराम का तात्पर्य है कि नारी पर प्रतिबन्ध न लगाया जाय, देखने वालों की दृष्टि पर अंकुश लगाया जाना उसे शुद्ध बनाना आवश्यक है।

तुलसी और पुष्पों के उपयोगी पौधों को लगाना स्वास्थ्य एवं सुरुचि की दृष्टि से बड़ा उपयोगी है। अयोध्या में यह कार्य विशाल स्तर पर स्वाभाविक ढंग से होते हैं। उत्तर कांड में अयोध्या के वर्णन में लिखा है–

तीर तीर तुलिसिका सुहाई।
बृन्द बृन्द बहु मुनिन्ह लगाई॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

.सरयू के किनारे-किनारे सुन्दर तुलसी के पौधों के झुंड के झुंड मुनियों ने लगा रखे हैं –

सुमन वाटिका सबहि लगाईं ।
विविध भाँति कर जतन बनाईं ॥

सब लोगों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के फूलों के बगीचे यत्न करके लगा रखे हैं ।

कथा की तरह चित्रों के माध्यम से श्रेष्ठ विचारों तथा भावनाओं का जागरण करना बड़ा प्रभावशाली ढंग है । अयोध्या में घर-घर यह विधि उच्च स्तर पर अपनायी जाती है । जन सामान्य से लेकर मुनि, चिन्तकों तक के मन उनमें लग जाते हैं तथा उनके माध्यम से श्री राम के श्रेष्ठ चरित्र से प्रेरणा पाते हैं ।

चारु चित्रशाला गृह गृह, प्रति लिखे बनाइ ।
राम चरित जे निरखि मुनि, ते मन लेहिं चुराइ ॥

घर-घर में सुन्दर चित्रों की चित्रशालायें बनी हैं जिनमें श्रीराम के चरित्र को देखकर मुनियों के मन भी खो जाते हैं ।

इस प्रकार की श्रेष्ठ सामाजिक प्रवृत्तियों का समावेश होने से लोग उनके कथन, श्रवण एवं चिंतन से स्वयं उसी विचार में ढलते हैं तथा उसी अनुसार आचरण करते हैं । फलस्वरूप आदर्श समाज की स्थिति बन जाती है । राम कथा से प्रेरणा लेकर उनके गुणों पर चलकर समाज जिस स्थिति में पहुँच जाता है उसका उल्लेख रामराज्य वर्णन में मिलता है –

सब निर्दंभ धर्म रत पुनी ।
नर और नारि चतुर सब गुनी ॥

सब दंभ रहित हैं धर्म पर लगे हुए और पुण्यात्मा हैं । नर और नारी सब चतुर और गुणवान हैं ।

ऐसे ही श्रेष्ठ व्यक्तित्त्व सुखी समुन्नत समाज के लक्ष्य तक जन-जन को पहुँचाने के लिये राम कथा का विकास और प्रचार किया गया है । हम इसका महत्त्व समझें तथा लाभ उठायें, तो स्वयं भी धन्य हो जावें तथा तुलसी जैसे संतों की आत्मा भी संतोष पा सके ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव जीवन की दुर्लभता और उसका बोध

वह कथा बहुत प्रचलित है जिसमें एक बालक के गले में कीमती हीरों का कंठा पड़ा था, किन्तु उसकी उपयोगिता से अनभिज्ञ होने के कारण वह दीन दुखी बना भीख माँगता फिरता था। आज मनुष्य के जीवन की दशा भी बिल्कुल वैसी ही है। कष्ट, पीड़ा और पतन के गर्त में पड़ा मनुष्य बुरी तरह छटपटा रहा है। सोचता है, कहीं से इससे मुक्ति का कोई मार्ग मिल जाय। कभी व्यवस्था की शिकायत करता है, कभी नेताओं से आशा लगाता है, कभी बाबाजी तो कभी धनवानों के सामने गिड़गिड़ाता है, और कभी भगवान से प्रार्थना करता है। किन्तु मनुष्य शरीर के रूप में उसे जो दुर्लभ निधि प्राप्त है, उनके उपयोग के बारे में उसे पाने के अपने सौभाग्य के बारे में कभी सोचता तक नहीं। वस्तुतः इस तथ्य को समझे बिना कोई बाहरी सहायता उसका भला कर भी नहीं सकती।

मनुष्य शरीर जैसी मशीन आज तक कोई वैज्ञानिक नहीं बना सका। हाथ, पैर, कमर, गर्दन आदि की रचना किस सावधानी से की गई है, देखकर आश्चर्य होता है। कान के ध्वनि यन्त्र, आँख के कैमरे तथा दिमाग के टेपरिकार्डर व कम्प्यूटर के आगे वैज्ञानिक आज भी नतमस्तक हैं। ये स्थूल विशेषताएँ तो मनुष्य के विचार क्षेत्र और भाव क्षेत्र की विशेषताओं और क्षमताओं के आगे नगण्य सी दीखती है।

मनुष्य जीवन की यह महत्ता सर्वमान्य है। प्राचीन व अर्वाचीन हर समय के विचारकों और मर्मज्ञों ने इसका समर्थन किया है। रामचरित मानस में भी यही प्रतिपादन स्पष्ट रूप से मिलता है। काकभुशुण्डिजी राम कथा के मर्मज्ञ और ज्ञानियों में अग्रणी माने जाते हैं। उत्तर काण्ड में कहते हैं—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही।
जीव चराचर जाचत जेही॥

नर तर के समान कोई देह नहीं है। चर-अचर समस्त जीव उसकी याचना करते हैं।

संसार के सभी जीव जिस शरीर को पाने की आकांक्षा करते हैं वह कोई सामान्य उपलब्धि नहीं कही जा सकती। जिस विद्यालय में विद्यार्थी के विकास की श्रेष्ठ व्यवस्था हो, उसमें प्रवेश की आकाँक्षा सभी करेंगे यह स्वाभाविक है। स्थावर एवं जंगम सभी प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य शरीर श्रेष्ठ है, यह काकभुशुण्डिजी का मत है। किन्तु स्वयं भगवान श्रीराम मनुष्य शरीर का महत्त्व इससे भी अधिक आंकते हैं। उत्तरकांड में राज्याभिषेक के बाद वे प्रजाजनों को उपदेश देते हुए कहते हैं—

बड़े भाग मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थिन्हिं गावा॥

बड़े सौभाग्य से यह नर शरीर मिला है। सभी ग्रन्थों ने यही कहा है कि यह शरीर देवों को भी दुर्लभ है।

उनके कथनानुसार मनुष्य शरीर देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। देवताओं और देवलोक की क्षमताओं को लोग बड़े सौभाग्य का विषय मानते हैं। किन्तु भगवान राम मनुष्य शरीर को उन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घोषित करते हैं। उसका कारण भी बतलाते हैं। देव योनि केवल भोग योनि है। उसमें अपने कर्म के अनुसार सुखोपभोग भर पाये जा सकते हैं। मनुष्य शरीर के माध्यम से जीव के विकास के मार्ग अधिक प्रशस्त हो सकते हैं। मनुष्य जन्म की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं—

नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनी।
ग्यान बिराग भगति सुभदेनी॥

यह मनुष्य योनि नरक, स्वर्ग और मोक्ष की सीढ़ी है, शुभ ज्ञान, वैराग्य और भक्ति को देने वाली है।

देवता केवल स्वर्ग के सुख भोग सकते हैं। अपनी स्थिति से उठना उनके लिये सङ्ग नहीं। वे एक तार से वहाँ बँधे जकड़े रहते हैं, किन्तु मनुष्य जीवन के हर क्षेत्र में विकास करने का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। यह लम्बी सीढ़ी की तरह नरक, स्वर्ग और मोक्ष को जोड़ने की क्षमता रखता है। किसी भी स्तर पर इसके सहारे पहुँचा जाना सम्भव है। यही नहीं ज्ञान, वैराग्य और भक्ति जैसी अनुपम विभूतियाँ इसमें उपलब्ध हो सकती हैं।

भवसागर को बड़ा दुखदायी और भयंकर कहा जाता है। उसमें पड़कर जीव भयंकर कष्ट पाते हैं। किन्तु मनुष्य शरीर उससे भी उबर सकता है। भगवान राम प्रजाजनों से कहते हैं—

नर तन भव बारिधि कहु बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह मनुष्य देह संसार सागर (से तरने) के लिये जहाज है । मेरी कृपा ही अनुकूल हवा है ।

बेड़े में बैठा हुआ व्यक्ति समुद्र से डरता नहीं, वह तो उसका आनन्द लेता है । बेड़ा उस विशाल नाव को कहते हैं, जिसके डूबने का अधिक खतरा नहीं रहता । मनुष्य जीवन की विशेषताओं को यदि ठीक प्रकार गठित किया जाय तो वे विशाल बेड़े जैसी बन सकती हैं ।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य शरीर द्वारा भक्ति भी पायी जा सकती है । सदाचारी भक्त पर भगवान का अनुग्रह रहता है । इसकी तुलना अनुकूल हवा से दी गई है । बेड़े पर पाल चढ़ा दिया जाय और हवा अनुकूल हो तो लम्बी यात्रा भी बड़ी तेजी से शीघ्र पूरी हो जाती है । डाँड चलाने में निरर्थक कठिन श्रम भी नहीं करना पड़ता । मनुष्य जन्म के माध्यम से लक्ष्य सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है । किन्तु शर्त एक है वह है, दिशा सही बनी रहे । उसकी भी व्यवस्था मानव जीवन में है । प्रभु कहते हैं—

करनधार सद्गुरु दृढ़ नावा ।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा ॥

सद्गुरु इस दृढ़ नाव के खेने वाले हैं । इस प्रकार कठिनाई से मिलने वाले साधन सुलभ होकर मनुष्य को प्राप्त हो जाते हैं ।

नाव को सही दिशा देने वाला कर्णधार कहलाता है । मानव जीवन रूपी दृढ़ नाव का कर्णधार सद्गुरु होता है । सद्गुरु अंतः करण स्थित उस ईश्वरीय चेतना को कहते हैं, जो मनुष्य के साथ सतत् रह कर उसे सही निर्देश देती रहती है । उसके निर्देश को सुनने और मानने से इस दुर्लभ साज-सज्जा का लाभ सुगमता से पाया जा सकता है ।

इस प्रकार मनुष्य जीवन के साथ उच्चतम लक्ष्य को पहचानने तथा उस तक पहुँचने के सभी साधन जुड़े हुए हैं । यह सब पाकर भी जो व्यक्ति प्रमादवश केवल शिकायतों का रोना रोता रहे और उसका लाभ न उठाये, उसे भगवान धिक्कारते हुए कहते हैं—

जो न तरै भव सागर,
नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मंदमति,
आत्माहन गति जाइ ॥

जो नर ऐसे साधन दृढ़ नाव, अनुकूल हवा और कर्णधार पाकर भी संसार सागर से न तरे कृतघ्न और दुर्बुद्धि है तथा आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है ।

प्राप्त सुविधाओं, अनुदानों को कुछ न मानकर देने वाले से शिकायत करने वाला व्यक्ति कृतघ्न कहा जाता है । सारे साधन होते हुए भी उनका लाभ न उठा पाने से अधिक बुद्धिहीनता और क्या हो सकती है ? मनुष्य शरीर की विभूतियों का उपयोग न करना अर्थात् उन्हें नष्ट कर देने का अर्थ है मनुष्य जन्म खो देना । इसलिये इसे भगवान ने आत्महत्या जैसा पाप बतलाया है ।

मनुष्य जीवन की उपेक्षा करने वाले सम्बन्ध में इस प्रकार कठोर शब्दों का प्रयोग अनुचित नहीं । अन्जान व्यक्ति भूल करे तो क्षम्य हैं किन्तु जानकार, बुद्धिमान व्यक्ति की भूल क्षमा नहीं की जा सकती । भगवान राम चित्रकूट प्रसंग में भरत जी से कहते हैं—

हित अनहित पसु पच्छिउ जाना ।
मानुष तन गुन ग्यान निधाना ॥

मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचान लेते हैं । मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भण्डार है ।

यह भारी भूल है । मनुष्य जीवन की महत्ता स्थूल शरीर के कारण नहीं, सूक्ष्म दिव्य अन्तःकरण के कारण है । शरीर की दृष्टि से तो मनुष्य शरीर हीन है । बालि वध के प्रसंग में तारा को समझाते हुए श्रीराम यही मन्तव्य प्रगट करते हैं—

छिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित अति अधम सरीरा ॥

श्रीराम ने कहा पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पाँचों तत्त्वों से बना यह शरीर बहुत अधम हैं ।

प्रश्न उठता है कि एक जगह वे कहते हैं बड़े भाग मानुस तन पावा, फिर उसी को अधम शरीरा क्यों कहा ? जब केवल शरीर तक ही मनुष्य को सीमित मान लिया जाय तो वह गलत है । किन्तु शरीर के माध्यम से ही मानवीय चेतना कार्य कर पाती है । अतः वह अनुपम साधन है । मानवीय चेतना द्वारा संचालित शरीर ही वस्तुतः मनुष्य शरीर है । स्वार्थ रत, पाशविक दृष्टिकोण से संचालित शरीर केवल आकार में मनुष्य जैसे होने पर भी श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता । पंचभूतों से बनी यह देह तो विभिन्न विकारों से ग्रस्त होने के कारण हीन है । किन्तु दिव्य चेतना युक्त होने से ही महान है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अयोध्या काण्ड में दशरथ मरण के बाद शोकाकुल भरत को समझाते हुए वशिष्ठ जी उन व्यक्तियों का वर्णन करते हैं, जो अपने कर्तव्य न निभा पाने के कारण शोचनीय कहे जा सकते हैं । वे भी केवल अपने शरीर स्वार्थ तक सीमित रहने वालों को हर प्रकार निकृष्ट मानते हैं—

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी।
निज तन पोषक निरदय भारी॥

दूसरों की हानि करने वाला सब प्रकार से सोचने योग्य है, जो अपने शरीर के पोषण में लगा रहता है और दूसरों के प्रति निर्दयता का भाव रखता हैं ।

वशिष्ठजी मनुष्य देहधारी होने के कारण हर व्यक्ति को श्रेष्ठ नहीं मानते । जिसमें मानवीय अन्तःकरण नहीं, जो मानवीय संवेदनाओं से हीन है, ऐसा व्यक्ति हर प्रकार से शोचनीय है । अर्थात् ऐसा व्यक्ति वस्तुतः मनुष्य कहलाने के योग्य ही नहीं । क्योंकि वह मनुष्य जीवन के मूल तत्त्व को ही नहीं देख पाता ।

यह भी एक आश्चर्य की बात है कि जिन विशेषताओं के कारण मनुष्य मनुष्य कहलाता है, उन्हीं को देख समझ नहीं पाता । इसके लिये मानसकार का मत है कि वह देखता तो हैं पर दृष्टि दोष के कारण गलत देखता है । यह भ्रम कैसे होता है, इसका बड़ा उपयुक्त उदाहरण उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि गरुड़ सम्वाद में मिलता है ।

काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

नयन दोष जा कहँ जब होई।
पीत बरन ससि कहुँ कह कोई॥

जब किसी को नेत्रदोष (पीलिया) हो जाता है तब वह चन्द्रमा को पीले रंग का कहता हैं ।

सारा संसार चाँदनी को शुभ्र कहता है, किन्तु पीलिया ग्रस्त उसे पीला ही कहे जाता है । इसी प्रकार महापुरुष, शास्त्र आदि सभी मनुष्य जीवन में उसके अन्तःकरण को प्रधान कहते हैं । किन्तु मनुष्य उसके बाह्य, सांसारिक रूप को ही प्रधान कहता रहता है । विचारपूर्वक इस मान्यता को बनाये बिना यथार्थ का बोध नहीं हो सकता ।

राम वन गमन प्रसंग में निषाद श्रीराम जानकी को कुशों पर सोता देखकर दुःखी हो उठता है, तो लक्ष्मण जी उसे समझाते हैं कि यह जो स्थूल दृष्टि से दिखाई देता है, इसे ज्यों का त्यों नहीं मान लेना चाहिये । देख सुनकर उस पर मनन चिन्तन करने से पता लग जाता है कि यह बाह्य दृश्य रूप मोह मूलक है परमार्थ मूलक नहीं ।

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं ।
मोह मूल परमारथ नाहीं ॥

उपर्युक्त सभी व्यवहार जो देखने, सुनने एवं मन में चिन्तन करने से आते हैं इन सबकी जड़ मोह (अविवेक) ही है । परमार्थ मार्ग में इन्हें महत्त्व नहीं मिलता ।

मोह आवरण वस्तुतः विवेक दृष्टि के लिये दृष्टि दोष जैसा ही है । उसे हटाये बिना मनुष्य की बुद्धि सही दर्शन और निर्णय नहीं कर पाती । कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने के पूर्व अपने विवेक रूपी नेत्रों को स्वच्छ बनाना आवश्यक हो जाता है । स्वयं तुलसीदास जी रामचरित मानस लिखने के पूर्व अपने विवेक नेत्रों को निर्मल बनाते हैं, तभी रामकथा को इस रूप में प्रस्तुत कर पाते हैं, जो जन जन को भव बाधा से मुक्ति दिला सके—

तेहि कर बिमल बिबेक बिलोचन ।
बरनऊ राम चरित भव मोचन ॥

गुरु-पद-रज से विवेक नेत्र निर्मल बनाकर मैं अज्ञान को दूर करने वाले व संसार रूपी बन्धन से छुड़ाने वाले श्रीराम के चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ ।

सामान्य रूप से लोग इसी भ्रान्ति में रहते हैं कि गुरु अथवा भगवान हमारे कष्टों को अपने पुरुषार्थ से दूर कर दें । किन्तु तुलसीदास जी उनके प्रभाव से अपने विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल बनाना उचित समझते हैं यही लाभप्रद भी है । गुरु वर्तमान के एकाध कष्ट को दूर कर भी दें तो उससे सारे जीवन की समस्या कैसे सुलझेगी ? विवेक दृष्टि शुद्ध हो जाने पर सही कारण जानते और उसके समाधान का सही मार्ग समझने की क्षमता व्यक्ति में आ जाती है । फिर मनुष्य अपने पुरुषार्थ से, सूझ-बूझ से स्वयं ही हर समस्या का समाधान निकाल सकता हैं ।

अस्तु निर्मल विवेक प्राप्त करना आवश्यक है । उसके अभाव में क्षमताएँ कल्याण की जगह अकल्याण ही कर सकती हैं । खरदूषण का वध हो जाने पर सूर्पणखा रावण के पास जाती है तथा उसे सावधान करती हुई सफलता के लिये विवेक की प्रधानता का उल्लेख करती हुई कहती है—

विद्या बिन बिबेक उपजाएँ ।
श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ ॥

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़ने अथवा पाने से परिणाम में श्रम ही हाथ लगता है, उसका लाभ नहीं होता।

रावण विद्वान था, सामर्थ्य और वैभव की भी कमी न थी। किन्तु विवेक की कमी के कारण ही वह पतन की ओर स्वयं भी जा रहा था तथा अपने परिजनों को भी ले जा रहा था। विद्या प्राप्ति का उद्देश्य होता है— जीवन का सदुपयोग। यदि वह पूरा न हो सके तो विद्या पढ़ने और पाने का जो श्रम हुआ, उसकी सार्थकता नहीं हो पाती।

मनुष्य में इतना विवेक होता है कि यदि वह धैर्यपूर्वक विचार करे तो सही निर्णय पर पहुँच सकता है। किन्तु उतावली में वह बिना सोचे ही निर्णय कर लेता है। इतने पर भी साथी सहयोगी उसे स्मरण दिला सकते हैं किन्तु व्यक्ति अपने निर्णय को अपने सम्मान का प्रश्न मानकर उसी पर अड़ जाता है। रावण यही करता रहा उसने किसी की नहीं सुनी। किन्तु निषादराज ने वह भूल नहीं की। अयोध्या काण्ड में भरत जी श्रीराम को मनाने के लिये चित्रकूट यात्रा करते हैं। साथ में सेना भी थी। गुह ने समझा भरत राम को सताने जा रहे हैं। अतः युद्ध की तैयारी करने लगे। तभी एक वृद्ध ने सलाह दी कि निर्णय में जल्दबाजी न करें। पहले भरत का मन टटोलें, फिर फैसला करें। गुह ने उसकी बात मानी।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा।
सहसा करि पछिताहिं विमूढ़ा॥

गुह ने कहा बूढ़े तुम ठीक कहते हो। मूर्ख बिना सोचे-बिचारे अचानक कोई कार्य करके बाद में पश्चाताप करते हैं।

लोग सोचते हैं कि अपने निर्णय को बदलने से लोगों में बेइज्जती होगी। किन्तु जल्दबाजी में वे यह नहीं सोच पाते, कि जब गलत आचरण हो जायेगा तब कितना असम्मान सहना पड़ेगा। गुह ने समझदारी की, विवेक को प्रधानता दी और एक भयंकर भूल से बचाव हो गया।

चित्रकूट में लक्ष्मण भी भरत को ससैन्य आते देखकर उत्तेजित हो उठे। तब आकाशवाणी से उनके शौर्य, साहस तथा आदर्श निष्ठा की सराहना करते हुए देवताओं ने उन्हें धैर्यपूर्वक वस्तुस्थिति समझने का निर्देश दिया। उन्होंने कहा कि जोश में अचानक कुछ भी कर जाना समझदारी नही है—

सहसा करि पाछे पछिताहीं।
कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥

वेदों और विद्वानों का मत है कि जो लोग बिना विचारे जोश में आकर सहसा कार्य कर देते हैं, वे पीछे पछताते हैं और बुद्धिमान नहीं कहलाते।

लक्ष्मण जी ने अपनी भूल समझी और शान्त हो गये। अपनी भूल को संभाल लेने से उनके सम्मान और गौरव में कमी नहीं आई, बृद्धि ही हुई।

ऐसी निर्णयात्मक बुद्धि कहीं से लेने नहीं जाना पड़ता, वह तो हर व्यक्ति के पास होती ही है। अपने अहंकार और विकारों से उसे ढँके रहते हैं। यदि वह पर्दा हटा दिया जाय तो बुद्धि अपने आप कार्य करने लगती है। धनुषयज्ञ के समय परशुराम के साथ यही हुआ। उतावली में उन्होंने श्रीराम को पहचाने बिना ही क्रोध दिखाना प्रारम्भ कर दिया। उन्हें भला-बुरा कहने लगे। श्रीराम ने उन्हें समझाया और उनकी बुद्धि पर पड़े पर्दे को हटा दिया—

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के।
उघरे पटल परसुधर मति के॥

श्रीरामचन्द्रजी के मधुर और रहस्यपूर्ण बचनों को सुनकर परशुराम जी की बुद्धि के पर्दे खुल गये।

इतना होते ही परशुराम जी मानों एकदम बदल गये। बुद्धि ने अपना कार्य किया। उन्होंने श्रीराम को पहचाना, परीक्षा भी ली। परन्तु बड़े सौम्य और शालीन ढंग से।

बुद्धि पर से पर्दा हटते ही संशय समाप्त हो जाते हैं और उचित हल खोज लिया जाता है। लंका काण्ड में युद्ध वर्णन में यही भाव अलंकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राक्षसी माया के कारण चारों ओर अंधकार हो गया। राम दल के योद्धा अन्धेरे में कुछ न देख पाने के कारण घबरा उठे। भगवान राम ने तब अग्नि वाण से अन्धकार का निवारण कर दिया। उसी समय की टिप्पणी मानसकार कर रहे हैं—

भयउ प्रकास कतहु तम नाहीं।
ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं॥

अग्निबाण से माया कट गयी और प्रकाश फैल गया, कहीं अन्धकार नहीं रहा। जैसे ज्ञान उदय होने से (सब प्रकार के) सन्देह दूर हो जाते हैं।

जिस प्रकार राम दल के योद्धाओं के पास शक्ति सामर्थ्य थी। किन्तु माया के प्रभाववश वे उसका कुछ उपयोग नहीं कर पा रहे थे। उसी प्रकार जीव में भी दिव्य शक्तियाँ हैं। किन्तु वह मायावश हो जाने के कारण न तो यथार्थ स्थिति को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देख पाता है और नहीं अपनी सामर्थ्यों का उपयोग ही कर पाता है। दिव्य शक्तियाँ जीव में स्वाभाविक रूप से रहती ही हैं। क्योंकि वह स्वयं परमात्मा का अंश है। यह तथ्य तत्त्वज्ञ श्री काकभुशुण्डि जी गरुड़ जी के सामने रखते हैं–

ईश्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

जीव प्रभु का अंश है (अतः) वह अविनाशी, चैतन्य, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की खान है।

कैसी आश्चर्य की बात है कि स्वयं सुख की खान होते हुए भी मनुष्य सुख की खोज में बुरी तरह भटकता फिरता है। यहाँ तक कि अपने स्तर से भी गिर जाता है। इसका कारण बतलाते हुए भुशुण्डिजी आगे कहते हैं–

सो माया बस भयउ गोसाई।
बँध्यो कीर मरकट की नाई॥

हे गोसाई! वह माया के वशीभूत होकर तोते और बन्दर के समान अपने आप ही बँध गया है।

जीव स्वयं ही न बँधे तो कोई उसे बाँध नहीं सकता। बंधनों को वह देख सकता है, उनसे बच सकता है। किन्तु इस संसार की मोह रूपी रात्रि में वह सो जाता है अर्थात् अपने को भूल जाता है। इस स्थिति में उसका सम्बन्ध (योग) मूल सत्ता से टूट जाता है और वह दीन स्थिति में पहुँच जाता है। इसीलिये योगी इस विषय में सावधानी बरतते हैं। सांसारिकता में भूल नहीं जाते। प्रपंच से वे दूर रहते हैं–

एहि जग जामिनि जागहि जोगी।
परमारथी प्रपंच वियोगी॥

इस संसार रूपी रात्रि में योगी, परमार्थी तथा माया से परे जगत् से मुक्त लोग सदैव जागते रहते हैं।

प्रपंच से वियोग अर्थात् दूर रहने पर ही ईश्वर से योग अर्थात् निकटता संभव है। जीव का प्रभु से योग बना रहता है तो वह समर्थ सत्ता के रूप में सुख शांति का अधिकारी हो जाता है।

मनुष्य को जाग्रत रखने में विवेक बड़ा समर्थ है। काम मनुष्य को भुलावे में डालता है। किन्तु विवेक की दृष्टि पड़ते ही वह नष्ट हो जाता है। शिव का तीसरा नेत्र प्रज्ञाचक्षु ही कहा जाता है। दोनों नेत्रों से तो सभी देखते रहते हैं पर भ्रम में डालने वाली काम वासना का अंत तीसरे नेत्र विवेक दृष्टि से ही संभव है। शिवजी को विचलित करने के लिये जब कामदेव ने अपना प्रभाव फैलाया तो विवेक की सेना भागने लगी। शिवजी ने इसका कारण खोजा। छिपे कामदेव को देखते ही उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसे भस्म कर दिया।

तब सिव तीसर नयन उघारा।
चितवत कामु भयउ जरि छारा॥

तब महादेव जी ने अपना तीसरा नेत्र खोला, उसे देखते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया।

विवेक की क्षमता का अलंकारिक वर्णन अयोध्या काण्ड में श्री रामचन्द्र जी के चित्रकूट निवास प्रसंग में मिलता है। विवेक जब ईश्वर का सानिध्य पाता है तो वह मोहादि शत्रुओं को परास्त करके मनुष्य को सुख सम्पत्ति का अविचल अधिकारी बना देता है। भगवान राम जब चित्रकूट में बसते हैं, तब क्या स्थिति होती है–

जीति मोह महिपाल दल,
सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राज पुर,
सुख सम्पदा सुकालु॥

मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कंटक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख सम्पत्ति और अच्छा समय वर्तमान है।

तुलसीदासजी ने चित्रकूट चितचारु, कहकर मनुष्य के चित्त की उपमा चित्रकूट से दी है। चित्त का ईश्वर परायण-आस्तिक होना ही चित्रकूट में राम का निवास है। उस स्थिति में विवेक सबल होकर मोहादि को परास्त कर देता है और मनुष्य को सुख सम्पत्ति तथा सुगति प्राप्त होती है।

प्रश्न उठता है कि ईश्वर की सत्ता तो सर्वत्र है पर मनुष्य उसे अन्दर क्यों नहीं देख पाता? इसका समाधान करते हुए राम तत्त्व के मर्मज्ञ शिवजी कहते हैं–

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना।
राम रूप देखहिं किमि दीना॥

विषय रूपी मैल से जिनका मन रूपी दर्पण मलिन है तथा जो ज्ञान नेत्र विहीन हैं, वे दीन राम रूप कैसे देखें?

ईश्वर की सत्ता हमारे ही अन्दर है। साफ दर्पण में स्वयं को देखने से उसमें ईश्वरीय आभा भी दिख सकती है किन्तु

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दर्पण मैला हो या नेत्र खराब हों तो यह बोध कैसे हो ? मन की निर्मलता और ज्ञान की प्रखरता से ही उसकी सत्ता का आभास हो पाता है कि मेरे अन्दर उसी की आभा है इस मान्यता की उपमा भक्त श्रेष्ठ काकभुशुण्डिजी प्रचण्ड ज्योति से देते हैं । उत्तर काण्ड में ज्ञान दीप प्रसंग में वे कहते हैं—

सोहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा ।
दीप सिखा सोई परम प्रचण्डा ॥

सोहमस्मि अर्थात् मैं परमात्मा का अंश आत्मा हूँ यह अखण्ड वृत्ति ही परम प्रचण्ड दीपक की लौ है ।

दीपक की ज्योति का गुण है प्रकाश । आत्मबोध रूपी प्रकाश पैदा होते ही सारे कष्टों का मूल कारण भेद भ्रम रूपी अन्धकार समाप्त हो जाता है । जीव का आत्महीनता जनित भटकना, दुख और पतन समाप्त हो जाता है और वह अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है ।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा ।
तब भव मूल भेद भ्रम नासा ॥

"(इस प्रकार) जब आत्म बोध के सुख का सुन्दर प्रकाश फैलता है तब दुखों के मूल भेद रूपी भ्रम का विनाश हो जाता है । "

जीव जब तक अपने स्वरूप को भूला रहता है तभी तक दीन रहता है । आत्मबोध की क्या प्रतिक्रिया होती है यह बड़ी स्पष्टता से भक्तराज हनुमान के चरित्र से मिलती है । वे अतुलित बल धाम हैं, किन्तु समुद्र पार करने के प्रसंग में बिल्कुल चुप ही रहते हैं । जामवन्त इस निष्क्रियता का कारण समझ लेते हैं । वे उन्हें स्मरण दिलाते हैं कि यह जो प्रकरण चल रहा है, तुम उससे भिन्न नहीं हो । तुम्हारा जन्म तो इसी कार्य के लिये हुआ है । यह बोध होते ही दृश्य एकदम बदल जाता है—

राम काज लगि तव अवतारा ।
सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥

"श्रीराम के काम पूरे करने के लिये ही तुम्हारा जन्म हुआ है, यह सुनते ही हनुमान जी पर्वत के आकार के हो गये ।"

इसके बाद कोई बाधा, कोई प्रलोभन हनुमान की गति को रोक न सका । उन्हें कहीं से शक्ति साधन आदि की याचना नहीं करनी पड़ी, केवल अपनी शक्तियों का ही ठीक-ठीक उपयोग करके चमत्कारी उपलब्धियाँ उन्होंने प्राप्त कीं । स्पष्ट है कि कमी सामर्थ्य की नहीं आत्मबोध की थी ।

ऐसा ही उदाहरण लंका युद्ध के समय मिलता है । लक्ष्मण जी युद्ध में दुबारा बेहोश हो जाते है । उन्हें श्रीराम के पास लाया जाता हैं । श्रीराम कोई स्थूल उपचार नही करते, केवल उन्हें अपने स्वरूप का बोध कराते हैं—

कह रघुबीर समुझ जिय भ्राता ।
तुम्ह कृतांत भच्छक सुर त्राता ॥

श्रीराम ने कहा हे भाई अपने जी में समझो, तुम मृत्युभक्षक एवं देवरक्षक हो ।

श्रीराम के शब्द लक्ष्मण जी के अंतःकरण से जा टकराये अन्दर की समर्थ सत्ता तड़पकर खड़ी हो गयी । उन्हें लगा मृत्यु को भी नियंत्रण में ले सकने वाला मैं, देवशक्तियों को संरक्षण देने वाला मैं, क्या राक्षसों के अस्त्रों की चोट से प्रभावित हो सकता हूँ ? बस वे उठ बैठे और उसके बाद फिर कभी मूर्छित नहीं हुए ।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि मनुष्य अनुपम शक्तियों का भण्डार है । वह स्वयं ही अपनी विशेषताओं को भुला देता है और हीन पक्ष को महत्त्व देने लगता है । इसीलिए दुर्गति पाता है । अन्यथा सुख सन्तोष पर उसका स्वाभाविक अधिकार है । अपनी विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनका ठीक-ठीक उपयोग करके मनुष्य पाने योग्य हर वस्तु पा सकता है । ऐसा दुर्लभ जीवन पाने के गौरव और सन्तोष से सदा उल्लसित रह सकता है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानव जीवन का सदुपयोग

प्राचीन शास्त्रकार एवं आधुनिक विचारक दोनों ही इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मनुष्य जीवन अपने आप में अद्भुत एवं महान् है । फिर भी देखा जाता है कि अगणित व्यक्ति इस श्रेष्ठतम अनुदान को लिये हुए भी दीन, हीन, पतित एवं पीड़ा ग्रस्त जीवन जीते हैं । विचारकों के कथन तथा आँखों के सामने की स्थिति दोनों तथ्य एक-दूसरे का खण्डन करते दीखते हैं । किन्तु दोनों में से किसी की भी उपेक्षा करके किसी एक को सही नहीं कहा जा सकता ।

प्रश्न उठता है— यह विसंगति क्यों है ? उत्तर एक ही है— ''उपलब्ध साधन का सदुपयोग अथवा दुरुपयोग ।'' कोई साधन अपने आप में कितना भी महान् होकर स्वयं में भला या बुरा नहीं कहा जा सकता । उसकी भलाई-बुराई उसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग पर निर्भर है ।

धन अपने आप में एक महत्वपूर्ण साधन है । किन्तु यदि हम उसे केवल अपने पास में रखे रहें प्रयोग में न लावें, तो वह क्या हित साधन कर सकेगा ? इसी प्रकार यदि हम उसका प्रयोग करें भी और उसे जुआ, नशा आदि में खर्च करने लगें तो वह लाभ की अपेक्षा हमारी हानि ही करेगा । जब तक हम उसकी उपेक्षा छोड़कर उसके सदुपयोग की स्थिति पैदा नहीं करते, तब तक वह निरर्थक अथवा हानिकारक ही बना रहेगा ।

मनुष्य जन्म भी एक महान् साधन है, इसी रूप में उसका महत्त्व कहा जाता है । वह मिल गया यह अच्छी बात है । किन्तु इतने मात्र से काम नहीं चलेगा । उसके दुरुपयोग से बचने तथा सदुपयोग की व्यवस्था बनाने, अनुपयुक्त को छोड़कर उपयुक्त को चुनने की आवश्यकता हर कदम पर पड़ती है । हर श्रेष्ठ व्यक्ति को यह करना ही पड़ता है । रामचरित मानस के वन्दना प्रसंग में यह भाव स्पष्ट करते हुए श्री तुलसीदास लिखते हैं—

जड़ चेतन गुन दोषमय,
विश्व कीन्ह करतार ।
संत हंस गुन गहहिं पय,
परिहरि बारि बिकार ॥

''विधाता ने इस संसार के जड़ चेतन सभी का निर्माण अच्छाई व बुराई से युक्त किया है । किन्तु अच्छे लोग जो हंस वृत्ति वाले हैं विकारों को पानी की तरह छोड़कर अच्छाई रूपी दूध ही स्वीकार करते हैं ।''

मनुष्य के सामने अमृततुल्य श्रेष्ठ तथा विषतुल्य घातक दोनों प्रकार के अवसर आते हैं । उसे चाहिए कि श्रेष्ठ का ही चुनाव करे । किन्तु क्षणिक आकर्षण में पड़कर मनुष्य हीन प्रवृत्तियों-विषयावासना में लग जाता है । यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण मूर्खता होती है । उत्तरकाण्ड में भगवान श्रीराम अपने राज्याभिषेक के बाद प्रजाजनों को इस विषय में सावधान करते हुए कहते हैं—

नर तन पाइ विषय मन देही ।
पलट सुधा ते सठ विष लेही ॥

''जो लोग मनुष्य देह पाकर विषयों में मन लगाते हैं, मूर्ख अमृत के बदले विष लेते हैं । ''

मन लगाने का अर्थ है उसकी आकांक्षा करना । मनुष्य के लिये यह नितान्त मूर्खता की बात है । पशु विषयों की कामना करें, यहाँ तक ठीक है । क्योंकि उन्हें उतना विचार-विवेक प्राप्त नहीं । मनुष्य को तो विषयों की अपेक्षा अनेक गुने लाभप्रद तथा आनन्दप्रद क्षेत्रों को देखने, समझने और उनका लाभ उठाने की क्षमता प्राप्त है ।

जीवन के अनुरूप उपलब्धियों के लिये अपनी क्षमताओं का उपयोग न कर पाने के लिये श्रीराम उसी प्रसंग में आगे कहते हैं—

साधन धाम मोंच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहिं परलोक संवारा ॥

''यह (नर शरीर) साधन का धाम तथा मोक्ष का दरवाजा है । इसे पाकर भी जो अपने परलोक की तैयारी न कर सके वह अभागा है । ''

इच्छित उपलब्धि के लिये लोग साधन माँगते हैं और चाहते हैं कि उसके निकट पहुँच जाये । मनुष्य शरीर साधनों का भण्डार है और सद्गति का द्वार है । यहाँ तक पहुँच कर इन साधनों को पाकर भी जो व्यक्ति लाभ न उठाने पावे, उसे अन्ततः पछताना ही पड़ेगा । किसी श्रेष्ठ पद के लिये किसी व्यक्ति को ट्रेनिंग में भेज दिया जाय, खर्च के लिये वजीफा भी दे दिया जाय, उसके बाद भी वह ट्रेनिंग का समय और वजीफे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का धन निरर्थक कार्यों में खर्च कर दे तो फिर उसे उपलब्धि से वंचित ही रह जाना पड़ेगा। ऐसे मूर्ख की क्या स्थिति होती है इसको स्पष्ट करते हुए श्री रामचन्द्रजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ,
सिर धुनि धुनि पछिताइ ।
कालहिं कर्महिं ईश्वरहिं,
मिथ्या दोस लगाइ ॥

"इसका सदुपयोग न कर सकने पर मनुष्य परलोक में और यहाँ भी दुख पाता है और फिर मस्तक पीट-पीटकर पश्चाताप करता है तथा अपनी दुर्गति के लिये काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर झूठा दोष लगाता है।"

मूर्ख व्यक्ति तात्कालिक आकर्षणों में पड़कर अपने साधनों और अवसरों का गलत उपयोग कर डालता है। वह समझता है कि उसे तात्कालिक लाभ मिल सकता है तो लम्बी साधना क्यों करे। पर फल उल्टा होता है। दोनों ही पक्षों से घाटा होता है, न इधर का रहता है न उधर का। अपनी दुर्गति के लिये वह दोष किसी पर भी लगाये पर दुर्गति से बच नहीं सकता। उसकी सारी विशेषताएँ उसके बचाव में असमर्थ हो जाती हैं। क्योंकि गलत मार्ग पर कदम बढ़ाते ही व्यक्ति की श्रेष्ठ शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। रावण जब सीता हरण के लिये जाता है तो उसकी स्थिति की विवेचना करते हुए काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

इमि कुपन्थ पग देत खगेसा ।
रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥

"हे गरुड़ जी ! इस प्रकार बुरे मार्ग पर पैर रखते ही मनुष्य में तेज, बुद्धि एवं शक्ति का लेशमात्र भी नहीं रहता है।"

तेज, बल, बुद्धि की सार्थकता मनुष्य को सद्गति और सम्मान दिलाने में है। किन्तु कुमार्गगामी स्वयं भी दुर्गति की ओर बढ़ता है और साथ ही अनेक को उस ओर ठेल कर ले जाता है। इसलिये उसकी बल, बुद्धि आदि दिव्य विभूतियाँ उसका साथ छोड़ देती हैं। रावण ने वही मार्ग अपनाया था। अस्तु उसके प्रभाव में आकर वैसे ही कुमार्गगामियों की संख्या बढ़ गई। रावण वैभव प्रकरण में उल्लेख मिलता है—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लम्पट परधन परदारा ॥

"उस समय दूसरे के धन को हरण करने वाले तथा दूसरे की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले दुष्ट, चोरी करने वाले, और जुआरी बहुत बड़ी संख्या में हो गये थे।"

ऐसे स्वभाव से ही अनीति रत व्यक्ति राक्षस कहलाते हैं। मनुष्य ही सदाचार द्वारा देवता बन जाता है और दुराचरण द्वारा राक्षस। इस तथ्य को भगवान शिव अपनी चर्चा के बीच पार्वतीजी से प्रकट करते हुए कहते हैं—

जिन्ह के यह आचरन भवानी ।
ते जानहु निसचर सब प्रानी ॥

"श्री भगवान शंकर कहते हैं कि हे पार्वती ! जिन लोगों के ऐसे आचरण होते हैं उन सभी प्राणियों को राक्षस ही समझना चाहिये।"

जन्म से कोई व्यक्ति कुछ भी हो किन्तु आचरणहीन होने पर वह मनुष्य न रहकर राक्षस हो जाता है। राक्षस कोई जाति विशेष नही मनुष्य जीवन का दुरुपयोग करने वाले भ्रमित व्यक्ति ही कहे जाते हैं।

प्रश्न उठता है कि कौन सा दुष्ट है जो मनुष्य को श्रेष्ठता की ओर से रोककर इस प्रकार निकृष्टता में ला पटकता है। इस प्रश्न पर विचार करने से विदित होता है कि मनुष्य के अपने अन्दर के विकार ही वे दुष्ट हैं जो उसकी दुर्गति करा देते हैं। अरण्यकाण्ड में शबरी से भेंट के बाद भाई लक्ष्मण को समझाते हुए विरहाकुल श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

तात तीन अति प्रबल खल,
काम क्रोध अरु लोभ ।
मुनि विग्यान धाम मन,
करहिं निमिष महँ छोभ ॥

"हे तात ! काम, क्रोध और लोभ-ये तीन अत्यन्त प्रबल शत्रु हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियों के भी मन में क्षण भर में क्षोभ उत्पन्न कर देते हैं।"

इस कथन से स्पष्ट होता है कि मनुष्य जीवन की सार्थकता उसके सदुपयोग के लिये साधक को बहुत अधिक सतर्क रहना आवश्यक है। साधना में काफी आगे तक बढ़े हुए व्यक्ति-मुनि भी यदि असावधान हो जावें तो यह काम, क्रोधादि दुष्ट उनका अहित कर बैठते हैं।

इस प्रकार के अनेक प्रकरण मानस में मिलते हैं। रानी कैकेयी बड़ी धीर और शीलवान थी। किन्तु राम के अभिषेक प्रकरण में चूक गई और मोहवश दासी मंथरा के भुलावे में आकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध में भर ऐसा कार्य कर बैठी जिससे उसकी पिछली सारी श्रेष्ठताओं पर पानी फिर गया—

कोप समाज साजि सबु सोई ।
राज करत निज कुमति बिगोई ॥

"तब कैकेयी क्रोध प्रदर्शित करने की तैयारी कर कोपभवन में जाकर सो गई । रानी होकर भी वह अपनी दुर्बुद्धि से छली गई ।"

आई हुई विपत्ति को लोग दूसरों द्वारा थोपी गई कहते हैं । किन्तु यह मान्यता ठीक नहीं । बाहर से विपत्ति के कुछ कारण आ भी सकते हैं । किन्तु व्यक्ति के अन्दर उन्हें विकसित होने के लिये यदि उपयुक्त मनोभूमि नहीं मिलती तो वे कुछ नहीं कर सकते । कैकेयी प्रसंग में भी मानसकार अपनी टिप्पणी में यही भाव स्पष्ट करते हैं—

बिपति बीज बरसा रितु चेरी ।
भुईं भइ कुमति कैकेयी केरी ॥

"विपत्ति रूपी बीज के लिये कैकेयी की भूमि कुबुद्धि के समान तथा मंथरा वर्षा ऋतु के समान हुई ।"

बीज तो हवा के साथ उड़ते ही रहते हैं, जगह-जगह गिरते ही रहते हैं । किन्तु उपयुक्त भूमि पाकर ही जमते हैं । मुख्य भूमिका भूमि की होती है । कैकेयी की दुर्बुद्धि भूमि बन गयी इसीलिये विपत्ति का बीज जम सका । फिर अन्य परिस्थितियाँ भी सहायक हो गयीं जैसे-

पाइ कपट जल अंकुर जामा।
बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

"कपट रूपी जल पाकर विपत्ति बीज अंकुरित हुआ । दो वरदान उसके दल (बीज अंकुरित होते समय के दो हिस्से) तथा इस वृक्ष में परिणाम के रूप में दुःख रूपी फल फलित हुआ ।"

तात्पर्य यह कि जो कष्ट आते हैं, वे प्रकारान्तर से हमारे विकारों के कारण ही प्रभावी हो पाते हैं । जब तक मुख्य कारण बना रहेगा, कोई न कोई बहाना दुःख कष्ट का भी बना रहेगा । इसके विपरीत मनुष्योचित श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के प्रभाव से सुख सम्पत्ति किसी न किसी प्रकार बढ़ती ही रहेगी । श्रेष्ठ नीतिज्ञ विभीषण जी यही तथ्य रावण को समझाते हुए प्रकट करते हैं—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना ॥

"जहाँ सुमति है वहाँ अनेक प्रकार के सुख साधन रहते हैं और जहाँ कुबुद्धि, है वहाँ परिणाम में दुःख होते हैं ।"

पीड़ा और पतन की स्थिति ही नरक तथा सुख संतोष की स्थिति ही स्वर्ग कही जाती है । मनुष्य जीवन को स्वर्ग से नरक में ढकेल देने वाले अपने अन्दर के विकार ही हैं जो भला-बुरा देख सकने की हमारी शक्ति हित अनहित सोच सकने की हमारी प्रतिभा को समाप्त कर देते हैं । जीवन की सार्थकता के लिये प्रयत्नशील हर व्यक्ति को इन्हें समझकर इनसे सतर्क रहना आवश्यक है । गरुड़ जी मोहग्रस्त होकर, जब उसके निवारण के लिये काक भुशुण्डिजी के पास गये तो उन्होंने उन्हें सावधान करते हुए कहा-

मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही ।
को जग काम नचाव न जेही ॥

"हे गरुड़ जी ! मोह ने किसे विवेक शून्य नहीं किया ? संसार में ऐसा कौन है, जिसको काम वासना ने नहीं नचाया हो ?"

मनुष्य में अपना हित अनहित देख सकने की क्षमता है, किन्तु मोह ग्रस्त होने पर वह अन्धे की तरह हो जाता है । अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने-चलने की समझ और शक्ति उसमें है । किन्तु काम के वशीभूत होकर वह पथ विचलित होकर नाचने सा लगता है । आगे काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

सुत बित लोक ईषना तीनी ।
केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥

"पुत्र की, धन की और लोकप्रतिष्ठा की-इन तीनों प्रचण्ड इच्छाओं ने किसकी मति को मलिन नहीं कर दिया-(बिगाड़ नही दिया ?")

एषणाएँ बुद्धि की निर्मलता नष्ट कर देती हैं । मलिन बुद्धि हितकारी निर्णय लेने में अक्षम हो जाती है ।

गरुड़जी को राम चरित्र के माध्यम से जीवन के मर्म को समझाते हुए काकभुशुण्डिजी आगे इस तथ्य को और भी स्पष्ट करते हैं । वे कहते हैं कि सशक्त शरीर भी रोग ग्रस्त होने पर काम का नहीं रहता । मानव का अन्तःकरण बड़ा समर्थ है । किन्तु मानस रोगों का शिकार हो जाने से वह शक्तिहीन हो जाता है । फिर मनुष्य अपनी समस्याओं का समाधान न कर पाने से दुःख पाने लगता है । वे कहते हैं—

सुनहु तात अब मानस रोगा ।
जिन्ह ते दुःख पावहिं सब लोगा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे तात ! अब मानस रोग सुनिये । जिनसे सभी लोग दुःख उठाया करते हैं । "

मानस रोगों का वे लम्बा वर्णन करते हैं– काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि आंतरिक विकारों को ही उन्होंने भयंकर मानस रोग कहा है । मनुष्य इन रोगों की तरफ से बेखबर रहकर अपनी सामर्थ्य का उपयोग करना चाहता है । यह उसकी भूल है । काकभुशुण्डिजी इसी संदर्भ में बहुत स्पष्ट रूप से कहते हैं–

एक ब्याधि बस नर मरहिं,
ए असाधि बहु ब्याधि ।
पीड़हिं संतत जीव कहु,
सो किमि लहै समाधि ॥

"एक ही रोग के वशीभूत होकर मनुष्य मर जाते हैं, फिर ये तो अनेक असाध्य रोग हैं । ये जीव को लगातार पीड़ा देते रहते हैं । ऐसी दशा में वह शांति को कैसे प्राप्त करें ।"

इससे यह न समझें कि इन रोगों का निवारण हो नहीं सकता और मनुष्य जीवन श्रेष्ठता का लाभ पा नहीं सकता । वस्तुतः रोग अपने ही असंयम और अनियमितता के परिणाम होते हैं । इन्हें ठीक भी किया जा सकता है । वाल्मीकि, तुलसीदास, अंगुलिमाल आदि ने अपने रोगों को ठीक करके जीवन की महानता का वरण किया भी था । रोग ठीक करने की विधि बतलाते हुए काकभुशुण्डिजी कहते हैं–

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय कै आसा ॥

"सद्गुरु रूपी वैद्य की वाणी में विश्वास हो और विषयों की आशा न करे यही परहेज है । "

रोग ठीक करने के लिये रहन-सहन और औषधियाँ तो अनेक लोग अनेक ढंग से बतला सकते हैं । उन सबसे लाभ होता भी है । लेकिन मुख्य बात होती है– स्वयं रोगी साधक की सावधानी । इस प्रकरण में स्वयं भगवान श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत पर लक्ष्मण को उपदेश देते हुए बड़ा सटीक उदाहरण देकर यह मर्म समझाते हैं । वर्षा वर्णन के प्रसंग में वे कहते हैं–

कृषी निरावहिं चतुर किसाना ।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥

"चतुर किसान खेतों की निराई कर साफ कर रहे हैं । जैसे विद्वान् लोग मोह, मद और अहंकार का त्याग कर देते हैं ।

खेत में अन्न उपजाना किसान का मुख्य लक्ष्य होता है । अन्न के बीज वह बोता भी है । किन्तु अनेक दूसरे पौधे भी खेत में जमने लगते हैं । वे मुख्य फसल की खुराक स्वयं ले लेते हैं । चतुर किसान इसीलिये खाद पानी की व्यवस्था करते हुए, उन निरर्थक पौधों को उखाड़ता भी रहता है । मनुष्य के अन्तःकरण में भी अनेक विकार उठते रहते हैं । बुद्धिमानी इसी में है कि उन्हें उखाड़ते रहा जाय । अन्यथा जीवन की श्रेष्ठता को वे चौपट करते रहेंगे । ये विकार तरह-तरह की कामनाओं के रूप में उठते रहते हैं । इनका निरस्त करने का सरल माध्यम है– संतोष । काकभुशुण्डिजी कहते हैं–

बिनु संतोष न काम नसाहीं ।
काम अछत सुख सपनेहु नाहीं ॥

"संतोष के बिना कामनाओं का विनाश नहीं होता और कामनाओं के रहते हुए स्वप्न में भी सुख नहीं मिल सकता । "

संतोष मनुष्य की वह श्रेष्ठ वृत्ति है जो उससे प्रखर पुरुषार्थ तो कराती है, किन्तु किसी विशेष उपलब्धि का आग्रह नहीं करती । संतोषी व्यक्ति उपलब्धि के अधीन नहीं रहता बल्कि हर उपलब्धि का उपयोग अपने हित में कर लेता है । श्रेष्ठ व्यक्ति इसी वृत्ति के कारण विपरीत समझी जाने वाली परिस्थितियों में भी स्वर्गीय सुख की अनुभूति कर लेता हैं । राम वन-गमन प्रसंग में यह भाव बड़ी स्पष्टता से उभरकर सामने आता है । श्रीराम को राज्य के स्थान पर जंगल में जाने की आज्ञा हुई, पर वे विचलित नहीं हुए । उन्होंने वन जाने में ही अपने हित का और प्रसन्नता का मार्ग ढूँढ लिया । माता कैकेयी से वे बोले-

मुनि गनु मिलनु बिसेषि बन,
सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि मँह पितु आयसु बहुरि,
संमत जननी तोर ॥

"मेरे लिये वन गमन सभी प्रकार से कल्याणप्रद ही है, क्योंकि वहाँ विशेष रूप से मुनियों का (मिलाप) सत्संग होगा और उसमें भी पिताजी की आज्ञा और हे माँ ! तुम्हारी सहमति, सब कुछ मेरे लिये हितकारक ही है ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता समझने वाले व्यक्ति स्वयं भी उसका लाभ उठाते हैं और दूसरों को भी निहाल कर देते हैं। दुष्ट के संसर्ग कष्ट और सज्जन के संसर्ग से सुख मिलना स्वाभाविक ही है। उत्तर काण्ड में भरत जी को श्रेष्ठ के आदर्श समझाते हुये श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं—

सन्त असन्तन्हि कै असि करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरनी॥

"संत और असंतों की करनी ऐसी है जैसे कुल्हाड़ा और चन्दन का स्वभाव होता है।"

तात्पर्य यह है कि कुल्हाड़ा अपनी सामर्थ्य का उपयोग दूसरों को काटने में करता है। किन्तु चन्दन कटकर भी सुगन्ध ही बिखेरता है। दुष्ट और श्रेष्ठ जनों का यही अन्तर है। आगे उन्होंने स्पष्ट किया कि यह जीवनक्रम ही व्यक्ति को महानता तथा सम्मानास्पद स्थिति तक पहुँचाता हैं। कुल्हाड़ा और चन्दन की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया का उल्लेख करते हुए वे आगे कहते हैं—

ताते सुर सीसन्ह चढ़त,
जग बल्लभ श्रीखण्ड।
अनल दाहि पीटत घनहिं,
परसु बदन यह दण्ड॥

"इसी गुण के कारण चन्दन देवताओं के मस्तक पर चढ़ता है और संसार का प्रिय हो रहा है। और कुल्हाड़ी को यह दण्ड मिलता है कि उसके मुँह को अग्नि में जलाकर फिर घन से पीटते हैं।"

स्पष्ट है कि मनुष्य अपने आचरण द्वारा अपने जीवन में वे सारे तत्त्व समाविष्ट कर सकता है, जिससे जीवन सार्थक और धन्य बन जाता है।

एक सामान्य मान्यता है कि मनुष्य के गुणों और योग्यताओं के कारण ही उसके जीवन में सुख-संतोष आते हैं। यह कथन सत्य भी है, किन्तु इससे भी पहले ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मनुष्य की पात्रता गुणों को स्वतः आकर्षित करती है। मानवोचित सज्जनता का अपने आप में पात्रता का एक श्रेष्ठ लक्षण है। वर्षा वर्णन के प्रसंग में लक्ष्मणजी से श्रीराम कहते हैं—

समिटि समिटि जल भरहिं तलावा।
जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥

श्रीराम कहते हैं—"जल एक हो-होकर तालाबों में भर रहा है, जैसे सद्गुण एक-एक करके सज्जन के पास चले आते हैं।"

सज्जन व्यक्ति द्वारा गुणों और योग्यताओं का उचित उपयोग होगा ऐसा विश्वास होने से हर व्यक्ति उनके गुण संवर्द्धन का प्रयास करता है। भगवान् श्रीराम के जीवन में भी यही क्रम देखने को मिलता है। धनुष यज्ञ प्रकरण में परशुराम जी बड़े उत्तेजित होकर पहुँचे थे किन्तु श्रीराम की सज्जनता के आगे नतमस्तक हो गये। उन्होंने परीक्षा के लिये अपना दिव्य धनुष उनकी ओर बढ़ाया।

देत चाप आपुहिं चलि गयऊ।
परसुराम मन बिसमय भयऊ॥

"जब परशुराम जी श्रीराम को धनुष देने लगे तब वह आप ही उनके हाथों में चला गया। इसे देखकर परशुराम जी को बड़ा आश्चर्य हुआ।"

श्रीराम सत्पात्र थे। दिव्य शक्तियाँ सत्पात्रों के हाथों में स्वतः जाना चाहती हैं यही इस प्रकरण से प्रकट होता है।

सज्जनता का अर्थ यह नहीं कि सबके लिये भले कहलाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। सज्जनता की रक्षा के लिये पुरुषार्थ भी सज्जनता एवं पात्रता के अन्तर्गत आता है। विश्वामित्र जी के साथ यज्ञरक्षा के लिये जाते हुए श्रीराम पात्रता की कसौटी पर खरे सिद्ध हुए। आश्रम की ओर जाते हुए मुनि विश्वामित्र को देखकर ताड़का नामक राक्षसी क्रोधित होकर दौड़ी, राम ने एक ही बाण से उसे मार डाला-

तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्ही।
विद्यानिधि कहु विद्या दीन्ही॥

"तब ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम की पात्रता समझकर उन विद्या सम्पन्न को और भी विद्या सिखाई।"

श्रीराम को विद्या के लिये याचना नहीं करनी पड़ी जो देव वृत्ति युक्त हैं अपनी शक्ति, सामर्थ्य का लाभ दूसरों को देना चाहते हैं, उन्हें माँगे बिना भी मिलता है, वे लेना चाहें या न लेना चाहें। इस संदर्भ में वशिष्ठजी धनुषयज्ञ में श्रीराम की सफलता का समाचार पाने पर दशरथ जी से समुद्र एवं नदियों की उपमा देते हुए कहते हैं—

जिमि सरिता सागर महँ जाहीं।
जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''जैसे कि नदियाँ समुद्र में जाती हैं, यद्यपि समुद्र को नदी की कामना नहीं होती ।

समुद्र बादलों द्वारा अपना जल सारे संसार में वितरित करता है इसलिये नदियाँ बिना माँगे ही उसे जल से भरपूर रखती हैं ।

जीवन की सार्थकता के मूल सिद्धान्त सदैव वही रहते हैं । उनके बाह्य क्रिया-कलापों को पकड़े रहते हैं, जो समय के प्रभाव से अपनी उपयोगिता खो चुके होते हैं । समझदार व्यक्ति मूल तथ्यों को ध्यान में रखकर युग के अनुरूप उनका वाह्य कलेवर बना लेते हैं । इन्हें ही युगधर्म कहते हैं । काकभुशुण्डिजी इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं–

बुध जुग धर्म जानि मन माहीं ।
तजि अधर्म रति धर्म कराहीं ॥

''पंडित जन युगों के धर्म को मन में पहचान कर अधर्म छोड़कर धर्म से प्रेम करते हैं । ''

अत: परम्परा में न फँसें रहकर युगानुरूप श्रेष्ठ आचरण करना और कराना बुद्धिमानी का लक्षण है । एक और भ्रान्ति लोगों को बहका देती है । वह यह कि श्रेष्ठ आदर्श जीवन तो किसी युग विशेष में ही संभव है । यह मान्यता गलत है । मनुष्य के आचरण से किसी भी युग में किसी भी युग की स्थिति पैदा की जा सकती है । श्रीराम त्रेता युग में अवतीर्ण हुए थे । किन्तु रामराज्य वर्णन में स्पष्ट उल्लेख है कि जन आचरण की श्रेष्ठता के कारण त्रेता में सतयुग जैसी स्थिति पैदा हो गई ।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी ।
त्रेता भई कृतजुग कै करनी ॥

''पृथ्वी हमेशा उपज से भरी रहती है । त्रेतायुग में सतयुग की स्थिति हो गई है । ''

अस्तु जीवन में प्राप्त महानतम् अनुदानों का श्रेष्ठतम उपयोग करके हर मनुष्य जीवन की उच्चतम सफलता सार्थकता पा सकता है । यह तथ्य हृदयंगम करके यदि हम सतर्कता, सावधानी तथा तत्परता पूर्वकप्रयास करें तो हम कितनी भी गिरी हुई स्थिति से उठकर मनुष्य के लिये संभव श्रेष्ठतम स्तर प्राप्त कर सकते हैं

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ईश्वर और उसकी भक्ति

मनुष्य जीवन में ईश्वर निष्ठा, आस्तिकता, ईश्वर भक्ति को अत्याधिक महत्त्व दिया गया है। नगण्य सा प्राणी मनुष्य जब उस समर्थ सत्ता से जुड़ जाता है तो उसका जीवन अद्भुत चमत्कारी हो उठता है। कहते हैं भक्त भगवान का ही रूप हो जाता है। "राम ते अधिक राम कर दासा" कहकर मानसकार ने तो उसकी महत्ता और भी अधिक कर दी है।

किन्तु दूसरी ओर जब हम यथार्थ स्थिति पर दृष्टि डालते हैं तो इस आस्था पर भारी आघात लगता है। ईश्वर परायण, भक्त कहे जाने वाले लोगों के जीवन दीन, हीन, निकृष्ट कोटि के दिखाई देते हैं। न तो उनके पास लौकिक वैभव सुखोपभोग दिखता है और न आध्यात्मिक गुण सन्तोष।

इसका मुख्य कारण यही है कि ऐसे लोग ईश्वरनिष्ठ कहलाते भर हैं— है नहीं। ईश्वर के सम्बन्ध में उनकी मान्यता तथा उससे युक्त होने-जुड़ने अर्थात् उसकी भक्ति के स्वरूप के सम्बन्ध में उनकी धारणा भ्रांतियाँ गलत हैं। कोई ईश्वर को किसी मूर्ति या चित्र की सीमा में बाँधना चाहते हैं तो कोई नाम विशेष तक ही उसका प्रभाव बाँधना चाहता है कोई उसके सगुण पक्ष को श्रेष्ठता कहता है तो कोई निराकार पक्ष को। इसी प्रकार उसकी प्रसन्नता हेतु, उससे योग होने के लिये कुछ छुटपुट कर्मकाण्डों पर ही सारा ध्यान केन्द्रित कर दिया जाता है। कोई जप, तो कोई हवन, कोई कीर्तन तो कोई पूजा-पत्री से ही उसे पाना चाहते हैं।

उन सभी मान्यताओं का शोधन होना आवश्यक है। ईश्वर और उसकी भक्ति के सम्बन्ध में जब तक सही दृष्टिकोण न अपनाया जायेगा तब तक उसका लाभ उठाया जाना सम्भव नहीं। रामचरित मानस में श्री तुलसीदासजी ने इन मान्यताओं को सही दिशा देने का प्रयास किया है। यदि हम उन पर ध्यान दें तथा ठीक प्रकार समझकर अपनायें तो ईश्वर निष्ठा के चमत्कारी लाभ पाना हमारे लिये भी संभव है। ईश्वर आराधना के लिये उसके निराकार एवं साकार स्वरूपों की उलझन में नहीं पड़ना चाहिये। अपनी रुचि के अनुसार कोई भी मान्यता लेकर चला जा सकता है। प्रारम्भिक प्रसंग में ही तुलसीदासजी स्पष्ट कहते हैं—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

"ब्रह्म के दो स्वरूप हैं— सगुण और निर्गुण। ये दोनों ही अकथनीय, अगाध (मापे न जा सकने वाले), अनादि (प्रारंभ रहित) और उपमा रहित हैं।"

तात्पर्य यह कि साधक इस भ्रान्ति में न पड़े कि कौन सा रूप अधिक प्रभावशाली है। चौपाई में स्पष्ट कह दिया है कि दोनों ही अकथ, अगाध, अनादि और अनुपम हैं।

ईश्वर को निराकार मानने वाले इस भ्रम में न पड़ें कि वह कहाँ से आया ? शरीर विहीन होकर संसार की व्यवस्था कैसे कर पाता है। यह मानकर चलें कि वह अद्भुत क्षमता सम्पन्न है। हमारी बुद्धि उसके क्रिया-कलापों को समझ नहीं सकती। किन्तु इतना निश्चित है कि वह सही और समुचित व्यवस्था कर लेता है। इसी सन्दर्भ में उमा की शंका का समाधान करते हुए शिवजी ने कहा कि परमात्मा का आदि और अन्त किसी ने नहीं पाया, बुद्धि से अनुमान कर वेद उसके बारे में ऐसा गाते हैं—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना॥

"वह (परब्रह्म) बिना पैर के चलता है और बिना कान के सुनता है तथा अनेक प्रकार के कर्म बिना हाथ के करता है।"

भाव यह है कि ईश्वर चेतना रूप में सब जगह सक्रिय है। बिजली, मोटर आदि चलाती है— प्रकाश व गर्मी पैदा करती है, इसके लिये उसे हाथ पैर की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी प्रकार ईश्वर दिव्य चेतना के रूप में सारे कार्य करने में समर्थ है।

जो प्रभु को साकार मानते हैं, वे उसे किसी मूर्ति या मन्दिर में कैद न मानें। किसी स्वरूप या नाम तक सीमित न समझें। यह सारा दृश्य जगत भगवान का ही स्थूल रूप है— यह मान्यता साधक की होनी चाहिये। स्वयं तुलसीदास जी रामचरित मानस प्रारम्भ करते समय भगवान के इसी विराट् स्वरूप को नमस्कार करके आगे बढ़ते हैं—

सीय राममय सब जग जानी।
करऊँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

"मैं समस्त संसार को सीता और रामजी से ओत-प्रोत जानकर दोनों हाथ जोड़ते हुए प्रणाम करता हूँ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साकार उपासना में अपने चित्त की स्थिरता के लिये प्रारम्भ में किसी रूप मे विशेष का उपयोग करने का विधान अनुचित नहीं। किसी अभ्यास के इस प्राथमिक चरण को ही सब कुछ मान लेना भूल है। मानवीय स्वभाव की दुर्बलता के कारण यह भूल बहुधा होती है। किन्तु उसका सुधार तो साधक को करना ही पड़ता है। काकभुशुण्डिजी भी तो एक बार इसी चक्कर में पड़ गये थे। तब भगवान श्रीराम ने अपने मुख को फैलाया। उन्होंने उसमें प्रवेश करके उनके विराट् रूप के दर्शन किये। वे अपना अनुभव सुनाते हुए पक्षिराज गरुड़ से कहते हैं—

उदर माँझ सुनु अंडज राया।
देखेऊँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया॥

"हे गरुड़! मैंने भगवान के पेट में बहुत से ब्रह्माण्डों का समूह देखा।"

भगवान का विराट रूप देखकर उनका भ्रम दूर हो गया और वे ज्ञानियों और भक्तों में श्रेष्ठ बन सके। अपनी पूर्व मान्यता को ही पकड़े रहते, उसी से चिपके बैठे रहते तो यह लाभ उन्हें न मिल सकता।

रावण भी अपनी भ्रान्त मान्यता के कारण भगवान को न समझ सका। मंदोदरी ने उसे समझाते हुए भगवान का विराट रूप समझने का ही आग्रह किया। उसने कहा कि भगवान किसी एक शरीर या रूप में बँधा नहीं रहता। वह सबमें व्याप्त है—

अहंकार सिव बुद्धि अज,
मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर,
रूप राम भगवान॥

"शिव जिनका अहंकार है, ब्रह्मा बुद्धि है, चन्द्रमा मन है और महान (विष्णु) ही चित्त है। भगवान राम ही चर अचर प्राणियों और मनुष्यों में निवास करते हैं।"

रावण पूजा पाठ तो करता था, किन्तु सच्चे अर्थों में ईश्वरनिष्ठ होता तो कुमार्गगामी न होने पाता। अपनी झूठे अहं के लिये वह सबसे वैर विरोध ठान लेता था। यह भक्त का लक्षण नहीं। ईश्वर को विराट रूप में देखने वाले भक्त के लक्षण बतलाते हुए शिवजी पार्वती से कहते हैं—

उमा जे राम चरन रत,
विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत,
केहि सन करहिं बिरोध॥

"हे पार्वती! जो श्री रामजी के चरणों के प्रेमी हैं और काम, अहंकार तथा क्रोध छोड़ चुके हैं, वे सारे जगत को अपने भगवान से भरा हुआ देखते हैं, फिर वे किससे वैर करें?"

आस्तिक प्रभु परायण व्यक्ति अपनी शक्तियों को निरर्थक रूप से किसी के विरोध में नष्ट नहीं कर सकता। यही नहीं उसकी पूजा भी सामान्य टंट-घंट तक सीमित नहीं रह सकती। वह तो अपने पुरुषार्थ से, साधन सम्पत्ति से, विराट् भगवान की सक्रिय एवं सार्थक पूजा किया करता है। पूजन का यही मर्म समझाते हुए श्रृष्यमूक पर्वत पर स्वयं भगवान श्रीराम भक्तराज हनुमान से कहते हैं—

सो अनन्य जाके असि,
मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर,
रूप स्वामि भगवन्त॥

"हे हनुमान! जिसकी बुद्धि इस भाव पर अटल है कि मैं सेवक हूँ और यह चराचर जगत मेरे स्वामी भगवान का रूप है, वही मेरा अनन्य सेवक है।"

प्रभु के सेवक बनने का दिखावा कोई भी किसी भी प्रकार भले ही कर ले किन्तु प्रामाणिक सेवक बनने के लिये यही मार्ग अपनाना होगा।

ईश्वर की निकटता के लिए लोग अनेक स्थानों पर भटकते हैं। किन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाते। इस भ्रान्ति में देवता भी पड़ गये थे। असुरता के निवारण के लिये भगवान से प्रार्थना करने कहाँ जायँ यह प्रश्न उनके सामने आ खड़ा हुआ, तब शिवजी ने समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा-

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥

मैं तो इस प्रकार जानता हूँ कि प्रभु सब स्थानों पर समान रूप से विद्यमान हैं और प्रेम के वशीभूत होकर प्रगट हो जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम भावना के अभाव में चाहे जितने स्थान और चाहे जितने स्वरूप बदले जावें, भगवान का मिलना संभव नहीं। लोग अपने प्रेम भाव को तो पुष्ट करते नहीं, उसे सांसारिकता में ही बिखेरे रहते हैं।

इसीलिये भगवान के प्रति प्रेम उमड़ता नहीं। उस ओर मन लगता नहीं, फिर कैसे उद्देश्य पूरा हो ? मनोयोग हुए बिना प्रभु मिलन संभव नहीं। इसीलिये विभीषण को दिशा देते हुए भगवान श्रीराम ने कहा कि सब ओर बिखरे ममता के धागे इकट्ठे करके मन को मेरे साथ बाँध दो तभी वह रुकेगा अन्यथा नहीं-

सब कै ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँधि बरि डोरी॥

"इन सबके प्रति ममता रूपी धागों को एकत्रित करके और उन सबकी एक डोरी बटकर उसके द्वारा जो अपने मन को मेरे चरणों में बाँध लेता है अर्थात् सारे सांसारिक संबंधों का केन्द्र मुझे बना लेता है।"

मन सामान्य स्नेह सूत्र के सहारे नहीं रुकता उसके लिये दृढ़ स्नेह सूत्र चाहिये। वह दृढ़ सूत्र कहीं से लेने नहीं जाना पड़ता। केवल बिखरे सूत्रों को एकजुट कर देना पड़ता है। फिर उससे छूटकर न तो मन कहीं भाग सकता है और न प्रभु। यही सूत्र राम वन गमन के समय लक्ष्मणजी को माता सुमित्रा ने समझाया है—

पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिअहिं राम के नाते॥

"संसार में जितने भी परम प्रिय और सम्माननीय (पूजनीय) व्यक्ति हैं, वे सब राम से ही संबंधित होने के कारण से हैं।"

यहाँ यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि ईश्वर परायण व्यक्ति को संसार से सम्बन्ध तोड़ लेना आवश्यक नहीं। जो व्यक्ति ईश्वर के आदर्शों के अनुकूल चलते हैं, उन्हें भगवान के सहयोगी के नाते अपना प्रेमी, हितैषी और पूज्य भी माना जा सकता है। इस स्थिति में सबसे प्रेम सम्बन्ध होते हुए भी ममत्व के सारे सूत्र प्रभु से ही जुड़े रहते हैं, बिखरते नहीं।

बहुधा लोग अपने स्वार्थ और स्नेह के निर्वाह के नाम पर ईश्वरीय नियमों-आदर्शों की उपेक्षा कर जाते हैं। किन्तु यह भी भूल है। वस्तुतः प्रभु से बड़ा हमारा हितैषी कोई नहीं हो सकता। चित्रकूट प्रसंग में सभा के बीच वशिष्ठ जी यही घोषित करते हैं—

नीति प्रीति परमारथ स्वारथ।
कोउ न राम सम जान जथारथ॥

"नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ का सच्चा रूप भगवान राम के समान कोई और नहीं जानता।"

हमें अपनी सीमित बुद्धि के कारण अपना लाभ पास की वस्तुओं में ही दिखता है। किन्तु प्रभु सर्वज्ञ होने के नाते हमारे हित अहित को स्वयं हमारे और किसी दूसरे की अपेक्षा अधिक समझते हैं। हर भक्त आस्तिक की यही धारणा होनी ही चाहिये।

एक और भी तथ्य इस संदर्भ में याद रखने योग्य है। सांसारिक सुख वैभव इकट्ठा करने के आकर्षण में ही लोग ईश्वर की उपेक्षा करते जाते हैं। किन्तु वे भूल जाते हैं कि ये सारी विभूतियाँ ईश्वरकृत ही हैं। ईश्वर विमुख व्यक्ति के पास यह रहती नहीं। और यदि रह भी जायें तो उसे धोखा दे जाती हैं। अर्थात् साधन सामग्री जिसके लिये एकत्रित की जाती है, वह सुख संतोष उनके पास होते हुए भी मिल नहीं पाता। यह मर्म वीरश्रेष्ठ हनुमानजी लंका दहन के पूर्व रावण को बतलाते हैं—

राम विमुख सम्पति प्रभुताई।
जाइ रही पाई बिनु पाई॥

"राम से विमुख होने पर सम्पत्ति और प्रभुता यदि है तो चली जाती है और यदि मिल जाय तो बिना मिले के समान है।"

इसलिये ईश्वरनिष्ठ व्यक्ति को आदर्शनिष्ठ होना चाहिये। तभी ईश्वरीय अनुग्रह प्राप्त हो सकता है। प्रभु कृपा की आकांक्षा से लोग अपने आपको उनका भक्त घोषित करते रहते हैं। उसके अनुरूप अपने क्रियाकलाप बनाने की बात भी करते हैं। किन्तु रह जाते हैं केवल ऊपरी दिखावे तक ही। अन्दर से तो लौकिक आकांक्षाएं प्रबल रहती हैं और बाहर से पूर्ण रूपेण ईश्वरनिष्ठ होने का दावा किया करते हैं। ऐसे व्यक्ति भगवान तक नहीं पहुँच सकते। लंका युद्ध के पूर्व, विभीषण शरणागति प्रसंग में श्रीराम जी वानर वीरों से कहते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

"जो मनुष्य निर्मल मन का होगा वही मुझे प्राप्त करता है। मुझे कपट और छल अच्छा नहीं लगता।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

साधक को भक्त बनने के लिये अपने अन्तःकरण से विकारों को दूर करना पड़ता है । अपने संकुचित दृष्टिकोण से ईश्वर को नहीं देखा जा सकता । विकृत अन्तःकरण में उसे धारण किया जाना संभव नहीं ।

यह मर्म श्री काकभुशुण्डिजी गरुड़ मोह निवारण प्रसंग में प्रकट करते हैं–

काम, क्रोध, मद लोभ रत,
गृहासक्त दुख रूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि,
मूढ़ परे तम कूप ॥

"जो काम, क्रोध, मद और लोभ में लगे हुए हैं और दुःख रूप घर में आसक्त हैं, वे श्री रामजी को कैसे जान सकते हैं ? वे मूर्ख तो अन्धकार रूपी कुएँ में गिरे पड़े हैं ।

यह भाव प्रकारान्तर से अनेक ढंग से रामचरित मानस में विभिन्न स्थलों पर मिलता है । वन में श्री रामचन्द्रजी जब वाल्मीकि जी से अपने रहने का स्थान पूछते हैं, तो वे ऐसे व्यक्तियों के अन्तःकरण का वर्णन करते हैं, जिनमें भगवान का निवास हो सकता है–

काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥

"जिनके मन में काम, क्रोध, मद, अभिमान, मोह, लोभ, उत्तेजना, राग, द्वेष और विकार नहीं है । "

जिन्ह के कपट दम्भ नहीं माया ।
तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥

"जिनके हृदय में न कपट है, न दम्भ और न सांसारिक वैभव का आकर्षण है ऐसे लोगों के हृदय में (हे राम) आप वास करें । "

वस्तुतः जीव का सहज स्वभाव ईश्वर की ओर बढ़ने का है । किन्तु इन विकारों और संसार की चकाचौंध में पड़कर वह भ्रमित हो जाता है । यदि पहले से ही सावधानी रखे और अपनी दृष्टि प्रभु पर रखे, इनके वशीभूत न हो तो उसे ईश्वरीय सानिध्य सहज ही प्राप्त हो सकता है । श्रीराम के वन जाने के समय जब लक्ष्मणजी भी उनके साथ जाने को तैयार होते हैं तो माता सुमित्रा उन्हें उन्हीं विकारों से सावधान रहने का निर्देश देती हैं–

राग रोष इरिषा मद मोहू ।
जनि सपनेहु इन्ह के बस होहू ॥

"राग, क्रोध, ईर्ष्या, अभिमान, और मोह इनके वश में स्वप्न में भी मत होना । "

वे मानती हैं कि इनसे दूर रहकर ही सेवा की जा सकती है । किन्तु सेवा भी मात्र शरीर से नहीं होती । मन, वचन और कर्म के संयोग से ही सच्ची सेवा सम्भव होती है । इसीलिये विकारों से दूर रहकर पूरे मनोयोग से सेवा करने का आदेश वे लक्ष्मण जी को देती हैं–

सकल प्रकार विकार बिहाई ।
मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥

"सब प्रकार के विकारों को त्यागकर मन, वचन और कर्म से श्री रामचन्द्रजी और सीताजी की सेवा करना । "

लक्ष्मणजी सच्चे साधक थे । उन्होंने अपने अन्तःकरण को उस अनुरूप ढाल रखा था । अस्तु जब वे श्रीराम के सामने पहुँचे तो वे उन्हें साथ चलने से मना नहीं कर सके । लक्ष्मणजी को साथ ले जाने के लिये श्रीराम को किसने मजबूर कर दिया ? वह थी लक्ष्मण की निष्ठा । उस समय लक्ष्मण की स्थिति–

राम विलोकि बंध कर जोरे ।
देह गेह सब सन तृन तोरे ॥

"राम ने भाई को हाथ जोड़े हुए देखा, वे शरीर और घर सबसे नाता तोड़े हुए थे । "

सांसारिकता का आकर्षण प्रभु मार्ग पर चलते हुए भी लोगों को विचलित कर देता है । सुग्रीव का यही हुआ । राज्य वैभव में वे श्रीराम का कार्य भूलने लगे थे । हनुमान जैसे सहयोगी ने उन्हें सचेत कर दिया, तो उन्हें अपनी स्थिति का भान हुआ । उनकी समझ में आ गया कि इन लौकिक आकर्षणों के बंधनों सें अपने को मुक्त रखना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है । उन्होंने भगवान श्रीराम से क्षमा माँगते हुए कहा-

नारि नयन सर जाहि न लागा ।
घोर क्रोध तक निसि जो जागा ॥

"नारी की आँखों के बाण जिसको नहीं लगे, जो भयंकर क्रोध रूपी रात में भी जागता रहता है । "

लोभ पास जेहिं गर न बँधाया ।
सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"लोभ की फाँसी में जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे भगवान श्रीराम ! वह मनुष्य आप ही के समान है।"

सच्चा भक्त भगवानमय, तद्रूप हो जाता है। इसीलिये जो बन्धन ईश्वर सनिध्य में बाधक बनते हैं, उन्हें तोड़ने वाले को भगवान के समान ही कहा गया है। यह कोई अत्युक्ति नहीं है। भक्त और भगवान में ऐसा साम्य होना सम्भव है कि दोनों एक से ही लगें।

भरत पूरी तरह राममय थे। उन्हें देखकर लोग सहसा पहचान भी न पाते थे। उक्ति है—

भरतु राम ही की अनुहारी।
सहसा लखि न सकहिं नर नारी॥

"भरत राम के समान हैं, स्त्री पुरुष अचानक उन्हें पहचान नहीं सकते।"

मात्र रूप से ही उनमें समानता नहीं, उनके गुण और भावनाओं में भी समानता है। देवता भगवान के साथ माया का प्रपंच नहीं रच सकते, तो भरत के साथ भी नहीं रच सकते। श्रीराम को मनाने के लिये जाते हुए भरत के मन में विकार पैदा करने के लिये देवता माँ सरस्वती से प्रार्थना करते हैं किन्तु सरस्वती जी स्पष्ट कह देती हैं कि भरत के हृदय में विकार पैदा करना सम्भव नहीं—

भरत हृदय सिय राम निवासू।
तहँ कि तिमिर जहँ तरनिप्रकासू॥

"भरत के हृदय में सीता राम का निवास है। जहाँ सूर्य का निवास हो, जहाँ सूर्य का प्रकाश हो, वहाँ अन्धकार कैसे रह सकता है।"

भरत के हृदय में प्रभु का इतना प्रखर प्रकाश कैसे समा गया ? हमारे अन्दर क्यों नहीं आता ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि हमारे हृदय में अपनी आकांक्षाएँ, वासनाएँ तृष्णाएँ भरी पड़ी हैं। फिर प्रभु के लिये स्थान ही कहाँ रह जाता है। भरत ने अपनी सारी आकांक्षाएँ स्वर्ग मुक्ति तक की कामनाएँ भी हटा दी थीं। उनकी निष्कामभावना का प्रमाण प्रयाग में मिलता है। जब वे तीर्थ राज से आशीर्वाद माँगते हैं तो कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि,
गति न चहऊँ निरवान।
जनम जनम रति राम पद,
यह वरदान न आन॥

"भरत जी कहते हैं कि मुझे न धर्म में रुचि है, न अर्थ की, न काम की, और न मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म तक मेरा श्रीराम जी के चरणों में प्रेम भाव हो, यही वरदान माँगता हूँ। इसके अलावा और कुछ नहीं चाहता।"

ऐसे निर्विकार, समर्पित हृदय में भी प्रभु का प्रकाश अवतरित न होगा तो कहाँ होगा ? ऐसे पूर्ण समर्पित अन्तःकरण को भगवान अपना स्वयं का स्थायी निवास मानते हैं। वाल्मीकि जी वन में उनके रहने के स्थल बतलाते हुए कहते हैं—

जाहि न चाहिअ कबहु कछु
तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरन्तर तासु मन,
सो राउर निज गेह॥

"जो कभी कुछ नहीं मांगता और आपसे जिसे स्वाभाविक प्रेम है (बनावटी नहीं) आप उसके हृदय में सदैव निवास कीजिये। वही आपका अपना घर है।"

भक्ति में प्रभु समर्पण का अर्थ कायरतापरक समर्पण नहीं, यह तो शौर्य साहस का प्रमाण है। जब तक हृदय काम आदि विकार रूपी शत्रुओं से खाली नहीं हो जाता, तब तक उसे प्रभु को समर्पित नहीं किया जा सकता। भक्ति के मर्मज्ञ श्री काकभुशुण्डिजी के अनुसार वास्तव में भक्ति तो वही है जो इन विकारों को मार भगाये। वे उत्तरकाण्ड में गरुड़जी से कहते हैं—

बिरति चर्म असि ग्यान मद,
लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइअ सो हरि भगति,
देख खगेस बिचारि॥

"वैराग्य रूपी ढाल से स्वयं को बचाते हुए और ज्ञान रूपी तलवार से मद, लोभ और मोह रूपी शत्रुओं को मार करके जो विजय मिलती है, वही हरि भक्ति है। हे पक्षिराज ! इसे सोचकर देखिये।"

सोचकर देखने का आग्रह इसीलिये किया गया है कि भक्ति को लोग बिना सोचे-समझे मात्र दिखावा या निष्क्रियता मान लेते हैं। दिखावा आदि कोई अच्छी बात नहीं, अतः उनका प्रभु से प्रभु भक्ति से सम्बन्ध जोड़ना विचारहीनता का ही प्रमाण है। सच्ची भक्ति विचारपूर्वक ही प्राप्त की जा सकती है।

इस स्तर की भक्ति पर किसी वर्ग या व्यक्ति विशेष का एकाधिकार नहीं है। कोई भी इसे अपनाकर प्रभु के प्रेम का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिकारी बन सकता है। भगवान श्रीराम स्वयं यह घोषणा श्री काकभुशुण्डिजी को समझाते हुए कहते हैं–

पुरुष नपुंसक नारि वा,
जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव भज कपट तजि,
मोहि परम प्रिय सोइ ॥

"पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो सर्वभाव से मुझे भजता है, वही मुझे अधिक प्रिय है।"

भजन का अर्थ सेवा से होता है– (भज सेवायां) निष्कपट भाव से सेवा करने वाला हर व्यक्ति प्रभु का प्रेम पाता है। उसने क्या किया इसका महत्त्व नहीं, जितनी शक्ति सामर्थ्य है उसे निश्छल भाव से पूरा-पूरा लगा देवें-बदले में कुछ आकांक्षा न करें यह शुद्ध भाव ही प्रधान है। केवट ने वही किया। भगवान को गंगा पार कराने का काम भले ही चन्द पैसों का हो, किन्तु उसने पूरी तन्मयता से निश्छल भाव से उसे किया और फल पाया। यदि उसके मन में विकार होता, स्वार्थ होता, तो अँगूठी स्वीकार कर लेता। किन्तु उसने कुछ न लिया इसी से भगवान को बाध्य होकर भक्ति देनी पड़ी-

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय,
नहिं कछु केवट लेइ ।
बिदा कीन्ह करुनायतन,
भगति विमल बरु देइ ॥

"राम लक्ष्मण और सीता ने बहुत कोशिश की, किन्तु केवट ने कुछ नहीं लिया तब प्रभु ने उस निर्मल भक्ति का वर देकर विदा किया।"

भक्ति के लिये कर्मकाण्ड विशेष उसकी बारीकियाँ आवश्यक नहीं। मुख्य बात भावना की है। जो स्थूल कर्मकाण्डों को ही अत्यधिक महत्त्व देते हैं, उन्हें वाल्मीकि का उदाहरण देख लेना चाहिये। कर्मकाण्ड के नाम पर उन्हें शुद्ध नाम तक बोलना नहीं आता था। किन्तु गहन और शुद्ध भावना के कारण महानतम स्तर पा सके। उक्ति है–

उलटा नाम जपत जग जाना ।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना ॥

"यह सम्पूर्ण जगत जानता है कि राम के नाम को (मरा मरा) उल्टा जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के समान हो गये।"

ऋषि महर्षि ही नहीं, भगवान का सानिध्य पाकर केवट जैसे सामान्य, वाल्मीकि जैसे क्रूर, रीछ वानर जैसे उपेक्षित भी महान हो गये। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। मानसकार इस संदर्भ में अपना स्पष्ट मत व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

करमनास जल सुरसरि परई ।
तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥

"कर्मनासा नदी का जल गंगाजी के अमृत सदृश जल में पड़ जाने पर मिल जाने पर उसको कौन ऐसा होगा जो सिर पर धारण नहीं करेगा ?"

परमात्मा गंगा की तरह हैं। हमारे जीवन कितने ही दीनहीन क्यों न हों, यदि हम ईमानदारी से अपनी निकृष्ट परिपाटी को छोड़कर प्रभु के अनुरूप जीवनक्रम अपनाने का साहस करें, स्वयं के अस्तित्त्व को उनके अस्तित्त्व में घोल दें तो हम उसी रूप में बदल सकते हैं

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

धार्मिकता, कर्तव्य और कर्मफल

धर्म वस्तुत: एक आदर्श आचार संहिता है। इसकी रचना दार्शनिक आदर्शों और व्यावहारिक जीवन की आवश्यकताओं का संतुलन बनाकर की जाती है। इसमें व्यक्तिगत उत्कर्ष और सामाजिक हित, दोनों का समन्वय रखा जाता है । धार्मिकता का सम्बन्ध ईश्वरपरायणता से भी जोड़ा जाता है। यह गलत भी नहीं क्योंकि भगवान के अवतार का उद्देश्य धर्म स्थापन भी कहा जाता है। इस आधार पर ईश्वरनिष्ठ, आदर्शनिष्ठ तथा समाजनिष्ठ सभी प्रकार के व्यक्तियों को स्वाभाविक रूप से धर्मनिष्ठ भी होना चाहिये ।

किन्तु आजकल, धर्म के सम्बन्ध में जन मान्यता बड़ी भ्रामक हो गयी है। धर्म को जीवनोपयोगी आचार पद्धति के रूप में भुला दिया गया है और कुछ खेल-खिलौने जैसे क्रियाकलापों, पूजा-पत्री, खान-पान, शकुन, मुहूर्त आदि के रूप में उसे चलाया धकाया जा रहा है। यही नहीं धर्म परायण व्यक्ति को जहाँ सामाजिक और ईश्वरीय नियमों की मर्यादा का रक्षण करना चाहिये, वहाँ वह उनकी मर्यादा का उल्लंघन होने में ही धार्मिकता की सार्थकता समझता है। धर्म के नाम पर थोड़ा सा ढोंग ढकोसला करने वाला चाहता है कि उसके लिए स्वास्थ्य, सम्मान, पुण्य, सुख सम्पन्नता आदि सामाजिक एक प्राकृतिक नियम तोड़कर भी सुलभ होने चाहिये। धर्म कर्म करने वाला यह नहीं मानता कि यह आचरण उसके हितकर हैं बल्कि यह मानता है कि उन्हें करके वह समाज या भगवान पर अहसान कर रहा है। वह सोचता है कि इस सबसे भगवान प्रसन्न होंगे और बदले में अपने नियमों का उल्लंघन करके भी उसे दिव्य अनुदानों से निहाल कर देंगे। किन्तु यह बड़ी भारी भ्रान्ति है । भगवान उनसे प्रसन्न होते हैं जो उनकी मर्यादाओं का रक्षण करते हैं न कि उन्हें तोड़कर अपनी महत्वाकांक्षा पूरी करना चाहते हैं। रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में प्रजाजनों को उपदेश करते हुए भगवान राम स्पष्ट घोषणा करते हैं—

सोई सेवक प्रियतम मम सोई ।
मम अनुशासन माने जोई ॥

"वही मेरा सेवक है और वहीं सबसे अधिक प्रियतम है, जो मेरा अनुशासन मानता है । "

भगवान का अनुशासन है कि अपने कर्म के अनुसार फल प्राप्त करो किन्तु हम चाहते हैं कि मात्र स्तुति, आरती या प्रसाद चढ़ाने से प्रसन्न होकर भगवान हमें इच्छित फल दे दें । यह भगवान का अनुशासन तोड़ना ही हुआ- फिर वह हम पर प्रसन्न कैसे होंगे ? यह सामान्य क्रियायें धर्म तो जीवन में धारण किया जाता है। राज्याभिषेक के बाद श्रीराम अपने मित्र निषादराज को यही समझाते हैं—

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू ।
मन, क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥

(फिर कहा) "अब तुम भी घर जाओ। वहाँ मेरा स्मरण करते रहना और मन वाणी तथा कर्म से धर्म के अनुसार चलना । "

भगवान का स्मरण ठीक है, किन्तु उसके साथ-साथ धर्म कर्तव्यों का पालन वह भी दिखावे के रूप में नहीं, मन, वचन और कर्म से किया जाना चाहिये । मन, वचन एवं कर्म से समानता सज्जन व्यक्तियों का लक्षण है तथा उनमें भेद, कपट आचरण दुष्ट व्यक्तियों का लक्षण है। जो व्यक्ति भगवान के नियमों को महत्त्व न देकर मनमानी करते हैं, उनके लिए वह करुणानिधान न रहकर कालरूप बन जाते हैं। उत्तरकाण्ड में भरत को सन्त-असन्तों के लक्षण समझाते हुये श्रीराम कहते हैं—

काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता ।
सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥

"हे भाई ! मैं उनके लिऐ भयंकर हूँ और उनके अच्छे और बुरे कर्मों का (यथायोग्य) फल देने वाला हूँ ।

हमारे अनैतिक आचरण के फलस्वरूप जब भगवान हमें दण्ड देता है— कष्ट आते हैं तो हम अपने भाग्य को कोसते हैं और दूसरों पर उसका दोष फेंकते हैं। यह गलत ढंग है । मनुष्य अपनी दुर्गति के लिऐ सबसे अधिक स्वयं ही जिम्मेदार होता है। लंका काण्ड के अन्तर्गत युद्ध में जब रावण अपने परिजनों सहित मारा जाता है तो देवता देखकर यह नहीं कहते कि अरे बेचारे को राम ने मार डाला बल्कि वे कहते हैं—

विश्व द्रोह रत यह खल कामी ।
निज अघ गयऊ कुमारग गामी ॥

"रावण संसार का विरोधी, दुष्ट और कामी था, यह कुमार्गगामी अपने पापों के ही कारण मारा गया ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरों के ऊपर कर्मानुसार कष्ट आते देखकर लोग यह सिद्धान्त दोहराते रहते हैं, किन्तु जब स्वयं अपने ऊपर वैसी प्रतिक्रिया होती है तो हड़बड़ा जाते हैं परन्तु समझदार व्यक्ति किसी भी स्थिति में इस सिद्धान्त को नहीं भूलते। कैकेयी द्वारा राम को वनवास के लिऐ भेजने के आग्रह पर अड़ जाने पर दशरथजी विकल हो उठे, किनतु उन्होंने, कैकेयी की दुष्टता को अपने पापकर्मों की ही प्रतिक्रिया माना, वे बोले–

सो सब मोर पाप परिनामू।
भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥

"यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय में होनी मेरे विपरीत हो गई है।"

वन जाने के पूर्व जब राम उनके सामने पहुँचे तब वे और भी अधिक विकल थे किन्तु उन्हें कर्मफल का सिद्धान्त याद रहता है, वे कहते हैं–

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी।
ईस देई फल हृदय बिचारी॥

"मनुष्य के द्वारा किये गये शुभ और अशुभ कर्मों के अनुरूप फल ईश्वर सोच विचार कर देता है।"

राजा दशरथ धर्मपरायण थे। राम वन गमन के प्रकरण में उन्हें इतना अधिक कष्ट पाते देख रानी कौशल्या को शोक होने लगा। तब राजा ने इस पुत्र वियोग की असह्य पीड़ा को अपने कर्मानुसार ही उचित ठहराया। श्रवण कुमार के वध और उसके पिता के श्राप का उन्हें ध्यान आया। वह प्रकरण उन्होंने कौशल्या को सुनाया–

तापस अन्ध साप सुधि आई।
कौशल्यहिं सब कथा सुनाई॥

"राजा को अंधे तपस्वी (श्रवण कुमार के पिता) की याद आई। उन्होंने सब कथा कौशल्या को सुनायी।"

भगवान कर्म व्यवस्था को बड़ी कड़ाई से लागू रखते हैं। किन्तु दशरथ राम के पिता थे, फिर भी अपने कर्मफल से उन्हें मुक्ति न मिल सकी। उनके पूर्व जन्म के तप के कारण उन्हें पिता का सम्मान देना उचित था तो उनकी भूल का दण्ड देना भी उतना ही आवश्यक था। भगवान के इस विधान को श्रेष्ठजन जानते हैं और मर्यादा का पालन करते हैं। चित्रकूट प्रसंग में देव गुरु बृहस्पति देवराज इन्द्र को यह सिद्धान्त समझाते हुए कहते हैं–

करम प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करइ सो तप फल चाखा॥

"भगवान ने विश्व को कर्म प्रधान बना रखा है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।"

इस कर्म प्रधान मर्यादा को भगवान तथा उनके सहयोगी भी पूरी मान्यता देते हैं। वन जाते समय राम सीताजी सहित श्रंगवेरपुर में कुश की शैया पर सोते हैं। इस स्थिति में उन्हें देखकर निषादराज दुखी होता है तथा उन्हें वन भेजने वालों को भला-बुरा करने लगता है। तब लक्ष्मणजी उसे समझाते हुए वही कर्म सिद्धान्त बतलाकर शान्त करते हैं। वे कहते हैं–

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता॥

"हे भैया! दुनियाँ में कोई किसी को न दुख देने में समर्थ है न सुख देने में। सभी व्यक्ति अपने किये हुये कर्मों का ही फल भोगते हैं।

ऐसा ही प्रसंग चित्रकूट में अयोध्या और जनकपुरी का सारा समाज एकत्रित होने पर उठ खड़ा होता है। सीता को वनवासिनी वेष में देख माता सुनैना स्वाभाविक रूप से भावुक हो उठती है तथा भाग्य और दैव को दोष देने लगती है। तब माता कौशल्या उन्हें कर्म सिद्धान्त का हवाला देकर किसी को दोष न देने का आग्रह करती हैं–

कौशल्या कह दोसु न काहू।
करम विवस दुख सुख छति लाहू॥

"कौशल्याजी कहने लगीं कि किसी का यह दोष नहीं है। सब कर्मवश दुख-सुख, हानि और लाभ पाते हैं।"

मनुष्य अपनी छोटी बुद्धि से बहुत बार औचित्य-अनौचित्य समझ नहीं पाता और अपने अज्ञान के कारण व्यवस्था को दोष देने लगता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर कौशल्याजी ने अगला स्पष्टीकरण दिया। उन्होंने कहा कि कर्म विधान के ताने-बाने बड़े कठिन हैं। उन्हें हर कोई नहीं समझ सकता। जो विधाता शुभाशुभ कर्मों की व्यवस्था का मर्मज्ञ है, वही उसे जानता है–

कठिन करम गति जानि विधाता।
जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"शुभ और अशुभ सभी फलों को देने वाला- विधाता ही कर्म की कठिन गति को जानता है ।"

जन साधारण का सहज स्वभाव है कि हानि का दोष दूसरों को देने और लाभ का श्रेय स्वयं पाने का प्रयास करता है । किन्तु कर्म सिद्धान्त के प्रति आस्थावान व्यक्ति हानि अथवा लाभ दोनों का उत्तरदायी कर्ता को ही मानता है । गीधराज जटायु सीता की रक्षा के लिऐ रावण से जूझ गया । उसे भगवान ने परमगति का अधिकारी घोषित किया । वह इसे भगवान का अनुग्रह मानने लगा । किन्तु भगवान राम ने उसका श्रेय स्वयं न लेकर जटायु को ही दिया—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई ।
तात कर्म निज तें गति पाई ॥

"नेत्रों में जल भर श्री रघुनाथजी कहने लगे हे तात ! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से ही यह दुर्लभ गति पायी है ।"

धर्मनिष्ठ व्यक्ति को बहुत संतुलित रहकर औचित्य का निर्वाह करना पड़ता है । सांसारिक स्नेह का दबाव हो या आतंक भय, प्रशंसा या आलोचना का, उसे विचलित नहीं होना चाहिये । अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक रहते हुए अपने गौरव की मर्यादा स्वयं ही बनानी पड़ती है । श्रीराम में यह विशेषतायें होने से उन्हें धर्मधुरन्धर कहा गया । चित्रकूट सभा में गुरु वशिष्ठ उनके सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी देते हैं—

धरम धुरीन भानुकुल भानू ।
राजा राम स्वबस भगवानू ॥

"सूर्यकुल के सूर्य राजा श्रीरामजी धर्म धुरन्धर और स्वयं में मर्यादित (मर्यादा पुरुषोत्तम) भगवान हैं ।"

जिसका अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं, वह धर्म मर्यादा का पालन नहीं कर सकता क्योंकि या तो वह भावुकता में बह जायेगा या उत्तेजना में बहक जायेगा । मनुष्य में करुणा और दृढ़ता दोनों ही समयानुसार उभरनी चाहिये । भगवान राम इस दृष्टि से भी आदर्श की कसौटी पर खरे हैं । वे कठोर से कठोर और मृदुल से भी मृदुल बन सकते हैं । राज्याभिषेक के बाद सहयोगी वानर वीरों को विदा कर दिया जाता है । हनुमान बीच से लौट जाते हैं और अंगद के स्नेह का विवरण श्रीराम को सुनाते हैं, तो वे स्नेह से द्रवित हो जाते हैं । उस समय काकभुशुण्डिजी टिप्पणी करते हुये कहते हैं—

कुलिसहु चाहि कठोर, अति कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित्त खगेश राम कर, समुझि परई कहु काहि ॥

"काकभुशुण्डिजी कहते हैं, हे पक्षिराज ! रामजी का वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल चित्त किसकी समझ में आ सकता है ?"

श्रीराम ने सद्भावना के निर्वाह के साथ साथ अपने कर्तव्यों का पालन बड़ी दृढ़ता से किया । वनवास प्रसंग में दशरथजी को प्रसन्न करने के लिऐ वे प्रयत्नशील हैं । स्वयं भी उनके दुख से दुखी हैं किन्तु उसके कारण वे अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते । स्वयं राजा दशरथ चाहते हैं कि वे मर्यादा तोड़ दें और वन को न जायें, किन्तु राम कर्तव्य पथ पर दृढ़ बने ही रहे । मानसकार लिखते हैं—

लखी राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥

"किन्तु उन्होंने राम का रुख देखा तो, उन्हें मालूम हो गया कि धर्म पालन में तत्पर धीर और बुद्धिमान राम रुकेंगे नहीं ।"

राम स्वयं तो कर्तव्यपालन में दृढ़ हैं ही साथ ही सबको भी यही प्रेरणा देते हैं । कष्टों के भय से कर्तव्य से विमुख होना उन्हें मान्य नहीं । उसके लिये उन्होंने अपने आदर्श बना रखे हैं । मन्त्री सुमन्त्र उनके वन जाने से दुखी हैं । बार-बार कष्टों का हवाला देने लगते हैं तो वे उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि धर्म कर्तव्य के निर्वाह के लिऐ कष्ट सहन हमारी सांस्कृतिक परम्परा का अंग है—

सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसा ।
सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥

"प्राचीन कथाओं का विवरण देते हुए, रामजी ने सुमंत्रजी से कहा धर्म की रक्षा के लिऐ राजा शिवि, राजा हरिश्चन्द और दधीचि ने करोड़ों दुख सहन किये ।"

युगानुरूप धर्म कर्तव्यों का स्वरूप तो बदलता रहता है, किन्तु उनके पालन के सिद्धान्त तो वही रहते हैं । बड़े से बड़े कष्ट सहकर भी कर्तव्य पालन का साहस रखना श्रीराम का आदर्श है । चित्रकूट में भरतजी को समझा-बुझाकर वे अयोध्या वापस लौटा देते हैं । कर्तव्यपालन की महत्ता बताकर स्वयं भारी कष्ट सहकर भी अविचल भाव से कर्तव्यरत रहने का आदेश देते हैं—

सो बिचार सहि संकट भारी ।
करहु प्रजा परिवार सुखारी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"इसे विचार (अपनी सांस्कृतिक गरिमा को ध्यान में रखकर) भारी कष्ट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो।"

अपने परिजनों तथा निकटवर्ती लोगों का हित साधन करने को वे श्रेष्ठ धर्म मानते हैं, किसी प्रकार कोई नाम या स्तुति रटना छोटे-मोटे पूजा उपचार को नहीं। स्वयं अपने जीवन में भी यही किया तथा प्रेरणा दी। उत्तरकाण्ड में राज्याभिषेक के बाद श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण बतलाते हुए वे भरत जी से धर्म की यह व्याख्या करते हैं—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥

"हे भाई! दूसरों की भलाई के समान कोई धर्म नहीं और दूसरों को दुख देने के समान कोई पाप नहीं है।"

इस कथन को ध्यान में रखकर उन्हें सावधान हो जाना चाहिए जो अपनी स्वर्ग मुक्ति के लिऐ भरसक प्रयास करते हैं, समाज का चाहे जो कुछ होता रहे।

भरत इस प्रकार के उपदेश के लिए उपयुक्त पात्र हैं। प्रारम्भ से ही अपने कर्तव्य के प्रति सावधानी बरतना उनका स्वभाव बना रहा। श्रीराम को मनाने के लिये चित्रकूट प्रस्थान का निर्णय होते ही सारे अयोध्यावासी नर-नारी उतावले होकर आगा-पीछा सोचे बिना तैयार होने लगे। किन्तु भरत जागरूक रहे। वे स्वयं को श्रीराम की सम्पत्ति का संरक्षक ट्रस्टी मानते हैं। इस नाते दुख और स्नेह की अधिकता में भी उसकी सुरक्षा अपना कर्तव्य मानते हैं। वे सोचते हैं—

सम्पति सब रघुपति कै आही।
जौ बिनु जतन चलौं तजि ताही॥

"यह सारी सम्पत्ति भगवान की है। इसकी सुरक्षा की समुचित व्यवस्था किये बिना यदि ऐसे ही चल दूँ तो उचित नहीं।"

उनमें साधन सम्पत्ति की सुरक्षा के प्रति इतनी सजगता है किन्तु अपने लिए उसका उपयोग करना उन्हें अनुचित लगता है। वे अपने आपको प्रभु का सेवक मानते हैं। अत: उनकी अपेक्षा कम साधन सुविधाओं का उपयोग अपना धर्म मानते हैं। श्रीराम वन में पैदल चलते हैं। यह सोचकर वे वाहन का उपयोग नहीं करते। लोग उनसे वाहन पर चढ़ने को कहते हैं तो उन्होंने जो उत्तर दिया, वह अपने आपको सेवक कहने वाले के लिए मन्त्र की तरह स्मरणीय है। भरतजी कहने लगे—

सिर भर जाउ उचित अस मोरा।
सबतें सेवक धर्म कठोरा॥

"मेरे लिए तो उचित यही है कि मैं सिर के बल जाऊँ। क्योंकि मैं श्रीराम का सेवक हूँ और सेवक का धर्म बड़ा कठिन है।"

अपने को सेवक कह देना आसान है किन्तु सेवक के कर्तव्य का पालन कठिन है। जन सेवक कहलाकर जन साधारण के स्तर से अधिक सुविधायें लेना सेवा धर्म का उपहास मात्र है।

भरतजी को श्रीराम ने कष्ट सहकर भी प्रजा और परिवार पालन के अपने उत्तरदायित्त्व के प्रति जागरूक रहने का निर्देश दिया था। उसे उन्होंने किस मनोयोग और तन्मयता से पाला—यह देखने योग्य है। अयोध्या में स्वर्ग जैसी साधन सम्पत्ति थी। किन्तु उसका उपयोग भरत स्वय नहीं करते। व्यवस्था के लिए जितनी तत्परता है, उपयोग में उतनी उदासीनता। साधन सम्पन्न नगरी में भरत किस प्रकार रहते हैं—

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चम्पक बागा॥

"उसी नगर में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं जैसे चम्पा के बाग में भौंरा।"

किन्तु यह उदासीनता कर्तव्यों के प्रति नहीं उसमें तो भरत जी की जागरूकता अद्वितीय है। दिन में ही नहीं रात्रि में भी वे स्वयं सतर्क रहते हैं। लक्ष्मणजी को शक्ति लगने पर हनुमानजी संजीवन बूटी के लिए द्रोणाचल पर्वत लेकर लौटते हैं। आधी रात को वे अयोध्या नगर के ऊपर से निकलते हैं। भरत उस समय भी सतर्क हैं—

देखा भरत विशाल अति,
निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ,
चाप श्रवन लगि तानि॥

"विशालकाय हनुमान को देखकर भरत को उनके राक्षस होने का सन्देह हुआ और धनुष पर बिना नोंक का वाण रखकर कान तक धनुष खींचकर मार दिया।"

भरत की सावधानी और सतर्कता यहाँ बहुपक्षीय है। असुर हो इस शंका में उन्हें गिरा लिया, किन्तु शंका में गलत व्यक्ति मारा न जाय इसलिए बिना फर का वाण ही चलाते हैं। अपनी सर्वांगीण कर्तव्य बुद्धि और साधना के कारण उनकी धर्म कर्तव्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परायणता का लोहा सभी मानते हैं। देवता भी चित्रकूट में उनकी प्रशंसा में कहते हैं–

जौं न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धुरि धरनि धरत को॥

''तुलसीदासजी कहते हैं कि यदि संसार में भरत का जन्म न होता तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्म की धुरी को कौन धारण करता।''

सचमुच अपने कर्तव्य का इतनी कुशलता से निर्वाह करने वाला व्यक्ति ही धर्म का आधार कहला सकता है। भगवान श्रीराम धर्म धुरन्धर हैं तो भरतजी भी धर्म की धुरी धारण करने वाले हैं। धर्म कर्तव्यों का पालन करने वाला साधक भगवान के समान ही गिना जाता है। यही नहीं वह उनसे भी अधिक सराहना पा सकता है। भरत की कर्तव्य पालन की प्रखरता उन्हें राम से भी आगे ले जाती है। नन्दीग्राम में भरत की जीवन-चर्या देखकर बुद्धि से उनकी गरिमा तौल कर लोग कहते हैं–

दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू।
सब विधि भरत सराहन जोगू॥

''राम और भरत दोनों की दिशाओं को समझ (दोनों के कर्तव्य पालन की तुलना करते हुए) सब लोग कहते हैं (कि वास्तव में) भरत ही सब प्रकार सराहना करने योग्य है।''

सच्ची धर्मनिष्ठा, आदर्श कर्तव्य परायणता ऐसी ही अद्भुत है। उसे यदि ठीक प्रकार समझा जा सके और जीवन में धारण करने का साहस जुटाया जा सके तो व्यक्ति न केवल अपने आप में धन्य हो सकता है बल्कि अपने प्रभाव और प्रेरणा से अनेको को धन्य बना सकता है।

ooo

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीति के विरुद्ध संघर्ष

मनुष्य के व्यक्तिगत उत्कर्ष एवं सामाजिक उत्थान के लिये श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का विकास तथा नेक व्यक्तियों का निर्माण एवं प्रोत्साहन आवश्यक है। किन्तु इसके साथ ही अनैतिक प्रवृत्तियों और दुष्ट व्यक्तियों के उन्मूलन की भी आवश्यकता को भुलाया नहीं जाना चाहिये। इसके लिये समय और परिस्थितियों के अनुसार असहयोग,विरोध, प्रतिरोध एवं संघर्ष आदि की नीति अपनायी जानी चाहिये।

जन साधारण में एक आम धारणा बन गयी है कि महानता का अर्थ है— सीधा-सादा नम्र और दयालु होना। किन्तु यह एकांगी चिंतन है। नम्रता, दयालुता, सौम्यता आदि बड़े उपयोगी और महत्त्वपूर्ण गुण हैं, किन्तु शौर्य, साहस और दृढ़ता की गिनती भी गुणों में ही होती है। नम्रता और मिठास सभी जगह कारगर नहीं हो जाती, जहाँ कोई व्यक्ति अहंकार या भ्रान्तिवश नम्रता को हीनता मानने लगे उसका गलत लाभ उठाने का प्रयास करे तो फिर मनुष्य को थोड़ा रौद्र रूप भी बनाना पड़ता है। शालीनता की रक्षा तो वैसे भी की जा सकती है किन्तु शब्दों और व्यवहार में थोड़ी कड़ाई भी लानी पड़ती है।

रामचरित मानस में धनुष यज्ञ प्रकरण में श्री परशुराम जी के आने पर कुछ ऐसी स्थिति आ जाती है। परशुराम जी अचानक उत्तेजित हो जाते हैं, लक्ष्मणजी उनकी उत्तेजना को अनुचित मानकर उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं। वे लक्ष्मण को डरा-धमकाकर चुप करना चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मणजी पर कुछ प्रभाव नहीं होता। श्रीराम नम्रतापूर्वक उन्हें समझाने का प्रयास करने लगे, तो परशुराम जी लक्ष्मण का रोष राम पर ही उतारने लगे। तब श्रीराम ने यह अनुभव किया कि एक ही नीति हर जगह चलाना उचित नहीं। वे कहते हैं—

गुनह लखन कर हम पर रोसू।
कतहु सुधाइहु ते बड़ दोसू॥

"दोष तो लक्ष्मण का है और परशुराम जी क्रोध मेरे ऊपर दिखा रहे हैं। अधिक सरलता भी कभी-कभी गलत सिद्ध होती है।"

ऐसे प्रसंगों के अतिरिक्त ऐसे अवसर भी सामाजिक जीवन में आते हैं, जब मनुष्य को प्रतिकार के लिये खड़ा होना पड़ता है। समाज में कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं, जो सौम्यता की, सज्जनता की भाषा समझते ही नहीं। जब तक उन्हें सशक्त प्रतिरोध से पाला नहीं पड़े वे अपने स्वार्थपूर्ण अनैतिक कार्यों को छोड़ना ही नहीं चाहते और यदि उन्हें न रोका जाय जो समाज के उत्कर्ष के लिये किये जाने वाले कार्यों को या तो वे चलने ही नहीं देते या फिर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने लगते हैं। ऐसे दुष्ट तत्त्वों को दण्ड देना हर समाजनिष्ठ का कर्तव्य हो जाता है। उन्हें भाग्य भरोसे नहीं छोड़ देना चाहिये। भाग्य का लिखा ही होगा ऐसा सोचना वस्तुतः कायरता है, सज्जनता नहीं। लंका विजय के लिये सेतुबन्ध के पूर्व समुद्र पार करने का उपाय खोजा जाता है। दैव को मंजूर होगा तो समुद्र मार्ग दे देगा, यह बात उठते ही लक्ष्मणजी उत्तेजित हो उठे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-

कादर मन कहु एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

"यह दैव तो कायर के मन को तसल्ली देने का उपाय है। आलसी लोग ही दैव-दैव कहा करते हैं।"

संस्कृति की रक्षा के लिये किये जाने वाले अभियान में जो बाधा पहुँचाये, मार्ग न दे- उसे क्षमा नहीं किया जाना चाहिये, यह लक्ष्मण का भाव था। बाद में हुआ भी यही। श्रीराम ने पहले सज्जनोचित उपाय किया। यह चाहा कि श्रेष्ठ कार्य के लिये समुद्र भी सहयोग करे। किन्तु जब उसने जड़ता दिखाई, तीन दिन तक कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो उन्होंने अपना रौद्र रूप प्रकट किया। जो अपनी जड़ता के कारण औचित्य का मूल्य न समझे उन्हें भय दिखाकर काबू में लाना उचित है—

विनय न मानत जलधि जड़,
गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब,
भय बिन होइ न प्रीति॥

"इस प्रकार तीन दिन बीत गये, परन्तु जड़ समुद्र ने विनय नहीं मानी। तब तो श्रीराम जी क्रोध के साथ बोले— बिना भय के प्रेम नहीं होता।"

विनय को जो दुर्बलता समझे उसे शक्ति का परिचय देना ही चाहिये। श्रीराम समुद्र को उसकी दुष्टता का दण्ड देने के लिये तत्पर हो गये। वे लक्ष्मणजी से बोले—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लछिमन बान सरासन आनू ।
सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥

"हे लक्ष्मण ! धनुष वाण लाओ ! मैं अग्निवाण से समुद्र को सोख डालूँगा ।"

किसी को मारना या सताना अच्छी बात नहीं । किन्तु जिन कारण अनेकों को पीड़ा पहुँचती हो, उन्हें दण्ड देना— नष्ट कर देना उचित है— न्याय संगत है । भगवान के जन्म के उद्देश्य के साथ ऐसे दुष्टों, असुरों के वध का कार्य भी जुड़ा है । राम जन्म के उद्देश्य के सम्बन्ध में मानस में लिखा है—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह,
राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तरहिं बिसद जस,
राम जन्म कर हेतु ॥

"अवतारी पुरुष राक्षसों को मारकर देवत्व की स्थापना करते हैं । अपने सनातन पवित्र यश आचरण का प्रकाश फैलाते हैं । यही भगवान के जन्म का उद्देश्य कहा गया है ।"

यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि देवत्व की स्थापना के प्रयास के साथ असुरत्व के उन्मूलन हेतु संघर्ष भी करना पड़ता है । उसके लिये साहस, शौर्य, सूझ-बूझ एवं उचित नीति आदि की आवश्यकता होती है, उन्हें व्यक्ति समझें और अपनायें तभी सफलता मिल सकती है । भगवान श्रीराम के जीवन में वह सभी बातें हैं, जिनमें समयानुरूप सफल संघर्ष की प्रेरणा और विधि पायी जाती है इसीलिये मानसकार ने राम कथा के महत्त्व के प्रकरण में कहा है—

समर विजय रघुवीर के,
चरित जे सुनहि सुजान ।
विजय विवेक विभूति निज,
तिनहिं देहि भगवान ॥

"तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम द्वारा संग्राम विजय के चरित्र जो समझदार व्यक्ति सुनेंगे, भगवान उन्हें सदैव विजय, विवेक और विभूतियाँ देंगे ।"

सुनने पर समझदार व्यक्तियों को ही विजय आदि मिलने की बात सोद्देश्य कही गयी है । समझदार व्यक्ति जो चरित्र सुनता है उसका निष्कर्ष निकालकर उसे अपने जीवन में अपनाता भी है । ऐसा ही व्यक्ति सुनने का लाभ पा सकता है । समाज में संघर्ष की आवश्यकता, उसकी मर्यादा और विधि न समझने से ही गुणवान व्यक्ति भी असफल होते हैं । अस्तु रामचरित्र से यह प्रेरणा भी लेनी ही चाहिये ।

श्रीराम ने अनीति को कभी सहन नहीं किया, पीड़ितों को देखकर उनकी करुणा उभरती है तथा वह दुष्टों के प्रति रोष के रूप में बदल भी जाती है । वे प्रबल प्रतिकार के लिये तैयार हो जाते हैं । वन में ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखकर उनकी प्रतिक्रिया यों प्रकट हुई-

निसिचर हीन करऊ महि,
भुज उठाय पन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि,
जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

"श्री रामचन्द्रजी ने हाथ उठाकर प्रतिज्ञा की, कि धरती को राक्षसों से रहित कर दूँगा । फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा-जाकर उनको सुख दिया ।"

करुणा और शौर्यपूर्ण प्रतिकार का सुन्दर समन्वय यहाँ देखने को मिलता है । राक्षसों के प्रति मन में तीव्र रोष है । किन्तु ऋषियों के साथ वही करुणा और स्नेह का व्यवहार करते हुए उन्हें सुख पहुँचाते हैं ।

अपनी सामर्थ्य और शौर्य का सार्थक प्रयोग श्रीराम से सीखें । क्षत्रिय अपने शौर्य के अभ्यास के लिये शिकार किया करते हैं । श्रीरामचन्द्रजी निरीह पशुओं का नहीं, खोज-खोज कर पशु प्रवृत्ति के नराधम राक्षसों का शिकार करते हैं । खर दूषण के दूत जब उनके पास पहुँचते हैं और बिना युद्ध किये समझौते का प्रस्ताव रखते हैं तो श्रीराम का ओजपूर्ण स्वर फूट पड़ता है—

हम छत्री मृगया बन करहीं ।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥

"हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे समान दुष्ट पशुओं को तो खोजते ही फिरते हैं ।"

अनीति के साथ किसी प्रकार के समझौते का यहाँ प्रश्न नहीं, उन्हें तो खोज-खोज कर समाप्त करने का संकल्प है । बहुधा लोग प्रतिद्वन्दी को अधिक सबल देखकर डर जाते हैं । वह हीन भावना श्री राम को स्पर्श भी नहीं करती । वे अनीति का प्रतिरोध करना अपना कर्तव्य मानते हैं । उसके लिये भयंकर खतरा उठाने को भी तैयार रहते हैं । दूतों से वे अपना मत प्रकट करते हुए आगे कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं ।
एक बार कालहु सन लरहीं ॥

श्रीराम ने कहा– "हम ताकतवर शत्रु का देखकर नहीं डरते हैं । एक बार मृत्यु भी आ जावे तो उससे लड़ सकते हैं । "

उन्हें अपने पौरुष पर विश्वास है तथा अपने कर्तव्य के प्रति गौरव का बोध भी । सत्पुरुषों के पोषण और दुष्टों को दण्ड देने के अपने संकल्प को वे उनके सामने रखते हुए उन्हें अच्छी तरह फटकार देते हैं । उनके कथन अथवा व्यवहार में कहीं जरा भी कमजोरी नहीं झलकती–

यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक ।
मुनि पालक खल सालक बालक ॥

"यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु राक्षस कुल का विनाश करने वाले और मुनियों की रक्षा करने वाले हैं । हम बच्चे हैं, परन्तु दुष्टों को सजा देने वाले हैं । "

इसका यह अर्थ नहीं कि श्रीराम को लड़ने का बड़ा शौक था और वे अकारण ही लोगों से उलझते फिरते हों । उनका उद्देश्य सत्प्रवृत्तियों की स्थापना तथा सत्पुरुषों का पोषण है । कोई उसमें बाधक न हो यही वे चाहते हैं । शस्त्र तो वे उस स्थिति में उठाते हैं जब अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता । अन्यथा उनका प्रयास यही रहता कि शत्रु पक्ष का भी अहित न हो अपना उद्देश्य भी पूरा हो जाय । समुद्र के साथ भी उन्होंने यही ढंग अपनाया और रावण के साथ भी वही किया । समुद्र पारकर, अपनी शक्ति का परिचय देने के बाद उन्होंने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा और कहा–

काज हमार तासु हित होई ।
रिपु सन कहेहु बतकही सोई ॥

"हे अंगद ! जिससे हमारा कार्य और उसका हित हो तुम शत्रु से वही बातचीत करना । "

यदि अपने उद्देश्य में शत्रु भी बाधा नहीं पहुँचाता तो उसका भी अनिष्ट नहीं चाहना उचित है । किन्तु यदि अपना सगा व्यक्ति भी आदर्श में बाधक बनता है तो उसका प्रतिरोध किया जाना भी उचित ही है । श्रीराम को बनवास देकर भरत को राज्य दिलाने की चाल कैकेयी ने चली थी । किन्तु भरत ने इसका समर्थन नहीं किया, उन्होंने अपनी खुली असहमति प्रकट की । माता अपने स्थान पर सम्माननीय है, और रहे । किन्तु यदि वही माता अनीति करने के लिए आग्रह करे, यह उन्हें जरा भी सहन नहीं । वे क्षुब्ध होकर कैकेयी से कह उठते हैं–

जो हसि सो हसि मुह मसि लाई ।
आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

"तू जो भी हो, मुँह में कालिख लगाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ । मैं तेरा मुह देखना भी पसन्द नहीं करता । "

नैतिकता के समर्थन में दृढ़तापूर्वक अनीति के प्रतिरोध का आदर्श श्री भरत जी प्रस्तुत करते हैं । माँ को ही नहीं, गुरु सहित सारे मंत्रियों और सभासदों को भी उनका यही उत्तर है ।

राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वचनों को ध्यान में रखकर वे सब सिंहासन पर बैठने को उचित बतलाते हुए भारत से भी आग्रह करते हैं । किन्तु भरत अपना मत दूसरे ही ढंग से प्रस्तुत करते हैं । वे कहते हैं कि राजा दशरथ और कैकेयी से जो भूलें हुई हैं, उस परम्परा को आगे न बढ़ाना ही उचित है । वे उस प्रसंग को छोड़कर आदर्श को ध्यान में रखकर हितकारी सलाह की माँग उन सबसे करते हैं–

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई ।
जो आचरण मोर भल होई ॥

"आप लोग तो मुझे वही सरल शिक्षा दीजिये, जिसके अनुसार आचरण करने से भलाई हो । "

सहयोग और समर्थन व्यक्ति को नहीं सिद्धान्त को दिया जाना चाहिये, यह भरत ने सिद्ध कर दिया । उनका यह कार्य उचित ही नहीं, अति प्रशंसनीय माना गया ।

परिस्थितियाँ कभी ऐसी भी होती हैं कि औचित्य के लिये अपने से बड़ों का खुलकर विरोध भी करना पड़ता है । रावण राम से लड़ने को तैयार है, जब कि उसका पक्ष गलत है । सभासद उसी की हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं । तब रावण पुत्र प्रहस्त आगे आकर कहता है–

सबके बचन स्रवन सुनि,
कह प्रहस्त कर जोर ।
नीति विरोध न करिअ प्रभु,
मंत्रिन्ह मति अति थोर ॥
कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती ।
नाथ न पूर आव एहिं भाँती ॥

"सबकी बात सुनकर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर रावण से कहा– हे नाथ आप नीति का विरोध न करें । इन मंत्रियों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि कम है । ये सलाहकार धूर्त हैं और खुशामद की बातें कर रहे हैं । इस प्रकार से काम बन नहीं सकता । ''

प्रहस्त ने शालीनता से किन्तु दृढ़तापूर्वक कह दिया कि ये मंत्री और सलाहकार मन्द बुद्धि और दुष्ट हैं, इनकी सलाह न मानें । राम की सेना समुद्र बाँधकर इस पार आ चुकी थी । पर रावण के मंत्री लोग कह रहे थे— अरे ! वानरों की क्या गिनती हम तो उन्हें यों ही खा जायेंगे । प्रहस्त ने इसे खुशामदी और मूर्खतापूर्ण उक्ति बतलाया और कहा कि जब हनुमान अकेले लंका को तहस-नहस कर गये, तब किसी ने उन्हें क्यों न खा डाला ? शत्रुबल को देखकर डींग हाँकना गलत है । अपना अनुचित हठ छोड़ना चाहिये ।

किन्तु रावण ने उसकी सलाह नहीं मानी । तब वह सभा छोड़ कर चला गया और पुनः स्पष्ट शब्दों में सावधान करता गया—

हित मत तोहि न लागत कैसे ।
काल बिबस कहँ भेषज जैसे ॥

''तुम्हें हित की सलाह अच्छी नहीं लग रही है । यह वैसी ही स्थिति है, जैसे मरणासन्न रोगी दवा को अरुचिकर कहकर त्याग दे ।''

अपना कोई निकट का व्यक्ति गलत कार्य करे तो उसे न रोकना उसके साथ शत्रुता करने जैसा ही है । वह बुरा माने तो भी भयवश मौन रहना ठीक नहीं । पत्नी को पति की अनुगामिनी कहा गया है । किन्तु पति भूल करे तो पत्नी को चाहिये कि उसका विरोध करे । मंदोदरी भी यही कहती है । रावण को वह बार बार समझाती है, अनीति छोड़कर नीति मार्ग पर आने का आग्रह करती है । फिर भी वह नहीं मानता तो उसे कड़े शब्दों में सावधान करती हुई कहती है—

निकट काल जेहि आवत साईं ।
तेहि भ्रम होहिं तुम्हारिहिं नाईं ॥

'' हे स्वामी ! जिसका काल समीप आ जाता है, उसे आपकी ही तरह भ्रम होने लगता है । ''

उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि यह तुम्हारे मरने के लक्षण हैं । पत्नी के नाते उसका यह प्रयास सर्वथा उचित ही कहा जायेगा ।

बात किसी हद तक भी पहुँच गई हो, किन्तु जब उसमें अनौचित्य दिखे तो उसे मान, अपमान, प्रतिष्ठा आदि की आड़ में चलने न देकर, उसे हर कीमत पर ठीक करने का प्रयास करना उचित ही है । पार्वती विवाह प्रसंग में मैना का यही रूप देखने को मिलता है । नारदजी ने उमा के लिये शिवजी को उपयुक्त वर बतलाया, उसके लिये तप भी कराया गया । वह सिद्ध भी हुआ । बारात द्वार पर आ पहुँची । किन्तु मैना को लगा कि यह वर मेरी कन्या के अनुरूप नहीं है । बस, वे सबकी अवज्ञा करके प्रबल प्रतिरोध के लिये तैयार हो गई । अनुपयुक्त वर से कन्या का विवाह किसी भी शर्त पर न होने देने की घोषणा करदी गई । वे पार्वती से बोली—

तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं,
पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं ।
घर जाउ अपजसु होउ जग,
जीवत विवाहु न हौं करौं ॥

''मैं तुम्हारे सहित पहाड़ पर से कूद जाऊँ, अग्नि में जल जाऊँ, समुद्र में डूब जाऊँ, घर द्वार नष्ट हो जाय, और संसार में अपयश हो जाय, पर अपने जीवित रहते यह अनुचित सम्बन्ध कदापि न होने दूँगी । ''

जब उन्हें विश्वास हो गया कि शिवजी सब प्रकार से उमा के योग्य हैं, तभी उन्होंने अगले चरण बढ़ने दिये । ऐसा विवेकपूर्ण प्रतिरोध करने की क्षमतायें जाग पड़ें तो बेटियों के साथ होने वाले अत्याचार से लेकर सामाजिक अनाचार समाप्त होते देर न लगे ।

नीति पक्ष के समर्थन में प्राणों की बाजी लगाकर भी अनीति का मुकाबला करने का आदर्श रामायण के पात्रों में मिलता है । भरत सेना सहित चित्रकूट जा रहे हैं । इसमें निषाद को उनकी दुर्भावना का संदेह हुआ । बस, भरत की चतुरंगिणी सेना की परवाह न करके वह उनसे खुले संघर्ष के लिये तैयार हो गया । जीते जी उन्हें गलत उद्देश्य से आगे न बढ़ने देने का संकल्प कर उठा—

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ ॥

''मैं भरत से सामने होकर लोहा लूँगा (युद्ध करूँगा) तथा जीते जी उन्हें गंगा पार नहीं करने दूँगा । ''

अनीति करने वाला अपना कितना भी निकट का सम्बन्धी हो, उसे शत्रु की तरह मानकर दण्ड देने के लिये तैयार हो जाना, रामकथा का आदर्श है । लक्ष्मणजी चित्रकूट में भरत की नीयत पर सन्देह होते ही सम्बन्ध को ताक में रख देते हैं । वे तो आदर्श के सम्बन्धी हैं । अनीति करने वाले भरत तथा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसका समर्थन करने वाले सगे भाई शत्रुघ्न को भी वे युद्ध में सुला देने को तैयार हो जाते हैं ।

राम निरादर कर फलु पाई ।
सोवहु समर सेज दोऊ भाई ॥

"लक्ष्मण कहते हैं— श्रीराम के अपमान का फल दोनों भाई (भरत, शत्रुघ्न) पायेंगे । मैं उन्हें युद्ध शैय्या पर सुला दूँगा अर्थात् मार डालूँगा ।"

निषादराज और लक्ष्मण दोनों ही लड़ने के लिये उतावले, बावले नहीं, वे तो पूर्ण सतर्क हैं, और न्याय पक्ष के लिये बड़े से बड़ा बलिदान करने को तत्पर हैं । भरत का पक्ष सही है यह पता लगते ही रोष छोड़कर उनका सम्मान करने में भी वे पीछे नहीं रहते । सिद्धान्त के लिऐ संघर्ष की यही मर्यादा है। ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति को मात्र औचित्य ही झुका सकता है, भय नहीं । जटायु इस सम्बन्ध में एक कीर्तिमान स्थापित करते हैं । बूढ़ा पक्षी राक्षसराज रावण से मुकाबला करने का साहस दिखाता है । अपने कर्तव्य का गौरव ही उसे दिखता है रावण का भय नहीं । वह उस पर टूट पड़ता है, कहता है—

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही ।
निर्भय चलेसि न जानहिं मोही ॥

"जटायु बोला रे-रे दुष्ट ! खड़ा रह ! निर्भय होकर जा रहा है । मुझे नहीं जानता । "

जटायु रावण को रोक पाया या नहीं यह बात कम महत्त्व की है । मुख्य बात यह है कि उसने अनीति करने वाले का मनोबल तोड़ दिया । भय से अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ ।

रामायण के विभिन्न पात्र नीति के पक्ष में समयानुसार अनीति का असहयोग, विरोध, प्रतिरोध, संघर्ष आदि करते दिखते हैं । विभीषण का भी उनमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है । वह सभी प्रकार के प्रयास करते हैं । रावण को सलाह देते हैं, दबाब देते हैं, चेतावनी देते हैं, किन्तु वह नहीं मानता तो फिर वह उसका मोह छोड़कर उसे त्याग भी देते हैं । भरी सभा में वे घोषणा करके चल पड़ते हैं—

राम सत्य संकल्प प्रभु,
सभा काल बस तोरि ।
मैं रघुवीर सरन अब,
जाऊ देहु जनि खोरि ॥

यही नहीं राम रावण युद्ध में जब रावण की शक्ति से श्रीराम मूर्छित हो जाते हैं तो वह (विभीषण) गदा लेकर उससे भिड़ भी जाता है । उस समय शिवजी पार्वती जी से इस सन्दर्भ में कहते हैं—

उमा विभीषण रावनहिं,
सनमुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों,
श्री रघुवीर प्रभाउ ॥

"हे उमा ! विभीषण कभी रावण के सामने देख तक नहीं सकता था । वही अब श्रीराम के प्रभाव से रावण से मृत्यु के समान लड़ रहा है । "

राम का प्रभाव अर्थात् नैतिक पक्ष का, प्रभु पक्ष का प्रभाव ऐसा ही चमत्कारी होता है जो सामान्य व्यक्तियों में भी अद्भुत शौर्य जमा देता है ।

यह तथ्य राम पक्ष के समान्य से बन्दरों के क्रियाकलापों में भी दिखाई देता है । वे सीता की खोज में सभी जगह घूमते हैं । उस बीच यदि कोई राक्षस मिल जाता है तो न उसे क्षमा करते हैं और न उससे भयभीत होते हैं । वे तो उसे एक ही चपेट में समाप्त कर देते हैं— समाज घातक व्यक्तियों के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया जाना उचित है—

कतहु होहि निसिचर सों भेटा ।
प्रान लेंहि एक एक चपेटा ॥

"वानरों की भेंट किसी राक्षस से हो जाती है तो उसके प्राण एक ही चपेट में ले लेते हैं ।"

अनीति के विरुद्ध व्यापक संघर्ष का एक और पक्ष है वह है सज्जनों को उत्साहित करना— उन्हें उन्नति के विरुद्ध डट कर खड़े हो जाने के लिऐ प्रेरित करना, दबाव देना, बाध्य करना । वानर सेना के सैनिक जहाँ राक्षसों को समाप्त करते हुए घूमते हैं वहाँ श्रृषिमुनियों की कुशलक्षेम पूछने से लेकर उन्हें उत्साहित प्रेरित करने का भी क्रम चलाते रहते हैं—

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं ।
कोउ मुनि मिलहि ताहि सब घेरहिं ॥

"वानर सैनिक अनेक प्रकार से पहाड़ों और जंगलों में खोज करते हैं वहाँ उन्हें कोई मुनि मिल जाते हैं तो उन्हें वे घेर लेते हैं । "

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घेर लेने का तात्पर्य यह है कि उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्रीराम के अभियान में सहयोगी होने के लिये बाध्य करते हैं। सारी विभूतियों, सुख-सुविधाओं की सार्थकता आदर्श के लिये प्रयुक्त होने में ही है।

भरत जब श्रीराम के पास चित्रकूट जाने का मत व्यक्त करते हैं तो सारे अयोध्यावासी उनके साथ हो लेते हैं—

जरउ सो सम्पति सदन सुख,
सुहृदय मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद,
करै न सहस सहाइ॥

"वह सम्पत्ति, घर सुख, सम्बन्धी माता, पिता और भाई बेकार है, जो राम मार्ग में बढ़ते हुए साधक को सहर्ष सहायता न करे।"

आदर्श के प्रति, आदर्श के अनुयायियों के प्रति इतनी निष्ठा जिन नागरिकों में होगी वह नर श्रेष्ठ स्तर अवश्य प्राप्त कर लेंगे। जनकपुर के निवासी इसी प्रकार के हैं। श्रीराम लक्ष्मण उन्हें देखकर हर्षित हो उठते हैं—

पुर नर नारि सुभगसुचि सन्ता।
धरमशील ज्ञानी गुनवन्ता॥

"पुरवासी स्त्री पुरुष, सुन्दर, पवित्र, सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान थे।"

सत्प्रवृत्तियों के विकास के साथ अनीति के उन्मूलन के प्रयास के फलस्वरूप आदर्श समाज की स्थापना सम्भव होती है। फिर सब लोग अपने-अपने कर्तव्य में लगे रहकर श्रेष्ठ मार्ग अपनाकर भय एवं दुख से मुक्ति और सुख समृद्धि के अधिकारी बन जाते हैं। रामराज्य इसी आधार पर बनता है। रामराज्य में निवास करने वालों के लक्षण रामचरितमानस में इस प्रकार मिलते हैं—

बरनाश्रम निज निज धरम,
निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं,
नहिं भय शोक न रोग॥

"सभी लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में लगे हुए हमेशा वेद के रास्ते पर चलते हैं और सुख पाते हैं। उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न रोग है।"

यदि हम भी दुष्टता से लड़ने का साहस अपने में पैदा कर सकें और श्रेष्ठ पथ के अनुगामी बन सकें, तो निस्सन्देह सभ्य समाज की रचना का स्वप्न साकार कर सकते हैं

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य का आदर्श और उसका निर्वाह

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत वर्णाश्रम व्यवस्था में गृहस्थ आश्रम का अपना विशेष स्थान है। गृहस्थ का प्रारंभ दाम्पत्य से होता है। पुरुष और नारी अपने एकाकी, अधूरे व्यक्तित्वों को एक-दूसरे के संयोग से, समर्पण से पूर्णता के मार्ग पर अग्रसर करते हैं। व्यक्तिगत सीमा से निकलकर व्यापक क्षेत्र में अपने अहं को प्रतिष्ठित करने का यह एक अति महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रयोग होता है।

सामान्य रूप से दाम्पत्य की पति-पत्नी की परस्पर की भावना की शुद्धता-अशुद्धता पर ही परिवार के विकास की दिशा टिकी रहती है। दाम्पत्य को यदि मात्र वासना तुष्टि का, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मान लिया जाय, तो फिर किन्हीं उच्च आदर्शों के लिये आशा नहीं की जा सकती। फिर तो वह निकृष्ट गठबंधन मात्र है। परन्तु यदि उसकी मूल भावना को, अपने छोटे व्यक्तित्वों को मिलाकर-घुलाकर एक बड़ी इकाई के रूप में बदलने को ध्यान में रखा जा सके, तो दाम्पत्य आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण आधार सिद्ध होता है। फिर वह आदर्श व्यक्तित्वों को गढ़ने का सुन्दर साँचा बन जाता है, श्रेष्ठ समाज की संरचना का एक नमूना, मॉडल बन जाता है। ऐसा आदर्श एक उत्पादन केन्द्र बन जाता है और उस उत्पादन से मनुष्यता सम्पन्न, समृद्ध और समुन्नत होती रहती है।

यह कोई कल्पना नहीं- तथ्य है। मानस में उल्लेख है कि मनुष्यों की अनुपम सृष्टि एक ऐसी ही टकसाल में की गई थी। मानस के प्रारंभिक प्रकरण में ही लिखा है—

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा।
जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा॥

"स्वायंभू मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की अनुपम सृष्टि हुई।"

मनुष्य की शक्ल के प्राणी संभवतः पहले भी रहे हों। किन्तु मानवीय गुणों से विभूषित व्यक्तित्त्व, जिनके कारण उन्हें अनुपम कहा जा सके, उनका निर्माण मनु और शतरूपा ने ही किया। इस महान कार्य में वे कैसे सफल हुए ? किस आधार पर इस कार्य में सफलता पाई जा सकी ? इसका श्रेय उनके आदर्श दाम्पत्य को दिया जाता है—

दम्पति धरम आचरन नीका।
अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका॥

"उन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी लोग उनकी मर्यादा का गान करते हैं।"

मनु एवं शतरूपा अपने आदर्श दाम्पत्य के निर्वाह के आधार पर ही यह अद्भुत कार्य कर सके। ऐसे कार्य की सराहना युगों-युगों तक होनी स्वाभाविक और उचित ही है।

ऐसे दाम्पत्य के निर्वाह के लिये आवश्यक है कि पति-पत्नी उच्च आदर्श को लक्ष्य करके ही विवाह सूत्र में बँधे, काम तुष्टि की कामना या शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का हीन दृष्टिकोण लेकर नहीं। शिव-पार्वती विवाह के प्रसंग में यह आदर्श बड़े स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है। पार्वतीजी शिवजी को पाने के लिये तप करती हैं। उसी अवधि में शिवजी कामदेव को भस्म कर देते हैं। परीक्षा के लिये यह सूचना पार्वती को देकर सप्त ऋषि कहते हैं कि अब तप करने से क्या लाभ, काम को तो शिवजी ने जला दिया, अब वे विवाह क्यों करेंगे ? किन्तु पार्वती विचलित नहीं होती। वे कहती हैं कि मैंने शिवजी की आराधना उन्हें कामासक्त समझ कर नहीं की है। आपके दृष्टिकोण से मेरा दृष्टिकोण भिन्न है।

तुम्हरे जान काम अब जारा।
अब लगि संभु रहे सविकारा॥
हमरे जान सदा सिव जोगी।
अज अनवद्य अकाम अभोगी॥

"आपकी जानकारी में शिवजी ने काम को अभी जलाया है और अब तक वे विकार युक्त थे, किन्तु हमारी समझ में तो शिवजी सदैव से ही योग युक्त, जन्म रहित,दोष रहित, कामना रहित और भोगों से रहित हैं।"

इस प्रकार उच्च भावनाओं से प्रेरित समान विचारों और उद्देश्यों वाले वर और कन्या विवाह सूत्र में बँधकर आदर्श दाम्पत्य की सृष्टि कर सकते हैं। विवाह का आधार शारीरिक आकर्षण, एक-दूसरे के पद अथवा धन को नहीं बनाया जाना चाहिये। उच्च आदर्श ध्यान में रखकर ही वर-कन्या का चुनाव करना चाहिए और उन्हें भावनापूर्वक दाम्पत्य सूत्र में बाँध देना चाहिये। हिमाचल ने पार्वती को इसी प्रकार शिवजी से सम्बद्ध कर दिया—

गहि गिरीस कुस कन्या पानी।
भवहिं समरपी जानि भवानी॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हिमवान ने अपने हाथों में कुशा ली तथा कन्या (पार्वती) का हाथ पकड़कर इन्हें भवानी (शिव पत्नी) समझकर शिवजी के हाथों में सौंप दिया ।"

कुश कन्या का अर्थ है, बिना किसी देन दहेज के पवित्र भावना से सौंपना । शिव के अनुरूप शक्तिरूपा अपनी कन्या को समझकर ही उन्हें सौंपा गया । वरकन्या की अनुरूपता का ध्यान माता-पिता को रखना चाहिये तथा लड़के लड़कियों को भी ऐसी ही आकांक्षा रखनी चाहिये । स्वयंवर के पूर्व माता सुनयना की आज्ञा से सीताजी गौरी पूजन के लिये जाती हैं । वहाँ वे रूपवान धनवान वर की आकांक्षा न करके अपने अनुरूप वर की ही कामना करती हैं—

पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा ।
निज अनुरूप सुभग वर माँगा ॥

"सीताजी ने बड़े प्रेम से पार्वती जी का पूजन किया और उनसे अपने योग्य सद्गुण सम्पन्न पति मिलने का वर माँगा ।"

अनुरूपता का महत्त्व आदर्श दाम्पत्य की दृष्टि से बहुत अधिक है । दोनों के स्तर में , मानसिक गठन में भेद होने से वे घुल-मिलकर एक सबल इकाई के रूप में अपने को बदल नहीं सकते । दाम्पत्य का आदर्श यह है कि पति-पत्नी में भेद कहने भर का रह जाय । वस्तुतः वे एक-दूसरे से अपना व्यक्तित्व इस हद तक मिला दें कि वे एकरूप हो जावें । ऐसा योग, ऐसा समर्पण एक-दूसरे के अनुरूप पति-पत्नी ही कर सकते हैं । श्रीराम जानकी का स्तर ऐसा ही है । उनमें कोई भेद नहीं । वन्दना प्रसंग में तुलसीदास जी कहते हैं—

गिरा अरथ जल बीचि सम,
कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दउ सीताराम पद,
जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

"उन सीताजी एवं रामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन दुखी बहुत प्रिय लगते हैं । जो वाणी व उसका अर्थ तथा पानी व उसकी लहर की तरह कहने भर को भिन्न हैं, पर वास्तव में वे एक ही हैं ।

यह अनुरूपता मात्र चिन्तन के स्तर पर ही नहीं, व्यावहारिक स्तर पर भी है । सीताजी श्रीराम की सच्ची सहधर्मिणी हैं । राम को वनवास होता है तो वे भी साथ जाती हैं । श्रीराम के मनोभावों को वे उसी तरह से समझती हैं, जैसे व्यक्ति अपने अन्दर उठने वाले संकल्प विकल्पों को समझता है । वन मार्ग में नाव से गंगा पार करने पर श्रीराम सोचते हैं कि केवट को कुछ देना चाहिये । सीताजी बिना कहे उसकी व्यवस्था करती हैं—

प्रिय हिय की सिय जाननिहारी ।
मनि मुँदरी मन मुदित उतारी ॥

"सीताजी पति के हृदय की बात जानने वाली हैं । उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी मणि जड़ित अंगूठी उतार कर श्रीराम को दे दी ।"

बिना कहे ही श्रीराम जी की इच्छा पूर्ति के लिये अपने प्रिय आभूषण को बिना किसी संकोच के प्रसन्नतापूर्वक देने के लिये वे तत्पर हैं । यही नहीं श्रीराम के साथ-साथ हर प्रकार के अभाव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करती हैं । उनके साथ वन में चलने के आग्रह पर श्रीराम उन्हें वन के कष्ट बतलाते हैं, तो वे अधीर हो उठती हैं और कहती हैं कि आप तप करेंगे तो मुझे भी उसी में प्रसन्नता है—

खग मृग परिजन नगर बन,
बल्कल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुर सदन सम,
परन साल सुख मूल ॥

"श्री सीताजी ने कहा— हे नाथ ! आपके साथ रहते हुए पक्षी कुटुम्बी के समान, वन नगर के समान, वल्कल (पेड़ों की छाल) सुन्दर वस्त्रों के समान तथा पर्णकुटी सुख का घर होगी ।"

वस्तुतः जहाँ सच्चा स्नेह है, वहाँ किसी अन्य अभाव की चिन्ता व्यक्ति को सता ही नहीं सकती । सीताजी ने केवल यह कहा ही हो, सो बात नहीं, वैसा कर भी दिखाया । चित्रकूट में उनके निवास पर मानसकार की टिप्पणी है—

राम संग सिय रहति सुखारी ।
पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥

"श्री रामचन्द्रजी के साथ सीताजी अयोध्या नगरी के कुटुम्बीजन और घर की याद भुलाकर सुखपूर्वक रहने लगीं ।"

वे सच्चे अर्थों में श्रीराम की पूरक हैं । वन में भी उसी ढंग से रहीं तथा जब राज्याभिषेक हो गया तो महलों में भी उनका वही क्रम रहा । न जंगल के अभाव उन्हें विचलित कर सके और न राज्य वैभव का अहंकार ही छू सका । वे तो प्रधान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप से श्रीराम को सहधर्मिणी ही बनी रहीं। अन्य सांसारिक सम्बन्ध और पद गौण रहे। न वन में अभाव की शिकायत और न महलों में वैभव का अहंकार—

पति अनुकूल सदा रह सीता।
सोभा खानि सुसील विनीता॥

"शोभा की खान, सुशील और विनम्र सीताजी हमेशा पति के अनुकूल ही रहती हैं।"

भगवान श्रीराम अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक हैं तो जानकीजी भी अपनी जगह तत्पर हैं। राम स्वयं राज्य के कार्यों का संचालन करते हैं तो सीताजी भी गृह व्यवस्था नौकरों ही पर न छोड़कर स्वयं अपने हाथों भी कार्य किया करती हैं—

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी।
विपुल सदा सेवा विधि गुनी॥

"यद्यपि घर में अनेक दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में निपुण हैं।"

निज कर गृह परिचरजा करई।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥

"फिर भी सीताजी घर की समस्त सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्रीराम जी के आदेश का अनुसरण करती हैं।"

सेवकों की समझ का स्तर उनके स्तर के अनुरूप ही होता है। जब तक गृहिणी स्वयं सतर्क न हो, कार्य का स्तर सँभलता नहीं, श्रीराम परिवार की व्यवस्था जैसी चाहते हैं उसे सीताजी समझती हैं तथा उसे चरितार्थ भी करती हैं।

दाम्पत्य में यह जागरुकता एकांगी नहीं होती। जहाँ पत्नी पति के प्रति निष्ठावान होती है, वहाँ पति उतना ही संवेदन शील होता है। सीताहरण के बाद राम उनके वियोग में कितने दुखी होते हैं, यह किसी से छिपा नहीं। श्री हनुमान जी द्वारा लंका में श्रीराम का जो संदेश सीताजी को दिया गया उसमें श्रीराम के शब्दों से ही उनके स्नेह की गहनता प्रकट होती है—

सो मनु सदा रहत तोहिं पाहीं।
जानु प्रीति रस एतनहिं माहीं॥

"जो मन सुख दुख का अनुभव करता हैं, वह मन सदा तेरे समीप रहता है। बस मेरे प्रेम का सार इतने में ही जान लो।"

पत्नी के लिये पतिव्रत जितना महत्त्वपूर्ण है, पति के लिये पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक है। सीताजी श्रीराम के अतिरिक्त किसी पुरुष को ध्यान में भी नहीं लातीं तो श्रीराम का भी वही स्तर है। किसी नारी को वे कुदृष्टि से नहीं देखते। पुष्पवाटिका प्रसंग में सीताजी पर दृष्टि पड़ने के बाद वे लक्ष्मण जी को अपने मनोभाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

मोहि अतिसय प्रतीत मन केरी।
जेहिं सपनेहु परनारि न हेरी॥

"मुझे तो अपने मन का पूर्ण विश्वास है कि उसने दूसरे की स्त्री को (जाग्रत की कौन कहे) स्वप्न में भी नहीं देखा है।"

जिनका अपने मन पर नियन्त्रण है उन्हें बाह्य प्रभाव विचलित नहीं कर सकते। धनुष-यज्ञ के प्रसंग में मानसकार उपमा उपमेय के रूप में यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं। जब शिव धनुष किसी से हिल भी नहीं पाता तो टिप्पणी दी गई है—

डगई न सम्भु सरासन कैसे।
कामी बचन सती मन जैसे॥

"शिवजी का धनुष उसी प्रकार डिगता नहीं, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती का मन कभी चलायमान नहीं होता।"

इस आदर्श का ज्वलन्त उदाहरण अशोक वाटिका में सीता के चरित्र में मिलता है। रावण उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है और भय भी दिखाता है। किन्तु सीता अपने स्तर से जरा भी नहीं हिलती। रावण से प्रभावित या आतंकित होना तो दूर, वे उसे अच्छी करारी फटकार भी लगा देती हैं—

सठ सूने हरि आनेहि मोही।
अधम निलज्ज लाज नहिं तोही॥

"अरे दुष्ट! तू सूने में मुझे चुराकर ले आया है। तू नीच और निर्लज्ज है, तुझे लज्जा नहीं आती?"

देवताओं को अपने आतंक से भयभीत कर देने वाला रावण ऐसे प्रखर उत्तर की आशा नहीं करता था। वह उत्तेजित होकर सीता को मारने दौड़ा। किन्तु जहाँ सीता का तेज उसके लिये एक समस्या बना हुआ था, वहाँ उसकी पत्नी मन्दोदरी भी अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक थी। पत्नी पति की सहधर्मिणी होती हैं। पति यदि सही कार्य करे तो उसका साथ देना पत्नी के लिये उचित है। किन्तु वह गलत कार्य करे तो साथ न देकर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे रोकना और उचित सलाह देना भी पत्नी के धर्म कर्त्तव्य के अन्तर्गत आता है । मन्दोदरी यही करती है–

सुनत बचन पुनि मारन धावा ।
मयतनया कहि नीति बुझावा ॥

"सीता के वचन सुन रावण तलवार निकाल कर उन्हें मारने दौड़ा । मन्दोदरी ने उसे रोका और नीति की बातों से समझाया ।"

पुरुष का स्वभाव सहज ही उत्तेजित हो जाने का होता है । उत्तेजना में वह उचित-अनुचित भूल जाता है । ऐसी स्थिति में पत्नी उसे औचित्य का ध्यान दिलाये, उसके लिये आग्रह करे, यह उचित ही नहीं आवश्यक भी है । बालि स्वयं गलती पर होते हुए भी सुग्रीव को मारने दौड़ता है, तो उसकी पत्नी तारा भी उसे समझाती है–

सुनत बालि क्रोधातुर धावा ।
गहि कर चरन नारि समुझावा ॥

"बालि सुग्रीव की गर्जना सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से दौड़ा । उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़ कर उसे समझाया ।"

बालि ने पत्नी की सलाह नहीं मानी और अपनी करनी का फल पाया । श्रीराम ने उसे पत्नी की नेक सलाह न मानने के कारण बुरा-भला भी कहा । पति माने या न माने, यह बात भिन्न है, किन्तु पत्नी को तो यथासंभव सही सलाह देनी ही चाहिये । मन्दोदरी ने तो रावण को सांसारिक लोभ मोह छोड़कर आयु के अनुसार वानप्रस्थ जीवन में प्रविष्ट होने का भी आग्रह बड़े स्पष्ट रूप से किया था । श्री राम से युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व वह रावण से कहती है–

सन्त कहहिं अस नीति दसानन ।
चौथेपन जाइहिं नृप कानन ॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन ।
सुजस होइ तिहु पुर अति पावन ॥

"हे दशानन ! ज्ञानी जनों की सम्मति है कि चौथेपन (वृद्धावस्था) में राजा को वन में जाकर रहना चाहिए । अगर आप मेरे इस अनुरोध को मान लेंगे तो आपकी कीर्ति सर्वत्र छा जायेगी ।"

रावण नहीं माना । उसके मन में तो अनीति घुसी थी । वह तो दुष्ट सहयोगियों के बीच रह रहा था । उनका ही उस पर प्रभाव था । सदाचार की मर्यादा तोड़कर वह परस्त्री की कामना करता था । अस्तु उसका अहित तो होना ही था, हुआ भी । दाम्पत्य की मर्यादा तोड़कर परस्त्री की कामना करने वाले की सद्गति हो ही नहीं सकती । यह मत श्री काकभुशुण्डिजी गरुणजी से व्यक्त करते हैं–

काहू सुमति कि खल संग जामी ।
सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ॥

"दुष्टों के साथ से क्या किसी को सुबुद्धि पैदा हुई है ? पराई स्त्री का गमन करने वाला क्या उत्तम गति को पा सकता है ?"

राक्षस यह दोष न छोड़ सके । किन्तु रामराज्य के आदर्श समाज में यह मर्यादा दोनों ही पक्षों से निभाई जाती थी । केवल श्री राम ही नहीं, सारे पुरुष एक-पत्नी व्रत का पालन करने वाले थे और स्त्रियाँ मन, वचन, कर्म से पतियों का हित करने वाली थीं । रामराज्य में उल्लेख हैं–

एक नारि व्रत रत सब झारी ।
ते मन वच क्रम पति हितकारी ॥

"सब पुरुष एक-पत्नीव्रत रखते हैं । इसी प्रकार नारियाँ भी मन, वचन कर्म से पति का भला करने वाली होती हैं ।"

नारियाँ पतियों का हित करने वाली हैं, यह वाक्य सोद्देश्य है । जो पति करे उस हर कार्य का समर्थन करना नारी का धर्म नहीं है । उसे पति के हित का ध्यान रखना चाहिये । यही राम राज्य में होता है ।

किन्तु हित-कामना एकांगी नहीं । पति भी पत्नी के हित का ध्यान रखे । उनके ज्ञान का स्तर बढ़ाते रहना पतियों का कर्तव्य है । श्रीराम विवाह के बाद विवरण मिलता है कि राजा दशरथ वशिष्ठजी द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान का लाभ रनिवास की महिलाओं को भी देते हैं, ताकि वे भी ज्ञान-विज्ञान में पुरुषों की बराबरी से चल सकें ।

कहहिं वशिष्ठ धरम इतिहासा ।
सुनहिं महीस सहित रनिवासा ॥

"वशिष्ठजी धर्म और इतिहास का वर्णन करते थे तथा दशरथजी रानियों सहित सुनते थे ।"

दाम्पत्य की मर्यादा है कि पति-पत्नी एक दूसरे का सम्मान करें । यह धारणा गलत है कि केवल पति ही सम्मान पाने का अधिकारी है और वह पत्नी के साथ कैसा भी मनमाना व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर सकता है । रामचरित मानस में उभयपक्षीय आदर्श दिया गया है । विवाह के बाद जब पार्वतीजी शिवजी के पास अपनी जिज्ञासा लेकर जाती हैं तो शिवजी उन्हें पूर्ण शिष्टाचार के साथ आदर सहित आसन देकर बैठाते हैं—

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा।
बाम भाग आसनु हर दीन्हा॥

"पार्वतीजी को अपनी स्नेहमयी पत्नी जानकर शंकरजी ने उन्हें अपनी बायीं ओर उचित आसन देकर आदर सहित बैठाया । "

अन्य स्थलों पर भी इस मर्यादा का पालन होता है । श्रीराम के विवाह के बाद बारात लौटती है, वर-वधुओं का स्वागत किया जाता है । तब दशरथजी रानियों को कुछ सुझाव देने के लिये बुलाते हैं । तब वे उनका सम्मान भी करते हैं और मीठे वचनों से सम्बोधित करते हैं—

नृप सब भाँति सबहिं सनमानी ।
कह॰ मुदु बचन बोलाईं रानी ॥

"राजा दशरथ ने सबका सब प्रकार से सम्मान किया और मधुर वचन कहकर रानियों को बुलाया । "

पति का कर्तव्य है कि पत्नी पर अपना निर्णय लादने का प्रयास न करे । उचित बात मनवाने के लिये उसे समझाना ही उचित है । सीताजी वन में चलने का आग्रह करती हैं । माता कौशल्या चाहती हैं कि सीता अयोध्या में रह जाय तो अच्छा हो । श्रीराम उस समय दोनों पक्षों का कुशलता से निर्वाह करते हैं—

कहि प्रिय बचन विवेकमय,
कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि,
प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥

"श्रीरामजी ने विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को सन्तुष्ट किया । फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकी को समझाने लगे । "

माता को सन्तुष्ट करके वे सीताजी पर अपना हुक्म नहीं चलाते । वन में जाने के गुण और दोष बताकर फैसला उन्हीं पर छोड़ देते हैं । उचित निर्णय लेने में नारी की सहायता तो करनी चाहिये, किन्तु उसके विचार स्वातन्त्र्य को समाप्त नहीं कर देना चाहिए । श्रीराम ने वही किया । वे सीताजी को मीठे वचन कहकर ही समझाते हैं—

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई ।
लगे मातु पद आसिष पाई ॥

"श्री रामचन्द्रजी ने मीठे वचन कहकर प्रियतमा सीताजी को समझाया । फिर माता के चरण छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया । "

इस प्रकार दाम्पत्य के आदर्शों के निर्वाह के लिये यदि दोनों पक्ष अपने अपने उत्तरदायित्व सँभालने के लिए तत्पर हो जावें तो आदर्श समाज के निर्माण के लिये सबल और समर्थ आधार दिया जा सकता है । घर-घर स्वर्ग की झलक मिलना सहज ही सम्भव हो सकता है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ससुराल पक्ष-कर्तव्य और मर्यादायें

कुटुम्ब एक आदर्श सहकारी व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न धारायें मिलकर एकरूप हो जाती हैं । दूरस्थ व्यक्तियों के व्यक्तिगत स्वार्थ कुटुम्ब में विलीन होकर सामूहिक कर्तव्यों के रूप में प्रस्फुटित होते हैं । इस आदर्श व्यवस्था के गठन में ससुराल पक्ष की भी अति महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । वस्तुतः कुटुम्ब का श्रीगणेश ही वहीं से होता है ।

पति अथवा पत्नी के रूप में जो अपना पूरक व्यक्तित्व प्राप्त होता है, जिसके साथ अपना व्यक्तित्व एकरूप कर दिया जाता है, वह वस्तुतः ससुराल की ही देन होती है । इस परस्पर पूरक व्यक्तित्वों का निर्माण, विकास, संस्कार, जागरण का कार्य ससुराल में ही होता है । विवाह के बाद पितृ गृह, पितृ कुल के सम्बन्ध एकदम शिथिल नहीं हो जाते, उनके प्रति अपनत्व भी बना रहता है तथा सहयोग एव परामर्श का आदान-प्रदान भी । इस दृष्टि से ससुराल पक्ष की भूमिका दाम्पत्य और उस माध्यम से कुटुम्ब की सफलता में सर्वाधिक महत्त्व रखती है ।

इस तथ्य को यदि समझा जाये और तदनुसार कर्तव्यों का निर्धारण करके उनका पालन किया जा सके तो पारिवारिक सन्तुलन और सद्भाव की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हो सकती है । माता, पिता, मित्र सहेलियों आदि का यह कर्तव्य हो जाता है कि लड़के-लड़कियों को दाम्पत्य में प्रवेश के पूर्व ऐसे स्वभाव, विचार और संस्कार दें ताकि वे कौटुम्बिक सन्तुलन के लिए अभिशाप नहीं वरदान सिद्ध हों । रामचरितमानस के पात्र इन उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक हैं । यही कारण है कि वे स्वयं तो आदर्श हैं ही, बिगड़ती परिस्थितियों को सँभाल लेने की क्षमता भी उनमें है । इस संदर्भ में पार्वती विवाह के समय की एक झलक यों मिलती है–

जननी उमा बोल तब लीन्हीं ।
लै उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं ॥

''माता मैना ने उमा को बुलाकर गोदी में बिठाकर सुन्दर सीख दी । ''

विदाई का समय बड़ा भावनामय होता है । उस स्थिति को यों ही रोने-धोने और निरुपयोगी भेटें आदि देकर अपना बड़प्पन प्रगट करने में खो देना बहुत बड़ी भूल है । भावना भरे वातावरण में स्नेह से लबालब भरे, हृदय से दी गई सीख अन्तःकरण की गहराई तक प्रवेश कर जाती है । इसीलिए माता मैना उमंग सहित पार्वती जी को सीख देती हैं ।

सीता की विदा के समय भी वैसा ही दृश्य दिखाई देता है । न केवल माता सुनैना बल्कि कुटुम्ब की सभी प्रौढ़ महिलायें सीता को आशीर्वाद के साथ साथ सीख भी देती हैं–

पुनि-पुनि सीय गोद करि लेहीं ।
देइ असीस सिखावनु देहीं ॥

''वे बार-बार सीताजी को गोद में बिठा लेती हैं और आशीर्वाद देती हुई शिक्षाप्रद बातें बतला रही हैं । ''

सिखाने वाले में ज्ञान तो होना ही चाहिए किन्तु अपनत्व का भाव भी होना चाहिए । बिना उसके न कोई सिखाना चाहता है और न कोई सीख को स्वीकार करता है । महिलायें स्नेह में भरकर सीता को गोद में लेती हैं । ऐसे आत्मीयता के वातावरण में ही सीख प्रभावशाली होती है । वे कहती हैं–

होएहु सन्तत पियहिं पिआरी ।
चिरु अहिबात असीस हमारी ॥

''तुम सदैव अपने पति की प्यारी बनी रहो और तुम्हारा सुहाग अचल रहे, ऐसा हमारा आशीर्वाद है । ''

वे अपनी शुभकामना पहले प्रकट करती हैं किन्तु उसमें भी शिक्षा का भाव सन्निहित है । पत्नी को पति की प्रिय बनकर रहना चाहिए । ऐसा आचरण तथा स्वभाव बनाना चाहिये कि पति का सहज स्नेह प्राप्त हो सके । इसके व्यावहारिक पक्ष में वे आगे और भी स्पष्ट करती हुई कहती हैं–

सासु ससुर गुरु सेवा करेहू ।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥

''सास,ससुर और गुरु की सेवा करना तुम्हारा पहला कर्तव्य है । तुम्हें पति के रुख को देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए । ''

यह बड़ा महत्वपूर्ण सूत्र है । माता-पिता अपनी पुत्री को पति परायण होने के नाम पर व्यक्ति परायण बना देते हैं, समाज परायणता, सामूहिकता का उसे बोध ही नहीं कराते । इस भूल का भारी दण्ड भुगतना पड़ जाता है । परिवार एक समग्र शरीर है । एक अंग को ठीक और शेष अंगों की उपेक्षा करने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असन्तुलन और कष्टों का बढ़ना स्वाभाविक ही है । पति के साथ-साथ परिवार के सभी सदस्यों के प्रति गृहिणी के उत्तरदायित्व समान रूप से होते हैं। सीता को यही सीख अनुभवी महिलाओं ने दी । यह कर्तव्य केवल महिलाओं अथवा माता का ही नहीं है, पिता का भी है। महाराज जनक भी सभी कन्याओं से प्रेमपूर्वक मिले और अपने अनुभव का लाभ उन्हें दिया ।

बहुबिधि भूप सुता समुझाई ।
नारि धरमु कुल रीति सिखाई ॥

"जनकजी ने कन्याओं को बहुत प्रकार से समझाया तथा उन्हें स्त्री धर्म और कुल रीति की शिक्षा दी । "

लड़की के मस्तिष्क में अपने पितृगृह की परम्परायें जमी रहती हैं उसे यह समझाना पड़ता है । कि नारी धर्म के अनुसार इन परम्पराओं से मोह न करके पति परिवार की परिस्थितियों के अनुरूप विवेकपूर्वक स्वयं को ढालना आवश्यक होता है । हर पितृकुल की आदर्श रीति यही है कि कन्या को श्रेष्ठ गुणों और संस्कार से सम्पन्न बना दे और श्रेष्ठताओं का उपयोग पतिगृह के अनुरूप होने दे । जनकजी अपने इसी उत्तरदायित्त्व का पालन करते हैं ।

सखी और सहेलियाँ भी इसी प्रसंग में सामने आती हैं । बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो समवयस्कों द्वारा अधिक स्पष्टता से समझाई जा सकती हैं । अनुभवों के प्रकाश में सहेलियाँ ही सीख दे सकती हैं ।

अति सनेह बस सखीं सयानी ।
नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी ॥

"चतुर सखियां स्नेहवश होकर मधुरवाणी से उन्हें नारिधर्म के बारे में शिक्षा देती हैं । "

यह कार्य बुद्धिमान सखियों द्वारा किया-कराया जाना चाहिए । मूढ़ प्रकृति की सहेलियाँ तो निरर्थक हास-परिहास अथवा कोरी भावुकता में ही उलझकर रह जाती हैं और अपने असन्तुलित विचारों से हित के स्थान पर अहित ही कर बैठती हैं ।

इस प्रकार के शिक्षण के अभाव में भोली और भावुक बच्चियाँ पतिगृह के लिए समस्या बन जाती हैं । अपनी झूठी महत्वाकांक्षाओं के लिए दबाव डालती हैं । परिणाम यह होता है कि या तो उपेक्षा और ताड़ना पाती हैं, अथवा पति परिवार के विघटन का कारण बन जाती हैं । पुरुष या तो पत्नी या ससुराल पक्ष के प्रति रूखा हो जाता है अथवा फिर माता-पिता एवं अन्य कुटुम्बियों के प्रति अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने लगता है । ऐसी स्थिति का वर्णन करते हुए मानसकार ने लिखा है—

सुत मानहिं मातु पिता तब लौं ।
अबलानन दीख नहीं जब लौं ॥
ससुरारि पियारि लगी जब ते ।
रिपु रुप कुटुम्ब भये तब ते ॥

"पुत्रों को अपने माता-पिता का ध्यान तभी तक रहता है जब तक उनका साक्षात्कार पत्नी से नहीं होता । जब ससुराल प्यारी लगने लग जाती है तो अपने कुटुम्बी शत्रु समान लगने लगते हैं । "

यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति जहाँ होती है वहाँ पारिवारिक कलह घर को नर्क बनाती रहती है । माता-पिता, बहू और ससुराल वालों पर कुढ़ते रहते हैं, कहते हैं कि ऐसे तो इनका न होना ही अच्छा था । किन्तु मानस के पात्रों का क्रम आदर्शमय है, अतः वहाँ परिस्थितियाँ भी भिन्न हैं । विवाह के बाद सीता और राम का व्यवहार परिवार के सदस्यों के साथ कैसा है इसका प्रमाण कैकेयी द्वारा कही गई निम्नांकित चौपाई से मिलता है । मंथरा जब उसे बरगलाने पहुँचती है तब वह उनके प्रति अपने भाव इन शब्दों में प्रकट करती हैं । कैकेयी कहती है—

जौं विधि जनम देइ करि छोहू ।
होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥

यदि विधाता कभी कृपा करके फिर से मुझे नारी शरीर दे तो मैं चाहती हूँ कि राम और सीता ही मुझे पुत्र एवं पुत्र वधु के रूप में मिलें । "

इस उक्ति से स्पष्ट है कि विवाह के बाद श्रीराम एवं जानकी पारिवारिक दृष्टि से अपने उत्तरदायित्त्वों के निर्वाह और व्यवहारों के सन्तुलन में कितने सफल रहे । यह स्थिति अनायास ही नहीं आ जाती है । उसके पीछे बड़ी सद्भावना तथा सेवा की लम्बी भूमिका रहती है । सीताजी केवल शिष्टाचारवश किसी दबाव या आकर्षणवश ही अपने परिजनों की सेवा नहीं करती थीं बल्कि उनकी आन्तरिक भावना ही वैसी थी । जब वन गमन का प्रसंग आ खड़ा हुआ तब वे माँ कौशल्या के पास पहुँचकर करुण स्वर में कह उठीं-

तब जानकी सासु पग लागी ।
सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"तब सीताजी ने सास के पैर पकड़कर कहा-"हे माता! सुनिये, मैं बड़ी ही अभागिन हूँ।"

सीताजी राज्य वैभव छोड़कर श्रीराम के साथ स्वेच्छा से वन को जा रही थीं। किसी सांसारिक अभाव की कल्पना से उन्हें दुख नहीं था। श्रीराम द्वारा वन के कष्टों का वर्णन करने पर भी वे अविचलित रही थीं, बल्कि उन्हें सुकुमार समझकर छोड़े जाने की बात पर उन्हें बहुत दुख हुआ था। फिर वे किस दुर्भाग्य का रोना, माँ के सामने रोने लगी ? कौन सा अधिकार छिन गया था ? वे कहती हैं—

सेवा समय दैव बन दीन्हा।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥

"आपकी सेवा करने का जब समय आया तो विधाता ने हमें वनवास दे दिया।"

सीताजी को अपने सेवा का अवसर छिनने का दुख है, किसी लौकिक पद या वस्तु का नहीं। उनकी दृष्टि में सेवा का अवसर हर लौकिक आकर्षण से अधिक महत्त्व रखता है। जिस बहू में ऐसा भाव होगा वह सारे परिवार के सच्चे स्नेह और दुलार की अधिकारिणी सहज ही बन जायेगी।

सीताजी का यह कथन मात्र भावुकतायुक्त प्रदर्शन नहीं था उसके पीछे उनकी प्रखर जागरूकता सन्निहित थी। जब सब मातायें भी भरत के साथ चित्रकूट पहुँचती हैं तो सीताजी की सेवा भावना सक्रियता के रूप में फूट पड़ती है। वे सभी की सेवा बड़ी तत्परता से करती हैं। अपने वन में होने की तो कोई शिकायत है ही नहीं, दशरथ जी की मृत्यु के अपने दुख को भी भुलाकर सेवा धर्म में लग जाती हैं। मानसकार ने लिखा है—

सीय सासु सेवा बस कीन्हीं।
तिन्ह लहि सुख सिख आशिस दीन्हीं॥

"सीता ने सासुओं को अपनी सेवा के वश में कर लिया, उन्होंने सुख पाकर सीता को शिक्षा और आशीर्वाद दिया।"

वास्तव में सेवा किसी को वश में करने का अद्भुत अस्त्र है। किन्तु ध्यान रहे कि सेवा मात्र शारीरिक क्रिया नहीं- उसमें सीताजी की तरह प्रखर भावना जुड़ी हो तभी वह कारगर होती हैं। सीताजी को अपने कर्तव्य का इतना ध्यान है कि वे अपनी माता के पास भी रात्रि को नहीं रुकती। चित्रकूट में जनकजी भी दलबल सहित पहुँच गये थे। माँ सुनयना सीताजी को कौशल्यादि की आज्ञा लेकर अपने डेरे में लिवा ले गई। अपने पिता तथा अन्य परिजनों से सीताजी मिलीं, दिन भर वहीं रहीं, किन्तु साँझ होते ही उन्हें माता के पास रुकना उचित न लगा। उस समय की उनकी मनोभूमि का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

कहत न सीय सकुच मन माहीं।
इहाँ बसब रजनी भल नाहीं॥

"सीताजी संकोचवश कहती तो नहीं हैं किन्तु उनके मन में यह भाव है कि यहाँ रात्रि में रुकना उचित नहीं।"

सीताजी को कर्तव्य का पाठ पढ़ाने वालों ने उनके चेहरे से ही उनका भाव समझ लिया और उन्हें वहाँ रोका नहीं।

वन की अभावग्रस्त स्थिति हो या राजमहल की सम्पन्नता, सासों के प्रति सीता की कर्तव्य-परायणता में कहीं कमी नहीं आने पाती। अयोध्या में राज्याभिषेक के बाद महारानी के स्थान से भी वे वही करती हैं। मानस में उल्लेख हैं—

कौशल्यादि सासु गृह माहीं।
सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥

"घर में कौशल्यादि समस्त सासुओं की सीताजी सेवा करती हैं, उन्हें किसी बात की प्रतिष्ठा की आकांक्षा और घमण्ड नहीं है।"

सेवा सम्मान का यह क्रम एकांगी नहीं। श्रीराम भी दाम्पत्य का आदर्श भली प्रकार पालते हैं। सास-ससुर से वे हेकड़ी नहीं दिखाते, नखरे नहीं करते और उन्हें परेशान करने में बड़प्पन नहीं मानते। वे उनके प्रति पूर्ण सम्मान का भाव रखते हैं और उसका निर्वाह भी करते हैं। सीता के विदा के समय सुनयनाजी का अनेक प्रकार सम्मान करते हैं—

सुनि सनेहसानी वर बानी।
बहु बिधि राम सासु सनमानी॥

"मां सुनयना की प्रेमयुक्त श्रेष्ठ वाणी सुनकर राम ने बहुत प्रकार से सास का सम्मान किया।"

आजकल सास-ससुर से सम्मान पाने भर का क्रम चल पड़ा है। वह दुर्भाग्यपूर्ण है। कैसी विवेकहीनता की बात है कि माता पिता तथा परिजनों के साथ अभद्रता के व्यवहार को बड़प्पन का नाम दे दिया जाता है। श्रीराम ऐसा नहीं करते, वे जनकजी के प्रति विनयशील रहते हैं और उनका अनेक प्रकार से सम्मान करते हैं।

करि वर बिनय ससुर सनमाने।
पितु कौसिक वसिष्ठ सम जाने॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"उन्होंने (श्रीराम ने) श्रेष्ठ विनयपूर्वक ससुर को दशरथ जी, गुरु विश्वामित्र और कुलगुरु वशिष्ठ के समान समझ कर उनका सम्मान किया । "

वास्तव में जिन माता-पिता ने पाल पोसकर तैयार संस्कारवान कन्या को बिना शर्त सौंप दिया , उनको यदि सम्मान न दिया जाय तो फिर कैसे दिया जाय ? उनके इस अहसान को न मानना कृतघ्नता है । श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का जहाँ आदर नहीं किया जाता वहाँ हीन प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं । जब आदर्श के निर्वाह पर सम्मान न दिया जाय, मजबूरी और भय के कारण दिया जाय तो फिर समझना चाहिए कि आदर्श पालन की प्रवृत्ति समाज से उठती चली जायेगी किन्तु यहाँ तो श्रीराम ही नहीं उनके अनुज श्री जनकजी का ऐसा ही सम्मान सदैव करते हैं । चित्रकूट में जब जनकजी वशिष्ठजी के सामने भरत से मिले तब भरत कहते हैं–

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू ।
कुल गुरु सम हित माय न बापू ॥

"हे प्रभु ! आप हमारे लिए पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और गुरुदेव के समान हित चिन्तक तो माता-पिता भी नहीं होते । "

अपना मत प्रकट करके भरतजी उन्हीं पर सारा निर्णय छोड़ देते हैं । यह विश्वास अकारण नहीं । जनकजी में भी गुरु वशिष्ठ की तरह उनके हित की कामना भी है और ममता भी । वे अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सतर्क और जागरूक हैं । जब सीता उनके सामने तपस्वी वेष में पहुंचती हैं तो वे उसे अभावग्रस्त मानकर दुखी नहीं होते, बल्कि प्रसन्न होते हैं । उन्हें लगता है कि सीता को शिक्षित और संस्कारवान बनाने का उनका प्रयास बेकार नहीं गया । उसे कठिन से कठिन परिस्थिति भी आदर्श से न डिगा सकी, इसका उन्हें गर्व और संतोष है । मानस में उल्लेख हैं–

तापस वेष जनक सिय देखी ।
भयउ प्रेम परितोष, विसेषी ॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ ।
सुजस धवल जग कह सब कोऊ ॥

"जनकजी ने सीता को तपस्वी वेष में देखा तो उन्हें हृदय में विशेष प्रेम और संन्तोष का अनुभव हुआ । वे कहने लगे हे पुत्री ! तुमने अपने आचरण से दोनों कुलों को पवित्र कर दिया । तुम्हारे उज्जवल यश की चर्चा संसार में सभी करेंगे । "

सचमुच सुलक्षिणी कन्या समाज के लिये श्रेष्ठतम अनुदानों में से एक है, वह देने वाले तथा पाने वाले दोनों को धन्य बना देती है । कन्याओं की इस महानता का सम्मान और उसी दृष्टि से उनका निर्माण करने का आदर्श समाज में अपनाया जा सके तो परिवारों की कायापलट होते देर न लगे ।

दामाद के प्रति, उसके परिवार के प्रति जनक जी की कर्तव्य-परायणता का एक और बड़ा उज्जवल उदाहरण मिलता है । राम वन को चले जाते हैं, अनुभवहीन भरत पर राज्य व्यवस्था का भार आ पड़ता है । तब वे अयोध्या में रहकर अपने अनुभव का लाभ देते हैं–

जनक रहे पुर वासर चारी ।
राज काज सब साज सँवारी ॥
सौंप सचिव गुरु भरतहिं राजू ।
तिरहुति चले साजि सब साजू ॥

"जनकजी अयोध्या में चार दिवस (कुछ समय) रुके । राज कार्य सब व्यवस्थित करके उसे मन्त्रियों, गुरु एवं भरतजी को सौंपकर तिरहुत चले गये । "

विपत्तियाँ तो संसार में सभी पर आती ही हैं किन्तु जहाँ इस प्रकार का सद्भावनापूर्ण तालमेल परिवारों के बीच होता है वहाँ वह विपत्तियाँ प्रभावहीन हो जाती हैं, सारे कार्य सुचारु रूप ये चलते रहकर पुनः सुख का समय आ जाता है ।

दामाद के प्रति ही नहीं बहू के प्रति भी सास-ससुर के आदर्श का उज्ज्वल रूप रामचरित मानस में मिलता है । बहू को पैर की जूती, कोल्हू का बैल, बिना पैसे का गुलाम मानकर चलने की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति वहाँ नहीं है । राजा दशरथ पुत्रों के विवाह के बाद बहुओं के प्रति क्या दृष्टिकोण रखते हैं, उसकी झलक तब मिलती है जब वर-वधू के स्वागत के बाद वे रानियों से बहुओं की देखभाल के लिये कहते हैं–

वधू लरकिनी पर घर आईं ।
राखेउ नयन पलक की नाईं ॥

"यह लड़कियां बहू बनकर दूसरे घर में आयी हैं, उन्हें इस सावधानी से रखना जैसे पलक नेत्रों को रखते हैं । "

कैसा सुन्दर भाव है ? घर छोड़कर आयी हुई लड़कियाँ आँखों की तरह ही संवेदनशील होती हैं । उनकी कोमल भावनाओं को विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है । यह तथ्य स्वीकार किया जा सके तो बहुओं के प्रति होने वाले व्यवहार में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दशरथजी ने जो कहा उसे कौशल्यादि माताओं ने पूरी तरह माना भी । बहुओं को वे बड़ी सावधानी से अपने निकट रखती हैं । उस भावना का चित्रण बड़ी सुन्दरता से किया गया है—

सुन्दर वधुन्ह सासु लै सोईं ।
फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोईं ॥

"सुन्दर बहुओं को साथ लेकर सासें सोयीं, मानों सर्पों ने अपने मस्तक की मणि को हृदय में छिपा लिया हो ।"

सर्प मणि को किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहता । बहुएँ मस्तक की मणि अर्थात् गौरव का चिह्न है, किन्तु उन्हें हृदय के निकट भी स्थान मिलना चाहिये । अर्थात् मात्र बुद्धि से नहीं भावना से भी उन्हें तृप्त किया जाना आवश्यक है । सीताजी के प्रति माताओं की ममता का पता उनके वन जाने के समय लगता है । सीता भी वन जाने को तैयार है यह जानकर माता कौशल्या भाव विह्वल हो जाती है, कहती हैं—

कलप बेलि जिमि बहुविधि लाली ।
सींच सनेह सलिल प्रतिपाली ॥

"मैंने कल्प वृक्ष की लता के समान इसे बहुत लाड़-प्यार से रखा है । अपने प्रेम रूपी जल से सींच-सींचकर इस पाला-पोसा है ।"

उन्हें सीता राम के ही समान प्रिय है । वे चाहती हैं कि यदि सीता न जायें तो श्रीराम के विछोह को भुलाने में भारी मदद मिल सकती है । वे श्रीराम से अपना मत व्यक्त करती हुई कहती हैं—

जौ सिय भवन रहै कह अम्बा ।
मो कहँ होइ बहुत अवलम्बा ॥

"माँ बोली - यदि सीता घर पर रह जाती है तो मुझे बड़ा आधार हो जायेगा ।"

राजा दशरथ भी उसी स्थिति में हैं । श्रीराम आदर्श के नाते रहने को तैयार नहीं है तो हम चाहते हैं कि सीता तो रुक ही जावे । उसके रूकने से प्राणों को अवलम्बन मिल सकता है । उन्होंने सुमंत जी से यह जोर देकर कहा कि हर प्रकार प्रयास करके सीता को रोकना । श्री सुमंत जी ने रामचन्दजी से वन में यह तथ्य बताया भी कि राजा चाहते हैं कि यदि राम न रुकें तो सीता को तो हाथ जोड़कर लौटा ही लाना । इस संदर्भ में विभिन्न स्थलों पर चौपाइयाँ इस प्रकार मिलती हैं—

तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी ।
फेरिउ प्रभु मिथलेश किशोरी ॥
एहि विधि करेउ उपाय कदम्बा ।
फिरइत होइ प्रान अवलम्बा ॥

"(यदि राम न रुके) तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कि हे प्रभु जनकनंदिनी सीता को तो वापिस कर ही दें । तुम इस प्रकार अनेक प्रयास करना । यदि सीता लौट आयी तो मेरे प्राणों की रक्षा के लिए आधार मिल जायेगा ।"

ससुराल पक्ष, सास-ससुर, दामाद, बहू आदि यदि इस प्रकार के आदर्शों को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अपना सकें तो परिवारों में व्याप्त सारे तनाव समाप्त होकर सौम्य और उल्लासपूर्ण परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान सम्बन्धी मर्यादा और उत्तरदायित्व

सन्तान प्राप्ति की आकांक्षा और उसके प्रति आकर्षण लगभग हर परिवार में पाया जाता है। भारतवर्ष में इसे सौभाग्य एवं पुण्य का प्रतीक माना जाता है। किन्तु यदि थोड़ा बारीकी से देखा जाय, चिन्तन किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सन्तान का होना सौभाग्य और सद्गति ही नहीं दुर्भाग्य और दुर्गति का कारण भी बन सकता है ।

सन्तान हो और वह सौभाग्य का आधार बने, यह आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को सन्तान सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट और व्यवस्थित बनाना होगा। सन्तान अपने कौतूहल और शौक की पूर्ति का विषय नहीं, उसके साथ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य और उत्तरदायित्व जुड़े रहते हैं। यदि इस तथ्य को न समझा जा सके, उसके अनुरूप ढंग न अपनाया जा सके तो श्रेष्ठ सन्तति की प्राप्ति और उस आधार पर यश, गौरव एवं सौभाग्य की प्राप्ति शेखचिल्ली जैसे सपने ही कहे जाने योग्य हैं।

सन्तान को जन्म देने का उद्देश्य परिवार को श्रेष्ठ सदस्य और समाज को उत्कृष्ट नागरिक प्रदान करना है। यदि बच्चों का शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास करने की क्षमता अपने अन्दर नहीं है तो वह दुस्साहस नहीं ही करना चाहिये। एक कहावत है "पहले पात्रता प्राप्त करो तब आकांक्षा करो।" सन्तान के सम्बन्ध में भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये। परिवार और समाज के हित की दृष्टि से जैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है , उसे समझने और विकसित करने, बनाने की क्षमता अपने अन्दर पहले पैदा कर लें, तभी सन्तान की आकांक्षा करें। सही व्यक्तियों के निर्माण की क्षमता हुए बिना सन्तान पैदा करना अपने लिए मुसीबत तथा समाज के लिए भार बढ़ाना ही है। ऐसा करना पुण्य एवं सौभाग्य नहीं पाप और दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

रामचरितमानस में दोनों प्रकार के उदाहरण देखने को मिलते हैं। आदर्श की दृष्टि से पुत्रों में भाइयों सहित राम तथा पुत्रियों में पार्वती और सीता का वर्णन मिलता है। राम और सीता आदर्श पुत्र-पुत्री थे, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु ऐसी सन्तति उन्हीं के होती है जो स्वयं श्रेष्ठ आचरण युक्त हों। श्रीराम विवाह प्रसंग में सीता और राम को देखकर स्त्री-पुरुषों में चर्चा होती है—

जनक सुकृत मूरति बैदेही ।
दशरथ सुकृत रामु धरे देही ॥

"जनक के श्रेष्ठ कृतत्वों की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजी के सुकृतों की प्रतिमा राम हैं।"

जनक और दशरथ के सदाचरण सम्पन्न होने का ज्ञान देखने वालों को पहले से हैं अतः वे सीता और राम को देखकर यह अनुभव करते हैं कि जनक और दशरथ के श्रेष्ठ कर्म ही वस्तुतः साकार हो उठे हैं।

सन्तति निर्माण में पिता की अपेक्षा माता का महत्त्व और भी अधिक होता है। श्रीराम के जन्म देने का श्रेय माता कौशल्या को देते हुए तुलसीदासजी वन्दना प्रसंग में उन्हें पूर्व दिशा की तरह पवित्र और महत्त्वपूर्ण कहकर प्रणाम करते हैं—

बंदऊँ कौसल्या दिसि प्राची ।
कीरति जासु सकल जग माची ॥

"मैं पूर्व दिशा के समान गौरवशाली माँ कौशल्या की वन्दना करता हूँ जिसकी कीर्ति सारे संसार में फैली हुई है।"

श्रेष्ठ सन्तान पैदा करना बड़ा महत्त्वपूर्ण और कठिन कार्य हैं। कोई उच्चस्तरीय उपकरण बनाना हो तो उसके लिए उपयुक्त माल से लेकर उपयुक्त मशीन और श्रेष्ठ शिल्पियों की व्यवस्था काफी पहले से करनी पड़ती हैं। श्रेष्ठ सन्तान को भी पृष्ठभूमि बहुत पहले से बनानी पड़ती है। माता-पिता की विचार, भावना संस्कार और स्वभाव की दृष्टि से अपने आपको प्रामाणिक बनाने के लिए तप (कठोर प्रयास) करना पड़ता है। दशरथ और कौशल्या पूर्व जन्म से ही अपने आपको तप द्वारा उस योग्य बनाने में लगे थे कि भगवान पुत्र रूप में आ सकें।

देवताओं द्वारा राक्षसों से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की जाने पर भगवान उन्हें यह मर्म बतलाते हैं—

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा ।
तिन्ह कहँ मैं पूरब वर दीन्हा ॥

"कश्यप और अदिति ने बहुत समय पहले ही महान तप किया था, तब मैंने उन्हें वरदान दिया था।"

उनके तप के आधार पर ही भगवान ने उनके यहाँ पुत्र रूप में आना स्वीकार किया था। दशरथ कौशल्या के रूप में भी वे श्रेष्ठ गुण और पवित्र आचरण से युक्त हैं। परस्पर सद्भावना और ईश्वर के प्रति अगाध आस्था उनमें है। राम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्म की कथा भूमिका में ही राजा दशरथ एवं उनकी पत्नियों के सम्बन्ध में इस प्रकार विवरण मिलता है—

धरम धुरंधर गुण निधि ज्ञानी ।
हृदय भगति मति सारंग पानी ॥
कौशल्यादि नारि प्रिय,
सब आचरन पुनीत ।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़,
हरि पद कमल विनीत ॥

"वे (राजा दशरथ) धर्म के श्रेष्ठ पालक, गुणों के भण्डार ज्ञानी तथा भगवान के प्रति हृदय से भक्तियुक्त हैं । उनकी कौशल्यादि सभी नारियां आचरण से पवित्र, पति के अनुकूल तथा भगवान के श्रीचरणों में दृढ़ प्रेम रखने वाली हैं ।"

दशरथ राजा थे । आर्थिक दृष्टि से बच्चों के लालन में समर्थ थे विचारों और गुणों की दृष्टि से भी पत्नियों सहित सम्पन्न थे । फिर भी सन्तति प्राप्ति के लिए उन्होंने जल्दबाजी नहीं की । पति-पत्नी नयी उमर में ही संतान पैदा करने लगते हैं । उस समय न तो उनके विचार तथा अनुभव परिपक्व होने पाते हैं और न आर्थिक सुदृढ़ता आने पाती है । ऐसी स्थिति में उत्पन्न संन्तान संस्कारों की दृष्टि से तो हीन होती ही है, सही लालन-पालन न मिल पाने से और भी गयी गुजरी स्थिति में पहुँच जाती है । दशरथ जी ने सन्तुलन से काम लिया । अपनी अवस्था देखकर जब उत्तराधिकारियों की आवश्यकता अनुभव हुई, तब उन्होंने गुरु वशिष्ठ से अपनी इच्छा व्यक्त की । उनकी सलाह के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा यज्ञीय वातावरण में रानियों को रखा । वे श्रेष्ठ सन्तान को गर्भ में रखकर उनके उचित विकास में सक्षम हो गयीं । उनकी स्थिति का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

मन्दिर महँ सब राजहिं रानी ।
सोभा सील तेज की खानी ॥

"तीनों रानियाँ महलों में शोभाशील और तेज की खान की तरह सुशोभित होने लगीं ।"

शोभा से शारीरिक स्वास्थ्य, शील से मानसिक प्रवृत्तियों तथा तेज से आध्यात्मिक शक्तियों का श्रेष्ठ स्थिति में होना सिद्ध होता है । मातायें वस्तुत: खानें ही होती हैं । खान जैसी होगी वैसा ही रत्न निकलेगा । कोयले की, पत्थर की खान में से रत्न कैसे निकल सकते हैं ? श्रेष्ठ सन्तति के लिए माताओं को स्वस्थ विचार तथा भावदृष्टि से पुष्ट बनाया जाना आवश्यक हैं ।

गर्भकाल में माँ के चिन्तन तथा क्रियाकलापों का सीधा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है । इसलिए इन्हें हर्ष उल्लासपूर्ण वातावरण में रखा जाना चाहिये । माताओं को भी स्वयं प्रसन्न और संतुलित रहना चाहिये । श्रीराम जन्म के प्रसंग में यह शर्त भी पूरी की गयी । रानियों ने गर्भकाल हर्ष एवं प्रसन्नता के वातावरण में बिताया—

सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ ।
जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भयऊ ॥

"रानियों का इस प्रकार गर्भकाल का समय सुखपूर्वक व्यतीत हुआ और वह अवसर आ पहुँचा जिस समय प्रभु को प्रकट होना था ।"

इस प्रकार पहले जन्म से लेकर पुत्र प्राप्ति तक श्रेष्ठ आचरणों की तथा प्रयासों की एक लम्बी शृंखला मिलती है । तब दशरथ जी को श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति हो पाती है । पुत्र जन्म के बाद भी वे अपने आदर्शों के पालन का क्रम बनाये ही रखते हैं । फलस्वरूप बालक उन्हीं का अनुसरण करने लगते हैं । बालकों को उचित ढंग से विकसित होते देखकर गुरु वशिष्ठ भी राजा के आचरण की प्रशंसा करते हैं । वे कहते हैं—

वीर विनीत धर्म व्रतधारी ।
गुन सागरबर बालक चारी ॥

"इन्हीं पुण्यों के परिणामस्वरूप तुम्हारे चारों बालक वीर, धर्मात्मा, नम्र, श्रेष्ठ तथा सद्गुणों के भण्डार हैं ।"

स्वस्थ तथा सुसंस्कार सम्पन्न यह बालक जहाँ भी जाते हैं, अपनी श्रेष्ठता की अनौखी छाप छोड़ते चलते हैं । ऋषि विश्वामित्र के साथ श्रीराम एवं लक्ष्मण जनकपुरी में पहुँचकर धनुष यज्ञ में सारे राजाओं के बीच अद्वितीय सिद्ध होते हैं । जनकजी के दूत उनकी सफलता का समाचार देने अयोध्या पहुँचते हैं । स्नेहवश दशरथजी उनसे पूछते हैं कि क्या तुमने उन्हें सकुशल देखा है ? क्या तुम उन्हें पहचानते हो ? तब वे उत्तर देते हैं—

पूछन जोग न तनय तुम्हारे ।
पुरुष सिंह तिंहु पुर उजियारे ॥

"हे महाराज ! आपके पुत्र पूछने लायक नहीं है । वे पुरुषों में सिंह के समान पुरुषार्थ तथा अपने गुणों और तेजस्विता के कारण तीनों लोकों में प्रकाश फैलाने वाले हैं ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुत्रों के द्वारा नाम और यश फैलने की कल्पना सभी माता-पिता करते हैं, किन्तु ऐसा होना तभी सम्भव है, जब पुत्र सुपुत्र हो, अर्थात् श्रेष्ठ गुण और आचरण से सम्पन्न हो। यदि स्थिति विपरीत है तो परिणाम विपरीत ही हो सकता है। कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाना तो दूर, कुपुत्र तो परिवार को पहले से प्राप्त प्रतिष्ठा धर्म आदि का नाश कर डालते हैं। यह भाव अलंकारिक ढंग से वर्षा वर्णन प्रसंग में उभारा गया है—

कबहु प्रबल बह मारुत,
जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कुपुत्र के ऊपजे,
कुल सद्धर्म नसाहिं ॥

"कभी तेज वायु चलने से एकत्रित मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, जिस प्रकार से परिवार में कुपुत्र पैदा हो जाने से पारिवारिक धर्माचरण नष्ट हो जाते हैं।"

यह तथ्य लोग भूल जाते हैं और सोचते हैं कि कैसा भी पुत्र हो जाय, उसी से कुल का नाम रोशन हो जायेगा। कभी-कभी लोग सन्तान की श्रेष्ठता की उपेक्षा करके उसकी संख्या को महत्त्व देने लगते हैं। सोचते हैं अधिक सन्तान परिवार तथा समाज को सशक्त, और सुखी बना देगी। किन्तु यह सब भ्रम है। सन्तान की संख्या की दृष्टि से तो रावण बहुत सफल था। रावण-वैभव वर्णन करते हुए रामचरितमानस में उसके सन्दर्भ में इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

सुत समूह जन परिजन नाती ।
गनै को पार निसाचर जाती ॥

"पुत्रों का समूह, नौकर, परिवार के सदस्य, नाती आदि बहुत अधिक थे, इन्हें गिनकर कौन पार पा सकता है।"

इस प्रकार अगणित पुत्र-पौत्रों वाले रावण का विनाश किस बुरी तरह हुआ, यह सभी जानते हैं। उनकी संख्या न तो उसके शरीर की रक्षा कर सकी और न यश की। कारण एक ही था कि बच्चों को सुसंस्कारी बनाने पर उसका विश्वास ही नहीं था। इस आवश्यकता को समझने वाला व्यक्ति बच्चों में सुसंस्कार पैदा करने में स्वयं को असमर्थ पाकर उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तियों के हवाले कर सकता है। स्वयं के प्रयास तथा श्रेष्ठ जनों के सहयोग के संयोग से भी बच्चों का ठीक-ठीक निर्माण किया जा सकता है। बालि ने यही किया। उसने केवल एक ही सन्तान पैदा की, उसे यथा शक्ति सुयोग्य बनाया। श्रीराम के हवाले कर दिया। मृत्यु के पूर्व अंगद को बुलाकर उसे भगवान के सुपुर्द करते हुए बोला—

यह तनय मम सम विनय बल—
कल्याणप्रद प्रभु लीजिए ।
गहि बांह सुर नर नाह,
आपन दास अंगद कीजिए ॥

"यह पुत्र मेरे समान नम्र और बलवान है। हे मंगल करने वाले प्रभु इसे लीजिये। हे देवता और मनुष्यों के स्वामी, अंगद का हाथ पकड़कर इसे अपना सेवक (अनुगामी) बनाइये।"

बालि से बल और श्रीराम से शुभ संस्कार पाकर अंगद अद्वितीय बन गये। उनके गुण और पौरुष को देख-देख कर लोग आश्चर्य करने लगे। यदि बालि अपने बेटे में बल के साथ श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के विकास की ओर से उदासीन रहता तो यह उपलब्धि सम्भव न होने पाती। समर्थ व्यक्ति को आदर्श परायण भी होना ही चाहिये। अन्यथा वह सामर्थ्य हानिकारक ही सिद्ध होता है। इस दृष्टि से मानसकार का मत है कि अभिभावक, विशेष रूप से माता बालक को आदर्श परायण बनाये। जब श्रीराम के साथ वन जाने की आज्ञा मांगने लक्ष्मणजी माता सुमित्रा के पास जाते हैं, तब वे इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करती हुई कहती हैं—

पुत्रवती जुबती जग सोई ।
रघुपति भगत जासु सुत होई ॥

"संसार में वही स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र श्रीरामजी का भक्त हो, अर्थात् उनके आदर्शों का अनुगामी हो।"

माता सुमित्रा के मतानुसार यदि बालक आदर्शनिष्ठ, ईश्वर परायण नहीं तो मां का पुत्रवती कहलाना निरर्थक है। क्योंकि वैसा पुत्र तो उसके नाम को कलंकित ही करेगा। इसीलिए वे मातृत्व की इच्छुक युवतियों को सावधान करती हुई कहती हैं कि सन्तान पैदा करने के पूर्व अपनी यह मान्यता दृढ कर लें, जो यह सोचती हैं कि चाहे जैसा हो पुत्र तो हितकारी है, उनका सन्तान पैदा करना बेकार है—

नतरु बांझ भलि बादि बिआनी ।
राम विमुख सुत तें हित जानी ॥

"राम से विमुख पुत्र से हित की आशा करने वाली स्त्री का प्रसव बेकार है, उससे तो बांझ (जिसके बच्चे होते ही नहीं ऐसी स्त्री) ही अच्छी है।

बिआनी शब्द पशुओं के लिए प्रयुक्त होता है। यहाँ संकेत यही है कि आदर्शहीन बालक को जन्म देना पशुओं की संख्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़ाने जैसा ही है। इसलिए माताओं को बच्चों में श्रेष्ठ विचार श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ पैदा करने के प्रयास हर दिशा से करने चाहिये।

अधिकांश माताओं को बच्चों को श्रेष्ठ संस्कार देने के ढंग ही नहीं मालूम रहते। गर्भकाल में माता के रक्त द्वारा बच्चे को माँ के विचारों का असर पहुँचता रहता है और शैशवकाल में दूध के द्वारा भी यही होता है। दूध पिलाते समय माता श्रेष्ठ विचार युक्त रहे। बच्चे के विकास की श्रेष्ठ गुणों की कल्पनायें करे यह बड़ा ही उपयोगी है। माता कौशल्या राम को दूध किस प्रकार पिलाती हैं, इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

गोद राखि करावं पय पाना।
रघुपति चरित ललित करि गाना॥

"माँ गोद में लेकर दूध पिलाती है और साथ-साथ मधुर स्वर में राम के श्रेष्ठ चरित्रों का गान करती जाती है।"

गोद में लेकर दूध पिलाने का अर्थ है— चैतन्य स्थिति में दूध पिलाना। तन्द्रा आलस्य की स्थिति में दूध पिलाने से बच्चे में वही प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं। श्रीराम को रघुपति चरित्र कैसे सुनाती है, यह प्रश्न उठता है। इसके दो अर्थ हैं— एक तो पूर्व अवतारों के श्रेष्ठ चरित्रों का गान अथवा मेरा बेटा धीर वीर बनेगा बेटा असाधारण है, आदर्श स्थापित करेगा आदि भावपूर्ण वाक्य बोलना। सती मदालसी ने अपने बच्चों को इसी प्रकार 'शुद्धो सि, बुद्धो सि' कहकर आदर्श बनाया था।

इसी प्रकार बच्चों के अन्दर खेल-खेल में ही श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को जगाना बड़ा ही उपयोगी है। बच्चे हर देखे हुए कार्य को अपने खेल में शामिल करने लगते हैं। मारपीट, खाना बनाना, अतिथि यात्रा आदि सभी प्रकरण बच्चों के लिए खेल बन जाते हैं। खेल में दोहरायी जाने वाली भावनायें उनमें गहराई से प्रविष्ट होती जाती हैं। अभिभावकों को चाहिये कि बच्चों को खेलने का अवसर भी दें,तथा मार्गदर्शन भी, ताकि वे अच्छे खेल खेलें और वैसे ही आचरण सीखें। श्री राम के सन्दर्भ में खेलों का वर्णन मानस में इस प्रकार है—

बिद्या बिनय निपुण गुण सीला।
खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

"वे विद्या और विनय में निपुण हैं। सभी भाई राजाओं के क्रियाकलापों का खेल खेलते हैं।"

बालकों में सामूहिकता, सहयोग, सहकारिता, समता, उदारता आदि प्रवृत्तियों का विकास किया जाना चाहिए। खाने-पीने के मामले में बहुधा बच्चे स्वार्थी होने लगते हैं और भेदभाव बरतने लगते हैं। यह दोष उनमें माता-पिता की भूलों से ही आता है। अन्य बच्चों से छिना कर, चुपचाप स्वयं दूसरों से अधिक हिस्सा लेकर रखने की आदत माता-पिता के समर्थन अथवा उपेक्षा से ही बढ़ती है। फिर यही आदत जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैलने लगती है। बच्चों में प्रारम्भ से ही मिल बांट कर खाने, दूसरों का हिस्सा उस तक पहुँचाने की प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए। रामायण का आदर्श इस प्रकरण में स्पष्ट है। चारों भाइयों के बाल्यकाल का चित्रण करते हुए लिखा गया है—

अनुज सखा सँग भोजन करहीं।
मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं॥

"वे भाइयों और मित्रों के साथ मिल-जुल कर भोजन करते हैं तथा माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं।"

माता-पिता की आज्ञा पालन कर वर्णन यहाँ दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। एक तो यह कि इस प्रकार मिल-जुलकर भोजन करने की आज्ञा माता-पिता देते हैं, जिसका पालन करते हैं। दूसरे माता-पिता की आज्ञा अनुशासन की भी प्रतीक है। बाल्यकल से ही बच्चों को आज्ञा अनुशासन में चलने का अभ्यास कराया जाना चाहिये, अन्यथा बाद में उनके स्वभाव बिगड़ जाते हैं। अनुशासन एवं शिष्टाचार का अभ्यास भी बच्चों को प्रारम्भ से ही कराया जाता है। गुरु आश्रम से श्रेष्ठ शिक्षा पाकर वे सभी भाइयों सहित वापस आये। आदर्श शिक्षा के कारण उनके व्यवहार में आदर्शवादिता आ गई—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

"श्री भगवान राम प्रातःकाल ही जाग पड़ते हैं तथा माता, पिता एवं गुरु को प्रणाम करते हैं।"

जैसे-जैसे बालकों की बुद्धि एवं क्षमताओं का विकास होता चले, उन्हें धीरे-धीरे उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंप जाना चाहिए। उनमें उत्साह तो हर कार्य के लिए बहुत होता है, किन्तु अनुभव की कमी के कारण भूलों की सम्भावना अधिक रहती है। भूलें न हों इसलिए उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में बार-बार पूछकर कार्य करने का निर्देश देना चाहिए। बड़ों को चाहिए कि उनकी देख-रेख रखें ताकि कार्य बिगड़ने न पावे। बाद में खीझ, असन्तोष आदि व्यक्त करने की अपेक्षा पहले ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सावधानी बरती जानी चाहिए । ऐसा करने से दोनों पक्षों को प्रसन्नता होती है । राजा दशरथ ने बच्चों के सम्बन्ध में यह सावधानी बरती कि उन्हें उस समय-समय पर व्यवस्था के काम सौंपते चले । बच्चे उन्हें उत्साहपूर्वक करते हैं—

आयसु माँगि करहिं पुर काजा ।
देखि चरित हरषइ मन राजा ॥

"सहमति ले-लेकर वे राज्य के कार्यों को करते हैं, उनके चरित्र को राजा देखते हैं और मन में हर्षित होते हैं ।"

बच्चों के सामने उनकी बहुत अधिक बड़ाई करने से उनमें अहंकार बढ़ने का भय रहता है, अतः प्रोत्साहन तो देना चाहिए, परन्तु उनकी सफलता पर बहुत अधिक फूले नहीं फिरना चाहिये । मन में हर्षित होने की बात इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कही गई है ।

बच्चों से स्नेह तो किया जाय मोह नहीं । उनके विकास और शिक्षण के लिए उन्हें उपयुक्त व्यक्तियों के पास रहने का अवसर देना चाहिये । मोह वश अपने पास ही रखने का आग्रह हानिकारक है । राक्षसों से यज्ञ की रक्षा हेतु विश्वामित्र ने अयोध्या आकर महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगा । दशरथजी ने अपने मोह को बच्चों के विकास में बाधक नहीं बनने दिया ।

सोंपे भूप रिषिहिं सुत,
बहु विधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु,
चले नाय पद सीस ॥

"तब राजा दशरथ ने अपने दोनों पुत्रों को अनेक प्रकार से आशीर्वाद देकर महर्षि विश्वामित्र को सौंप दिया । उनके बाद भगवान राम माता के महल में गये और उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत करके ऋषि के साथ चल दिये ।"

विश्वामित्र बड़े तपस्वी और ज्ञानी थे । उन्होंने राम-लक्ष्मण में पात्रता देखकर उन्हें सभी प्रकार की विद्यायें बड़े मनायोग से सिखायीं । दोनों ओर से उत्साह होने के कारण रात्रि में देर तक भी उनका सीखने-सिखाने का क्रम चलता रहता—

कहत कथा इतिहास पुरानी ।
रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥

"फिर मुनि ने इतिहास और प्राचीन कथाएँ सुनाई । इस प्रकार सुन्दर रात्रि के दो पहर व्यतीत हो गये ।"

इस प्रकार हर पक्ष से उचित और समयानुकूल प्रयासों के संयोग से ही चारों भाई आदर्श बन सके । बालकों के निर्माण की मर्यादा और जिम्मेदारी का यह क्रम आगे भी उसी ढंग से निभाया-चलाया जाता रहा । चारों भाइयों ने आदर्श राज्य की स्थापना हो जाने पर उपयुक्त वातावरण तथा परिस्थिति पैदा होने पर ही सन्तान पैदा करना प्रारम्भ किया, उसके पूर्व नहीं । सन्तान संख्या की भी मर्यादा रखी गयी, और उन्हें सुयोग्य भी बनाया गया । उत्तरकाण्ड में उल्लेख है—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाए ।
लव कुश वेद पुरानन्ह गाए ॥

"सीताजी ने लव और कुश नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका शास्त्रों ने वखान किया है ।"

यह दोनों पुत्र भी रूप, गुण और स्वभाव में श्रीराम की ही तरह श्रेष्ठ निकले । उनके शौर्य, साहस तथा ज्ञान की गाथायें सभी को ज्ञात हैं । मानसकार ने उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट संकेत करते हुए लिखा है—

दोऊ विजई विनई गुन मन्दिर ।
हरि प्रतिबिम्ब मनहुँ अति सुन्दर ॥

"वे दोनों ही विख्यात, योद्धा, नम्र और गुणों की खान तथा बहुत सुन्दर हुये, मानो श्रीराम के प्रतिबिम्ब ही हों ।"

श्रीराम के अन्य भाइयों ने भी आदर्श निभाया—

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे ।
भए रूप गुन सील घनेरे ॥

"दो-दो पुत्र सब भाइयों के हुए जो बहुत ही सुन्दर, गुणवान और सुशील थे ।"

सामाजिक कुरीतियों के कारण लोग पुत्री को हीन तथा पुत्र को श्रेष्ठ मानने लगे हैं लड़कों को सुयोग्य बनाना तथा उनके भविष्य के प्रति सावधानी बरतना तो लोग उचित समझते हैं, किन्तु लड़की की हर दिशा में उपेक्षा कर देते हैं । यह गलत है । मानस का आदर्श इस मान्यता से भिन्न है । वहाँ पुत्री को भी पुरा महत्त्व और सन्मान प्राप्त है । हिमाचल के एक पुत्री है— पार्वती ! उसे वे हर प्रकार से योग्य बनाते हैं । विवाह का प्रसंग आ पड़ने पर माता मैना हिमांचल से कन्या के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करती है—

जौं घर वर कुल होय अनूपा ।
करिय विवाह सुता अनुरूपा ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नतु कन्या बरु रहइ कुंवारी ।
कंत उमा मम प्रान पियारी ॥

"हे स्वामी ! यदि वर और कुल हमारी कन्या के अनुरूप मिले तो ही उसका विवाह करें, अन्यथा मेरी यह प्राण से भी प्यारी कन्या कुंवारी ही बनी रहे तो कोई हानि नहीं ।"

कन्या को भार समझकर उसे कहीं भी टाल देना अनीति है । उसे पुत्रों की तरह ही स्वावलम्बी बनाना चाहिये, ताकि उपयुक्त घर वर न मिले तो वह पुत्र की ही तरह स्वावलम्बी प्रतिष्ठित जीवन कुंवारी रहकर भी बिता सके । उपयुक्त संवाद में यह तथ्य बड़ी स्पष्टता से प्रकट कर दिया गया है ।

इसके लिए पुत्रियों को केवल घर में ही कैद न रखकर मर्यादा और व्यवस्थापूर्वक घर से बाहर निकल कर अध्ययन का भी अवसर देना चाहिये । सीता को घर पर शिक्षण देने के साथ-साथ, समय-समय पर माता उन्हें प्रामाणिक सहेलियों के साथ महलों से बाहर भी भेजती हैं । पुष्प वाटिका प्रसंग में उल्लेख है कि जब ऋषि आज्ञा से राम, लक्ष्मण बाग से पूजा के लिए पुष्प लेने पहुँचते हैं, तो पूजा करने सीता भी वहाँ पहुँचती हैं—

तेहि अवसर सीता तहँ आई ।
गिरिजा पूजन जनन पठाई ॥

"उसी समय सीताजी भी वहाँ पहुँची उन्हें माता ने गौरी पूजन के लिए भेजा था ।"

जहाँ श्रीराम-लक्ष्मण में आस्तिकता के संस्कार पैदा किये जा रहे हैं (पूजा हेतु फूल लाने का कार्य सौंपकर), वहाँ सीता में भी वह आस्थायें पुष्ट की जा रही हैं । अपनी-अपनी मर्यादानुसार दोनों अपने निवास की सीमा से बाहर निकल कर अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का अवसर पाते रहते हैं ।

पुत्री को सुयोग्य बनाने का प्रयास किया जाय तो वह पुत्र की अपेक्षा कम नहीं अधिक ही लाभप्रद सिद्ध होती है । पुत्र तो अपनी योग्यता से एक ही कुल की शान बढ़ाता है, पुत्री तो दो कुलों की प्रतिष्ठा बढ़ाती है । सीता श्रीराम के साथ तपस्वी वेष में जंगल चली जाती है । चित्रकूट में पुत्री को इस प्रकार आदर्शनिष्ठ देखकर जनकजी पुलकित हो उठते हैं और कहते हैं—

पुत्र पवित्र किए कुल दोऊ ।
सुजस धवल जगु कह सब कोऊ ॥

"बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये । तेरा निर्मल यश संसार में फैल रहा है और सभी लोग सराह रहे हैं ।"

श्रीराम-लक्ष्मण जैसे पुत्र और सीता एवं पार्वती जैसी पुत्रियों का निर्माण आज भी किया जा सकता है । आवश्यकता है उस मर्म को समझने की और उसके उत्तरदायित्व को वह न करने का साहस जुटाने की । यदि रामचरितमानस से प्रेरणा लेकर ऐसा किया जा सके तो हम धन्य हो जावें । मानस एवं रचयिता के प्रति भी यह सच्ची श्रद्धाञ्जलि हो सकती है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार को नीतिनिष्ठ बनायें

अपने परिजनों को सुखी और समुन्नत देखने की आकाँक्षा सभी में होती है । उसके लिऐ अपने ढंग से लोग थोड़ा बहुत प्रयास भी करते हैं । उन प्रयासों को बढ़ाया जाय, उनमें अधिक तत्परता लायी जाय, यह भी उचित है किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक है उनकी दिशा को सही किया जाना ।

लोग अपने परिवार के सदस्यों को शारीरिक दृष्टि से निरोगी एवम् स्वस्थ, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न, बौद्धिक दृष्टि से शिक्षित देखना-बनाना चाहते हैं, यह सब ठीक है । परन्तु इसके साथ-साथ उन्हें आदर्श नीतिनिष्ठ बनाना महत्त्वपूर्ण है जिसकी उपेक्षा से साधन सम्पन्न परिवार के स्वरूप और महत्त्व समझना, प्रयास करना भी नितान्त आवश्यक है ।

परिजनों के उत्कर्ष की कामना करना और उन्हें उस मार्ग पर चला देना, दोनों में बहुत अन्तर है । कल्पनायें तो शेखचिल्ली भी बहुत बढ़िया कर लेते हैं । किन्तु उस मार्ग पर चलने-चलाने की कीमत चुकानी पड़ती है । समझदारी, सूझ-बूझ, संतुलन, श्रम, सतर्कता, स्नेह और अनुशासन आदि प्रवृत्तियों का समयानुकूल उपयोग करना पड़ता है ।

इस सन्दर्भ में परिवार के सभी सदस्यों को सतर्क, सावधान और प्रयत्नशील रहना चाहिए परन्तु परिवार के प्रमुख मुखिया की जिम्मेदारी इस बारे में सबसे अधिक होती है । घर के सदस्यों के विचारों और प्रयासों को मोड़ देने की सबसे अधिक कुशलता उसी में होनी चाहिए । मुखिया यदि कर्तव्य विमुख रहता है, परिवार के सदस्यों के प्रति उसका दृष्टिकोण पक्षपातपूर्ण या उपेक्षापूर्ण रहता है, तो परिवार को आदर्शनिष्ठ बनाना कठिन हो जाता है ।

रामचरितमानस वस्तुतः कुछ नीतिनिष्ठ आदर्श परायण परिवारों की कहानी है, जो विभिन्न विषम परिस्थितियों में भी अपनी निष्ठा और तदनुसार बनाये गये स्वभावों के कारण श्रेष्ठतम आदर्शों का निर्वाह कर सके । परिवार के मुखिया के कर्तव्यों का संक्षिप्त, किन्तु सारभूत उल्लेख उसमें मिलता है । श्रीराम चित्रकूट में भरत जी को समझाते हुए कहते हैं—

मुखिया मुख सों चाहिए,
खान पान कहु एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग,
तुलसी सहित विवेक ॥

"प्रधान को मुख के समान होना चाहिये जो खाने-पीने में तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सभी अंगों का पालन-पोषण करता है ।"

शरीर के सभी अंग अपने-अपने निर्धारित कार्य को करते रहते हैं । उसमें खर्च हुई शक्ति की पूर्ति आहार से होती है, किन्तु हर अंग अलग-अलग नहीं खाता । सबकी आवश्यकता की पूर्ति एक ही माध्यम मुख से होती है । फिर भी प्रत्येक अंग को कार्य के अनुपात में पोषण उचित मात्रा में पहुँचता रहता है । मुख खाता है, इसलिए उसके पास वालों को पहले और अधिक मिले अन्य को कम, ऐसा नहीं होता । शरीर में कहीं भी पीड़ा हो, चेहरे पर उसका प्रभाव तुरन्त दिखने लगता है । मुखिया को भी ऐसा होना चाहिये ।

ऐसा उत्तरदायित्त्व कभी-कभी परिवार के किसी भी वयस्क सदस्य पर भी आ सकता है । अतः विवेकजन्य समता का ध्यान उन्हें भी रखना पड़ता है । वन गमन प्रसंग में श्रीराम जब माँ कौशल्या को अपने वनवास का समाचार सुनाते हैं तो पहले वे पुत्र मोह में विचलित हो उठती हैं, किन्तु तुरन्त ही अपने पारिवारिक आदर्श का स्मरण करके सँभल जाती हैं—

बहुरि समुझि तिय धरम सयानी ।
राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥

"फिर बुद्धिमती कौशल्याजी ने नारी धर्म को विचार कर, राम तथा भरत दोनों को समान ही समझा ।"

कौशल्या जी की महानता इसी समझ के सहारे उभर आई । यहाँ चूक जातीं तो फिर उनका स्तर वह न रहता जो अभी है । अपने अन्तःकरण में आदर्श के निर्वाह की शक्ति उन्हें इसी आधार पर अनुभव हुई और ऐसी विषम स्थिति में स्वयं संतुलित रहते हुये औरों को भी संभालने की एक मिसाल पेश कर सकी ।

परिवार के बच्चों में भी श्रेष्ठ गुणों के विकास का ध्यान माता-पिता प्रारम्भ से रखें, उनके आचरणों का अध्ययन और उस आधार पर उनको प्रोत्साहन या सलाह देते रहना चाहिये । श्रीराम पर दशरथ जी ऐसी दृष्टि रखते हैं और राम को सब प्रकार सही पाकर प्रसन्न होते हैं ।

राम रूप गुन सील सुभाऊ ।
प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"रामचन्द्रजी के सौन्दर्य, गुण, आचरण और स्वभाव को देख सुनकर महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न होते हैं।"

सामान्य जीवन क्रम में तो माता-पिता अपने बच्चों को आदर्श का उपदेश देते रहते हैं, किन्तु जब कभी आदर्श के निर्वाह में कष्ट कठिनाइयों एवं बिछोह की स्थिति आती है तो लोग लड़खड़ा जाते हैं। ऐसे समय सच्चे आदर्श परायण व्यक्ति नहीं डिगते। मानस में इसका बड़ा उत्कृष्ट प्रमाण राम वनगमन के पूर्व माता सुमित्रा तथा लक्ष्मण के संवाद में मिलता है। लक्ष्मण श्रीराम के साथ वन जाने को तैयार हो जाते हैं। माता पुत्र के मोह में पड़कर उन्हें रोक सकती थी। लक्ष्मण को तो वनवास की आज्ञा भी नहीं दी गई थी। किन्तु आदर्श के पालन में भाई के सहयोग की नीति को वे प्रधानता देती हैं, वे दुख की अपेक्षा गौरव का बोध करती हैं, और रोकने की जगह प्रोत्साहन देकर पुत्र को नीति मार्ग पर आगे बढ़ा देती हैं। माता सुमित्रा कहती हैं—

भूरि भाग भाजन भयऊँ,
मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरे मन छाँड़ि छल,
कीन्ह राम पद ठाउँ॥

"हे पुत्र! तू श्रेष्ठ सौभाग्य का अधिकारी हो गया, मैं भी तेरे ऊपर बलि जाती हूँ। क्योंकि तुम्हारे मन में निश्छल भाव से श्रीराम के प्रति समर्पण भाव आ गया।"

सेवा का दिखावा यश पाने और शेखी दिखाने के लिए बहुत लोग करते हैं, किन्तु बिना किसी बदले की कामना के पूरी निष्ठा से सेवा के लिऐ जीवन समर्पित कर देना बहुत बड़ी बात है। ऐसा साहस करने वाला व्यक्ति लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही प्रकार से लाभान्वित होता है। किन्तु ऐसी सेवा भी मात्र कल्पना तक ही न रह जाये, चरितार्थ हो उठे, इसके लिए अपने अन्तःकरण को बहुत शुद्ध और सन्तुलित बनाना पड़ता है। उच्चस्तरीय सेवा की पात्रता विकसित करने, उसमें सफल होने का सूत्र पुत्र को समझाती हुई माता आगे कहती हैं—

राग रोष ईर्षा मद कोहू।
जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार विकार बिहाई।
मन क्रम वचन करेहु सिवकाई॥

"हे बेटा, तुम सपने में भी रोष, ईर्ष्या, घमण्ड, क्रोध आदि के वश में मत होना। सब प्रकार से विकारों को छोड़कर मन, वचन और कर्म से सेवा करना।"

इस प्रकार आदर्शनिष्ठ शिक्षण पाकर ही लक्ष्मणजी अपनी शक्ति सामर्थ्य का वह उपयोग कर सके जिसके लिए लोग लालायित रहते हैं। ऐसे शिक्षण के अभाव में बालक अनैतिक आचरण के अभ्यस्त हो जाते हैं। इसमें दोष उनका कम होता है, अभिभावकों का अधिक होता है, जो स्थल साधनों को ही प्रधान आधार मानकर बच्चों का सारा ध्यान उसी ओर लगा देते हैं। गुणों और नीति निष्ठा के महत्त्व का बोध अभिभावकों को न होने से बच्चों को एकांगी बना देते हैं। ऐसे मूढ़ व्यक्ति बच्चों को जो सीख देते हैं, उसका नमूना उत्तरकाण्ड में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

मातु पिता बालकन्ह बोलावहिं।
उदर भरइ सोइ धर्म सिखावहिं॥

"माता पिता बच्चों को पास बुलाकर यह सिखाते हैं कि जिस प्रकार पेट भरे, बस वही धर्म है।

ऐसी भ्रान्त मान्यता को लेकर बच्चे हर न करने योग्य कार्य करते चले जाते हैं और परिणामतः स्वयं कष्ट पाते हैं और समाज का भी पतन करते हैं।

कुछ अभिभावक सोचते हैं कि बच्चों के लिए यदि धन की व्यवस्था कर दी जाय तो वे जीवन भर सुखी बने रहेंगे। किन्तु यह उनकी भारी भूल होती है। धन तो किसी भी सांसारिक उतार-चढ़ाव के कारण नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह परिजन जिनका बौद्धिक विकास नहीं किया गया, बड़े संकट में पड़ जाते हैं। जिसका सहारा था, वह धन रहा नहीं, अपनी योग्यताओं से अपनी आवश्यकता पूर्ति करना आता नहीं इस दुखद स्थिति का चित्रण करते हुए मानसकार ने किष्किन्धा काण्ड में शरद वर्णन के अन्तर्गत लिखा है—

जल संकोच विकल भईं मीना।
अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥

"जल की कमी से मछलियां उसी प्रकार व्याकुल हैं, जैसे बुद्धिहीन कुटुम्बी धन की कमी आ पड़ने पर दुखी हो जाते हैं।"

अस्तु अभिभावकों, परिवार के वरिष्ठ सदस्यों को चाहिये कि वे छोटों में उन मानवीय गुणों का विकास करने पर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ध्यान दें, जिनके कारण नर श्रेष्ठ बनता है, महान कहलाता है ।

शिक्षण का सबसे अच्छा ढंग है, अपना उदाहरण प्रस्तुत करके सिखाना । बच्चों को यदि लोगों का सम्मान करना, शिष्टाचार बरतना सिखाना है, तो बड़ों को स्वयं भी वैसा करना चाहिये । अपने से बड़ों का ही सम्मान करना पर्याप्त नहीं, छोटों का भी यथोचित सम्मान किया जाना चाहिये । तभी सीखने वालों पर भी ठीक प्रभाव पड़ता है । छोटों का सम्मान करना कोई हीनता की बात नहीं, बल्कि महानता का प्रमाण है । इस भाव को प्रकट करते हुए मानस में भानुप्रताप की कथा में उल्लेख है—

बड़े सनेह लघुन्ह पर करहीं ।
गिरि निज सिरन्ह सदा तृण धरहीं ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू ।
संतत धरनि धरत सिर रेनू ॥

"बड़े लोग छोटों को भी स्नेह सम्मान देते हैं । पर्वत अपने सिरो पर तिनकों को, अगाध समुद्र अपनी लहरों पर फेन को तथा पृथ्वी अपने शीर्ष स्थान पर रज कणों को स्थान देती है ।"

उक्त सभी उदाहरणों में छोटों को सम्मान देने के कारण किसी को छोटा नहीं कहा जाता, अस्तु परिवार के छोटे सदस्यों को श्रेष्ठ संस्कार देने के लिए उनका सम्मान करने में बड़ों को संकोच नहीं करना चाहिये । मानस में यह आदर्श जहाँ-तहाँ दिखाई देता है । ऋषि विश्वामित्र दशरथ जी के पास राम-लक्ष्मण को लेने गये । उनके आग्रह को राजा ने स्वीकार कर लिया तथा बच्चों को उन्हें सौंपने लगे । उस समय बच्चों के प्रति उनके व्यवहार का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अति आदर दोउ तनय बुलाये ।
हृदय लाय बहु भांति सिखाये ॥

"बड़े आदर से दशरथजी ने दोनों पुत्रों को बुलाया और हृदय से लगाकर उन्हें अनेक प्रकार की सीख दी ।"

बच्चों का सम्मान बड़े करते हैं तो वे भी परस्पर एक-दूसरे का सम्मान करते हैं । अन्यथा उनके स्वभाव में अभद्रता आती जाती है ।

इसी प्रकार बच्चों में उत्तरदायित्व सँभालने की क्षमता भी पैदा की जानी चाहिये । यह क्षमता उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपने से ही आती है । बच्चों को अनुभव न हो, इसलिए बड़े अन्त तक स्वयं ही कार्य सँभालते रहते हैं । फलस्वरूप उनके बाद बच्चों पर अचानक सारा भार आ पड़ता है और उसे सँभाल न पाने के कारण सन्तुलन बिगड़ जाता है । बच्चे भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति अनायास होते देखकर जिम्मेदारी उठाने से बचते रहते हैं । अतः उचित यही है कि उनके सुयोग्य होते ही आग्रहपूर्वक उत्तरदायित्व सौंप दिये जावें । स्वयम्भू मनु यही करते हैं—

बरबस राज सुतहिं नृप दीन्हा ।
नारि समेत गबन बन कीन्हा ॥

"राजा ने पुत्रों को जबरदस्ती राज्य सौंप दिया तथा पत्नी सहित वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया ।"

आज के समाज में नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच अधिकारों के लिए संघर्ष मचा हुआ है । यह आदर्श उस समस्या का उचित और स्वाभाविक हल है । बुड्ढों को भी अन्त तक पिसना न पड़े, नयी पीढ़ी की सक्रियता का लाभ उठाया जा सके, तथा समाज में स्नेह सौहार्द्र का वातावरण बढ़े इसके लिए यही मार्ग अपनाया जाना चाहिये ।

किन्तु समसया का एक दूसरा पक्ष भी है । बच्चों को सम्मान, प्रोत्साहन तथा उचित अधिकार देने में तत्परता तो बरती जाय किन्तु उनकी हर मांग को पूरा करने की भूल न की जाय । बच्चों में जोश बहुत होता है, पर उचित-अनुचित को वे समझ नहीं पाते । अतः बहुत बार गलत हानिकारक मार्ग पकड़ लेते हैं । ऐसी स्थिति में उन्हें बल पूर्वक रोका जाना उचित है । वन प्रसंग में श्रीराम-नारद वार्ता में यह तथ्य इस प्रकार उभरकर सामने आता है—

गहि सिसुबच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखइ जननी अरगाई ॥

"यदि बच्चा अग्नि या सर्प को दौड़ कर पकड़ना चाहे तो मां उसे बलपूर्वक रोककर रखती है ।"

बच्चों का मन रखना ठीक है, पर उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है उनका हित साधन । बच्चों की अहितकारी आकांक्षायें पूरी नहीं की जा सकतीं । यहीं नहीं कई बार तो बालक के हित के लिए उसके लिए उसके साथ निष्ठुर बनकर कड़ाई भी करनी पड़ती है । वैसा करना उचित भी होता है और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आवश्क भी । यदि बालक का स्वभाव बिगड़ रहा हो, समझाने से न माने, तो उसे कठोरता पूर्वक भी मनवाना चाहिये । कुछ समय उसे बुरा लगे, दुख हो यह अच्छा है अन्यथा वह दोष तो उसे जीवन भर कष्ट देता रहेगा । इस सन्दर्भ में काकभुशुण्डिजी, गरुड़जी को समझाते हुए बड़ा अच्छा उदाहरण देते हुए कहते हैं–

जिमि शिशु तन बन होइ गोसाईं ।
मातु चिराव कठिन की नाईं ॥
जदपि प्रथम दुख पावइ,
रोवै बाल अधीर ।
ब्याधि नाश हित जननी,
गनति न सो शिशु पीर ॥

"जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माँ उसे कठोर बनकर जबरदस्ती चिरा डालती है । यद्यपि उस समय बालक बहुत कष्ट पाता है, अधीर होकर रोता है, किन्तु रोग नाश को ध्यान में रखकर माँ उसकी उस पीड़ा को महत्त्व नहीं देती ।"

परिवार में जहाँ बड़ों के कर्तव्य छोटों के प्रति हैं वहाँ छोटों के भी बड़ों के प्रति हैं । वयोवृद्ध परिजनों का यथोचित सम्मान करना छोटों का कर्तव्य है । रामचरित मानस का आदर्श इस सम्बन्ध में बहुत कहीं, किसी भी प्रकार परिवार से सम्बन्ध बुजुर्ग व्यक्ति का सम्मान अपने सगे सम्बन्धियों की तरह करने की मर्यादा है । राम को वन भेजने को तैयारी के सन्दर्भ में कैकेयी राम को बुलाने के लिए सुमन्त्र को भेजती है । सुमन्त्र वैसे राज्य के वेतनभोगी कर्मचारी हैं, किन्तु राम का व्यवहार उनके प्रति देखने योग्य है–

राम सुमंत्रहिं आवत देखा ।
आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥

"श्रीरामचन्द्रजी ने सुमंत्र को आता हुआ देखकर उन्हें पिता के समान समझकर उनका आदर किया । "

सुमन्त्र तो मन्त्री थे । वैसे भी उनका सम्मान था, किन्तु सामान्य शिष्टाचार नहीं, पिता की तरह सम्मान देना उससे भिन्न बात है । श्रीराम का यह भाव सुमन्त्र के प्रति ही नहीं है महल में नियुक्त दास-दासियों के प्रति भी उनका वही भाव है । वन जाते समय उन्हें उन सेवकों का पूरा-पूरा ध्यान है । वे उनकी देख-रेख का भार गुरु वशिष्ठ को सौंपते हुए विनम्र स्वर में कहते हैं–

सबकै सार सँभार गुसाईं ।
करबि जनक जननी की नाईं ॥

"हे स्वामी आप माता के समान इन सबकी साज सँभाल करना ।"

भारतीय संस्कृति का यह आदर्श अपनी विशेषता रखता है । जहाँ छोटे-बड़े का भेदभाव भुलाकर आयु के अनुसार सबको सम्मान दिया जायेगा, वहाँ स्नेह सौहार्द्र में क्यों कमी आने लगी ?

श्रीराम के इस आदर और स्नेह के बारे में सभी की मान्यतायें दृढ़ हैं । उनके द्वारा किसी के सम्मान में कमी नहीं होती, सबके प्रति स्वाभाविक प्रेम है मन्थरा जब राम को वन भेजने की सलाह कैकेयी को रक्त सम्बन्ध से ही देती है, तो वह भी उसे फटकारती हुई राम के स्वभाव का उल्लेख करती हुई कहती है–

कौशल्या सम सब महतारी ।
रामहिं सहज सुभायँ पियारी ॥

"श्रीराम को सभी मातायें कौशल्या के समान ही स्वाभाविक रूप से प्रिय हैं ।"

विषम परिस्थितियों में भी किसी के मन को धक्का न लगे, इस कला में वे निपुण हैं । बहुधा अपने कष्ट में छोटे सदस्य बड़ों की मानसिक प्रतिक्रिया को मूलकर अपने दुख को बढ़ा-चढ़ा कर कहते हैं । किन्तु श्रीराम का ढंग उससे भिन्न है । पिता द्वारा वन जाने की आज्ञा पर वे सोचते हैं कि यह समाचार पाकर माँ को भारी ठेस पहुँचेगी, अतः वे अपने को संयत रखते हुए बड़ी सरलता से उनसे बात प्रारम्भ करते हैं–

धरम धूरीन धरम गति जानी ।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥

"धर्म परायण श्रीरामचन्द्र जी समय की गति को समझकर माताजी से कोमल वाणी में कहने लगे । "

उन्होंने माँ के सामने सूचना इस ढंग से रखी कि उन्हें कम से कम दुःख पहुँचे । आगे भी वे इस संदर्भ में सतर्क हैं । सीता जी साथ में वन जाने का आग्रह करती हैं, माता चाहती हैं कि जानकी वन को न जावें । उस समय भी बड़ी सावधानी से माँ को सन्तुष्ट करते हैं और सीताजी को माँ का आग्रह मानने की सलाह देते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहि प्रिय बचन बिबेकमय,
कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि,
प्रगटि बिपिन गुन दोष ॥

"श्रीराम ने विवेकमय प्रिय वचन कह कर माता को सन्तुष्ट किया । फिर वन के गुण-दोष प्रगट करके वे जानकीजी को समझाने लगे ।"

बड़ों के सम्मान तथा उनकी इच्छा को प्राथमिकता देना पुत्रों का कर्तव्य तो हैं, किन्तु यह बात भी हर जगह लागू नहीं होती । यदि माता-पिता मोहवश या भ्रान्तिवश गलत आग्रह करने लगते हैं तो पुत्र का कर्तव्य यह हो जाता है कि उसे स्वीकार न करे, बल्कि उचित के लिए ही आग्रह करे । राजा दशरथ मोह वश राम को कर्तव्य विमुख होने की सलाह देने लगे, तब वे उन्हें ऐसा करने से रोकते हुए कहते हैं—

तात किए प्रिय प्रेम प्रमादू ।
जस जग जाइ होइ अपवादू ॥

"हे तात ! मोह के वशीभूत होकर कर्तव्य की अवहेलना करने से संसार में यश नष्ट होता है और निन्दा बढ़ती है ।"

परन्तु एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि अनुचित बात को न मानना और उनके प्रति अपने कर्तव्य से विमुख हो जाना दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं । अनुचित आज्ञा की अवहेलना तो की जाय किन्तु बड़ों के सेवा और सम्मान के अपने कर्तव्य को याद रखा जाय । भरत जी ऐसा ही करते हैं । श्रीराम वन को चले गये, उनके आने पर माँ ने अपनी करनी सुनायी और राज्य सिंहासन पर बैठने को कहा । उन्होंने उनकी बात मानने से इन्कार भी कर दिया तथा इस अनीति के लिए माँ की भर्त्सना भी की । किन्तु माताओं की सेवा के अपने कर्तव्य को उन्होंने बराबर ध्यान में रखा । शत्रुघ्न को बुलाकर सभी माताओं की व्यवस्था समान रूप से समझाई—

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई ।
सोंपी सकल मातु सेवकाई ॥

"उन्होंने छोटे भाई को बुलाकर समझाया तथा सभी माताओं की सेवा का भार उन्हें सौंप दिया ।"

वयोवृद्धों द्वारा भूल होने पर छोटों द्वारा उन्हें कर्तव्य बोध कराने, उचित का आग्रह करने के अनेक प्रसंग रामचरितमानस में मिलते हैं । पिता हैं, बड़े हैं— इसलिए उनकी हर बात मानना, हर कार्य में समर्थन सहयोग देना, न आदर्श की दृष्टि से उचित है और न व्यवहार की दृष्टि से । रावण अपनी हठ के कारण अपना दोष होते हुये भी श्रीराम से लड़ने को तैयार है । उसके मन्त्री भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं, किन्तु उसका पुत्र प्रहस्त उन सबका प्रतिवाद करता है और मर्यादापूर्वक औचित्य का आग्रह करता है—

सबके बचन श्रवन सुनि,
कह प्रहस्त कर जोरि ।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु,
मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥

"सबके वचनों को सुनकर रावण पुत्र प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा- हे प्रभु ! ये मंत्री मंद बुद्धि के हैं, इनके कहने में आकर आप नीति का विरोध न कीजिये ।"

रावण ने सीता हरण करके अनीति की थी । प्रहस्त ने सलाह दी कि उस अनीति का समाधान कर दीजिए । उसके बाद भी यदि वे लड़ना चाहें तो फिर युद्ध करना उचित होगा । प्रहस्त कहते हैं—

नारि पाइ फिरि जाहिं जो,
तौं न बढ़ाइअ रारि ।
नाहिं त सनमुख समर महि,
तात करिय हठि मारि ॥

"यदि अपनी स्त्री पाकर वे लौट जाते हैं, तो झगड़ा न बढ़ाइये । यदि इतने पर भी नहीं लौटते तो अवश्य युद्ध कीजिए ।"

प्रहस्त राक्षसकुल में थे, इसलिए उनके बीच उनकी सलाह को आदर मिले या न मिले, किन्तु विचारशीलों की दृष्टि में वे आदर के पात्र हो जाते हैं । अन्य स्थलों पर भी छोटों ने बड़ों को उचित सलाह देकर श्रेय और सम्मान ही पाया है । उन्हें बुरा नहीं कहा गया । पार्वती जी ने माता-पिता को उचित पक्ष समझाया तथा तप के लिए चल पड़ीं—

मातु पितहिं बहु बिधि समुझाई ।
चली उमा तप हित हरषाई ॥

"पार्वतीजी ने अनेक प्रकार से माता-पिता को समझाया तथा उनसे तप के लिए प्रसन्न होकर विदा ली ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्रीराम को भी मोह वश राजा दशरथ वन जाने से रोकते रहे किन्तु उन्होंने पिता के वचन को नहीं, कर्तव्यपालन को महत्त्व दिया । राजा दशरथ ने सब प्रकार प्रयास कर लिया, किन्तु श्रीराम का रुख बदला नहीं । मानसकार उस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

लखी राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्धर धीर सयाने ॥

"किन्तु उन्होंने राम का रुख देखा तो उन्हें मालूम हो गया कि धर्म पालन में तत्पर धीर और बुद्धिमान राम रुकेंगे नहीं ।"

राम ने एक प्रकार से पिता की अवज्ञा ही की, किन्तु उन्हें कुपुत्र या अधर्मी न कहकर धर्म धुरन्धर, धीर और सयाने इन विशेषताओं से विभूषित किया । वस्तुतः धर्म उचित का पालन है, किसी व्यक्ति विशेष के कथन का पालन नहीं ।

इस प्रकार परिवार के सभी सदस्यों को नीतिनिष्ठ बनाया जाय । कर्तव्य-अकर्तव्य का मर्म वे इसी आधार पर समझें तथा उसे अपनायें तो परिवार और उसके साथ-साथ समाज भी प्रगति के चरण पूरा करता हुआ उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है ।

ooo

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भातृत्व का आदर्श

भाई का सम्बन्ध परिवार और समाज में अनौखा ही महत्व रखता है जहाँ भी गहन आत्मीयता, निश्चल स्नेह, अधिकार और उत्तरदायित्वों की समानता का प्रकरण आता है, उनके लिए आदर्श के रूप में भाई-भाई की उपमा दी जाती है। प्रश्न मित्रता के निर्वाह का हो या मनुष्यता का उसके लिए आदर्श के ढेरों उदहारण देने की अपेक्षा 'भाई-भाई की तरह' होने की उक्ति पर्याप्त है। इतने मात्र से हर कोई उस आदर्शा की ठीक-ठीक कल्पना कर लेता है।

भाई-भाई होना शारीरिक सम्बन्ध माना जाता है, किन्तु उससे भी अधिक वह है एक भावना। उस भावना के अभाव में एक ही माँ के पेट से जन्मे भाइयों में ऐसी कटुता और शत्रुता की स्थिति देखी जा सकती है, जिसके कारण न केवल उनका जीवन नर्क हो जाता है वरन् उनसे सम्बन्धित परिजनों की भी मुसीबत आ जाती है। इसके विपरीत जहाँ भ्रातृोचित स्नेह सौहार्द्र है, वहाँ दुर्बल और अभावग्रस्त व्यक्ति भी अपने आपको समर्थ, सशक्त और सुखी अनुभव करता है। लगता है भाई जैसा सहयोगी होते हुये किस बात की कमी ? भाई-भाई के लिए सबसे बड़ा सम्बल होता है।

किन्तु यह स्थिति भाई-भाई के लौकिक शिष्टाचार मात्र को निभा लेने से नहीं आती। वह तो स्नेह-आत्मीयता के सहज स्तर से प्रकट होती है। रामचरितमानस भातृत्व के उच्चतम आदर्शों से भरपूर है। रामायण को सच्चे अर्थों में रामायण बनाने का सर्वाधिक श्रेय उसके आदर्श बन्धुओं को ही दिया जा सकता है। परिस्थितियों के वे भयंकर आघात जो परिवारों को ही नहीं, उसके साथ समाज के एक बड़े हिस्से को भी तहस-नहस कर डालते हैं, इन आदर्श भाइयों के सामने प्रभावहीन हो गये। यह सब चमत्कार जिस उत्कृष्ट भातृ-भावना के कारण सम्भव हुआ, उसके दर्शन स्थल- स्थल पर होते हैं। जो भी उसे देख पाता है, प्रभावित और गद्‌गद हो जाता है। विदेह कहे जाने वाले राजा जनक जब पहली बार राम-लक्ष्मण को देखते हैं तो भाव विभोर हो उठते हैं, अपने मन के भाव महर्षि विश्वामित्र के सामने प्रकट कर उठते हैं—

सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू।
ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

विदेह ने हर्षित होकर कहा— हे, नाथ ! इन दोनों भाइयों में तो ब्रह्म और जीव के समान स्वाभाविक प्रेम है।''

ब्रह्म और जीव में तत्वतः कोई भेद नहीं होता। जनकजी का भाव है कि इन दोनों भाइयों का प्रेम अलौकिक है। यही कारण है कि उनके द्वारा अलौकिक कार्य किये जा सके। श्रीराम और लक्ष्मण में यह प्रेम एकपक्षीय नहीं। लक्ष्मण श्रीराम के बिना अयोध्या के वैभव में न रह सके और वन के संकट झेलने को सहर्ष साथ हो गये, तो श्री राम लक्ष्मण के बिना अपना जीवन निरर्थक मानते हैं। जब मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये तब श्रीराम अत्यधिक व्याकुल हो उठते हैं। लक्ष्मण के बिना वे अपने को किस स्थिति में अनुभव करते हैं, उसे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

जथा पंख बिनु खग अति दीना।
मनि बिनु फनि करि वर कर हीना॥

''जैसे बिना पंख् के पक्षी, बिना मणि के सर्प तथा बिना सूँड के हाथी दीन हो जाते हैं।''

अस मम जीवन बन्धु बिनु तोही।
जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥

''हे भाई तुम्हारे बिना मेरा जीवन भी इसी प्रकार का है, यदि मूर्ख दैव मुझे जिन्दा रखे। तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा यदि रहा तो मेरा जीवित रहना इसी तरह बेकार होगा।''

इस स्तर का प्रेम राम और लक्ष्मण के बीच ही नहीं, अन्य भाइयों में भी है। भरत और राम के प्रसंग में भी लौकिक प्रेम से ऊपर उठकर उच्च आध्यात्मिक स्तर सर्वविदित है। उनके उच्चस्तरीय स्नेह का प्रभाव लौकिक व्यवहारों में भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। व्यक्तिगत स्वार्थ और महत्त्वाकांक्षाओं से बहुत दूर उनमें एकदूसरे के हित और प्रसन्नता की कामना तथा उसका क्रियारूप प्रत्यक्ष दिखाई देता है। चित्रकूट की सभा में भरत जी अपने प्रति श्रीराम के स्नेह व्यवहार का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सिसुपन तें परिहरेऊ न संगू।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही।
हारेहु खेल जितावहिं मोही॥

''शिशु अवस्था से ही हमारा साथ कभी नहीं छूटा, किन्तु श्रीराम ने कभी भी मेरा मन नहीं तोड़ा। मैंने उनकी कृपा का ढंग भली प्रकार परखा है, वे स्वयं हारकर भी खेलों में मुझे जिताते रहे हैं।''

भरतजी निश्छल वाणी से श्रीराम के स्नेह व्यवहार को सीधी सच्ची भाषा में स्वीकार करते हैं। वे श्रीराम के श्रेष्ठ व्यवहार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के प्रति श्रद्धा से ओतप्रोत हैं तो श्रीराम की भी स्थिति लगभग वैसी ही है। भरत के व्यवहार और आन्तरिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में उनकी धारणा बहुत ऊँची हैं। भरत जब दल बल सहित चित्रकूट पहुँचते हैं तो लक्ष्मण सावधानी के नाते उनकी नीयत पर शक करते हैं, वे उत्तेजित भी होते हैं, किन्तु श्रीराम को भरत के बारे में पूरा भरोसा है। वे लक्ष्मण का समाधान करते हैं और भरत के भातृ स्नेह की प्रशंसा करते हुये कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच महुँ सुना न दीसा॥

"हे लक्ष्मण सुनो भरत जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति विधाता की दृष्टि में देखने-सुनने को भी नहीं मिलता।"

श्रीराम को भरत की माँ द्वारा वनवास दिया गया था, दूसरा कोई होता तो भरत को ही उसका मूल कारण मानता। किन्तु यहाँ तो भाई-भाई परस्पर एक-दूसरे को इतने निकट से इतनी स्पष्टता से जानते हैं कि स्वयं भ्रान्ति में पड़ना तो दूर कोई अन्य भ्रान्ति में डालना चाहे तो भी वे विचलित नहीं हो सकते। श्रीराम की उक्ति भरत के प्रति उनके अविचल विश्वास का प्रतीक है। परिस्थितियाँ देखकर उन्हें लगता है कि कोई भी व्यक्ति भी यही निष्कर्ष निकालेगा, कि राम को राजगद्दी से वंचित कर वन में भेजने में भरत का हाथ अवश्य होगा। किन्तु फिर भी उन्हें विश्वास है कि श्रीराम और सीता उनके सम्बन्ध में गलत मान्यता नहीं बना सकते। वे अयोध्या में कहते हैं—

परिहरि सीय राम जग माहीं।
कोऊ न कहिहि मोर मत नाहीं॥

"संसार में श्रीराम और सीता को छोड़कर कोई यह नहीं मान सकता कि इस कार्य में मेरी सहमति नहीं थी।"

देखने योग्य बात यह है कि भरत का विश्वास मात्र श्रीराम पर ही नहीं, सीताजी पर भी है। भाई-भाई की तरह देवर-भाभी में परस्पर इतनी स्पष्ट और पवित्र मान्यता हर परिवार के लिए अनुकरणीय है। यह बड़ी विचित्र एवं दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कही जानी चाहिये कि जहाँ घर-घर रामायण के प्रति इतनी श्रद्धा है वहाँ देवर-भाभी के बीच भद्दे और अश्लील मजाक उचित समझते जाते हैं। बड़ा भाई पूज्य है तो भाभी भी पूज्य हुई। उसके प्रति किसी भी प्रकार का ओछा या अशिष्ट व्यवहार कैसे सहन किया जा सकता है। रामचरितमानस में तो भाभी को माँ के समान माना गया है। माता सुमित्रा अपने पुत्र को यही शिक्षा देती हैं कि बड़े भाई को पिता और भाभी को माता मानना। वन जाने की आज्ञा देती हुई वे लक्ष्मण से कहती हैं—

तात तुम्हार मातु वैदेही।
पिता राम सब भाँति सनेही॥

"हे तात! अब तुम्हारी माता सीताजी हैं और सब प्रकार तुमसे स्नेह करने वाले बड़े भाई राम तुम्हारे पिता हैं।"

लक्ष्मणजी ने माँ के इस कथन को मात्र सुन ही लिया हो सो बात नहीं, उसका बड़ी तत्परता से पालन भी किया। श्रीराम जानकी की सेवा सुरक्षा तथा सम्मान में अपनी शक्ति भर कहीं चूक नहीं होने दी। श्रीराम माया मृग के पीछे गये तो लक्ष्मण को सीता की सुरक्षा के लिऐ नियुक्त कर गये। मारीच द्वारा हा लक्ष्मण की पुकार सुनकर सीताजी भ्रम वश उसे श्रीराम की पुकार मान बैठीं। उन्होंने सहायता के लिए लक्ष्मण को जाने को कहा, पर वे सीता को असुरक्षित छोड़कर जाने को तैयार न हुये। सीता ने उनकी सतर्कता युक्त तत्परता को अवहेलना माना और अपशब्द भी कह उठीं। किन्तु लक्ष्मण ने न बुरा माना और न उत्तेजित हुए। भाभी के प्रति उन्होंने माँ जैसी ही शालीनता का निर्वाह किया। उनकी श्रेष्ठता को सीताजी ने अपनी भूल के पश्चाताप के साथ स्मरण किया रावण द्वारा अपहरण होने पर विलाप कर हुये उन्होंने कहा—

हा लछमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फल पायऊँ कीन्हेउ रोसा॥

"हे लक्ष्मण, तुम्हारा कोई दोष नहीं है, मैंने ही क्रोध किया और उसका फल पाया।"

भाभी के प्रति ऐसी थी लक्ष्मण की शालीनता। आदर्श यही है कि एक पक्ष भूल कर भी जाय तो दूसरा पक्ष उस परम्परा को वहीं समाप्त कर दे। स्वयं भी भूल न करे बल्कि उसे सँभाल ले। लक्ष्मण ही नहीं, अन्य भाइयों का भी सीता के प्रति ऐसा ही पवित्र और सम्मानपूर्ण व्यवहार है। उनका सहज स्नेह और सम्मान जिस प्रकार भाई के प्रति उमड़ता है, वैसा ही भाभी सीता के प्रति भी है। चित्रकूट में जब श्री भरत एवं शत्रुघ्न पहुँचते हैं, तो श्रीराम से मिलने के बाद वे किस उत्कृष्ट भावना के साथ सीताजी से मिलते हैं और सीताजी का व्यवहार उनके प्रति क्या है, यह झलक नीचे की चौपाइयों से मिलती है—

सानुज भरत उमगि अनुरागा।
धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये।
सिर कर कमल परसि बैठाये॥

"भरत ने छोटे भाई सहित उमंग और अनुराग से भरकर सीताजी के चरण कमलों पर मस्तक रख दिया। बार-बार प्रणाम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हुए उन्हें सीताजी ने उठाया और स्नेह से सिर पर हाथ फेर कर पास बिठाया ।''

भरत एवं शत्रुघ्न को सीता के अभिवादन से तृप्ति नहीं होती है वे बार-बार प्रणाम करते हैं और सीताजी के हृदय में उनके प्रति वात्सल्य भाव है । सिर पर हाथ फिराना उसी का प्रतीक है । भाई-भाई के साथ देवर भाभी के बीच ऐसे मृदुल, स्नेह सिक्त और पवित्रतम सम्बन्ध होना किसी भी परिवार के लिए बड़े सौभाग्य और गौरव की बात है ।

भाई-भाई की मार्यादा के अनेक रूप रामचरितमानस में मिलते हैं । छोटे भाई, बड़े भाई का सम्मान तो करें पर उनके हर कार्य में सहायक हो जावें, यह आवश्यक नहीं । जहाँ भाई अनुचित करता हो, वहाँ उसे सही परामर्श देना भी भाई का कर्तव्य है । ऐसा आदर्श विभीषण रखते हैं । वे रावण की अनीति से क्षुब्ध हो जाते हैं, उसे रोकते हैं । वह इसे अपमान समझकर भरे दरबार में विभीषण को लात मार देता है । फिर भी विभीषण सन्तुलन नहीं खोते, वे कहते हैं–

तुम पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा ।
राम भजे हित नाथ तुम्हारा ॥

''तुम मेरे पिता तुल्य हो, तुमने मुझे मारा, इसका मुझे दुख नहीं, किन्तु यह मैं पुनः कहता हूँ कि आपका हित श्रीराम की सेवा करने में ही है । ''

विभीषण ने अपने कर्तव्य का पालन तो किया, भाई ने अहंकार वश अपमान किया तो उसे भी महत्त्व नहीं दिया । अपनी शालीनता बनाये रखी । पलट कर स्वयं भी अनुचित व्यवहार नहीं किया, किन्तु नेक सलाह देने से चूके भी नहीं । न आतंकित हुये और न उत्तेजित । किन्तु जब देखा कि भाई अपनी अनीति पर अड़ा ही हुआ है, मानना ही नहीं चाहता तो उन्होंने आदर्श के पक्ष में भाई का साथ छोड़ने की घोषणा कर दी । नीति यही है कि व्यक्ति स्वयं भी ठीक हो और भाई को भी ठीक मार्ग पर लाने का प्रयास करे । यदि भाई सही मार्ग पर नहीं आता, तो कम से कम स्वतः तो उस मार्ग पर नहीं ही जाय । विभीषण ने यही किया, उन्होंने स्पष्ट घोषणा की–

राम सत्य संकल्प प्रभु,
सभा काल बस तोरि ।
मैं रघुबीर सरन अब,
जाऊँ देहु जनि खोरि ॥

''श्रीरामजी सत्य संकल्प और सर्व समर्थ हैं और (हे रावण !) तुम्हारी सभा काल के वशीभूत है । अतः में अब श्री रघुवीर की शरण में जाता हूँ, मुझे दोष मत देना ।''

विभीषण रावण को नीति पर लाने का हरसम्भव उपाय कर चुके थे, इसलिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता । यदि रावण, नीति पक्ष पर होता और वे शत्रु पक्ष को अधिक बलवान समझकर भय के कारण उससे मिल जाते तो दोषी कहलाते । किसी भय के कारण भाई का साथ छोड़ना भ्रातृत्व सिद्धान्त के प्रतिकूल है । जहाँ सच्ची भातृ भावना है, वहाँ तो यह सम्भव ही नहीं । भाई का पक्ष उचित है, तो उसके बड़े से बड़े संकट को आगे बढ़कर स्वयं सह लेने का आदर्श रामायण घोषित करती है–

होहि कुठांय सुबन्धु सहाये ।
ओड़िहहिं हाथ असनिहु के घाये ॥

''कठिन अवसर पर भाई सहायक होते हैं । यदि वज्र भी चोट कर रहा हो तो सिर शरीर को बचाने के लिए हाथ स्वभावतः आगे आ जाते हैं।''

वज्र के प्रहार की घातकता से सभी परिचित हैं, किन्तु फिर भी हाथ उसका भय न मानकर आगे बढ़ जाते हैं, यही भाव बन्धुत्व में होता है । यह सिद्धान्त मात्र कहने सुनने का नहीं है । रामचरितमानस के आदर्श पात्रों में यह प्रत्यक्ष देखने को मिलता है । इस सम्बन्ध में अनेक प्रसंग मिलते हैं । धनुष यज्ञ के बाद जनक की सभा में परशुरामजी क्रोधित होकर पहुँचते हैं । वे बिना कुछ सोचे-समझे शिव के धनुष तोड़ने वाले को मार डालने की धमकी देते हैं । परशुराम के पराक्रम का बड़ा भारी आतंक राजाओं पर था, किन्तु लक्ष्मण उससे भयभीत नहीं होते । धनुष श्री राम ने तोड़ा है, परशुराम उनके प्रति कोई अनुचित व्यवहार न कर बैठें, इसलिए वे परशुराम का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । अपने ऊपर आने वाले खतरे की चिन्ता उन्हें नहीं है, वे तो किसी प्रकार राम पर आँच नहीं आने देना चाहते–

सुनि मुनि वचन लषन मुसकाने ।
बोले परसु धरहि अपमाने ॥

''परशुरामजी के वचन सुनकर लक्ष्मण मुस्काये और उनकी अवहेलना करते हुये बोलने लगे ।''

लक्ष्मणजी में ही यह भावना हो, ऐसी बात नहीं, श्रीराम भी उतने ही तत्पर हैं । परशुराम सब कुछ भूलकर लक्ष्मण पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

क्रोध उतारने लगे, तो श्रीराम ने स्थिति को नाजुक देखकर स्वयं बीच में आकर उसे सँभाला। लक्ष्मण ने राम की ओर से परशुराम जी का रुख अपनी ओर मोड़ लिया तो राम ने भी वही किया। उन्होंने परशुराम जी से स्पष्ट कह दिया कि आप तो शिव धनुष तोड़ने वाले पर रुष्ट हैं। उसने तो कुछ किया नहीं अपराधी मैं हूँ-

तेहि नाहीं कछु काज बिगारा।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा॥

"उसने कुछ काम नहीं बिगाड़ा है, हे स्वामी आपका अपराधी तो मैं हूँ।"

दोनों भाइयों में एक-दूसरे की कठिनाई में स्वयं आड़े आ जाने की आकाँक्षा साफ दिखती है। लेकिन यह खींचतान अहंकार जनित नहीं है, सहयोग जनित है। अपनी महत्ता प्रकट करने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है, बिगड़ी हुई परिस्थिति को सँभालने में स्वयं खतरा उठाकर भी सबमें बढ़-चढ़ कर भूमिका निभाने का प्रयास चल रहा है। स्थिति को सँभालते हुये राम ने देखा कि लक्ष्मण अति उत्साह में फिर कुछ कहने को तैयार हैं, जो उचित नहीं, तो उन्होंने आँख का इशारा किया, बस लक्ष्मण के लिए उतना ही पर्याप्त है। परशुरामजी राम पर अहसान जताते हुये शान्त होने को थे, लक्ष्मण को अहसान जताना अच्छा न लगा-

सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि,
नयन तरेरे राम।
गुरु समीप गवने सकुचि,
परिहरि बानी बाम॥

"श्री परशुरामजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये, तब श्री रामचन्द्रजी ने तिरछी नजर से उन्हें देखा, जिससे लक्ष्मणजी सकुचा कर टेढ़ा बोलना बन्द कर गुरुजी के पास चले गये।"

बड़े भाई की आँख का इशारा देखकर ही लक्ष्मण अपने ऊपर नियन्त्रण कर लेते हैं। ऐसा तालमेल उन्हीं में हो पाता है, जिनमें निश्छल स्नेह हो। वह दिखावे से दूर स्वाभाविक होता है। श्रीराम के युवराज्याभिषेक का निर्णय जब लिया गया तब भरत अपने ननिहाल गये हुये थे। उनके पीछे भी श्रीराम को उनका सबसे अधिक ध्यान रहता है-

रामहिं बंधु सोच दिन राती।
अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥

"जिस तरह कछुआ कहीं भी हो, अपने अण्डों के सम्बन्ध में निरन्तर सोचता रहता है, उसी तरह राम को दिन-रात भाई की चिन्ता रहती है।"

भाई-भाई की समानता के आदर्श के प्रति श्रीराम की इतनी गहन निष्ठा है कि अकेले स्वयं का राज्याभिषेक उन्हें अनुचित लगता है। अन्य सभी प्रकरण में सभी भाई समान रूप से भाग लेते रहे, अभिषेक के समानता के स्तर का उल्लंघन होता देख श्रीराम दुखी होकर सोचते हैं। अपने राज्याभिषेक की तैयारी देख राम ने सोचा-

बिमल बंस यहु अनुचित एकू।
बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू॥

"इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि सभी भाइयों को छोड़कर राज्याभिषक बड़े भाई का ही (मेरा ही) होता है।"

वैभव की कामना बड़ों-बड़ों को विचलित कर देती है, भाई-भाई के अधिकार छीनने से लेकर एक-दूसरे के खून के प्यासे बन जाने तक की दुखद घटनायें इसी कारण होती देखी जाती हैं। किन्तु सच्चे भ्रातृ भाव को वह छू भी नहीं पाता। यहाँ तो श्रीराम को अपना उचित, सांसारिक दृष्टि से न्यायसंगत अधिकार भी भाईयों को छोड़कर लेना दुख का कारण बना है। इस निर्मल और पवित्रतम भ्रातृ भाव को देखकर तुलसीदासजी कामना करते हैं-

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।
हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

"श्रीरामचन्द्रजी का यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे।"

सचमुच सच्चा स्नेह कुटिलता को धो सकता है, और हमारी कुटिलता ही हमें परस्पर सहयोग से और सुख सन्तोष से वंचित किये हैं। श्रीराम के उदाहरण से हम यह समझें कि भाई-भाई, मित्र-मित्र परस्पर कुटिलता की अपेक्षा स्नेह व्यवहार द्वारा अधिक लाभ एवं सुख सन्तोष पा सकते हैं। एक व्यक्ति सारे वैभव को बटोरना भी चाहे तो यह सम्भव नहीं किन्तु अपने भाई की उपलब्धि को भी अपनी उपलब्धि माने तो उसका सुख अनेक गुना बढ़ सकता है। श्रीराम को यह ध्यान भी नहीं आता कि उनका राज्य छिन रहा है, उन्हें तो यह प्रसन्नता है कि प्रिय भाई भरत राज्य पावेंगे। वे माँ कैकेयी से कहते हैं-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू ।
बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥

"प्राणों से प्यारे भरत राज्य पायेंगे (इन सब बातों से तो यह मालूम होता है कि) विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल ही हैं ।"

कुटिल मन वाला व्यक्ति जिस घटना को दुर्भाग्य मानकर नारकीय पीड़ा अनुभव करता— स्नेही राम उसी घटना को सौभाग्य मानकर प्रसन्न और प्रफुल्लित हो रहे हैं । सौभाग्य तथा सन्तोष पाने का यह ढंग अपनाने के लिए किसी को कहीं से कुछ लाना नहीं पड़ता केवल अपनी मान्यताओं को थोड़ा सा बदलना घुमाना पड़ता है—

कहब संदेश भरत के आये ।
नीति न तजिय राज पद पाये ॥

"भरत के आने पर उनसे मेरा सन्देशा कहना, कि हे भाई ! राज्य पद पाने पर भी नीति मार्ग को छोड़ना मत ।"

भाई की उपलब्धि पर मात्र प्रसन्नता ही नहीं— उसके ऊपर आये उत्तरदायित्व को भी अपने उत्तरदायित्व की तरह अनुभव करना तथा अपनी स्थिति तथा मर्यादा के अनुरूप उसकी व्यवस्था करना भी भाई का कर्तव्य है । श्रीराम वन जा रहे हैं, किन्तु भरत के लिए राज्य प्राप्ति के समय बरती जाने वाली सावधानियों का निर्देश सन्देश के रूप में छोड़कर जाते हैं—

और निबाहेहु भाइप भाई ।
करि पितु मातु सुजन सिविकाई ॥

"हे भाई ! पिता माता तथा प्रजा स्वजनों की सेवा करके तुम भ्रातृत्व का निर्वाह करना ।"

नीति मार्ग किन्हीं भी उपलब्धियों के लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग माना जाता है । जिनका उद्देश्य केवल पद प्राप्ति होता है, वे उसे पाते ही नीति मार्ग का महत्त्व भूलकर उसे छोड़ देते हैं । किन्तु जिनका लक्ष्य जन कल्याण जैसा महान होता है, वे पद पाकर भी नीति मार्ग नहीं छोड़ते । उनकी दृष्टि में उपलब्धि तो लोक मंगल है, पद तो मात्र एक साधन है । इसलिए पद पाकर भी न तो उनकी तत्परता में कमी आती है और न किसी प्रकार का अहंकार ही आने पाता है । श्रीराम भ्रातृत्व के निर्वाह का हवाला देते हुए उस अगले कर्तव्य की ओर ही भरत का ध्यान खींचते हैं । शारीरिक, आर्थिक, एवं मानसिक क्षमताओं की तरह पद का उपयोग भी सेवा कार्य में किया जाना चाहिये । अपने भाई के अधिकार के नाते श्रीराम, भरत से यही आग्रह करते हुये अपने संदेश में उल्लेख करते हैं—

राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहि नीती ॥

"श्री रामजी भी भाइयों से प्रेम करते हैं और उन्हें अनेक प्रकार की नीतियाँ सिखाते हैं ।"

यह स्नेहपूर्ण उत्तरदायित्व का अविरल प्रवाह भाइयों के बीच में जीवन भर चलता ही रहता है । चौदह वर्ष का समय राम-लक्ष्मण साथ हैं तो उस मर्यादा में, तथा राम-भरत दूर हैं तो उस स्थिति में भी अपने-अपने स्नेह का पोषण और कर्तव्य का निर्वाह करते ही रहते हैं । श्रीराम वन से लौटकर सिंहासनासीन हो जाते हैं, फिर भी वे भाइयों के लिए भाई ही बने रहते हैं । छोटे भाइयों को योग्य बनाने के लिए उनका शिक्षणक्रम चलता ही रहता है । उत्तर काण्ड में उल्लेख है—

राज्य कार्य में श्रीराम उनको राज्य मर्यादाओं के अनुरूप ही लेते हैं, किन्तु घर पर वे भाई पहले हैं, राजा बाद में । भाइयों के साथ उनका व्यवहार वैसा ही सहज, मृदुल और स्नेहपूर्ण है । उनके आदर्श व्यवहार को देखकर सभी को प्रेरणा और प्रसन्नता प्राप्त होती है—

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं ।
देख सकल जननी सुख भरहीं ॥

"वे भाइयों के संग भोजन करते हैं । उन्हें देखकर समस्त माताएँ आनन्द से भर जाती हैं ।"

भाई-भाई का स्नेह जहाँ उन्हें परस्पर सुख पहुँचाता है, वहाँ माता के लिए भी यह सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय है । सभी बच्चे हिल-मिल कर प्रेम से रहें, यह हर माँ की कामना होती है । भाई ऐसा करके मातृ ऋण भी बहुत अंशों में चुका देते हैं । श्री राम अपने ढंग से अपने स्नेह का प्रमाण देते रहते हैं तो अन्य सभी भाई भी अपनी मर्यादानुसार उसका निर्वाह करते हैं । वे श्रीराम के सच्चे पूरक सहयोगी बन कर रहते हैं । सेवा कार्य करते हुये उनका प्रेम भाव और भी अधिक बढ़ता रहता है । मानसकार लिखते हैं—

सेवहिं सानुकूल सब भाई ।
राम चरन रति अति अधिकाई ॥

"सभी भाई अनुकूल रहते हुये सेवा में लगे रहते हैं । श्री रामचन्द्र जी के चरणों में उनका बहुत अधिक प्रेम है । "

इस प्रकार भाई-भाई के आदर्श का निर्वाह करने के लिए हम तत्पर हो जायें तो परिवार तथा समाजगत विकारों, अनाचारों को निरस्त करते हुये स्वर्गीय वातावरण का निर्माण करना सुगम हो जाय ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्कार और वर्णाश्रम धर्म

व्यक्ति और समाज की उन्नति तथा सुख सुविधायें परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। जहाँ निकृष्ट व्यक्तियों की अधिकता होगी वह समाज कभी समुन्नत नहीं हो सकता। समाज की रचना का उद्देश्य हर व्यक्ति के विकास की अधिक सुविधाएँ संभावनायें प्रदान करना है।

दुर्भाग्य से आज लोग यह समझने लगे हैं कि व्यक्ति अपने हित के लिए समाज की उपेक्षा करे तथा समाज के उत्कर्ष के लिऐ व्यक्ति की आवश्यकताओं को झुठलाया जाय तभी काम चलेगा। यह दोनों ही मान्यतायें भ्रामक हैं। सार्वजनिक हित के लिए व्यक्तिगत सुखों को छोड़ दिया जाना युक्तिसंगत भी है और आवश्यक भी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि समाज में व्यक्ति के विकास की आवश्यकता ही नहीं रह जाती अथवा व्यक्तिगत हितों के साथ सामाजिक हितों का तालमेल नहीं बिठलाया जा सकता। वस्तुतः दोनों के हितों का संयुक्त निर्वाह होना ही अधिक स्वाभाविक एवं व्यावहारिक है।

भारतीय संस्कृति में यह व्यवस्था वर्णाश्रम पद्धति के माध्यम से लागू की गयी थी। बीच में उसका रूप विकृत भले ही कर दिया गया हो, किन्तु उसे अपने मूल रूप में स्थापित करने की आज भी पूरी-पूरी संभावनायें मौजूद हैं।

वर्ण व्यवस्था हर व्यक्ति की स्वाभाविक अभिरुचि के अनुसार, उसके आन्तरिक गठन के अनुरूप कार्य उसे सौंपने, उसी क्षेत्र में उसको प्रगति का अवसर देने के लिए थी। जिस व्यक्ति की मूल वृत्ति जिस ढंग की है, उसी ढंग की भूमिका उसे प्रदान की जाती थी। गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर किया जाने वाला यह क्रम कालान्तर में जन्म से जाति का रुढ़िवादी रूप ले बैठा—

इसी प्रकार आश्रम व्यवस्था मनुष्य की आयु के अनुरूप उसके लिए निर्धारित आदर्श आचार पद्धति है। जीवन को चार चरणों में बाँट कर व्यक्ति, परिवार एवं समाज गत धर्म कर्तव्यों के पालन की इसमें व्यवस्था रही है। आध्यात्मिक दृष्टि से उत्कृष्ट तथा सामाजिक दृष्टि से सभ्य नागरिकों के उपयुक्त व्यक्तित्त्वों के विकास के लिए इन चार प्रधान चरणों के अतिरक्त और भी अनेक चरण भारतीय संस्कृति में निश्चित किये गये हैं। इन्हें विभिन्न संस्कारों के नाम से जाना जाता रहा है। इन चरणों पर क्रमशः सावधानी के साथ बढ़ते हुये भारतीय नागरिक मनुष्य से देवत्व तक की स्थिति तक पहुँचते रहे हैं। आज इनकी उपेक्षा होने लगी है, अस्तु उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्तित्त्वों में हीनता तथा सामाजिक अव्यवस्था के दण्ड भुगतने पड़ रहे हैं।

रामचरितमानस में इन आदर्शों का स्वरूप जहाँ-जहाँ देखने को मिलता है। गृहस्थ आश्रम के कर्तव्यों का पालन करते हुए राजा दशरथ अपने बालकों के लिए समय-समय पर संस्कारों की व्यवस्था कराते हैं। गर्भधारण के पूर्व से ही यज्ञीय संस्कारों का तारतम्य बनाया जाता है। जन्म के बाद क्रमशः अन्य संस्कार भी कराये जाते हैं—

नामकरन कर अवसर जानी।
भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी॥

"राजा ने जब देखा कि नामकरण संस्कार का समय आ गया, तब ज्ञानवान मुनि श्री वशिष्ठजी को बुलाया।"

संस्कार, ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों से ही कराये जाने चाहिये। बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए उसके अन्तःकरण पर उपयुक्त प्रभाव डालने तथा उसके पालकों हितैषियों का ध्यान बाल विकास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों की ओर खींचने के लिए यह संस्कार किया जाता है।

नामकरण के बाद बच्चे के मस्तिष्क के विकास तथा भारतीय संस्कृति की प्रतीक शिखा स्थापन के लिए चूड़ा कर्म (मुण्डन) संस्कार किया जाता है। चारों भाइयों का यह संस्कार भी कराया गया—

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई।
विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥

"तब गुरु वशिष्ठ ने पहुँच कर चूड़ा कर्म संस्कार सम्पन्न कराया। उसके पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गई।"

माता-पिता के अतिरिक्त गुरु भी इस दिशा में सतर्क रहते थे। अपने शिष्यों को सही दिशा और प्रेरणा अपनी ओर से देते रहते थे।

इस संस्कार श्रृंखला में यज्ञोपवीत संस्कार बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसको दूसरा जन्म कहा जाता है। व्यक्ति मनुष्य शरीर के अनुरूप दिव्य जीवन-यापन करने के व्रतों से स्वयं को बांध लेता है। इस सन्दर्भ में माता-पिता, गुरु सभी पूर्ण सावधान रहते हैं—

भए कुमार जबहिं सब भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"जब चारों भाई बड़े हो गये, तभी गुरु, माता और पिता ने उन सबका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया।"

श्रीराम आदि चारों भाई इस प्रकार श्रेष्ठ संस्कारों के माध्यम से अपनी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों और क्षमताओं को विकसित, पुष्ट करते हुये आदर्श जीवन की ओर अग्रसर होते चले गये। जब मनुष्य के अन्तःकरण में इन संस्कारों के माध्यम से महान बनने की प्रबल आकांक्षा जाग उठती है तो फिर कठिन चरण भी तीव्र गति से पूरे होते चले जाते हैं। चारों भाइयों ने विद्याध्ययन बड़ी तीव्र गति से पूरा कर लिया—

गुरु गृह गए पढ़न रघुराई।
अल्प काल विद्या सब आई॥

"श्री भगवान राम सभी भ्राताओं को साथ लेकर गुरु के आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अल्प समय में ही सभी विद्याएँ प्राप्त कर लीं।"

संस्करों की यह पुण्य प्रक्रिया केवल दशरथजी ने ही अपनायी हो, ऐसी बात नहीं। हर गृहस्थ अपने-अपने स्तर पर उन्हें पूरा करके अपने पुनीत कर्तव्य का पालन करता रहा है। संस्कारों की यह श्रृंखला जीवन की समाप्ति के बाद भी चालू रहती थी। इस जीवन की समाप्ति अगले जीवन की भूमिका कहलाती है। अस्तु मृत्यु के बाद भी यह संस्कार प्रक्रिया चालू रखी जाती है। मृतात्मा को शान्ति मिले तथा अगला जीवन अधिक उज्ज्वल बन सके, इसके लिए मृतक संस्कार तथा मरणोत्तर संस्कार किया जाता है बालि वध के बाद श्रीराम सुग्रीव को बालि का संस्कार करने का आदेश देते हैं—

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा।
मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥

"इसके पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधान पूर्वक बाली का मृत्यु सम्बन्धी कर्म पूरा किया।"

मृत्यु के बाद के संस्कार का एक अंग श्राद्ध भी है। श्राद्ध का अर्थ होता है श्रद्धायुक्त आचरण। हर व्यक्ति अपने जीवन के उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए साधन सम्पत्ति जुटाता है। उनके पूरा होने पर वह उन्हें समाज हित के कार्यों में लगा दे— यह मर्यादा है। यदि मरने के पूर्व व्यक्ति यह कार्य पूरा न कर सके तो उसके उत्तराधिकारी कुटुम्बी उसे श्राद्ध के नाम पर पूरा करते थे। इस प्रकार किसी के व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों की उपेक्षा भी नहीं होने पाती थी और धन सम्पति का उपयोग समाज के उत्कर्ष के लिए भी होता रहता था। ऐसा करने से मृतक की श्रेष्ठ भावना का तथा उसके कुटुम्बियों की उसके प्रति निष्ठा का परिचय लोगों को मिलता था। भरतजी ने श्राद्ध के रूप में जो श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ अपनायी, उनकी प्रशंसा करते हुए मानसकार लिखते हैं—

पितु हित भरत कीन्ह जस करनी।
सो मुख लाख जाय नहिं बरनी॥

"पिता के हित को ध्यान में रखकर भरत ने जो कार्य किया, लाखों मुखों से भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।"

मृत्यु के बाद शरीरगत मोह छूट जाने पर मृतात्मा को उचित अनुचित स्पष्ट दिखने लगता है, अतः उसके द्वारा छोड़े गये साधन सम्पति का श्रेष्ठ उपयोग होते देखकर उसे शान्ति मिलती है।

अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर लेने के बाद बची मृतक की सम्पत्ति को इसीलिए लोक मंगल के कार्यों में लगाने की व्यवस्था श्राद्ध के अन्तर्गत रही हैं। श्राद्ध द्वारा मृतात्मा को शान्ति सद्गति मिलने की मान्यता के पीछे यही तथ्य है। वैसे तो मनुष्य की सद्गति उसके ही आचरण से होती है। वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति अपने जीवन को उसी आधार पर चलाते हुये लौकिक तथा पारलौकिक सद्गति के अधिकारी बनते हैं। अपने कर्तव्यों को हर चरण पर पूरा करते हुये वे गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से यथा शीघ्र मुक्त होकर पूर्ण पारमार्थिक जीवन में प्रवेश करते हैं। यह क्रम वानप्रस्थ जीवन से प्रारम्भ होता है। विचारशील व्यक्ति प्रौढ़ अवस्था में पहुँचते ही इस सन्दर्भ में सतर्क हो जाते हैं। राजा दशरथजी को कानों के पास के बाल पकते देखकर ही अपने इस दायित्व का बोध हो उठा—

श्रवन समीप भए सित केसा।
मनहु जरठपनु अस उपदेसा॥

"(उन्होंने देखा) कान के पास बाल सफेद हो चले हैं। उन्हें लगा कि मानों वृद्धावस्था उन्हें उपदेश कर रही है।"

बालों द्वारा उपदेश का अर्थ है— इस प्राकृतिक संकेत का तात्पर्य निकालना। राजा ने समझ लिया कि वृद्धावस्था आ रही है। और अपने राजकीय उत्तरदायित्वों से यथाशीघ्र मुक्त होकर वानप्रस्थ जीवन में प्रवेश करके जीवन के अगले चरणों की सार्थकता का प्रयास किया जाना चाहिये। वृद्धावस्था द्वारा राजा को उपदेश के रूप में मानस में यह तथ्य उभारा गया है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नृप जुबराजु राम कहु देहू ।
जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

"हे राजन् ! रामचन्द्रजी को युवराज पद सौंपकर अपने जीवन और जन्म को सफल क्यों नहीं बना लेते ?"

भारतीय संस्कृति का यही आदर्श इस देश को देव भूमि और विश्वगुरु का सम्मान दिलाये रहा है । निस्पृह तथा अनुभवी लोक सेवियों के रूप में वानप्रस्थ तप साधना द्वारा आत्मबल, सम्पादित करते हुये, देश एवं विदेश में वहाँ के निवासियों को श्रेष्ठ जीवनचर्या का शिक्षण, उद्‌बोधन तथा मार्गदर्शन देते रहते थे । सद्‌गृहस्थ इसके लिए आतुर रहते थे कि कब पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्ति पाकर विश्व परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को उठा लें । इसी महान लक्ष्य को सामने रखकर स्वयंभू मनु अपने पुत्रों को जबरदस्ती राज्य सौंपकर, गृहस्थ जीवन से निवृत्त होकर वानप्रस्थ में प्रवेश करते हैं—

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा ।
नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥

"तब मनुजी ने अपने पुत्र को आग्रह पूर्वक राज्य देकर स्वयं स्त्री समेत वन को गमन किया ।"

बहुत से लोग बच्चों के योग्य हो जाने पर उन्हें अपने उत्तरदायित्व को सौंप देते हैं, किन्तु स्वयं अगले चरण के लोक जागरण के अपने उत्तरदायित्वों को स्वीकार नहीं करते । शेष जीवन मौज शौक अथवा भजन पूजन के नाम पर आलस्य अवसाद में बिता देते हैं । इससे दोहरी हानि होती है, एक तो व्यक्ति का अपना विकास क्रम रुक जाता है, दूसरे समाज भी निस्पृह लोकसेवियों से वंचित रह जाता है । नाम मात्र के लिए वानप्रस्थ ले भी लिया जाय तो कोई लाभ नहीं, उससे तो ढोंग-छल को ही बढ़ावा मिलता है । वानप्रस्थ जीवन के साथ जुड़ी सेवा, साधना तथा तपश्चर्या युक्त जीवन प्रणाली को अंगीकार किया जाना आवश्यक है । नाम वानप्रस्थ का और भोग विलास में ही रुचि बनी रहना मानसकार की दृष्टि में निन्दनीय है—

बैखानस सोइ सोचै जोगू ।
तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥

"वही वानप्रस्थ सोचने योग्य है, जिसको तपस्या छोड़ कर भोग-विलास अच्छे लगते हैं ।"

अपने जीवन को उत्कृष्ट बनाते हुये श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के प्रचार प्रसार के उत्तरदायित्व को हर व्यक्ति वानप्रस्थ जीवन में निभाता था, किन्तु समाज के कुछ नागरिक जीवन भर इसी महान कार्य में लगे रहते थे, उन्हें ब्राह्मण कहा जाता था । यह भी नाम मात्र के अथवा बहुरूपियों जैसे केवल वेषधारी नहीं होते थे, वरन् अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह में तत्पर तथा उसके अनुरूप गुणों से विभूषित होते थे । आदर्श ब्राह्मण या विप्र कैसे होने चाहिये ? इस संदर्भ में मानस में लिखा है—

विप्र विवेकी वेद विद ।
सम्मत साधु सुजाति ॥

"ब्राह्मण विवेकवान, ज्ञान सम्पन्न तथा साधु अर्थात सज्जन एवं सुजाति (श्रेष्ठ वर्ग) द्वारा मान्यता प्राप्त होने चाहिये ।"

जहाँ उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति अपने जीवनों में उन्हें अपनाते हुये सारे समाज में उन प्रवृत्तियों को फैलाते, लोकप्रिय बनाते हैं, वह समाज सुख समृद्धि युक्त रहता है । इसके विपरीत जहाँ लोग नाम मात्र के लिए, केवल यश लूट लेने के लिए अपने साथ श्रेष्ठ नाम जोड़े फिरते हैं किन्तु उनके आचरण हीन हैं, वह समाज पतन की ओर उन्मुख होगा ही । ऐसे समाज में कर्तव्य भ्रष्ट लोगों की स्थिति का चित्रण करते हुये उत्तरकाण्ड में काभुशुण्डिजी कहते हैं—

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन ।
कोउ नहिं मान निगम अनुशासन ॥

"ब्राह्मण वेद (ज्ञान) को बेचने वाले, तथा राजा (सत्ताधारी) प्रजा पर आसन जमा कर बैठने वाले होते हैं । ऐसी स्थिति में वेद सम्मत शाश्वत अनुशासन कोई नहीं मानता ।"

ब्राह्मण का कार्य है कि वह ज्ञान का उपयोग लोगों को सही दिशा देने में करे, किन्तु लोभवश वे उचित-अनुचित का विचार छोड़कर, ज्ञान बेचकर पैसा कमाने लगते हैं । ऐसा करने वाले वस्तुतः ब्राह्मण कहलाने योग्य नहीं रह जाते । किन्तु जहाँ समाज में विकृत मान्यतायें स्थान बना लेती हैं, वहाँ श्रेष्ठता को बाह्य स्वरूप से ही जोड़ने का प्रयास चल पड़ता है और लोग अपने गुण कर्म स्वभाव को सँभालने की अपेक्षा वेष बदलना भर पर्याप्त मानते हैं । ऐसी स्थिति की जन मान्यताओं का वर्णन करते हुए काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

धनवन्त कुलीन मलीन अपी ।
द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी ॥

"(विकृत समाज में) धनवान व्यक्ति यदि अन्तःकरण एवं व्यवहार से मलीन ही हो तो भी उसे कुलीन कहा जाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगता है । द्विजत्व का मात्र चिह्न यज्ञोपवीत और तपस्वी का चिह्न केवल उघाड़ा रहना माना जाने लगता है ।''

इस प्रकार अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करके केवल वेश से श्रेष्ठता प्राप्त करने की प्रवृत्ति चल पड़ने से समाज में श्रेष्ठ प्रवृत्तियों का ह्रास होने लगता है, फलतः समाज पतित हो जाता है । श्रेष्ठ समाज में ऐसे कर्तव्यच्युत व्यक्तियों को समाज के लिए हानिकारक एवं निन्दनीय माना जाता है । अयोध्याकाण्ड में गुरु वशिष्ठजी ऐसे व्यक्तियों को शोचनीय कहकर अपना मत प्रकट करते हैं—

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना ।
तजि निज धरम विषय लय लीना ॥

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिये जो वेद नहीं जानता और अपना धर्म छोड़कर विषय भोग में लीन रहता है ।''

ब्राह्मण का कार्य स्वयं अपना आदर्श प्रस्तुत करते हुये लोगों को सिद्धान्तनिष्ठ जीवन जीने की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन देना है । वह जब स्वयं ही नर पशुओं जैसे भोगों में फँस जायेगा तो समाज में उसकी गलत प्रतिक्रिया अवश्य होगी । अस्तु यदि ऐसा होता है तो वह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है । आश्रम धर्म के सन्दर्भ विभिन्न आश्रमों के कर्तव्यों को भुला देना सोचनीय बतलाते हुये वशिष्ठजी कहते हैं—

सोचिअ गृही जो मोह बस,
करइ करम पथ त्याग ।
सोचिअ जती प्रपंच रत,
विगत विवेक विराग ॥

''वह गृहस्थ सोचने योग्य है, जो मोहवश कर्म पथ का त्याग कर देता है । वह परिव्राजक सोच करने योग्य है, जो दुनियाँ के प्रपंच में फँसा हुआ ज्ञान वैराग्य से हीन है ।''

गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर शक्ति को परिव्राजक बनकर समाज में सत्प्रवृत्तियों का विस्तार करते रहना चाहिये । इसके लिये आवश्यक है कि विवेक पूर्वक दुनियाँ के प्रपंच से बचकर रहें । किन्तु जिस समाज में विचारहीनता की बीमारी फैल जाती है, वहाँ किसी के आचरण को न देखकर मात्र साज-सज्जा से ही उसे सम्मान दिया जाने लगता है । फल-स्वरूप जो स्थिति पैदा हो जाती है, उसका वर्णन करते हुये काकभुशुण्डिजी कहते हैं—

मिथ्यारंभ दंभरत जोई ।
ताकहँ संत कहइ सब कोई ॥

''झूठे अहंकार ग्रस्त जो व्यक्ति हैं, उन्हीं को सब लोग सन्त कहने लगते हैं ।''

यह उसी स्थिति में होता है, जब लोग आचारनिष्ठ नहीं रह जाते— आचरण की श्रेष्ठता को अपनाना और परखना भूल जाते हैं । फलतः जो बाह्य दिखावा करने में कुशल होते हैं, उन्हीं को श्रेष्ठ मान लिया जाता है । जब इस प्रकार दिखावे से ही बड़प्पन मिलने लगता है, साधक आदर्श मार्ग से बहक जाते हैं और ढोंग करने लगते हैं—

बहु दाम सँवारहिं धाम जती ।
विषया हर लीन्ह न रहि विरती ॥

''परिव्राजक लोग भी धन और मकान संवारने में लग जाते हैं । उनके वैराग्य भाव का हरण विषय वासना कर लेती है ।''

जब संतों, परिव्राजकों का यह हाल हो जाता है, तो जन साधारण का शिक्षण कौन करे ? वे भी वर्णाश्रम धर्म को भूल जाते हैं । समाज तो एक प्रकार का स्कूल है जहाँ सदैव नये-नये विद्यार्थी आते रहते हैं । शिक्षण का क्रम रुकते ही स्थिति बिगड़ जाती है । जीवन के आदर्शों का ज्ञान न होने पर मूढता-वश लोग विपरीत आचरण कर उठते हैं—

बरन धर्म नहि आश्रम चारी ।
श्रुति विरोध रत सब नर नारी ॥

''चारों वर्णों और चारों आश्रमों की मर्यादा समाप्त हो जाती है और सभी लोग शाश्वत सिद्धान्तों (श्रुति सिद्धान्तों) के विपरीत चल पड़ते हैं ।''

इस प्रकार विपरीत आचरण ग्रस्त लोग स्वभावतः ही अपने ही कर्मों के प्रभाव से दुखों में पड़ जाते हैं । लिखा है—

सब लोग बियोग विसोक भये ।
वर्णाश्रम धर्म अचार गये ॥

''सभी लोग वियोग और दुख द्वारा सताये जाते हैं और वर्णाश्रम धर्म का आचरण समाप्त हो जाता है । ''

असन्तुलन, दुख एवं पतन का कारण वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप आचरण लुप्त हो जाना है । नाम रहे या न रहे, उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । नाम के लिए तो हर व्यक्ति अपने आप को संत-महात्मा कह सकता है । किन्तु समाज के उत्कर्ष और व्यक्ति के विकास के लिए परमार्थ परायण व्यक्तित्वों की आवश्यकता एवं उपयोगिता कभी झुठलायी नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जा सकती । मानस के अनुसार संत वेश या कथनी से नहीं करनी से होता है । उल्लेख है–

संत विटप सरिता गिरि धरनी ।
परहित हेतु सबन्हि कै करनी ॥

"सन्त, वृक्ष, नदी, पहाड़ एवं धरती इन सभी के कार्य परमार्थ के लिए होते हैं ।"

साधु, ब्राह्मण परिव्राजक सभी परमार्थ परायण जीवन ही जिया करते थे । आदर्श सामाजिक व्यवस्था में ऐसे व्यक्तियों का बाहुल्य होना ही चाहिये । वे सारे समाज में निरन्तर श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ फैलाते, सहयोग परामर्श देते घूमा करें, यही मानस का आदर्श है । ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण के सन्दर्भ में काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में कहा गया है–

राम सिंधु घन सज्जन धीरा ।
चंदन तरु हरि संत समीरा ॥

"भगवान यदि समुद्र हैं तो सज्जन बादल हैं, प्रभु यदि चन्दन का वृक्ष हैं तो सन्त वायु हैं ।"

समुद्र का पानी, बादल, तथा चन्दन की सुगन्धि, वायु सारे संसार में फैलाते, लोगों को सुख देते, लाभ पहुँचाते घूमते हैं । ऐसा ही जीवन क्रम संतों, सज्जनों का होना चाहिये । इनके प्रभाव से समाज में व्याप्त अधोगामी पाप मूल प्रवृत्तियाँ नष्ट होती हैं और श्रेष्ठ पुण्यदायक प्रवृत्तियाँ फैलती हैं इसलिये ऐसे श्रेष्ठ पुरुषों को मानस वन्दना प्रसंग में चलते फिरते तीर्थराज की उपमा से विभूषित किया गया है–

मुद मंगलमय संत समाजू ।
जो जग जंगम तीरथराजू ॥

"सन्तों (सज्जनों) का समाज हर्ष और कल्याण युक्त होता है, वह संसार के लिए चलते-फिरते चैतन्य तीर्थराज की तरह होते हैं ।"

भारतीय संस्कृति की सीख यही है कि श्रेष्ठ पुरुष समय निकाल कर इसी प्रकार चैतन्य तीर्थ बनकर घूमें । मात्र वाणी से ही नहीं, अपने श्रेष्ठ आचरण से भी लोक शिक्षण का क्रम चलावें, तो कोई कारण नहीं कि जन साधारण का स्तर ऊँचा न उठे । वे द्वेष दुर्भाव छोड़कर स्नेह सौहार्द्र पूर्वक रहने लगें । ऐसी स्थिति में समाज की दिशा क्या हो जाती है, उसका वर्णन मानस में इस प्रकार है–

सब नर करहि परस्पर प्रीती ।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥

सभी व्यक्ति परस्पर प्रेम व्यवहार करते हैं तथा अपने अपने शाश्वत धर्म कर्तव्यों का पालन करते रहते हैं । "

समाज का कायाकल्प एक दो व्यक्तियों के कर्तव्यनिष्ठ हो जाने से नहीं होता, उसके लिए तो सभी व्यक्तियों को अपने-अपने कर्तव्यों पर आरुढ़ कराना आवश्यक है । हर व्यक्ति के अपने-अपने भिन्न-भिन्न कर्तव्य होते हैं । उन सिद्धान्त सम्मत कर्तव्यों को ही धर्म कर्तव्य कहा जाता है ।

अपनी-अपनी स्थिति तथा अपने-अपने स्तर के अनुरूप कर्तव्यों का पालन वर्णाश्रम व्यवस्था का आदर्श है । रामराज्य की आदर्श समाज व्यवस्था में सभी लोग इसी प्रकार सब प्रकार सुख समृद्धि युक्त थे-

वरनाश्रम निज निज धरम,
निरत वेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुखहि,
नहिं भय सोक न रोग ॥

"सभी लोग सदा वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप अपने-अपने धर्म कर्तत्यों का पालन करते हुए वेद मार्ग पर चलते हैं । अतः सदा सुख पाते हैं, उन्हें भय, रोग या शोक नहीं व्यापते । "

व्यक्तिगत उत्कर्ष तथा सामाजिक प्रगति का तालमेल बिठाकर चलने वाली आदर्श पद्धति को अपनाकर हम भी रामराज्य की तरह सब प्रकार सुखी एवं समुन्नत जीवन-यापन कर सकते हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

श्लोक परिशिष्ट

इस भाग में सभी प्रवचन श्री रामचरित मानस के उद्धरणों के आधार पर ही तैयार किए गये हैं। इन्हीं भाषणों में स्थान-स्थान पर लगाये जा सकने योग्य वाल्मीकि रामायण के कुछ श्लोक अर्थ एवं प्रसंग सहित यहाँ दिये जा रहे हैं। जो वक्ता संस्कृत श्लोक याद करके बोल सकते हैं वे इन श्लोकों को भाषणों में यथास्थान जमाकर प्रयुक्त कर सकते हैं। हर श्लोक के ऊपर यह संकेत दिया गया है कि यह किन-किन भाषणों में प्रयक्त हो सकते हैं। केवल भाषण क्रमांक ही अंकित कर दिये हैं। भाषणों में किस स्थल पर किस श्लोक को फिट करें यह निर्णय अपने विवेक से वक्ताओं को कर लेना चाहिए। जो श्लोक एक से अधिक प्रवचनों में प्रयुक्त हो सकते हैं उनके अर्थ के बाद यह संकेत भी दिए गए हैं कि श्लोक का कौन सा पक्ष किस प्रवचन में जोड़ने योग्य है।

(प्रवचन क्र० १, ४ एवं ५ में उपयोगी)

अशोक वाटिका में सीता को राम के बारे में बताते हुये हनुमान कहते हैं—

अर्चिष्मानर्चितो नित्यं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम्॥

वे दमकते हुये चेहरे वाले, पूज्यों के भी पूज्य तथा ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित हैं। साधु पुरुषों के प्रति उपकार करने की विधि जानने वाले तथा कर्मों के प्रचार की विधि जानने वाले है।

कर्म प्रचार की संगति क्र० १ से प्रभु के गुणों का स्मरण क्र० ४ से, तथा साधु पुरुषों के उपकार की संगति क्र० ५ के साथ है।

राम वनगमन के बाद अपनी निर्दोषिता सिद्ध करते हुये भरत ने कौशल्या से कहा—

पुत्रैर्दारैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः।
स एको मृष्टमश्नातु यस्मार्योऽनुमते गतः॥

जिसकी अनुमति से श्रीरामचन्द्र वन में भेजे गये हों, उसे वह पाप हो, जो उस मनुष्य को होता है जो सामने बैठे हुए नौकर चाकर, स्त्री, पुत्रों को न देकर, स्वयं अकेले ही अच्छा खाने वाले को होता है।

श्रेष्ठ सामाजिक प्रवृत्ति के समर्थन में प्रयुक्त करें।

(प्र० क्र० १ में)

आय-व्यय का संतुलन और बचे हुए धन को श्रेष्ठ कार्यों में व्यय एक ऐसी सत्प्रवृत्ति है जिससे समाज में श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं। राम ने इस सम्बन्ध में कहा—

आयस्ते विपुल कच्चित्कच्चिदल्पतरो व्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित्कोशो गच्छति राघव॥

भरत! तुम्हारे कोश में आमदनी अधिक और आमदनी से कम व्यय है कि नहीं, तुम्हारे कोश का धन कहीं नाचने-गाने वालों को तो नहीं लुटाया जाता?

(प्र० क्र० १ में)

नारी के लिए पर्दा घृणित प्रथा है। रावण विजय के बाद विभीषण पालकी में पर्दा लगाकर सीता को राम के पास ला रहे थे। राम ने उसका विरोध करते हुए कहा—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रिया॥

स्त्रियों के लिए न घर, न चादर, घूंघट, न कनात आदि की चहारदीवार, न चिक आदि का परदा और न इस प्रकार का राजसत्कार ही आड़ (ओट) करने वाला है (जैसा कि तुम कर रहे हो)।

(प्र० क्र० २ में)

लक्ष्मण जी युद्ध में घायल होकर मूर्च्छित हो गये तो श्रीराम ने उन्हें आत्म-स्मरण कराया। उन्हें बोध हुआ और—

आश्वास्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रु सूदनः।
विष्णोर्भागमीमाँस्यमात्मानं प्रत्युनुस्मरन्॥

शत्रुहन्ता लक्ष्मणजी अपने को अचिन्त्य विष्णु भगवान का अंश समझ सचेत हुए। उनकी छाती का घाव पुर गया।

(प्र० क्र० २, ३ एवं ११ में)

जब विभीषण श्रीराम की शरण में आते हैं और सब मन्त्री मिलकर किसी एक निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं तो लक्ष्मण श्रीराम से कहते हैं कि आप अपनी संतुलित बुद्धि से इस समय निर्णय करें—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यसने वार्थकृच्छ्रे वा जीवितान्तके।
विमृशन्वै स्वया बुद्धया धृतिमान्नावसीदति॥

धैर्यवान पुरुष, स्वजन वियोग के समय, धननाश के समय, भय उपस्थित होने पर, प्राणों की शंका उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धि से काम लेते हैं और उसी से वे कभी दुःखी नहीं होते ।

प्र० क्र० २ से बुद्धि की प्रधानता, क्र० ३ से संतुलन, तथा क्र० ११ से लक्ष्मण द्वारा भाई को सलाह की संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० २ एवं ५ में)

मरने से पहले दशरथ अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करते हुए सोचने लगे—

गुरुलाघवमर्थाना मारम्भे कर्मणाँ फलम् ।
दोषं वा यो जानाति स बाल इति होच्यते ॥

अतएव कर्म करने के पूर्व जो मनुष्य कर्म के फल का गुरुत्व-लघुत्व (भलाई-बुराई) अथवा उसके दोष (त्रुटि) को नहीं जानता, वह अज्ञानी कहलाता है ।

प्र० क्र० २ से आत्म-चिंतन तथा ५ से कर्म फल की संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० ३ एवं ४ में)

सीता खोज के प्रकरण में जामवंतजी वानरों को समझाते हुए कहते हैं—

तथा सर्वाणि भूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ।
प्रियं कुर्वन्ति रामस्यत्यक्त्वा प्राणान्यथा वयम् ॥

क्या पशु और क्या पक्षी, जितने प्राणी हैं, वे सब अपने प्राणों को देकर भी श्रीरामचन्द्रजी के प्रिय कार्य को वैसे ही करते हैं, जैसे कि हम सब ।

प्र० क्र० ३ में आदर्श मानव राम और प्र० क्र० ४ में आदर्श भक्त रीछ वानरों की संगति मिलाइए ।

(प्र० क्र० ३ एवं ४ में)

राम के वनवास की खबर सुनकर नागरिक आपस में कहते हैं—

न हि कश्चन पश्यामो राघवस्यागुणं वयम ।
दुर्लभो ह्यस्य निरयः शशांकस्येव कल्मषम् ॥

हमको तो श्रीराम में कोई भी दोष देख नहीं पड़ता, प्रत्युत हम तो इनमें दोष का मिलना उसी प्रकार असम्भव समझते हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा में मलिनता का मिलता ।

प्र० क्र० ३ राम के अनुकरण द्वारा नर से नारायण बनने तथा प्र० क्र० ४ सच्ची आस्तिकता के रूप में उल्लेखनीय ।

(प्र० क्र० ३ में)

सीता दुःखी हो गई तो उन्हें समझाते हुए विभीषण की पत्नी ने उनसे कहा—

अनृतं नोक्तमपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।
चारित्रसुखशीलत्वात्प्रविष्टासि मनो मम ॥

हे सीते ! मैंने न तो कभी तुमसे झूठ कहा और न कहूँगी । क्योंकि तुमने अपने शुभाचरणों के प्रभाव से मेरे मन में अपने लिये स्थान बना लिया है ।

अच्छे आचरण द्वारा नरक में भी स्वर्ग तथा शत्रु को भी मित्र बनाया जा सकता है ।

(प्र० क्र० ३ एवं ४ में)

हनुमान के गुणों की प्रशंसा करते हुए सीता ने कहा—

बलं शौर्यं श्रुतं सत्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ।
तेजः क्षमा धृतिर्धैर्यं विनीतत्वं न संशय ॥

प्रयास, सहिष्णुता, बुद्धोत्साह, शास्त्रज्ञान, शरीरिक बल, पराक्रम, सामर्थ्य, शत्रु का पराभव करने की शक्ति, अपराध साहिष्णुता, धैर्य, विनम्रता अथवा नीति का विशेष ज्ञान तुम में सबसे श्रेष्ठ हैं इसमें सन्देह नहीं ।

प्र० क्र० ३ में आत्म परिष्कार तथा प्र० क्र० ४ में आदर्श भक्त की संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० ३ में)

सीता की खोज में रावण के महल में सोती स्त्रियों को देखने के बाद अपने मन की निर्मलता के बारे में हनुमान ने सोचा—

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणाँ प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥

फिर मन ही तो पाप और पुण्य करने वाली सब इन्द्रियों का प्रेरक है । सो वह मन मेरे वश में है ।

(प्र० क्र० ३ में)

इसलिए बुद्धि के सहारे मन और इन्द्रियों को वश में रखने का निर्देश रामायण देती है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इन्द्रियां प्रदुष्टानां हयानामिव धावताम् ।
कुर्वीत धृत्या सारथ्यं संहृत्येन्द्रियगोचरम् ॥

इन्द्रियाँ दुष्ट घोड़ों की तरह विषयों की ओर दौड़ा करती हैं। अतः उन इन्द्रियरूपी घोड़ों को सारथी रूपी बुद्धि से अपने अधीन कर, उनको सन्मार्ग पर चलाना चाहिये ।

(प्र० क्र० ३ में)

यदि इसमें ढील बरती गई तो मनुष्य का अन्तःकरण सदाचार की मर्यादा तोड़कर दुराचार में प्रवृत्त हो जाता है और उस स्थिति में वही अपना सबसे भयंकर शत्रु होता है। ग्रन्थकार का मत है—

न तत्कुर्यादासिस्तीक्ष्णः सर्पो वा व्याहतः पदा ।
अरिर्वा रित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽत्मा दुरनुष्ठितः ॥

दुराचार से बिगड़ा हुआ आत्मा जैसा अनिष्ट किया करता है, वैसा अनिष्ट तेज धार वाली तलवार, पैर से कुचला हुआ साँप अथवा अत्यन्त क्रोधी शत्रु भी नहीं कर सकता ।

(प्र० क्र० ३ एवं ५ में)

राम के जीवन में भी दुःख के प्रसंग बहुतायत से आए। दुर्वासा ऋषि ने उन्हें इस सन्दर्भ में पहले ही सावधान कर दिया था। सुमन्त्र को यह विदित था। उन्होंने लक्ष्मण जी को बतलाया कि ऋषि दुर्वासा ने पहले ही यह कहा था कि—

भविष्यति दृढं रामो दुःखप्रायो विसौखयभाक् ।
प्राप्स्यते च मपाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैद्रुतम् ॥

श्रीरामचन्द्रजी प्रायः दुःखी ही रहेंगे और उन्हें सुख नहीं मिलेगा। उनको अपने प्यारे जनों से शीघ्र ही वियोग होगा अतः सुख-दुःख और संयोग वियोग पर विशेष ध्यान न देकर अपने कर्तव्य पालन पर ही अटल रहना चाहिये ।

प्र० क्र० ३ में जीवन का भौतिक स्वरूप प्र० क्र०४ में दृढ़ता तथा ५ में कर्तव्य परायणता से संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० ३ एवं १० में)

योग्य गुरु सदैव योग्य शिष्य की खोज में रहते हैं। जब यज्ञ रक्षार्थ राक्षसों को मारने के लिए राम और लक्ष्मण को ले जाने के लिए विश्वामित्र अयोध्या पधारे तथा उनने राजा से दोनों पुत्रों को माँगा तो राजा के आनाकानी करने पर वशिष्ठ ने उन्हें समझाया—

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः ।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥

ये विश्वामित्र जी स्वत उन राक्षसों को मारने में समर्थ हैं किन्तु तुम्हारे पुत्रों की हित कामना से ही ये तुम से दोनों पुत्रों की याचना कर रहे हैं ।

प्र० क्र० ३ में पात्रता तथा प्र० क्र० १० में परिवार निर्माण में मुखिया के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला जा सकता है ।

(प्र० क्र० ३ एवं ४ में)

किन्तु पात्रता के बिना विभूतियों का मिलना असम्भव है। ताड़का वध के उपरांत राम का पराक्रम और उनकी क्षमता देख देवताओं ने विश्वामित्र से कहा—

तपोबलभृतान् ब्रह्मन राघवाय निवेदय ।
पात्रभृतश्च ते ब्रह्मस्तवानुगमने धृतः ॥

हे ब्राह्मण ! आप अपने तपोबल द्वारा उपलब्ध सभी विभूतियाँ राम को सौंप दीजिये। ये योग्य पात्र विभूतियाँ धारण करने में समर्थ एवं आपके अनुगामी हैं ।

प्र० क्र० ३ में पात्रता के विकाश तथा प्र० क्र० ४ में विभूतियों के अनुदान से संगति मिलाइए ।

(प्र० क्र० ३, ४, ५, ७ एवं १२ में)

राक्षसों से पीड़ित ऋषियों के अनुरोध से राम ने राक्षसों का समूलोच्छेद करने की प्रतिज्ञा की। सीता ने उनसे इस झंझट में न पड़ने का अनुरोध किया तो राम ने सीता से कहा—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥

मुझे भले ही अपने प्राण गँवाने पड़ें अथवा लक्ष्मण सहित तुम्हें क्यों न त्याग देना पड़े, किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता। विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों से कर चुका हूँ ।

प्र० क्र० ३ में जीवन उद्देश्य, ४ में ईश्वरीय कार्य, ५ में कर्तव्य परायणता, ७ में पत्नीव्रत तथा १२ में आदर्श क्षत्रिय से संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० ३, ५ एवं ११ में)

श्रीराम चित्रकूट में भरत को प्रेरणा देते हुए कहते हैं—

कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः ।
उभौ वा प्रीतिलोभेन कामेन च न बाधसे ॥

कहीं धर्मानुष्ठान के समय को अर्थोपार्जन में या अर्थोपार्जन के समय को धर्मानुष्ठान में तो नष्ट नहीं कर देते ? अथवा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुखाभिलाष के लिये विषयवासना में फँस, अर्थोपार्जन और धर्मानुष्ठान दोनों का समय तो नहीं गँवा देते ?

प्र० क्र० ३ आदर्श जीवन, ५ कर्तव्यपरायणता तथा ११ भाई को प्रेरणा हेतु प्रयुक्त कीजिए ।

(प्र० क्र० ३, ४ एवं ५ में)

श्रीराम रावण के साथ घनघोर युद्ध के लिये तत्पर हैं । किन्तु सबको आश्वस्त करते हुए कहते हैं—

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।
सदेवाः कथियिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥

हे वानर श्रेष्ठ ! आज मैं वह काम करूँगा कि जब तक यह संसार रहेगा, तब तक देवताओं सहित चर और अचर जीव उसका बखान करते रहेंगे ।

प्र० क्र० ३ में आंतरिक शक्तियों का जागरण, ४ में रामगुण अनुकरण तथा ५ में कर्म द्वारा ही यश प्राप्ति की प्रेरणा जोड़ें ।

(प्र० क्र० ३, ५ एवं ११ में)

राम वन गमन के समय लक्ष्मण जी का मत है कि भाग्य अपने ही कर्मों की प्रतिक्रिया है, इसलिए पुरुषार्थी व्यक्ति अपने प्रबल पुरुषार्थ से भाग्य को बदल सकते हैं—

वीराः सम्भावितात्मानो न दैवं पर्युपासते ।
दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम् ॥

जो वीर और पुरुषार्थी होते हैं वे भाग्य के भरोसे नहीं रहते । वे अपने पुरुषार्थ से भाग्य को बाधित करने (बदल देने) की क्षमता रखते हैं ।

प्र० क्र० ३ में मनुष्य की जिम्मेदारी, ५ में कर्तव्य परायणता तथा ११ में छोटे भाई का बड़े भाई को उदबोधन का संदर्भ जोड़ें ।

(प्र० क्र० ३ एवं ४ में)

हनुमान ने पूरी लंका में खोज की किन्तु सीता नहीं मिलीं, हनुमान हतोत्साहित होने लगे तब उन्होंने सोचा—

अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ॥

हताश होकर भी पवननन्दन ने पुनः मन ही मन कहा कि मुझे अभी हतोत्साहित न होना चाहिए क्योंकि उत्साह ही परम सुख का देने वाला है और उत्साह ही मनुष्यों को सदैव सब कामों में लगाने वाला है ।

प्र० क्र ३ आशावादी दृष्टिकोण तथा ४, आदर्श भक्त के रूप में उललेखनीय ।

(प्र० क्र० ३ एवं ५ में)

सुबुद्धि के बारे में रामायण का मत है—

कस्यचिन्हि दुर्बुद्धेश्छन्दतो जायते मतिः ।
यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमश्नुते ॥

किसी भी दुर्बुद्धि जन को अपने आप सुमति नहीं उपजती वह जैसा कर्म करता है वैसा ही उसे फल भी मिलता है ।

प्र० क्र० ३ में सुबुद्धि पाने का प्रयास तथा ५ में कर्मानुसार ही गति का प्रतिपादन करें ।

(प्र० क्र० ३ एवं ५ में)

राम के अत्रि आश्रम पधारने पर अत्रि ने सती अनुसूया के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहा—

अनसूयेति या लोके कर्मभिर ख्यातिमागता ।
तां शीघ्रमभिगच्छ त्वामभिगम्यां तपस्विनीम ॥

जो अपने उत्कृष्ट कर्मों के कारण लोकों में अनुसूया के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन तपस्विनी एवं साथ जाने योग्य देवी के पास जानकीजी शीघ्र जायँ ।

प्र० क्र० ३ में आत्म-निर्माण तथा ५ में कर्म के कारण यश का प्रतिपादन करें ।

(प्र० क्र० ४ में)

उत्तर काण्ड में वामन भगवान के सम्बन्ध में बालि कहते हैं—

प्रादुर्भाव विकुरुते येनैतन्निधन नयेत् ।
पुनरेवात्मनात्मानमधिष्ठाय स तिष्ठति ॥

ये किसी ऐसे को उत्पन्न कर देते हैं, जो उपद्रवी का नाश कर डालता है और वह स्वयं अधिष्ठाता के अधिष्ठाता ही बने रहते हैं ।

इसमें अवतारवाद का प्रतिपादन होता है ।

(प्र० क्र० ४, ५ एवं ११ में)

भरत ने भगवान द्वारा सौंपी सम्पत्ति एवं विभूतियों को अनेक गुणा बढ़ा लिया, निस्पृह भाव से उस पर अपना अधिकार न मानते हुये उन्हें ही सौंप दिया । भरत के शब्द है—

भवतस्तेजसा सर्व कृतं दशगुणं मया।
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलेम॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आपके प्रताप से मैंने पहले से सब दस गुने अधिक बड़ा दिये हैं । इस प्रकार कहते हुए भ्रातृवत्सल भरत को देख (राक्षसराज विभीषण तथा वानरों की आँखों से आँसू निकल आये ।)

प्र० क्र० ४ में आदर्श भक्त, ५ में कर्तव्य परायणता तथा ११ में आदर्श भ्रातृत्व की प्रेरणा का उल्लेख करें ।

(प्र० क्र० ४ में)

वानरी सेना के प्रस्थान करते समय राम युद्ध की योजना बनाते हुए सुग्रीव से कहते हैं–

यास्यामि बलमध्येऽहं बलौघमभिहर्षयन ।
अधिरुह्य हनूमन्तमैरावतमिवेश्वरः ॥

मैं हनुमान के कन्धे पर सवार हो, ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र की तरह, सेना के मध्य भाग में रहकर सेना को हर्षित अथवा उत्साहित करता हुआ चलूँगा ।

भाव है कि हनुमान जैसे भक्त ही राम को धारण कर सकते हैं–

(प्र० क्र० ४ एवं ११ में)

सीता हरण के बाद व्याकुल राम को समझाते हुए लक्ष्मण ने कहा कि पराक्रम और शौर्य को क्षीण करने वाला शोक न करें–

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥

देखिये, उत्साहशून्य, दीन और शोक से विकल मनुष्य के समस्त कार्य नष्ट हो जाते हैं और इसलिए उसे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है ।

प्र० क्र० ४ में ईश्वर विश्वास तथा ११ में भाई द्वारा भाई को उद्‌बोधन का उल्लेख करें ।

(प्र० क्र० ४ में)

सीताजी राम की इन विशेषताओं को भली प्रकार जानती हैं, हनुमानजी से अशोक वाटिका में वे कहती हैं–

उत्साहः पौरुषं सत्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥

वे उत्साही, पुरुषार्थी, वीर्यवान्, दयालु, कृतज्ञ, विक्रमी और प्रतापी हैं ।

राम की विशेषताएँ तथा भक्तों को अनुकरण की प्रेरणा उभारें ।

(प्र० क्र० ४, ३ एवं १ में)

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकांक्षिणः ॥

जब श्रीरामचन्द्रजी ने युद्ध में रावण के वध करने की अभिलाषा की, तब उनके शरीर का बल, अस्त्रबल, पराक्रम और मन की प्रसन्नता दूनी हो गयी ।

प्र० क्र० १ में आत्म बोध, ३ में शक्ति का सही नियोजन तथा ४ में राम की विशेषता के रूप में उल्लेखनीय करें ।

(प्र० क्र० ५ एवं ४ में)

सत् पुरुष तो श्रीराम के इस रूप से परिचित हैं ही । रामायण के प्रारम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि को राम का परिचय देते हुए नारद जी कहते हैं–

एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः ।
एष बुद्धयाधिको लोके तपसश्च परायणम ॥

वे धर्म की मूर्ति ही हैं, तथा तेजस्वी बुद्धिमान एवं लोक कल्याण के लिए सब प्रकार से तप साधना में तत्पर हैं ।

प्र० क्र० ५ में धर्म ही ईश्वर तथा ४ में ईश्वर ही धर्म रूप का प्रतिपादन करें ।

(प्र० क्र० ५ में)

नारदजी महर्षि वाल्मीकि से कहते है–

बभौ राम संप्रहृष्टः प्रजितः सर्वदेवतैः ।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्य सचराचरम् ॥

सब देवताओं से पूजित होकर राम संतुष्ट हुये तथा उनके इस महान कार्य से तीनों लोकों के सभी प्राणियों का दुःख दूर हो गया ।

भाव है कि कर्तव्य परायण व्यक्ति ही अपने महान कार्यों द्वारा यश पाते हैं ।

(प्र० क्र० ५,३ एवं ६ में)

मृत्यु की कल्पना से भयभीत नहीं होना चाहिये, बल्कि कर्तव्य बोध होना चाहिए । क्योंकि वह जीवन की सखी है– सहयोगिनी है ।

सहैव मृत्युर्व्रजित सह मृत्युर्निषीदति।
गत्वा सुदीर्घमध्वानं सह मृत्युर्निवर्तते॥

मौत मनुष्य के साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और दूर जाने पर भी साथ नहीं छोड़ती और साथ जाकर साथ ही लौट भी आती है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्र० क्र० ३ में मृत्यु को याद रखते हुए शीघ्र उद्देश्य प्राप्त करना, ५ में मृत्यु निश्चित है अतः कर्तव्य पथ से विचलित न होना, तथा ६ में संघर्ष में मृत्यु भी हो जाय तो शहीद की मृत्यु रूप में गौरव की प्राप्ति का उल्लेख करें ।

(प्र० क्र० ५ में)

धार्मिक आचरण से ही चरित्र निर्माण होता है । चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहा गया है—

कुलीनमकुलीनं वा वीरं पुरुषमानिनम् ।
चारित्रमेव व्याख्याति शुचिं वा यदि वाऽशुचिम् ॥

चरित्र ही अकुलीन को कुलीन, भीरु को वीर और अपावन को पावन प्रसिद्ध करता है ।

श्रेष्ठ आचरण का प्रभाव उभारें ।

(प्र० क्र० ५ में)

यह उपलब्धियाँ किन्हीं छोटे-छोटे कर्मकाण्डों के सहारे प्रापत करने की आशा करना भूल है । सिद्धान्तों को जीवन में उतार लेने से ही धर्म का लाभ उठाया जा सकता है । लिखा भी है—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यस्माद्धारयते सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

धारण करने ही से धर्म रह सकता है और धर्म ही से प्रजा जन (यथावस्थित) रह सकते हैं । अतःधर्म का धारण करने वाला, चराचर सहित तीनों लोकों को धारण कर सकता है ।

(प्र० क्र० ५ एवं ६ में)

रावण वध के बाद सीता को सताने वाली राक्षसियों को दंड देने को उत्सुक हनुमान को रोकते हुए सीता ने कहा—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥

दूसरे के बुरे काम देखकर वैसा ही बुरा वर्ताव करना उचित नहीं । प्रत्येक जन को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिये । क्योंकि आचार रक्षा ही साधुजनोचित भूषण है ।

प्र० क्र० ५ में अपना धर्म स्वतः निश्चित करने तथा ६ में सोच-समझ कर संघर्ष करने की प्रेरणा का उल्लेख करें ।

(प्र० क्र० ५ में)

वन गमन से पूर्व भगवान राम ने अपनी सम्पत्ति सुपात्रों में वितरित कर दी—

स चापि रामः परिपूर्णमानसो
महद्धनं धर्मबलैरुपार्जितम् ।
नियोजयामास सुहृज्जने चिरा-
द्यथार्हसम्मानवच प्रचोदितः ॥

श्रीरामचन्द्रजी ने धर्म युक्त और परिश्रम पूर्वक कमायी हुई विशाल सम्पत्ति को बड़े आदर के साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने सुहृदों को बाँट दी ।

सम्पत्ति उपार्जन का तरीका और उसके सदुपयोग का ढंग समझायें ।

(प्र० क्र० ५ में)

धर्म के बारे में श्रीराम अपने वाण से घायल बालि को समझाते हुए कहते हैं—

सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवङ्गम ।
हृदिस्थः सर्वभूतानामात्मा वेद शुभाशुभम् ॥

हे वानर ! सज्जनों का धर्म ऐसा सूक्ष्म है कि सहज में उसे कोई जान नहीं सकता । परन्तु वह धर्म प्रत्येक प्राणी के हृदय में वर्तमान है । इसी से अन्तरात्मा द्वारा ही शुभाशुभ का ज्ञान हुआ करता है ।

भाव है कि धर्म नकल से नहीं विवेक से प्राप्त होता है ।

(प्र० क्र० ५ में)

सीता ने अनुसूइया को अपनी उत्पत्ति के बारे में बताया—

तस्य लांगलहस्तस्य कर्षतः क्षेत्रमण्डलम् ।
अहं किलोत्थता भित्वा जागतीं नृपतेः सुता ॥

जब हल हाथ में ले वे क्षेत्र जोतने लगे, तब मैं पृथ्वी को भेद कर, उनकी पुत्री के रूप में निकल आयी ।

परिश्रम द्वारा ही जीवन निर्वाह जनक का आदर्श प्रकट होता है ।

(प्र० क्र० ५ एवं ७ में)

रावण वध के बाद राम की झाँकी—

इहीदमुक्त्वा विजयी महाबलः
प्रशस्यामानः स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामः प्रियया महायशाः
सुखं सुखार्होऽनुवभूव राघव ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विजयी, महाबली, महायशस्वी और सुख भोगने योग्य श्रीरामचन्द्र जी अपने कर्मों द्वारा लोकपालों से प्रशंसित हो, सीताजी को अपने समीप बिठाकर अत्यन्त हर्षित हुए ।

प्र० क्र० ५ में कर्तव्य परायणता तथा ७ में आदर्श पत्नी व्रत का उल्लेख करें ।

(प्र० क्र० ५ में)

श्रीराम राक्षस खर से कहते हैं—

अवश्यं लभते जन्तुः फलं पापस्य कर्मणः ।
घोरं पर्यागते काले द्रुमाः पुष्पमिवार्तवम् ॥

जिस प्रकार समय पाकर, पेड़ फूलते है, उसी प्रकार समय प्राप्त होने पर जीवों को उनके किए पाप कर्मों का घोर फल अवश्य प्राप्त होता है ।

(प्र० क्र० ५ में)

मरने से पूर्व राजा दशरथ अपने जीवन की घटनाओं पर विचार करते हुए कौशल्या से कहते हैं—

तदिदं मेनुसम्प्राप्तं देवि दुःखं स्वयं कृतम् ।
सम्मोहादि बलयेन यथा स्याद्भक्षितं विषम् ॥

सो हे देवी ! मैं इस दुःख का कारण स्वयं ही हूँ । जिस प्रकार बालक अज्ञानवश विष खा ले, वैसे ही मैंने भी अजान में पाप कर अपना सर्वनाश अपने आप किया है ।

(प्र० क्र० ६, ७ एवं १२ में)

वन में राक्षसों के अत्याचारों से दुःखी मुनियों को अभय दान देते हुए राम ने राक्षस वध की प्रतिज्ञा की । उन्हें इस प्रतिज्ञा से विरत करने हेतु सीता ने अकारण संघर्ष में उलझने से रोका तो राम ने कहा—

किन्तु वक्ष्याम्यहं देवि त्वयैवोक्तमिदं वचः ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्त शब्दो भवेदिति ॥

किन्तु अभी तुम कह चुकी हो कि, क्षत्रिय लोग धनुष धारण इसलिए करते हैं कि जिससे किसी दुखिया का आर्तव शब्द न सुन पड़े । अर्थात् कोई बली किसी निर्बल को न सताने पावे ।

प्र० क्र० ६ में दुष्टप्रवृत्ति निरोध ईश्वरीय कार्य, ७ में आदर्श पति (पत्नी की हर बात न मानना) तथा १२ में क्षत्रिय की परिभाषा की संगति बिठा लें ।

(प्र० क्र० ६ एवं ४ में)

भगवान राम का सारा जीवन अनीति के विरुद्ध संघर्ष और उसे समाप्त करने में ही बीता । रावण वध के पूर्व उन्होंने उससे कहा—

निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ।
देवदानवयक्षाणाँ गन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥

तेरे मारे जाने से तीनों लोकों के देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षस निर्भय हो जावेंगे ।

प्र० क्र० ६ में संघर्ष का उद्देश्य तथा ४ में ईश्वरीय कार्य का विवरण उभारें ।

(प्र० क्र० ६ में)

श्रवण शूद्रा माँ एवं वैश्य पिता से उत्पन्न हुआ था । किन्तु वह नियमित संध्योपासना एवं यज्ञ करता था । उसकी मृत्यु के बाद विलाप करते हुए श्रवण के पिता ने कहा—

को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्य त्युपासीनः पुत्रशोकभयार्दितम् ॥

हे बेटा ! अब प्रातःकाल स्नान कर, सन्ध्योपासन एवं होम करके मेरे निकट आकर कौन मेरी सेवा करेगा । मैं शोक और भय से कातर हूँ ।

ईश्वर भक्ति में सबका समान अधिकार, आदर्श समाज की रूपरेखा ।

(प्र० क्र० ६ में)

पिछड़ी हुई बानर जाति की स्त्रियाँ भी वेद मन्त्रों का उच्चारण करती थीं । बालि जब सुग्रीव से युद्ध करने चला उस समय उसकी स्त्री तारा के सम्बन्ध में आलेख है—

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रवद्विजयैषिणी ।
अन्तः पुरं सहस्त्रीभि प्रविष्टा शोकमोहिता ॥

फिर बालि के विजय के लिये मन्त्रयुक्त मंगलाचार कर, शोकाकुल हो, अन्य स्त्रियों सहित वह रनवास में चली गई ।

नर नारी एकसमान का भाव तारा द्वारा वेद मन्त्र पाठ से निकलता है ।

(प्र० क्र० ६ में)

स्त्री और पुरुष में एक ही आत्मा की अभिव्यक्ति है । नारियों को उपासना सन्ध्या और यज्ञाधिकार से वंचित करना अन्याय है । सीताजी नियमित संध्या करती थीं । लंका में जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हनुमान सीता को खोजते-खोजते थक गए तब नदी के किनारी बैठकर सोचने लगे—

सन्ध्याकालमनाः यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमा शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥

प्रात और सन्ध्याकाल में स्नान, जप आदि करने वाली सुन्दर वर्ण वाली जानकी, इस नदी के स्वच्छ जल में स्नानादि तथा सन्ध्या करने अवश्य आवेगी ।

सीता द्वारा सन्ध्योपासना (आदर्श समाज का तथ्य प्रकट होता है ।

(प्र० क्र० ७ में)

अवसर मिलने पर नारियों ने भी शौर्य प्रदर्शन किया है दशरथ जी से वर माँगने के लिए कैकेयी को प्रोत्साहित करते हुए मंथरा उसे उसके विगत जीवन की घटना की याद दिलाती है—

अपवाह्य त्वया देसि संग्रामान्नष्टचेतनः ।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रै पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥

हे देवि ! देवासुर संग्राम में जब तुम्हारे पति शस्त्रों से घायल हो मूर्च्छित हो गये थे तब अपने पौरुष से तुमने उनकी रक्षा की थी ।

हर क्षेत्र में पत्नी द्वारा पति की पूरक होने का तथ्य उभरता है ।

दाम्पत्य की महिमा

(प्र० क्र० ७ में)

यद्यपि राम ने स्वयंवर की शर्त पूरी की थी किन्तु वैवाहिक परम्परा के अनुसार राम और लक्ष्मण के लिए सीता और उर्मिला की याचना करते हुए वशिष्ठजी जनक से कहते हैं—

रामलक्ष्मणयोर्थे त्वत्सुते वरये नृप ।
सदृशाभ्यां नरश्रेष्ठं सदृशे दातुमर्हसि ॥

हे राजा हम राम और लक्ष्मण के लिए आपकी कन्याओं का वरण करना चाहते हैं । आपकी दोनों कन्याएँ राम और लक्ष्मण के समान हैं, अतः आप इनका विवाह कर दीजिए ।

वर पक्ष द्वारा कन्या के लिए आग्रह से नारी के सम्माननीय स्तर का भाव उभरता है ।

(प्र० क्र० ७ में)

पति को चाहिए कि स्नेह और शील के निर्वाह के साथ यह परिवर्तन पत्नी में लाए । राम ने यही किया था—

गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभ्यवर्धत ।
तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ॥

परस्पर गुण, शील और प्रेम के प्रभाव से सीता का हृदय परिवर्तित होकर पति के प्रति दूना प्रेम हो गया है ।

(प्र० क्र० ७ में)

पति के सहायक रूप में अपने आप को प्रस्तुत करना उसका कर्तव्य है । राम की वन यात्रा से पूर्व सीता ने अपने यही भाव व्यक्त करते हुए श्री राम से कहा—

यदि त्वं प्रस्थितो दुर्गं वनमद्यैव राघव।
अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्गन्ती कुशकण्टकान्॥

यदि तुम आज ही वन को जा रहे तो मैं तुम्हारे आगे-आगे कुश और कांटों को हटा, रास्ता सफ करती पैदल ही चलूँगी ।

(प्र० क्र० ७ में)

साथी के गलत कार्यों का विरोध एवं सही कार्यों का समर्थन करना चाहिए । राम को वनवास दिये जाने पर कौशल्या ने दशरथ से कहा—

द्विजातिचरितो धर्मः शास्त्रदृष्टः सनातनः ।
यदि त धर्मनिरते त्वया पुत्रे विवासिते ॥

यदि आप द्विजों द्वारा आचरित, शास्त्रोक्त सनातन धर्म मानते होते, तो ऐसे धर्मनिरत पुत्र को देशनिकाला कभी न देते ।

(प्र० क्र० ७ में)

सीता राम की पत्नीव्रत निष्ठा से परिचित थीं, तभी उनके मन में राम के प्रति इतना प्रेम था । अशोक वाटिका में उन्होंने हनुमान से कहा—

न चास्य माता न पिता च नान्यः
स्नेहाद्विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।
तावत्त्वह दूत जिजीविषेयं
यावत्प्रवृत्तिं श्रृणुयां प्रियस्य ॥

हे दूत ! क्या माता ! क्या पिता ! क्या कोई अन्य पुरुष— कोई भी क्यों न हो, मुझसे अधिक या बराबर उनका अनुरोग किसी में नहीं है । सो जब तक मैं परमप्रिय श्रीरामचन्द्रजी का बृतान्त सुनती हूँ, तभी तक जीवित भी हूँ ।

(प्र० क्र० ७ एवं ५ में)

रावण का वही अंत हुआ जो दुराचारियों का होता है । रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी कहती है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ।
तदैव यत्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम ॥

हे प्रभो ! प्रत्युत निश्चय ही तुम उस पतिव्रता के तप रूप अग्नि से भस्म हो गये । तुमने जिस समय जानकी को हरा था उसी समय तुम भस्म हो जाते—

प्र० क्र० ७ में पत्नीव्रत का उल्लंघन घातक होने क्र० ५ से दुराचार के दण्ड की संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० ७ में)

राम वन गमन के समय सीता को रोकते हुये वशिष्ठ जी ने कैकेयी से कहा—

आत्मा हि दाराः सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥

सभी गृहस्थों की स्त्रियाँ उनकी आत्मा ही हो जाती हैं, अतः सीता भी राम की आत्मा है । वह यहाँ रहकर राज सिंहासन पर बैठ पृथ्वी का पालन करेंगी ।

(प्र० क्र० ७ में)

अशोक वाटिका में सीता को देख हनुमान राम सीता की अनन्यता के विषय में सोचने के लिए बाध्य हो गये । वे सोचने लगे —

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं स च धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥

इस देवी का मन श्रीरामचन्द्रजी में है और श्रीरामचन्द्रजी का मन इसमें है । इसीलिए ये सीता देवी और वे धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी, अब तक जी रहे हैं । नहीं तो (ये दोनों) एक क्षण भी नहीं जी सकते थे ।

(प्र० क्र० ७ में)

सीताजी ने अशोक वाटिका में हनुमान से आग्रह किया—

तद्यथा तस्य विक्रान्तमनुरूपं महात्मनः ।
भवेदाहवशूरस्य तथा त्वमुपपादयः ॥

अतएव हे वीर ! जिससे महात्मा रणविजयी श्रीरामचन्द्रजी के पराक्रम की धाक बैठे, तुम वैसा ही प्रयत्न करना ।

पत्नी द्वारा पति के यश की कामना प्रकट होती है ।

(प्र० क्र० ८, ७ एवं ९ में)

राम ने स्त्री धर्म का हवाला देकर सीता को वन जाने से रोकना चाहा तो आत्मविश्वास पूर्वक सीता ने राम से कहा—

अनुशिष्टास्मि माता च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्मि सम्प्रतिवक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ॥

स्त्री को अपने पति के प्रति किस प्रकार से व्यवहार करना चाहिये— यह बात मुझे मेरे माता-पिता ने अनेक प्रकार से समझा दी है । अतः इस विषय में मुझे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है ।

प्र० क्र० ७ में सीता को नारी धर्म का ज्ञान, ८ में माता-पिता द्वारा कन्या को सीख तथा ९ में पुत्र-कन्या की समानता (आदर्श कन्या का निर्माण) भाव उभरता है ।

(प्र० क्र० ९ एवं १० में)

घायल अवस्था में पड़ा हुआ बालि श्रीराम से कहता है—

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुवश्यः
कुतः सुपुत्रः सदृशोऽङ्गदेन ।

हे राम ! पुत्र की प्राप्ति सहज है और अपने सब सुजन भी सहज में अपने वश में किये जा सकते हैं, किन्तु अंगद जैसा गुणवान पुत्र कहाँ मिल सकता है ?

प्र० क्र० ९ में बालि द्वारा एक ही पुत्र उत्पन्न करना तथा १० में सन्तति निर्माण में पिता (मुखिया) के कर्तव्य की संगति बिठा लें ।

(प्र क्र० ९ एवं १० में)

चित्रकूट में राम-भरत का वार्तालाप सुनकर ऋषियों ने कहा—

स धन्यो यस्य पुत्रौ द्वौ धर्मतौ धर्मविक्रमौ ।
श्रुत्वा वयं हि संभाषामुभयोः स्पृहयामहे ॥

ये दोनों धर्मज्ञ और धर्मवीर राजकुमार जिन महाराज दशरथ के पुत्र हैं, वे धन्य है । इन दोनों की बातचीत सुन, हम लोगों की यह इच्छा हो रही है, कि इन दोनों का वार्तालाप हम बार-बार सुना करें ।

प्र० क्र० ९ में दशरथ द्वारा आदर्श पुत्रों का निर्माण तथा १० में नीति निष्ठ परिवार की प्रतिष्ठा का तथ्य उभारें ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(प्र० क्र० १० में)

भरत जी माँ कौशल्या को अपनी निर्दोषिता का प्रमाण देते हुए शपथ पूर्वक कहते हैं–

बहुपुत्रो दरिद्रश्च ज्वररोगसमन्वितः ।
स भूयात्सततं क्लेशी यस्यार्योनुमते गतः ॥

जिसकी सलाह से श्रीरामचन्द्रजी वन में गये हों, वह बहुसन्तति बाला होकर दरिद्र हो, ज्वर रोग से पीड़ित हो और सदा क्लेश पावे ।

अधिक सन्तान होना हेय सिद्ध होता है ।

(प्र० क्र० ९ एवं १० में)

राम लक्ष्मण विश्वामित्र जी के यज्ञ की रक्षा करते हुए–

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपोवनमरक्षताम् ॥

ऋषियों के वचन सुन उन दोनों यशस्वी राजपुत्रों ने लगातार छः दिन तक जागकर तपोवन की रक्षा की ।

प्र० क्र० ९ में दशरथ द्वारा योग्य गुरु के संरक्षण में पुत्रों को सौंपना तथा १० में आदर्श शिष्य के रूप में राम-लक्ष्मण की तत्परता उभारें ।

(प्र० क्र० ९ एवं १० में)

विश्वामित्र के आश्रम की ओर जाते हुए राम-लक्ष्मण का रात्रिकालीन विश्राम–

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां
तृणशयनेऽनुचिते सहोषिताभ्याम् ।
कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यां,
सुखमिव सा विबभौ विभावरी च ॥

राजकुमार होने के कारण घास के बिछौने पर भूमि पर सोने का अभ्यास न होने पर भी दशरथ पुत्र दोनों वीरों ने विश्वामित्र जी के मधुर वचन सुनते हुये सुखपूर्वक वह रात बिताई ।

प्र० क्र० ९ में संस्कारवान पुत्र तथा १० में मधुर वातावरण में शिक्षा की संगति बिठा लें ।

(प्र० क्र० ९ में)

पुत्र का निर्माण माता-पिता के शरीर से ही नहीं हो जाता बल्कि भावनाओं से भी होता है । अस्तु बच्चे पैदा करने से पूर्व माता-पिता को अपना शरीर तो स्वस्थ बना ही लेना चाहिए, विचारधाराओं एवं भावनाओं का भी शोधन कर लेना चाहिए ।

अंगप्रत्यंगज पुत्रो हृदयाच्चापि जायते ।
तस्तात्प्रियतमो मातु प्रियत्वान्त तु बान्धवः ॥

यों तो देखा जाय तो बन्धु-बान्धव सभी प्रिय होते हैं, किन्तु सब से अधिक पुत्र ही माता को प्रिय होता है क्योंकि वह माता के अंग-प्रत्यंग से और हृदय कमल से भी जन्म ग्रहण करता है–

(प्र० क्र० १० में)

वन गमन से पूर्व लक्ष्मण ने कौशल्या से कहा–

अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता चबन्धुश्चः पिता च मम राघवः ॥

मुझे तो महाराज में पितृकर्तव्य का पालन कुछ भी नहीं देख पड़ता । अतः अब तो मेरे भाई, स्वामी, बन्धु और पिता (जो कुछ हैं– सो) श्रीरामचन्द्र ही हैं ।

लक्ष्मण द्वारा पिता के गलत कार्य के विरोध का प्रदर्शन है ।

ननिहाल से लौटे हुए भरत को जब कैकेयी ने अपनी कहानी सुनाई तब भरत ने कैकेयी से कहा–

न तु कामं करिष्य मि तवाहं पापनिश्चये ।
त्वया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥

हे पापिन ! याद रख, चाहे जो कुछ हो मैं तेरी साध कभी पूरी न करूँगा । क्यों कि तूने मेरे प्राण लेने वाले प्रपंच का सूत्रपात किया है ।

भरत द्वारा माँ की गलत इच्छा पूरी न करना स्पष्ट होता है ।

(प्र० क्र० १० में)

पिता के बाद छोटे भाई-बहिनों को सम्हालना बड़े भाई की जिम्मेदारी होती है । महाराजा जनक ने राम विवाह के पूर्व वशिष्ठ से बताया ।

वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम् ।
भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात् पश्यन् कुशध्वजम् ॥

जब मेरे बूढ़े पिता धर्म पूर्वक राज्य संचालन कर स्वर्ग-वासी हुये तब मैंने अपने देवता स्वरूप छोटे भाई कुशध्वज का स्नेहपूर्वक पालन किया ।

पिता की जिम्मेदारी सम्हालना समर्थ पुत्र का कर्तव्य है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(प्र० क्र० ११ में)

सुग्रीव ने सीता के आभूषण राम को दिये । राम ने लक्ष्मण से उन्हें पहचानने को कहा । लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

नाहंजानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ॥

मैं सीता के बाजूबंद और कुण्डलों को नहीं पहचानता, किन्तु हाँ मैं उनके (पैर के) बिछुओं को अवश्य पहचानता हूँ, क्योंकि चरणवंदना के समय इनको मैं नित्य ही देखा करता था ।

(प्र० क्र० ११ में)

लंका युद्ध में जब मेघनाद ने माया की सीता की हत्या करने, तब व्याकुलतावश राम अचेत से हो गये तो लक्ष्मण ने उन्हें समझाते हुये कहा—

उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो दृढ़व्रत ।
किमात्मानं महात्मानं मात्मानं नावबुध्यसे ॥

हे नरशार्दूल ! हे महाबाहो ! हे दृढ़व्रत ! आप उठें । महात्मन आप अपने सर्व प्रवर्तक रूप को क्यों भूले हुए हैं ।

(प्र० क्र० ११ में)

लक्ष्मण को राम छोटा भाई ही नहीं पुत्र की तरह स्नेह करते थे, किन्तु लक्ष्मण उनकी देख-रेख जिस तत्परता से करते थे उसे देखकर राम उन्हें पितृ तुल्य अनुभव करते थे । उन्होंने यह भाव व्यक्त करते हुये कहा—

भावज्ञेन कृतज्ञेन धर्मज्ञेन च लक्ष्मण ।
त्वया पुत्रेण धर्मात्मा न संवृत्तः पिता मम ॥

हे लक्ष्मण ! तुम जैसे मन की बात जान लेने वाले, उपकार को मानने वाले और धर्मज्ञ पुत्र के विद्यमान होते हुए मुझे यह नहीं जान पड़ता कि मेरे पिता मर गये ।

(प्र० क्र० १२ में)

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता ऋषि भी स्वीकार करते थे । श्रीराम को यह तथ्य समझाते हुये भरत चित्रकूट में कहते हैं—

धर्मेण चतुरो वर्णान्पालयनक्लेशमाप्नहि ।
चतुर्णामाश्रमाणाँ हि गार्हस्थ्य श्रेष्ठमाश्रमम् ॥

धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णों के पालन करने का कष्ट आप स्वीकार कीजिये । क्योंकि हे धर्मज्ञ ! चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही को धर्मज्ञशील लोग सर्वोत्तम बतलाते हैं ।

(प्र० क्र० १२ में)

तत्कालीन आवश्यकता को ध्यान में रखकर राम-लक्ष्मण ने भी १४ वर्ष के लिये वानप्रस्थ धारण किया था ।

ततौ वैखानसं मागमास्थितः सहलक्ष्मणः ।
व्रतमादिष्टवान् रामः सहायं गुहमब्रवीत् ॥

तदनन्तर श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण वानप्रस्थ होकर और ब्रह्मचर्य ग्रहण कर अपने सहायक रूप गुह से बोले ।

इसमें सामयिक (कुछ समय के लिए) वानप्रस्थ ग्रहण का प्रतिपादन होता है ।

(प्र० क्र० १२ में)

पूर्व काल में कार्य विभाजन की दृष्टि से मनुष्यों को चार वर्णों में विभाजित किया गया, उत्तर कांड में कहा गया है—

अपश्यन्तस्तु ते सर्वे विशेषमधिकं ततः ।
स्थापनं चक्रिरे तत्र चातुर्वर्ण्यस्य सम्मतम् ॥

इस काल के लोगों ने व्यक्तियों में कोई विशेष तारतम्य न देखकर सर्वसम्मति से मनुष्य जाति को चार वर्णों में बाँटा ।

ब्राह्मणत्व जन्म जाति पर नहीं कर्म पर आधारित है । ऋषि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे किन्तु अपनी साधना द्वारा उन्होंने ब्रह्मऋषि पद पाया । राजा दशरथ उनका सम्मान करते हुये कहते हैं—

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ।
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ॥

हे ऋषि ! आप पहले राजर्षि कहलाते थे कि किन्तु तपस्या के प्रकाश से प्रकाशित हो आपने ब्रह्मर्षि पद पाया, आप मेरे पूज्य हैं ।

वर्ण और जाति कर्म पर आधारित होना सिद्ध होता है ।

(प्र० क्र० १२ में)

पंचवटी में जटायू ने श्रीराम को जीवों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बतलाते हुए कहा—

मनुर्मनुष्यांजनयद्राम पुत्रोन्यशस्विनः ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्यांशूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥

हे राम ! कश्यप की मनु नाम की स्त्री से यशस्वी मनुष्य अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पैदा हुए ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे एक ही माता-पिता की सन्तान सब मनुष्य भाई-भाई होना सिद्ध होता है ।

(प्र० क्र० १२, ४ एवं ५ में)

हनुमान जी ने राक्षसों के भवनों में जप करने वाले राक्षसों द्वारा उच्चारित मन्त्रों को सुना और स्वाध्यायनिरत राक्षसों को देखा ।

षडंगवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषांश्च विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥

रात बीतने पर षडंग वेदों के ज्ञाता और उत्तमोत्तम यज्ञों के करने वाले ब्राह्मण राक्षसों के वेद पाठ की ध्वनि, हनुमान जी ने सुनी ।

प्र० क्र० ४ में भावना विहीन कर्मकाण्ड करने वाले राक्षस कहलाये । क्र० ५ में कर्तव्य पालन ही धर्म तथा १२ में जाति वर्ण कर्म पर आधारित होने की संगति बैठती है ।

(प्र० क्र० १२ में)

श्रीराम शबरी के आश्रम में पहुँचे–

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धासिद्धसम्मता ।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता ॥

जब रामचन्द्रजी ने शबरी से ये प्रश्न किये तब सिद्ध पुरुषों को मान्य वह वृद्धा तपस्विनी श्रीराम से कहनी लगी ।

ईश्वर प्राप्ति और श्रेष्ठता में स्त्री पुरुष एवं अवर्ण-सवर्ण आदि मानव मात्र का अधिकार सिद्ध होता है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टान्त परिशिष्ट

इस पुस्तक के प्रवचनों के साथ रामचरित मानस के अनेक कथा प्रसंग स्वभावतः ही जुड़े हुए हैं। फिर भी समय की सीमा तथा विषय स्पष्ट करने की आवश्यकता देखते हुए वक्ता अन्य दृष्टान्तों का भी प्रयोग कर सकते हैं। यहाँ हर प्रवचन से सम्बन्धित कुछ नमूने के दृष्टान्त दिये जा रहे हैं। ताकि वक्ता सुविधापूर्वक उनका उपयोग कर सकें। दृष्टान्त क्रमशः प्रवचनों के अनुसार वर्गीकृत करके दिये जा रहे हैं। कई दृष्टान्त अनेक भाषणों में भी प्रयुक्त हो सकते हैं, तथा इसी प्रकार के अन्य दृष्टान्त भी ढूँढे और प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यह कार्य वक्ता अपने विवेक से ही करें।

(प्रवचन क्र० १ के उपयुक्त)

समाज सेवा की योग्यता

धर्म दीक्षा शिविर की समाप्ति हुई और सारे भिक्षु गण अपनी-अपनी रुचि की दिशा में परिव्रज्या के लिये निकल पड़े। भिक्षु देववर्द्धन ने कलिंग जाने की अनुमति माँगी तो गौतम बुद्ध ने कहा कि वहाँ के लोग बड़े अधर्मी व ईर्ष्यालु हैं। वे मिथ्या दोष लगायेंगे, गालियाँ देंगे। देववर्द्धन ने कहा ठीक है, पर मारेंगे तो नहीं। बुद्ध ने बतलाया कि वे आततायी हैं, वे तुम्हें मार भी सकते हैं। तो भिक्षु ने हिम्मत बाँधी और कहा प्रभु धर्म प्रवर्तन के मार्ग में मुझे मार खाने में भी आनन्द होगा। वे जान से थोड़े ही मार डालेंगे। तथागत बोले भन्ते ! जान से मार डालने में भी वे दुष्ट दया नहीं करेंगे। इस पर देववर्द्धन प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार हो गये। तथागत ने उन्हें सेवा के योग्य कहकर आशीर्वाद दिया और विदा किया।

युधिष्ठिर नर्क

सत्यनिष्ठ धर्मराज ने महाभारत युद्ध में अश्वत्थामा की मृत्यु हो जाने की झूठी घोषणा की थी, जिसके फलस्वरूप स्वर्गारोहण के पूर्व उन्हें एक दिन के लिए नर्क में जाना पड़ा।

वहाँ जाकर जब उन्होंने असंख्य जीवों को यातना पाते हुए देखा तो वे द्रवित हो गये और उनके उद्धार का उपाय यमराज से पूछा। उन्होंने कहा यदि आप अपना सारा पुण्य उन्हें दान कर दें, तो वे सभी नर्क से छूट सकते हैं।

युधिष्ठिर ने उसी समय अपना सारा पुण्य उन यातना पीड़ित जीवों को दान कर दिया। सभी जीव छोड़ दिये गये। उनकी इस उदारता और परदुःखकातरता से उन्होंने नर्क में भी स्वर्ग बना दिया। इन्द्र ने स्वयं उनका अभिवादन किया और उन्हें स्वर्ग में ले गये।

पानी में ही तैरना

कौत्स को मार्ग में एक घायल स्त्री पड़ी हुई दिखी। थोड़ा ठिठके और कुछ सोचकर आगे बढ़ गये। पीछे उनके गुरु ऋषि कण्व भी आ रहे थे। उन्होंने उस स्त्री को देखा, तो उनकी करुणा उमड़ पड़ी और आश्रम में लाकर उसका उपचार करने लगे। उन्होंने कौत्स को बुलाकर घायल स्त्री की उपेक्षा करने का कारण पूछा। उन्होंने बताया कि स्त्री का सौन्दर्य कहीं विचलित न कर दे, इसलिए वे उसकी उपेक्षा कर आगे बढ़ गये थे।

गुरुजी ने समझाया कि जिस प्रकार पानी से दूर रहकर तैरना नहीं सीखा जा सकता, उसी प्रकार समाज के बाहर रहकर संयम ब्रह्मचर्य का अभ्यास नहीं हो सकता।

(प्रवचन क्र० २ के उपयुक्त)

लाखों का शरीर

ऋषि टालस्टाय के पास एक युवक आकर बेकारी की शिकायत करके भगवान को उलाहना देने लगा। वे उसके हाथ पाँव, नाक आंख आदि अंगों को हजारों रुपया देकर खरीदने का प्रस्ताव करने लगे। युवक ने इन्कार किया और उन पर झल्ला भी उठा।

वे बोले— यदि तुम्हारे कुछ अंगों की कीमत हजारों रुपया है, तो यह सारा शरीर कितना कीमती होगा। ईश्वर ने हमें कितना बड़ा अनुदान दिया ! हम उसका उपयोग करें, पुरुषार्थ करें, तो शिकायत का कोई कारण नहीं रह सकता।

फूल से खिलो

सांसारिक परेशानियों से त्रस्त होकर एक शिष्य अपने गुरु के पास जाकर कहने लगा, जो भी मेरे जीवन में मुझसे मिला, उसने मेरे लिए काँटे ही बिखेरे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गुरु मौन ही रहे और गुलाब के पौधे की ओर इशारा किया । अगणित नुकीले काँटों के बीच भी गुलाब हवा के झोंकों में झूम रहा था और अपनी सुगन्ध व सौन्दर्य से सबको तृप्त कर रहा था । संकेत को समझकर शिष्य प्रसन्न मुद्रा में घर लौट आया ।

गंगाजी बनाम एक लोटा जल

जीव ईश्वर का ही अंश है, तत्वदर्शी की यह बात जिज्ञासु की समझ में नहीं आई । तत्वदर्शी ने एक लोटा जल भर कर मँगवाया और जिज्ञासु से उसमें नाव चलाने को कहा— जिज्ञासु ने असमर्थता बतलायी तो तत्वदर्शी ने कहा-यदि इसी जल को पुनः गंगा में मिला दें तो उस पर नाव चलेगी । इसी प्रकार जीव सीमित है और ईश्वर असीम । यदि जीव अपनी संकीर्णता के बन्धन काटकर महान बन जाय तो वह ईश्वर जैसा ही सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान बन सकता है ।

नश्वर भोग नहीं चाहिये

यमाचार्य ने नचिकेता को समझाया ईश्वर को प्राप्त करना अति दुस्तर और कठिन कार्य है । धन, यौवन, राज सिंहासन, दीर्घ जीवन, जो चाहो माँग लो, पर आत्म तत्त्व को जानने का हठ मत करो ।

नचिकेता ने सरलता से उत्तर दिया— देव ये लौकिक पदार्थ क्षणिक सामर्थ्य वाले हैं, ये अनन्त आनन्द एवं आत्म-कल्याण के मार्ग में बाधा स्वरूप ही हैं । मुझे तो आत्म-शोधन का ही उचित उपदेश दें ।

लक्ष्य दृढ़ता की परीक्षा हो गई और यमाचार्य ने नचिकेता को ब्रह्म विद्या सिखलाई ।

दूसरों की सहायता काफी नहीं

किसी जंगल में एक साधु रहता था । एक दिन एक चूहा बिल्ली के डर से उधर दौड़ा आया । साधु को दया आ गई और उसने उसे बिल्ली बना दिया । पर बिल्ली कुत्ते से डरती रहती थी । उसने उसे कुत्ता बना दिया । पर वह तेंदुए से डरा दुबका बैठा रहता । साधु ने उसे तेंदुआ बना दिया । एक दिन शिकारी उधर आये, तो तेंदुआ भी कुटिया में आकर छिप गया ।

साधु ने विचार किया कि जब तक अपनी वृत्ति नहीं बदलती, बाहरी सहायता किसी काम न आएगी । अतएव उसको पुनः चूहा ही बना दिया ।

कुएँ की जगत और घड़ा

कुआ नया-नया ही बना था । एक पनिहारिन ने पानी भरने के लिए कुएँ की जगत पर मटका रखा तो वह लुढ़कने लगा । कुएँ की जगत पर लगा पत्थर हँसा और घड़े को बेपेंदे का कहकर उसकी खिल्ली उड़ाने लगा । घड़ा चुप रहा ।

कुछ दिन बाद घड़ा उस स्थान पर रखते-रखते वहां पर एक गोल गड्ढा सा बन गया । अब घड़ा स्थिर रखा जाने लगा । तब घड़े ने पत्थर से कहा— देखा भाई पत्थर ! मेरे निरन्तर प्रयास से मैंने अपने कोमल अंगों की ही रगड़ से तुम्हारे कठोर शरीर में भी अपने लिये स्थान बना ही लिया ।

धरती और देवता

एक बार स्वर्ग के देवता धरती पर विचरण करने आये किन्तु धरती पर उनका किसी ने भी स्वागत नहीं किया । अनाज से लहलहाती धरती से उन्होंने इसका कारण पूछा ।

धरती ने किसान की हथेली दिखाते हुए कहा, कि इस लोक में एक श्रम का देवता रहता है । मेरे पुत्रों ने उसी की आराधना करने की ठानी है । शस्य श्यामल खेतों में उस श्रम देवता का आशीर्वाद ही लहलहा रहा है ।

स्वर्ग के देवता प्रसन्न होकर वापस चले गये ।

वरध से वरद

एक बालक अपनी मन्द बुद्धि के कारण साथियों में हँसी दिल्लगी का साधन बन गया । उसको वे वरधराज अर्थात् बैलों का राजा कहकर बुलाया करते । गुरुजी ने भी एक दिन उसे घर लौट जाने की सलाह दी । किन्तु कुए के पत्थरों में पड़े रस्सी के निशानों को देखकर उसने सोचा "यदि जड़ पत्थर पर निरंतर रगड़ से निशान पड़ सकते हैं तो कोई कारण नहीं कि मैं विद्या नहीं पढ़ सकूं ।"

वह वापस गुरुजी के पास गया और तीव्र लगन तन्मय से अध्ययन करके उसने अपनी विद्वता से लघु सिद्धांत कौमुदी की रचना कर डाली ।

कुछ तो कर, यों मत मर

रायगढ़ के राजा धीरज के शत्रुओं ने एक दिन उन्हें महल से चुराकर एक गुफा में जाकर बन्द कर दिया । राजा का इस मुसीबत में अपनी माता का मन्त्र याद आया— कुछ-कर, कुछ-कर ।

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा उठा और पूरी शक्ति लगाकर हाथ पैरों की रस्सी तोड़ डाली । अंधेरे में जैसे-तैसे रास्ता टटोला । प्राणप्रण से जोर लगाने पर पत्थर लुढ़क गया और वह गुफा से बाहर आने लगा तभी वहाँ बैठे विषधर ने उसे काट लिया । वह घबरा गया, लेकिन माँ के शब्द उसे फिर याद आ गये— कुछ-कर, कुछ-कर और उसने तत्काल अपनी कटार से साप काटे स्थान को चीर डाला, खून बह निकला और पट्टी बाँधकर जैसे-तैसे कठिनाईयों से लड़ता महल वापस आ गया ।

ध्यान का महत्त्व

दो मित्र थे, एक पहलवान और दूसरा श्रमिक । पहलवान केवल दो घन्टे परिश्रम करता और हृष्ट पुष्ट बन गया जबकि श्रमिक दिन भर परिश्रम करता, फिर भी दिनोंदिन दुर्बल होता जा रहा था ।

दुर्बल श्रमिक ने इसका रहस्य पहलवान से पूछा । पहलवान ने बतलाया कि मेरा ध्यान परिश्रम करते समय शक्ति संचय में लगा रहता है जबकि तुम्हारा सारा ध्यान पैसे कमाने में लगा रहता है । इसीलिए तुम दुर्बल हो ।

जिस विषय पर हमारा ध्यान केन्द्रित होगा हमारे संकल्प उसी तरह का परिणाम देना आरम्भ कर देंगे ।

(प्रवचन क्र० ३ के उपयुक्त)

धन नहीं ज्ञान चाहिए

स्वामी विवेकानन्द के पिता का स्वर्गवास हो जाने से सारा परिवार मुसीबत में आ गया । बी० ए० पास विवेकानन्द को नौकरी नहीं मिल रही थी । उनके गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें काली माता से धन माँग लेने की अनुमति दे दी ।

किन्तु विवेकानन्द के मस्तिष्क में विचारों के तूफान उठने लगे— उस महाशक्ति से मैं कौन सी तुच्छ वस्तु माँगने जा रहा हूँ । क्या यह उस विराट और मानवीय क्षमता का अपमान नहीं होगा ? वे माँ काली से प्रार्थना करने लगे— माँ मैं कुछ नहीं चाहता । मुझे केवल ज्ञान दे, भक्ति दे, विवेक दे । उन्हें तीन बार भेजा गया और तीनों बार उन्होंने यही माँगा ।

जागे सो पावे

एक सन्त अपने दस शिष्यों सहित एक वन में रहते थे । एक रात्रि को उन्होंने अपने दसों शिष्यों से विशेष साधना कराई। उन्हें पंक्ति बद्ध बैठाकर ध्यान करने हेतु कहा ।

रात्रि के तीसरे पहर गुरु ने राम नामक शिष्य को धीरे से बुलाया और उसे दुर्लभ सिद्धि प्रदान की । थोड़ी देर बाद श्याम को बुलाया पर वह सो रहा था । अतएव राम आया और सिद्धि लेकर चला गया ।

इसी प्रकार एक-एक कर सभी शिष्यों को गुरु ने पुकारा पर वे सभी सो रहे थे । सोते तो जगाने का निषेध था । दसों बार राम आया और एक-एक करके दसों सिद्धियाँ ले गया । सोने वाले शिष्य दूसरे दिन अपनी भूल पर पछताने लगे ।

मैत्रेयी द्वारा महान जीवनोद्देश्य

याज्ञवल्क्य संन्यास लेने की तैयारी करने लगे । घर का सामान, धन दोनों पत्नियों में बराबर बांटने लगे । जब वे मैत्रेयी को उसका हिस्सा देने लगे तो उसने कहा— भगवान जिस महान ध्येय के लिये आप इन भौतिक पदार्थों का त्याग कर रहे हैं, वे मेरे भी किसी प्रयोजन के नहीं हो सकते । मैं भी आपके साथ रहकर शेष जीवन आत्म साधना और जन सेवा के महत्वपूर्ण कार्यों में लगाऊँगी ।

रत्नाकर से वाल्मीकि

आदि कवि वाल्मीकि अपने पूर्व जीवन में रत्नाकर नामक डाकू थे । एक दिन देवर्षि नारद उनकी पकड़ में आ गये । नारद ने उससे पूछा भाई, यह जो पाप तुम कर रहे हो उसका प्रतिफल भोगना पड़ेगा । जिन परिवार वालों के लिए तुम यह सब कर रहे हो, क्या वे भी इसमें भागीदार बनेंगे ?

रत्नाकर ने परिवार वालों से पूछा तो उन्होंने मना कर दिया । अपने पापों का फल स्वयं ही भोगना पड़ेगा, यह जानकर उन्होंने वह पेशा छोड़ दिया और भगवान की भक्ति में लग गये । वही महर्षि वाल्मीकि कहलाये, आगे चलकर जिन्होंने रामायण जैसे ग्रन्थ की रचना की ।

पहिले मन के बोझ हटाओ

एक चोर किसी सन्त के पास रोज जाता और उनसे ईश्वर दर्शन का उपाय पूछा करता था । एक दिन सन्त उसके सिर पर छः पत्थर रखवाकर पहाड़ की ऊँची चोटी पर उसे ईश्वर दर्शन करवाने ले चले ।

पत्थर बड़े थे ! कुछ दूर चलने पर चोर हाँफने लगा, तो सन्त जी ने एक पत्थर उतार दिया । आगे चलने पर चोर फिर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लड़खड़ाने लगा तो संत जी ने एक और पत्थर उतार दिया । इस प्रकार/पहाड़ की चोटी पर चढ़ते-चढ़ते छहों पत्थर उतार दिये । वहाँ पहुँचकर उन्होंने चोर को उपदेश दिया कि इसी प्रकार हमारे मन पर भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर के छः मनोविकारों का बोझा लदा है और हम ईश्वर दर्शन करने में सफल नहीं होते । पहले मन पर से इन्हें हटाकर हल्के हो जाओ तो ईश्वर दर्शन अवश्य ही होगें ।

आत्मविश्वास

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका प्रवास पर गये । सेनफ्राँसिसको बंदरगाह पर उतरते समय एक अमेरिकन ने उनसे उनके सामान के बारे में पूछा तो उन्होंने बड़ी मस्ती से उत्तर दिया मेरा सामान तो जो मेरे शरीर पर है, उतना ही है । और कहाँ ठहरेंगे आप? यह सुनकर उन्होंने सहयात्री के कन्धे पर हाथ रखकर कहा— सारे अमेरिका में मेरा एक ही मित्र है और वह तुम हो ।

स्वामीजी के आत्मभाव से प्रभावित होकर वह सहयात्री उनका मित्र बन गया । अमेरिका प्रवास में वे उसी के घर रहे ।

घड़ियाल और कौत्स

महापंडित कौत्स कालिन्दी में स्नान कर भगवती ऊषा का वन्दन कर रहे थे । एक घड़ियाल आकर उन्हें ताकने लगा, किन्तु वे काफी ऊँचे शिला तट पर बैठे थे । निदान उसने यमुना की तलहटी से कुछ रत्न लाकर उनकी ओर फेंके । कौत्स ने मणि मुक्ताओं को देखा, तो उन्हें अपने उत्तरीय में बांधने लगे ।

घड़ियाल ने कहा कि हे आचार्य, त्रिवेणी संगम पर तो इनसे भी मूल्यवान मुक्ताहार लाकर दे सकता हूँ । पर मैं वहाँ का रास्ता नहीं जानता । आप मेरे साथ चलकर रास्ता बताते चलिये । कौत्स लालच में आकर घड़ियाल की पीठ पर सवार हो गये । थोड़ी दूर जाकर घड़ियाल एक वीभत्स हँसी हँसा और कौत्स को खा गया ।

मदारी और बन्दर

एक मदारी की पकड़ में बंदर नहीं आ रहा था । उसे एक तरकीब सूझी । उसने एक सँकरे मुँह का घड़ा लिया और बंदर को दिखा-दिखा उसमें रोटियां भर दीं और घड़ा छोड़ दिया । जब मदारी दूर जाकर बैठ गया तो बंदर आया और घड़े में हाथ डालकर रोटियां निकालने लगा । किन्तु उसके हाथ घड़े के सँकरे मुँह में फँस गये । लाख कोशिश करने पर भी वह अपने हाथ घड़े से बाहर नहीं निकाल सका और मदारी ने उसे पकड़ लिया ।

सुन्द-उपसुन्द

सुन्द और उपसुन्द सगे भाई थे । दोनों का आपस में बड़ा प्रेम था । एकता एवं संगठन के साथ ही अपने शौर्य और पराक्रम के कारण उन्होंने बड़े-बड़े देवताओं को भी जीत लिया था ।

किन्तु जब उन दोनों के सम्मुख तिलोत्तमा नामक सुन्दरी आयी, तो उनकी काम वासना भड़क उठी ! काम वासना के वशीभूत होने पर विवेक नष्ट हो जाता है और आवेश में ऐसे कार्य हो जाते हैं जो साधारण अवस्था हम नहीं करना चाहते ।

दोनों ही उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे । परिणामतः दोनों ही भाई आपस में लड़ मरे और तिलोत्तमा किसी को भी नहीं मिल पाई ।

गाँधारी की दृष्टि

धृतराष्ट्र जन्मांध थे । गाँधारी व्याह कर आई, तो उसने दृष्टि दोष से बचने के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली ।

कालान्तर में जब महाभारत युद्ध हुआ तो धृतराष्ट्र के कहने से गाँधारी ने अपनी आँखों की पट्टी खोली, और दुर्योधन पर दृष्टि डाली, जिससे दुर्योधन का शरीर वज्र के समान शक्तिशाली हो गया । दृष्टि का परिष्कार एवं संयम ऐसा ही चमत्कारी होता है ।

घड़े की भूल

आँगन के खुले आकाश में मिट्टी के दो घड़े रखे थे । किन्तु एक का मुँह ऊपर आकाश की ओर था तथा दूसरे का पृथ्वी की ओर उलटा । वर्षा आई तो ऊपर मुँह वाला घड़ा पानी से भर गया और औंधे मुह वाला खाली रह गया । उसने भरे हुए घड़े को बहुत भला-बुरा कहा और वर्षा व भगवान को भी कोसने लगा ।

उसकी बकवास सुनकर बादलों ने कहा, अभागे, चिढ़ मत और न ही किसी से ईर्ष्या ही कर । अपनी स्थिति देख यदि तूने भी अपना मुँह ऊपर की ओर उठाये रखा होता तो तुझे भी पानी मिल जाता । खाली घड़े ने अपनी भूल स्वीकार कर ली ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्जुन-उर्वशी

अर्जुन इन्द्रलोक में इन्द्र की सहायतार्थ गये हुए थे। वहाँ की अप्सरा उर्वशी उन पर आसक्त हो गई और उनसे प्रणय निवेदन किया। कहा कि उसे उनके ही जैसा एक पुत्र रत्न चाहिए, अतएव वे उससे विवाह कर लें।

उर्वशी का आशय अर्जुन ताड़ गये और बोले भद्रे ! यदि हमारा तुम्हारा विवाह हो भी गया तो क्या निश्चय कि पुत्र ही होगा ? यदि पुत्र हुआ भी तो क्या निश्चय कि वह बड़ा होने पर मुझ जैसा ही शूरवीर निकलेगा। अतः मैं आपकी यह इच्छा अभी ही पूर्ण कर देता हूँ मैं ही आपका पुत्र हूँ। आप मेरी माता हैं, मुझे आशीर्वाद दीजिये।''

शिवाजी-गौहरबानू

छत्रपति शिवाजी के सेनापति अण्णाजी सोनदेव ने कल्याण के किले पर विजय प्राप्त की, तो किलेदार अहमद की सुन्दरी पुत्र वधू को भी बन्दी बनाकर ले आये। मुसलमानों द्वारा हिन्दू ललनाओं पर किये अत्याचारों का यह एक बदला समझकर वे उसे शिवाजी के सम्मुख ले गये। किन्तु शिवाजी ने सेनापति को इस कृत्य के लिए बहुत डाँटा। फिर उस सुन्दरी को देखते हुए कहा कैसा अनुपम सौन्दर्य है। इतनी सुन्दर मेरी माँ होती, तो मैं भी उतना ही सुन्दर होता। उन्होंने उसे ससम्मान अपने पति के पास पहुँचवा दिया और आदेश दिया कि भविष्य में मातृ शक्ति का अपमान कभी कोई न करे।

शरीर के छेद

युद्धभूमि में रावण मरा पड़ा था। उसे देखने लक्ष्मण गये। वापस आकर श्रीराम को बतलाया कि आपने तो उसे एक ही तीर मारा था, पर उसके शरीर में तो अनेक छिद्र बन गये हैं।

उन्होंने लक्ष्मण सहित अपनी वानर सेना को समझाया कि रावण के दुर्गुणों ने उसे छेदा है। उसके पाप कर्मों के कारण ही उसकी ऐसी दुःखद मृत्यु हुई।

कमण्डल के छिद्र

शिष्यगण मनुष्य के अधःपतन और पीड़ित होने का कारण जानने को वर्धमान महावीर के पास गये। वे उनको एक तालाब के किनारे ले गये और एक कमण्डल को पानी में डाल दिया किन्तु वह डूबा नहीं। फिर उसके चारों ओर छेद कर दिये, और पुनः पानी में डाला तो वह तालाब में डूब गया। महावीर स्वामी ने शिष्यों को समझाया कि मनुष्य में दोष दुर्गुणों के कारण वह अपने आप ही डूबता है। यदि मनुष्य चाहे तो अपने दोष दुर्गुणों को त्यागकर सुखशाँति से रह सकता है।

अर्जुन-बाँसुरी संवाद

कृष्ण बाँसुरी को अपने ओठों से लगाये रहते थे। अर्जुन ने बाँसुरी को इसके लिए बहुत सराहा और इस सौभाग्य का कारण पूछा।

बाँसुरी ने कहा कि बांसुरी बनने के पूर्व मैं बांस का टुकड़ा मात्र थी। किन्तु जब मैंने अपने आपको कलाकार के हाथों सौंप दिया, तो उसने मेरे मूल अस्तित्त्व को ही समाप्त कर दिया और मुझे पोला बनाकर गरम लोहे की सलाखों से सारा शरीर छेद दिया। इससे मुझमें सुरीले स्वर निलकने लगे। यही कारण है कि कृष्ण मुझे हमेशा ओठों से लगाये रखते हैं।

अर्जुन को अहं को समाप्त कर सच्चे समर्पण का एक महान सूत्र ज्ञात हो गया।

भगवान के आराध्य

देवर्षि नारद एक बार मृत्यु लोग में आये। उनके हाथ में कुछ पोथी पत्रा भी था। परोपकारी सुश्रुत ने उसके बारे में पूछा, तो उन्होंने बतलाया कि इसमें भगवान के भक्तों के नाम लिखे हैं। किन्तु सुश्रुत का नाम न होने से वह दुःखी तो हुए परन्तु पुनः अपने जन सेवा के कार्यों में लग गये।

कुछ दिनों बाद नारद जी फिर एक बही लेकर उधर से निकले। उनको प्रणाम कर सुश्रुत ने उसके बारे में पूछा तो उन्होंने बतलाया कि जिनकी भक्ति स्वयं भगवान करते हैं, उनके नाम इस बही में लिखे हैं। बही खोलकर सुश्रुत ने देखा तो उनका नाम सबसे ऊपर लिखा हुआ था।

सशर्त सहायता

द्रोपदी को अपमानित करने के लिये दुर्योधन ने भरी सभा में दुशासन को वस्त्रहीन कर देने का आदेश दिया। निस्सहाय द्रोपदी पर अत्याचार के विरुद्ध कोई भी एक शब्द भी नहीं बोल सका। हारकर उसने कृष्ण भगवान को पुकारा। घट-घटवासी दौड़े आये और पूछा— तुमने किसी दान परोपकार में कोई वस्त्र दिया है। द्रोपदी ने बतलाया कि एक बार किसी तपस्यारत साधू की लँगोटी वह जाने पर उसकी लाज बचाने को अपनी धोती उसे फाड़कर दी थी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बस अब कृष्ण भगवान को सहायता करने का अधिकार मिल गया और दुशासन द्रोपदी की साड़ी खींचते-खींचते हार गया, किन्तु उसे वस्त्रहीन नहीं कर सका ।

तरबूज का झगड़ा

विदेश में शिक्षा प्राप्त कर रहे तीन छात्रों को एक बार पारितोषिकमें एक सिक्का मिला और कहा गया कि वे उसे आपस में बाँट लेवें ।

भारतीय, पारसी व अँग्रेज तीनों छात्रों ने कोई वस्तु खरीद लेना चाही । भारतीय ने तरबूज चाहा, पारसी ने हंदुबाना चाहा और अँग्रेज छात्र ने वाटरमेलन माँगा । समस्या सुलझ नहीं सकी तो किसी भाषाविद ने उन तीनों को बतलाया कि इन तीनों शब्दों का आशय एक ही वस्तु से है । भाषा भेद के कारण तुम तीनों व्यर्थ ही झगड़ रहे हो । लोग ईश्वर के भिन्न-भिन्न नामों को लेकर इसी प्रकार अज्ञानवश लड़ते रहते हैं ।

हकीम के पास जा

एक बार हजरत मूसा बीमार पड़े । उन्होंने अल्लाह से नजात के लिए दुआ माँगी तो अल्लाह ने उन्हें अच्छा कर दिया । वे दूसरी बार फिर बीमार पड़े तो उसने फिर अल्लाह से दुआ माँगी । अबकी बार उन्होंने संदेश भेजा कि हकीम व अली सेना से इलाज करा लो । मूसा ने अल्लाह से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि मैंने मरीज को ठीक करने के बजाय, मरीज ठीक करने वाले बनाने का काम अपने जिम्मे लिया है ।

मूसा समझ गये कि हमको छोटे-छोटे कार्यो के लिये ईश्वर की पुकार प्रार्थना कर ईश्वर भक्ति को कलंकित नहीं करना चाहिये ।

नाव को भी ले डूबा

एक यात्री प्रवास कर रहा था । रास्ते में बाढ़ से उफनती नदी पड़ी । पास ही एक नाव बँधी थी । वह उसे खोलकर उसमें बैठने लगा । दूर खड़े एक व्यक्ति ने चिल्लाकर कहा "अरे भाई ! नाव में से डाँड व पतवार तो मल्लाह अपने घर ले गया है । फिर नाव उस पार कैसे ले जाओगे ?"

यात्री माना नहीं और कहने लगा हमने नाव की महिमा खूब सुनी है । असंख्यों व्यक्ति पार हो गये तो क्या हम नहीं होंगे । वह नाव में निष्क्रिय बैठकर पार जाने लगा । नाव थोड़ी दूर बही और भँवर में पड़कर उलट गयी । नाव भी डूब गई और यात्री भी डूबकर मर गया ।

कर पवित्र सेवा किये

दसवें सिख गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुर में विराजमान थे । प्यास लगी तो बोले— कोई अपने पवित्र हाथों से मुझे जल पिला दे ।

वहाँ बैठा एक धनिक व्यक्ति झट उठकर जलपात्र भरकर ले आया । जल देते समय उनके हाथ गुरुजी से छू गये । उन्होंने कहा तुम्हारे हाथ तो बड़े कोमल हैं । उस व्यक्ति ने अपने सुख वैभव का विवरण दिया और बतलाया कि उसके यहाँ अनेक नौकर हैं ।

गुरुजी ने उसके लाये जलपात्र को नीचे रखते हुए कहा कि जिन हाथों ने कभी कोई सेवा परिश्रम नहीं किया वे पवित्र नहीं हो सकते । मैं यह जल नहीं पी सकता ।

कुत्ते में भगवान

पंढरपुर के कार्तिक मेले में भक्त नामदेव भी पधारे । वे भोजन बना रहे थे, कि एक कुत्ता उनकी रोटियाँ मुँह में दबाकर भागा । सूखी रोटियाँ ले जाते देखकर नामदेव घी की कटोरी लेकर उसके पीछे दौड़े— भगवन ! रूखी रोटी मत खाओ, घी तो चुपड़ लीजिये । कुत्ता एक जगह रुका और नामदेव ने जाकर रोटियों पर घी चुपड़ दिया । वहाँ कुत्ते के रूप में स्वयं पंढरीनाथ ही विराजमान थे ।

पुरस्कार इन्हें दे दें

कौशल नरेश विद्युतप्रभ युद्ध में काशी नरेश से हार गये । वे वन में छिप गये । उन्हें पकड़ने के लिये काशी नरेश ने एक लाख स्वर्ण मुद्रा की घोषणा की ।

उन्हीं दिनों अकाल पड़ा तो मगध वासियों को भूख से त्राण दिलवाने हेतु विद्युत्प्रभ ने स्वयं को काशी नरेश के समक्ष पकड़वा दिया और एक लाख स्वर्ण मुद्राओं को अकाल सहायता हेतु देने को कहा— युद्ध विजेता काशीराज उनकी इस उदारता के आगे पराजित हो गये । ऐसा उदार हृदय तो राजा होना चाहिए । यह विचार कर उन्होंने उनका राज्य लौटा दिया ।

दधीचि का अस्थि दान

शक्तिशाली वृत्रासुर ने इन्द्र को हराकर देवलोक पर अपना अधिकार कर लिया । उसके त्रास से सभी देवता भयभीत थे । अतः ब्रह्मा जी ने बताया कि इस समय तपस्वी श्रेष्ठ दधीचि तपस्या रत हैं, उनकी अस्थियों से बने बज्र से ही वृत्रासुर मारा जा सकता है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देवताओं ने जाकर उनसे प्रार्थना की । वे इस परोपकार के लिए सहर्ष तैयार हो गये । उनकी अस्थियों से बज्र बना और असुरों का नाश किया गया । शरीर की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ।

गिलहरी का योगदान

भगवान रीछ वानरों की सहायता से समुद्र पर पुल बनवा रहे थे । उनकी दृष्टि एक गिलहरी पर पड़ी । वह रेत में लोटती और अपने शरीर में लगी रेत समुद्र में डाल आती ।

भगवन राम ने पूछा कि तेरे इस काम से समुद्र कैसे पटेगा । गिलहरी ने उत्तर दिया भगवन ! शुभ कार्यों में अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से योगदान देना ही पर्याप्त है । मैं अपना कर्तव्य पूरी सामर्थ्य से कर रही हूँ, यही मेरे लिए आत्म-सन्तोष की बात है । गिलहरी के उत्तर से भगवान परम प्रसन्न हुए और स्नेह-पूर्वक उसकी पीठ सहलाने लगे ।

शेखसादी को जूतों का अभाव

एक बार शेखसादी नमाज पढ़ते जा रहे थे । पाँवों में जूते न होने से, बुरी तरह से जल रहे थे । तभी उसकी दृष्टि एक साहूकार पर पड़ी जो चमचमाती कीमती जूतियाँ पहने जा रहा था । वे अपने मन में अल्लाह को बड़ा पक्षपाती होने का उलाहना देने लगे । इतने में उन्होंने एक अपंग को देखा, जो वैसाखी के सहारे चल रहा था । उन्हें अपनी भूल समझ में आई और अपने को एक तमाचा लगाकर कहने लगे— या परवरदिगार ! तेरी यह रहमत भी क्या कम है कि तूने मुझे दो पैर तो दिये हैं । ''

(प्रवचन क्रमांक ५ के उपयुक्त)

आम कहाँ गया ?

गुरुजी ने देखा कि उनके एक शिष्य को अपनी शक्ति और सेवा साधना का अभिमान हो गया । अतः उसे दिशा शिक्षा देने हेतु उसके सम्मुख ही एक व्यक्ति को एक आम दिया और धीरे से उसी शिष्य को यह पता लगाने को कहा कि वह व्यक्ति उस आम का क्या करता है ।

शिष्य ने वापस आकर बतलाया कि उसने वह आम अपनी स्त्री व बच्चों में बाँट दिया । गुरुजी ने कहा, तब तो उसे बड़ा अभिमान हो गया होगा । शिष्य बोला, इसमें अभिमान की कोई बात नहीं । नहीं बाँटता तो स्वार्थी कहलाता । गुरुजी ने समझाया, फिर भगवान की दी हुई शक्ति और सामर्थ्य को सेवा कार्यों में लगाने पर अहंकार क्यों किया जाय ? शिष्य गुरुजी का आशय समझ गया और अपना सुधार संशोधन करने में लग गया ।

मेरे लिऐ भजन

एक व्यक्ति प्रायः कई-कई दिनों के लिऐ बाहर रहता और लौट आता । पड़ोसियों ने पूछा तो उसने बतलाया कि वह अपनी तीसरी अवस्था होने के कारण भगवान की सेवा पूजा और परमार्थ में अपना समय लगा रहा है ।

थोड़े दिन बाद उसके कुछ पड़ोसियों को पता लगा कि वह व्यक्ति गाँव-गाँव जाकर व्यायामशालाएँ खुलवाता है । उन्होंने उससे झूठ बोलने की शिकायत की तो उस व्यक्ति ने समझाया कि समाज के रोगी और निर्बल व्यक्तियों को स्वस्थ व शक्तिवान बनाना ही मेरे लिये उस विराट ब्रह्म की पूजा है ।

नाम नहीं काम याद रखो

एक राजा ने दो माली नियुक्त किए तथा उन्हें अलग-अलग बगीचे सौंप दिए । मन्त्री ने उनसे कहा राजा की कृपा का ध्यान रखना तथा उनको प्रसन्न रखने का प्रयास करते रहना ।

एक माली श्रमपूर्वक काम में लग गया और बगीचे को सुन्दर बना लिया । दूसरा राजा के चित्र को रखकर उनकी कृपा के गीत गाने लगा, पूजा करने लगा । उसका बगीचा सूख गया । राजा ने बगीचे को देखा तो पहले माली को इनाम दिया तथा दूसरे को नौकरी से निकाल दिया । भगवान भी इसी प्रकार कर्तव्यपरायण से प्रसन्न होते हैं ।

तप से गंगा पृथ्वी पर आई

महाराज सगर के साठ हजार पुत्र ऋषि के शाप से जल रहे थे । उनके उद्धार का एक ही उपाय था कि स्वर्ग से गंगाजी को पृथ्वी पर लाया जाये । भगीरथ बड़े चिंतित हुए, अन्ततः अपना राज्य पुत्रों को सौंपकर तथा वैभव विलास का जीवन त्यागकर हिमालय की कन्दराओं में तपस्या करने लगे । भगवती ने प्रकट होकर कहा कि मेरे वेग को यदि कोई धारण करने में समर्थ हो, तो ही पृथ्वी पर आ सकूँगी अन्यथा सीधे पाताल लोक में चली जाऊँगी ।

अतःएव भागीरथ ने भगवान शिव की तपस्या कर उन्हें इस कार्य के लिये तैयार किया । उन्होंने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया और पुनः लोक कल्याण हेतु उसकी धारा को भूमि पर प्रवाहित कर दिया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

बूदें जो मोती बन गई

सूर्यदेव के प्रखर ताप से समुद्र खौलने लगा, तो डरी सहमी जल की बूँदें विधाता के पास जाकर अपना दुःखड़ा रोने लगीं। उन्होंने उन्हें बहुतेरा समझाया कि थोड़ा कष्ट सहन कर लो, तो आकाश में उड़ोगी और जहाँ बरसोगी सभी जगह हरियाली ही हरियाली कर दोगी। किन्तु बूँदों को यह उपदेश अच्छा नहीं लगा और कलपती कुढ़ती वापस आ गई।

उधर स्वाति नक्षत्र आया, कुछ बूँदे एक बार फिर उमड़ीं और आकाश से झरने लगीं। जो बाँस में गिरीं, वे वंशलोचन बन गईं, कदली में गिरीं, वे कपूर बन गई और जो सीपी के मुँह में गिरीं, वे मोती बन गईं। वे बूँदें अपने सौभाग्य पर इठला रही थीं और विधाता को लाख-लाख धन्यवाद दे रही थी।

पराया धन धूलि समान

भक्त राँका बाँका अपनी पत्नी सहित जंगल से लकड़ी काट-काट कर अपना गुजारा करते और भगवान की भक्ति एवं उपासना में तल्लीन रहते।

एक दिन वे जंगल से वापस आ रहे थे कि रास्ते में उन्हें मुहरों की थैली दिखाई दी। उन्हें लगा कहीं पत्नी को लोभ न आ जाय। अतः उस पर मिट्टी डालने लगे। इतने में उसकी पत्नी आ गई और उसने सब देख लिया तो समझ गई और बोली कि आप मिट्टी पर मिट्टी डालने का निरर्थक श्रम क्यों कर रहे हैं। पत्नी के मुँह से भी निस्पृह बातें सुनकर वे आश्वस्त एवं संतुष्ट हो गये। दोनों अपने साधन पथ पर अबाध गति से बढ़ते रहे।

कमंडल की तीर्थ यात्रा

महाभारत समाप्त होने पर धर्मराज ने चारों भाइयों व द्रोपदी सहित तीर्थ यात्रा का निश्चय किया। उन्होंने श्रीकृष्ण से भी चलने का आग्रह किया, किन्तु उन्होंने आवश्यक कार्य बतलाते हुए एक कमण्डल दे दिया कि जहाँ-जहाँ स्नान करो, वहाँ-वहाँ इस कमंडल को भी डुबो लेना। तीर्थ यात्रा समाप्त करके ये लोग वापस लौटे व कमण्डल श्रीकृष्ण को लौटा दिया। उन्होंने उसी समय उसे फोड़कर प्रसाद रूप सबको बाँट दिया। खाया तो सभी को कड़वा लगा और सबने उसे थूक दिया।

श्रीकृष्ण ने समझाया कि केवल धोने मात्र से जिस प्रकार कमंडल का कड़वापन दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार अनेक तीर्थों में स्नान करने मात्र से अन्तःकरण के पाप कैसे धुल सकते हैं ?

शबरी की महत्ता

शबरी जाति से भीलनी होते हुए भी उसके हृदय में भगवान की सच्ची भक्ति थी। वन में ऋषियों के आश्रमों में जाकर भगवान की कथा सुनने और उनकी सेवा करने की उसकी बड़ी इच्छा रहती। वे नीच कहकर उसे पुकारने लगे, किन्तु वह प्रतिदिन आश्रम से नदी तक जाने वाले मार्गों को बुहारकर कंटक रहित कर देती और जंगल से लकड़ियाँ काटकर ला देती।

ऋषि मातंग उसे अपने आश्रम ले गये और उसे अपनी कुटिया के समीप रहने व सेवा, साधना की अनुमति दे दी। भगवान राम जब वनवास गये तो उन्होंने ऋषि मातंग की बड़ी सराहना की। शबरी की कुटिया में स्वयं गये और उसका आतिथ्य स्वीकार किया।

धन का सदुपयोग

महाराणा प्रताप ने बहुत समय तक पर्वतों में छिपते हुए अकबर की सेना से लोहा लिया। पर जब साधन सभी समाप्त हो गये, तो निराश होकर देश छोड़ने को तैयार हो गये। धनिक भामाशाह ने जब सुना तो उसकी भावनाएँ उमड़ पड़ीं और देश और जाति के लिये अपना सारा धन महाराणा के चरणों में अर्पण कर दिया। भामाशाह को छाती से लगाते हुए महाराणा ने उसकी देशभक्ति एवं त्याग की भूरि-भूरि प्रशंसा की और प्राप्त धनराशि से पुनः सैन्य एकत्र करके राष्ट्र रक्षा की।

कर्तव्य की कसौटी

मेवाड़ की स्वतन्त्रता के लिए मुगलों की सेना से जूझते हुए अपने परिवार को लेकर महाराणा प्रताप मारे-मारे फिर रहे थे। वन में घास की रोटी बनाकर छोटी बच्ची को खाने हेतु दी गई और इतने में एक वन बिलाव आया और उसके हाथ से रोटी छीन कर ले भागा। भूखी बच्ची बिलखने लग गयी। महाराणा से नहीं देखा गया और अकबर को संधि पत्र लिख भेजने की तैयारी करने लगे।

किन्तु महारानी ने उनको उनकी प्रतिज्ञा, देशभक्ति व कर्तव्यनिष्ठा की स्मृति दिलाते हुए कहा कि आराम की जिन्दगी जीने के बजाय उसके लिये सारे परिवार की बलि चढ़ाई जा सकती है। महाराणा की क्षणिक निराशा तिरोहित हो गई और बच्ची को पुनः आहार की व्यवस्था कर अपने कार्यों में लग गये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पन्ना धाय का त्याग

महाराणा उदयसिंह तब छोटे थे । उनके बड़े होने तक के लिये बनवीर को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया था । उदयसिंह के पालन-पोषण का भार पन्ना धाय को सौंपा गया था । उसके अपना भी एक पुत्र था, जो उदयसिंह के साथ खेला करता था ।

बनवीर राज्य हड़पने के लोभ में आकर उदयसिंह का वध करने को महल की ओर रवाना हुआ । पन्ना धाय को पता चला, तो उसने उदयसिंह के पलंग पर अपने पुत्र को सुला दिया और उदयसिंह को कहीं छिपा दिया ।

बनवीर आया और क्रोध में भर कर पलंग पर सोये बच्चे को उदयसिंह समझ तलवार से मौत के घाट उतार दिया । पन्ना धाय ने अपनी कर्तव्य परायणता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया ।

कर्मावती देवी

मेवाड़ के महाराणा समरसिंह की मृत्यु के उपरान्त राज काज चलाने का काम उनकी धर्मपत्नी कर्मावती देवी करने लगी ।

उन्हीं दिनों मुहम्मद गोरी ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी । यवनों की विशाल सेना को देखते हुए मेवाड़ के सेनापति चिंतित हो उठे । उन्हें हतोत्साहित देखकर रानी योद्धाओं के वस्त्र पहनकर दरबार में आ गई और कड़क कर सेनापतियों को उनके कर्तव्य की याद दिलाकर उनमें प्रेरणा भरने लगी ।

रानी के शौर्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि देखते-देखते राजपूतों की सेना ने हजारों गुना उत्साह से युद्ध किया और मुहम्मद गोरी को वापस लौटने के लिए विवश किया ।

(प्रवचन क्र० ६ के उपयुक्त)

बेटों का बलिदान

मुगलों की एक बड़ी सेना ने चमकौर दुर्ग पर घेरा डाला । दुर्ग के भीतर जब रसद समाप्त हो गई तो गुरु गोविन्द सिंह ने लड़ते-लड़ते बलिदान हो जाने का निश्चय किया । तभी उनके शेष दो पुत्र अजीत सिंह और जुझार सिंह आए और सर्वप्रथम युद्धभूमि में जाने का आग्रह करने लगे । सेनापतियों ने उनसे निवेदन किया कि आपके दो पुत्र पहले ही धर्म की वेदी पर बलिदान हो चुके हैं अब इन्हें तो जीवित रहने दें ।

गुरु ने कहा कि ये तो जायेंगे ही, किन्तु मुझें खेद है कि मेरे पास और कोई पुत्र नहीं बचेगा जिसे मैं देश और धर्म पर बलिदान हेतु प्रस्तुत कर सकूँ । उन्होंने अपने दोनों बेटों को हथियार बाँध कर प्रसन्नता सहित विदा किया ।

बन्दा बैरागी

बन्दा बैरागी पहले एक साधू थे और भजन-पूजन में लगे रहते थे । उनकी भेंट गुरु गोविन्द सिंह से हुई, तो उन्होंने समझाया कि आपत्ति काल में जब देश, धर्म और संस्कृति पर कुठाराघात हो रहा हो, तब एकांत सेवन और भजन-पूजन, ध्यान समाधि निरर्थक हैं ।

गुरु की वाणी सुनकर बन्दा बैरागी उनके अनुयायी हो गये व देश को स्वतन्त्र कराने, अधर्मियों को नष्ट करने तथा अपनी संस्कृति की रक्षा करने की आजीवन प्रतिज्ञा की । वे जीवन भर कठोर संघर्ष करते रहे । इस्लाम धर्म स्वीकार न करने पर उनकी बोटी-बोटी काट दी गई । भले ही वे मारे गये, पर उनकी शौर्य, बलिदान की गाथाएँ आज भी देशभक्तों में प्राण फूँकती हैं ।

गोरा बादल

संधि वार्ता के अनुसार, रानी पद्मिनी का चेहरा दर्पण में एक बार देख लेने पर अलाउद्दीन को सेना सहित वापस लौट जाना चाहिये था । किन्तु उसने राणा भीमसिंह को छल से बन्दी बना लिया ।

गोरा बादल दो भाइयों ने पालकियाँ सजाकर उसमें सशस्त्र सैनिक बैठा दिये और दूतों से समाचार पहुँचाया कि रानी पद्मावती डेरे में आ रही है । वहाँ पहुँचते ही यवन सेना पर अकस्मात आक्रमण कर राणा को छुड़ा लिया । राणा तो सुरक्षित किले में आ गये, पर दोनों वीरों ने रणभूमि में लड़ते-लड़ते अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दिया ।

पाँच बराबर पाँच हजार

गुरु गोविन्द सिंह ने एक बार अपने अनुयायियों के सामने देश व धर्म की रक्षा हेतु प्राणों का उत्सर्ग कर देने की माँग प्रस्तुत की । भीड़ में से एक व्यक्ति बलिदान होने के लिए सामने आया । उसे लेकर वे कोठरी में गये और रक्तसनी तलवार लेकर बाहर आये । कुल पाँच व्यक्तियों ने हिम्मत की और पाँचों बार वे रक्तसनी तलवार लेकर बाहर आये ।

अन्त में उन पाँचों को बाहर लाकर लोगों से कहा यह तो निष्ठा व सामर्थ्य की परीक्षा मात्र थी । प्रसिद्ध है कि इन्हीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पंच प्यारों ने सिख संगठन को मजबूत बनाया। वे पांच बलिदानी पाँच हजार के बराबर काम कर गये।

शिष्य का गुरु पर आक्रमण

एक बार शिवजी अन्याय के प्रति अपने शिष्यों की प्रतिक्रिया देखने हेतु कुछ अनुचित कार्य करने लगे। सभी शिष्य स्तब्ध रह गये, किन्तु बोला कोई नहीं किन्तु परशुराम ने विनम्र प्रार्थना की। फिर भी शिवजी ने वह अन्याय कार्य बन्द नहीं किया। जब वे नहीं माने तो परशुराम ने अपना फरसा उठाया और उनको घायल कर दिया। अन्य शिष्य दौड़े और गुरु को सँभाला तथा परशुराम को बहुत बुरा-भला कहने लगे। शिवजी ने उन शिष्यों को समझाया कि वे परीक्षा ले रहे थे। परशुराम उसमें सफल हुए। इन्हीं परशुराम जी ने अन्यायी क्षत्रियों को २१ बार पराजित कर दण्ड दिया था।

सागर को पाटने का संकल्प

महर्षि अगस्त समुद्र के किनारे चले जा रहे थे। उन्हें एक टिटहरी का जोड़ा दिखा जो समुद्र में अपनी चोंच से रेत डाल रहे थे। महर्षि के पूछने पर टिटहरी ने बताया कि समुद्र उसके अण्डे बहा ले गया है। समुद्र चाहे न पटे पर अन्याय का प्रतिकार तो होना ही चाहिए। उनकी श्रेष्ठ भावना देखकर महर्षि का मन भर आया। उन्होंने टिटहरी की सहायता की तथा हारकर समुद्र को अण्डे वापस कर देने पड़े।

दुष्टता के प्रति गीता की कथा

एक विद्वान पंडित जी गीता की कथा सुना रहे थे। क्षमा और अहिंसा मनुष्य के भूषण हैं। उनकी कथा एक डाकू भी सुन रहा था। जब दक्षिणा आदि लेकर पंडित जी जंगल में से होकर जा रहे थे कि वही डाकू आया और उनसे सारा धन मांगने लगा। मौका देखकर पंडितजी ने अपनी लाठी सँभाल ली और डाकू की ओर झपटे।

डाकू हक्का-बक्का हो गया और बोला आप अपनी कथा की शिक्षा के विपरीत आचरण कर रहे हैं। पंडित जी ने कहा कि मूर्ख अर्जुन को भगवान ने दुष्टों से लड़ने के लिये ही तो उपदेश दिया था। डाकू निरुत्तर हो गया और पंडित जी के रास्ते से हट गया।

(प्रवचन क्र० ७ के उपयुक्त)

हाड़ा रानी का त्याग

सरदार चूड़ावत का विवाह हुये अभी एक-दो दिवस ही व्यतीत हुए थे कि उन्हें युद्ध का मोर्चा सँभालने का आदेश मिला। एक ओर परम सुन्दरी, गुणवती हाड़ा रानी के प्रति आसक्ति और दूसरी ओर कर्तव्य धर्म का आह्वान।

असमंजस की स्थिति को हाड़ा रानी भाँप गई और चलते समय अपना सिर काटकर निशानी के रूप में भेज दिया। रानी ने स्वयं को बलिदान करके भी अपने पति को कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखा।

वीरमती का बलिदान

देवगिरि के राजा रामदेव पर दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन ने हमला करने के पहले उनके सरदार कृष्णराव को अपनी ओर मिला लिया और आक्रमण कर दिया। जब इस षडयन्त्र और जासूसी का पता कृष्णराव की धर्मपत्नी वीरमती को चला तो उसने अपने पति की हत्या कर दी। मरते हुए पति ने पूछा तुम्हारा यह कैसा पतिव्रता धर्म ? उसने उत्तर दिया पहले राष्ट्र रक्षा फिर पतिव्रत धर्म और ऐसा कहते हुए उसने स्वयं भी कटार भौक ली।

सावित्री और सत्यवान

सावित्री ने सत्यवान को ही अपना वर चुना। राजा अश्वपति ने नारद जी से सलाह ली, तो उन्होंने सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष शेष बतलाई। किन्तु सावित्री अपने निश्चय पर अटल रही। अतः राजा ने सावित्री का विवाह सत्यवान से विवाह कर दिया।

पितृ गृह से जाने के बाद पूर्ण मनोयोग से सावित्री पति सेवा में लगी रही और अपने पतिव्रत, धर्मनिष्ठा और सत्य के बल पर उसने सत्यवान को मृत्यु से बचा लिया।

धन्य सुकन्या

राजा शर्याति एक बार अपने परिवार सहित वन विहार को गये। राजकन्या ने एक स्थान पर मिट्टी के ढेर में चमकती चीज देखकर लकड़ी से निकालने का प्रयत्न किया, तो उसमें से खून की धारा बह निकली।

शर्याति ने जब सुना तो स्तब्ध रह गये। क्योंकि उस टीले के नीचे च्यवन ऋषि तपस्या कर रहे थे। सभी लोग वहाँ पहुँचे और च्यवन ऋषि की सेवा सुश्रूषा करने लगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजकन्या ने अपने अपराध की गुरुता समझी और वही समय अन्धे वृद्ध च्यवन ऋषि की धर्मपत्नी बनकर रहने की घोषणा कर दी। देवता अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर च्यवन की बृद्धता और अन्धता दूर कर दी और सुकन्या का जीवन सार्थक हो गया।

सहनशीलता

सन्त तुकाराम एक बार खेत से गन्ने का गटठा घर ला रहे थे। बीच में बच्चे मिले तो सभी को एक एक गन्ना बाँटते चले। घर आते आते केवल एक गन्ना बचा।

उनकी पत्नी यह सब तमाशा देख रही थीं। तुकाराम के घर आते ही उनके हाथ से गन्ना छीनकर पीठ में ऐसा मारा कि उसके दो टुकड़े हो गये।

सन्त जी ने बड़ी शान्ति से दोनों टुकड़े उठाए और कहा, वाह कितना बराबर बराबर भाग में गन्ना तोड़ा है। लो एक टुकड़ा तुम खा लो और एक मैं खा लेती हूँ सुनकर उनकी पत्नी शर्म से पानी पानी हो गई।

मेरी का उपहार

मेरी का पति बहुत निर्धन था। किन्तु पति पत्नी में अगाध प्रेम था। वे प्रति वर्ष अपने विवाह की वर्ष गाँठ मनाते और एक दूसरे को कुछ भेंट देते।

इस वर्ष उनके पास उपहार में देने हेतु कुंछ भी नही था। कुछ सोच विचार कर दोनों अलग अलग बाजार गये।

मेरी ने अपने सुन्दर वाल कटवा कर बेच दिये और उन पैसों से अपने पति के लिये घड़ी की चैन खरीद लायी। उधर उसके पति ने अपनी घड़ी बेचकर मेरी के लिए एक सुन्दर और बढ़िया कंघी खरीद ली। जब दोनों ने एक दूसरे को उपहार दिया तो भौचक्के रह गये और क्षण भर बाद ही प्रेम भावना में गदगद हो गये

पत्नी द्वारा पति का जीवन परिवर्तन

मुंशीराम एक कोतवाल के कुसंगग्रसित पुत्र थे। उन्हें मद्य, माँस, जुआ आदि का चस्का लग गया था। एक बार शराब के नशे में वेश्या के यहाँ से घर लौटे तो उल्टी होने लगी। उनकी पत्नी आदर्श नारी थी। वह उनकी सेवा सुश्रषा में लग गयी। जब होश आया तो पत्नी से पूछने पर मालूम हुआ कि वह उनकी प्रतीक्षा में भूखी बैठी जाग रही है।

अपनी पत्नी की उदारता व श्रद्धा देखकर उनका हृदय भर आया और उसी रात से उनका जीवन बदल गया। यही मुंशी राम आगे चलकर आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द हुंए।

(प्रवचन क्र० ८ के उपयुक्त)

कुल परम्परा

एक परिवार में विवाह का आयोजन था। एक पालतू बिल्ली भोजन में बार-बार मुँह डाल रही थी। नादान मालकिन ने उसे एक नांद के नीचे बन्द कर दिया और अपने काम में लगने से उसे भूल गई।

बारात जब लौटकर आई, तो मालकिन को बिल्ली की याद आई। नाँद के नीचे बिल्ली मर चुकी थी अतएव उसे फिकवा दिया गया। नई बहूँ बड़े ध्यान से सब कुछ देख रही थी। वर्षों पश्चात् जब उसके बच्चे का विवाह होने लगा तो एक बिल्ली को पकड़कर नांद के नीचे रखा गया और जब वह मर गई तब नई बहूँ को गृह प्रवेश कराया गया। इस प्रकार जो उसने देखा था उसको अंधपरम्परा के रूप में चलाना ही धर्म एवं अपना कल्याण समझा।

हजरत मोहम्मद द्वारा पुत्री को शिक्षा

हजरत मोहम्मद अपनी पुत्री फातिमा से मिलने गये तो वह बहूमूल्य वस्त्राभूषण पहिनकर उनसे मिलने द्वार पर आई। उन्होंने उसे देखा और दुःखी होकर लौट गये।

फातिमा पिता का आशय समझ गई। उसने सारे मूल्यवान बस्त्राभूषण पिता के पास पहुँचा दिये। उन्होंने उस धन को गरीबों में बाँट दिया और फिर अपनी पुत्री से मिलने उसके घर गये।

सावित्री की सास-ससुर सेवा

सावित्री के दृढ निश्चय को देखकर उसके माता-पिता ने सत्यवान से उसका विवाह कर दिया। विदा होते समय अपने सास-ससुर को माता-पिता के स्थान पर मानकर उनकी सेवा करने एवं आज्ञापालन का उपदेश दिया।

सत्यवान के माता-पिता अन्धे थे। सावित्री उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखकर, सेवा-सुश्रुषा में जुटी रहती। जब सत्यवान की मृत्यु होने पर यमराज ने उससे तीन वरदान माँगने को कहा तो सर्वप्रथम उसने सास-ससुर की आँखों की ज्योति माँगी, तत्पश्चात् अन्य वरदान माँगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

(प्रवचन क्र० ९ के उपयुक्त)

सफलताओं का मूल धैर्य

गुरु गोविन्द सिंह के दोनों पुत्रों को जीवित ही दीवार में चुनवा दिया गया। समाचार सुनकर भी गुरु विचलित नहीं हुए और लोगों को समझाने लगे कि जिस तरह हम जमीन पर रेखाएँ खींचकर मिटाते हैं तो हमें कोई हर्ष-विषाद नहीं होता, उसी प्रकार यह मानव शरीर नाशवान है। एक न एक दिन इसका मिटना अवश्यंभावी है। फिर उन पुत्रों का मरना तो अपने देश, जाति व धर्म के लिये हुआ है वह तो और भी सार्थक है। हमें शोक नहीं, हर्ष मनाना चाहिये।

मार दिया होता

एक गरुड़ अपने बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाकर दूर-दूर तक ले जाता और दिन भर दाने चुगाकर शाम को फिर अपनी पीठ पर बैठा कर वापस ले आता। गरुड़ ने उड़ना सीखने के लिये कई बार कहा किन्तु निःशुल्क साधन बिना श्रम के उपलब्ध होते रहने से वह आलसी और परावलम्बी बन गया था।

एक दिन आकाश में उड़ते-उड़ते गरुड ने एकदम अपने को खींच लिया, तो उसका बच्चा नीचे गिरने लगा। घबराकर पंख फड़फड़ाए और गिरते-गिरते बचा।

सायंकाल बच्चे ने माँ से शिकायत की कि आज तो पिताजी ने मुझे मार दिया होता और पूरी घटना सुना दी। माँ ने समझाया जो अपने आप नहीं सीखते उन्हें सिखाने-समझाने का यही नियम है।

अभिमन्यु की शिक्षा गर्भ में

अर्जुन युद्ध करते-करते कहीं अन्यत्र निकल गये थे। तब कौरवों ने मन्त्रणा करके चक्रव्यूह की रचना की और पाण्डवों को आह्वान किया चक्रव्यूह का भेदना अर्जुन को ही मालूम था। सबको बड़ी चिन्ता हुई। तभी अभिमन्यु ने घोषणा की कि चक्रव्यूह का भेदन मैं जानता हूँ। जब मैं गर्भ में था, तब एक बार चक्रव्यूह भेदन का विवरण पिताजी ने माँ को सुनाया था। मैं उसे सुनता रहा था। उसी ज्ञान के सहारे चक्रव्यूह भेदन कर दूँगा।

गर्भावस्था से ही बालक के गुण, कर्म, स्वभाव के निर्माण का प्रत्यक्ष प्रमाण देखकर सभी को सुखद आश्चर्य हुआ।

सन्तान का अधिकार

भगवान कृष्ण के सम्मुख रुक्मिणी ने सन्तान की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने हिमालय में तपश्चर्या करने हेतु प्रस्ताव रखा। रुक्मिणी जरा ठिठकी तो भगवान ने कहा कि प्रिये ! किसी आत्मा को संसार में लाने का अधिकार हमें तभी है, जब हम उसे संस्कारवान बना सकें। रुक्मिणी उनका तात्पर्य समझ गईं और उनके साथ तप करने हिमालय चल दीं। तप के प्रभाव से उन्हें प्रद्युम्न जैसे श्रेष्ठ बालक की माता होने का सौभाग्य मिला।

वीर प्रसविनी वीर माता

सूअर का पीछा करते-करते चित्तौड़ के राजकुमार अरिसिंह उसके पीछे एक खेत में घुस गये। खेत की रखवाली कर रही एक किसान बालिका ने घोड़े सहित खेत में न घुसने के लिए खबरदार किया और कहा कि वे वहीं खड़े रहें, उनका शिकार अभी वह निकाल देती है।

वीर बालिका मोटा डंडा लेकर खेत के अंदर घुसी और सूअर को मार कर राजकुमार के सामने रख दिया। राजकुमार उसके शौर्य पर मुग्ध हो गये और उसी से विवाह कर लिया। वीर हम्मीर देव इसी बालिका की संतान थे।

नाम अमर हो गया

भारतीय दर्शन के प्रसिद्ध भाष्यकार वाचस्पति मिश्र की पत्नी ने एक बार संतान उत्पन्न करने की इच्छा प्रकट की। वाचस्पति गृहस्थ तो थे पर दाम्पत्य जीवन उन्होंने वासना पूर्ति के लिये नहीं अपितु दो सहयोगियों के सहारे चलने वाले प्रगतिशील जीवन क्रम के लिये अपनाया था। पत्नी ने कहा कि उनके पीछे उनका नाम चलता रहेगा।

वाचस्पति उन दिनों वेदान्त दर्शन पर भाष्य लिख रहे थे। उन्होंने तुरन्त उस भाष्य का नाम अपनी धर्मपत्नी के नाम पर भामती रख दिया और कहा कि लो तुम्हारा नाम अमर हो गया। अब व्यर्थ प्रसव वेदना और संतान पालन का झंझट सिर पर लेने से क्या फायदा।

(प्रवचन क्र० १० के उपयुक्त)

पुत्रवधू द्वारा ससुर को बोध

एक धनिक व्यक्ति बड़ा कंजूस था। उसने भिखारियों को कुछ भी नहीं देने की हिदायत घर की स्त्रियों को भी दे रखी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

थी । एक दिन एक अपंग आकर भीख माँगने लगा । उनकी नव विवाहिता पुत्रवधू किसी उत्तम परिवार से आई थी, उससे बोली कि देने के लिये कुछ नहीं है । भिखारी ने पूछा कि फिर खाते क्या हो ? तो उसने जवाब दिया कि वासी-कूसी खा लेते हैं और वह भी समाप्त हो जायेगी तो हम भी तुम जैसे भीख माँगेंगे ।

सेठ सारा वार्तालाप ऊपर बैठा सुन रहा था । वह नाराज हुआ तो पुत्रवधू ने समझाया कि जो कुछ हम ने पूर्व जन्म के स्त्कर्मों के प्रति फल स्वरूप पाया है, उसका उपभोग इस जन्म में कर रहे हैं । अब हम लोगों में त्याग, परमार्थ नहीं होने से पिछली कमाई चुकते ही हमें भी भिखारी की तरह दरिद्र वन जाना पड़ेगा । बात समझ में आगई और वह परमार्थ कार्यो में अपना धन एवं समय लगाने लगा ।

दाँत तोड़ लिये

आचार्य विष्णुदत्त चाण्क्य की माता बचपन में उनके सामने के दो दाँत देखकर रो पड़ी । बालक ने कारण पूछा तो माँ ने बतलाया कि वह बड़ा होने पर सम्राट बनेगा और अपनी बूढ़ी माँ को भूल जायेगा ।

बालक गया और पत्थर से अपने सामने के दोनों दाँत तोड़ कर ले आया । माँ को दुःख पहुँचाने वाले और पुरुषार्थ को चुनौती देने वाले चिन्ह न रहें यही अच्छा है । जो कुछ बनूँगा अपने पुरुषार्थ से ही बनूँगा ।

महाराज सगर की न्याय प्रियता

सूर्यवंश के प्रतापी महाराणा सगर के साठ हजार पुत्र कपिल मुनि की क्रोधाग्नि में भस्म हो चुके थे । कुछ काल उपरान्त उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । किन्तु दुर्भाग्यवशात् वह भी बड़े दुष्ट स्वभाव का निकला । वह प्रजाजनों के बालकों को पकड़कर अकारण ही सरयू में डुबो देता था ।

अन्यायमूलक काम कोई भी करे, सहन नहीं किये जाने चाहिए । कुसंस्कारी पुत्र की अपेक्षा सन्तानहीन रहना अधिक सुखकर है । यह सब सोचकर सगर ने उसे राज्य से बाहर निकाल दिया और उसे आश्रय देने वाले को भी दण्ड देने की घोषणा कर दी । फिर असमंजस के पुत्र अंशुमान को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया । सुपात्र को ही पुत्रवत मानना हृदय की विशालता एवं उदारता का परिचायक है ।

पिता की अवज्ञा

हिरण्यकश्यपु ने अपने पुत्र को कहा कि तुम भी मेरी तरह धन-सम्पत्ति अर्जित करो । मैं तुम्हारा पिता हूँ । पिता और फिर राजा, भगवान के तुल्य होते हैं । तुम्हें मेरी आज्ञा माननी ही होगी । बालक प्रह्लाद ने उत्तर दिया कि पिता के नाते आप मुझसे शारीरिक सेवाएँ ले सकते हैं । किन्तु आपकी अनुचित बातों का समर्थन करना मेरे लिये सम्भव नहीं ।

उसने अपार कष्ट सहे पर ईश्वर विश्वास और सत्य पर अटल रहा तथा अनुचित आज्ञा की अवज्ञा करता रहा ।

पुत्र नहीं पिता दोषी

दक्षिण अफ्रीका के फिनिक्स आश्रम के छात्रों को गाँधीजी कई-कई दिनों का अस्वाद व्रत कराते थे । कुछ लोग लम्बी अवधि का व्रत लेकर बीच में तोड़ते तो वे कड़ाई से व्रत का नियम पालन करने को कहते ।

एक बार देवदास गाँधी ने आठ दिन का अस्वाद व्रत लिया और बीच में तोड़ने लगे । समझाने पर भी न माने तो गाँधीजी ने सोचा कि वे स्वयं भी तो प्रारम्भ में इसी प्रकार व्रत तोड़ देते थे । अतः मूल में दोषी तो मैं हूँ । दण्ड मुझे मिलना चाहिये और अपने ही गालों में तमाचे मारने लगे ।

गाँधीजी के इस व्यवहार का देवदास पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह अपने व्रत पर दृढ़ रहे ।

शिक्षा देने से पहले

एक माँ अपने सात वर्षीय बालक को बुरी तरह पीट रही थी । पड़ोसिन छुड़ाने को आई तो उसने उसे बतलाया कि इसने चढ़ोती के आम व पैसे चुरा लिये हैं । उस पड़ोसिन ने बड़े प्यार से उस बालक को समझाया कि बेटा तुम तो बड़े अच्छे बालक हो । चोरी तो गन्दे बालक करते हैं, तुमने ऐसा क्यों किया ?

बालक ने कहा कि माँ भी तो रोज ऊपर वाले चाचाजी के दूध में से आधा दूध निकाल कर उतना ही पानी मिला देती है और हमसे कहती है कि उन्हें बताना मत । मैंने तो आज पहली ही बार चोरी की है ।

(प्रवचन क्रमाँक ११ के उपयुक्त)

संयुक्त की शक्ति

एक किसान के चार पुत्र थे । एक बार उनमें आपस में झगड़ा हो गया और बँटवारा करने लगे । पिता ने लकड़ी का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

एक बड़ा गट्ठा मँगाकर उसे एक-एक लड़के को अलग-अलग उठाने को कहा । किन्तु अकेला लड़का कोई भी उस गट्ठे को नहीं उठा पाया । तब उसने चारों पुत्रों को एक साथ उसे उठाने को कहा । गट्ठा तत्काल उठ गया ।

लड़कों को एकता का मूलमंत्र मालूम हो गया और फिर कभी बँटवारे की बात नहीं सोची ।

गोपालकृष्ण गोखले की पढ़ाई

बालक गोपालकृष्ण गोखले बाल्यावस्था में पढ़ना तो बहुत चाहते थे । परन्तु धनाभाव के कारण बड़ी अड़चन पड़ती थी । यह देखकर भाभी (गोविन्दराव की पत्नी) ने अपने आभूषण बेच दिये और गोपालकृष्ण की फीस भर दी ।

गोपालकृष्ण को जब यह मालूम हुआ तो भाभी से बोले तुमने यह क्या किया । भाभी ने उत्तर दिया कि यदि हम एक दूसरे के प्रति त्यागभाव न रखेंगे तो परिवार का क्या अर्थ रह जायेगा । गोखले अपने भाई व भावी के प्रति देवतुल्य श्रद्धा रखते थे ।

दो भाइयों की विलायत की पढ़ाई

सरदार बल्लभ भाई पटेल विलायत पढ़ने जाना चाहते थे, पर तभी उनके भाई की इच्छा भी हो गई विलायत जाकर पढ़ने की । बल्लभ भाई ने अपने बड़े भाई को विलायत भेज दिया और स्वयं ने बड़ी किफायत से अपना काम चलाया । कुछ दिन में बड़े भाई पढ़कर आ गये, तब वल्लभभाई भी विलायत पढ़ने गये और इनके बढ़े भाई किफायत से अपना जीवन गुजारने लगे ।

भाई भाई की एक दूसरे के प्रति त्याग भावना ने दोनों को विलायत की पढ़ाई पूरी रकने में समर्थ बनाया ।

लोकमान्य तिलक की अध्यापकी

लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय विचार धारा का एक स्कूल खोला । वे उसमें केवल ३०) रुपये मासिक पर अध्यापकी करने लगे । एक दिन उनके एक सम्बन्धी ने उनसे कहा कि इतने कम रुपयों में तो आप अपने दाह संस्कार के लिये भी आवश्यक पैसा नहीं बचा पायेंगे । तिलक ने हँस कर कहा ब्राह्मण का काम समाज को निष्काम भाव से शिक्षित करना और सदाचारी बनाना है उसके निर्वाह के लिये आवश्यकता भर मिल जाय, बस वही पर्याप्त है । उसके जीवन यापन की चिन्ता समाज करेगा । समाज चाहेगा तो मेरे शव को लकड़ियाँ इकट्ठी कर जला दे या फिर ऐसे ही बहा देगी ।

ब्राह्मण की उपासना

महात्मा कैयट भाष्य लिखते रहते और उनकी धर्मपत्नी लकड़ी काटकर लाती और उसी से उन दोनों का गुजर बसर होता रहता । जब उनकी दरिद्रावस्था का पता राजा को चला तो वह बहुत सा धन लेकर कैयट के पास पहुँचा । किन्तु कैयट ने वह धन अस्वीकार करते हुए कहा ''राजन !'' धन पाकर हम धन की उपासना में लग जायेंगे । फिर ज्ञान जैसी अमूल्य विभूति का आदर कौन करेगा राजा ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा आप जैसे ब्राह्मणों से ही यह देश धन्य है उसके हृदय में कैयट के प्रति और भी अधिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई ।

महर्षि कर्वे की गृहस्थी

एक सद्गृहस्थ के तीन लड़के थे । नाम था उनका कर्वे । वे यह नहीं चाहते थे कि अपने पुत्रों को अनावश्यक धन देकर उनको परावलम्बी आलसी व प्रमादी बनाकर उनका भविष्य चौपट कर दिया जाय ।

अतएव उन्होंने अपने सबसे बड़े बेटे को एक हजार रुपया बतौर ऋणके दिया और बी० ए० पास तक की पढ़ाई पूरी करवा दी । उसे नौकरी में लगा देने पर उससे किश्तवार ऋण वापस लेकर दूसरे को पढ़ाया और उसी प्रकार तीसरे को भी पढ़ाया । तीसरे का नौकरी से लगने पर एक हजार किश्तवार लेकर अपनी वृद्धावस्था सुखपूर्वक काटी । लड़के भी बुराइयों से बच गये ।

शंकराचार्य का संन्यास

शंकाराचार्य बचपन से ही संन्यासी बन जाने की कामना करने लगे । बृद्धा माँ अपना एक मात्र सहारा इस प्रकार छोड़ना नहीं चाहती थी ।

एक दिन शंकराचार्य अपनी माता के साथ सरिता स्नान करने गये । जब वे स्नान कर रहे थे, तो अचानक जोर-जोर से चिल्लाने लगे ''बचाओ बचाओ मुझे मगर ने पकड़ लिया है । माँ ! यह मगर कहता है कि यदि तुम मुझे संन्यास लेने की अनुमित दे देंगी तो यह मुझे छोड़ देगा'' निदान माँ को अनुमति देनी पड़ी और ये जल से बाहर निकंल संन्यास की दीक्षा लेकर वैदिक धर्म की रक्षा में लग गये ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वामी रामदास का विवाह

स्वामी रामदास के विवाह में लग्न की तैयारी हो रही थी। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार करते जाते और "सावधान" कहते जाते रामदास चौंके कि बार-बार "सावधान-सावधान" क्यों कह रहे हैं अवश्य ही कुछ दाल में काला है और कहीं कुछ गलत हो रहा है।

वे लग्न मण्डप से उठकर भागे और फिर कभी वापस न आये। विधिवत जाकर दीक्षा ली और धर्म, समाज, देश की रक्षा में लग गये।

आचार्य चाणक्य का ब्राह्मणत्व

चाणक्य अपने देश, धर्म एवं संस्कृति को समृद्धिशाली बनाने हेतु प्रारम्भ से ही प्रयत्नशील थे। जिस समय सिकन्दर का आक्रमण भारत पर हुआ उस समय वे तक्षशिला में अध्यापन करते थे और विदेशी युद्ध विद्या सीखने के उद्देश्य से उन्होंने चन्द्रगुप्त को सिकन्दर की सेना में भर्ती होने को कहा।

उधर महापद्मनन्द द्वारा फैलाये जा रहे अत्याचार व अनाचार से भी प्रजा पीड़ित थी। उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त को सम्राट बनाया गया। महामात्य होते हुए भी वे कुटिया में रहते थे और आजीवन ब्रह्मचारी रहे। समस्त साम्राज्य उनके इशारे पर चलता था। पर पद, धन का कोई लोभ उन्हें छू तक नहीं पाया। ब्राह्मण का आदर्श आचार्य चाणक्य के जीवन में पूर्ण रूपेण ओतप्रोत था।

आदर्श क्षत्रिय महाराणा प्रताप

मुगल साम्राज्य ने राजस्थान के बड़े-बड़े प्रभावी राजा महाराजाओं को आत्मसात कर लिया। मानसिंह, राजा टोडरमल जैसे शक्तिशाली राजा भी मुगल दरबार की शोभा बढ़ाने लगे थे।

फिर भी महाराणा प्रताप अपने देश जाति एवं धर्म को प्राणों से भी अधिक चाहते थे। उन्होंने अपने मेवाड़ को विदेशियों के छक्के छुड़ाने तक प्रतिज्ञा की थी, कि वे मखमली आरामदेह गद्दे तकियों पर सोएँगे नहीं और न सोने चाँदी के बर्तनों में भोजन करेंगे।

महाराणा ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्णरूपेण निभाई। वे हमारे देश के आदर्श क्षत्रिय थे।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रामायण में पारिवारिक आदर्श

उद्देश्य— रामायण सत् शिक्षाओं का भण्डार है । एक प्राचीन कथा के माध्यम से रचयिता ने दिखलाया है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य का व्यवहार कैसा होना चाहिये ? पिता-पुत्र के कर्तव्य, माता की ममता, सास-बहू का मधुर सम्बन्ध, भाइयों का निस्वार्थ प्रेम, ससुराल वालों का सद्भाव, पति-पत्नी की पारस्परिक निष्ठा, नारी जाति की मान्यता और सम्मान आदि सभी समाज निर्माण और व्यक्ति निर्माण से सम्बन्धित विषयों को ऐसे सरल और प्रभावशाली प्रसंगों के द्वारा समझाया गया है कि छोटे-बड़े सभी पर हितकारी प्रभाव पड़ सकता है ।

भारतवर्ष का समाजतन्त्र इस समय परिस्थितियों के बदल जाने से बहुत विकारग्रस्त हो गया है । विशेष रूप से पारिवारिक जीवन में ऐसी विषमतायें उत्पन्न हो गयी हैं जिनके कारण ९५ प्रतिशत परिवारों में बाह्य और आन्तरिक वैमनस्य की घटनायें होती रहती हैं, जो अनेक बार मारकाट और हत्याकाण्डों में भी परिणत हो जाती हैं । ऐसे लोगों के लिये रामचरितमानस की शिक्षायें निस्संदेह अनमोल सिद्ध होंगी । पुस्तक के इस भाग में राम-लक्ष्मण के अनुपम सहयोग, भरत की निस्वार्थ निष्ठा और कर्तव्य पालन, कौशल्या की समदृष्टि हनुमान का सेवा धर्म पालन, सीता की पतिनिष्ठा, निषादराज गुह का शुद्ध मैत्री भाव आदि के जो प्रसंग उठाये गये हैं, वे पाठक की मनोवृति पर निश्चय ही अनुकूल प्रभाव डालने वाले हैं । उनसे शिक्षा ग्रहण करके अपनी परिस्थितियों में सुधार करना सबके लिये कल्याणकारी होगा ।

इस भाग में निम्नलिखित प्रकारण सम्मिलित किये गये हैं—

१— नारी का श्रद्धेय स्वरूप
२— महिलाओं के प्रति मान्यता सुधारें
३— दाम्पत्य का आदर्श और निर्वाह
४— अभिभावकों के कर्तव्य और मर्यादायें
५— पारिवारिक जीवन में आदर्श भ्रातृत्व
६— परिवार आदर्शनिष्ठ बने
७— ससुराल पक्ष में नीति और निर्वाह
८— सुसंस्कारिता का वातावरण
९— अनीति के विरुद्ध संघर्ष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी का श्रद्धेय स्वरूप

संसार में जितने भी प्रतिभाशाली, लोकसेवी सन्त और महापुरुष हुए हैं, उनके निर्माण में उनकी माता का ही मुख्य योगदान रहा है । इस तथ्य को तो सभी स्वीकार करते हैं कि बच्चे माता-पिता की प्रतिकृति होते हैं । माता-पिता के व्यक्तित्व की छाप बच्चों पर अनिवार्य रूप से पड़ती है । उसमें भी माँ के व्यक्तित्व का प्रभाव तो और भी अधिक पड़ता है, क्योंकि बच्चा जन्म लेने के बाद से किशोर होने, थोड़ा समझदार होने तक माँ के सान्निध्य में ही रहता है । एकदम शिशु अवस्था में तो उसका पूरा समय माँ के संरक्षण, सान्निध्य, सामीप्य में ही बीतता है । मनःशास्त्रियों के अनुसार उसी आयु में बच्चे के व्यक्तित्व की आधारभूमि निर्मित होती है । इसलिये विकसित, सुयोग्य और संस्कारवान व्यक्तित्व के निर्माण में सुयोग्य और सक्षम माता ही समर्थ है । यदि माता-स्त्रियाँ शिक्षा, संस्कार, योग्यता और गुणों की दृष्टि से अविकसित अक्षम रहे तो सुयोग्य नागरिकों के निर्माण की आशा किस आधार पर की जा सकती है ?

समाज में सुयोग्य नागरिकों की बहुलता रहे, इसके लिये नारी का विकसित होना आवश्यक है, किन्तु इन दिनों दुर्भाग्य से नारी की स्थिति बहुत ही हेय और गिरी हुई है । समाज में सुयोग्य व्यक्तित्वों की संख्या बढ़े और समाज ऊँचा उठे इसके लिये आवश्यक है कि नारी की स्थिति में सुधार लाया जाये । स्थिति को बदलने और नारी को उन्नत, विकसित बनाने के लिये जन-जागरण का कार्य प्रथम आवश्यक है । यह कार्य जिन कारणों से अधर में ही लटका रह जाता है, उनमें से एक प्रधान कारण लोगों की ये मान्यतायें भी हैं कि नारी की प्रगतिशीलता धर्मशास्त्रों के अनुकूल है भी या नहीं ? न जाने प्रगतिशीलता के साथ आये उत्तरदायित्वों को नारी सँभाल भी पायेगी या नहीं ?

वास्तव में ये दोनों ही प्रश्न हमारे अज्ञान और अविवेक के कारण खड़े होते हैं । यदि हम अपने गौरवमय इतिहास को देखें, तो हमारी यह दोनों शंकायें बिल्कुल निर्मूल और निरर्थक सिद्ध होगी । रामराज्य आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप में हमेशा से स्वीकार किया जाता रहा है । मात्र उसी के घटनाक्रमों पर ध्यान देने से यह बोध होता है, कि नारी हर क्षेत्र में तथा हर स्तर पर, पुरुष की तरह सक्रिय और सफल रही है ।

मजे की बात यह है कि धार्मिक, आध्यात्मिक क्षेत्र के व्यक्ति ही नर-नारी के बीच अधिक भेद मानने का आग्रह करते हैं, जबकि उस स्तर पर सारे सांसारिक भेद भी समाप्त हो जाते हैं । सारा विश्व ईश्वर का ही रूप है और उसने अपने आपको नर और नारी दोनों ही रूपों में समान रूप से व्यक्त किया है । गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानस प्रारंभ करते हुए भगवान के विराट रूप इस विश्व की वन्दना करते हुए लिखते हैं—

सीय राम मय सब जग जानी ।
करऊ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

इस सारे जगत को श्री सीताराम मय जानकर मैं दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ ।

इस विश्व का भगवान के रूप में नमस्कार करते हुए उन्होंने केवल राम को ही सम्बोधन नहीं किया, सीता को भी किया । बल्कि सीता को श्रीराम से पहले सम्बोधित किया । इससे स्पष्ट है कि भगवान पुरुष और नारी दोनों ही रूप में इस विश्व में संव्याप्त हैं । यदि प्रधानता दी जाय तो नारी रूप ही दिये जाने योग्य है ।

वास्तव में दोनों का भेद हमारी बुद्धि की कल्पना मात्र है । वास्तव में सीता एवं राम प्रकृति और पुरुष में कोई भेद नहीं है । वह तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही तथ्य को दो प्रकार से प्रकाश में लाना भर है । इस भाव को तुलसीदासजी ने एक दोहे में बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—

गिरा अरथ जल बीच सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।
बंदउ सीता राम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

जो वाणी तथा उसके अर्थ तथा जल एवं लहर की तरह, कहने भर के लिये अलग हैं, परन्तु वास्तव में अभिन्न (एक) हैं, उन श्री सीतारामजी के चरणों की मैं वन्दना करता हूँ जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं ।

इससे स्पष्ट हो जाता है, कि भगवान के पुरुष रूप और नारी रूप दोनों में कोई अन्तर नहीं है । जहाँ वाणी है वहाँ अर्थ होगा ही, जहाँ पानी है, वहाँ लहरें होंगी ही । उन दोनों के कार्य और महत्ता में अन्तर नहीं किया जा सकता ।

परन्तु इन दोनों उक्तियों पर ध्यान देने से यह तथ्य सामने आता है कि पहली बार पद का आरम्भ 'सीय' से किया गया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तथा दूसरी बार 'गिरा' से। दोनों ही स्त्रीवाचक शब्द हैं। यह प्रयोग स्पष्ट रूप से मातृ शक्ति को प्रधानता देने के लिये किया गया है। वस्तुतः मातृ शक्ति की अपनी ऐसी विशेषता है भी जो अन्यत्र मिलती ही नहीं। वन्दना प्रसंग में श्रीजानकी की वन्दना करते हुए तुलसीदासजी ने मातृ शक्ति की उस विशेषता का उभारा है। लिखा है—

जाके जुग पद कमल मनावउँ।
जासु कृपा निरमल मति पावउँ॥

मैं उन श्रीजानकी जी के दोनों कमलों को मानता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल बुद्धि पाऊँ।

निर्मल बुद्धि की कामना तुलसीदासजी और किसी पात्र से नहीं कर सके, क्योंकि वह केवल 'मातृ शक्ति' से ही मिल सकती है। दार्शनिक पक्ष से देखा जाय तो भी सद्बुद्धि की प्राप्ति गायत्री महाशक्ति से ही होने का तथ्य सामने आता है। गायत्री भी मातृ रूप है, उसे किसी भी नाम से माना और पुकारा जा सकता है। इससे अन्तर कुछ भी नहीं पड़ता। व्यावहारिक दृष्टि से भी बच्चों को प्यार करने, मिठाई देने, खिलौने देने में तो सभी लोग रस लेते हैं, किन्तु यदि बच्चा किसी भी प्रकार गन्दा हो जाये तो उसे स्वच्छ बनाने के लिये माँ को ही पुकारा जाता है। निर्मलता प्रदान करना मातृशक्ति की अनुपम विशेषता है। फिर बुद्ध की निर्मलता तो वह विभूति है, जिसके सहारे संसार की हर उपलब्धि पाई जा सकती है। इसी प्रकार जब उसे मातृ रूप में व्यक्त किया जाता है तो भी किसी नारी वाचक नाम रूप के सहारे उसे समझा जा सकता है। वह आदि शक्ति अपनी इच्छानुसार कोई भी रूप बना लेती है। नारदजी पार्वतीजी के सम्बन्ध में यही भाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

जग सम्भव पालन लय कारिनि।
निज इच्छा लीला वपु धारिनि॥

वे जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाली हैं और अपनी इच्छा से ही लीला के लिये शरीर धारण करती हैं।

ईश्वर के पुरुष रूप के साथ जो विशेषण जुड़े रहते हैं वही सब नारी रूप के साथ भी जोड़े गये हैं। सृजक, पालक, संहारक वह तीनों ही रूपों में हैं। यदि प्रभु-निज इच्छा निर्मित तनु हैं तो 'माँ' भी 'निज इच्छा लीला वपु धारिनि' है। वह महा चेतना जब दोनों रूपों में समान सामर्थ्ययुक्त है तो फिर नर नारी में अन्तर किस आधार पर रह जाता है ?

यह नारी के, मातृ शक्ति के अलौकिक रूप की बात हुई, लौकिक रूप में भी अद्वितीय है। लोग अपने पुरुषार्थ से, अपने गुणों से बड़े-बड़े लोगों को प्रभावित कर लेते हैं, उन्हें अनुकूल बना लेते हैं। किन्तु नारी तो उस परब्रह्म परमात्मा को भी शिशु बनाकर गोद में खेलने के लिये विवश कर देती है।

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौशल्या के गोद॥

जो व्यापक, निरंजन (माया रहित) निर्गुण, विनोद रहित और अजन्मा ब्रह्म है, वही प्रेम और भक्ति के वश कौशल्याजी की गोद में खेल रहे हैं।

पुरुष अपनी शक्ति से किसी बड़े व्यक्ति को मजबूर करके ऊपर से झुका भी ले, तो भी वह अन्दर से विद्रोही बना रहता है, किन्तु यह नारी की भाव शक्ति ही है जो उस सकल ब्रह्माण्ड नायक को भी हर प्रकार वश में कर लेती है।

सामान्य रूप से लोग भावुकता के क्षणों में अपना बौद्धिक संतुलन खो देते हैं। जो उसे बनाये रखता है, उसे बुद्धि, विवेक की दृष्टि से महान माना जाता है। इस कसौटी पर तो नारी खरी उतरती है। भगवान के अवतरण की इच्छा से मनु एवं शतरूपा तप करते हैं। भगवान उनके तप से प्रभावित होकर प्रकट होते हैं और वरदान माँगने को कहते हैं। मनु उस समय भावना में बह जाते हैं— प्रभु को अपने पुत्र रूप में आने को कहते हैं, किन्तु शतरूपा रानी अपनी इच्छा पीछे करके, प्रभु की इच्छा को ही प्रधानता देती है। वे कहती हैं कि आप हमारा हित अधिक समझ सकते हैं। जो विभतियाँ आप अपने प्रिय भक्तों को देना उचित समझते हैं, वहीं हमें दें।

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहि कृपा कर देहु॥

हे प्रभो ! वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही अपने चरणों में प्रेम, वही ज्ञान और वही रहन सहन कृपा करके हमें दीजिये।

मनु और शतरूपा दोनों का प्रेम भगवान के प्रति समान था। उन्होंने तप भी समान किया था। फिर मनु अपनी सुखानुभूति को प्रधानता दे बैठे और शतरूपा ने अपनी इच्छा प्रभु के निर्णय से मिला दी, यह कैसे संभव हो सका ? इसका कारण है कि नारी की सहज पवित्रता और समर्पण बुद्धि। इन विशेष के कारण तात्त्विक दृष्टि से नारी ईश्वर के अधिक निकट रहती हैं, उसे अधिक स्पष्टता से अनुभव कर पाती है। इसलिये उनके अधिक अनुकूल रह पाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किसी विषय की जानकारी होना तथा उस सम्बन्ध में अनुभूति होना दोनों में बहुत अन्तर हैं। भगवान सर्वव्यापी हैं, यह जानकारी सभी को होती है, किन्तु उसके विश्व व्यापी विराट् रूप की अनुभूति बिरलों को ही हो पाती है। नारी में यह क्षमता पुरुष की अपेक्षा अधिक है। जब भगवान राम बालक के रूप में अवतरित हो गये, तब पिता दशरथ नहीं कौशल्या ही उनका विराट् रूप देखने में सफल हो सकीं। प्रभु ने उन्हें ही वह दिव्य दर्शन दिये।

देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखण्ड।
रोम-रोम प्रति लागे, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड॥

उन्होंने माता को अपना अद्भुत रूप दिखलाया जिसके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

नारी की इस क्षमता के समर्थन में रामायण का एक और प्रसंग बड़ा मार्मिक है। रावण अपने अहंकारवश श्रीराम को साधारण मनुष्य मानकर तकरार बढ़ाता चला जाता है। रावण अद्वितीय विद्वान था। किन्तु अभिमान ग्रस्त अन्तःकरण के कारण सूक्ष्म दृष्टि का उसमें अभाव है। परन्तु मन्दोदरी वह दृष्टि रखती हैं, तथ्य को देखती हैं तथा रावण को समझाते हुए उससे अपनी अनुभूति पर विश्वास करने का आग्रह करती है—

विश्व रूप रघुवंश मनि, करहु बचन विस्वासु।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु॥

मेरे वचनों पर विश्वास कीजिये कि ये रघुकुल के शिरोमणि श्रीरामचन्द्र जी विश्व रूप हैं यह सारा विश्व उन्हीं का रूप है। वेद जिनके अंग-अंग में अनेक लोकों की कल्पना करते हैं।

इस आग्रह के साथ मन्दोदरी ने ईश्वर के विराट् रूप का जो वर्णन किया है, उसे देखकर लगता है कि उसे पुरुष सूक्त में वर्णित भगवान के स्वरूप की प्रत्यक्ष अनुभूति थी। भगवान के दार्शनिक स्वरूप का इतना अच्छा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

दुःख और उत्तेजना के क्षणों में भी विवेक का संतुलन बनाये रखना असामान्य आन्तरिक क्षमता का प्रमाण माना जाता है। नारी उस पक्ष से भी कमजोर नहीं है। धनुष यज्ञ के प्रसंग में जब यह लगा कि कोई भी वीर सीता के विवाह की शर्त पूरी नहीं कर पा रहा है तो राजा जनक जैसे ज्ञानी भी उत्तेजित हो उठे। जब श्रीराम धनुष उठाने के लिये खड़े हुए तो उन्हें बच्चा कहकर, उनके प्रयास को अनुचित कहा जाने लगा, किन्तु उस बाल वेश के पीछे झलकती तेजस्विता देखने वाली नारी उस समय बोल उठती है।

बोली चतुर सखी मृदु बानी।
तेजवंत लघु गनिअ न रानी॥

एक चतुर सखी कोमल वाणी से बोली, हे रानी! तेजवान को देखने में छोटा होने पर भी, छोटा नहीं गिनना चाहिये।

उस सखी ने कुम्भज ऋषि द्वारा समुद्र सुखा डालने, सूर्य द्वारा अन्धकार निवारण, छोटे से मन्त्र की अद्भुत शक्ति, अंकुश द्वारा मस्त हाथी को वश में कर लेने जैसे उदाहरण देकर श्रीराम द्वारा धनुष के तोड़े जाने की सम्भावना प्रकट की, जो सत्य प्रमाणित हुई।

नारी की आन्तरिक, भावनात्मक तथा व्यावहारिक क्षमताओं को भुलाकर उसे विवेकहीन, पिछड़ी हुई बुद्धि वाली, कोर भावुक मानना बड़ी भारी भूल है। नारी में आज जो बौद्धिक पिछड़ापन तथा अनुत्साह दिखाई देता है, वह स्वाभाविक नहीं है। वह तो लम्बे समय तक बन्धन में रहने, निष्क्रिय पड़े रहने की प्रतिक्रिया ही है। अच्छी से अच्छी धातु का औजार भी उपेक्षित पड़ा रहने पर खराब हो जाता है। शरीर का कोई भी अंग लम्बे समय तक बाँध कर छोड़ दिया जाय तो वह खुलने पर भी काम करने में असमर्थ लगेगा। नारी की वर्तमान निष्क्रियता भी यही है। स्वभावतः तो हर क्षेत्र में वह अनौखे कमाल दिखाई रहती है।

रामायण में ज्ञान और विवेक की तरह भक्ति और तप के सम्बन्ध में भी नारी के अपने ही कीर्तिमान हैं। शबरी महिला थी, वह भी भीलों जैसी अविकसित जाति की, उस पर भी परिवार से परित्यक्ता एकाकी जीवन बिताने वाली। किन्तु उसने साधना के जिस स्तर को पाया, उसकी समानता अन्यत्र मिलना कठिन है। स्वयं भगवान उसके यहाँ गये और उसकी महानता स्वीकार की।

श्रीराम सीता की खोज में थे। कवन्ध राक्षस से उनकी मुठभेड़ हो गयी। वह शापग्रस्त देता था। भगवान राम के हाथों मरकर अपने मूल स्वरूप को पा गया। तब उसने सीता की खोज के लिये श्रीराम को शबरी की सहायता लेने का परामर्श दिया। शबरी का परिचय देते हुए कहता है—

स चाऽऽस्य कथयामास शबरी धर्मचारिणीम्।
श्रमणीं धर्मनिपुणाम भिगच्छेति राघवम्॥

अर्थात्-हे राघव! आप शबरी के पास जाइये, वह धर्म का आचरण करने वाली, सन्यासिनी, धर्म की मर्मज्ञ है, वह आपको इस विषय में बतलायेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शबरी के लिये 'श्रमणी', 'धर्मचारिणी' और 'धर्मनिपुणा' जैसे श्रेष्ठ विशेषण लगाने के बाद भी ऋषि बाल्मीकि को कमी लगी । अस्तु भगवान राम की दृष्टि में उसे आगे और बढ़ाया । लिखा है—

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धासिद्धसम्मता ।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्युपस्थिता ॥

जब रामचन्द्रजी से शबरी ने ये प्रश्न किये तब सिद्ध पुरुषों को मान्य वह वृद्धा तपस्विनी श्रीराम से कहने लगी ।

वह स्वयं सिद्ध थी और अन्य सिद्धों से उसे मान्यता प्राप्त थी । स्पष्ट है कि उस समय का समाज नारी को धर्माचरण में अनाधिकारी नहीं मानता था । शबरी जैसी नारी से सिद्धों के मार्ग पर असाधारण ऊँचाई तक बढ़ने की क्षमता के बारे में कोई शंका नहीं की जा सकती । यही तथ्य तुलसीदास कृत रामचरितमानस में भी प्रकट होता है । भगवान श्रीराम उससे अत्यधिक प्रभावित होते हैं । अभिमान से कोसों दूर रहने वाली उस साधिका को शायद स्वयं भी अपनी उपलब्धियों का पता नहीं था । राम ने उसे भक्ति के नौ अंग बतलाये तथा स्वीकार किया कि उसमें भक्ति के सभी लक्षमण हैं । वे कहते हैं—

सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे ।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥

हे भामिनि ! सामान्य भक्त भी मुझे अत्यन्त प्रिय है, फिर तुझमें तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ हैं ।

भक्ति साधना में नारी की प्रमाणिकता का इससे अच्छा और क्या प्रमाण चाहिये ?

शबरी की सिद्धि का प्रमाण भी इसी प्रसंग में मिलता है । उसे भविष्य के चरण जैसे पहले से ज्ञात हैं । वह कहती है—

पंपा सरहिं जाहु रघुराई ।
तँहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥

बिना किसी झिझक-संकोच के वह उन्हें पंपा सरोवर जाने को कहती है । सुग्रीव से श्रीराम की मित्रता तथा उस माध्यम से सीता की खोज होने की जानकारी उसे पहले से थी । स्पष्ट है कि वह भक्त थी, तपस्विनी थी और सिद्धा थी ।

तपस्या की चर्चा उठते ही, दिमाग में तुरन्त भागीरथ का नाम आ जाता है । वे अपने तपबल से गंगा को ले आये थे । किन्तु उसी स्तर की तपस्विनी महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूइया भी हैं, यह कम लोगों को ही ज्ञात होगा । महर्षि अत्रि ने चित्रकूट क्षेत्र के विकास के लिये वहाँ रहने का निश्चय किया, किन्तु वहाँ पानी का अभाव था । अनुसूइया ने उन्हें इस अभाव को दूर करके उस पुण्य कार्य को तेजी से आगे बढ़ाने का संकल्प लिया । अपने तप बल से उन्होंने मन्दाकिनी को उस क्षेत्र में प्रवाहित कर दिया । मन्दाकिनी को भी गंगा की एक धारा माना गया है । श्रीराम के वनवास के समय चित्रकूट पर निवास करने का निर्देश देते हुए महर्षि बाल्मीकि जी ने यह प्रकट किया है । उन्हीं के शब्द हैं—

नदी पुनीत पुरान बखानी ।
अत्रिप्रिया निज तप बल आनी ॥

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूइयाजी तपोबल से लायी थीं ।

यह प्रशंसा नारी की तप शक्ति का बड़ा प्रेरक प्रमाण है किन्तु मानस में तो नारी को तपस्या क्षेत्र में अद्वितीय कह दिया गया है । इस प्रसंग में तो भगीरथ जी अनुसूइया के समकक्ष मिल भी जाते हैं, परन्तु पार्वती का तप देखकर स्वयं ब्रह्माजी कहते हैं—

अस तप काहु न कीन्ह भवानी ।
भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी ॥

हे भवानी ! धीर, मुनि और ज्ञानी बहुत हुए है, पर ऐसा कठोर तप किसी ने नहीं किया ।

तपस्या का क्षेत्र कठिन समझा जाता है । कठोर कार्य पुरुषों के उपयुक्त समझे जाते हैं । किन्तु यहाँ नारी उस क्षेत्र में भी अनुपम सिद्ध हो रही है । देवी पार्वती ही नहीं, सामान्य महिलायें भी श्रेष्ठतम तपस्वियों में रही हैं । सीता-खोज के प्रसंग में स्वयंप्रभा नामक अद्भुत शक्ति सम्पन्न तपस्विनी का विवरण मिलता है । जब वानर वीर सीता का कोई सूत्र न मिलने से हताश होने लगे तथा प्यास से व्याकुल हो गये तब वे एक कन्दरा में गये । वहाँ उन्हें एक सुन्दर आश्रम में तपस्विनी के दर्शन हुए ।

दीख जाई उपवन बर सर बिगसित बहु कुंज ।
मन्दिर एक रुचिर तँह, बैठि नारि तप पुंज ॥

अन्दर जाकर उन्होंने एक उत्तम उपवन (बगीचा) और तालाब देखा, जिसमें बहुत से कमल खिले हुए हैं । एक सुन्दर मन्दिर है, जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह तपस्या की साक्षात् मूर्ति ही स्वयंप्रभा थी । उसने वानर वीरों को भोजन, विश्राम की सुविधा देकर उनकी थकान दूर की और आश्वासन देकर उनका मनोबल बढ़ाया । उन्हें रास्ता बताते हुए कहा—

मूँदहु नयन बिबर तजि जाहू ।
पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥

तुम लोग आँखे मूँद लो और गुफा छोड़कर बाहर जाओ । तुम सीता को पाओगे, पछताओ नहीं (निराश मत होओ) ।

उस तपस्विनी ने वानरों को अपने तपोबल से ही समुद्र के किनारे पहुँचा दिया, जहाँ सम्पाती द्वारा उन्हें सीता का पता मिला । इस प्रकार सीता की खोज में वानर वीरों का मार्गदर्शन यह तपोबल सम्पन्न नारी ही करती है ।

यहाँ परम्परावादी यह तर्क उठा सकते हैं कि एकाध कोई महिला उस स्थान तक पहुँच गयी इसका अर्थ यह नहीं होता कि सभी में ऐसी क्षमता होती है । यह भी अपनी मान्यता न बदलने वाला कुतर्क ही है । मान लीजिये कोई भारतीय कुश्ती में विश्व स्तर पर कीर्तिमान स्थापित करता है, अपना रिकार्ड कायम करता है । अब यह कहा जाय कि यह तो एक भारतीय ने रिकार्ड तोड़ लिया, वैसे भारत में कोई कुश्ती लड़ता ही नहीं है और न वहाँ के लोग इस योग्य हैं कि उन्हें कुश्ती लड़ने दीया जाये, तो लोग हँसेंगे । किन्तु नारी के सम्बन्ध में इतने स्पष्ट प्रमाण मिलने पर भी ऐसे ही बेकार के तर्कों के आधार पर उसे इस क्षेत्र के अयोग्य ठहराया जाता है । सज्जनता का तकाजा है कि इस भूल को स्वीकार किया जाये । कम से कम नारी को प्रतिबन्धित तो नहीं रखा जाये ।

वैसे उसकी तेजस्विता की परम्परा इतनी स्पष्ट है कि कोई भी समझदार व्यक्ति उससे इन्कार नहीं कर सकता । वरदान, आशीर्वाद बहुतों ने बहुतों को दिये होंगे, किन्तु मातृ स्वरूपा शक्ति की वरदान क्षमता भी अद्भुत है । हनुमान पर प्रसन्न होकर सीतीजी अशोक वाटिका में उन्हें आशीर्वाद देती हैं—

अजर अमर गुननिधि सुत होहू ।
करहु बहुत रघुनायक छोहू ॥

पुत्र ! तुम अजर-अमर और गुणों के खजाने हो । श्रीरघुनाथजी तुम पर बहुत कृपा करें ।

रामायण में वरदान, आशीर्वाद बहुत दिये गये हैं किन्तु सभी जगह आग्रह पर, पूछ-पूछकर, एकाध गुण दिया जाता है । यह मातृ शक्ति ही है कि बुढ़ापा रहित अमरता के साथ सारे गुणों का भण्डार भी एक साथ बिना माँगे ही दे देती हैं । किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह चाहे जिसे चाहे जो वरदान दे देती है । सीताजी ने पहले हनुमानजी की परीक्षा ले ली थी । जब उनमें सुपात्रता देखकर उन्हें संतोष हो गया तभी उन्होंने वरदान दिया था । सीता ने उनसे अनेक बार प्रश्न किये और हनुमान के उत्तर उन्हें संतोषप्रद लगे—

मन सन्तोष सुनत कपि बानी ।
भगति, प्रताप, तेज बल सानी ॥

हनुमान की भक्ति, प्रताप, तेज और बल से ओत प्रोत वाणी सुनकर सीताजी के मन में संतोष हुआ ।

हनुमानजी में प्रतिभा, योग्यता और शक्ति के साथ भक्ति अर्थात् आदर्श के प्रति समर्पण की भावना देखकर ही उन्हें सीताजी ने सुपात्र माना । सत्पात्र को तो बिना माँगे ही दिया जाना उचित है ।

नारी की इस क्षमता और गौरव गरिमा के अनुकानेक प्रमाण रामकथा में मिलते हैं । यदि वस्तु स्थिति को देखा और समझा न जाये तथा अपनी गलत-सलत मान्यताओं से ही चिपके रहा जाये तो स्थिति दिनों-दिन और बिगड़ती ही जायेगी, इसमें कोई संदेह नही है ।

यदि अपनी गलत मान्यताओं से ही चिपके रहने में हम अपनी शान समझते हैं, तब तो ईश्वर ही मालिक है । फिर तो नारी को घरेलू खिलौना, पालतू पशु अथवा वासना पूर्ति की मशीन से कुछ भी अधिक मानने के लिये, उसे विकसित बनाकर उसका अधिक लाभदायक उपयोग करने के लिये हम कभी तैयार नहीं होंगे । भले ही समय की माँग और न्याय के पक्ष के विपरीत जाने के कारण हम अपना सर्वनाश ही क्यों न कर बैठें ? यह हठधर्मी न नर के लिये लाभदायक होगी और न नारी के लिये । किन्तु यदि हम समझना चाहें तो बड़ी आसानी से समझ सकते हैं कि नारी किसी महत्वपूर्ण स्थल पर दायित्व सँभालने में सक्षम है । रामचरितमानस में तो हर टेढ़े प्रसंग पर नारी को ही नियुक्त किया जाता है ।

एक प्रसंग है जब सुग्रीव बालि की मृत्यु के बाद राजा बन गये तथा राज्य सुखों में श्रीराम का कार्य भूल गये तब लक्ष्मण जी क्रोधित होकर किष्किन्धा पहुँचे । उन्हें क्रोधित देखकर सब लोग काँप उठे । तब सुग्रीव कहते हैं—

सुनु हनुमंत संग लै तारा ।
करि विनती समुझाउ कुमारा ॥

हे हनुमान ! सुनो, तुम तारा को साथ ले जाकर विनती करके राजकुमार को समझा-बुझाकर शान्त करो ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तारा को यों ही नहीं भेज दिया गया । वह बड़ी विदुषी और व्यवहार कुशल थी । उसने अपने स्नेह और चतुराई से लक्ष्मणजी को पानी-पानी कर दिया । वाल्मीकि रामायण में इसका विस्तार से वर्णन मिलता है । उसने लक्ष्मण को बड़ी कुशलता से समझाया कि सुग्रीव, तुम्हारे बड़े भाई के मित्र के नाते तुम्हारे आदर्णीय हैं । उनके प्रति अभद्र व्यवहार शोभा नहीं देता और भाभी के अनुरूप सहज स्नेह प्रकट करके अन्दर ले जाकर बिठाला और कहा कि कोई भूल हुई हो तो हम शान्ति से उसका सुधार कर लेंगे, आप उत्तेजना छोड़ दें । इस प्रकार तारा ने सारे नगर को भय मुक्त कर दिया ।

एक और विषम परिस्थिति देखिये । महावीर हनुमानजी सीता की खबर लेने अकेले ही लंका के लिये चल पड़े । देवताओं में खलबली मच गयी । जिस रावण के डर से लोकपालों का खाना-पीना हराम हो रहा है, उसके दुर्ग में अकेले हनुमान का क्या हाल होगा ? सोचा कि इतना बड़ा खतरा उठाने के योग्य है या नहीं इस बात की परीक्षा कर ली जाये, तभी उन्हें लंका में प्रवेश करने दिया जाये । इस कठिन परीक्षा और अति महत्वपूर्ण निर्णय का भार सौंपा गया किसी पुरुष को ? नहीं एक नारी को, सुरसा को । उन्होंने हनुमान की बड़ी उपयुक्त परीक्षा ली, तब उसने अपना रहस्य खोलते हुए कहा–

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा ।
बुद्धि बल मरमु तोर मैं पावा ॥

मैंने तुम्हारे बुद्धि बल का भेद पा लिया, जिसके लिये देवताओं ने मुझे भेजा था ।

यही नहीं, उसने विश्वासपूर्वक यह घोषणा भी कर दी कि तुम अकेले ही लंका में जाकर राम कार्य करने में सफल हो जाओगे । अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति पर इतने विश्वासपूर्वक घोषणा वही कर सकता है जो अपने विषय का माहिर हो । सुरसा का आत्म-विश्वास गलत नहीं निकला । हनुमानजी उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण ही होते चले गये । इस प्रसंग में हनुमानजी जितने प्रामाणिक सिद्ध होते हैं, सुरसा भी उससे कम नहीं, अधिक ही प्रमाणिक सिद्ध होती है ।

नारी की प्रमाणिकता का एक और बड़ा मजेदार और प्रेरक प्रमाण रामायण में है । देव के लिये भी अजेय राक्षसराज रावण ने अपने दुर्गम किले के एक मात्र दरवाजे पर किसी पुरुष की अपेक्षा एक नारी को नियुक्त कर रखा था । हनुमान लंका में प्रवेश पाने के लिये मच्छर के समान छोटा शरीर बनाकर घुसते हैं किन्तु उसकी निगाह से बच नहीं पाते ।

नाम लंकिनी एक निसिचरी ।
सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥

लंका के द्वार पर 'लंकिनी' नाम की एक राक्षसी रहती थी । वह बोली मेरा निरादर करके बिना मुझसे पूछे कहाँ चला जा रहा है ?

श्रीराम की शक्ति से विभूषित हनुमानजी से लंका के सारे राक्षस मिलकर भी पार न पा सके, अकेली लंकिनी बेचारी उन्हें कैसे रोक पाती ? किन्तु रावण ने जिस विश्वास से उसे यह महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व दिया था, उसमें वह पूरी तरह खरी उतरती है ।

शौर्य के क्षेत्र में भी नारी के अपने कीर्तिमान हैं । सक्षम नारियाँ अपने पतियों के साथ युद्ध में भी जाती थीं । महाभारत काल में सुभद्रा की गणना महारथियों में थी । द्रौपदी भी उसी स्तर की नारी थी । कृष्णार्जुन युद्ध में अर्जुन की साथी वही बनी थी । कैकेयी द्वारा दशरथ की प्राण का प्रसंग सर्वविदित है ।

दशरथजी से वर माँगने के लिये कैकेयी को प्रोत्साहित करते हुए मंथरा उसके जीवन की घटना याद दिलाती है–

अपवाह्य त्वया देसि संग्रामान्नष्टचेतन ।
तत्रापि विक्षत शस्त्रै पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥

हे देवि ! देवासुर संग्राम में जब तुम्हारे पति शस्त्रों से घायल हो गये थे, तब अपने पौरुष से तुमने उनकी रक्षा की थी ।

इस प्रकार के उदाहरणों से यह बात साफ हो जाती है कि भारत की सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार नारी के किसी भी क्षेत्र में प्रवेश पर रोक नहीं है और वह सौंपे गये बड़े से बड़े कर्तव्य पालन में पूरी तरह सक्षम है । पुरुष तो बहककर अपनी क्षमताओं का गलत उपयोग कर बैठता है तथा समाज का अहित हो जाता है । किन्तु भाव सम्पन्न नारी तो स्वभावतः स्वार्थ से दूर, परमार्थ में सहज रुचि रखती है । रामायण की कथा भी नारी की इसी भावना के माध्यम से प्रवाहित हुई है । राम कथा के आदि वक्ता शिवजी कहे जाते हैं । उन्होंने कथा पार्वती के आग्रह पर कही थी । पार्वतीजी ने कथा कहने का आग्रह लोकहित के उद्देश्य से ही किया था । भारद्वाज को कथा की उत्पत्ति का प्रसंग सुनाते हुए याज्ञवल्क्यजी कहते हैं–

कथा जो सकल लोक हितकारी ।
सोइ पूछन चह सैलकुमारी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो कथा सब लोगों का हित करने वाली है, उसे ही पार्वतीजी पूछना चाहती हैं ।

नारी में लोकहित की भावना पुरुष की अपेक्षा अधिक ही होती है । उनके प्रयास इसी दिशा में विशेष होते हैं । इसके बाद वे अपने कथन का उद्देश्य बतलाती हुई कहती हैं—

सुनु सीता तब नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहीं ।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥

हे सीता सुनो ! तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेंगी । तुम्हें तो श्रीराम प्राणों के समान प्रिय हैं, यह कथा तो तुम्हारे माध्यम से मैंने संसार के हित के लिये कही है ।

संसार के कल्याण के लिय कही गयी कथा में से भी हम यदि अकल्याणकारी स्तर निकालने का प्रयास करें तो इससे बड़ी बिडम्बना और क्या होगी ? शास्त्रों और रामायण जैसे ग्रन्थों के हवाले देकर नारी को हीन सिद्ध करना, उसे प्रतिबन्धित करना, अपने साथ और अपनी संस्कृति के साथ स्पष्ट अन्याय है । प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट है कि रामायण में नारी के चरम उत्कर्ष के प्रमाण सभी जगह मिलते हैं । यह होना स्वाभाविक ही है क्योंकि सन्त तुलसीदास ने उसमें नारी पात्र सीता को भगवान राम से भी अधिक महत्व दिया है । वन्दना प्रसंग में ही उन्होंने मानस की उपमा एक पुण्य सरोवर से दी है । उसी आधार पर रामचरितमानस की विशेषताओं का रोचक वर्णन किया है । सरोवर की सबसे महत्वपूर्ण सम्पदा है उसका जल । सन्त तुलसतीदास ने इस मानस सरोवर का जल किसे माना —

"राम सीय जस सलिल सुधासम"

भगवान राम और देवी सीता का यश इस सरोवर का जल है । यहाँ राम और सीता का महत्व समान हैं, पर शायद लेखक को उसमें संतोष नहीं हुआ । इसीलिये आगे चलकर उन्होंने इस जल गुण का उल्लेख करते हुए घोषणा की—

सती सिरोमनि सिय गुन गाथा ।
सोइ गुन अमल अनूपम पाथा ॥

सती शिरोमणि सीताजी के गुणों का जो वर्णन है, वही इस जल का निर्मल और अनुपम गुण है ।

इतना सब सुनकर समझकर भी यदि हम नारी की महत्वा न समझें, उसके उत्कर्ष की आवश्यकता और औचित्य को न मानें तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या हो सकता है ? कौशल्या, सीता, मन्दोदरी, स्वयंप्रभा, शबरी, अनुसूइया जैसी देवियों के उज्ज्वल चरित्रों को सुनकर हमारे मन में उत्साह जाग सकता है । महिलायें स्वयं वैसा बनने और पुरुष अपनी बहिन-बेटी पुत्री, पत्नी एवं माता को उस स्तर पर देखने के लिये लालायित हो उठें यह स्वाभाविक ही है । किन्तु इस प्रकार मन ललचाना भर काफी नहीं है । विकास की कीमत चुकानी पड़ती है । इन देवियों ने यह स्तर और समाज ने उनका लाभ यों ही नहीं पा लिया था । उन्हें आगे बढ़ने के लिये अवसर, सहयोग और प्रोत्साहन न दिया जाता या वे स्वयं मुर्दा दिल बन कर बैठी रहतीं तो कुछ भी होना संभव नहीं था । कामनायें ऊँची-ऊँची करने भर से क्या होने वाला है ? जब तक महिलायें अपने विकास के लिये स्वयं दृढ़ संकल्प नहीं होंती, उनके लिये कष्ट उठाकर भी प्रयत्न पुरुषार्थ करने का साहस पैदा नहीं कर लेतीं, जब तक पुरुष वर्ग उन्हें घर से बाहर निलकने देने में अपनी तौहीन समझता है, शिक्षित और स्वावलम्बी बनाने में धर्म का उल्लंघन होता दीखता है, तब तक ये कल्पनायें बेकार साबित होंगी ।

समझदारी और विवेकशीलता का तकाजा है कि स्थिति को समझा जाये और जो हानिकारक है उसे सुधारने, उस स्थिति से आगे बढ़ने के लिये प्रयत्न किया जाये । यदि यह नहीं किया गया तो समाज और राष्ट्र पतन के गर्त में किस स्थिति में जा गिरेंगे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता । इसके साथ ही इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि नारी को यदि विकास और उन्नति के समुचित अवसर प्रदान किये जायें, उसे आगे बढ़ने में कोई रुकावट न डाली जाये और वर्तमान अवरोधों को हटाया मिटाया जाये तो समाज आज भी उन्नत स्थिति में पहुँच सकता है और राष्ट्र का भाल गौरवोन्नत हो सकता है । हम अपनी प्राचीन गौरव गरिमा को पुनः प्राप्त कर सकते हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

महिलाओं के प्रति मान्यता सुधारें

मनुष्य की एक बहुत बड़ी आवश्यकता उसका विवेक है। जब तक वह उसका उचित उपयोग करता रहता है, तब तक हर पक्ष से गौरव और प्रगति पाता रहता है, लेकिन जब प्रमादवश, अहंकार के कारण अथवा परम्पराओं के दबाव में आकर विवेक की उपेक्षा होने लगती है तो तरह तरह के अनर्थ खड़े होने लगते हैं। समाज में थोड़े-बहुत मूर्ख हमेशा रहे हैं और रहेंगे। वह अपने स्तर से कुछ न कुछ अटपटी बातें और ऊटपटाँग काम किया करते हैं। विवेक के अभाव में उन्हें भी परम्परा, लोकरीति मानकर समर्थन दिया जाने लगता है। जैसे जैसे ऐसी गलत परिपाटियों की और उनके मानने वालों की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे वैसे ही समाज में उल्टे परिणाम सामने आने लगते हैं।

नारी के प्रति जनसाधारण की मान्यतायें इसी ढंग से बिगडी हैं। जब हमारी भारतीय संस्कृति में नारी को देवी, गृहलक्ष्मी, पूज्य माना गया है तो फिर उसे तिरस्कृत, उपेक्षित, हीन और घटिया स्तर की मानने की कोई तुक ही नहीं है। लगता यह है कि अहंकारी पुरुष वर्ग द्वारा नारी की सरलता, सज्जनता और दिव्य, गुणों का गलत अर्थ लगाया जाने से यह स्थिति पैदा हुई। नारी में सेवा और समर्पण का भाव स्वाभाविक रूप से होता है। विवेक के अभाव में उन्हें लाचारी और मजबूरी समझा जाने लगा। उसकी नम्रता को उसकी कमजोरी और अयोग्यता की प्रतिक्रिया मान लिया गया। इन गलत मान्यताओं का न किसी ने प्रतिवाद किया, न स्पष्टीकरण किया और नारी के सम्बन्ध में पुरुष वर्ग ही नहीं, स्वयं वह अपने आपको अयोग्य, दीन, मजबूर और लाचार मानने लगी। नारी के सम्बन्ध में पुरुषों की और स्वयं नारी की यह हीन मान्यता बदली जानी आवश्यक है। नम्रता और शालीनता के नाते अपने को छोटा कहना उचित हैं। पर उस कथन को सिद्धान्त रूप में मान्यता दे देना बड़ा भारी अनर्थ है।

उदाहरण के लिये शबरी का प्रसंग लें। भगवान राम जब उसके पास पहुँचते हैं तो वह भाव विभोर होकर उनका स्वागत करती है और उनके आने का आभार मानती हुए कहती है—

कहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी ।
अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥
अधम तें अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह मँह मैं मति मंद अनारी ॥

हे पापनाशक प्रभु ! मैं आपकी वन्दना कैसे करूँ ? मैं तो जड़ बुद्धि हूँ। महा अधम नारियों में भी मन्द बुद्धि की हूँ।

शालीनता एवं शिष्टाचार अथवा नम्रता एवं भावुकता के नाते यह सब कथन उचित भी हैं — माननीय भी। किन्तु इस कथन को सुनकर राम उसे महानीच मान लें या स्वयं शबरी अपने को इतना निकृष्ट बना ले कि दूसरों को उसे नीच कहने का अवसर मिले तो यह अनर्थ ही हो गया। उस समय ऐसा नहीं हुआ क्योंकि किसी की शालीनता का दुरुपयोग करके अपने झूँठे अहंकार को बढ़ाने की परम्परा से वे पात्र मुक्त थे। शबरी क्या थी ? उन्हें पता था, वाल्मीकि रामायण में कबंध ने श्रीराम को शबरी का परिचय देते हुए कहा—

श्रमणी शबरी नाथ काकुत्स्थ चिर जीवनी ।
त्वां तुधर्मे स्थिवा नित्यं सर्वभूतनमस्क्रम ॥

हे कुकुत्स्थ वंशी श्रीराम ! शबरी नाम की संन्यासिनी दीर्घ आयु वाली, धर्म में दृढ़ तथा सबसे सम्मान पाने योग्य है।

कबंध ने शबरी को सर्व भूतनमस्क्रम सबसे सम्मान पाने योग्य यों ही नहीं कह दिया। शबरी की साधना, उसका आचरण था ही इतना श्रेष्ठ कि स्वयं श्री राम भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके। अपने को मन्द बुद्धि कहने वाली शबरी ने उन्हें जो सलाह दी, उसे उन्होंने सादर स्वीकार किया और उस पर चलकर सफलता भी पायी। उस अधम से अधम में यह क्षमता थी कि उसने स्वेच्छा से योगाग्नि द्वारा शरीर त्याग करके परम गति पायी।

वाल्मीकि जी लिखते हैं—

यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षय ।
तत्पुण्यंशबरी स्थानं जगामात्म समाधिना ॥

जहाँ श्रेष्ठ कृत्य करने वाले महर्षि आदि विहार करते हैं वहाँ अपने समाधि बल से वह शबरी जा पहुँची।

शबरी के इस प्रसंग से नारी के सम्बन्ध में उसकी उक्ति और उसकी सामर्थ्य का अन्तर स्पष्ट समझ में आता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक और उदाहरण लें । धनुष यज्ञ के बाद चारों भाइयों का विवाह हो चुका है । माता सुनैना बेटी की विदा के लिये तैयार है । श्रीराम को बुलाकर स्नेह प्रकट करती है और अपनी बेटी सीता को राम के हाथ में सौंपकर नम्रता प्रदर्शित करती हैं—

परिवार पुरजन मोहि राजहिं, प्रान प्रिय सिय जानकी ।
तुलसी सील सनेह लखि, निज किंकरी कर मानवी ॥

अर्थात्— परिवार को, पुरवासियों को, स्वयं को और राजा को सीता प्राणों के समान प्रिय है, ऐसा जानियेगा । हे तुलसी के स्वामी राम, इसके शील और स्नेह को देखकर इसे अपनी दासी करके मानियेगा ।

अनुदान देकर भी अहंकार नहीं नम्रता प्रकट करना हमारी सांस्कृतिक परम्परा है । कन्या पक्ष यदि इसका निर्वाह करे तो वह सराहनीय ही कहा जायेगा । किन्तु कन्या पक्ष की इस शिष्ट नम्रता को उनकी लाचारी मानना भारी भूल है । इस नम्रता को कन्या के सुख के लिये प्रार्थना या चापलूसी मानकर समय का लाभ उठाये ऐसा कोई नहीं । यदि कहीं ऐसा होता है तो वह विवेकहीनता का प्रमाण ही कहा जा सकता है । जहाँ एक आदर्श मानवीयता का परिचय दे और दूसरा पक्ष इन आदर्शों को त्याग कर अमानवीयता का प्रदर्शन करे यह कहाँ तक न्याय संगत है ? हमारी सनातन परम्परा है कि वर पक्ष वाले भी, कन्या पक्ष वालों के प्रति स्नेह, सद्भावना तथा नम्रता, शिष्टाचार का व्यवहार करते हैं । स्वयं भगवान राम ने इस आदर्श को प्रस्तुत किया है । वे बेटी वाले को लाचार एवं दीन नहीं मानते वरन् उनके इस अनुदान के प्रति कृतज्ञतापूर्ण व्यवहार करते हैं । सास-ससुर को अपने स्वयं के माता पिता के समान सम्मान देते हैं ।

सासु समीप गये दोऊ भाई ।
फिरे बन्दि पग आसिष पाई ॥

तब श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई सास के पास गये और उनको प्रणाम करके आशीर्वाद पाकर लौट आये ।

जिसने अपनी कन्या बिना शर्त दी है उसके प्रति सम्मान व्यक्त करना सभ्य व्यक्तियों के लिये उचित है । यही क्रम आगे चलता है, माता सुनैना के नम्रता और भावुकता में कहे शब्दों का लाभ उठाकर कन्याओं के साथ नौकरानियों जैसा व्यवहार कोई नहीं करता । उन्हें पूरा सम्मान और भरपूर स्नेह दिया जाता है । स्वयं राजा दशरथ इसका आदर्श प्रस्तुत करते हैं ।

नृप सब भाँति सबहि सनमानी ।
कहि मृदु वचन बोलाई रानी ॥
बधू लरकिनी पर घर आई ।
राखेहुँ नयन पलक की नाईं ॥

राजा ने सभी तरह से सबका सम्मान किया और कोमल वचन कहकर सभी रानियों को बुलाया और कहा— बहुयें अभी बच्ची हैं । पराये घर आयी हैं । इनको इस तरह से रखना जैसे नेत्रों के पलकें रखती हैं अर्थात्-इनको सभी तरह से सुख पहुँचाना ।

रामायण में सीता या किसी भी बहू का थोड़ा भी अपमान नहीं होने पाता है । उसके लिये बहुओं के आचरण और परिजनों की सज्जनता दोनों को श्रेय दिया जाना उचित है । यदि कहीं इस मर्यादा का उल्लंघन होता दिखाई देता है, वहीं अपने गौरव के प्रति सजग नारी पुरुषों को भूल सुधार के लिये टोकती भी है । रामायण में श्रीराम ने रावण विजय के बाद सीता के गौरव के प्रतिकूल कुछ शब्द कह दिये तो उन्होंने श्रीराम को उनकी मर्यादा का ध्यान दिलाते हुए कहा है—

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम ॥

हे नरशार्दूल ! तुम भी क्रोध के वशं में होकर नारी के साथ ओछे मनुष्यों जैसा व्यवहार करने लगे ।

सीता द्वारा श्रीराम को सावधान किया जाना सब प्रकार से उचित है । मर्यादा भंग करने से स्वयं राम की प्रतिष्ठा पर आँच आ जाती । क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष तो क्रोध में भी नारी के सम्मान का ध्यान रखते हैं । इसके प्रमाण स्वरूप किष्किन्धा काण्ड का एक प्रसंग है । सुग्रीव राज्य पाकर सीता की खोज उत्तरदायित्त्व की उपेक्षा करने लगे तो लक्ष्मण क्रुद्ध होकर नगर में जा पहुँचे ।

क्रोधित लक्ष्मण को शान्त करने के लिये तारा को भेजते हुए सुग्रीव ने उससे कहा—

त्वदर्शनविशुद्धात्मा न स कोपं करिष्यति ।
न हि स्त्रीषु महात्मान क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ॥

लक्ष्मण जी शुद्ध अन्तःकरण वाले हैं अतः वे तुझे देख कुपित न होंगे । क्योंकि महात्मा लोग (अर्थात् सभ्य लोग) स्त्रियों के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते ।

सुग्रीव के कथनानुसार ही हुआ । लक्ष्मण ने तारा को देखते ही अपने को संयत कर लिया—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स ता समीक्ष्यैव हरीशपत्नी,
तस्थावुदासीनतया महात्मा ।
अवांगमुखोऽमून्मनुजेन्द्र पुत्रः,
स्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥

उस समय वीरवर राजकुमार लक्ष्मणजी कपिराज की पत्नी को देखकर उदास हुए और नीचा मुख कर खड़े रहे । तारा को देखकर उनका क्रोध भी दूर हो गया ।

नारी के प्रति ऐसा सहृदयता भरा दृष्टिकोण रखना उचित भी है और आवश्यक भी । भारतीय संस्कृति में नारी त्याग मूर्ति बनकर उभरती है । वह ईमानदारी से सम्मान देती है तो उसे सम्मान पाने का भी हक है । नारी द्वारा आज भी पुरुष वर्ग को काफी सम्मान दिया जाता है । उसमें पवित्रता का दृष्टिकोण भी रहता है । इसमें यदि कमी भी दीखती है तो वह सिर्फ इसलिये कि पुरुष वर्ग नारी के दुरुपयोग पर ही तुल गया है । उसके कारण नारी या तो उसके गलत दृष्टिकोण से समझौता कर लेती है या फिर उसके अन्दर विद्रोह के, बगावत के, भाव फूटने लगते हैं । दोनों ही स्थितियों में नारी की दृष्टि में अन्तर पड़ जाता है । लेकिन स्वभावतः नारी की पवित्रता, सौम्यता से अधिक निकट का सम्बन्ध है । रामायण में उसकी गणना पवित्रतम वस्तुओं में की जाती है और उसे वैसी ही प्राथमिकता दी जाती है जिस समय अयोध्यावासी श्रीराम को लौटा लाने के लिये भरतजी के साथ चित्रकूट रवाना होते हैं तो उनमें श्रेष्ठता के नाते वशिष्ठ जी को आगे किया जाता है लेकिन वे देवी अरुन्धती और यज्ञ के साज-सामान को अपने से भी आगे रखते हैं ।

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥

सबसे पहले अरुन्धती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित मुनिराज वशिष्ठजी रथ पर सवार होकर चले ।

नारी को यज्ञीय साधनों के समान गिनना कोई अतिश्योक्ति नहीं है । सच्चे अर्थों में नारी का सारा जीवन ही यज्ञमय होता है । उसे जितना योग्य और समर्थ बनाया जायेगा वह उतने ही अधिक अनुदान समाज पर बिखेरती रहेगी । यह उसका स्वभाव है । इसीलिये उसके प्रति पवित्र दृष्टिकोण रखने का आग्रह श्रेष्ठ पुरुष करते रहे हैं । रामायण में सभ्य समाज के नागरिकों का यह स्वभाव तो हैं ही वानरों में भी ऐसा ही दृष्टिकोण विकसित किया जाता है । लंका विजय के बाद जब सीताजी को श्रीराम के पास लाया जाता है तो वे वानरों से कहते हैं—

देखउँ कपि जननी की नाईं ।
बिहँसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥

श्रीराम जी ने हँसकर ऐसा कहा कि सभी वानर सीता को मातृभाव से देखें ।

इन पवित्र भावनाओं को पुरुष धारण करें । नारी की शील रक्षा के लिये यह आवश्यक है । मध्यकाल में ही शील रक्षा के बहाने पर्दा करने और घर की चहारदीवारी में ही बन्द रखने की परम्परा चली । उसकी सामयिक उपयोगिता रही होगी, पर सभ्य समाज में न तो यह आज के लिये उपयुक्त है और न ही प्राचीनकाल में कभी इसका प्रचलन था ।

नारी के लिये पर्दा घृणित प्रथा है । रावण विजय के बाद विभीषण पालकी में पर्दा लगाकर सीताजी को राम के पास ला रहे थे । राम ने उसका विरोध करते हुए कहा—

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्रकारास्तिरस्क्रियाः ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥

स्त्रियों के लिये न घर, न चादर, घूँघट, न कनात आदि की चहारदीवार, न चिक आदि का पर्दा और न इस प्रकार की राज सत्कार ही आड़ (ओट) करने वाला है, जैसा कि तुम कर रहे हो ।

जो लोग सोचते हैं कि नारी के शील की रक्षा के लिये पर्दा आवश्यक है, उन्हें भगवान श्रीराम के विचार समझने चाहिये । वे किसी भी प्रकार के पर्दे को अनुचित मानते हैं और उसके स्थान पर नारी के प्रति पवित्र दृष्टि रखने का आग्रह करते हैं ।

वास्तव में स्वजनों की तो यही मर्यादा है, नारी के प्रति गलत दृष्टिकोण होना राक्षसों का लक्षण माना जाता है । उसका परिणाम भी विनाश के रूप में सामने आता है । रावण ने स्त्रियों पर बुरी दृष्टि डाली थी । उसका यह पाप उसे ले डूबा । जब वह मारा गया तो देवताओं ने उसकी दुर्गति देखकर उसके कुकर्मों को ही उसके नाश का कारण माना । वे कहते हैं—

बिस्व द्रोह रत यह खल कामी ।
निज अघ गयउ कुमारगगामी ॥

विश्व के द्रोह में तत्पर यह दुष्ट, कामी और कुमार्ग पर चलने वाला रावण अपने आप ही नष्ट हो गया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नारी के प्रति दूषित दृष्टिकोण रखना कितना बड़ा पाप समझा गया है इसका उल्लेख काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में साफ शब्दों में मिल जाता है। अनेक दोषों और उनके परिणामों की चर्चा करते हुए श्रीकाकभुशुण्डि जी कहते हैं–

काहू सुमति कि खल सँग जामी ।
सु भगति पावकि परत्रिय गामी ॥

दुष्टों के संग से क्या किसी को सुबुद्धि उत्पन्न हुई है ? परस्त्रीगामी क्या उत्तम गति पा सकता है ?

इस कथन से स्पष्ट होता है कि नारी शक्ति का दुरुपयोग वाले की सद्गति होना किसी भी स्थिति में सम्भव नहीं है। भगवान राम स्त्री के प्रति दुर्व्यवहार तो दूर उसके प्रति बुरी दृष्टि रखना भी दण्डनीय मानते हैं। बालि जब उनके बाण से आहत होकर गिर पड़ता है और उन पर अपने वध का दोष लगाता है तो वे बड़े स्पष्ट शब्दों में महिलाओं के प्रति कुदृष्टि रखने वालों को कड़ा दण्ड देने का औचित्य घोषित करते हैं। वे कहते हैं–

इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोइ ।
ताहि बधहिं कछु पाप न होई ॥

इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में कुछ भी पाप नहीं होता।

किसी को मारना तो क्या सताना भी पाप माना जाता है, लेकिन अनाचारी को मारना समाज के हित में होता है और वह पाप नहीं होता। नारियों के प्रति जहाँ कुदृष्टि रखी जायेगी वहाँ नारी शक्ति खुलकर जन सहयोग के लिये आगे नहीं आ सकती, विकसित नहीं हो सकती। भेड़ियों से भरे जंगल में कौन जाना पसंद करता है ? इसी प्रकार जहाँ मनुष्यों में नारी की पवित्रता को खा जाने की हविश होगी वहाँ नारी अपनी पवित्रता की रक्षा के लिये या तो सिकुड़-सिमट कर रह जायेगी या विद्रोही बनकर खड़ी हो जायेगी। यह दोनों ही स्थितियाँ दुर्भाग्य की निशानी हैं। दोनों ही हालतों में समाज नारी से मिलने वाले सहयोग और लाभ से हाथ धो बैठेगा। लेकिन जहाँ उसके प्रति पवित्र दृष्टि रखी जायेगी वहाँ वह हर दृष्टि से विकसित होगी, समाज को अपने सहयोग से लाभ पहुँचायेगी और हर अवसर पर आगे बढ़कर अपनी दिव्य क्षमताओं के द्वारा वातावरण में पवित्रता बिखेरेगी, रस का संचार कर देगी। इसीलिये भगवान राम अपने लोकमंगल के अभियान में नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण को सदैव महत्व देते रहे हैं और वैसा चरितार्थ होते देखकर संतुष्ट होते हैं। जब सीताजी विवाह मण्डप में प्रवेश करती हैं तो उनके प्रति जनसाधारण सम्मान का पवित्र भाव ही व्यक्त करते हैं। सीता जब प्रवेश करती हैं, उस समय लोगों की मानसिक प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

सबहि मनहिं मन किए प्रनामा ।
देखि राम भए पूरन कामा ॥

सभी ने उन्हें मन ही मन प्रणाम किया। श्रीरामचन्द्र जी यह देखकर सन्तुष्ट हुए।

निश्चित रूप से विवाह के समय नगर के सभी वर्गों के, हर उम्र के लोग रहे होंगे। लेकिन सभी उन्हें प्रणाम करते हैं, यह अयोध्या के नागरिकों की सज्जनता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रीराम श्रेष्ठ समाज की रचना के लिये प्रयत्नशील थे, उन्हें यह सत्प्रवृत्ति देखकर संतोष होना स्वाभाविक ही था। श्रीराम के बारे में यदि भगवान की भावना है तो फिर हर आस्तिक को उनकी प्रसन्नता के लिये नारी के प्रति पवित्र दृष्टि ही रखनी चाहिये। इस बात की पुष्टि और भी अनेक स्थानों पर होती है। वन में वाल्मीकि जी भगवान राम के रहने योग्य स्थानों के माध्यम से भक्तों के गुण बतलाते हैं। वहाँ उन्होंने नारी के प्रति पवित्र दृष्टि का उल्लेख विशेष रूप से किया है–

जननी सम जानहि पर नारी ।
धनु पराव विष ते विष भारी ॥

जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी है।

रामायण में एकांगी निर्देश नहीं है। जहाँ पुरुषों से नारी के प्रति पवित्र भाव रखने के लिये कहा गया है, वहाँ नारियों के लिये भी निर्देश हैं–

मध्यम परपति देखइ कैसे ।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

मध्यम श्रेणी की महिला पराये पति को कैसे देखतीं हैं, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। अर्थात् समान अवस्था वाले को वह भाई के रूप में देखती हैं, बड़े को पिता के रूप में और छोटे को पुत्र के रूप में देखती हैं।

जहाँ दोनों पक्ष अपने-अपने दृष्टिकोंण के प्रति जागरूक रहते हैं, वहाँ नारी के विकास तथा समाज में हर स्थान पर उपयोगिता का मार्ग खुल जाता है। अयोध्या में वैसा मंगलमय वातावरण देखने को मिलता है–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकल सुमंगल सजें आरती ।
गावहिं जनु बहु वेष भारती ॥

सभी सुन्दर मंगल द्रव्य एवं आरती सजाये हुए गा रही हैं, मानो सरस्वतीजी ही बहुत से वेष धारण किये हुए गा रही हों ।

यह है विकसित समाज का रूप जिसमें एक-दो नहीं हर नारी ज्ञान और गुणों की दृष्टि से सरस्वती जैसी दिखती है । उसकी योग्यता के विकास और उपयोग के लिये हर रास्ता खुला है, ऐसी स्थिति में नारी कल्याण की मूर्ति बन जाती है ।श्रीराम विवाह के समय भी यही रूप सामने हैं—

रचीं आरती बहुत विधाना ।
मुदित करहिं कल मंगल गाना ॥

शकुन और सुगन्धित वस्तुयें बखानी नहीं जा सकतीं । सब रानियाँ सम्पूर्ण मंगल साज सजा रही हैं । बहुत प्रकार की आरती बनाकर वे आनन्दित हुई सुन्दर मंगल गान कर रही हैं ।

मंगलमय प्रसंगों में महिलाओं को आगे रखा जाता है । शुभ चिन्ह लेकर वही खड़ी होती हैं । धार्मिक कर्मकाण्ड में भी नारी को प्रधानता दी जाती रही है । ऐसे समय पत्नी को पति के दाँयी ओर बिठाया जाता है । यह सब होते हुए भी न जाने कहाँ से यह मान्यता आ घुसी कि नारी को धर्म शास्त्रों, वेद मन्त्रों का पाठ नहीं करना चाहिये, यज्ञ नहीं करना चाहिये आदि-आदि । हमारी संस्कृति में कभी इस दिशा में रोक नहीं रही । पुरुष ही नहीं नारी भी संध्या वन्दना करती थीं । राम वनगमन के समय राम, लक्ष्मण और सीता द्वारा शृंगवेरपुर में की गयी उपासना का इस प्रकार वर्णन किया गया है—

ततस्तु जलशेषेण लक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ।
वाग्यतास्ते त्रय सन्ध्यां समुपासत सहिता ॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने भी जो जल बच रहा था, उसका उपयोग किया । तदनन्तर तीनों ने मौन और एकाग्रचित्त होकर सन्ध्यावन्दन किया ।

सभी जानते हैं कि सन्ध्यावन्दन में गायत्री मन्त्र का प्रयोग अवश्य होता है । इससे स्पष्ट है कि सन्ध्यावन्दन, गायत्री साधना, वेद मन्त्रों का पाठ आदि नारियों के लिये भी उतने ही स्वाभाविक कार्य हैं, जितने कि पुरुषों के लिये । जब पति-पत्नी में कोई भेद नहीं रह जाता तो पति के करने योग्य हर कार्य पत्नी के लिये वर्जित क्यों हो ? पूजा-पाठ में ही नहीं, महर्षि वशिष्ठ तो पति के स्थान पर पत्नी को राजसिंहासन सौंपने के पक्ष में थे । वाल्मीकि रामायण में प्रसंग आता है कि जब श्रीराम को वन जाने की आज्ञा हो जाती है तो वशिष्ठजी देवी सीता को उनके स्थान पर सिंहासनारूढ़ करने का प्रस्ताव रखते हैं—

आत्मा हि दारा: सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम् ।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम् ॥

सभी गृहस्थों की स्त्रियाँ उनकी आत्मा ही हो जाती हैं अत: सीता भी राम की आत्मा हैं । वह वहाँ रहकर राजसिंहासन पर बैठ पृथ्वी का पालन करेंगी ।

इस उदाहरण से यह बात शीशे की तरह साफ हो जाती हैं कि नारी पर उस समय प्रतिबन्ध तो थे ही नहीं, उनमें बड़े से बड़े दायित्व सँभालने की योग्यता भी होती थी ।

नारियों द्वारा मन्त्र पाठ के प्रमाण वाल्मीकि रामायण में कई स्थानों पर मिलते हैं । बालि की पत्नी तारा भी विदुषी थी । उसने बालि को सुग्रीव से लड़ने से रोका, पर जब वह नहीं माना और सलाह की उपेक्षा करके चला गया तो—

तत: स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रवद्विजयैषिणी ।
अन्त:पुरं सह स्त्रीभि: प्रविष्टा शोकमोहिता ॥

बालि की विजय के लिये मंत्र युक्त मंगलाचार कर शोकाकुल हो, अन्य स्त्रियों सहित रनवास को चली गयी ।

दु:ख आ पड़ने पर उसके निवारण के लिय अन्य प्रयासों के साथ पूजा-पाठ-व्रतादि की अपनी परम्परा रही है । उसमें नारियाँ भी पुरुषों के साथ रहें, यह उचित ही है । श्रीराम के वनगमन पर अयोध्यावासी स्त्री-पुरुष सभी जप-तप करते हैं—

राम दरस हित नेम बत, लगे करन नर नारि ।
मनुहँ कोक कोकी कमल, दीन विहीन तमारि ॥

श्रीराम के वियोग में अयोध्यावासी नर-नारी ऐसे दु:खी हो गये जैसे चकवा-चकवी और कमल-सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं, अत: वे भी श्रीराम के दर्शन की इच्छा से नियमों और ब्रतों का पालन करने लगे ।

स्त्री-पुरुषों द्वारा समान रूप से प्रयास करने की बात तो यहाँ स्पष्ट है ही । दु:ख आ पड़ने पर मनुष्य के लिये उचित आचरण का संकेत भी है । दु:ख का रोना रोने से उसका निवारण नहीं होता और हाय-हाय मचाने से परिस्थितियाँ नहीं बदलतीं । उसके लिये आवश्यक है कि जैसे परिस्थितियों की इच्छा की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाती हो, उसे पैदा करने के लिये आवश्यक नियम और संकल्पों का क्रम बनाया जाये, उस दिशा में एक संकल्प लिया जाय, उसे किया जाय और फिर अगले चरण का संकल्प लिया जाये । यह क्रम व्रतशील जीवनक्रम कहलाता हैं । यदि शक्ति कम है तो भी इस क्रम से छोटे-छोटे टुकड़ों में मंजिल पूरी करते हुए बड़े-बड़े लक्ष्यों तक पहुँचा जा सकता है । अयोध्यावासी नर-नारी सब एक ही दिशा में मिल-जुल कर प्रयास करने लगें तो रामराज्य की स्थिति पैदा हो गयी । आज भी ऐसे ही प्रयास की आवश्यकता है । श्रेष्ठ समाज की रचना के लिये जो भी प्रयास आवश्यक हैं इन सभी में नारी को बराबरी की भूमिका निभानी ही पड़ेगी । न नारी पीछे रहे और न नर ही उनकी उपेक्षा करे । न कोई हीन है, न कोई श्रेष्ठ, भगवान के नियम सबके लिये एक से हैं । स्त्री हो या पुरुष अपने आचरणों से वह महामानव और देवमानव बन सकता है । रामचरितमानस के सच्चे अधिकारियों की व्याख्या करते हुए वन्दन प्रसंग में कहा गया है—

सदा सुनहि सादर नर नारी ।
तेइ सुरवर मानस अधिकारी ॥

जो स्त्री-पुरुष आदरपूर्वक इसे सुनते हैं, वे ही इस सुन्दर मानस के अधिकारी उत्तम देवता हैं ।

यहाँ नर और नारी दोनों को समान रूप से मानस का अधिकारी घोषित करके उनके बीच के भेद को अस्वीकार किया गया है और दोनों के लिये सुरवर अर्थात् श्रेष्ठ देवता सम्बोधन देकर दोनों के देवत्व तक विकास की संभावना प्रकट की गयी है । किन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि मात्र सुनना ही पर्याप्त नहीं है । सादर सुनने से व्यक्ति सही अर्थों में उसे पाने का अधिकारी भर बनता है, पा नहीं लेता उसे अपने जीवन में अपनाना पड़ता है । सादर सुनना तो उसकी पहली सीढ़ी है । यदि केवल कहना-सुनना ही पर्याप्त मान लिया तो समाज आदर्श नहीं बन सकता वरन् आचरण की उपेक्षा के कारण उल्टी ही स्थिति पैदा हो सकती है । ऐसी स्थिति का उल्लेख करते हुए मानस में लिखा है—

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुरु घात ॥

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ) के लिये ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं ।

जहाँ केवल कहना-सुनना ही पर्याप्त मान लिया जाता है, वहाँ अच्छी बातें केवल चर्चा का व्यसन बन कर रह जाती हैं और आचरण भ्रष्टता चारों ओर फैल जाती है । लेकिन जहाँ आचरण पर भी ध्यान दिया जाता है, वहाँ श्रेष्ठ समाज बन जाता है । जनकपुरी के वर्णन में ऐसे ही समाज का चित्रण करते हुए लिखा है—

नगर नारि नर रूप निधाना ।
सुघर सुधरम सुशील सुजाना ॥

नगर के स्त्री-पुरुष रूप के भण्डार, सुघड़, श्रेष्ठ, धर्मात्मा सुशील और सुजान हैं ।

श्रेष्ठ समाज में हर व्यक्ति शरीर से स्वस्थ, सुन्दर, बुद्धि से सुजान विवेकशील तथा आचरण से सुशील और धर्मनिष्ठ होना चाहिये । इस प्रकार के श्रेष्ठ व्यक्तित्व बनाने का प्रयास किया जाना हर स्तर पर आवश्यक है । नर-नारी किसी एक पक्ष को विशेष अधिकार या विशेष प्रतिबन्धित स्थिति में नहीं रखा जा सकता । विकास की धारा दोनों के लिये समान रूप से खुली रहनी चाहिये । कोई अपनी ही उपेक्षा, अपनी ही निष्क्रियता से न बढ़े— यह बात दूसरी है, किन्तु किसी को बढ़ने का अधिकार न देना भयंकर भूल है । मनुष्य शरीर पाकर हर व्यक्ति को किसी भी स्तर तक बढ़ने की पूरी छूट भगवान की ओर से भी है । जो विकास की शर्त उसके सिद्धान्त के अनुरूप आचरण करेगा वह कोई भी हो भगवान का प्रिय बन सकता है । लिखा है—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ॥

वह पुरुष ही नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो कपट छोड़कर जो भी सर्व भाव से मुझे भजता है, वही मुझे परम प्रिय है ।

इस सबसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अपने विकास के लिये स्त्री या पुरुष किसी पर भी प्रतिबन्ध नहीं है । स्वयं विकसित होकर स्वयं अपने लिये तथा समाज के लिये दोनों ही समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं । ऐसा होना आवश्यक भी है । रामराज्य के अन्तर्गत ऐसी ही स्थिति हैं । उस समय की स्थिति के वर्णन में रामचरितमानस में लिखा—

सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी ।
नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सब गुनग्न पण्डित सब ग्यानी ।
सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

नर और नारी सभी दम्भ रहित हैं, धर्मपरायण हैं और पुण्यात्मा हैं। सभी चतुर और गुणवान हैं। सभी गुणों का आदर करने वाले और पण्डित हैं तथा सभी ज्ञानी हैं। सभी कृतज्ञ दूसरे के किये हुए उपकार को माने वाले हैं, कपट, चतुराई, धूर्तता किसी में नहीं है।

कैसा स्पष्ट और सुन्दर है ? नर-नारी उनमें से कुछ नहीं सभी श्रेष्ठ गुण और आचरण सम्पन्न हैं। जिस समाज में ऐसी स्थिति पैदा की जा सकेगी वह सचमुच रामराज्य का सच्चा प्रतीक कहा जा सकेगा। इसी प्रकार राजा प्रतापभानु की कथा में भी आदर्श समाज व्यवस्था का वर्णन मिलता है।

सब दुख वरजित प्रजासुखारी ।
धरम शील सुन्दर नर नारी ॥

उनके राज्य में प्रजा सब प्रकार के दुःखों से रहित, सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जहाँ सभी नर-नारी धर्मशील होंगे, वहाँ सुख की स्थिति होना स्वाभाविक ही है।

रामायण में राजा जनक भी आदर्श राजा है तथा उनकी प्रजा सब प्रकार सुख-सम्पत्ति की अधिकारी है। उसके वर्णन में भी नर नारी दोनों की समान स्थिति देखने को मिलती है।

पुर नर नारि सुभग सुचि सन्ता ।
धरम शील ग्यानी गुनवन्ता ॥

नगर के सभी स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, साधु स्वभाव वाले, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान हैं।

आदर्श समाज ऐसा ही होना चाहिये। अस्तु नारी के प्रति हीनता का भाव हटाया जाये, उसे विकास का पूरा अवसर और भरपूर सहयोग दिया जाये। स्वयं नारी आत्महीनता के घेरे से बाहर निकलें, अपने आपको उस सम्मान के अनुरूप बनायें जिस आधार पर उन्हें पूज्य कहा जाता रहा है। नर-नारी के नाम पर अन्तर करना गलत है। अन्तर रहे तो गुणों के, चरित्र के आधार पर रह सकता है। वह तो नारी-नारी और पुरुष-पुरुष के बीच में भी रहता है। सुमित्रा और मन्थरा, सूपनखा तथा मन्दोदरी, मारीच और केवट जैसों में अन्तर बना ही रहेगा। अस्तु नारी के प्रति हीन भाव हटाकर उसके प्रति पवित्र दृष्टि पैदा करना सभी के हित में है। ऐसा किया भी जाना चाहिये।

ooo

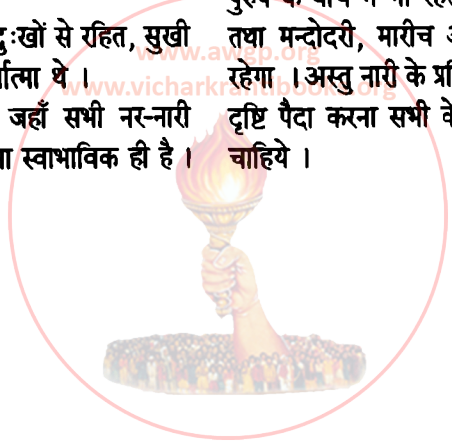

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य का आदर्श और निर्वाह

भारतीय संस्कृति की वर्णाश्रम व्यवस्था में गृहस्थ आश्रम का विशेष स्थान है। यह चारों आश्रमों और समाजों के विभिन्न अंगों की धुरी है, यह कह दें तो कोई अत्युक्ति न होगी। इन सबका सुधार, संस्कार, पालन-पोषण और अन्य महत्वपूर्ण उत्तरदायित्त्व इसी आश्रम पर आधारित रहते हैं। इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषियों मुनियों ने इसकी महत्ता स्वीकार की और स्वयं भी इसका निर्वाह किया है। गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन रामायण में भी अनेक स्थलों पर मिलता है। अपने अनुज भरत को इसका तथ्य समझाते हुए कहते हैं—

धर्मेण चतुरो वर्णान्यालयन्क्लेशमानुहि ।
चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठामाश्रमम् ॥

धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णों के पालन करने का कष्ट आप स्वीकार कीजिये। क्योंकि हे धर्मज्ञ ! चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम ही को धर्मशील लोग सर्वोत्तम बतलाते हैं।

वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्य आश्रमों में पुरुष या नारी अपने एकाकी व्यक्तित्व से ही अपने उत्तरदायित्त्वों को निभा सकते हैं, लेकिन गृहस्थाश्रम में यह एकाकी व्यक्तित्व पर्याप्त नहीं होता। इसमें पुरुष और नारी के एक-दूसरे के सहयोग से, समर्पण से पूर्णता का मार्ग खुलता है। इन दोनों के सहयोग से गृहस्थाश्रम चलता है। अत: इसका प्रारम्भ दाम्पत्य के पवित्र सूत्र बन्धन से होता है। अपने आपको क्षुद्र अहं की संकीर्ण सीमा से निकाल कर व्यापक क्षेत्र में स्वयं को विकसित करने, सेवा-सहयोग करने और प्रतिष्ठापित करने का यह एक अति महत्वपूर्ण आध्यात्मिक प्रयोग होता है। दाम्पत्य सूत्र में बँध जाने के बाद पुरुष या नारी अपने शरीर तक ही सीमित नहीं रहते। वे परस्पर सुख-दु:ख के साथी सह-भागी होते हैं। उनका व्यक्तित्व सामूहिक होता जाता है।

सामान्य रूप से दाम्पत्य में पति-पत्नी की परस्पर की भावना की शुद्धता-अशुद्धता पर ही परिवार की विकास की दिशा टिकी रहती है। दाम्पत्य को यदि मात्र वासना तुष्टि का शारीरिक आवश्यक की पूर्ति का साधन मान लिया जाय तो फिर किन्हीं उच्च आदर्शों के लिये आशा नहीं की जा सकती। फिर तो वह निकृष्ट गठबन्धन मात्र है। परन्तु यदि उसकी मूल भावना को अपने छोटे व्यक्तियों को मिलाकर-घुलाकर एक बड़ी इकाई के रूप में बदलने को ध्यान में रखा जा सकें तो दाम्पत्य आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण आधार सिद्ध होता है। फिर वह आदर्श व्यक्तित्वों को गढ़ने का सुन्दर साँचा बन जाता है। श्रेष्ठ समाज की संरचना का एक नमूना (माडल) बन जाता है। ऐसे आदर्श एक उत्पादन केन्द्र बन जाता है और उस उत्पादन से मनुष्यता सम्पन्न, समृद्ध और समुन्नत होती रहती है। यह कोई कल्पना नहीं, तथ्य है। मानस में उल्लेख है कि मनुष्यों की अनुपम सृष्टि एक ऐसी ही टकसाल में की गयी थी। मानस के प्रारम्भिक प्रकरण में ही लिखा है—

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा ।
जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा ॥

स्वायंभू मनु और उसकी पत्नी शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की अनुपम सृष्टि हुई।

मनुष्य की शक्ल के प्राणी सम्भवत: पहले भी रहे हों। किन्तु मानवीय गुणों से विभूषित व्यक्तित्व, जिनके कारण उन्हें अनुपम कहा जा सके, उनका निर्माण मनु और शतरूपा ने ही किया। इस महान कार्य में वे कैसे सफल हुए ? किस आधार पर इस कार्य में सफलता पाई जा सकी ? इसका श्रेय उनके आदर्श दाम्पत्य को ही दिया जाता है।

दम्पति धरम आचरण नीका ।
अजहु गाव श्रुति जिन्हकै लीका ॥

उन दोनों पति-पत्नी के धर्म और आचरण बहुत अच्छे थे। आज भी शास्त्र उनकी मर्यादा का गान करते हैं।

एवं शतरूपा अपने आदर्श दाम्पत्य के निर्वाह के आधार पर यह अद्भुत कार्य कर सके। ऐसे कार्य की सराहना तक होनी स्वाभाविक और उचित ही है।

अनुरूपता का महत्व आदर्श दाम्पत्य की दृष्टि से बहुत अधिक दोनों के स्तर में, मानसिक गठन में भेद होने से वे घुल-मिलकर एक सबल इकाई के रूप में अपने को बदल नहीं सकते। दाम्पत्य का आदर्श यह है कि पति-पत्नी में भेद कहने भर का रह जाये। वस्तुत: वे एक-दूसरे से अपना व्यक्तित्व इस हद तक मिला दें कि वे एक रूप हो जायें। ऐसा योग, ऐसा समर्पण एक-दूसरे के अनुरूप पति-पत्नी ही कर सकते हैं। श्रीराम जानकी का स्तर ऐसा ही है। उनमें कोई भेद नहीं। वन्दना प्रसंग में तुलसीदास जी कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गिराअरथजलबीचिसम, कहियतभिन्ननभिन्न ।
बन्दउँ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

उन सीताजी एवं रामचन्द्रजी के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत प्रिय लगते हैं । जो वाणी व उसका अर्थ तथा पानी व उसकी लहर की तरह कहने भर को भिन्न हैं, पर वास्तव में वे एक ही हैं ।

ऐसे दाम्पत्य के निर्वाह के लिये आवश्यक है कि पति-पत्नी उच्च आदर्श को लक्ष्य करके ही विवाह सूत्र में बँधे, काम तुष्टि की कामना या शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का हीन दृष्टिकोण लेकर नहीं । शिव-पार्वती विवाह के प्रसंग में यह आदर्श बड़े स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आता है ।

पार्वतीजी शिवजी से विवाह के लिये तप कर रही थीं । उधर देवता तारकासुर से त्रस्त थे । उसे मारने के लिये शिवजी के पुत्र की आवश्यकता ब्रह्माजी ने बतलाई । शिवजी समाधि में लीन थे । देवताओं ने अपनी बुद्धि के अनुसार कामदेव को भेजा । सोचा काम से पीड़ित होकर वह विवाह कर लेंगे । पर हुआ कुछ और ही, उन महायोगी ने क्रुद्ध होकर कामदेव को जला दिया । तब ब्रह्माजी ने देवताओं को समझाया कि शिवजी कामवश नहीं, लोकहित के लिये विवाह कर सकते हैं । वही मार्ग अपनाया गया जो सफल रहा ।

सब सुर विष्नु बिरंचि समेता ।
गए जहाँ सिव कृपानिकेता ॥
सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाह ।
निज नयनन्हि देखा चहहिं, नाथ तुम्हार विवाह ॥

यह आग्रह शिवजी ने स्वीकार कर लिया । इस लीला से उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि विवाह काम-शक्ति से नहीं कर्तव्य बुद्धि से किया जाना चाहिये ।

यही स्थिति पार्वती जी की भी है । विवाह की दृष्टि उनकी भी उतनी ही उत्कृष्ट है । उनकी परीक्षा लेने की दृष्टि सप्त ऋषि उनके पास गये और कहा कि शिवजी ने कामदेव को जला दिया है । अब तप करना बेकार है । वे विवाह करेंगे ही क्यों ? उसके उत्तर में पार्वती जी का उत्तर बड़ा ही प्रेरक है । वे बोली कि मैंने शिवजी की आराधना उन्हें कामासक्त समझकर नहीं की है । आपके दृष्टिकोण से मेरा दृष्टिकोण भिन्न है ।

तुम्हारे जान काम अब जारा ।
अब लगि संभु रहे सविकारा ॥
हमारे जान सदा सिव जोगी ।
अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥

आपकी जानकारी में शिवजी ने काम को अभी जलाया है और अब तक वे विकार युक्त थे, किन्तु हमारी समझ में तो शिवजी सदैव से ही योगयुक्त, जन्म रहित, दोष रहित, कामना रहित और भोगों से रहित हैं ।

इस प्रकार उच्च भावनाओं से प्रेरित समान विचारों और उद्देश्यों वाले वर और कन्या विवाह सूत्र में बँधकर आदर्श दाम्पत्य की सृष्टि कर सकते हैं । विवाह का आधार शारीरिक आकर्षण, एक-दूसरे के पद अथवा धन को नहीं बनाया जाना चाहिये । उच्च आदर्शों को ध्यान में रखकर ही वर-कन्या का चुनाव करना चाहिये और उन्हें भावनापूर्वक दाम्पत्य सूत्र में बाँध देना चाहिये । हिमाचल ने पार्वती को इसी प्रकार शिवजी से सम्बद्ध कर दिया—

गहि गिरीस कुस कन्या पानी ।
भवहिं समरपी जानि भवानी ॥

हिमवान ने अपने हाथों में कुशा ली तथा कन्या (पार्वती) का हाथ पकड़कर इन्हें भवानी (शिव पत्नी) समझकर शिवजी के हाथों में सौंप दिया ।

कुश कन्या का अर्थ है बिना किसी दान-दहेज के पवित्र भावना से कन्या को सौंपना । शिव के अनुरूप शक्ति रूपा अपनी कन्या को समझकर ही उन्हें सौंपा गया । वर-कन्या की अनुरूपता का ध्यान माता-पिता को भी रखना चाहिये ।

सीताजी के सम्बन्ध में राजा जनक भी जागरूक रहे । बचपन में सीताजी ने शिवजी के भारी धनुष को सहज भाव से उठा कर रख दिया था । जनकजी ने उनकी तेजस्विता देखकर यही प्रतिज्ञा की कि इसका विवाह किसी श्रेष्ठ वीर से करूँगा, जो इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा सके । धनुष यज्ञ के अवसर पर वे अपना मत प्रकट करते हुए महर्षि विश्वामित्र से कहते हैं—

वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां मात्मजाम् ॥

मेरी अयोनिजा कन्या, जो कि पृथ्वी पुत्री है तथा जिसका पालन मैंने अपनी आत्मजा के समान किया है, वीर्य शुक्ला है (पराक्रमी पुरुष को वरण करेगी) ।

वर-कन्या की अनुकूलता की दृष्टि माता-पिता तो रखें ही, विवाह के प्रत्याशियों की दृष्टि भी इस सम्बन्ध में स्पष्ट होनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिये । धनुष यज्ञ के पूर्व माता सुनैना सीताजी को मन्दिर में पूजा के लिये भेजती हैं । वहीं पर वे भी अपने उपयुक्त-अनुरूप वर की कामना करती हैं–

पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा ।
निज अनुरूप सुभग वर माँगा ॥

सीताजी ने बड़े प्रेम से पार्वती जी का पूजन किया और उनसे अपने योग्य सद्गुण सम्पन्न पति मिलने का वर माँगा ।

धनुष यज्ञ में श्रीराम उनके योग्य वर सिद्ध हुए और वे दाम्पत्य सूत्र में बँध गये । सीताजी ने श्रीराम का जिस पराक्रमी रूप में वरण किया था, उसका उन्हें बराबर ध्यान रहा । वन गमन प्रसंग में वे श्रीराम के साथ चलने का आग्रह करने लगीं । श्रीराम ने उन्हें भयभीत करने की दृष्टि से कह दिया कि वन में हिंसक जीव एवं राक्षस रहते हैं, उनसे तुम्हारी रक्षा करना कठिन होगा । सीताजी इससे भयभीत तो क्या होतीं, पर उन्हें राम द्वारा स्वयं को उनकी रक्षा में असमर्थ कहना बुरा लगा । वे मर्माहत होकर कहने लगीं–

किं त्वाऽमन्यत वैदेहः पिता में मिथिलाधिपः ।
राम जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम् ॥

हे राम ! यदि मेरे पिता मिथिलेश यह जानते कि आप आकार मात्र के पुरुष हैं और व्यवहार में स्त्री हैं, तो क्या वे आपको मान्यता देते ?

तेजस्विनी देवी सीता का स्पष्ट संकेत था कि जिस वीरता के साथ आपने मेरा वरण किया उसी का निर्वाह करते हुए मुझे साथ रखना उचित है । वैसे उन्हें श्रीराम के पराक्रम पर विश्वास भी पूरा था । तुलसीदासजी के शब्दों में वे उसे बड़े सुन्दर ढंग मे व्यक्त करती हुई कहंती हैं–

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा ।
सिंह बधुहिं जिमि ससक सियारा ॥

हे प्रभु ! आपके रहते कौन ऐसा है जो मेरी ओर आँख उठाकर भी देख ले । अर्थात् आपके रहते हुए मेरी ओर कोई नहीं देख सकता । जैसे सिंह की स्त्री सिहंनी को कोई खरगोश और सियार नहीं देख सकते वैसे ही मैं भी आपके रहते हुए सुरक्षित हूँ ।

सीताजी ने वन में संभावित भय को मान्यता नहीं दी । उस सम्बन्ध में उग्र भी हो उठीं । किन्तु वन में हो सकने वाले कष्टों के प्रसंग पर वे पत्नी की सहज संवेदना से भर उठीं और बोली–

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू ।
तुम्हहिं उचित तप मो कहुं भोगू ॥

मैं सुकुमारी हूँ और हे नाथ ! आप वन के योग्य हैं ? आपको तो वन में तपस्या उचित और मुझको विषय-भोग आवश्यक है ?

इन वचनों को कहकर सीताजी ने वह आदर्श प्रस्तुत किया है जो भारतीय संस्कृति का गौरव कहा जा सकता है । पति राजा है तो उसके राज्य का भोग करना तो सभी पत्नी चाहेंगी लेकिन क्या पति भिखारी बन जाये तो पत्नी को उसका साथ नहीं देना चाहिये । ऐसा तो वह पत्नी कर सकती है जो पतिव्रत धर्म का सच्चा रहस्य न जाने । यहाँ पर भी सीताजी ने दायित्व का निर्वाह किया है । यही तो है उनका आदर्श । इसी तरह का दायित्वपूर्ण आग्रह करती हुई सीताजी आगे कहती हैं–

भक्तां पतिव्रतां दीनां मां समां सुखदुःखयो ।
नेतुमर्हसि काकुत्स्थ समान सुखदुःखिनीम् ॥

हे काकुत्स्थ ! आपमें पूर्ण भक्ति रखने वाली, दीन, सुख-हीन अवस्था में समान रहने वाली और आपके सुख में सुखी तथा आपके दुःख में दुःखी मुझको आप अपने साथ ले चलिये ।

राम के प्रति सीता का अपनत्व और समर्पण भाव कितना प्रखर है, वह उनके अगले कथन से स्पष्ट होता है । वे बोलीं–

स मामनादाय वन न त्वं प्रस्थातुमर्हसि ।
तपों वा यदि वाऽरण्यं स्वर्गो वा स्यात्वया सह ॥

अतः आप मुझे अपने साथ ही वन को ले चलिये । चाहे आप तप करें चाहे आप वनवास करें और चाहे स्वर्गवास करें– मुझे तो आपके साथ ही रहना उचित है ।

भगवान राम के साथ चलने की आज्ञा मिलने पर सीताजी बड़ी प्रसन्न हो जाती हैं । पति के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने का इसे अनुकूल अवसर समझती हैं । जब सुखों में सुखों का उपभोग करने का अधिकार सहधर्मिणी को है तो दुःख में सहयोग देना भी उसका दायित्व होता है । इस दायित्व को पालने के लिये सीताजी की वांछित इच्छा पूरी होने पर क्यों न प्रसन्न होतीं ? वन में रहकर आदर्श पत्नी के रूप में कैसे सेवा और सहयोग कर सकती थीं, इसका विचार कर सीताजी कहती हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोहि मग चलत न होइहि हारी ।
छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहिं भाँति पति सेवा करिहौं ।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ॥

हे नाथ ! क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी । हे प्रियतम ! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग में चलने से होने वाली थकावट को दूर कर दूँगी ।

देवी सीता का आग्रह देखकर श्रीराम उन्हें साथ ले लेते हैं । सीताजी अपनी उक्ति को चरितार्थ भी कर दिखाती हैं । उन्होंने कभी कहीं किसी अभाव या कष्ट की शिकायत नहीं की, बल्कि हर स्तर पर उनके अनुकूल रहती हैं । अपने को उनके अनुकूल सिद्ध करती हैं ।

यह अनुरूपता मात्र चिन्तन के स्तर पर ही नहीं, व्यावहारिक स्तर पर भी है । सीताजी श्रीराम की सच्ची सहधर्मिणी हैं । श्रीराम के मनोभावों को वे उसी तरह से समझती हैं, जैसे व्यक्ति अपने अन्दर उठने वाले संकल्प-विकल्पों को समझता है । वनमार्ग में नाव से गंगा पार करने पर श्रीराम सोचते हैं कि केवट को कुछ देना चाहिये । सीताजी बिना कहे उसकी व्यवस्था करती हैं—

पिय हिय की सिय जानि निहारी ।
मनि मुन्दरी मन मुदित उतारी ॥

सीताजी पति के हृदय की बात जानने वाली हैं । उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी मणि जटित अँगूठी उतारकर श्रीराम को दे दी ।

बिना कहे श्रीरामजी की इच्छा पूर्ति के लिये अपने प्रिय आभूषण को बिना किसी संकोच के प्रसन्नतापूर्वक देने के लिये वे तत्पर हैं ।

पति की इच्छा को अपनी इच्छा समझना— यही है सच्चा समर्पण । वन में अनेकों प्रकार के कष्ट-कठिनाइयों को सहते रहने के बावजूद भी राम सीता का स्नेह निरंतर बढ़ता ही गया । वे सदा ही एक-दूसरे से प्रसन्न और सन्तुष्ट रहे । वास्तव में सच्चा दाम्पत्य प्रेम हो तो चाहे जंगल में भी क्यों न रहना पड़े वहाँ मंगल मनाया जा सकता है । इसके अभाव में राज प्रासाद भी नारकीय यंत्रणा प्रदान कर सकता है । वन में सीता-रामजी का स्नेह दिन-दूना, रात-चौगुना जैसा बढ़ने का प्रमाण प्रस्तुत करता है रामचरितमानस का यह वर्णन है—

सिय मन राम चरन अनुरागा ।
अवध सहस सम बन प्रिय लागा ॥

सीताजी के मन में भगवान राम के चरणों में नित्य ही अनुराग बढ़ता जाता है और वनवास भी उन्हें सैकड़ों अवध के समान प्रिय लगने लगता है ।

वस्तुतः जहाँ सच्चा प्रेम है, वहाँ किसी अन्य अभाव की चिन्ता व्यक्ति को सता ही नहीं सकती । सीताजी ने केवल यह कहा ही हो, सो बात नहीं वैसा कर भी दिखाया । चित्रकूट में उनके निवास पर मानसकार की टिप्पणी है—

राम संग सिय रहत सुखारी ।
पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ॥

श्रीरामचन्द्र जी के साथ सीताजी अयोध्या नगरी के कुटुम्बीजन और घर की याद भुलाकर सुखपूर्वक रहने लगीं ।

वे सच्चे अर्थों में श्रीराम की पूरक हैं । वन में भी उसी ढंग से रहीं तथा राज्यभिषेक हो गया तो महलों में भी उनका वही क्रम रहा । जंगल के अभाव उन्हें विचलित न कर सके और न राज्य वैभव का अहंकार ही छू सका । वे प्रधान रूप से श्रीराम की सहधर्मिणी ही बनी रहीं । अन्य सांसारिक सम्बन्ध और पद गौण रहे । न वन में अभाव की शिकायत और न महलों में वैभव का अहंकार—

पति अनुकूल सदा रह सीता ।
सोभा खान सुसील विनीता ॥

शोभा की खान सुशील और विनम्र सीताजी हमेशा पति के अनुकूल ही रहती हैं ।

भगवान श्रीराम अपने दायित्वों के प्रति जागरूक हैं तो जानकी जी भी अपनी जगह तत्पर हैं । श्रीराम स्वयं राज्य के कार्यों का संचालन करते हैं, तो सीताजी भी गृह व्यवस्था नौकरों पर ही न छोड़कर स्वयं अपने हाथों से भी कार्य किया करती हैं—

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी ।
बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥

यद्यपि घर में अनेक दास और दासियाँ हैं और वे सभी सेवा की विधि में निपुण हैं ।

निज कर गृह परिचर्या करई ।
रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

फिर भी सीताजी घर की समस्त सेवा अपने ही हाथों से करती हैं और श्रीरामजी के आदर्शों का अनुसरण करती हैं।

सेवकों की समझ का स्तर उनके स्तर के अनुरूप ही होता है। जब तक गृहिणी स्वयं सतर्क न हो, कार्य का स्तर सँभलता नहीं। श्रीराम परिवार की व्यवस्था जैसी चाहते हैं उसे सीताजी समझती हैं तथा उसे चरितार्थ भी करती हैं।

दाम्पत्य में यह जागरूकता एकांगी नहीं होती। जहाँ पत्नी पति के प्रति निष्ठावान होती है, वहाँ पति उतना ही संवेदनशील होता है। सीताहरण के बाद श्रीराम उनके वियोग में कितने दुःखी होते हैं यह किसी से छिपा नहीं हैं। शोकाकुल राम उनके गुणों का ही बखान करते हैं—

हा गुन खान जानकी सीता।
रूप शील व्रत नेम पुनीता॥

हे सीता! तुम सभी गुणों की खान हो, तुम्हारे रूप, शील, व्रत, नियम अच्छी नीतियाँ हैं।

राम भगवान आदर्श पत्नी व्रती थे। सीताहरण के बाद वे सीता के लिये सब कुछ करने को तैयार हैं। इस अपमान का बदला लेने को तैयार राम का पौरुष दर्शनीय है—

समाकुलममर्यादं जगत्पश्याद्य लक्ष्मण:।
आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकं दुरासदैः॥
करिष्ये मैथिलीहतोरपिशाचमराक्षसम्।
मम रोषप्रयुक्तानां सायकानां बलं सुराः॥

"हे लक्ष्मण! देखना, सारा जगत घबराकर मर्यादा त्याग देगा। सीता के लिये मैं कमान का रौंदा कान तक खींचकर ऐसे बाण छोड़ूँगा, जिन्हें कोई न सह सकेगा और मैं इस जगत को पिशाचों और राक्षसों से शून्य कर दूँगा।"

वियोग का दुःख राम को सीता की अपेक्षा कम नहीं हुआ, वे हनुमान के द्वारा सीता को संदेश भिजवाते हैं, इससे उनके स्नेह की गहनता प्रकट होती है।

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा।
जानत प्रिया एक मन मोरा॥

हे प्रिय! मेरे और तुम्हारे प्रेम का तत्व जानता है एक मात्र मेरा मन। रामचन्द्र भगवान और आगे कहते हैं—

सो मनु सदा रहत तोहिं पाहीं।
जानि प्रीति रस एतनेहिं माहीं॥

जो मन सुख-दुःख का अनुभव करता है, वह मन सदा तेरे समीप रहता है। बस मेरे प्रेम का सार इतने में ही जान लो।

राम को केवल अपने मन पर ही अधिकार नहीं था वरन् सीताजी पर भी इतना अधिक विश्वास था कि रावण जैसे दुराचारी के साथ रहने पर भी उन्हें कोई शंका नहीं हुई। यह उनकी अन्तरंग एकता का, विश्वास का द्योतक है। जहाँ कहीं ऐसा आदर्श देखने में आये तो वह स्वर्गीय सुखों की खान ही हो सकता हैं। इस तरह का विश्वास एक-दूसरे के प्रति किसी प्रकार की कुशंकायें नहीं आने देता और जहाँ ऐसा मनोमालिन्य नहीं है वहाँ पर किसी प्रकार के झगड़े-झंझट, मन-मुटाव आदि का कोई कारण नहीं है। ऐसा ही उदाहरण रामायण में है। माता सीता अशोक वाटिका में दुराचारी रावण के अधीन हैं। रामचन्द्रजी उनकी खोज यहाँ वहाँ कर रहे हैं। दुराचारी के अधीन होने पर भी भगवान राम को विश्वास रहता है कि सीताजी मुझे छोड़कर किसी अन्य को अपने मन में स्थान नहीं दे सकतीं और वे कहते हैं—

अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिवर्तिनीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम्॥

"यह मुझे मालूम है कि सीता मुझे छोड़ अपने मन में किसी अन्य को स्थान नहीं दे सकतीं अर्थात् वह मुझमें अनन्य अनुरागवती हैं।" रामचन्द्रजी के मन में सीता के लिये जितना स्थान है उतना ही सीताजी के मन में राम के लिये भी है। हनुमानजी द्वारा राम का सन्देश सुनने पर सीताजी ने ऐसा ही संदेश भेजा। यह सन्देश भगवान को सुनाते हुए हनुमानजी कहते हैं—

नाम पाहरु दिवस-निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित जाहि प्राण केहि बाट॥

"आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है। आपका ध्यान ही कपाट है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाये रहती हैं, यही ताला लगा है फिर प्राण जायें तो किस मार्ग से? अर्थात् आपके स्मरण के आधार पर जीवित हैं।"

पत्नी के लिये पतिव्रत जितना महत्वपूर्ण है, पति के लिये पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक है। सीताजी राम के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष को ध्यान में भी नहीं लातीं, तो श्रीराम का भी वही स्तर है। किसी नारी को वे कुदृष्टि से भी नहीं देखते। पुष्प वाटिका प्रसंग में सीताजी पर दृष्टि पड़ने के बाद वे लक्ष्मणजी को अपने मनोभाव प्रकट करते हुए कहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मोहि अतिशय प्रतीत मन केरी ।
जेहिं सपनेहुं परनारि न हेरी ॥

"मुझे तो अपने मन का पूर्ण विश्वास है कि उसने दूसरे की स्त्री को (जागृत की कौन कहे) स्वपन में भी नहीं देखा है ।"

रामचरितमानस में चरित्रों का समन्वय दोनों ही पक्षों में समान रूप से हुआ है । एक ओर सच्चा पतिव्रती किसी अन्य नारी का मुख भी न देखने का आदर्श प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर पतिव्रता नारी भी उसी स्तर की होती है ।

पतिव्रत शिक्षा सीताजी के माध्यम से महासती अनुसूइया देती हैं और बताती हैं कि स्त्रियों को अपने पति के लिये मधुर, उदार व्यवहार एवं सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं रखनी चाहिये । परपुरुष का चिन्तन नहीं करना चाहिये अथवा पवित्र दृष्टि से देखना चाहिये ।

उत्तम के अस बस मन माहीं ।
सपनेहुं आन पुरुष जग नाहीं ॥
मध्यम पर पति देखइ कैसे ।
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

"उत्तम श्रेणी पतिव्रता नारी के मन में ऐसा भाव बसता है कि जगत में मेरे पति को छोड़ कर अन्य दूसरा पुरुष् स्वप्न में भी नहीं है । यदि पुरुषों पर दृष्टि जाती है तो उन्हें भाई, पिता या पुत्र की दृष्टि के से भाव से देखें ।"

जिनका अपने मन पर नियन्त्रण है उन्हें बाह्य प्रभाव विचलित नहीं कर सकते । धनुष यज्ञ के प्रसंग में मानसकार उपमा उपमेय के रूप में यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं । जब शिव धनुष किसी से हिल भी न पाता तो टिप्पणी दी गयी है—

डगइ न शंभु सरासन कैसे ।
कामी वचन सती मन जैसे ॥

"शिवजी का धनुष उसी प्रकार डिगता नहीं, जैसे कामी पुरुष के वचनों से सती नारी का मन कभी चलायमान नहीं होता ।"

इस आदर्श का ज्वलंत उदाहरण अशोक वाटिका में सीता के चरित्र में मिलता है । रावण उन्हें अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है और भय भी दिखाता है । किन्तु सीता अपने स्तर से जरा भी नहीं हिलतीं । रावण से प्रभावित या आतंकित होना तो दूर, वे उसे अच्छी करारी फटकार भी लगा देती हैं—

सठ सूने हरि आनेहि मोही ।
अधम निर्लज्ज लाज नहिं तोही ॥

"अरे दुष्ट ! तू सूने में मुझे चुरा ले आया है । तू नीच और निर्लज्ज है, तुझे लज्जा नहीं आती ?"

देवताओं को अपने आतंक से भयभीत कर देने वाला रावण ऐसे प्रखर उत्तर की आशा नहीं करता था । वह उत्तेजित होकर सीता को मारने दौड़ा । वहाँ दाम्पत्य के आदर्श का एक दूसरा रूप सामने आता है । पति सन्मार्गगामी है तो हर प्रकार उसका सहयोग समर्थन किया जाना चाहिये, परन्तु यदि वह गलत कार्य करे तो समर्थन न देकर उसे उससे रोकने का प्रयास किया जाना चाहिये । गलत कार्यों से पति को रोकना और उचित सलाह देना पत्नी के धर्म-कर्तव्य के अन्तर्गत आता है । मन्दोदरी यही कहती है—

सुनत बचन पुनि मारन धावा ।
मयतनया कह नीति बुझावा ॥

"सीता के वचन सुनकर रावण तलवार निकालकर उन्हें मारने दौड़ा । मन्दोदरी ने उन्हें रोका और नीति की बातों से समझाया ।"

पुरुष का स्वभाव सहज ही उत्तेजित हो जाने का होता है । उत्तेजना में वह उचित-अनुचित भूल जाता है । ऐसी स्थिति में पत्नी उसे औचित्य का ध्यान दिलाये, उसके लिये आग्रह करे, यह उचित ही नहीं आवश्यक भी है । बालि स्वयं गल्ती पर होते हुए भी सुग्रीव को मारने दौड़ता है तो उसकी पत्नी तारा भी उसे समझाती है—

सुनत बालि क्रोधातुर धावा ।
गहि कर चरन नारि समुझावा ॥

"बालि सुग्रीव की गर्जना सुनते ही क्रोध में भरकर वेग से छोड़ा ! उसकी स्त्री तारा ने चरण पकड़कर उसे समझाया ।"

तारा समझदार महिला थी । वह जानती थी कि अनीति का फल सदा हानिकारक होता है । इसीलिये पति को हानि से बचाने के लिये उसने बड़े सधे हुए ढंग से उसे समझाने का प्रयास किया । उसका विवरण वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तदा हि तारा हितमेव वाक्यं
तं वालिनं पथ्यमिदं वभाषे ।
न रोचते तद्वचन हि तस्य
कलाभिपानस्थ विनाशकाले ॥

"तारा इस प्रकार पथ्य रूप हितकर वचन कह रही थी, किन्तु बालि को वे वचन अच्छे नहीं लगते थे, क्योंकि उसके सिर पर तो काल खेल रहा था ।"

बालि ने पत्नी की सलाह नहीं मानी और अपनी करनी का फल पाया । श्रीराम ने उसे पत्नी की नेक सलाह न मानने के कारण बुरा-भला भी कहा । पति माने या न माने, यह बात भिन्न है, किन्तु पत्नी को यथासम्भव सही सलाह देनी ही चाहिये । मन्दोदरी ने तो रावण को संसारिक लोभ-मोह छोड़कर आयु के अनुसार वानप्रस्थ जीवन में प्रविष्ट होने का भी आग्रह बड़े स्पष्ट रूप से किया था । श्रीराम से युद्ध आरम्भ होने के पूर्व वह रावण से कहती है–

सन्तु कहहिं अस नीति दसानन ।
चौथेपन जाइहिं नृप कानन ॥
जौं पिय मानहुँ मोर सिखावन ।
सुजश होइ तिहु पुर अति पावन ॥

"हे दशानन ! ज्ञानीजनों की सम्मति है कि चौथेपन (वृद्धावस्था) में राजा को वन में जाकर रहना चाहिये । अगर आप मेरे इस अनुरोध को मान लेंगे तो आपकी कीर्ति सर्वत्र छा जायेगी ।

रावण नहीं माना । उसके मन में तो अनीति घुसी थी । वह तो दुष्ट सहयोगियों के बीच रह रहा था । उनका ही उस पर प्रभाव था, सदाचार की मर्यादा तोड़कर वह परस्त्री की कामना करता था । अस्तु उसका अहित तो होना ही था, हुआ भी । दाम्पत्य की मर्यादा तोड़कर परस्त्री की कामना करने वाले की सद्गति हो ही नहीं सकती, यह मत श्रीकाकभुशुण्डिजी गरुण जी से व्यक्त करते हैं–

काहू सुमति के खल संग जामी ।
सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ॥

"दुष्टों के साथ से क्या किसी को सुबुद्धि पैदा हुई है ? पराई स्त्री का गमन करने वाला क्या उत्तम गति को पा सकता है ?"

राक्षस यह दोष न छोड़ सके । किन्तु रामराज्य के आदर्श समाज में यह मर्यादा दोनों ही पक्षों से निभाई जाती थी । केवल श्रीराम ही नहीं, सारे पुरुष एक पत्नीव्रत का पालन करने वाले थे और स्त्रियाँ मन, वचन, कर्म से पतियों का हित करने वाली थीं । रामराज्य में उल्लेख है–

एक नारि ब्रत रत सब झारी ।
ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

"सब पुरुष एक पत्नीव्रत रखते हैं । इसी प्रकार नारियाँ भी मन, वचन, कर्म से पति का भला करने वाली होती हैं ।"

नारियाँ पतियों का हित करने वाली हैं, यह वाक्य सोद्देश्य है । जो पति करे उस हर कार्य का समर्थन करना नारी का धर्म नहीं है । उसे पति का ध्यान रखना चाहिये । यही रामराज्य में होता है ।

किन्तु हित कामना एकांगी नहीं । पति भी पत्नी के हित का ध्यान रखे, उनके ज्ञान का स्तर बढ़ाते रहना पतियों का कर्तव्य है । श्रीराम विवाह के बाद विवरण मिलता है कि राजा दशरथ वशिष्ठजी द्वारा दिये जाने वाले ज्ञान का लाभ रनिवास की महिलाओं को भी देते हैं ताकि वे भी ज्ञान विज्ञान में पुरुषों की बराबरी से चल सकें ।

कहहिं वशिष्ठ धरम इतिहासा ।
सुनहिं महीस सहित रनिवासा ॥

"वशिष्ठजी धर्म और इतिहास का वर्णन करते थे तथा दशरथजी रानियों सहित सुनते थे ।"

दाम्पत्य की मार्यादा है कि पति-पत्नी एक-दूसरे का सम्मान करें । यह धारणा गलत है कि केवल पति ही सम्मान पाने का अधिकारी है और वह पत्नी के साथ कैसा भी मनमाना व्यवहार कर सकता है । रामचरितमानस में उभय पक्षीय आदर्श प्रस्तुत किया गया है । विवाह के बाद जब पार्वती जी शिवजी के पास अपनी जिज्ञासा लेकर जाती हैं तो शिवजी उन्हें पूर्ण शिष्टाचार के साथ आदर सहित आसन देकर बैठाते हैं–

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा ।
बाम भाग आसनु हर दीन्हा ॥

"पार्वती को अपनी स्नेहमयी पत्नी जानकर शंकर जी ने उन्हें अपनी बाँयी ओर उचित आसन देकर आदर सहित बैठाया ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अन्य स्थलों पर भी इस मर्यादा का पालन होता है। श्रीराम के विवाह के बाद बारात लौटती है, वर-वधुओं का स्वागत किया जाता है। तब दशरथजी कुछ सुझाव देने के लिये रानियों को बुलाते हैं। तब वे उनका सम्मान भी करते हैं और मीठे वचनों से सम्बोधित करते हैं—

नृप सब भाँति सबहिं सनमानीं।
कहि मृदु वचन बोलाई रानी॥

राजा दशरथ ने सब प्रकार से सम्मान किया और मधुर वचन कहकर रानियों को बुलाया।

इस प्रकार सफल दाम्पत्य की दृष्टि से पति-पत्नी दोनों के आदर्शों का सुन्दर चित्रण रामकथा में मिलता है। पुरुष वर्ग अपने आचरण व चिन्तन को तदनुसार साधें एवं महिलायें अपनी भावना एवं क्षमताओं को उसी स्तर पर लायें तो दाम्पत्य जीवन में स्वर्ग की अनुभूति हर एक के लिए सम्भव है। आभाव में भी अलभ्य सुख की अनुभूति की जा सकती है। आवश्यकता उन सिद्धान्तों को समझने में और उन्हें आचरण में लाने भर है।

ooo

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावकों के कर्तव्य और मर्यादायें

सन्तान प्राप्ति की आकांक्षा और उसके प्रति आकर्षण लगभग हर परिवार में पाया जाता है। भारतवर्ष में इसे सौभाग्य एवं पुण्य का प्रतीक माना जाता है। किन्तु यदि थोड़ा बारीकी से देखा जाय, चिन्तन किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि सन्तान का होना सौभाग्य एवं सद्गति ही नहीं दुर्भाग्य और दुर्गति का कारण भी बन सकता है।

सन्तान हो, और वह सौभाग्य का आधार बने, यह आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को सन्तान सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट और व्यवस्थित बनाना होगा। सन्तान अपने कौतूहल और शौक का विषय नहीं, उसके साथ महत्वपूर्ण उद्देश्य और उत्तरदायित्त्व जुड़े रहते हैं। यदि इस तथ्य को न समझा जा सके, उसके अनुरूप ढंग न अपनाया जा सके तो श्रेष्ठ सन्तति की प्राप्ति और उस आधार पर यश, गौरव एवं सौभाग्य की प्राप्ति शेखचिल्ली जैसे सपने ही कहे जाने योग्य हैं।

सन्तान को जन्म देने का उद्देश्य परिवार को श्रेष्ठ सदस्य और समाज को उत्कृष्ट नागरिक प्रदान करना है। यदि बच्चों का शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास करने की क्षमता अपने अन्दर नहीं है तो वह दुस्साहस नहीं ही करना चाहिये। एक कहावत है कि "पहले पात्रता प्राप्त करो, तब आकांक्षा करो"। सन्तान के सम्बन्ध में भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिये। परिवार और समाज के हित की दृष्टि से जैसे व्यक्तित्वों की आवश्यकता है, उसे समझने और विकसित करने, बनाने की क्षमता अपने अन्दर पहले पैदा कर लें, तभी सन्तान की आकांक्षा करें। सही व्यक्तियों के निर्माण की क्षमता हुए बिना संतान पैदा करना अपने लिये मुसीबत तथा समाज के लिये भार बढ़ाना ही है। ऐसा करना पुण्य एवं सौभाग्य नहीं पाप और दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।

रामचरितमानस में दोनों प्रकार के उदाहरण देखने के मिलते हैं। आदर्श की दृष्टि से पुत्रों में भाइयों सहित श्रीराम और पुत्रियों में पार्वती और सीता का वर्णन मिलता है। राम और सीता आदर्श पुत्र-पुत्री थे। इसमें सन्देह नहीं, किन्तु ऐसी सन्तति उन्हीं के होती है जो स्वयं श्रेष्ठ आचरण युक्त हों। श्रीराम विवाह प्रसंग में सीता और राम को देखकर स्त्री-पुरुषों में चर्चा होती है—

जनक सुकृत मूरति बैदेही।
दशरथ सुकृत रामु धरे देही॥

"जनक के श्रेष्ठ कर्तत्वों की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथ जी के सुकृतों की प्रतिमा राम हैं।"

जनक और दशरथ के सदाचरण सम्पन्न होने का ज्ञान देखने वालों को पहले से है अत: वे सीता और राम को देखकर यह अनुभव करते हैं कि जनक और दशरथ के श्रेष्ठ कर्म ही वस्तुत: साकार हो उठे हैं।

सन्तति निर्माण में पिता की अपेक्षा माता का महत्व और भी अधिक होता है। श्रीराम के जन्म देने का श्रेय माता कौशल्या को देते हुए तुलसीदास जी वन्दना प्रसंग में उन्हें पूर्व दिशा की तरह पवित्र और महत्वपूर्ण कह कर प्रणाम करते हैं—

बंदउ कौसल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल दिशि माचीं॥

मैं पूर्व दिशा के समान गौरवशाली माँ कौशल्या की वन्दना करता हूँ। जिसकी कीर्ति सारे संसार में फैली हुई है।

अन्धकार का नाश करने में समर्थ सूर्य को उगाने वाली प्राची दिशा को ही गौरव प्राप्त हुआ है। उसके समान माँ कौशल्या भी गौरवशाली तथा कीर्तिवान हैं। यह कीर्ति का सौभाग्य उन्हें कैसे मिला? इस तथ्य पर विचार करने पर पता लगता है कि अनायास ही संयोगवश नहीं मिल पाता। इस तरह की कीर्ति के लिये स्वयं को भी प्रयास करने पड़ते हैं और ये एक दो दिनों के प्रयास नहीं होते वरन् कई जन्मों से प्रारम्भ किये जाते हैं।

श्रेष्ठ संतान पैदा करना बड़ा महत्वपूर्ण और समय साध्य कार्य है। कोई उच्चस्तरीय उपकरण बनाना हो तो उसके लिये उपयुक्त माल से लेकर उपयुक्त मशीन और श्रेष्ठ शिल्पियों की व्यवस्था काफी पहले से ही करनी पड़ती है। माता-पिता को विचार, भावना, संस्कार और स्वभाव की दृष्टि से अपने आप को प्रमाणित बनाने के लिये तप (कठोर प्रयास) करना पड़ता है। दशरथ और कौशल्या पूर्व जन्म से ही अपने आपको तप द्वारा उस योग्य बनाने में लगे थे कि भगवान पुत्र रूप में आ सकें।

देवताओं द्वारा राक्षसों से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना किये जाने पर भगवान उन्हें यह मर्म बतलाते हैं—

कश्यप अदिति महा तप कीन्हा।
तिन्ह कहं मैं पूरब वर दीन्हा॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"कश्यप और अदिति ने बहुत समय पहले ही महान तप किया था, तब मैने उन्हें वरदान दिया था।"

उनके तप के आधार पर ही भगवान ने उनके यहाँ पुत्र रूप में आना स्वीकार किया था। दशरथ कौशल्या के रूप में भी वे श्रेष्ठ गुण और पवित्र आचरण से युक्त हैं। परस्पर सद्भावना और ईश्वर के प्रति अगाध आस्था उनमें है। राम जन्म की कथा भूमिका में ही राजा दशरथ एवं उनकी पत्नियों के सम्बन्ध में इस प्रकार विवरण मिलता है—

धरम धुरन्धर गुण निधि ज्ञानी।
हृदय भगति मति सारंग पानी॥
कौशल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि पद कमल विनीत॥

"वे (राजा दशरथ) धर्म के श्रेष्ठ पालक, गुणों के भण्डार ज्ञानी तथा भगवान के प्रति हृदय से भक्ति युक्त हैं। उनकी कौशल्यादि सभी पत्नियाँ आचरण से पवित्र, पति के अनुकूल तथा भगवान के श्रीचरणों में दृढ़ प्रेम करने वाली हैं।"

दशरथ राजा थे। आर्थिक दृष्टि से बच्चे के लालन-पालन में समर्थ थे। विचारों और गुणों की दृष्टि से भी पत्नियों सहित सम्पन्न थे। फिर भी सन्तति प्राप्ति के लिये उन्होंने जल्दबाजी नहीं की। पति-पत्नी नयी-नयी उमर में ही सन्तान पैदा करने लगते हैं। उस समय न तो उनके विचार तथा अनुभव परिपक्व होने पाते हैं और न अधिक सुदृढ़ता आने पाती है। ऐसी स्थिति में उत्पन्न सन्तान संस्कारों की दृष्टि से तो हीन होती ही है, सही लालन-पालन न मिल पाने से और भी गई गुजरी स्थिति में पहुँच जाती है। दशरथजी ने सन्तुलन से काम लिया। अपनी अवस्था देखकर जब उत्तराधिकारियों की आवश्यकता अनुभव हुई, तब उन्होंने गुरु वशिष्ठजी से अपनी इच्छा व्यक्त की। उनकी सलाह के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा यज्ञीय वातावरण में रानियों को रखा। वे श्रेष्ठ सन्तान को गर्भ में रखकर उनके उचित विकास में सक्षम हो गयीं। उनकी स्थिति का विवरण इस प्रकार मिलता है।

मन्दिर महँ सब राजहिं रानी।
शोभा सील तेज की खानी॥

"तीनों रानियों महलों में शोभाशील और तेज की खान की तरह सुशोभित होने लगीं।"

शोभा से शारीरिक स्वास्थ्य, शील से मानसिक खान की तरह आध्यात्मिक शक्तियों का श्रेष्ठ स्थिति में होना सिद्ध होता है। मातायें वस्तुत खानें ही होती हैं। खान जैसी होगी वैसा ही रत्न निकाल सकती है। श्रेष्ठ सन्तति के लिये माताओं को स्वस्थ विचार तथा भाव दृष्टि से पुष्ट बनाया जाना आवश्यक है।

गर्भकाल में माँ के चिन्तन तथा क्रिया-कलापों का सीधा प्रभाव बच्चे पर पड़ता है। इसलिये इन्हें हर्ष एवं उल्लासपूर्ण वातावरण में रखा जाना चाहिये। माताओं को भी स्वयं प्रसन्न और सन्तुलित रहना चाहिये। श्रीराम जन्म के प्रसंग में यह शर्त पूरी की गयी। रानियों ने गर्भकाल हर्ष एवं प्रसन्नता के वातावरण में बिताया—

सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ।
जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर भयऊ॥

"रानियों का इस प्रकार गर्भकाल का समय सुखपूर्वक व्यतीत हुआ और वह अवसर आ पहुँचा जिस समय प्रभु को प्रकट होना था।"

इस प्रकार पहले जन्म से लेकर पुत्र प्राप्ति तक श्रेष्ठ आचरणों की तथा प्रयासों की लम्बी शृंखला मिलती है। तब दशरथजी को श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति हो पाती है। पुत्र जन्म के बाद भी वे अपने आदर्शों के पालन का क्रम बनाये रखते हैं। फलस्वरूप बालक उन्हीं का अनुसरण करने लगते हैं। बालकों को उचित ढंग से विकसित होते देखकर गुरु वशिष्ठ भी राजा के आचरण की प्रशंसा करते हैं, वे कहते हैं—

वीर विनीत धर्म बतधारी।
गुन सागर बर बालक चारी॥

"इन्हीं पुण्यों के परिणाम स्वरूप तुम्हारे चारों बालक वीर, धर्मात्मा, नम्र, श्रेष्ठ तथा सद्गुणों के भण्डार हैं।

स्वस्थ तथा सुसंस्कार सम्पन्न यह बालक जहाँ भी जाते हैं अपनी श्रेष्ठता की अनौखी छाप छोड़ते चलते हैं। ऋषि विश्वामित्र के साथ श्रीराम एवं लक्ष्मण जनकपुरी में पहुँचकर धनुष यज्ञ में सारे राजाओं के बीच अद्वितीय सिद्ध होते हैं। जनकजी के दूत उनकी सफलता का समाचार लेकर अयोध्या पहुँचते हैं। स्नेहवश दशरथजी उनसे पूछते हैं कि क्या तुमने उन्हें सकुशल देखा है ? क्या तुम उन्हें पहचानते हो ? तब वे उत्तर देते हैं—

पूछन जोग न तनय तुम्हारे।
पुरुष सिहं तिहुं पुर उजियारे॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे महाराज ! आपके पुत्र पूछने लायक नहीं हैं। वे पुरुषों में सिहं के समान पुरुषार्थी तथा अपने गुणों और तेजस्विता के कारण तीनों लोकों में प्रकाश फैलाने वाले हैं।"

कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाने और कीर्ति फैलाने में सद्गुण सम्पन्न पुत्र ही समर्थ होते हैं। पुत्रों द्वारा नाम और यश फैलाने की कल्पना चाहे जैसी सनतान से सम्भव नहीं। कपूतों से कुल का चलाना तो दूर रहा पहले की बनी बनाई प्रतिष्ठा भी नष्ट हो जाती है। इसी का अलंकारिक वर्णन स्वयं भगवान राम ने वर्षा ऋतु वर्णन के अवसर पर किया है। वे अपने अनुज लक्ष्मण से कहते हैं–

कबहु प्रबल बह मारुत, जंह तंह मेघ बिलाइ।
जिमि कुपुत्र के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाइ॥

"कभी इतनी तेज वायु चलती है कि बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं जिस प्रकार परिवार में कोई कुपुत्र पैदा हो जाने से कुल के सत्कर्म नष्ट हो जाते हैं।"

रूढिवादी मूढ़ मान्यता के चक्कर में फँसकर लोग यह तथ्य भूल जाते हैं और सोचते हैं कि कैसा भी पुत्र हो जाय, उसी से कुल का नाम रोशन हो जायेगा। कभी-कभी लोग सन्तान की श्रेष्ठता की उपेक्षा करके उसकी संख्या को महत्व देने लगते हैं। सोचते हैं कि अधिक संतान परिवार तथा समाज को सशक्त और सुखी बना देगी। किन्तु यह सब भ्रम है। सन्तान की संख्या की दृष्टि से तो रावण बहुत सफल था। रावण के वैभव का वर्णन करते हुए रामचरितमानस में उसके संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख मिलता है–

सुत समूह जन परिजन नाती।
गनै को पार निसाचर जाती॥

"पुत्रों का समूह, नौकर, परिवार के सदस्य नाती आदि बहुत कुछ थे, इन्हें गिनकर कौन पार पा सकता है।"

इस प्रकार अगणित पुत्र पौत्रों वाले रावण का विनाश किस बुरी तरह हुआ यह सभी जानते हैं। उनकी संख्या न तो उसके शरीर की रक्षा कर सकी और न यश की। कारण एक ही था कि बच्चों को सुसंस्कारी बनाने पर उसका विश्वास ही नहीं था। इस आवश्यकता को समझने वाला व्यक्ति बच्चों में सुसंस्कार पैदा करने में स्वयं को असमर्थ पाकर उन्हें श्रेष्ठ व्यक्तियों के हवाले कर सकता है। स्वयं के प्रयास तथा श्रेष्ठ जनों के संयोग से भी बच्चों का ठीक-ठीक निर्माण किया जा सकता है। बालि ने यही किया। उसने केवल एक ही संतान पैदा की, उसे यथाशक्ति सुयोग्य बनाया। जिन आदर्शों में स्वयं को अक्षम पाया, उसके लिये पुत्र को श्रीराम के हवाले कर दिया। मृत्यु के पूर्व अंगद को बुलाकर उसे भगवान को सुपुर्द करते हुए बोला–

यह तनय मम सम विनय बल कल्याणप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बांह सुर नर नाह आपनु दास अंगद कीजिये॥

"यह पुत्र मेरे समान नम्र और बलवान है। हे मंगल करने वाले प्रभु ! इसे लीजिये। हे देवता और मनुष्यों के स्वामी अंगद का हाथ पकड़कर इसे अपना सेवक (अनुगामी) बनाइये।"

समाज को श्रेष्ठ नागरिक प्रदान करने का महान उत्तरदायित्व जो करता है। बालि इस कर्तव्य के प्रति जागरूक था। उसे संन्तान के प्रति अपने दायित्वों का बोध था और उसने सन्तान को सुसंस्कार देने में अपनी तरफ से कमी नहीं रखी थी। इसीलिये वह आदर्श पुत्र को भगवान राम के सुपुर्द करता है। तो गौरव के साथ कहता है–

सुतः सुलभ्यः सुजनः सुलभ्य कुतः सुपुत्रः सदृशोऽनेन॥

"हे राम ! पुत्र की प्राप्ति सहज है और अपने सब सुजन भी सहज वश में किये जा सकते हैं, किन्तु अंगद जैसा गुणवान पुत्र कहाँ मिल सकता है।"

बालि से बल और श्रीराम से सुसंस्कार पाकर अंगद अद्वितीय बन गये। उनके बल और पौरुष को देखकर लोग आश्चर्य करने लगे। यदि बालि अपने बेटे में बल के साथ श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के विकास की ओर से उदासीन रहता तो यह उपलब्धि सम्भव न होने पाती। समर्थ व्यक्ति को आदर्श परायण भी होना ही चाहिये। वह सामर्थ्य हानिकारक ही सिद्ध होती है। सन्तान को श्रेष्ठ संस्कार देने में पिता के समान माता का भी दायित्व है। इसके आदर्श उदाहरण मानस में कई स्थानों पर आते हैं। जब श्रीराम के साथ वन जाने की आज्ञा माँगने लक्ष्मण माता सुमित्रा के पास जाते हैं, तब वे इस संदर्भ में अपना मत व्यक्त करते हुए कहती हैं–

पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगत जासु सुत होई॥

"संसार में वहीं स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीराम जी का भक्त हो, अर्थात् उसके आदर्शों का अनुगामी हो।"

माता सुमित्रा के मतानुसार यदि बालक आदर्शनिष्ठ ईश्वर परायण नहीं है तो माँ का पुत्रवती कहलाना निरर्थक है। क्योंकि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैसा पुत्र तो उसके नाम को कलंकित ही करेगा । इसलिये वे मातृत्व की इच्छुक युवतियों को सावधान करती हुई कहती हैं कि सन्तान पैदा करने से पूर्व अपनी यह मान्यता दृढ कर लें, जो यह सोचती हैं कि चाहे जैसा हो पुत्र तो हितकारी है, उनका सन्तान पैदा करना बेकार है—

नतरु बांझ भलि बादि बिआनी ।
राम विमुख सुत तें हित जानी ॥

''राम से विमुख पुत्र हित की आशा करने वाली स्त्री का प्रसव बेकार है, उससे तो बांझ (जिसके बच्चे होते ही नहीं ऐसी स्त्री) ही अच्छी है । ''

बिआनी शब्द पशुओं के लिये प्रयुक्त होता है । यहाँ संकेत यही है कि आदर्शहीन बालक को जन्म देना पशुओं की संख्या बढ़ाने जैसा ही है । इसलिये माताओं को बच्चों में श्रेष्ठ विचार, श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ पैदा करने का प्रयास हर दिशा से करने चाहिये ।

सन्तान पैदा करने से पहले ही इस बात का हजार बार विचार किया जाना चाहिये कि स्वयं माता एवं पिता श्रेष्ठ सन्तान बनाने की क्षमता योग्यता रखते हैं या नहीं । माता-पिता ही बच्चों के प्रथम गुरु होते हैं । माता तो बच्चे के गर्भ में आने के बाद से ही सूक्ष्म शिक्षण संस्कार प्रारंभ कर देती है । जाने अनजाने उसके व्यवहारों और विचारों का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ने लगता है, इसलिये ही माता-पिता को गुरु की श्रेणी में रखा गया है । वाल्मीकि ऋषि अयोध्या काण्ड में कहते हैं—

पुरुषस्येह जातस्य भवन्ति गुरुवस्त्रयः ।
आचार्यश्चैव काकुत्स्थ पिता माता च राघव ॥

''हे काकुत्स्थ ! हे राम ! पुरुष जब जन्मता है, तब उसके तीन गुरु होते हैं । पिता, माता और आचार्य । ''

पुत्र का निर्माण माता-पिता के शरीर से ही नहीं हो जाता बल्कि भावनाओं से भी होता है । अस्तु बच्चे पैदा करने के पूर्व माता-पिता को अपना शरीर तो स्वस्थ बना ही लेना चाहिये किन्तु विचार एवं भाव का भी शोधन कर लेना चाहिये ।

अधिकांश माताओं को बच्चों को श्रेष्ठ संस्कार देने के ढंग ही नहीं मालूम रहते । गर्भकाल में माता के रक्त द्वारा बच्चे में माता के विचारों का असर पहुँचता रहता है और शैशवकाल में दूध के द्वारा भी यही होता है । दूध पिलाते समय माता श्रेष्ठ विचारों से युक्त रहे । बच्चे के विकास की श्रेष्ठ गुणों की कल्पनायें करे यह बड़ा ही उपयोगी है । माता कौशल्या राम को दूध किस प्रकार पिलाती है, इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—

गोद राखि कराब पय पाना ।
रघुपति चरित ललित करि गाना ॥

''माँ गोद में लेकर दूध पिलाती है और साथ-साथ मधुर स्वर में राम के श्रेष्ठ चरित्रों का गान करती जाती हैं । ''

गोद में लेकर दूध पिलाने का अर्थ है चैतन्य स्थिति में दूध पिलाना । तन्द्रा, आलस्य की स्थिति में दूध पिलाने से बच्चे में वही प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं । श्रीराम को रघुपति चरित्र कैसे सुनाती हैं, यह प्रश्न उठता है । इसके दो अर्थ हैं । एक तो पूर्व अवतारों के श्रेष्ठ चरित्रों का गान अथवा मेरा बेटा धीर वीर बनेगा, बेटा असाधारण है, आदर्श स्थापित करेगा आदि भावपूर्ण वाक्य बोलना । सती मदालसा ने अपने बच्चें को इसी प्रकार 'शुद्धों सि, बुद्धों सि' कहकर आदर्श बनाया था ।

बच्चों के अन्दर खेल-खेल में ही श्रेष्ठ प्रवृत्तियों को जगाना बड़ा ही उपयोगी है । बच्चे हर देखे हुए कार्य को अपने खेल में शामिल करने लगते हैं । मारपीट, खाना बनाना, अतिथि यात्रा आदि सभी प्रकरण बच्चों के लिये खेल बन जाते हैं । खेल में दोहरायी जाने वाली भावनायें उनमें गहराई तक प्रविष्ट होती जाती हैं । अभिभावकों को चाहिये कि बच्चों को खेलने का अवसर भी दें तथा मार्ग दर्शन भी, ताकि वे अच्छे खेल खेलें और वैसे ही आचरण सीखें । श्रीराम के सन्दर्भ में खेलों का वर्णन मानस में इस प्रकार है—

विद्या विनय निपुण गुण सीला ।
खेलहि खेल सकल नृप लीला ॥

''वे विद्या और विनय में निपुण हैं । सभी भाई राजाओं के क्रिया-कलापों का खेल खेलते हैं । ''

बालकों में सामूहिक सहयोग, सहकारिता, समता, उदारता, आदि प्रवृत्तियों का विकास किया जाना चाहिये । खाने-पीने के मामले में बहुधा बच्चे स्वार्थी होने लगते हैं और भेदभाव बरतने लगते हैं । यह दोष उनमें माता-पिता की भूलों से ही आता है । अन्य बच्चों से छिपाकर, चुपचाप स्वयं दूसरों से अधिक हिस्सा लेकर रखने की आदत माता-पिता के समर्थन अथवा उपेक्षा से ही बढ़ती है । फिर यही आदत जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में फैलने लगती है । बच्चों में प्रारम्भ से ही मिल-बाँटकर खाने की, दूसरों का हिस्सा उन तक पहुँचाने की प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिये । रामायण का आदर्श इस प्रकरण में स्पष्ट

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है । चारों भाइयों के बाल्यकाल का चित्रण करते हुए कहा गया है—

अनुज सखा संग भोजन करहीं ।
मातु पिता आज्ञा अनुसरहीं ॥

"वे भाइयों और मित्रों के साथ मिल-जुल कर भोजन करते हैं तथा माता-पिता की आज्ञा का पालन करते हैं । "

माता-पिता की आज्ञा पालन का वर्णन यहाँ दो अर्थों में प्रयुक्त होता है । एक यह कि इस प्रकार मिल-जुल कर भोजन करने की आज्ञा माता-पिता देते हैं, जिसका वे पालन करते हैं । दूसरे माता-पिता की आज्ञा-अनुशासन का भी प्रतीक है । बाल्यकाल से ही बच्चों को आज्ञा-अनुशासन में चलने का अभ्यास कराया जाना चाहिये, अन्यथा बाद में उनके स्वभाव बिगड़ जाते हैं । शासन एवं शिष्टाचार का अभ्यास भी बच्चों को प्रारम्भ से ही कराया जाता है । गुरु आश्रम से श्रेष्ठ शिक्षा पाकर वे सभी भाइयों सहित वापस आये । आदर्श शिक्षा के कारण उनके व्यवहार में आदर्शवादिता आ गयी—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

श्रीभगवान राम प्रातकाल ही जाग पड़ते हैं तथा माता-पिता एवं गुरु को प्रणाम करते हैं ।

बड़ों के साथ नम्रता, विनय एवं उनका गौरव स्वीकार करने वाला व्यवहार किया जाता है । ऐसे व्यवहार में चरणस्पर्श पूर्वक अभिवन्दन भी होता है । भेंट होने पर नैमित्तिक रूप में और प्रातःकाल नित्य नियम के रूप में बड़ों के चरणस्पर्श करना भारतीय शिष्टाचार का एक अति महत्वपूर्ण अंग हैं । इसमें अनुशासन ही स्वीकृति है । पिता, बाबा, बड़े भाई, ताऊ, चाचा, माता, ताई, चाची, बड़ी भाभी, बुआ, बड़ी बहिन आदि को गुरुजनों की श्रेणी में रखा गया है और उनके नित्य-प्रति प्रातःकाल चरणस्पर्श करने की अपनी परम्परा है । इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने बड़ों का चरणस्पर्श करती हैं । शास्त्र का कथन है कि—

अभिवादन शीलस्य नित्यं बृद्धोपसेविन ।
चत्वारि तस्य बर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

"जो मनुष्य अभिवादनशील तथा नित्य बड़े-बूढ़ों की सेवा एवं आज्ञा का पालन करता है, उसकी आयु विद्या, यश, बल ये चार चीजें बढ़ती हैं । "

अनुभवी, हितैषी, वयोवृद्धों को सम्मान देने से उनके आशीर्वाद एवं अनुभव का सहज लाभ मिलता है । बालकों में यह प्रवृत्ति सहज रूप में आये इसके लिये घर में परस्पर अभिवादन का क्रम बड़ों को भी चलाना चाहिये । जब बच्चे सम्मान देना सीखते हैं तो स्वतः अनुशासन में भी रहने लगते हैं । इससे उनके विकास में बड़ा समुचित योगदान सहज सम्भव हो जाता है ।

सामान्य से विशिष्ट, सरल से कठिन कार्यों की ओर बढ़ना विवेक संगत नीति है । इससे क्रमशः प्रगति होती रहती है । छोटा कार्य कर लेने पर बड़ा कार्य करने की क्षमता, योग्यता और साहस का विकास हो जाता है । अतः जैसे-जैसे बालकों की बुद्धि एवं क्षमताओं का विकास होता चले, उन्हें धीरे-धीरे उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सौंपे जाने चाहिये । उनमें उत्साह तो हर कार्य के लिये बहुत होता है, किन्तु अनुभव की कमी के कारण भूलों की सम्भावना अधिक रहती है । भूलें न हों इसलिये उन्हें छोटे-छोटे टुकड़ों में बार-बार पूछकर कार्य करने का निर्देश देना चाहिये । बड़ों को चाहिये कि उनकी देख-रेख रखें ताकि कार्य बिगड़ने न पावे । बाद में खीझ, असन्तोष आदि व्यक्त करने की अपेक्षा पहले ही सावधानी बरती जानी चाहिये । ऐसा करने से दोनों पक्षों को प्रसन्नता होती है । राजा दशरथ ने बच्चों के सम्बन्ध में यह सावधानी बरती है कि उन्हें समय-समय पर व्यवस्था से काम सौपते चलें । बच्चे उनहें उत्साहपूर्वक करते हैं—

आयसु मागि करहि पुर काजा ।
देखि चरित हरषहि मन राजा ॥

"सहमति लेकर वे राज्य के कार्यों को करते हैं, उनके चरित्र को राजा देखते हैं और मन में हर्षित होते हैं । "

बच्चों के सामने उनकी बहुत अधिक बढ़ाई करने से उनमें अहंकार बढ़ने का भय रहता है, अतः प्रोत्साहन तो देना चाहिये, परन्तु उनकी सफलता पर बहुत अधिक फूलें नहीं फिरना चाहिये । मन में हर्षित होने की बात इसी तथ्य को ध्यान में रखकर कही गयी है ।

बच्चों से स्नेह तो किया जाय मोह नहीं । बच्चों के विकास और शिक्षण के लिये उन्हें उपर्युक्त व्यक्तियों के पास रहने का अवसर देना चाहिये । मोहवश अपने पास ही रखने का आग्रह हानिकारक हैं । राक्षसों से यज्ञ की रक्षा हेतु विश्वामित्र ने अयोध्या आकर महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँगा । दशरथजी ने अपने मोह को बच्चों के विकास में बाधक नहीं बनने दिया ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोंपे भूप रिषिहिं सुत,
बहु विधि देइ असीस ।
जननी भवन गए प्रभु,
चले नाय पद सीस ॥

"तब राजा दशरथ ने अपने पूत्रों को अनेक प्रकार से आशीर्वाद देकर महर्षि विश्वामित्र को सौंप दिया । उसके बाद भगवान राम कौशल्या के महल में गये और उनके चरणों में साष्टांग दण्डवत् करके ऋषि के साथ चल दिये ।"

विश्वामित्र बड़े तपस्वी और ज्ञानी थे । उन्होंने राम-लक्ष्मण में पात्रता देखकर उन्हें सभी प्रकार की विद्यायें बड़े मनोयोग से सिखायीं । दोनों ओर से उत्साह होने के कारण ज्ञान के साथ तप साधना का अभ्यास भी कराया गया । जीवन में कब कैसा अवसर आता है, इसकी हर तरह से तैयारी रहनी चाहिये । विश्वामित्रजी राम और लक्ष्मण को वही तप और त्याग का अभ्यास स्नेहपूर्वक करा रहे हैं—

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां
तृणशयनेऽनुचिते सहोषिताभ्याम् ।
कुशिवासुतवचोनुलालिताभ्यां
सुखमिव सा विबभौ विभामरी च ॥

"राजकुमार होने के कारण भूमि पर सोने का अभ्यास न होने पर भी दशरथ पुत्र दोनों वीरों ने विश्वामित्र के मधुर वचन सुनते हुए घास के बिछौनों पर सुखपूर्वक वह रात बितायी ।"

बच्चों को प्रेमपूर्वक ही कठोर जीवन का अभ्यास कराना चाहिये । जनकपुर जाते समय सोन के किनारे रात्रि व्यतीत की गयी । प्रातःकाल राम को जगाते हुए विश्वामित्र ने कहा बच्चों को किस तरह जगाना चाहिये, इसका यह आदर्श उदाहरण है—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते ममनायाभिरोचय ॥

"हे राम ! सुन्दर प्रभातकाल है । तुम्हारा मंगल हो । शीघ्र उठो और सन्ध्योपासन कर चलने की तैयारी करो ।"

इस तरह अभ्यास के कारण ही राम-लक्ष्मण सुखपूर्वक कठोर जीवन बिता सके । कठोर जीवन का अभ्यास एक बात है, इसके साथ ही सुनियोजित एवं संस्कारयुक्त जीवन पद्धति अलग बात । इन दोनों का समुचित समावेश किया जा सके तो सर्वांगीण विकास में कमी नहीं रह सकती । विश्वामित्र एक आदर्श गुरु थे । अतः उनहोंने राम और लक्ष्मण के सर्वांगीण विकास का ध्यान रखा कठोर जीवन के अभ्यास के साथ ही सन्ध्या, उपासना, हवन आदि की सांस्कृतिक-धार्मिक भावनाओं को समुचित पोषण प्रदान किया । गुरु की आज्ञानुसार दोनों राजकुमार नम्रतापूर्वक आदर्श दिनचर्या का पालन करते थे—

प्रभातकाले चौत्थय पूर्वा सन्ध्यामुपास्य च ।
स्पृष्टोदकै शुची पूर्वा समाप्य नियमेन च ।
हुताग्निहोत्रमापीनं विश्वामित्रमवन्ताम् ॥

"प्रातःकाल उठकर राजकुमारों ने प्रातः सन्ध्या की, आचमनपूर्वक पवित्र हो गायत्री का जप किया । फिर अग्नि से हवन कर आसन पर विराजमान विश्वामित्र जी की वन्दना की ।"

शिक्षा का केवल सिद्धान्तपरक नहीं, वरन् व्यवहारपरक होना ही उचित है । यह सिद्धान्तों के बोध और श्रद्धा, निष्ठा के आधार पर ही हो सकती है । अपने गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा कष्टसाध्य कार्यों में भी दायित्व से पीछे नहीं हटने देती । ऐसा आदर्श स्वयं राम-लक्ष्मण ने प्रस्तुत किया । विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा में रत राम-लक्ष्मण की मुस्तैदी और कष्ट सहन दर्शनीय है ।

तौ च तद्वचनं श्रुत्वा राजपुत्रों यशस्विनौ ।
अनिद्रौ षडहोरात्रं तपौवनमरक्षताम् ॥

"ऋषियों के बचन सुन उन दोनों यशस्वी राजपुत्रों ने लगातार छः दिन-रात जाकर तपोवन की रक्षा की ।"

इस स्तर की कर्तव्य निष्ठा जिनमें जाग जाती है, उनके प्रति सभी का स्नेह एवं सम्मान उमड़ता है । उनकी पात्रता पर विश्वास होने पर गुरु उनको अधिक से अधिक अनुदान देने के लिये आतुर हो उठते हैं ।

निश्चित रूप से शिष्य की श्रद्धा और विद्या के प्रति रुचि गुरु को आगे का पाठ पढ़ाने की प्रेरणा देती रहती है । स्वयं गुरु भी अपने दायित्त्वों को समझने लगें तो बात ही क्या है ? समयानुकूल प्रयास प्रयोग का अभ्यास करना हो तो अनुशासनात्मक ढंग से चलना चाहिये । इसके बाद भी नियमित दिनचर्या में व्यतिक्रम न आये यही अभ्यास आदत, स्वभाव और संस्कारगत हो जाता है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए ज्ञानी गुरु विश्वामित्र अपना उत्तरदायित्व निभाते रहते हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहत कथा इतिहास पुरानी ।
रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥

"फिर मुनि ने इतिहास और प्राचीन कथायें सुनायीं । इस प्रकार सुन्दर रात्रि के दो पहर व्यतीत हो गये ।"

इस प्रकार हर पक्ष से उचित और समयानुकूल प्रयासों के संयोग से ही चारों भाई आदर्श बन सके । बालकों के निर्माण की मर्यादा और जिम्मेदारी का यह क्रम आगे भी उसी प्रकार से निभाया चलाया जाता रहा । बच्चों की संख्या बढ़ा लेना महत्व की बात नहीं है, उनका स्तर बढ़ाना ही अधिक महत्व की बात है । इस तथ्य को ध्यान में रखकर चारों भाइयों ने आदर्श राज्य की स्थापना हो जाने पर उपयुक्त वातावरण तथा परिस्थिति पैदा होने पर ही सन्तान पैदा करना आरम्भ किया, उसके पूर्व नहीं । सन्तान संख्या की भी मर्यादा रखी गयी और उन्हें सुयोग्य भी बनाया गया । उत्तरकाण्ड में उल्लेख है—

दुइ सुत सुन्दर सीता जाए ।
लव कुश वेद पुरानन्ह गाए ॥

"सीताजी ने लव और कुश नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनका शास्त्रों ने बखान किया है ।"

यह दोनों पुत्र भी रूप, गुण और स्वभाव में श्रीराम की ही तरह श्रेष्ठ निकले । उनके शौर्य साहस तथा ज्ञान की गाथायें सभी को ज्ञात हैं । मानसकार ने उनके सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट संकेत करते हुए लिखा है—

दोऊ बिजई बिनई गुन मन्दिर।
हरि प्रतिबिम्ब मनहुं अति सुन्दर॥

"वे दोनों ही विख्यात, योद्धा, नम्र और गुणों की खान तथा बहुत सुन्दर हुए मानो श्रीराम के प्रतिबिंब ही हों ।"

दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे ।
भए रूप गुन सील घनेरे ॥

"दो-दो पुत्र सब भाइयों के हुए जो बहुत ही सुन्दर, गुणवान और सुशील थे ।"

सन्तान के प्रति कर्तव्य पालन करने में प्रेम का समुचित स्थान रहे । लेकिन यह मोहग्रस्त न हो । अनावश्यक मोह कर्तव्यों से च्युत कर देता है । अतः हर तरह से अपने गम्भीर उत्तरदायित्वों को समझकर अभिभावकों को चाहिये कि वे सन्तान के प्रति न्याय करें । ऐसी स्थिति में होने पर ही संतान उत्पन्न करने का दायित्व उठायें अन्यथा नहीं । सन्तान उत्पन्न भी करें तो सीमित संख्या में । संख्या की अपेक्षा उनके स्तर को बढ़ाने की बात सोची जानी चाहिये । यदि अभिभावक रामायण के आदर्शों को समझकर अपने आचरण से लेकर परिवार के वातावरण तक को बालकों के विकास के अनुरूप बना सकें तो परिवार फिर से नर रत्नों की खादान बन जायें ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पारिवारिक जीवन में आदर्श भ्रातृत्व

भाई का सम्बन्ध परिवार और समाज में अनौखा ही महत्व रखता है। जहाँ भी गहन आत्मीयता, निश्छल स्नेह, अधिकार और उत्तरदायित्वों की समानता का प्रकरण आता है, उनके लिये आदर्श के रूप में भाई-भाई की उपमा दी जाती है। प्रश्न मित्रता के निर्वाह का हो या मनुष्यता का उसके लिये आदर्शों के ढेरों उदाहरण देने की अपेक्षा भाई-भाई की तरह होने की उक्ति पर्याप्त है। इतने मात्र से हर कोई उस आदर्श की ठीक-ठीक कल्पना कर लेता है।

भाई-भाई होना शारीरिक सम्बन्ध माना जाता है, किन्तु उससे भी अधिक वह है एक भावना। उस भावना के अभाव में एक ही माँ के पेट से जन्मे भाइयों में ऐसी कटुता और शत्रुता की स्थिति देखी जा सकती है, जिसके कारण न केवल उनका जीवन नर्क हो जाता है वरन् उनसे सम्बन्धित परिजनों की भी मुसीबत आ जाती हैं। इसके विपरीत जहाँ भ्रातोचित स्नेह सोहार्द्र है, वहाँ दुर्बल और अभावग्रस्त व्यक्ति भी आपको समर्थ, सशक्त और सुखी अनुभव करता है। लगता है भाई जैसा सहयोगी होते हुए किस बात की कमी है। भाई-भाई के लिये सबसे बड़ा सम्बल होता है।

किन्तु यह स्थिति भाई-भाई के लौकिक शिष्टाचार मात्र को निभा लेने से नहीं आती। वह तो स्नेह आत्मीयता के सहज स्तर से प्रकट होती है। रामचरितमानस भ्रातृत्व के उच्चतम आदर्शों से भरपूर है। रामायण को सच्चे अर्थों में रामायण बनाने का सर्वाधिक श्रेय उसके आदर्श बन्धओं को ही दिया जा सकता है। परिस्थितियों के वे भयंकर आघात जो परिवारों को ही नहीं, उसके साथ समाज के एक बड़े हिस्से को तहस-नहस कर डालते हैं, इन आदर्श भाइयों के सामने प्रभावहीन हो गये। यह सब चमत्कार जिस उत्कृष्ट भावना मात्र के कारण सम्भव हुआ, उसके दर्शन स्थल-स्थल पर होते हैं। जो भी उसे देख पाता है, प्रभावित और गद्‌गद हो जाता है। विदेह कहे जाने वाले राजा जनक जब पहली बार राम-लक्ष्मण को देखते हैं, तो भाव विभोर हो उठते हैं। अपने मन के भाव महर्षि विश्वामित्र के सामने प्रकट कर उठते हैं—

सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू।
बह्म जीव इव सहज सनेहू॥

"विदेह ने हर्षित होकर कहा हे नाथ! इन दोनों भाइयों में तो ब्रह्म और जीव के समान स्वाभाविक प्रेम है।"

जीव और ब्रह्मा दो अभेद तत्व हैं, मूर्त में दो दीखने वाले भाई एक ही पिता के अंश, एक ही माता के रक्त रस से विनिर्मित इतनी घनिष्ठ एकता और कहाँ हो सकती है, जनक स्वयं ही आदर्श भ्रातृत्व के प्रतीक थे। बड़े भाई को अपने अनुज का अपनी सगी सन्तान की तरह पालन पोषण करना चाहिये। राम के विवाह के समय महाराज जनक ने अपने कुटुम्बियों का परिचय वशिष्ठ को कराते हुए कहा—

वृद्धे पितरि स्वर्याते धर्मेण धुरमावहम्।
भ्रातरं देवसंकाशं स्नेहात् पश्चन् कुशध्वजम्॥

"जब मेरे बूढ़े पिता धर्मपूर्वक राज्य संचालन कर स्वर्गवासी हुए तब मैंने अपने देवता स्वरूप छोटे भाई कुशध्वज का स्नेह पूर्वक पालन किया।"

इस तरह की गरिमा का निर्वाह करने वाले पितृ हृदय होते हैं। जिनके हृदयों में अपने छोटे भाइयों के प्रति इस तरह स्नेह हो उन्हीं परिवारों में भावनाओं की, सुमति और सम्पत्ति की निर्झरिणी सतत् प्रवाहित होती रहती है। ऐसी निर्मल बुद्धि का बड़ा भाई हो तो वह कभी भी अपने सुखों की, समुन्नति की कल्पना नहीं कर सकता। रामायण इस तथ्य के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज जबकि एक भाई दूसरे की सम्पत्ति हड़प जाने, अपने लिये बड़े अधिकार और दूसरों को कुछ भी न देने की दुर्बुद्धि से ग्रस्त दिखाई देते हैं। राम का चिन्तन एक आदर्श है।

भाई-भाई की समानता के आदर्श के प्रति श्रीराम की इतनी गहन निष्ठा है कि अकेले स्वयं का राज्याभिषेक उन्हें अनुचित लगता है। अन्य सभी प्रकरण में सभी भाई समान रूप से भाग लेते रहे, अभिषेक में समानता के स्तर का उल्लंघन होता देख श्रीराम दुःखी होकर सोचते हैं। अपने राज्याभिषेक की तैयारी देख राम ने सोचा—

विमल बंस यहु अनुचित एकू।
बन्धु बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू॥

"इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि सभी भाइयों को छोड़ कर राज्याभिषेक बड़े भाई का ही (मेरा ही) होता है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वैभव की कामना बड़े बड़ों को विचलित कर देती है, भाई-भाई के अधिकार छीनने से लेकर एक-दूसरे के खून के प्यासे बन जाने तक की दुःखद घटनायें इसी कारण होती देखी जाती हैं। किन्तु सच्चे भ्रातृ भाव को वह छोड़ भी नहीं पाता— यहाँ तो श्रीराम को अपना उचित, सांसारिक दृष्टि से न्याय संगत अधिकार भाइयों को छोड़कर लेना दुःख का कारण बना है। इस निर्मल और पवित्रतम भ्रातृ भाव को देखकर तुलसतीदास जी कामना करते हैं—

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।
हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥

"श्रीरामचन्द्रजी का यह सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे।"

सचमुच सच्चा स्नेह भ्रम और दुर्भाव को भी धो सकता है और हमारी कुटिलता ही हमें परस्पर सहयोग से और सुख सन्तोष से वंचित किये हुए है। श्रीराम के उदाहरण से यह समझें कि भाई-भाई, मित्र-मित्र परस्पर कुटिलता की अपेक्षा स्नेह व्यवहार द्वारा अधिक लाभ एवं सुख संतोष पा सकते हैं। एक व्यक्ति सारे वैभव को बटोरना चाहे तो भी यह संभव नहीं किन्तु अपनी भाई की उपलब्धि को भी अपनी उपलब्धि माने तो उसका सुख अनेक गुना बढ़ सकता है। श्रीराम को यह ध्यान भी नहीं आता कि उनका राज्य छिन रहा है, उन्हें तो यह प्रसन्नता है कि उनके प्रिय भाई भरत राज्य पावेंगे। वे माँ कैकेयी से कहते हैं—

भरत प्राणप्रिय पावहि राजू।
विधि सब विधि मोहि सनमुख आजू॥

"प्राणों से प्यारे भरत राज्य पावेंगे (इन सब बातों से तो यह मालूम होता है कि) विधाता सब प्रकार से मेरे अनुकूल ही है।"

कुटिल मन वाला व्यक्ति जिस घटना को दुर्भाग्य मानकर नारकीय पीड़ा अनुभव करता है, स्नेही राम उसी घटना को सौभाग्य मानकर प्रसन्न और प्रफुल्लित हो रहे हैं। सौभाग्य तथा संतोष पाने का यह ढंग अपनाने के लिये किसी को कहीं से कुछ लाना नहीं पड़ता केवल अपनी मान्यताओं को थोड़ा-सा बदलना-घुमाना पड़ता है।

कहब संदेश भरत के आये।
नीति न तजिय राज पद पाये॥

"भरत के आने पर उनसे मेरा संदेश कहना कि हे भाई! राज्य पद पाने पर भी नीति का मार्ग न छोड़ना।"

भाई की उपलब्धि पर मात्र प्रसन्नता ही नहीं, उसके ऊपर आये उत्तरदायित्त्व को भी अपने उत्तरदायित्त्व की तरह अनुभव करना तथा अपनी स्थिति तथा मर्यादा के अनुरूप उसकी व्यवस्था करना भी भाई का कर्तव्य है। श्रीराम वन जा रहे हैं, किन्तु भरत के लिये राज्य प्राप्ति के समय बरती जाने वाली सावधानियों का निर्देश संदेश के रूप में छोड़कर जाते हैं—

और निवाहेहु भाइप भाई।
करि पितु मातु सुजन सिविकाई॥

"हे भाई! पिता-माता तथा प्रजा-स्वजनों की सेवा करके तुम भ्रातृत्व का निर्वाह करना।"

श्रीराम का भाइयों के प्रति यह स्नेह वन में कष्टपूर्ण जीवन बिताते हुए भी कम नहीं होता। वे पूर्ण काम स्वयं के लिये कोई कामना नहीं रखते, किन्तु यदि कुछ चाहते हैं तो वह भाइयों के लिये। चित्रकूट में भाई लक्ष्मण से हुई चर्चा का उल्लेख वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार है—

धर्ममर्थं च पृथिवी चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थं एतत्प्रतिशृणोमि ते॥

"हे लक्ष्मण! मैं तुमसे यह बात दावे के साथ कहता हूँ कि मैं तो केवल अपने भाइयों के लिय ही धर्म, अर्थ, काम अथवा पृथ्वी का राज्य चाहता हूँ।"

श्रीराम का भ्रातृ प्रेम कितना प्रखर है यह अगले श्लोक से और भी अधिक प्रखर होता है।

यद्विना भरत त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद्भस्म तत्कुरुतां शिखो॥

"हे मान देने वाले! तुम्हारे बिना, भरत के बिना और शत्रुघ्न के बिना मुझे जिस किसी वस्तु से सुख मिलता हो उसे अग्नि देव भस्म कर डालें।"

भगवान राम का यह कहना मात्र शिष्टाचार या दिखावा नहीं। वास्तव में वे स्वयं सफलता पाकर प्रसन्न होने की अपेक्षा भाइयों को सफलता दिलाकर प्रसन्न होते रहे। भरत चित्रकूट दरबार में सबके सामने उनके इस असाधारण स्नेह शील स्वभाव का वर्णन अपनी अनुभूति के आधार पर करते हुए कहते हैं—

सिसु पन ते परिहरऊ न संगू।
कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोहि ।
हारेहुँ खेल जितावहिं मोहि ॥

अर्थात्-मैंने बड़े भैया का साथ बचपन से कभी नहीं छोड़ा, किन्तु कभी भी उन्होंने मेरा मन तोड़ा नहीं । मैंने उनके स्नेह का निराला ढंग देखा है । खेल में जानबूझकर स्वयं हार कर मुझे जिता दिया करते थे ।

भाइयों के बीच ऐसा सुदृढ़ स्नेह भाव न होता तो विग्रह होने में देरी न लगती । परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं । श्रीराम को ही भरत की माँ द्वारा वनवास दिया गया था, दूसरा कोई होता तो भरत को ही उसका मूल कारण मानता किन्तु यहाँ तो भाई-भाई परस्पर एक-दूसरे को इतने निकट से इतनी स्पष्टता से जानते हैं कि स्वयं भ्रान्ति में पड़ना तो दूर कोई अन्य भ्रान्ति में डालना चाहे तो भी वे विचलित नहीं हो सकते । श्रीराम की उक्ति भरत के प्रति उनके अविचल विश्वास की प्रतीक है । भरत का भी श्रीराम के सम्बन्ध में ऐसा ही दृढ विश्वास है । परिस्थितियाँ देखकर उन्हें लगता है कि कोई भी व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि राम को राजगद्दी से वंचित कर वन भेजने में भरत का हाथ अवश्य होगा । किन्तु फिर भी उन्हें विश्वास है कि श्रीराम और सीता उनके सम्बन्ध में गलत मान्यता नहीं बना सकते । वे अयोध्या में कहते हैं—

परिहरि राम सीय जग माहीं ।
कोऊ न कहहि मोर मत नाहीं ॥

"संसार में श्रीराम और सीता को छोड़कर कोई यह नहीं मान सकता कि इस कार्य में मेरी सहमति नहीं थी ।"

देखने योग्य बात यह है कि भारत का विश्वास मात्र श्रीराम पर ही नहीं, सीता पर भी है । भाई-भाई की तरह देवर-भाभी में परस्पर इतनी स्पष्ट और पवित्र मान्यता हर परिवार के लिये अनुकरणीय है । यह बड़ी विचित्र एवं दुर्भाग्य की स्थिति कही जानी चाहिये कि जहाँ घर-घर रामायण के प्रति इतनी श्रद्धा है, वहाँ देवर भाभी के बीच भद्दे और अश्लील मजाक उचित समझे जाते हैं । बड़ा भाई पूज्य है तो भाभी भी पूज्य हुई । उसके प्रति किसी भी प्रकार का ओछा या अशिष्ट व्यवहार कैसे सहन किया जा सकता है ? रामचरितमानस में तो भाभी को माँ के समान माना गया है । यह आदर्शनिष्ठा जिन घरों में स्थापित हो जाती है वहाँ न केवल स्वर्ग अपितु श्रीसौभाग्य भी छलकता देखा जा सकता है ।

इस प्रकार का स्नेह जिनके बीच है वे तो स्वर्गीय सुख का अनुभव करते ही हैं, देखने वालों को भी उससे प्रसन्नता होती है । भरत का श्रीराम और सीता के प्रति जितना विश्वास है उतना ही स्नेह उनके प्रति श्रीराम और सीताजी का है । भरत बड़े भाई को वापस लाने के लिये जाते समय प्रयाग में महर्षि भारद्वाज से मिलते हैं । कुछ दिन पहले ही श्रीराम-लक्ष्मण एवं जानकी जी वहाँ से गये थे । महर्षि ने जो देखा-समझा उसका वर्णन करते हुए वे भरत से कहते हैं—

राम लखन सीतहिं अति प्रीती ।
निशि सब तुमहिं सराहत बीती ॥

कितना अनुपम स्नेह है । स्वयं राजमहल छोड़कर निकले हैं, कदम-कदम पर असुविधायें होती होंगी, किन्तु रात्रि में चर्चा किसी कठिनाई की, अभाव की नहीं होती, तीनों स्नेही भरत के स्नेह और गुणों की सराहना करते रहते हैं । यह देखकर भारद्वाज जैसे निस्पृह ऋषि का हृदय भी भर आया हो तो क्या आश्चर्य ?

राम आर भरत के बीच स्नेह भरे विश्वास का जीवन्त प्रमाण तब मिलता है, जब दल-बल सहित भरत चित्रकूट के निकट पहुच जाते हैं । सेना सहित भरत को देखकर जैसे निषाद को शंका हुई थी वैसी ही सहज शंका एक मुस्तैद अंग रक्षक के नाते लक्ष्मण को भी होती है । उन्हें लगता है कि सम्भवतः भरत को राज्य पाकर अहंकार हो गया है । वे अपना मत प्रकट करते हैं तो श्रीराम कहते हैं—

भरतहिं होहिं न राजमदु, बिधि हरि हर पद पाइ ।
कबहु कि कांजी सीकरनि, छीर सिंधु बिनसाइ ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीखा ।
बिधि प्रपंच मँह सुना न दीखा ॥

अर्थात्-जिस प्रकार खटाई की सींक से क्षीर सागर नष्ट नहीं हो सकता उसी प्रकार भरत को अयोध्या का राज्य तो क्या ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद पाकर भी अहंकार नहीं हो सकता । हे लक्ष्मण ! भरत जैसा श्रेष्ठ व्यक्ति विधाता की सृष्टि में न तो देखा गया है और न सुना गया है ।

कितनी सुदृढ़ और सही मान्यता है श्रीराम और भरत की एक-दूसरे के प्रति । यह सद्भाव हर स्थिति से ऊँचा बना रहता है । भरत राम को वापस लाने के लिये ही चित्रकूट गये थे । सामान्य सम्भावना यह थी कि दोनों ओर से अपने-अपने पक्ष पर बहस और खींचतान होगी । परन्तु स्नेहियों का तो ढंग ही कुछ और होता है । चित्रकूट प्रसंग में दोनों भाइयों का परस्पर विश्वास ही प्रधान भूमिका निभाता है । अपने आग्रह पर चलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिये दूसरे को बाध्य करने की अपेक्षा यह अधिक उदात्त नीति है कि कर्तव्य और मर्यादा का उल्लंघन न होने देने की शर्त लगाकर दूसरे पक्ष को किसी असमंजस के प्रसंग पर फैसला करने का अवसर दिया जाये । राम जब भरत पर यह फैसला छोड़ते हैं कि चित्रकूट से अयोध्या वापस चलने के सम्बन्ध में उन्हें क्या करना है, इसका निर्णय वे ही करें, तब भरत को अधिक गहराई में सोचना पड़ता है और अपना आग्रह छोड़कर वे राम पर ही फैसला करने का भार छोड़ते हैं । आग्रह छोड़कर आदेश लेने की नीति श्रेष्ठ है । रामायण का यह प्रसंग बहुत मार्मिक है—

अब कृपालु मोहि सो मत भावा ।
सकुच स्वामि मन जाई न पावा ॥
प्रभु पद सपथ कहऊ सति भाऊ ।
जग मंगल हित एक उपाऊ ॥
प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि-धरि करिहि सब मिटिहि अनट अवरेव॥

भरतजी बड़े भाई श्रीराम से कहते हैं कि अब तो मुझे वही मत पसन्द है जिससे आपको मन में संकोच न हो । वे शपथपूर्वक कहते हैं कि जो आज्ञा श्रीराम प्रसन्नता से दे देंगे, वह उसे पूरे सम्मान से कार्यान्वित करेंगे और जब उन्हें अयोध्या लौटकर १४ वर्ष तक उत्तरदायित्व सँभालने का संकेत मिलता है तो वह हर कष्ट सहकर उसे पूरा करने में जुट पड़ते हैं । किसी प्रकार के लोभ या सम्मान की आकांक्षा इन भाइयों को विचलित नहीं कर पाती ।

भाइयों को कर्तव्य से विमुख करने में पद प्रतिष्ठा का आकर्षण ही नहीं भय भी कारण बन जाता है । भाई पर संकट आने पर स्वयं को बचाने के लिये दूसरे भाई अपने कर्तव्य को जानबूझकर उपेक्षा में डाल देते हैं । किन्तु राम आदि भाई भूलकर भी ऐसा नहीं करते । जहाँ सच्ची भ्रातृ भावना है, वहाँ तो यह संभव ही नहीं । भाई का पक्ष उचित है, तो बड़े से बड़े संकट को आगे बढ़कर स्वयं सह लेने का आदर्श रामायण घोषित करती है ।

होहि कुठांय सुबन्धु सहाये ।
ओड़िहहिं हाथ असनिहु के घाये ॥

"कठिन अवसर पर भाई सहायक होते हैं । यदि वज्र भी चोट कर रहा हो तो सिर शरीर को बचाने के लिये हाथ स्वभावतः आगे आ जाते हैं ।"

वज्र के प्रहार की घातकता से सभी परिचित हैं, किन्तु फिर भी हाथ उसका भय न मानकर आगे बढ़ जाते हैं, यही भाव बन्धुत्व में होता है । यह सिद्धान्त मात्र कहने-सुनने का नहीं है । रामचरितमानस के आदर्श पात्रों में यह प्रत्यक्ष देखने को मिलता है । इस सम्बन्ध में जगह-जगह प्रमाण मिलते हैं ।

वनोवास श्रीराम को हुआ था, किन्तु जब लक्ष्मण को पता लगता है तो वे उनसे भी पहले तैयार हो जाते हैं । वन में कोई कष्ट संकट आयेगा, इसका उन्हें भय जरा भी नहीं है, वरन् यह उत्साह है कि ऐसे टेढ़े प्रसंगों को पहले वे झेलेंगे । माता कौशल्या से वन जाने की आज्ञा लेते हुए वे अपने उद्देश्य की घोषणा करते हुए कहते हैं—

दीप्तगग्निमरणयं वा यदि राम प्रवेक्ष्यति ।
प्रविष्टं तत्र मां देवि त्वं पूर्वमवधारय ॥

"हे देवि ! यदि राम जलती हुई आग या घोर वन में कहीं भी प्रवेश करना चाहें तो आप मुझे उनके आगे आगे ही प्रवेश करते देखेंगी ।"

यह लक्ष्मण का सहज स्वभाव आरम्भ से ही रहा है । इसका बड़ा सुन्दर प्रमाण जानकी स्वयंवर के प्रसंग में मिलता है । धनुष यज्ञ के बाद जनक की सभा में परशुराम जी क्रोधित होकर पहुचते हैं । वे बिना कुछ सोचे-समझे शिव के धनुष को तोड़ने वाले को मार डालने की धमकी देते हैं । परशुरामजी के पराक्रम का बड़ा भारी आतंक राजाओं पर था, किन्तु लक्ष्मण उससे भयभीत नहीं होते । धनुष श्रीराम ने तोड़ा है परशुराम जी उनके प्रति कोई अनुचित व्यवहार न कर बैठें, इसलिये वे परशुराम का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । अपने ऊपर आने वाले खतरे की चिन्ता उन्हें नहीं है, वे तो किसी भी प्रकार राम पर आँच नहीं आने देना चाहते—

सुनि मुनि वचन लखन मुसकाने ।
बोले परसु धरहिं अपमाने ॥

परशुरामजी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये और उनकी अवहेलना करते हुए बोलने लगे—

लक्ष्मण जी में ही यह भावना हो, ऐसी बात नहीं है । श्रीराम भी उतने ही तत्पर हैं । परशुराम सब कुछ भूलकर लक्ष्मण पर क्रोध उतारने लगे, तो श्रीराम ने स्थिति को नाजुक देखकर स्वयं बीच में आकर उसे सँभाला । लक्ष्मण ने राम की ओर से परशुराम जी का रुख अपनी ओर मोड़ लिया तो राम ने भी वही किया । उन्होंने परशुरामजी से स्पष्ट कह दिया कि आप तो शिव धनुष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तोड़ने वाले के ऊपर रुष्ट है । उसने तो कुछ किया ही नहीं, अपराधी तो मैं हूँ–

तेहि नाहीं कछु काज बिगारा ।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥

"उसने कुछ काम नहीं बिगाड़ा है, हे स्वामी ! आपका अपराधी तो मैं हूँ ।"

दोनों भाइयों में एक-दूसरे की कठिनाई में स्वयं आगे आ जाने की आकांक्षा साफ दीखती है । लेकिन यह खींचतान अहंकार जनित नहीं है, सहयोग जनित है । अपनी महत्ता प्रकट करने के लिये कुछ नहीं किया जा रहा है, बिगड़ी परिस्थिति को संभालने में स्वयं खतरा उठाकर भी दोनों में बढ़-चढ़कर प्रयास चल रहा है । स्थिति को संभालते हुए राम ने देखा कि लक्ष्मण अति उत्साह में फिर कुछ कहने को तैयार हैं, जो उचित नहीं, तो उन्होंने आँख का इशारा किया, बस लक्ष्मण के लिये इतना ही पर्याप्त था । परशुराम जी राम पर अहसान जताते हुए शान्त होने को थे । लक्ष्मण को अहसान जताना अच्छा न लगा–

सुनि लक्ष्मण विहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम ।
गुरु समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥

श्रीपरशुराम जी के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कराये तब श्रीरामचन्द्र जी ने तिरछी नजर से उन्हें देखा, जिससे लक्ष्मणजी सकुचाकर टेढ़ा बोलना बन्द कर गुरुजी के पास चले गये ।

जहाँ इस प्रकार का तालमेल और परस्पर स्नेह हो वहाँ छिद्रान्वेषी तत्वों की दाल नहीं गल सकती बल्कि शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते हैं । सूर्पनखा ने राम के पास से लौटकर रावण को वृतान्त सुनाया तथा रावण के गुप्तचरों ने जो कहा वह इसी तथ्य का परिचायक है ।

सूर्पनखा ने रावण को बताया–

अमर्षी दुर्जयो जेता विक्रान्तों बुद्धिमान्बली ।
रामस्य दक्षिणो बाहुर्नित्य प्राणो वहिष्चर ॥

"लक्ष्मण अपने भाई के प्रति अपराध करने वाले का अपराध सह नहीं सकता । स्वयं किसी से जीता भी नहीं जा सकता । वह बड़ा पराक्रमी और बलवान है । वह रामचन्द्र का दाहिना हाथ अथवा शरीर के बाहर वाला प्राण है । अर्थात् प्रिय है ।"

रावण के गुप्तचरों के भी उद्‌गार यही हैं–

न ह्येष राघवस्यार्थे जीवितं परिरक्षति ।
एषैवाशंसते युद्धे निहन्तुं सर्वराक्षसान् ॥

"ये श्रीरामचन्द्रजी की रक्षा के लिये अपने प्राणों को हथेली पर रखे हुए सदा तैयार रहते हैं । युद्ध में ये अकेले ही समस्त राक्षसों को मार डालने का उत्साह रखते हैं ।"

लक्ष्मण के सम्बन्ध में यह कोई अत्युक्ति नहीं । विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा के समय इसका प्रमाण मिलता है । मारीच, सुबाहु राक्षसों की सेना लेकर यज्ञ नष्ट करने पहुँचते हैं । भगवान जब तक मारीच और सुबाहु पर दो बाण चलाते हैं, तब तक लक्ष्मण राक्षसों की सेना का सफाया कर देते हैं–

पावक सर सुबाहु पुनि मारा ।
अनुज निसाचर कटक संहारा ॥

इस प्रकार हर संकट में भाई के आगे रहने वाले भाई के प्रति राम का भी अपनत्व देखने योग्य है । लंका युद्ध में लक्ष्मण शक्ति की चोट से मूर्छित हो जाते हैं । उस समय श्रीराम अपने को असहाय कहकर विकल हो उठते हैं–

यथा पंखु बिनु खग अति दीना ।
मनि बिन फणि करिवर कर हीना ॥
अस मम जीवन बन्धु बिनु तोही ।
जों जड़ दैव जिआवै मोही ॥

"हे भाई ! जिस प्रकार पंखों के बिना पक्षी, मणि रहित नाग, सूंड़ के बिना हाथी निष्क्रिय हो जाते हैं, वैसे ही तुम्हारे बिना जीवन सभी इसी प्रकार का है, यदि मूर्ख दैव मुझे जिन्दा रखे । तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रहूँगा, यदि रहा तो मेरा जीवित रहना इसी तरह बेकार होगा ।"

उपचार से लक्ष्मण जी ठीक हो जाते हैं । लोग पूछते हैं कि घाव में दर्द तो नहीं है, उस समय लक्ष्मण के मनोभाव का चित्रण करते हुए तुलसीदास जी ने कवितावली में लिखा है–

हृदय घाव मेरे पीर रघुवरै ।

संवेदना की चरम सीमा छूली । इन भाइयों ने एक-दूसरे के दुःख, कष्ट को अपने ऊपर ढाल लेना इन भाइयों का स्वभाव है । भरत का प्रसंग देखिये । भाई की अपेक्षा थोड़ी भी सुख-

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुविधा स्वीकार नहीं करते । शृंगबेरपुर में जब उन्होंने श्रीराम की तृण शैया देखी तो निर्णायक स्वर में निषाद से बोले–

अद्यप्रभृति भूमौ तु शयिष्येऽहं तृणेष बा ।
फलंमूलाशनो नित्यं जटाचीराणिधारयन् ॥

"आज से मैं भी खाली जमीन पर या चटाई पर ही सोऊँगा और नित्य फल-मूल ही खाऊँगा और जटाचीर धारण करूँगा ।"

उनकी इस भक्ति का प्रमाण भी क्रिया रूप में कुछ दिनों के अन्दर ही मिल जाता है । वे राम वन गमन के उपरान्त उसी प्रकार का जीवन घर को तपोवन बनाकर बिताते और अपने अनन्य भातृ प्रेम का परिचय देते रहे–

राम लखन सिय कानन बसहीं ।
भरत भवन बसि तप तन कसहीं ॥

भरत राम के स्मरण में मग्न हैं तो श्रीराम भी भरत के लिये व्याकुल रहते हैं । वे वन में लक्ष्मण से कहते हैं–

निश्चिताऽपि हि मे बुद्धिर्वनवासे दृढ़व्रता।
भरतस्नेहसन्तप्ता बालिशीक्रियते पुन॥

"यद्यपि मैं १४ वर्ष तक वनवास करने का अब तक दृढ़ निश्चय किये हुए हूँ और उसके लिये दृढ़ व्रती हूँ तथापि भरत के स्नेह का जब मुझे स्मरण आता है, तब मैं विकल हो जाता हूँ और मेरी बुद्धि बालकों जैसी हो जाती है ।"

वन में असुविधाओं के बीच ही उन्हें भरत का ध्यान रहता हो सो बात नहीं । ऐसा दिव्य स्नेह हर प्रकार की परिस्थिति जन्य प्रक्रिया से परे स्वाभाविक होता है । श्रीराम के युवराज्याभिषेक का निर्णय जब लिया गया तब भरत अपनी ननिहाल गये हुए थे । उनके पीछे भी श्रीराम को उनका सबसे अधिक ध्यान रहता है–

रामहि बन्धु सोच दिन राती ।
अण्डन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती ॥

"जिस तरह कछुआ कहीं भी हो, अपने अण्डों के सम्बन्ध में निरन्तर सोचता रहता है, उसी प्रकार राम को दिन-रात भाई की चिन्ता रहती है ।"

उक्ति है कि कछुआ अपने अण्डों को दूर रखकर अपने चिन्तन से सेता है, राम की भी यही स्थिति है । उनका विजय का असामान्य प्रसंग भी उनके भ्रातृ चिन्तन को थोड़ा भी शिथिल नहीं कर पाता । रावण विजय के पश्चात् जब विभीषण ने राम से कुछ दिन रुककर विश्राम करने के लिये कहा, तब राम ने भरत का स्मरण करते हुए कहा–

न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ।
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि ताँ पुरीम् ॥

"स्नान करना, वस्त्र और अलंकार धारण करना मुझे अच्छा नहीं लगता । सो कोई ऐसा उपाय देखभालकर बतलाओ, जिससे मैं तुरन्त ही अयोध्या पुरी में पहुँच जाऊँ ।"

लंका से पुष्पक विमान द्वारा वे अयोध्या की ओर ऐसे दौड़ते हैं जैसे बछड़े के लिये गाय । वहाँ पहुँचकर सारे सम्मान स्वागत और उत्तरदायित्वों के बीच उनका भ्रातृ प्रेम लोमहर्षक ढंग से सामने आता है उनका भ्रातृत्व उस समय भ्रातृत्व की स्निग्धता को छू लेता है, लिखा है–

पुनि करुणानिधि भरत हँकारे ।
निज कर राम जटा निरुआरे ॥
अन्हवाये प्रभु तीनिउ भाइ ।
भगत बछल कृपालु रघुराई ॥

कैसा मार्मिक दृष्य है । त्रैलोक्य विजयी रावण को जीतकर आये चक्रवर्ती सम्राट् के सिंहासन के अधिकारी, सच्ची श्रद्धा और सम्मान जिन पर बरस रहा है, वे राम भाइयों के बाल सुलझा रहे हैं, उन्हें अपने हाथों नहला रहे हैं । यह चरित्र हमारे अन्दर औसत भ्रातृ प्रेम संचरित कर सके तो हमारा यह प्रसंग सुनना सार्थक हो जाये ।

विपत्ति के समय तो लोग भाइयों के प्रति आत्मीयता दिखाते हैं किन्तु सत्ता सम्पत्ति मिलते ही उनके दिमाग कुछ के कुछ हो जाते हैं । परन्तु श्रीरामचन्द्रजी का भाव भाइयों के प्रति सदैव ही शुद्ध बना रहता है । अपने राज्याभिषेक के बाद वे भाइयों से कहते हैं–

भवन्तो मम सरवस्वं भवन्तों जीवितं मम ।
भवद्भिश्च कृतं राज्यं पालयामि नरेश्वराः ॥

"हे नरवरो ! आप लोग मेरे सर्वस्व हैं । आप लोग मेरे जीवनाधार हैं । आप ही के सम्पादित राज्य का मैं पालन करता हूँ ।"

उन्होंने लक्ष्मण से कहा–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गा पूर्वराजाध्युषिता बलेन ।
तुल्यं मयात्व पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्यो धरमुद्वहस्व ॥

"हे धर्म ! जिस पृथ्वी का राज्य मन्वादि हमारे पूर्वज कर चुके हैं, उस पृथ्वी का आओ तुम हमारे साथ शासन करो । जैसे हमारे पिता-पितामहादि ने अपने बड़ों की उपस्थिति में यौवराज्य स्वीकार किया था, वैसे ही तुम भी युवराज बन कर राजकाज में मेरी सहायता करो ।"

राजा के रूप में श्रीराम अपने भाइयों को श्रेय सम्मान तो देते ही हैं, अपने अनुभव का निचोड़ भी शिक्षा के रूप में देते रहते हैं ।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती ।
नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥

प्रेम के नाते स्नेह सभी देते हैं पर उसी नाते शिक्षण भी करते चलना परिपक्व प्रेम का प्रमाण है ।

राज्य कार्य में श्रीराम भाइयों को राज्य मर्यादाओं के अनुकूल ही लेते हैं, किन्तु घर पर वे भाई पहले हैं, राजा बाद में । भाइयों के साथ उनका व्यवहार वैसा ही सहज, मृदुल और स्नेहपूर्ण है । उनके आदर्श व्यवहार को देखकर सभी को प्रेरणा और प्रसन्नता प्राप्त होती है—

अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं ।
देख सकल जननी सुख भरहीं ॥

वे भाइयों के संग भोजन करते हैं । उन्हें देखकर समस्त मातायें आनन्द से भर जाती हैं ।

भाई-भाई का स्नेह जहाँ उन्हें परस्पर सुख पहुँचाता है, वहाँ माता के लिये भी यह सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय है । सभी बच्चे हिल मिलकर प्रेम से रहें यह हर माँ की कामना होती है । श्रीराम अपने ढंग से अपने स्नेह का प्रमाण देते रहते हैं तो अन्य सभी भाई भी मर्यादानुसार उसका निर्वाह करते हैं । वे श्रीराम के सच्चे पूरक सहयोगी बनकर रहते हैं । सेवा कार्य करते हुए उनका प्रेम भाव और भी बढ़ता रहता है । मानसकार लिखते हैं—

सेवहिं सानुकूल सब भाई ।
राम चरन रति अति अधिकाई ॥

"सभी भाई अनुकूल रहते हुए सेवा में लगे रहते हैं । श्रीरामचन्द्रजी में उनका बहुत अधिक प्रेम है ।"

इस प्रकार भाई-भाई के आदर्श का निर्वाह करने के लिये तत्पर हो जायें तो परिवार तथा समाजगत विकारों-अनाचारों को निरस्त करते हुए स्वर्गीय वातावरण का निर्माण करना सुगम हो जाये ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार आदर्शनिष्ठ बने

अपने परिजनों को सुखी और समुन्नत देखने की आकांक्षा सभी में होती है । उसके लिये अपने-अपने ढंग और दृष्टिकोण के अनुरूप लोग थोड़ा-बहुत प्रयास भी करते हैं । प्रयासों को बढ़ाया जाये, उनमें अधिक तत्परता बरती जाये, यह उचित है किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि उनको सही दिशा में नियोजित किया जाय ।

शारीरिक दृष्टि से निरोग एवं स्वस्थ, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न एवं बौद्धिक दृष्टि से शिक्षित देखने और बनाने की आंकाक्षा ठीक है, परन्तु इसके साथ नीतिनिष्ठ, आदर्शनिष्ठ बनाने का काम इससे कम महत्वपूर्ण नहीं है । इसकी उपेक्षा से साधन सम्पन्न परिवार के योग्य सदस्य भी स्वार्थ और कलह की चक्की में पिस कर चौपट हो सकते हैं और परिजनों को सुखी सम्पन्न देखने की कल्पना दिवा स्वप्न ही बनकर रह जाती है ।

ऐसा इसलिये है कि मनुष्य पारिवारिक सुख शान्ति के मूल आधार को भूल जाता है । परिवार में सुख शान्ति तब तक नहीं आ सकती जब तक परिवार के सदस्य ओछे स्वार्थपरक दृष्टिकोण से ऊपर उठकर श्रेष्ठ आदर्शनिष्ठ जीवन के प्रति आस्थावान न हों । परिवार बनता ही व्यक्तियों के समूह से है । एक साथ रहने वाले सामूहिकता का लाभ तभी उठा सकते हैं, जब उनमें स्नेह, सद्भाव, नैतिकता आदि श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ हों । स्वार्थ मूलक दुबुद्धि के रहते परिवार या समाज में सुख शान्ति सम्भव नहीं । मानसकार का स्पष्ट मत है कि—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥

"जहाँ पर सुमति होती है वहाँ अनेक प्रकार के सुख-साधन रहते हैं और जहाँ कुबुद्धि है वहाँ अनेक प्रकार की विपत्तियाँ रहती हैं ।"

यहाँ पर सुमति से अर्थ सदाचार, सील, शिष्टाचार, कर्तव्य परायणता आदि सद्गुणों से है । ये गुण जहाँ भी रहेंगे वहाँ भले ही भौतिक साधनों की कमी रहे, परन्तु स्नेह-सौजन्यपूर्ण वातावरण बना रहेगा और जहाँ दुर्बुद्धि रहेगी, वहाँ पर भौतिक साधनों की विपुलता होते हुए भी कलह, क्लेश छाया रहेगा । यहाँ पर दुर्बुद्धि का अर्थ दुराचार, अत्याचार भरे व्यवहार से है ।

आदर्श परायणता का महत्व आप लोग भूल गये हैं उनका हवाला बातों में ही दिया जाता है । उन्हें कार्यान्वित करने में जो सावधानी बरती जानी चाहिये वह लोग बरत नहीं पाते । कारण यह है कि वैसा करने का न तो महत्व ठीक से समझा गया है और न उसका अभ्यास ही कराया जाता है । आज तो स्थिति यह है कि—

मातु पिता बालकन्ह बौलावहिं ।
उदर भरइ सोइ धर्म सिखावहिं ॥

माता-पिता बच्चों को पास बुलाकर यह सिखाते हैं कि जिस प्रकार पेट भरे बस वही धर्म है ।

ऐसा इसलिये कि अभिभावकों की स्वयं की दृष्टि साफ नहीं । आदर्शनिष्ठा का महत्व स्वयं उनने भी समझा नहीं । वे सोचते हैं कि येन-केन प्रकारेण धन कमा लिया जाय तो सुखी रहा जा सकता है किन्तु यह सत्य होता तो सम्पन्न घरों में कलह विग्रह न दिखाई देते । स्पष्ट है कि सुख-शान्ति के लिये और भी कुछ आवश्यक है वह आदर्श परायण दृष्टिकोण और आचरण ही है । ऐसे व्यक्तियों के पास सुख-सम्पत्ति भी सहज ही पहुँच जाती है ऐसा मानसकार का मत है—

जिमि सुख सम्पति विनहिं बुलाये ।
धर्म शील पहु जाय शुभाये ॥

"सुख-सम्पत्ति बिना बुलाये ही धर्मशील व्यक्ति के पास जाती है ।"

धर्म आदर्श निष्ठ जीवनचर्या को ही कहा गया है । सद्गुण एवं सदा चरण सम्पन्न व्यक्ति के पास सम्पत्ति भी पहुँच जाती है और वह उससे सुख-सन्तोष भी प्राप्त कर लेता है । यदि दुर्बुद्धि ग्रस्त व्यक्ति को सम्पत्ति दे भी दी जाये तो वह उसे विडम्बनायें ही खड़ी कर लेगा । इसके कई प्रमाण हैं ।

एक बार इंग्लैण्ड की संसद में मजदूरों के वेतन बढ़ाने की चर्चा उठी । उस समय एक विचारक ने उसका विरोध किया । उनका कहना था कि जब तक मजदूरों का चिंतन न सुधारा जाये तब तक अधिक धन उनका लाभ नहीं हानि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुँचायेगा । उसकी बात मान नहीं गयी, पर तथ्य दूसरे वर्ष ही सामने आ गये । जिस क्षेत्र में वेतन बढ़ाये गये थे, वहाँ शराब, जुआ आदि व्यसन बड़ा । भारत के भी ढ़ेरों सम्पन्न क्षेत्रों में इसी आधार पर लड़ाई-झगड़ों के मुकदमों की संख्या अधिक रहती है ।

धन से सुख मिल भी जाये तो यह सोचना गलत है कि परिजनों के लिये यदि धन की व्यवस्था कर दी जाय तो वे जीवन भर सुखी बने रहेंगे । धन तो किसी भी सांसारिक उतार-चढ़ाव के कारण समाप्त हो जाता है । ऐसी स्थिति में वह परिजन जिनका बौद्धिक विकास नहीं किया गया, बड़े संकट में पड़ जाते हैं । जिसका सहारा था, वह धन रहा नहीं, अपनी योग्यताओं से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना आता नहीं इस दुःखद स्थिति का चित्रण करते हुए मानसकार ने किष्किन्धा काण्ड में शरद वर्णन के अन्तर्गत लिखा है–

जल संकोच विकल भई मीना ।
अबुध कुटुम्बी जिमि धन हीना ॥

"जल की कमी से मछलियाँ उसी प्रकार व्याकुल हैं, जैसे बुद्धिहीन कुटुम्बी धन की कमी पड़ने पर दुःखी हो जाते हैं ।"

अस्तु अभिभावकों, परिवार के वरिष्ठ सदस्यों को चाहिये कि वे छोटों में उन मानवीय गुणों का विकास करने पर भी ध्यान दें, जिनके आधार पर नर श्रेष्ठ बनता है, महान कहलाता है ।

इसलिये हर व्यक्ति को अपने चिन्तन और आचरण और आदर्श निष्ठा बनाये रखनी चाहिये । वैसे तो इस दिशा में परिवार के सभी सदस्यों को सतर्क, सावधान और प्रयत्नशील रहना चाहिये परन्तु परिवार के प्रमुख मुखिया की जिम्मेदारी इस बारे में सबसे अधिक होती है । घर के सदस्यों के विचारों और प्रयासों को मोड़ देने की सबसे अधिक कुशलता उसी में होनी चाहिये । मुखिया यदि कर्तव्य विमुख रहता है, परिवार के सदस्यों के प्रति उसका दृष्टिकोण पक्षपात उपेक्षापूर्ण रहता है तो परिवार को आदर्शनिष्ठ बनाना कठिन हो जाता है ।

रामचरितमानस वस्तुतः कुछ नीतिनिष्ठ आदर्श परायण परिवारों की कहानी है, जो विभिन्न विषम परिस्थितियों में भी अपनी निष्ठा और तदनुसार बनाये गये स्वभावों के कारण श्रेष्ठता आदर्शो का निर्वाह कर सकें । परिवार के मुखिया के कर्तव्यों का संक्षिप्त, किन्तु सार भूत उल्लेख मिलता है । श्रीराम चित्रकूट में भरत जी को समझाते हुए कहते हैं ।

मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान कहँ एक ।
पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

"प्रधान को मुख के समान होना चाहिये, जो खाने-पीने में तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्ण सभी अंगों का पालन पोषण करता है ।"

शरीर के सभी अंग अपने-अपने निर्धारित कार्य को करते रहते हैं । उसमें खर्च हुई शक्ति की पूर्ति आहार से होती है, किन्तु हर अंग अलग-अलग नहीं खाता । सबकी आवश्यकता की पूर्ति एक ही माध्यम मुख से होती है । फिर भी प्रत्येक अंग को कार्य के अनुपात में पोषण उचित मात्रा में पहुँचता रहता है । मुख खाता है इसलिये उसके पास वालों को पहले और अधिक मिले, अन्य को कम ऐसा नहीं होता । शरीर में कहीं भी पीड़ा हो, चेहरे पर उसका प्रभाव तुरन्त दीखने लगता है । मुखिया को भी ऐसा होना चाहिये ।

ऐसा उत्तरदायित्त्व कभी परिवार के किसी भी सदस्य पर आ सकता है । अतः विवेक जन्य समता का ध्यान उन्हें रखना पड़ता है । वन गमन प्रसंग में श्रीराम जब माँ कौशल्या को अपने वनवास का समाचार सुनाते हैं तो पहले वे पुत्र मोह में विचलित हो उठती हैं, किन्तु तुरन्त ही अपने पारिवारिक आदर्श का स्मरण करके संभल जाती हैं ।

बहुरि समझि तिय धरम सयानी ।
राम भरत दोउ सुत सम जानी ॥

"फिर बुद्धिमती कौशल्याजी ने नारी धर्म को विचार कर, राम तथा भरत दोनों को समान ही समझा ।"

कौशल्या जी की महानता इसी समझ के सहारे उभर आई । यहाँ चूक जाती तो फिर उनका स्तर वह न रहता जो अभी है । अपने अन्तःकरण में आदर्श निर्वाह की शक्ति उन्हें इसी आधार पर अनुभव हुई और ऐसी विषम स्थिति में स्वयं संतुलित रहते हुए औरों को भी सँभालने की एक मिशाल पेश कर सकीं । उनका आचरण भरत के प्रति सहज ही सगी माँ जैसा हो गया । वर्णन है–

भरतहि देखि मातु उठि धाई ।
मुरछित अवनि परी झइँ आई ॥
सरल सुभाय मायँ हियँ लाये ।
अति हिय मनहुँ राम फिरि आये ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भरत के उपरान्त माता कौशल्या शत्रुघ्न को भी उसी प्रकार प्यार करती हैं। उनका सहज स्नेह उनके लिये भी उसी तीव्रता से उमड़ता है—

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई।
सोकु सनेहु न हृदय समाई॥
देखि सुभाउ कहत सबु कोई।
राम मातु अस काहे न होई॥

जहाँ ऐसा आदर्श प्रेम होगा वहाँ स्वर्ग प्रकट क्यों न हो। राम की माता में इतनी आदर्श निष्ठा न होतीं तो या तो वे राम की माँ बन ही न पातीं अथवा उस गरिमा को खो देतीं। पर माँ कौशल्या तो श्रेष्ठ आदर्शों की पृष्ठभूमि ही हैं। राम वन गमन प्रसंग में कैकेयी के प्रति उनके उद्गार देखते ही बनते हैं।

इस युग की मान्यता थी कि पिता से माँ का स्थान ऊँचा है श्रीराम जब पिता द्वारा वनवास दिये जाने की बात बतलाते हैं तो वे उनसे बड़े सन्तुलित एवं सारयुक्त शब्दों में स्पष्ट कहती हैं—

जो केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ माता॥
जौ पितु मातु कहेउ वन जाना।
तौं कानन सत अवध समाना॥

यदि केवल पिता ने आज्ञा दी है तो मत जाओ, मैं माँ के अधिकार से तुम्हें रोक सकती हूँ। किन्तु यदि पिता के साथ माँ (कैकेयी) ने भी आज्ञा दी है तो वन के कष्ट का चिन्तन करके आदर्श से मत गिरना। वन तुम्हारे लिये सौ अयोध्याओं जैसा सरल लगना चाहिये।

कितना उदात्त भाव है। बच्चों को माँ का सम्मान उन्होंने सिखाया था, उसमें जरा भी खरोंच नहीं लगने देतीं। माँ ही माँ के गौरव को कम करे यह उन्हें स्वीकार नहीं। इसलिये अपने अधिकार को भुलाकर भी वे पुत्र वियोग का कष्ट सहज स्वीकार करती हैं। वे पुत्र को रोकने की जगह जाने के लिये प्रोत्साहित करती हैं। बड़ों में ऐसी आदर्श निष्ठा देखकर ही घर के छोटे सदस्य उस मार्ग चलते हैं। वास्तव में शिक्षण का सबसे अच्छा ढंग है अपना आदर्श प्रस्तुत करके सिखाना। बच्चों को यदि लोगों को सम्मान करना, शिष्टाचार बरतना सिखाना है तो बड़ों को स्वयं वैसा करना चाहिये। अपने से बड़ों का ही सम्मान करना पर्याप्त नहीं, छोटों का भी यथोचित सम्मान किया जाना चाहिये। शिक्षण की दृष्टि से यह अति उत्तम है। तभी सीखने वालों पर ठीक प्रभाव पड़ता है। छोटों का सम्मान करना कोई हीनता की बात नहीं, बल्कि महानता का प्रमाण है। इस भाव को प्रकट करते हुए मानस में भानु-प्रताप की कथा में उल्लेख है—

बडे सनेह लघुन्ह पर करहीं।
गिरि निजि सिरन्ह सदा तृण धरहीं॥
जलधि गाध मौलि बह फेनू।
सन्तत धरनि धरत सिर रेनू॥

बड़े लोग छोटों को भी स्नेह सम्मान देते हैं। पर्वत सिरों पर तिनकों को, अगाध समुद्र अपने लहरों पर फेन को तथा पृथ्वी अपने शीर्ष स्थान पर रज कणों को स्थान देती है।

उक्त सभी स्थानों पर छोटों को सम्मान देने के कारण किसी को छोटा नहीं कहा जाता, अस्तु परिवार के छोटे सदस्यों को श्रेष्ठ संस्कार देने के लिये उनका सम्मान करने में बड़ों को संकोच नहीं करना चाहिये। 'मानस' में यह आदर्श जहाँ-तहाँ दिखाई देता है। ऋषि विश्वामित्र दशरथ जी के पास राम-लक्ष्मण को लेने गये। उनके आग्रह को राजा ने स्वीकार कर लिया तथा बच्चों को उन्हें सौंपने लगे। उस समय बच्चों के प्रति उनके व्यवहार का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अति आदर दोउ तनय बुलाये।
हृदय लाय बहु भाँति सिखाये॥

"बड़े आदर के साथ दशरथजी ने दोनों पुत्रों को बुलाया, और हृदय से लगाकर उन्हें अनेक प्रकार की सीख दी।"

बच्चों का सम्मान बड़े करते हैं तो वे भी परस्पर एक-दूसरे का सम्मान करते हैं, अन्यथा उनके स्वभाव में अभद्रता आती जाती है।

प्रयोग के बाद परीक्षण आवश्यक है। अतः जो अभिभावक अपने उत्तरदायित्वों को भली प्रकार निभाते हैं। उनमें उन्हें सफलता मिल रही है या नहीं इसका अध्ययन भी बराबर जारी रहे। राजा दशरथ अपने पुत्रों पर बराबर दृष्टि रखते हैं और राम को सभी प्रकार सही पाकर प्रसन्न होते हैं।

रामचन्द्र जी के सौन्दर्य, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुन कर महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न होते हैं।

राम रूप गुन सीलु सुभाऊ।
प्रमुदित होई देखि सुन राऊ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों के विकास में आवश्यक साधन-सुविधाओं की यथा-शक्ति पूर्ति करने का प्रयास रहे । इनमें ध्यान यह रखना चाहिये कि बच्चों की हर तरह की उचित-अनुचित माँग की पूर्ति का मोह न हो । वह विवेक संगत हो । बच्चों में जोश होता है, पर वे उचितानुचित को समझ नहीं पाते । बहुत बार यह मोह सुधार के स्थान पर बिगाड़ का कारण बन जाता है । बच्चा यदि गलत मार्ग पकड़ लेता है तो ऐसी स्थिति में उन्हें बलपूर्वक रोका जाना उचित है । वन प्रसंग में श्रीराम-नारद वार्ता में यह तथ्य इस प्रकार उभर कर सामने आता है—

गहि सिसुवच्छ अनल अहि धाई ।
तहँ राखइ जननी अरगाई ॥

"यदि बच्चा अग्नि या सर्प को दौड़कर पकड़ना चाहे तो माँ उसे बलपूर्वक रोक कर रखती है ।"

बच्चों का मन रखना ठीक है, पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण है उनका हित साधन । बच्चों की अहितकारी आंकाक्षायें पूरी नहीं की जा सकतीं । यही नहीं कई बार तो बालक के हित के लिये उसके साथ निष्ठुर बनकर कड़ाई भी करनी पड़ती है । वैसा करना उचित भी होता है और आवश्यक भी । यदि बालक का स्वभाव बिगड़ रहा हो, समझाने से न माने तो उसे कठोरतापूर्वक भी मनवाना चाहिये । कुछ समय उसे बुरा लगे, दुःख हो यह अच्छा है अन्यथा वह दोष तो उसे जीवन भर कष्ट देता रहेगा । इस सन्दर्भ में काकभुशुण्डि जी गरुड़जी को समझाते हुए बड़ा अच्छा उदाहरण देते हुए कहते हैं—

जिमि शिशु तन बन होई गोसाईं ।
मातु चिराव कठिन की नाईं ॥
जदपि प्रथम दुख पावइ, रोवै बाल अधीर ।
व्याधि नाश हित जननी, गनति न सो शिशु पीर ॥

जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माँ उसे कठोर बनकर जबरदस्ती चीर डालती है । यद्यपि उस समय बालक बहुत अधिक कष्ट पाता है, अधीर होकर रोता है, किन्तु रोग नाश को ध्यान में रखकर माँ उसकी पीड़ा को महत्व नहीं देती ।

परिवार में जहाँ बड़ों के कर्तव्य छोटों के प्रति हैं, वहाँ छोटों के बड़ों के प्रति भी है । वयोवृद्ध परिजनों का यथोचित सम्मान करना छोटों का कर्तव्य है । रामचरितमानस का आदर्श इस सम्बन्ध में बहुत सही है । किसी भी प्रकार से अपने परिवार से सम्बद्ध बुजुर्ग व्यक्ति का सम्मान अपने सगे-सम्बन्धियों की तरह करने की मर्यादा है । राम को वन भेजने की तैयारी के सन्दर्भ में कैकेयी राम को बुलाने के लिये सुमन्त्र को भेजती है । सुमन्त्र वैसे राज्य के वेतन भोगी कर्मचारी हैं, किन्तु व्यवहार उनके प्रति देखने योग्य है—

राम सुमंत्रहि आवत देखा ।
आदर कीन्ह पिता सम लेखा ॥

"श्रीरामचन्द्रजी सुमन्त्र को आता हुआ देखकर पिता के समान समझकर उनका आदर करते हैं ।"

सुमन्त्र तो मंत्री थे । वैसे भी उनका सम्मान था, किन्तु सामान्य शिष्टाचार नहीं, पिता की तरह सम्मान देना उससे भिन्न बात है । श्रीराम का यह भाव सुमन्त्र के प्रति ही नहीं है । महल में नियुक्त दास-दासियों के प्रति भी उनका वही भाव है । वन जाते समय उन्हें उन सेवकों का पूरा-पूरा ध्यान है । वे उनकी देख-रेख का पूरा भार गुरु वशिष्ठ को सौंपते हुए विनम्र स्वर में कहते हैं—

सब कै सार सँभारि गुसाईं ।
करबि जनक जननी की नाईं ॥

"हे! स्वामी पिता और माता के समान इन सबकी साज संभाल करना ।"

भारतीय संस्कृति का यह आदर्श अपनी विशेषता रखता है । जहाँ छोटे-बड़े का, जाति-वर्ग का भेदभाव भुलाकर आयु के अनुसार सबको सम्मान दिया जायेगा, वहाँ स्नेह सौहाद्र में कमी क्यों आने लगी ?

परस्पर आदर सम्मान की परिपाटी सभ्यता और संस्कृति की द्योतक है, इसका परिपालन् विषम परिस्थितियों में किस प्रकर किया जाये ताकि काम भी बन जावे और अशिष्टता भी न झलके, सुनने वाले को किसी प्रकार की ठेस भी न लगे और उसका सम्मान भी हो जाये ? यह व्यावहारिक कला रामचन्द्र जी में कितनी अच्छी है इसका उदाहरण वन गमन के प्रसंग में आता है । पिता की आज्ञा पर वे वन जाने की सूचना माता को देते हैं और उन्हें हर तरह से संतुष्ट करते हैं । बाद में सीताजी को माँ का आग्रह मानने की सलाह देते हैं—

कहि प्रिय वचन विवेक मय, कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकहि, प्रकट विपिन गुण दोष ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"श्रीराम ने विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को संतुष्ट किया। वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजी को समझाने लगे।"

बड़ों के सम्मान तथा उनकी इच्छा को प्राथमिकता देना पुत्रों का कर्तव्य तो है, किन्तु यह बात भी हर जगह लागू नहीं होती। यदि माता-पिता मोहवश या भ्रान्तिवश गलत आग्रह करने लगते हैं तो पुत्र का कर्तव्य हो जाता है कि उसे स्वीकार न करे, बल्कि उचित के लिये ही आग्रह करे। राजा दशरथ मोहवश राम को कर्तव्य विमुख होने की सलाह देने लगे, तब वे उन्हें ऐसा करने से रोकते हुए कहते हैं—

तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू।
जस जग जाइ होइ अपवादू॥

"हे तात! मोह के वशीभूत होकर कर्तव्य की अवहेलना करने से संसार में यश नष्ट होता है और निन्दा बढ़ती है।"

परन्तु एक बात यह भी ध्यान में रखने योग्य है कि बात को न मानना और उनके प्रति अपने कर्तव्य से विमुख हो जाना दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। अनुचित आज्ञा की अवहेलना तो की जाय किन्तु बड़ों की सेवा और सम्मान के अपने कर्तव्य को याद रखा जाये। भरतजी ऐसा ही करते हैं। श्रीराम वन को चले गये, उनके आने पर माँ ने अपनी करनी सुनाई और राज्य सिंहासन पर बैठने को कहा, उन्होंने उनकी बात मानने से इन्कार कर दिया तथा इस अनीति के लिये माँ की भर्त्सना भी की। किन्तु माताओं की सेवा के अपने कर्तव्य को उन्होंने बराबर ध्यान में रखा। शत्रुघ्न को बुलाकर सभी माताओं की व्यवस्था समान रूप से समझायी।

पुनि सिख दीन्ह बोलि लघु भाई।
सौंपी सकल मातु सेवकाई॥

"उन्होंने छोटे भाई को बुलाकर समझाया तथा सभी माताओं की सेवा का भार उन्हें सौंप दिया।"

वयोवृद्धों द्वारा भूल होने पर छोटों द्वारा उन्हें कर्तव्य बोध कराने, उचित का आग्रह करने के अनेक प्रसंग रामचरितमानस में मिलते हैं। पिता हैं, बड़े हैं इसलिये उनकी हर बात मानना हर कार्य में समर्थन सहयोग देना न आदर्श की दृष्टि से उचित है और न व्यवहार की दृष्टि से। रावण अपने हठ के कारण अपना दोष होते हुए भी श्रीराम से लड़ने को तैयार है। उसके मंत्री भी हाँ में हाँ मिलाते हैं किन्तु उसका पुत्र प्रहस्त उन सबका प्रतिवाद करता है और मर्यादापूर्वक औचित्य का आग्रह करता है—

सबके वचन श्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु, मन्त्रिन्ह मति अति थोरि॥

"सबके वचनों को सुनकर रावण पुत्र प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा है — प्रभु! ये मंत्री मन्द बुद्धि के हैं, इनके कहने में आकर आप नीति का विरोध न कीजिये।"

रावण ने सीता हरण करके अनीति की थी। प्रहस्त ने सलाह दी कि उस अनीति का समाधान कर दीजिये। उसके बाद भी यदि वे लड़ना चाहें तो फिर युद्ध करना उचित होगा। प्रहस्त कहते हैं—

नारि पाइ फिरि जाहिं जो, तौ न बढाइअ रारि।
नाहिं त सनमुख समर महि, तात करिय हठि मारि॥

"यदि अपनी स्त्री पाकर वे लौट जाते हैं, तो झगड़ा न बढ़ाइये। यदि इतने पर भी नहीं लौटते तो अवश्य युद्ध कीजिये।"

प्रहस्त राक्षस कुल के थे, इसलिये उनकी सलाह को आदर मिले या न मिले, किन्तु विचारशीलों की दृष्टि में वे आदर के पात्र हो जाते हैं। इसी तरह उचित सलाह देकर श्रेय और सम्मान प्राप्त किया जा सकता है। छोटी आयु वाले भी बड़ों को उचित सलाह देते हैं वह बुरा नहीं है।

आदर्श निष्ठ व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा बन जाता है कि वह औचित्य को ही सर्वोपरि महत्व देता है। औचित्य का निर्वाह कैसे हो? इसी दिशा में उनका चिन्तन चलता रहता है। श्रीराम के वन गमन के बाद भरत जब अयोध्या आये तो उनके मस्तिष्क में इसी ढंग के विचारों का ताना-बाना चलता है। वाल्मीकि रामायण में उनके विचार इस प्रकार व्यक्त होते हैं—

बलवान्वीर्यसम्पन्नो लक्ष्मणो नाम योऽयसौ।
कि न मोचयते रामं कृत्वापि पितृनिग्रहम्॥

भरतजी का तर्क है कि यदि मान लिया जाय कि श्रीरामचन्द्र ने संकोचवश उस समय कुछ न कहा तो बलवान और वीर्य सम्पन्न लक्ष्मण ने पिता को रोककर श्रीरामचन्द्र को क्यों न बचाया।

भरतजी का सोचना सर्वथा उचित है। ठीक है कि वे उस समय नहीं थे, जब राम को अनुचित ढंग से वन भेजा गया। परन्तु उन जैसे ही नीति निष्ठ एवं समर्थ भाई लक्ष्मण थे। उन्होंने न्याय के पक्ष में अपनी शक्ति का उपयोग क्यों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं किया ? यह चिन्तन आदर्शों के प्रति भरत की तीव्रतम आस्था का ही परिणाम है ।

रामायण के सभी श्रेष्ठ पात्रों में यह आस्था विद्यमान है । सीताजी को भी अपने कर्तव्यों का ठीक-ठीक बोध है । वन जाने से उन्हें रोकने के लिये स्वयं राम उन्हें फुसलाना चाहते हैं । उन्होंने तर्क दिया कि मेरी बात मानो यह तुम्हारा धर्म है । इन बातों में वे आई नहीं । अपने आदर्श को जीवन्त रखते हुए बड़े आत्म-विश्वास पूर्वक सीता ने राम से कहा–

अनुशिष्टऽस्मि माता च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्ति सम्प्रतिवक्तव्या वतितव्यं यथा माया ॥

"स्त्री को अपने पति के प्रति किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, यह बात मेरे माता-पिता ने अनेक प्रकार से समझा दी है। अत: इस विषय में मुझे अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं है ।"

सीताजी द्वारा अपने पति से ऐसा आग्रह करना नीति निष्ठा के अनुरूप है । अन्य स्थानों पर भी छोटों ने बड़ों को उचित सलाह दी है और उनकी उचित सलाह मानी भी गयी है । पार्वतीजी ने माता-पिता को, शिव को वरण करने का उचित पक्ष समझाया तथा इसके लिये तप की आवश्यकता बतलायी । इस उचित पक्ष में माता-पिता की सहमति मिली और वह तप के लिये चल पड़ीं–

मातु पितहि बहु बिधि समुझाई ।
चली उमा तप हित हरषाई ॥

"पार्वती जी ने अनेक प्रकार से माता-पिता को समझाया तथा उनसे तप के लिये प्रसन्न होकर विदा ली ।"

श्रीराम को भी मोहवश राजा दशरथ वन जाने से रोकते रहे, किन्तु उन्होंने पिता के वचन को नहीं, कर्तव्य पालन को महत्व दिया । राजा दशरथ ने सब प्रकार प्रयास कर लिया, किन्तु श्रीराम का रुख बदला नहीं । मानसकार उस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं–

लखी राम रुख रहत न जाने ।
धरम धुरन्दर धीर सयाने ॥

"किन्तु उन्होंने राम का रुख देखा तो उन्हें मालूम हो गया कि धर्म पालन में तत्पर धीर और बुद्धिमान राम रुकेंगे नहीं ।"

राम ने एक प्रकार से पिता की अवज्ञा ही की किन्तु उन्हें कुपुत्र, अधर्मी न कहकर धर्म, धुरन्दर, धीर और सयाने इन सब विशेषताओं से विभूषित किया गया । वस्तुत: धर्म उचित बात का पालन है, किसी व्यक्ति विशेष के कर्तव्य का पालन नहीं । इस प्रकार परिवार के सभी सदस्यों को नीति निष्ठ बनाया जाये । कर्तव्य का मर्म वे इसी आधार पर समझें और उसके साथ-साथ समाज भी प्रगति के चरण पूरा करता हुआ उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है ।

राम स्वयं भी धर्मनिष्ठ-नीतिनिष्ठ हैं और अपने भाइयों को भी यही प्रेरणा देते हैं । वन के लिये प्रस्थान करते हुए वे भरत के लिये सुमन्त्र द्वारा संदेश देते हैं कि भरत से कहना कि वे नीति मार्ग न छोड़े । परिवार, प्रजा, माता आदि सभी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करें ।

कहव सन्देश भरत के आए ।
नीति न तजिय राजपद पाए ॥
पालेउ पुहुमि प्रजा रजधानी ।
सेयेहु मातु सकल सम जानी ॥

"भरत के आने पर उनसे मेरा सन्देश कहना कि हे भाई ! राजपद पर भी नीति मार्ग को छोड़ना मत । परिवार, प्रजा, राज्य आदि सबका पालन करना और इसकी सेवा माता की सेवा के समान करना ।

परिवार में जो भी परिजन आदर्श नीतियों को जानता हो और उनके लाभों से परिचित हो उसे अपने से छोटों को इसी तरह प्रेरणा देते रहना चाहिये ताकि नीति की अनविज्ञता में कोई गलती न हो और इससे परिवार और कुल की मर्यादा, प्रतिष्ठा नष्ट न हो जाये ।

ज्ञान का क्षेत्र अपार है । अत: हो सकता है कोई बड़े पूज्यनीय व्यक्ति भी किसी नीति धर्म के रहस्य को न जान सकें । ऐसी स्थिति में उनका सम्मान तो किया जाय परन्तु जब नीति पूरक बातों में कहीं गलती हो तो उसे शिष्टतापूर्वक अस्वीकार भी करना चाहिये और उसका उचित विकल्प प्रस्तुत करना चाहिये । इसी सन्दर्भ में वन गमन से पूर्व लक्ष्मण ने कौशल्या से कहा–

अहं तावन्महाराजे पितृत्वं नोपलक्षये ।
भ्राता भर्ता च बन्धुश्च पिता च मम राघव: ॥

"मुझे तो महाराज में पितृ कर्तव्य का पालन कुछ भी नहीं दीख पड़ता । अत: अब तो मेरे भाई, स्वामी, बन्धु और पिता (जो कुछ हैं सो) श्रीरामचन्द्र जी ही हैं ।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि कोई पिता भी अपने दायित्वों को पूरा न करें तो वह पिता जैसे सम्मानित पद का श्रेय पाने योग्य नहीं है। इस स्थिति में स्वयं के समुचित विकास के लिये किसी सुयोग्य व्यक्ति को मार्गदर्शक मान लेना अनुचित नहीं। इस तरह के विवेक संगत कार्यों के लिये बड़ों के द्वारा भी प्रोत्साहन मिलना चाहिये। जब लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्रजी को अपना सब कुछ मान लेते हैं तो माता सुमित्रा लक्ष्मण को समर्थ संरक्षण में पाकर प्रसन्न होती हैं। और उन्हें प्रोत्साहन देती हुई शिक्षा देती हैं—

तात तुम्हार मात वैदेही ।
पिता राम सब भाँति सनेही ॥

"हे तात ! अब तुम्हारी माता सीताजी हैं और सब प्रकार तुमसे स्नेह करने वाले बड़े भाई राम तुम्हारे पिता हैं।"

सामान्य जीवन क्रम में तो पिता अपने बच्चों को आदर्श का उपदेश देते हैं किन्तु जब कभी आदर्श के निर्वाह में कष्ट कठिनाइयों एवं विछोह की स्थिति आती है तो लोग लड़खड़ा जाते हैं। ऐसे समय सच्चे आदर्श परायण व्यक्ति नहीं डिगते। मानस में इसका बड़ा उत्कृष्ट प्रमाण राम वन गमन के पूर्व माता सुमित्रा तथा लक्ष्मण के संवाद से मिलता है। लक्ष्मण श्रीराम के साथ वन जाने के लिये तैयार हो जाते हैं। माता पुत्र के मोह में पड़ कर उन्हें रोक सकती थीं। लक्ष्मण को तो वनवास की आज्ञा भी नहीं दी गयी थी किन्तु आदर्श के पालन में भई के सहयोग की नीति को प्रधानता देती हैं, वे दुःख की अपेक्षा गौरव का बोध करती हैं और रोकने की जगह प्रोत्साहन देकर पुत्र को नीति के मार्ग पर आगे बड़ा देती हैं। माता सुमित्रा कहती हैं—

भूरि भाग भाजन भयऊँ, मोहि समेत बलि जाउ ।
जौं तुम्हरे मन छाड़ि छल, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥

"हे पुत्र! तू श्रेष्ठ सौभाग्य का अधिकारी हो गया, मैं भी तेरे ऊपर बलि जाती हूँ। क्योंकि तुम्हारे मन में निश्छल भाव से श्रीराम के प्रति समर्पण भाव आ गया।"

सेवा का दिखावा यश पाने और शेखी दिखाने के लिये बहुत से लोग करते हैं किन्तु बिना किसी बदले की कामना के पूरी निष्ठा के साथ जीवन समर्पित कर देना बहुत बड़ी बात है। ऐसा साहस करने वाला व्यक्ति लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही प्रकार से लाभान्वित होता है। किन्तु ऐसी सेवा भी मात्र कल्पना तक ही न रह जाये, चरितार्थ हो उठे, इसके लिये अपने अन्तःकरण को विशुद्ध और सन्तुलित बनाना पड़ता है। उच्चस्तरीय सेवा की पात्रता विकसित करके उसमें सफल होने का सूत्र पुत्र को समझाती हुई माता आगे कहती है—

राग रोग ईर्षा मद क्रोहू ।
जनि सपनेहुं इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार विकार विहाई ।
मन क्रम वचन करेहु सेवकाई ॥

"हे बेटा! तुम सपने में भी ईर्ष्या, घमण्ड, क्रोध आदि के वश में मत होना। सब प्रकार से विकारों को छोड़कर मन, वचन और कर्म से सेवा करना।"

इस प्रकार आदर्श निष्ठ शिक्षण पाकर ही लक्ष्मण जी अपने शक्ति और सामर्थ्य का वह उपयोग कर सके जिसके लिये लोग लालायित रहते हैं।

इस तरह के नीति पूर्ण उपदेशों और उनकी भावनाओं के प्रोत्साहन के अभाव में बच्चों का उत्साह कम हो जाता है और इस तरह के श्रेष्ठ कार्यों में रुचि कम होने लगती हैं। बाद में वे इसके दुष्परिणाम स्वरूप स्वयं दुःख पाते हैं, परिवार में कलह फैलाते हैं और समाज का पतन करते हैं।

लक्ष्मण जी ने माँ के इस कथन को सुन ही लिया हो सो बात नहीं, उसका पालन भी बड़ी तत्परता से किया। श्रीराम जानकी की सेवा, सुरक्षा तथा सम्मान में शक्ति भर कहीं चूक नहीं होने दी। श्रीराम मायामृग के पीछे गये तो लक्ष्मणजी को सीताजी की सुरक्षा के लिये नियुक्त कर गये। मारीच द्वारा 'हा लक्ष्मण' की पुकार सुनकर सीताजी भ्रमवश उसे श्रीराम की पुकार मान बैठीं। उन्होंने सहायता के लिये लक्ष्मण से जाने को कहा, पर वे सीता को असुरक्षित छोड़कर जाने को तैयार न हुए। सीता ने सतर्कता युक्त तत्परता को अवहेलना माना और अपशब्द भी कह उठीं। किन्तु लक्ष्मण ने न तो बुरा माना और न उत्तेजित हुए। भाभी के प्रति उन्होंने माँ ही शालीनता का निर्वाह किया। उनकी श्रेष्ठता को सीताजी ने अपनी भूल के पश्चात्ताप के साथ स्मरण किया। रावण द्वारा अपहरण होने पर विलाप करते हुए उन्होंने कहा—

हा लछमन तुम्हार नहिं दोसा ।
सो फल पावउँ कीन्हेउ रोसा ॥

"हे लक्ष्मण ! तुम्हारा कोई दोष नहीं है, मैंने ही क्रोध किया और उसका फल पाया।"

सीताजी खुले हृदय से अपना दोष स्वीकार कर सकीं यह भी इसीलिये सम्भव हुआ कि वे स्वयं आदर्श परायण थीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लक्ष्मण की माँ की तरह उनके अभिभावकों ने उन्हें आदर्श पालन सिखाया था । वे राजकुमार राम के साथ जिस प्रसन्नता से रहीं उतनी ही प्रसन्नता से वनवासी राम के साथ भी रहीं । उनके माता-पिता इससे प्रसन्न भी हुए । चित्रकूट में भगवान राम के साथ सीता को तापस वेश में देखकर, मोह ग्रस्त नहीं हुए और न उनके कष्टों की कल्पना से दुःखी हुए । अपनी पुत्री को कर्तव्य पालन करते देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । वे इस तरह की कर्तव्य निष्ठ पुत्री पर गौरव करते हुए कहते हैं—

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ ।
सुजस धवल जगु कह सब कोऊ ॥

"राजा जनक ने कहा — बेटी ! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिये । तेरा निर्मल यश संसार में फैल रहा है और सभी लोग सराह रहे हैं ।"

बच्चों में गुण सम्बर्धन का प्रयास केवल माता को ही करना चाहिये ऐसी बात नहीं, पिता और सम्बन्धियों से लेकर सखी-सहेलियों तक में यह प्रवृत्ति रहनी चाहिये । सीता की विदाई के समय, माता-पिता के अतिरिक्त उनकी सखियाँ भी उन्हें धर्म के अनुसार शिक्षा अपने अनुभवों के आधार पर देती हैं ।

व्यक्ति और समाज की उन्नति-प्रगति, सभ्यता-संस्कार परस्पर अन्योन्याश्रित हैं । जहाँ निकृष्ट व्यक्तियों की अधिकता होगी, वह समाज निकृष्ट होगा । समाज की संरचना का उद्देश्य ही है कि हर व्यक्ति के विकास की अधिक सुविधायें और सम्भावनायें प्रदान की जायें । अतः समाज की उपेक्षा करके कोई व्यक्ति विशेष आगे बढ़ेगा तो किसी निश्चित बिन्दु तक ही पहुँच सकता है । समाज का कायाकल्प एक दो व्यक्तियों से नहीं होगा, उसके लिये सभी को अपने-अपने कर्तव्यों पर आरूढ़ कराना आवश्यक हैं । व्यक्ति की स्थिति और कार्य अलग हैं, अतः सबके कर्तव्य भिन्न-भिन्न होते हैं । इन सिद्धांत कर्तव्यों को ही धर्म कर्तव्य कहा गया है ।

अति सनेह बस सखी सयानी।
नारि धरम सिखवहि मृदुवानी॥

"सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेह के वश कोमल वाणी से उन्हें स्त्रियों के उपयुक्त धर्म की शिक्षा देती हैं ।"

सीता की विदा की तरह पार्वती को भी विदा के समय भी उन्हें आदर्शनिष्ठ रहने की प्रेरणा— सीख देने का प्रसंग मिलता है । पार्वतीजी की माता विदा के समय उन्हें विशेष रूप से बुलाकर सीख देती हैं । इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

जननीं उमा बोलि तब लीन्हीं ।
लै उछंग सुन्दर सिख दीन्हीं ॥

"माता ने पार्वती को बुला लिया और गोद में बैठाकर सुन्दर सीख दी ।"

अपने स्वजनों परिजनों को आदर्शों के प्रति आस्थावान बनाने का प्रयास रामचरितमानस में हर स्थल पर दीखता है । उसका परिणाम जन सामान्य के जीवनों में दिखाई देता है । जनकपुर के निवासी इसी प्रकार के हैं । श्रीराम-लक्ष्मण उन्हें देखकर हर्षित हो उठते हैं—

पुर नर नारि सुभग सुचि सन्ता ।
धरमशील ज्ञानी गुनवन्ता ॥

"पुरवासी स्त्री-पुरुष सुन्दर, पवित्र, सज्जन, धर्मात्मा, ज्ञानी और गुणवान थे ।"

सत्प्रवृत्तियों के विकास के साथ आदर्शनिष्ठा का विकास करने से ही आदर्श समाज की स्थापना संभव होती हैं । फिर सब लोग अपने-अपने कर्तव्य में लगे रहकर श्रेष्ठ मार्ग अपनाकर भर एवं दुःख से मुक्ति और सुख-समृद्धि के अधिकारी बन जाते हैं । रामराज्य इसी आधार पर बनता हैं । रामराज्य में निवास करने वालों के लक्षण रामचरितमानस में इस प्रकार मिलते हैं—

वरनाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग ।
चलहि सदा पावहि सुखहि, नहिं भय शोक न रोग ॥

"सभी लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में लगे हुए हमेशा वेद के रास्ते पर चलते हैं और सुख पाते हैं । उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न रोग है ।"

जहाँ जीवन के उच्च मूल्यों, आदर्शों के प्रति जन-साधारण में दृढ़ आस्था होगी वहाँ सभी सुखी, निरोगी और संतुष्ट दिखेंगे । आज भी जहाँ जितने अंशों में इस दिशा में कदम बढ़ाये जा सकें उतना ही सुख-शान्ति युक्त स्वर्गीय जीवन के निकट पहुँचा जा सकता है ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ससुराल पक्ष में नीति और निर्वाह

रामचरितमानस के पारिवारिक आदर्शों ने लोगों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। राम कथा में परिवारों के अनेक पक्ष उभर कर सामने आये हैं, किन्तु हर पक्ष में पारिवारिक स्नेह और आत्मीयता की मधुरता इतनी गहराई से मिलती है कि दृष्टा उसमें आत्म-विभोर हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में परिवार एक विशाल सहकारी संस्थान होता है। इसको दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। एक पितृ पक्ष और दूसरा ससुराल पक्ष। पारिवारिक आदर्शों का निर्वाह और उसमें सुख-शान्ति का संचार तभी संभव है जब पितृ पक्ष की तरह ससुराल पक्ष भी स्नेह और कर्तव्य भावना से ओत-प्रोत होकर सक्रिय रहे।

आज के पारिवारिक जीवन का अध्ययन किया जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि पारिवारिक कलह विग्रह के पीछे ८० प्रतिशत प्रसंगों में ससुराल पक्ष के प्रति मर्यादा एवं उपेक्षा जिम्मेदार होती है। रामचरितमानस में भी ऐसे विग्रह का एक उदाहरण मिलता है। देवी सती के पिता दक्ष शिवजी से द्वेष मानने लगे। सती भी विरोधी की पत्नी के रूप में द्वेष की लपेट में आ गयीं। दक्ष ने यज्ञ में अन्य कन्याओं की तरह सती को नहीं बुलाया। शिवजी ने सती से संकेत भी किया, और कहा—

दक्ष सकल निज सुता बुलाईं।
हमरे बयर तुम्हउ बिसराईं॥

पिता के लिये यह उचित नहीं था। प्रिय पुत्री के पति को भी पुत्र की तरह मानते हैं। उससे कोई भूल हुई थी तो उसे समझाते, स्नेहाधिकार से दबाकर ठीक करते। किन्तु हुआ उल्टा, पुत्री का स्नेह दामाद तक न फैला, दामाद के प्रति द्वेष ने पुत्री को भी पराया बना दिया। इसलिये मर्मज्ञ शिवजी ने देवी सती को बिना बुलाये यज्ञ में जाने से रोका, कहा—

जदपि मित्र, प्रभु, पितु, गुरु गेहा।
जाइअ बिन बोलेहु न संदेहा॥
तदपि विरोध मान जहाँ कोई।
तहाँ गये कल्याण न होई॥

सामान्य स्थिति में मित्र, स्वामी, पिता, गुरु जैसे स्नेहियों के यहाँ बिना बुलाये भी जा पहुँचना उचित है, पर जहाँ द्वेष हो वहाँ के लिये यह नियम नहीं है। सती यह परायापन समझ जातीं, वहाँ न जातीं तब भी ठीक था। जब स्नेह नहीं तो तुम अलग हम अलग। पर बेटी पिता का मोह न छोड़ सकी, पिता दामाद के प्रति रोष न पचा सके। परिणाम हुआ विग्रह। दक्ष का यज्ञ विध्वंश हुआ, सती की देह छूटी, दक्ष की भी भरपूर फजीहत हुई। इस सारी दुर्घटना के पीछे एक ही कारण था ससुराल पक्ष में स्नेह सद्भाव का अभाव। आज जन-जीवन में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। विग्रह जनित पारिवारिक नर्क से मुक्ति पाना है तो परिवार के इस पक्ष को भी सँभालना होगा। कैसे ? उसके आदर्श और सूत्र राम कथा में बहुत स्पष्ट रूप से मिल जाते हैं।

दक्ष से विपरीत उदाहरण मिलता है सीताजी के पिता जनकजी का, वे अपनी प्राणों से प्यारी बेटी श्रीराम को सौंपते हैं। कल्पना रही होगी कि चक्रवर्ती सम्राट के यहाँ बेटी सुख से रहेगी किन्तु विधि का विधान कुछ और था। सीता को राजमहल तो क्या सामान्य घर की सुविधा भी नसीब न हुई। राम के साथ वन जाना पड़ा। ऐसी स्थिति में जनकजी की सीता के प्रति सम्वेदना, राम, दशरथ, भरत सभी के प्रति रोष के रूप में बदल सकती थी। बेटी को वन-वन भटकाने के लिये वे इन सभी को दोषी मानकर कोष सकते थे, भला बुरा कह सकते थे,

किन्तु ऐसा होता नहीं। वे विशाल पारिवारिक भाव के धनी थे। किसी पर दोषारोपण की जगह वे अपने कर्तव्य का स्मरण करते हैं और अपनी भूमिका खोजकर सक्रिय हो जाते हैं। राम का वन जाना, दशरथ का असमय में निधन और भरत की राम के वियोग में अर्ध विक्षिप्त जैसे स्थिति सभी का अध्ययन वे करते हैं और बड़े धैर्य तथा विवेक पूर्वक अपनी जिम्मेदारी सँभालते हैं। स्वयं श्रीराम उसका उल्लेख करते हुए चित्रकूट में भरत से कहते हैं—

जौं बिनु अवसर अर्थव दिनेसू।
जग केहि कहहु न होय कलेसू॥
तस उत्पात तात विधि कीन्हा।
मुनि मिथलेस राखि सब लीन्हा॥

"यदि असयम ही संध्या से पहले सूर्य अस्त हो जाय तो कहो जगत में किसको क्लेश न होगा। हे तात ! उसी प्रकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह उत्पाद विधाता ने किया है। पिताजी की असामयिक मृत्यु से किसको दुःख नहीं है ? परन्तु गुरु एवं मिथलेश श्रीजनकजी ने इस स्थिति से सबको बचा लिया है।''

जनकजी को यह गौरव अनायास ही नहीं मिल गया। उन्होंने कदम-कदम पर विवेक एवं सद्भाव का परिचय दिया। राम वनगमन की सूचना मिलते ही दुःख छा जाना स्वाभाविक था, पर वे सन्तुलित रहे। आतुरता में कुछ भी कहने करने की अपेक्षा पहले स्थिति का अध्ययन किया—

नृपहि धीर धरि हृदय विचारी।
पठये अवध चतुर नर नारी॥

''दूत अयोध्या गये। वहाँ स्थिति देखी। भरत का स्नेह देखा और जब भरत श्रीराम को मनाने चित्रकूट चल पड़े, तो दूतों ने लौटकर सूचना दी।'' यह सूचना मिलते ही जनक जी चित्रकूट चल पड़े—

दुघरो साधि चले तत्काला।
किये विश्राम न मग महिपाला॥

वे तुरन्त चल पड़े तथा मार्ग में विश्राम भी नहीं किया। वहाँ भरत एवं वशिष्ठ जी के दल से समय पर जा मिलते हैं। वहाँ वनवासिनी के वेश में बेटी सीता को देखकर भी वे विचलित नहीं होते। राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता को राजकुमार को नहीं राम को सौंपा था। राम राजा हों या वनवासी सीता को साथ निभाना चाहिये। इस दृष्टि से वन के कष्ट साध्य जीवन में सीता को देखकर जनक को गर्व ही होता है। वे इस तरह अपनी पुत्री को देखकर दुःखी नहीं हुए वरन् सीताजी की बढ़ाई करते हुए भविष्य में भी इसी तरह कर्तव्यपालन के लिये प्रोत्साहित करते हैं—

तापस वेष जनक सिय देखी।
भयउ प्रेम परितोष विशेषी॥
पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ।
सुजस धवल जग कह सब कोई॥

जनकजी ने सीता को तपस्वी वेष में देखा तो उन्हें विशेष स्नेह और सन्तोष का अनुभव हुआ। वे उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहने लगे— ''बेटी ! तूने अपने आचरण से दोनों कुलों को पवित्र कर दिया। तेरा उज्जवल यश संसार में चर्चा और प्रेरणा का विषय बनेगा।''

इस प्रकार सीता को प्रोत्साहित करके, अपने अनुभव और प्रभाव का सदुपयोग करते हुए समस्या का समाधान खोजने लगे। समाधान निकल आने पर उन्हें लगा कि भरत को राजकार्य का अनुभव नहीं है, फिर वे राम के वियोग से दुःखी हैं। ऐसी स्थिति में अयोध्या की राज्य-व्यवस्था लड़खाड़ा न जाये। अस्तु वे उनके साथ अयोध्या जाते हैं। पिता की तरह अपना कर्तव्य निभाते हैं—

जनक रहे पुर वासर चारी।
राज काज सब साज सम्हारी॥
सौंपि सचिव गुरु भरतहिं राजू।
तेरहुति चले साजि सब साजू॥

''राजा जनक अयोध्यापुरी में कुछ दिन रहे। अपने सामने राजकाज की सब व्यवस्थायें सम्हाली और बाद में सारा राज्य मंत्री, गुरु तथा भरत को सौंप दिया। इतना सब कर लेने के बाद वे अपनी सेना सहित जनकपुरी वापस हुए।''

विपत्तियाँ तो संसार में सभी पर आती हैं। किन्तु जहाँ इस प्रकार का सद्भावनापूर्ण तालमेल परिवारों के बीच होता है। वहाँ वह विपत्तियाँ प्रभावहीन हो जाती हैं। सारे कार्य सुचारु रूप से चलते हैं और पुनः सुख का समय आ जाता है। ससुराल पक्ष सास-ससुर, बहू-दामाद तथा अन्य स्त्रियाँ यदि इस प्रकार के आदर्शों को वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अपना सकें तो परिवार में व्याप्त सारे तनाव समाप्त होकर सुख-सद्भाव का स्वर्गीय वातावरण बन सकता है।

लेकिन इस स्तर के आदर्श का निर्वाह एकांगी नहीं हो सकता। एक पक्ष अपना सद्भाव एवं सहयोग बढ़ाये तथा दूसरा अभिमान एवं उपेक्षा प्रकट करे तो कठिनाई आ जायेगी। रामचरितमानस में दोनों ही पक्ष अपने-अपने स्थान पर सटीक भूमिका निभाते हैं। राजा जनक अपने पितृ कर्तव्य का पालन करते हैं, अपने राज्य की व्यवस्था दूसरों पर छोड़कर राम और भरत के पास दौड़े आते हैं तो राम और भरत की ओर से भी उन्हें पुत्र की तरह नम्रता एवं सम्मान का व्यवहार मिलता है। न जाने किस कुघड़ी में यह परम्परा पड़ गयी कि वर देखने के प्रसंग से लेकर विवाह और उसके बाद तक दामाद अकड़, अहंकार और अभद्रता के प्रदर्शन में ही अपनी शान समझते हैं। पर यह न शान की बात है और न सुख संतोष का सूत्र। यह देखना है तो जनक जी के प्रति श्रीराम का व्यवहार देखिये—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करि वर विनय ससुर सनमाने ।
पितु कौशिक वशिष्ठ सम जाने ॥

"श्री रामचन्द्रजी ने विनम्रतापूर्वक ससुर जनकजी का सम्मान किया और उन्हें स्वयं के पिता, गुरु विश्वामित्र और कुल गुरु वशिष्ठ के समान माना ।"

जिस पुत्री को जन्म से ही स्नेह, दुलार देकर माता-पिता विकसित करते हैं । उस स्नेह के रूप में वे विवाह के अवसर पर बनने वाले दामाद को सौंप देते हैं । उनके इस अनुदान के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी ही चाहिये । विवाह के समय दो आत्मायें एक सूत्र में सम्बद्ध होती हैं, इस दृष्टि से भी ससुर पिता के समान ही होता है । अतः अपना-पराया का भेद किये बिना ही ससुर के सम्मान अपने आत्मीयों के समान ही किया जाना चाहिये ।

यही भाव भरतजी ने जनकजी के प्रति व्यक्त करते हुए कहा है। चित्रकूट में जब जनकजी, श्रीराम जी, वशिष्ठ के सामने भरत को समझाते हैं, तो भरत कहते हैं—

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू ।
कुल गुरु सम हित माय न बापू ॥

" हे प्रभु ! आप हमारे लिये पिता के समान प्रिय और पूजनीय हैं और गुरु के समान हित चिन्तक हैं । ऐसे तो स्वयं वे माता-पिता भी नहीं होते । "

पुत्री का दान दामाद के लिये किया जाता है । इसका मतलब यह नहीं कि केवल दामाद के प्रति ही आत्मीयता जुड़ी रहे और उसके परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति कोई कर्तव्य न हो, यह आदर्श रामायण में मिलता है । वधू पक्ष की ओर से सुविधाओं का ध्यान रखना अच्छी बात है, पर लगभग वैसा ही व्यवहार वर पक्ष की ओर कन्या पक्ष के प्रति भी अभीष्ट है । उदाहरण के रूप में चित्रकूट में जनकजी तथा दशरथजी के रनिवास के मिलन पर दृष्टि डालें ।

सावकास सुनि सब सिय सासू ।
आयउ जनकराज रनिवासू ॥
कौशल्या सादर सनमानी ।
आसन दिये समय सम आनी ॥
सील सनेह सकल दुहु ओरा ।
द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा ॥

"उनसे यह सुनकर कि सीताजी की सब सासुयें इस समय फुरसत में हैं जनकराज का रनिवास उनसे मिलने आया । कौशल्या जी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिये । दोनों ओर से सबके शील और प्रेम को देखकर, सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं ।"

कौशल्यादि माताओं ने भी सुनयना का कितना अच्छा स्वागत किया । यह परस्पर स्नेह सम्मानपूर्ण व्यवहार की क्रमशः घनिष्ठता और आत्मीयता का विस्तार करता है । इतना ही नहीं सुनयना भी कौशल्यादि माँ का आदर करती हैं। सीताजी को अपने डेरे पर ले जाने से पूर्व वे विनयपूर्वक आज्ञा प्राप्त कर लेती हैं । यथा—

असकहि पगपरि प्रेम अति , सियहित विनय सुनाइ ।
सिय समेत सिय मातु तब, चली सुआयसु पाइ ॥

"ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों को पकड़कर सुनयना कौशल्या से कहती हैं कि वे सीताजी को साथ भेज दें । माता कौशल्या की सहर्ष आज्ञा मिलने पर वे सीताजी सहित अपने डेरे को चली जाती हैं ।"

शील, स्वभाव और कर्तव्यों का आदर्श न केवल एक दो स्थानों पर परन्तु हर स्थिति में हर स्थान में प्रस्तुत किया जाये वही तो प्रशंसा के योग्य हैं, वही स्वाभाविक है । बनावटी औपचारिकता का प्रदर्शन करने पर कहीं न कहीं उसका भेद खुल ही सकता है । सीताजी स्वाभाविक रूप से ही अपने इस आदर्श को निभाती हैं । चित्रकूट में सासुओं की आज्ञा मिलने पर ही वे माँ के डेरे में जाती हैं और रात को वहाँ रहना उचित नहीं समझती हैं । उस समय की उनकी मनोभूमि का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं ।
इहां वसब रजनी भल नाहीं ॥
लखि रुख रानि जनायऊ राऊ ।
हृदय सराहत सील सुभाऊ ॥

"संकोच वश सीताजी अपने मन की बात प्रकट में कह नहीं सकती हैं। वे सोचती हैं कि यहाँ अर्थात् माँ के पास रात को रुकना उचित नहीं है । सीताजी के इस रुख को रानी सुनयना जान गयीं और सीताजी के शील स्वभाव की सराहना करते हुए वे इसकी सूचना जनकजी को देती हैं ।

बहु-बेटियों में ऐसा सन्तुलित दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही विकसित करना पड़ता है । भौतिकवादी दृष्टिकोण वाले माता-पिता अपनी पुत्री को पति-परायण होने के नाम पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्ति-परायण बना देते हैं। घर के अन्य परिजनों के प्रति उसके क्या कर्तव्य हो सकते हैं इस पर उनका ध्यान ही नहीं जाता। यदि ध्यान जाता भी है तो वे उसकी उपेक्षा करके अपने दायित्त्व से च्युत हो जाते हैं। इसमें शायद उनका स्वार्थ तथा मोह जुड़ा हो। लेकिन इसका दण्ड उन्हें भी भुगतना पड़ता है। परिवार एक समग्र शरीर है। शरीर के केवल एक अंग पर ध्यान दिया जाये और दूसरे की उपेक्षा की जाये तो यह उचित नहीं। पति के साथ-साथ परिवार के सभी सदस्यों के प्रति गृहिणी के उत्तरदायित्त्व समान रूप से हैं। माता सुनयना विवाह के बाद विदा के पूर्व सीताजी को यही समझाती हैं–

पुनि पुनि सीय गोद करू लेही।
देह असीस सिखावनु देंही॥
होएहुं सन्तत पियहि पियारी।
चिर अहिबात असीस हमारी॥
सास ससुर गुरु सेवा करेहू।
पति रुख लखि आयसु अनुसरेहु॥

बार-बार माता सुनयना सीताजी को स्नेह पूर्वक गोदी में लेती हैं और सुन्दर शिक्षा तथा आशीर्वाद देती हैं। वे कहती हैं कि तुम सदैव पति की प्यारी होकर रहना और तुम्हारा सुहाग चिरकाल तक बना रहे, यह हमारी आशीष है। घर में सास-ससुर आदि की सेवा करना तथा पति के रुख को देखते हुए उनकी आज्ञा पालन करना।

केवल माता ही पुत्री को सीख दे और पिता न दे, इससे भी शिक्षा का सन्तुलन नहीं जमता। सीताजी को विदाई के समय जनकजी अपने दायित्वों का पालन करते हैं। वे सीख देते हैं–

बहुविधि भूप सुता समुझाई।
नारि धरमु कुल रीति सिखाई॥

''अनेकों प्रकार से राजा जनक ने अपनी पुत्री सीताजी को समझाया और नारि धर्म के कर्तव्यों का पालन करते हुए कुल की रीतियाँ समझायीं।''

लड़की बचपन से अपने पिता के घर में पलती है। वहाँ के रीति-रिवाज उसके अभ्यास में आ जाते हैं। उनका संस्कार भी उसके मन पर पड़ जाता है। विवाह के बाद वह दूसरे कुल में जाती है। सम्भवत: वहाँ की कुल रीति भिन्न हों। अत: पितृ-गृह की परम्पराओं के प्रति बिना मोह के पति कुल की परम्परा को उदारतापूर्वक मानना चाहिये। उनमें ही ढल जाना चाहिये।

यहाँ भी दोनों पक्षों की समानता की बात ध्यान में रखी जानी चाहिये। ताली एक हाथ से नहीं बजती, रोटी एक हाथ से नहीं थापी जाती। कन्या को पति परिवार के प्रति सद्भाव रखने की प्रेरणा देना जितना आवश्यक है उतना ही आवश्यक है कि बहु के रूप में उसे पूरा-पूरा स्नेह और सम्मान मिले। बहु के प्रति उपेक्षा और दासी जैसा व्यवहार न उचित है और न स्वीकार करने योग्य है। कन्या पक्ष अपनी ओर से नम्रता एवं शिष्टाचार दिखाता है, यह उचित है, तभी गांधी, विनोवा जैसे सन्त नेता भी अपने आपको नेता नहीं सेवक कहते हैं। वैसे ही निरहंकारी मनोभूमि बनाये रहते हैं। इसी परिपाटी के अनुरूप कन्या को सौंपते हुए माता-पिता वर पक्ष पर अपना अहसान जताकर सेवाभाव ही प्रकट करते हैं। यह हमारे सांस्कृतिक गौरव के अनुरूप है। जैसे पार्वती की विदा के समय उनकी माता मैना शिवजी से कहती हैं।

नाथ उमा मम प्राण सम, गृह किंकरी करेहु।

''हे नाथ! पार्वती हमारे प्राणों के समान प्रिय हैं, इसे अपने घर की दासी के रूप में स्वीकार करें।''

ऐसी ही उक्ति सीताजी की विदा के समय सुनयना की है–

परिवार, पुरजन मोहिं, राजहिं, प्रान प्रिय सिय जानकी।
तुलसीस, सीस सनेह लखि, निज किंकरी करि मानवी॥

''हे प्रभु! सीता मुझे, राजा को, सारे परिवार को और प्रजाजनों को भी प्राणप्रिय है। इसका शील और स्नेह देखते हुए इसे अपनी दासी मान लेना।''

कैसा मार्मिक भाव हैं। इतना उत्कृष्ट समर्पण और किसी प्रकार के पद सम्मान की कामना न करना देवोपम व्यक्तित्व के धनी के लिये ही संभव है। वह भूमिका राम कथा का कन्या पक्ष निभाता है। वहीं वर पक्ष भी सम्मान पाकर बौरा नहीं जाता, अपने शील स्वभाव को उसी स्तर पर प्रकट कर देता है। प्रमाण के रूप में विदा के लिये सास के सामने कहे राम के बोल सुनें –

बोले राम सुअवसर जानी।
शील सनेह सकुच मय बानी॥
राउ अवधपुर चहत सिधाए।
बिदा होन हम इहां पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू।
बालक जानि करब नित नेहू॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"श्रीराम अवसर देखकर, संकोच के साथ शील की रक्षा करते हुए बोलते हैं । यह नहीं कहते कि हमें विदा करानी है । कहते हैं महाराज दशरथ अयोध्या जाना चाहते हैं, इसलिये विदा माँगने हमें आपके पास भेजा है । हे माता ! प्रसन्नता से हमें आज्ञा दीजिये और अपना बालक समझकर हमारे ऊपर बराबर स्नेह बनाये रहिये ।"

ऐसी वाणी सुनकर किस माँ का मातृत्व फूट न पड़ेगा । श्रीराम इसीलिये तो पुत्रवत् स्नेह पा सके । राम ही नहीं, उनके माता-पिता सभी का यही हाल हैं । वे ध्यान रखते हैं कि नये स्थान पर बहुओं के रूप में आयी ये बच्चियाँ संकोच में पड़कर अकेलापन, घुटन , दुःख अनुभव न करें, राजा दशरथ रानियों से कहते हैं–

बधु लरिकिनी पर घर आई ।
राखेउ नयन पलक की नाई ॥

"ये बहुयें उम्र में अभी लड़कियाँ ही हैं । इन्हें गृहस्थी का अनुभव नहीं है और अब पराये घर में आयी हैं । अतः इन्हें उसी तरह रखना जैसे आँखों की पुतलियों की रक्षा पलक करते हैं ।"

बचपन से स्नेह सद्भावनाओं में पली लड़कियाँ स्वभावतः घर के काम-काज में ध्यान नहीं देती । गृहकार्य का अनुभव न होने के कारण उनका तिरस्कार न हो, बल्कि उनकी रक्षा की जाये । यह कैसा भाव है ? माता-पिता का स्नेह छोड़कर आयी लड़कियाँ आँखों की तरह ही संवेदनशील होती हैं । उनकी कोमल भावनाओं को विशेष संरक्षण की आवश्यकता होती है । सभी सास-ससुर इस तथ्य को समझ सकें तो बहुओं के प्रति होने वाले अत्याचारों, दुर्व्यवहारों में सुधार आ सकना असम्भव नहीं । दशरथ जी के कहने पर कौशल्यादि माताओं ने पूरी तरह अपने दायित्वों का पालन किया । बहुओं को बड़ी सावधानी से अपने निकट रखती हैं । इसका सुन्दर वर्णन है–

सुन्दर बहुन्ह सास लै सोई ।
फनिकन्ह जनुसिर मन उर गोई ॥

"सासुयें सुन्दर बहुओं को लेकर सो गयीं, मानों सर्पों ने अपने सिर की मणियों को अपने हृदय में छिपा लिया है ।"

सर्प के लिये मणि किनती कीमती होती है । यह तो वही जानता है । यह कहें कि मणि में ही उसके प्राण रहते हैं तो अत्युक्ति न होगी । बहुयें भी कुल के लिये मणि के समान होती हैं । अतः सासुओं को उन्हें अपने हृदय के निकट स्थान प्रदान करना चाहिये । उनकी भावनाओं को समझते हुए उन्हें हर तरह से तृप्त किया जाना चाहिये ।

सीताजी के प्रति सासुओं की ममता का पता तब लगता है जब सीताजी रामचन्द्रजी के साथ वन जाने के लिये तैयार हो जाती हैं । सीताजी के अलग होने की मात्र कल्पना ने उन्हें भाव विह्वल कर दिया था । ऐसे कठिन समय में भी कौशल्या अपने दायित्वों का ध्यान रखती हैं तथा स्नेह पूर्वक सीताजी को धीरज धरकर शिक्षा देती हैं–

बारहि बार लाइ उर लीन्हीं ।
धरि धीरजु सिख आसिष दीन्हीं ॥

"माता कौशल्या ने सीताजी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी तथा आशीर्वाद दिया ।"

माता कौशल्या का यह व्यवहार दिखावटी नहीं था । सुख-सौभाग्य के समय भी उन्होंने अपनी बहुओं को स्नेह प्रदान कर प्राणों की भाँति रखने का आदर्श प्रस्तुत किया था । उसी का वर्णन करती हुई स्वयं माता कौशल्या कहती हैं–

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई ।
राखेहु प्रान जानकिहिं लाई ॥

"मैंने जानकी को आँखों की पुतली बनाकर स्नेह बढ़ाया है और अपने प्राण इसमें लगा रखे हैं ।"

आगे भी कहती है–

कलप बेलि जिमि बहुविधि लाली ।
सीचि सनेह सलिल प्रति पाली ॥
फूलत फलत भयउ विधि वामा ।
जानि न जाइ काहि परनामा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ ।
दीप वाति नहिं टारत कहऊँ ॥

"मैंने कल्प वृक्ष की लता के समान इसे बहुत लाड़ प्यार से रखा है । अपने प्रेम रूपी जल से सींच-सींचकर इसे पाला पोसा हैं । इस कल्पलता के फूलने-फलने का अवसर आया तो विधाता वाम हो गया । मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान इनकी रखवाली करती रही हूँ । कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहा ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपनी बहुओं के प्रति सास का व्यवहार कैसा रहना चाहिये ? यह कितना आदर्श है कि स्वयं सास बहू को प्राणों के समान रखती हैं । उसे स्नेह प्रदान करती हैं लेकिन आज तो ठीक इसका उल्टा ही दिखाई देता है । प्रायः सास अपनी बहू के प्रति पराई दृष्टि ही रखती है । इसी कारण सास-बहू के बीच वैमनस्यता पैदा हो जाती है । बहू तो पूर्ण समर्पण भाव से नये घर में आती है । परन्तु सास की भेद भरी दृष्टि बहू का आत्मीयता स्थापित करने का समय नहीं दे पाती । इसी कारण सास-बहू में खट-पट चलती रहती है और परिवार की सुख शान्ति नष्ट हो जाती है । आज यह दुर्व्यवहार पारिवारिक संस्था को बुरी तरह कलंकित कर रहा है । वात्सल्यमयी माँ का हृदय इस तरह कठोर हो जाना अमानवीय है । सामान्य सी बातों को लेकर झगड़ की जड़ सिंचित होने लगती हैं । बाद में यह विष बेल फैलकर परिवार में विग्रह पैदा करती है ।

बहुओं के प्रति जैसे व्यवहार की अपेक्षा दूसरों से की जाती है वैसा व्यवहार स्वयं करके दिखायें तो आदर्श है । रामचरितमानस में 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' वाली बात नहीं हैं । स्वयं राजा दशरथ भी बहुओं से स्नेह करते थे । इसका प्रमाण वहाँ मिलता है जब सीताजी वन को जाती हैं तब वे सीता को हृदय से लगा लेते हैं तथा उनके हितार्थ सीख देते हैं यथा—

तब नृप सीय लाय उर लीन्हीं ।
अति पित बहुत भाँति सिख दीन्हीं ॥

''तब राजा दशरथ ने सीताजी को उठाकर हृदय से लगा लिया और अनेक प्रकार से हितकारी शिक्षा दी ।''

सास और ससुर के इस तरह के व्यवहार से ही बहू को ''साम्राज्ञी श्वसुरों भव'' अर्थात् तू अपने ससुराल की साम्राज्ञी बन, ऐसा आशीर्वाद दिया जाता था । यही है बहू के त्याग-समर्पण का वास्तविक मूल्यांकन । बहू से स्नेह करना, उसकी सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना हमारी संस्कृति है । राजा दशरथ ने इस बात को कहा ही नहीं पालन भी किया है । वनवास चले जाने के बाद सुमन्त से कहते हैं कि राम न आयें तो सीता को ही वापस ला देना । उन्हें देखकर ही में राम के दर्शन की पूर्ति करता रहूँगा—

जौ नपि फिरहिं धीर दोऊ भाई ।
सत्यसन्ध दृढ़वत रघुराई ॥
तौ तुम्ह विनय करहु कर जोरी ।
फेरिअ प्रभु मिथिलेश किशोरी ॥

''यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें क्योंकि रघुनाथ जी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम पालन करने वाले हैं । तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभु ! जनक कुमारी सीता को लोटा दीजिये ।'' और आगे कहते हैं—

एहि विधि करेउ उपाय कदम्बा ।
फिरइ ते होह प्रान अवलम्बा ॥

''इस प्रकार तुम बहुत उपाय करना । यदि सीताजी लौट आयीं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जायेगा ।''

बहू और बेटे में जहाँ भी इस तरह की अनन्य भावना होगी वहाँ पर बहू के प्रति स्नेह क्यों न बना रहेगा । वहाँ की बहुयें भी अपना दायित्व पूरा करती रहेंगी ।

माता-पिता, सखी आदि तो अपने दायित्त्वों का पालन कर लड़कियों को सुन्दर सीख देते हैं लेकिन समाज के अन्य अनुभवी घटक भी समय-समय पर इसकी याद दिलाते रहें तो कैसी भी परिस्थितियाँ आने पर बहुये दृढ़ता के साथ अपना धर्म पालन करती रहती हैं तथा स्वयं को अभागी मानती हैं । यदि सास-ससुर की सेवा के समय विधाता ने वनवास दिया । इसका उन्हें दुःख हैं । वे कहती हैं—

तब जानकी सासु पग लागी ।
सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैव वन दीन्हा ।
मोर मनोरथ सफल न कीन्हा ॥

''तब जानकीजी सास के पाँव लगीं और बोली, हे माता ! सुनिये ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ । आपकी सेवा करने का अवसर आया तो भाग्य ने मुझे वनवास दे दिया । इससे मेरा मनोरथ सफल न हो सका ।''

समय एवं परिस्थितिवश सीताजी को सासुओं की सेवा का अवसर नहीं मिल पाया । वे इसका पछतावा तो करती हैं लेकिन जब कभी उन्हें अवसर मिलता है वे अपने दायित्त्वों में चूकती नहीं । सासुओं की सेवा सच्चे मन से करती हैं । सेवा के आधार पर ही वे सासुओं का मन जीत लेती है । इसका आदर्श प्रस्तुत किया गया है । राजमहल में सुख-सुविधाओं के रहते सेवा न कर सकी थीं लेकिन चित्रकूट में अवसर आया तो वे सेवा का दायित्त्व पूरा करती हैं—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीय सासु प्रति वेष बनाई ।
सादर करइ सरिस सेवकाई ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्हीं ।
तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं ॥

"सीताजी ने सासुओं की सेवा दायित्त्व के साथ की, अनेक वेष बनाकर । इस तरह की सेवा के आधार पर सीताजी ने सासुओं का हृदय जीत लिया । प्रसन्न होकर सासुओं ने भी सुन्दर शिक्षा और आशीर्वाद दिया ।"

वनवास के कष्टसाध्य जीवन के बाद राज्याभिषेक के बाद भी सीताजी ने अपने दायित्त्व निभाये हैं । उस समय महल में कई दास-दासियाँ थीं । फिर भी घर के काम काज स्वयं अपने हाथों से सम्पन्न करती थीं । इस गृह चर्या में उन्हें किसी प्रकार का मान या मद नहीं था । मानस में इसका सुन्दर वर्णन है—

जेहि बिधि कृपासिन्धु सुख मानइ ।
सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ ॥
कौशल्यादि सासु गृह माहीं ।
सेवइ सबहिं मानमद नाहीं ॥

"जिस प्रकार से कृपा के सागर रामचन्द्रजी सुख मानते हैं, उसी प्रकार से सीताजी उनकी सेवा करती हैं । इसके साथ ही कौशल्या आदि सासुओं की सेवा घर में करती हैं । घर के सभी लोगों की सेवा करते समय किसी प्रकार का कोई मान या मद नहीं लाती ।"

बहुओं को सीताजी का यह प्रसंग ध्यान में रखना चाहिये । पति के उच्च पद से मिली प्रतिष्ठा के अहंकार में पड़कर सेवा धर्म से विरत नहीं होना चाहिये । नारी को सुगृहणी के उत्तरदायित्त्वों का स्मरण रखना और कर्तव्यों को पूरा करते रहना चाहिये ।

रामचरितमानस के परिवारों जैसे स्वर्गीय सरसता का लाभ प्राप्त करना हर किसी के लिए सम्भव है । उसके लिये वर पक्ष एवं कन्या पक्ष दोनों ओर के सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति गहरी संवेदना, सद्भावना पनपे तथा उसके अनुरूप कर्तव्य पालन की उमंग उठे तो कटुता और कलह के नारकीय घुटन के स्थान पर स्नेह आत्मीयता की स्वर्गीय अनुभूति पाई जा सकती हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुसंस्कारिता का वातावरण

परिवार को व्यक्ति निर्माण का साँचा कहा जाता है। श्रेष्ठ व्यक्तित्वों को छाप डालने वाली टकसाल भी इसे कह सकते हैं। विभिन्न उत्पादन केन्द्रों से ठीक उत्पादन पाने के लिये उनमें उसके अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा की जाती हैं। सूत कताई मिल में नमी का एक विशेष स्तर बना कर रखा जाता है। फिल्में बनाने वाली फैक्टरी में सफाई और तापक्रम का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। व्यक्तियों के उत्पादन केन्द्र में जो वातावरण अभीष्ट है, वह है सुसंस्कारिता का वातावरण। इस वातावरण के बिना केवल बौद्धिक शिक्षण के आधार पर व्यक्तित्व की ढलाई सम्भव नहीं।

इस वातावरण की महत्ता तो कितनी भी गाई जा सकती है, किन्तु प्रश्न है कि उसे पैदा कैसे किया जाये ? प्रत्येक परिवार में ऐसा वातवरण बनाने के लिये कुछ सुगम कार्यक्रम रहे तो सुसंस्कारिता का वातावरण सहज ही बनता चला जाता है। उन्हें सही ढंग से निष्ठापूर्वक क्रियान्वित किया जाता है और उसका लाभ परिवार को मिलता रहता है। रामचरितमानस में भी यह कृत्य परिवारों में निष्ठापूर्वक चरितार्थ किये जाते हैं।

एक कार्यक्रम है परिवारों में संस्कार आयोजन होते रहना। भारतीय संस्कृति में ऋषियों ने व्यक्तियों को ढालने के लिये जीवन के हर महत्वपूर्ण मोड़ पर संस्कारों की व्यवस्था की है। सामान्य धातु बार-बार संस्कारित होने से मूल्यवान रस भस्म में बदल जाती है। सामान्य जंगली जड़ी संस्कारित होकर रसायन बन जाती है। जंगली खूंखार जानवर संस्कार पाकर सहयोगी और कमाऊ बन जाते हैं। सामान्य व्यक्तित्व संस्कार पाकर महामानव, ऋषि एवं देव मानव स्तर के बन सकते हैं। संस्कारों में ऐसी ही व्यवस्था है। संस्कारों के माध्यम से परिवारों को और भी प्रत्यक्ष परोक्ष लाभ मिलते हैं। घर में जल्दी-जल्दी धार्मिक वातावरण बनने का सुयोग बनता हैं जिस बालक या वयस्क का संस्कार उत्सव मनाया जा रहा है उसे गौरवान्वित होने का अवसर मिलता है। स्वजन सम्बन्धियों को ऐसा ऐसे आयोजनों में सम्मिलित करके घनिष्ठता बढ़ाने की बात बनती है, सामाजिकता का विस्तार होता है।

यों अच्छी शिक्षायें कभी भी दी जा सकती हैं, पर उत्साह-उमंग भरे धर्मानुष्ठानों के भाव भरे वातावरण में सोद्देश्य कर्मकाण्डों के साथ दी गयी शिक्षा विशेष प्रभाव छोड़ती है। अग्नि की साक्षी में विशेष धर्मोत्सव के साथ किया गया विवाह संस्कार पति-पत्नी के मन पर एक अमिट मनोवैज्ञानिक छाप छोड़ता है। यों विवाह ऐसे भी बातचीत मात्र कर लेने से सम्पन्न हो सकता है, पर उसके पीछे मनोवैज्ञानिक छाप न होने के कारण स्थायित्व का वैसा भरोसा नहीं रहता जैसा धर्मोत्सव के रूप में किये गये सर्वविदित विवाह संस्कार के होने पर होता है। गरम भट्टी में तपाया हुआ लोहा गरम हो जाता है, उसे आसानी से तोड़ा-मरोड़ा और ढाला जा सकता है। संस्कारों के धर्मोत्सवों में उस व्यक्ति की तथा उपस्थित लोगों की मनोभूमि ऐसी हो जाती है कि पुरोहित द्वारा दी गयी अभीष्ट प्रेरणायें अन्तरंग की गहराई तक प्रवेश कर जाती हैं और चिरकाल तक अपना सत्प्रभाव बनाये रहती हैं। उससे न केवल संस्कार वाला व्यक्ति वरन् सारा परिवार एवं उपस्थित मित्रों-पड़ोसियों के परिवार भी लाभान्वित होते हैं। परिवार परिष्कार का महान प्रयोजन पूरा करने के लिये घरों में धार्मिक वातावरण बनये रहने के लिये संस्कारों की धर्म प्रक्रिया शास्त्रकारों ने प्रचलित की है। जहाँ उसे श्रद्धा पूर्वक कार्यान्वित किया जाता है, वहाँ बाल, तरुण, वृद्ध नर-नारी सभी को सुसंस्कारी बनने का अवसर मिलता है। आश्रम के कर्तव्यों का पालन करते हुए राजा दशरथ बालकों के लिये समय-समय पर संस्कारों की व्यवस्था कराते हैं। गर्भ धारण के पूर्व से ही यज्ञीय संस्कारों का तारतम्य बनाया जाता है। जन्म के बाद क्रमशः अन्य संस्कार भी कराये जाते हैं—

नामकरन कर अवसर जानी।
भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी॥

"राजा ने जब देखा कि नामकरण संस्कार का समय आ गया, तब ज्ञानवान मुनि श्रीवशिष्ठ जी को बुलाया।"

संस्कार ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों से ही कराने चाहिये। बालक के सर्वतोमुखी विकास के लिए उसके अन्तःकरण पर उपयुक्त प्रभाव डालने तथा उसके पालकों, हितैषियों का ध्यान बाल-विकास के महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर खींचने के लिये यह संस्कार किया जाता है।

राम कथा में यह आदर्श बराबर निभाया जाता है। चारों भाई स्वनाम धन्य हैं। उनके नाम को कहीं बट्टा नहीं लगता। उनके स्नेही अभिभावक, गुरु, सभी स्वयं कष्ट सहकर भी उन्हें आदर्शनिष्ठ बनाने में योगदान देते हैं। दशरथ जी मरकर भी उन्हें विचलित नहीं करते। माँ कौशल्या अपने अधिकार को ताक में रखकर उन्हें आदर्शनिष्ठ बनने देती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हैं । राम जैसा लोकमंगल के लिये कटिबद्ध, लक्ष्मण जैसा सत्पुरुषार्थ का सहयोगी, भारत जैसा निस्पृह तेजस्वी चरित्र और शत्रुघ्न जैसा मूक कर्मठ साधक विश्व साहित्य में खोजने पर भी नहीं मिलेगा ।

नामकरण के बाद बच्चे के मस्तिष्क के विकास तथा भारतीय संस्कृति की प्रतीक शिखा स्थापना के लिये चूड़ाकर्म (मुण्डन) संस्कार किया जाता है । चारों भाइयों का संस्कार भी कराया गया—

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई ।
विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ॥

"तब गुरु वशिष्ठ ने पहुँचकर चूड़ाकर्म संस्कार सम्पन्न कराया । उसके पश्चात् ब्राह्मणों को दक्षिणा दी गयी ।"

माता-पिता के अतिरिक्त गुरु भी इस दिशा में सतर्क रहते थे । अपने शिष्यों को सही दिशा और प्रेरणा अपनी ओर से देते रहते थे ।

शिखा स्थापना का महत्व साधारण नहीं है । यह सांस्कृतिक प्रतीक-ध्वजा की स्थापना है । भारतीय संस्कृति महान है, उसका प्रतीक शरीर के उच्चतम स्थान पर स्थापित होता है । यह है शिखा-चोटी की संस्कृति अर्थात् श्रेष्ठतम संस्कृति । यह संस्कृति भारतीय कहलाती केवल इसलिये है कि उसको गढ़ा भारत में गया । अन्यथा वह मानव संस्कृति की श्रेष्ठतम प्रतिनिधि है । उसके प्रति आस्थावान व्यक्ति उसका प्रतीक धारण करता है । अस्तु मस्तिष्क के विचारों के समग्र विकास के प्रतीक इस संस्कार के साथ शिखा स्थापना द्वारा धारण करने वाले सेनाधिकारी जैसा गौरव पैदा करने का क्रम रखा जाता है ।

राम आदि भाइयों का यह संस्कार सार्थक रहा । सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना के लिये उन्होंने बड़ी से बड़ी बाजी लगायी । न वन जाने से कतराये, न राक्षसों से डरे और न राज के लोभ में पड़े । सांस्कृतिक ध्वजा के रक्षक वीर तेजस्वी सैनिक की भूमिका उन्होंने निभायी ।

इस संस्कार शृंखला में यज्ञोपवीत संस्कार बड़ा महत्वपूर्ण है । इसको दूसरा जन्म कहा जाता है । व्यक्ति मनुष्य शरीर के अनुरूप दिव्य जीवनयापन करने के व्रतों से स्वयं को बाँध लेता है । इस सन्दर्भ में माता-पिता, गुरु सभी सावधान रहते हैं—

भए कुमार जबहिं सब भ्राता ।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ॥

"जब चारों भाई बड़े हो गये तभी गुरु, माता और पिता ने उन सबका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया ।"

श्रीराम आदि चारों भाई इस प्रकार श्रेष्ठ संस्कारों के माध्यम से अपनी श्रेष्ठ प्रवृत्तियों और क्षमताओं को विकसित, पुष्ट करते हुए आदर्श जीवन की ओर अग्रसर होते चले । स्वयं को अनुशासन में बाँधा तो फिर उसमें कहीं ढील नहीं बरती । फलस्वरूप उन्हें उसका लाभ हर क्षेत्र में मिलता रहा । गुरु के अनुशासन में तत्परतापूर्वक विद्याध्ययन किया तो थोड़े समय में ही पारंगत हो गये—

गुरु गृह पढ़न गये रघुराई ।
अल्पकाल विद्या सब पाई ॥

उनकी साधना से प्रभावित होकर उनकी पात्रता के अनुरूप विश्वामित्र जी ने भी उन्हें बला और अतिबला जैसी दुर्लभ विद्यायें प्राप्त हो गयीं तथा उन्हें वे धारण कर सके । अनुशासनहीन असंयमी व्यक्ति को श्रेष्ठ विद्यायें दी नहीं जाती, दी जावें तो वे अनर्थ का कारण बन जाती हैं ।

अर्जुन इन्द्रियजयी थे । इन्द्रियों का उन्होंने अनुशासनबद्ध उपयोग करने की क्षमता अर्जित की । फलस्वरूप वे ब्रह्मास्त्र के पात्र समझे गये । गुरु द्रोण ने उन्हें वह दिया । अश्वत्थामा ने भी आग्रह किया । वे पात्र नहीं थे । पुत्र मोह के कारण वह विद्या उसे दे दी गयी तो वह अनर्थ और अपमान का कारण बनी । उत्तेजना में उसे अश्वत्थामा पाण्डवों के नाश के संकल्प से चला बैठे । अर्जुन ने उसे रोकने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा । प्रलय की स्थिति सामने आ गयी । ऋषियों ने मध्यस्थता की । इन्द्रियजयी अर्जुन तो उसे वापस ले सके पर अवश्वत्थामा को सबके सामने लज्जित होना पड़ा ।

राम आदि भाइयों ने यज्ञोपवीत से, श्रेष्ठ जीवन की मर्यादाओं से, अपने आपको बाँधकर रखा और ब्रह्मावर्चस के अधिकारी बने । उस पात्रता की दिशा देने वाले ऋषियों के प्रति सदा विनम्र तथा जिज्ञासु बने रहे । लंका विजय जैसी बड़ी सफलता में भी वे उस मर्यादा को भूले नहीं । लिखा है—

बामदेव वशिष्ठ मुनिनायक ।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह ।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥

अनुशासन स्वयं को भी पालना चाहिये तथा अपने साथी सहयोगी को भी सिखाना चाहिये । भगवान श्रीराम ने अपने सभी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सखाओं सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, जामवन्त, अंगद, हनुमान आदि को भी वशिष्ठ के चरण छूने की सीख दी ।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए ।
मुनि पद लागहू सकल सिखाए ॥

भगवान श्रीराम अपने परिजनों को सदाचार की मर्यादा में बँधा रखने के प्रति बहुत जागरूक रहते थे । राजसत्ता एवं जनसाधारण को मर्यादा बँधन में रखने का कार्य ब्रह्मतेज सम्पन्न पुरोहित करते थे । इसलिये वे श्रद्धा और सम्मान के पात्र समझे जाते थे ।

चित्रकूट में राम भरतजी से राज्य व्यवस्था के बारे में इस प्रसंग को भी उठाते हैं–

स कच्चिद्ब्राह्मणों विद्वान्धर्मनित्यो महाद्युति ।
इक्ष्वाकुलामुपाध्यायो यथावत्तात पूज्यते ॥

"क्या उस विद्वान् एवं महातेजस्वी ब्राह्मण का जो नित्य कार्यों में तत्पर रहता है और इक्ष्वाकुल का उपाध्याय है, यथावत् सत्कार किया जाता है ।"

मर्यादाओं के प्रति इतने जागरुक रहने के कारण ही वे श्रेष्ठतम शक्तियों को पाकर भी अमर्यादित नहीं हुए और मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये । मानवीय गरिमा में बाँधकर रखने वाले व्रत बन्ध-यज्ञोपवीत की सार्थकता श्रीराम और उनके भाइयों के जीवन में प्रत्यक्ष दिखाई देती है ।

यज्ञोपवीत के बाद विवाह संस्कार आता है । विवाह होना और बात है तथा विवाह संस्कार और बात है । आज विवाह समारोह भर होते दीखते हैं उनमें संस्कार की पवित्रता और गहराई पैदा ही नहीं होती । रामचरितमानस में विवाह श्रेष्ठ संस्कार रूप में होते दीखते हैं । वर-कन्या का चुनाव धन या रंग रूप के आधार पर नहीं होता । कुण्डली भी कहीं नहीं मिलाई जाती । वर-कन्या स्वयं को एक-दूसरे के अनुकूल सिद्ध करते हैं । पार्वती तप द्वारा शिवजी को जीत लेती हैं, तो राम को धनुष यज्ञ में अपने शौर्य-शक्ति का प्रमाण देने पर सीता की वरमाला मिलती है । दोनों पक्षों में स्नेह उमड़ता रहता है । विवाह का समारोह होता है, पर संस्कार का पूरा ध्यान दिया जाता है । शिव विवाह में देखे–

जस विवाह कै विधि श्रुति गायी ।
महामुनिन्ह सो सब करवायी ॥
गहि गिरीश कुश कन्या पानी ।
हरहि समर्पी जानि भवानी ॥

"विवाह को संस्कार रूप में मुनिजन प्रयासपूर्वक कराते हैं । कन्या को कुश पवित्रता एवं सादगी के संस्कार सहित उसके अनुरूप वर को सौपते हैं । संस्कार के अनुरूप क्रियायें एवं भावनायें प्रत्यक्ष दिखाई देती हैं ।"

श्रीराम के विवाह में भी वही स्थिति है । विवाह के पूर्व ही यज्ञीय वातावरण बनाया जाता है । स्वयंवर धनुष यज्ञ के रूप में होता है । विवाह के पूर्व भी यज्ञ किया जाता है । वाल्मीकि रामायण में भी उल्लेख है–

यज्ञस्यान्ते नरश्रेष्ठ विवाहमृषिसम्मतम् ।
यस्य तद्वचनं श्रुत्वा ऋषिमध्ये नराधिपः ॥

"हे नरश्रेष्ठ ! यज्ञ के अन्त में ऋषि सम्मत विवाह होगा । ऋषियों के बीच बैठे दशरथजी ने जनक की बात सुनी ।"

तुलसीकृत मानस में भी हवन का स्पष्ट उल्लेख मिलता है–

करि होम विधिवत गाँठ जोरी होन लागी भाँवरी।

"यज्ञ के बाद अन्य क्रम भी संस्कार की मार्यादा में अनुशासनबद्ध ऋषियों के निर्देशानुसार होते हैं ।"

बहुरि वशिष्ठ दीन्ह अनुशासन ।
वर दुलहिन बैठे एक आसन ॥

"विवाह संस्कार के समय वशिष्ठजी वर-कन्याओं को गृहस्थाश्रम के अनुशासन का संस्कार देते हैं । उन्हें एक आसन पर बिठाते हैं ।"

दोनों में एक नाव के सवार का भाव भरते हैं । संस्कार के माध्यम से जिनके अन्तःकरणों को पवित्र करके परस्पर जोड़ दिया गया ऐसे दम्पत्ति रूप में रामायण के पात्र जीवन भर गृहस्थाश्रम के श्रेष्ठ आदर्शों को जीवन में चरितार्थ करते दीखते हैं ।

गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर पूर्ण पारमार्थिक जीवन में प्रवेश करने का क्रम वानप्रस्थ जीवन से आरम्भ होता है । भारतीय संस्कृति का यही आदर्श इस देश को देव भूमि और विश्व गुरु का सम्मान दिलाये रहा है । निस्पृह तथा अनुभवी लोकसेवियों के रूप में वानप्रस्थ तप साधना द्वारा आत्मबल सम्पादित करते हुए देश एवं विदेश में वहाँ के निवासियों को श्रेष्ठ जीवन चर्या का शिक्षण, उद्बोधन तथा मार्ग दर्शन देते रहते थे । सद्गृहस्थ उसके लिये आतुर रहते थे कि कब पारिवारिक उत्तरदायित्व से मुक्ति पाकर विश्व परिवार के प्रति अपने उत्तरायित्वों को उठा लें । इसी महान लक्ष्य को सामने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रखकर स्वयंभू मनु अपने पुत्रों को जबरदस्ती राज्य सौंपकर ग्रहस्थ जीवन से निवृत्त होकर वानप्रस्थ में प्रवेश करते हैं–

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा ।
नारि समेत गवन वन कीन्हा ॥

"तब मनुजी ने अपने पुत्र को आग्रहपूर्वक राज्य सौंपकर स्वयं स्त्री समेत वन को गमन किया ।"

दशरथजी यही प्रयास करते हैं । दर्पण में देखते हैं–

श्रवण समीप भये सित केसा ।
मनहु जरठपन अस उपदेसा ॥

"सफेद बाल होते देखकर उन्हें बच्चों का उत्तरदायित्त्व सौंपकर वानप्रस्थ कर्तव्य निवाहने का संदेश सुनाई देता है । तदनुसार उन्होंने बड़े बेटे श्रीराम को युवराज घोषित करने की तैयारी आरम्भ कर दी ।"

इतनी आयु में जो मोहवश घर में ही घुसे रहते हैं, तप का मार्ग छोड़कर लोभ-मोह से ग्रसित रहते हैं, उनकी स्थिति पर क्षोभ, रोष, असंतोष व्यक्त करते हुए रामायण में कहा गया है–

वैखानस सोई सोचै जोगू ।
तप बिहाइ जेहि भावइ भोगू ॥

"वही वनप्रस्थ शोचनीय है, जिसको तपस्या छोड़ कर भोग विलास अच्छे लगते हैं ।"

इस तरह का वानप्रस्थ मानसकार की दृष्टि में निन्दनीय है । बहुत से लोग बच्चों के योग्य हो जाने पर उन्हें अपने उत्तरदायित्व तो सौंप देते हैं, पर स्वयं अगले चरण के लोक जागरण के अपने उत्तरदायित्त्वों को स्वीकार नहीं करते । शेष जीवन शौक-मौज अथवा भजन-पूजन के नाम पर आलस्य अवसाद में बिता देते हैं । इससे दोहरी हानि होती है । एक तो व्यक्ति का अपना विकास क्रम रुक जाता है, दूसरे समाज भी निस्पृह लोकसेवियों से वंचित रह जाता है । नाम मात्र के लिये वानप्रस्थ ले भी लिया जाय तो कोई लाभ नहीं । उससे तो ढोंग छल को ही बढ़ावा मिलता है । वानप्रस्थ जीवन के साथ जुड़ी सेवा-साधना तथा तपश्चर्या युक्त जीवन प्राणी को अंगीकार किया जाना आवश्यक है ।

सामान्य रूप से गृहस्थ के उत्तरदायित्व पूरे करने के बाद ही वानप्रस्थ लिया जाता है किन्तु यह कोई बन्धन नहीं है । आवश्यकता होने पर वे व्यक्ति जिनके पारिवारिक उत्तरदायित्व कम हैं वे भी निश्चित अवधि के लिये वानप्रस्थ ले सकते हैं और अवधि समाप्त होने पर पुनः गृहस्थ का पालन कर सकते हैं । तत्कालीन आवश्यकता को ध्यान में रखकर राम-लक्ष्मण ने भी १४ वर्ष के लिये वानप्रस्थ धारण किया था ।

ततो वखानसं मार्गमास्थितः सहलक्ष्मण ।
व्रतमादिष्टवान् राम सहायं गुहमब्रवीत् ॥

"तदनन्तर श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण वानप्रस्थ होकर और ब्रह्मचर्य ग्रहण कर अपने सहायक रूप गुह से बोले ।"

सामयिक रूप से वानप्रस्थ के उत्तरदायित्वों को सँभालने की व्यवस्था के आधार पर पूर्ण निवृत्त होने के पूर्व ही ग्रहस्थ उस जीवन की योग्यता कमा लेता था ।

भारतीय संस्कृति के अनुसार शरीर के साथ ही जीवन की समाप्ति नहीं हो जाती । इसलिये संस्कारों की यह शृंखला जीवन की समाप्ति के बाद भी चालू रहती थी । इस जीवन की समाप्ति अगले जीवन की भूमिका कहलाती हैं । अस्तु मृत्यु के बाद भी यह संस्कार प्रक्रिया चालू रखी जाती है । मृतात्मा को शान्ति मिले तथा अगला जीवन अधिक उज्ज्वल बन सके, इसके लिये मृतक संस्कार तथा मरणोत्तर संस्कार किया जाता है । बालि वध के बाद श्रीराम सुग्रीव को बालि का अंतिम संस्कार करने का आदेश देते हैं–

तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा ।
मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा ॥

"इसके पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव को आज्ञा दी और सुग्रीव ने विधान पूर्वक बाली का मृत्यु सम्बन्धी कर्म पूरा किया ।"

मृत्यु के बाद संस्कार का एक अंग श्राद्ध भी है । श्राद्ध का अर्थ होता हैं श्रद्धायुक्त आचरण । हर व्यक्ति अपने जीवन के उत्तरदायित्त्वों को पूरा करने के लिये साधन-सम्पत्ति जुटाता है । उनके पूरा होने पर वह उन्हें समाज हित के कार्यों में लगा दे यह मार्यादा है । यदि मरने के पूर्व व्यक्ति यह कार्य पूरा न कर सके तो उसके उत्तराधिकारी कुटुम्बी उसे श्रद्धा के नाम पर पूरा करते थे । इस प्रकार किसी के व्यक्तिगत उत्तरदायित्त्वों की उपेक्षा भी नहीं होने पाती थी और धन-सम्पत्ति का उपयोग समाज के उत्कर्ष के लिये भी होता रहता था । ऐसा करने से मृतक की श्रेष्ठ भावना का तथा उसके कुटुम्बियों की उसके प्रति निष्ठा का परिचय लोगों को मिलता था । भरतजी ने श्रद्धा के रूप में जो श्रेष्ठ प्रवृत्तियाँ अपनाईं, उनकी प्रशंसा करते हुए मानसकार लिखते हैं–

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पितु हित भरत कीन्ह जस करनी ।
सो मुख लाख जाय नहिं बरनी ॥

"पिता के हित को ध्यान में रखकर भरत ने जो कार्य किया लाखों मुखों से भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।"

मृत्यु के बाद शरीरगत मोह छूट जाने पर मृतात्मा को उचित-अनुचित स्पष्ट दिखने लगता है, अतः उसके द्वारा छोड़े गये साधन-सम्पत्ति का श्रेष्ठ उपयोग होते देखकर उसे शान्ति मिलती है ।

अपने उत्तरदायित्वों को पूराकर लेने के बाद बची हुई मृतक की सम्पत्ति को इसलिये लोक-मंगल के कामों में लगाने की व्यवस्था श्राद्ध के अन्तर्गत रही हैं । श्राद्ध द्वारा मृतात्मा को शान्ति-सद्गति मिलने की मान्यता के पीछे यही तथ्य है । वैसे मनुष्य की सद्गति उसके ही आचरण से होती है । वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्थावान व्यक्ति अपने जीवन को उसी आधार पर चलाते हुए लौकिक तथा पारलौकिक सद्गति के अधिकारी बनते हैं ।

इस प्रकार प्रेरक एवं प्रभावशाली ढंग से संस्कार आयोजनों का क्रम जिन परिवारों में चलता है उनमें रहने वाले सदस्यों पर श्रेष्ठ संस्कारों की छाप अगणित रूपों में पड़ती रहती है ।

परिवार में संस्कार युक्त वातावरण बनाने का दूसरा महत्वपूर्ण कार्यक्रम है उपासना का क्रम, आस्तिकता का उभार । रामचरितमानस में छोटे-बड़े सब नियमित उपासना करते हैं । उसके लिये प्रेरणा एवं शिक्षण देने का क्रम भी चलाया जाता है । बड़े परिजन गुरुजन स्वयं उपासना करते हुए उसके लिये प्रेरणा-प्रोत्साहन देते हैं । जनकपुरी में विश्वामित्र और राम-लक्ष्मणजी का क्रम देखें—

सुमन पाय मुनि पूजा कीन्हीं ।
पुनि असीस दुहू भाइन्ह दीन्हीं ॥

मुनि की प्रेरण से राम-लक्ष्मण भी उपासना में नियमित हैं—

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीन्हा ।
सबही सन्ध्यावंदनु कीन्हा ॥

रात्रि का प्रवेश होते ही मुनि ने आज्ञा दी तब सबने सन्ध्या वन्दन किया ।

सन्ध्यावन्दन भारतीय संस्कृति के हर अनुयायी के लिये अनिवार्य था । सन्ध्यावन्दन प्रकारान्तर से गायत्री साधना का ही नाम है । यह उपासना सभी निष्ठापूर्वक करते थे । शादी-विवाह में सामान्य रूप से उपासना आदि की उपेक्षा हो जाती है, पर नैष्ठिक उपासक चारों भाई अपने स्वयं के विवाहों में भी उपासना में शिथिलता नहीं आने देते । विवाह प्रकरण में ही जनकपुरी में चारों भाइयों की प्रातःकालीन चर्या का वर्णन तुलसीदास जी इस प्रकार करते हैं—

कीन्हि शौच सब सहज सुचि, सुरित पुनीत नहाइ ।
प्रातक्रिया करि तात पहि आए चारिउ भाइ ॥

स्वभाव से पवित्र चारों भाइयों ने शौचादि से निवृत्त होकर पवित्र सरयू में स्नान किया और प्रातः क्रिया (सन्ध्यावन्दन) कर वे पिता के पास आये ।

उपासना का संस्कार केवल लड़कों को ही दिया जाता हो सो बात नहीं, कन्याओं के प्रति भी वही जागरुकता थी । सीताजी की माता सुनयनाजी ने सीताजी के लिये नियमित उपासना का क्रम बनाया था । वे नित्य गौरी मन्दिर में सखियों सहित जाती थीं । पुष्प वाटिका में जब श्रीराम-लक्ष्मण जी गुरु के लिये फूल तोड़ने जाते हैं तो सीताजी भी पूजा के लिये वहाँ पहुँचती हैं ।

तेहि अवसर सीता तँह आई ।
गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥

"उसी समय सीताजी भी वहाँ आयीं । माता ने उन्हें गिरिजा जी की पूजा के लिये भेजा था ।"

पूजा किसी प्रकार की उपेक्षा से नहीं की जाती, प्रसन्नता से उमंगपूर्वक की जाती है । सीताजी की पूजा का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

सर समीप गिरिजा गृह सोहा ।
वरनि न जाय देखि मन मोहा ॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता ।
गई मुदित मन गौरि निकेता ॥

"सरोवर के पास गिरिजाजी का मन्दिर सुशोभित है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । उसे देखकर मन मोहित हो जाता है । सखियों सहित सीताजी ने सरोवर में स्नान किया तथा बड़े प्रसन्न मन से मन्दिर में पूजा करने गयीं ।

यह कुछ प्रमाण हुए । जनकपुरी में एवं अयोध्या में घर घर उपासना का वातावरण था, यही कारण था कि वहाँ ईश्वरीय चेतना का अवतरण हुआ । आज भी जिस सन्ध्यावन्दन को,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गायत्री उपासना को, भगवान स्वयं करते थे, उस सनातन उपासना को फिर घर-घर अपनाया जाय । घर के हर सदस्य को ५-१० मिनट ही सही पर भावनापूर्वक उपासना करने का अभ्यास कराया जाये ।

उपासना की तरह यज्ञ भी श्रेष्ठ संस्कार जगाने का महान आधार है उससे त्याग बलिदान एवं परमार्थ का वातावरण बनता है । आरोग्य और सहकारिता की वृद्धि होती है । रामायण में परिवारों में यज्ञीय वातावरण बनाने में उच्चस्तरीय प्रयास होते दीखते हैं । राम आदि भाइयों का जन्म यज्ञीय वातावरण में ही होता है । यज्ञीय वातावरण बनाने के लिये वशिष्ठजी तथा शृंगी ऋषि ने मिलकर पुत्रकामेष्टि यज्ञ कराया ।

शृंगी रिषिहि वसिष्ट बोलावा।
पुत्र काम शुभ जग्य करावा॥

"यज्ञीय सन्तति यज्ञीय जीवन क्रम ज्वलन्त उदाहरण बनकर सामने आई । चारों भाइयों के जीवन में यज्ञीय भावना का समावेश हर दृष्टि से दिखाई देता है ।"

उनके किशोर होते ही विश्वामित्रजी उन्हें यज्ञ रक्षा के लिये अपने साथ ले गये । राजा दशरथ ने भी मोह छोड़कर जन-कल्याण के लिये बच्चों को भेजकर यज्ञीय भावना का परिचय दिया । श्रीराम और लक्ष्मण जी ने ऋषियों को निर्भय होकर यज्ञ करने का अवसर दिया—

प्रात कहा मुनि सुनि रघुराई ।
निरभय जग्य करहु तुम जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी ।
आपु रहे मख की रखवारी ॥

यज्ञीय भावना जन-जन में विकसित होती रहे इसलिये उसकी उपेक्षा नहीं होने दी जाती । गुरु वशिष्ठजी तो यात्रा में भी यज्ञ की व्यवस्था रखकर चलते थे । चित्रकूट यात्रा के सम्बन्ध में उल्लेख है—

अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ ।
रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ ॥

परिवार में यज्ञीय क्रम शिथिल तो नहीं हुआ इस दिशा में भगवान राम चित्रकूट में भी चिन्तित हैं । भरतजी से पूछते हैं—

कच्चिदग्निष ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।
हुतं च हष्यिमाण च काले वेदयते सदा ॥

अग्नि होत्र के कार्य हेतु नियुक्त हवन की विधियों को संगोपांग जाने वाला, मतिमान और सरल स्वभाव पुरोहित हवनकाल उपस्थित होने पर तुमको सदा सूचना देता रहता है कि नहीं ?

स्पष्ट है कि भगवान राम परिवार में यज्ञीय वातावरण बनाये रखने के पूर्ण समर्थक थे । वन में भी राम, लक्ष्मण, जानकी यज्ञ का नियमित क्रम अपनाये रहते हैं । वर्णन है—

बट छाया वेदिका बनाई ।
सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥

सीताजी सुन्दर वेदी बनाती हैं । अपने यहाँ महिलायें यज्ञीय वातावरण बनाये रखने के लिये विशेष जागरूक रहती हैं । विधवत् यज्ञ न हो पाने पर भोजन तैयार होते ही चूल्हे में से थोड़े से अंगार निकाल कर भोजन के छोटे-छोटे पाँच ग्रासों का हवन गृहणियाँ करती थीं । इसे वलिवैश्व कहते हैं । यह परम्परा आज भी चलनी चाहिये । इससे भोजन प्रसाद बन जाता है । गीताकार तो इसे अनिवार्य मानते हैं । उनका मत है कि यज्ञ करके शेष अन्न ही ग्रहण किया जाना चाहिये । लिखा है—

यज्ञशिष्टामृत भुञ्जो, यान्ति धर्मं सनातनम् ।
ना या लोकोस्तु अयज्ञस्य, यान्ति कुतोन्य कुरुसुत्तम् ॥

अर्थात्-यज्ञ से बचा हुआ अन्न खाने वाले को सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है । हे अर्जुन ! यज्ञ रहित के लिये तो इस लोक का भी सुख नहीं मिलता, अन्य श्रेष्ठ लोकों की तो बात ही क्या है ?

अस्तु परिवार में वलिवैश्व के रूप में ही सही यज्ञीय वातावरण बनाया जाना चाहिये, जैसा कि रामायण काल में होता था ।

एक और श्रेष्ठ पारिवारिक परम्परा है— बड़ों के श्रद्धापूर्वक चरण स्पर्श । इससे छोटों में शालीनता, नम्रता का भाव बढ़ता है, बड़ों में उनके प्रति स्नेह बढ़ता है और आशीर्वाद सद्भावना का आदान-प्रदान होने लगता है । रामायण में यह परम्परा जीवित है ।

अयोध्या में श्रीराम की प्रातःचर्या का वर्णन करते हुए लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रातकाल उठकै रघुनाथा ।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा ॥

अन्य भाइयों का भी प्रातःकाल यही अभ्यास है । चित्रकूट में अत्रि आश्रम में भरत-शत्रुघ्न की प्रतिक्रिया का उल्लेख इस प्रकार है–

नित्य निवाह भरत दोऊ भाई ।
राम आदि गुरु आयसु पाई ॥

प्रातः स्नान, उपासना करके भरत, शत्रुघ्न, महर्षि अत्रि, गुरु वशिष्ठ एवं अग्रज श्रीराम को प्रणाम करके उनकी आज्ञा लेकर ही कार्यारम्भ करते हैं । भाइयों द्वारा ऋषियों, माँ को श्रद्धापूर्वक प्रणाम के अगणित प्रसंग रामायण में मिलते हैं । भाइयों का परस्पर यही क्रम चलता है । भाभी के प्रति भी वही व्यवहार है । चित्रकूट में सीताजी से मिलने पर–

सानुज भरत उमगि अनुरागा ।
धरिसिर सियपद पदम परागा ॥

''भरतजी भाई शत्रुघ्न सहित उमंग अनुराग से भरकर सीताजी को माथा टेककर प्रणाम करते हैं ।''

सीताजी भी बड़ों के प्रति यही मर्यादा पालती हैं । चित्रकूट का ही वर्णन है–

सीय आइ मुनिवर पग लागी ।
उचित असीस लई मन भाँगी ॥

''श्रद्धापूर्वक प्रणाम के बदले निश्चित रूप से उचित आशीर्वाद मिलता है । ऋषि पत्नियों, सास आदि के साथ भी यही होता है ।

बन्दि बन्दि पद सिय सबही के ।
आसिर वचन लहे प्रिय जी के ॥

इस प्रकार रामचरितमानस के पात्रों से प्रेरणा लेकर परिवारों में चरण वन्दन की परम्परा बढ़े तो स्नेह सद्भाव में इतनी वृद्धि हो सकती है कि व्यक्ति धन्य हो जावें । सहयोग सद्भाव से संवेदना जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ाने और क्लेश-कलह मिटाने का यह बड़ा सजीव नुस्खा है ।

परिवार में शुभ चिन्तन पैदा करने का एक बड़ा प्रभावकारी कार्यक्रम है कथाओं द्वारा उद्बोधन । परिवार के सदस्यों को सुरुचिपूर्ण कथा-कहानियाँ कहकर सरलतापूर्वक सुसंस्कारी, सदाचारी शिक्षा दी जा सकती है । समझादारों का कर्तव्य है कि परिजनों के उत्तम शिक्षण का एक आवश्यक अंग कथा-कहानियाँ कहने को मानें । मनोरंजन एवं विचार निर्माण का यह बहुत ही उपयोगी मार्ग है । विष्णु शर्मा ने पंच तन्त्र की पुस्तक राजकुमारों को विचारशील बनाने के लिये ही लिखी थी । राम परिवार में भी कथा-कहानियाँ सुनने और शास्त्र-पुराणों की चर्चा का बड़ा उत्साह था । वशिष्ठजी जैसे पुरोहित परिवारों में यह क्रम स्वयं ही चलाते हैं और उसे सुनने राजा दशरथ रानियों सहित बैठते हैं–

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा ।
सनुहिं महीस सहित रनिवासा ॥

''वशिष्ठजी धर्म के इतिहास कहा करते हैं और राजा दशरथ रनिवास सहित उन्हें सुनते हैं ।''

कथा कहने की कला का विकास किया जाये तो इस माध्यम से विषय भी सुगमता से समझाये जा सकते हैं । यह क्रम दर्शन से लेकर विज्ञान तक में सफल है । विश्वामित्रजी राम-लक्ष्मण को वैज्ञानिक जानकारी कथा माध्यम से ही कराते हैं ।

करि भोजन मुनिवर विज्ञानी ।
लगे कहन कछु कथा पुरानी ॥

''श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्र भोजन के बाद कुछ प्राचीन कथायें कहने लगे ।''

कथा माध्यम से श्रेष्ठ सिद्धान्तों को स्पष्ट करने में स्वयं रामचन्द्रजी भी कुशल थे । उन्होंने यह विद्या सीखी । लिखा है–

वेद पुराण सुनत मन लाई ।
आप कहहि अनुजन्ह समुझाई ॥

इसी अभ्यास का फल है कि वन में भी उनका समय श्रेष्ठ चर्चाओं में कटता है । वर्षा-शरद वर्णन, राम-लक्ष्मण-सीता, सन्त-असन्त प्रसंग जैसे प्रकरण इसी प्रकार की घरेलू वार्ता में उभरे हैं । जब समय मिलता है तभी वह क्रम चालू हो जाता है । पंचवटी में वे लक्ष्मण की जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए कहते हैं–

थोरेहि महँ सब कहऊ बुझाई।
सुनत तात मति मन चितलाई॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"हे तात ! मैं थोड़े ही में सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो।"

वक्ता विचारपूर्वक कहें और श्रोता ध्यान से सनें तभी कथा का लाभ होता है। राम-लक्ष्मण को कठिन विषय कथाओं द्वारा सहज समझाते रहते हैं—

ऐहि विधि गये कछुक दिन बीती।
कहत विराग ग्यान गुन नीति॥

"इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।"

सीता की खोज के समय भी समय मिलने पर वही क्रम चल पड़ता है।

कहत अनुज सन कथा अनेका।
भगति विरति नृप नीति विवेका॥

"श्रीराम जी छोटे भाई लक्ष्मणजी से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और ज्ञान की अनेकों कथायें कहते हैं।"

कथाओं की परिपाटी अयोध्या में घर-घर चलती है। भगवान के चरित्रों की कथा कहकर परिवारों में शिक्षण एवं प्रेरणाओं के संचार का क्रम हर व्यक्ति चलाता है। अयोध्या के वर्णन में तुलसीदास जी लिखते हैं—

घर घर नर रघुपति गुन गावहिं।
बैठ परस्पर इहई सिसावहिं॥

"लोग घर-घर भगवान राम की कथायें कहते हैं तथा उन्हीं पर चलने की सीख एक-दूसरे को देते रहते हैं।" और भी—

सबके गृह गृह होहिं पुराना।
रामचरित पावन विधि नाना॥

आज भी इस विद्या को घर-घर चलाने की आवश्यकता है। परिवार के सदस्य निरर्थक चर्चाओं से बचते हुए, श्रेष्ठ चिन्तन में प्रवृत्त हो सकते हैं। रात्रि को थोड़ी देर सभी सदस्य बैठे, परस्पर कुशल पूछने, समाचार एवं प्रसंगों के माध्यम से ज्ञान तथा आत्मीयता के विस्तार के साथ मनोरंजन का लाभ भी पा सकते हैं।

परिवार में सुसंस्कारिता का वातावरण बनाने के यह कार्यक्रम (संस्कारों का क्रम, उपासना, यज्ञ, वलिवैश्व, प्रणाम, अभिनन्दन एवं कथा-वार्ता) जिन घरों में स्थान पायेंगे, वहीं रामराज्य जैसा स्वर्गीय वातावरण पैदा कर देंगे।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनीति के विरुद्ध संघर्ष

व्यक्तिगत उन्नति, पारिवारिक सुव्यवथा और सामाजिक उत्कर्ष की सत्प्रवृत्तियों को अपनाना, उनका विकास करना एवं उन्हें प्रेरणा प्रोत्साहन देना अत्यन्त आवश्यक है । इसके साथ यह भी आवश्यक है कि अनैतिक, अवांछनीय दुष्प्रवृत्तियों को हटाया-मिटाया जाये और जहाँ कहीं भी यह दिखाई दें उनका प्रतिरोध किया जाय । इसके लिये परिस्थितियों के अनुरूप असहयोग, विरोध, प्रतिरोध, एवं संघर्ष की नीति अपनाई जानी चाहिये ।

लोग समझते हैं कि महानता का अर्थ सीधा-सादा नर्म और दयालु होना है । यह सोचना एकांगी है । नम्रता, दयालुता, सौम्यता आदि बड़े उपयोगी और महत्वपूर्ण गुण हैं । किन्तु इसके साथ ही शौर्य, साहस और दृढ़ता की गणना भी गुणों में ही होती है । नम्रता और मिठास सभी जगह कारगर नहीं हो जातीं । जब कोई व्यक्ति अहंकार या भ्रान्तिवश नम्रता को हीनता मानने लगे, उसके गलत लाभ उठाने का प्रयास करे तो भी मनुष्य को थोड़ा उग्र रूप भी बनाना पड़ता है । शालीनता की रक्षा तो वैसे भी की जा सकती है । किन्तु शब्दों और व्यवहार में थोड़ी कड़ाई भी लानी पड़ती है ।

रामचरितमानस में धनुष यज्ञ प्रकरण में श्रीपरशुरामजी के आने पर कुछ ऐसी ही स्थिति आ जाती है । परशुरामजी अचानक उत्तेजित हो जाते हैं, लक्ष्मण जी उनकी उत्तेजना को अनुचित मानकर उन्हें रोकने का प्रयास करते हैं । वे लक्ष्मण को डरा-धमका कर चुप करना चाहते हैं, किन्तु लक्ष्मण जी पर कुछ प्रभाव नहीं होता । श्रीराम नम्रतापूर्वक उन्हें समझाने का प्रयास करने लगे, तो परशुरामजी लक्ष्मण का रोष श्रीराम पर ही उतारने लगे । तब श्रीराम ने यह अनुभव किया कि एक ही नीति हर जगह चलाना उचित नहीं । वे कहते हैं—

गुनह लखन कर हम पर रोसू ।
कतहु सुधाइहु ते बड़ दोसू ॥

"दोष तो लक्ष्मण का है और परशुरामजी क्रोध मेरे ऊपर दिखा रहे हैं । अधिक सरलता भी कभी-कभी गलत सिद्ध होती है ।"

आशय यह है कि शालीनता और नम्रता मनुष्य के अनिवार्य गुण हैं, किन्तु शौर्य और प्रखरता भी तो गुण ही हैं । समुचित स्थल पर समुचित गुणों का प्रयोग उचित होता है । शालीनतापूर्वक ही सही पर दृढ़ता के साथ अपने पक्ष को रखना भी आवश्यक होता है । अन्यथा सामने वाला भ्रम में पड़ा रहता है । यही श्रीराम और परशुराम के बीच हो रहा था । रामचन्द्रजी उन्हें सन्त ब्राह्मण के नाते सम्मान दे रहे थे और वे उसे अपना तिरस्कार समझ कर क्रोधित ही होते जा रहे थे । तब श्रीराम को उनका भ्रम दूर करने के लिये शालीनतापूर्वक ही सही पर तेजस्वी ढंग से प्रतिवाद करना पड़ा । वे बोले—

जो हम निंदरहि विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भय वस नावहिं माथ ॥

"हे भृगुनाथ ! सच बात तो यह है कि यदि हम ब्राह्मण कहकर भी आपका अपमान करें, तो दुनिया में ऐसा कौन-सा योद्धा है जिसके आगे भयभीत होकर हम मस्तक झुकायें ।"

इस विवेकयुक्त शालीनता भरे तेजस्वी प्रतिपादन से परशुरामजी कुछ सोचने को बाध्य हुए । उन्होंने उनकी परीक्षा अपना धनुष देकर की, और संतुष्ट होकर आशीर्वाद देकर चले गये । इस प्रकार के प्रसंगों में व्यक्ति को अपने प्रखर स्वरूप को भी उभारना पड़ता है ।

उपर्युक्त उदाहरण सज्जनता की भाषा न समझने वाले लोगों के भ्रम निवारण का है । इससे भिन्न कई अवसर ऐसे भी आते हैं, जब मनुष्य को सीधे प्रतिकार के लिये खड़ा होना पड़ता है । समाज में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो सौम्यता की, सज्जनता की भाषा समझते ही नहीं । जब तक उन्हें सशक्त प्रतिरोध से पाला न पड़े वे अपने स्वार्थपूर्ण अनैतिक कार्यों को छोड़ना ही नहीं चाहते और यदि उन्हें रोका न जाय तो समाज के उत्कर्ष के लिये किये जाने वाले कार्यों को या तो चलने ही नहीं देते या फिर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने लगते हैं । ऐसे दुष्ट तत्वों को दण्ड देना हर समाज निष्ठ का कर्तव्य हो जाता है । उन्हें भाग्य भरोसे नहीं छोड़ देना चाहिये । भाग्य का लिखा ही होगा ऐसा सोचना वस्तुतः कायरता है, सज्जनता नहीं । लंका विजय के लिये सेतु बन्ध से पूर्व समुद्र पार करने का उपाय खोजा जाता है । दैव को मंजूर होगा तो समुद्र मार्ग दे देगा, यह बात उठते ही लक्ष्मणजी उत्तेजित हो उठे । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कायर मन कहु एक अधारा ।
दैव दैव आलसी पुकारा ॥

"यह दैव तो कायर के मन को तसल्ली देने का उपाय है । आलसी लोग दैव-दैव पुकारा करते हैं ।"

संस्कृति की रक्षा के लिये किये जाने वाले अभियान में जो बाधा पहुँचाये, मार्ग न दे, उसे क्षमा नहीं किया जाना चाहिये, यह लक्ष्मण का भाव था । बाद में हुआ भी यही । श्रीराम ने पहले सज्जनोचित उपाय किया । यह चाहा कि श्रेष्ठ कार्य के लिये समुद्र भी सहयोग करे । किन्तु जब उसने जड़ता दिखाई, तीन दिन तक कोई प्रतिक्रिया न हुई तो उन्होंने अपना रौद्र रूप प्रकट किया । जो अपनी जड़ता के कारण औचित्य का मूल्य न समझे उन्हें भय दिखाकर काबू में लाना उचित है ।

विनय न मानत जलधि जड़, गये तीन दिन बीति ।
बोले राम सकोप तब, भय बिन होइ न प्रीति ॥

"इस प्रकार तीन दिन बीत गये, परन्तु जड़ समुद्र ने विनय नहीं मानी । तब तो श्रीराम जी क्रोध के साथ बोले-बिना भय के प्रेम नहीं होता है ।"

जो विनय को दुर्बलता समझे उसे शक्ति का परिचय देना ही चाहिये । श्रीराम समुद्र को उसकी दुष्टता का दण्ड देने के लिये तत्पर हो गये । वे लक्ष्मण जी से बोले–

लछिमनु बान सरासन आनू ।
सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥

"हे लक्ष्मण! धनुष बाण लाओ । मैं अग्नि बाण से समुद्र को सोख डालूँगा ।"

किसी को मारना या सताना अच्छी बात नहीं । किन्तु जिनके कारण अनेकों को पीड़ा पहुँचती हो, उन्हें दण्ड देना नष्ट कर देना उचित है, न्याय संगत है । भगवान के जन्म उद्देश्य के साथ भी ऐसे दुष्टों-आसुरों के वध का कार्य भी जुड़ा है । राम जन्म के उद्देश्य के सम्बन्ध में मानस में लिखा है–

असुर मारि थापहिं सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु ।
जग बिस्तारहिं बिषद जस, राम जन्म करि हेतु ॥

"अवतारी पुरुष राक्षसों को मारकर देवत्व की स्थापना करते हैं, अपने सनातन पवित्र यश आचरण का प्रकाश फैलाते हैं । यही भगवान राम के जन्म का उद्देश्य कहा गया है ।"

अवतारी पुरुषों की योजना इस तरह से चलती है जैसे कोई पूर्व नियोजित हो । इस योजना के अन्तर्गत जो भी बाधक बनकर आते हैं, उन सबका सफाया ही होता जाता है । इस नीति में अवतारी पुरुष अपनी मर्यादा और गौरव को बनाये रखते हैं । अपनी ओर से ऐसे अनैतिक तत्वों को पहले सावधान करते हैं । पहले शिक्षा, उपदेश से स्नेहपूर्वक समझाते हैं । लेकिन इस तरह से भी कोई दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो फिर जैसे को तैसा के अनुरूप दण्ड का प्रयोग किया जाता है । यह दण्ड प्राणदण्ड भी हो सकता है । अपने बाण से राम ने बालि को मारा था । मरणासन्न बालि के प्रश्न का उत्तर देते हुए श्रीराम कहते हैं–

नहिं धर्म विरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।
दण्डानन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥

"हे हरियूथप ! धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले और लोक व्यवहार की मर्यादा के विरुद्ध चलने वाले को मारने के सिवाय मुझे और दण्ड नहीं दीख पड़ता ।"

इस प्रकार कठोर दण्ड भगवान उन्हें ही देना चाहते हैं जिनका जीवन किसी बड़े वर्ग के लिये सिर दर्द बन रहा हो । रावण वध के समय वे अपने यही भाव प्रकट करते हुए कहते हैं–

निरुद्विग्निस्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ।
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम ॥

"तेरे मर जाने से तीनों लोकों के देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, सर्प और राक्षस निर्भय हो जायेंगे ।"

निश्चित रूप से अपनी विकृत महत्वाकांक्षाओं के लिये लोगों को सताने, दबा कर रखने वालों से समाज की बेहिसाब हानि होती है । उनमें से कुछ तो समझाने या बल प्रयोग करने से वह निकृष्ट मार्ग छोड़ देते हैं । कुछ लोग जो नहीं मानते उन्हें नष्ट ही करना पड़ता है । श्रीराम इस कार्य को किशोरावस्था से ही हाथ में ले लेते हैं । विश्वामित्रजी दशरथजी से इन्हें इसी कार्य के लिये आग्रहपूर्वक ले आये थे । उनने सत्रयोजनों में लगे हुए मुनियों को निर्भय करने का उत्तरदायित्त्व अपने कन्धों पर संभाला । विश्वामित्रजी के साथ असुरों से यज्ञ की रक्षा करने वे निकल पड़े । उस प्रसंग पर तुलसीदासजी उमंग भरी टिप्पणी करते हैं–

पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन ।
कृपासिन्धु मति धीर, अखिल विश्व कारन करन ॥

सत्कर्मों में सहयोग देना उनकी सुरक्षा व्यवस्था के लिये कटिबद्ध रहना और जो उन सर्व हितकारी कार्यों में विघ्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपस्थित करते हैं, उनसे निपटने के लिये बड़े से बड़ा खतरा उठाकर भी संघर्ष रत रहना प्रत्येक शक्तिशाली व्यक्ति का कर्तव्य है। राम ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए उसी पुनीत कर्तव्य का पालन किया—

प्रात कहेउ मुनि सन रघुराई ।
निर्भय यज्ञ करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि झारी ।
आपु रहे मख की रखवारी ॥

राक्षस यज्ञ विध्वंश के लिये आये भी। भगवान राम ने पहले बिना फल का वाण मारकर उन्हें अपनी शक्ति का परिचय देते हुए सावधान किया। फिर भी वे न चेते तो उनका संहार कर दिया।

यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि देवत्व की स्थापना के प्रयास के साथ असुरत्व के उन्मूलन के हेतु संघर्ष भी करना पड़ता है। उसके लिये साहस, शौर्य, सूझबूझ एवं उचित नीति आदि की आवश्यकता होती है, उन्हें व्यक्ति समझें और अपनायें तभी सफलता मिल सकती है। भगवान श्रीराम के जीवन में वे सभी बातें हैं, जिनमें समयानुसार सफल संघर्ष की प्रेरणा और विधि पाई जाती है। इसीलिये मानसकार ने राम कथा के महत्व के प्रकरण में कहा है—

समर विजय रघुवीर के, चरित जे सुनहि सुजान ।
विजय विवेक विभूति नित, तिनहिं देहि भगवान ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि "श्रीराम द्वारा संग्राम विजय के चरित्र जो समझदार व्यक्ति सुनेंगे, भगवान उन्हें सदैव विजय, विवेक और विभूतियाँ देंगे।"

सुनने पर समझाकर व्यक्तियों को ही विजय आदि मिलने की बात सोद्देश्य कही गयी है। समझदार व्यक्ति जो चरित्र सुनता है उसका निष्कर्ष निकालकर उसे अपने जीवन में अपनाता भी है। ऐसा ही व्यक्ति सुनने का लाभ पा सकता है। समाज में संघर्ष की आवश्यकता, उसकी मर्यादा और उसकी विधि न समझने से ही गुणवान व्यक्ति भी असफल होते हैं। अस्तु राम चरित्र से यह प्रेरणा लेनी ही चाहिये।

श्रीराम ने अनीति को कभी सहन नहीं किया, पीड़ितों को देखकर उनकी करुणा उभरती है तथा वह दुष्टों के प्रति रोष के रूप में बदल दी जाती है। वे प्रबल प्रतिकार के लिये तैयार हो जाते हैं। वन में ऋषियों की हड्डियों का ढेर देखकर उनकी प्रतिक्रिया यों प्रकट हुई—

निसिचर हीन करऊ महि, भुज उठाय प्रन कीन्ह ।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥

"श्री रामचन्द्रजी ने हाथ उठाकर प्रतिज्ञा की कि धरती को राक्षसों से रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियों के आश्रमों में जा जाकर उनको सुख दिया।"

करुणा और शौर्यपूर्ण प्रतिकार का सुन्दर समन्वय यहाँ देखने को मिलता है। राक्षसों के प्रति मन में तीव्र रोष है, किन्तु ऋषियों के साथ वह करुणा और स्नेह का व्यवहार करते हुए उन्हें सुख पहुँचाते हैं।

वास्तव में सत्पुरुषों का शौर्य भी स्नेह एवं करुणा पर टिका होता है। तभी वे उसका श्रेष्ठ उपयोग कर पाते हैं। यदि शौर्य का आधार द्वेष या स्वार्थ हो तो वह निकृष्ट प्रयोजन में लगने लगता है।

भगवान राम ने अपनी करुणा का ठीक-ठीक प्रयोग किया। वे सत्पुरुषों को दमन से बचाने के लिये तनकर खड़े हो गये। ऐसे अवसरों पर कई बार अपने समर्थक भी आत्मरक्षा के नाम पर झमेले से दूर रहने की सलाह देने लगते हैं। तब कई व्यक्ति निर्णय नहीं कर पाते कि क्या करें ? श्रीराम के सामने भी ऐसी समस्या आ खड़ी हुई थी। वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग है। सीताजी स्वयं एक वीर महिला थीं। सामान्य चर्चा के बीच उन्होंने श्रीराम को क्षत्रि धर्म का पालन पूरी दृढ़ता के साथ करने की सलाह दी थी किन्तु जब राक्षसों से सीधे संघर्ष का मौका आया तो वे ही उन्हें इस प्रकार के झंझट से बचने की सलाह मोहवश देने लगीं। किन्तु श्रीराम विवेक सिद्ध पुरुष थे, उन्होंने उस आग्रह को महत्व नहीं दिया बल्कि सीताजी के पूर्वोक्त वाक्यों का ही हवाला देकर उन्हें शान्त कर दिया। वे बोले—

किन्तु वक्ष्याम्याहं देवि त्वयैवोकमिदं बच ।
क्षत्रियैर्धार्यते चापो नर्त शब्दो भवेदिति ॥

"हे देवि ! तुम्हीं ने तो हमसे कहा था कि क्षत्रिय धनुष इसलिये धारण करते हैं कि किसी दुखिया का आर्त शब्द सुनाई न दे। अर्थात् कोई निर्बल सताया न जाने पाये।"

श्रीराम श्रेष्ठ प्रयोजन के लिये संघर्ष से न डरे न रुके। उनमें करुणा थी तो शौर्य भी था। उसका भी उन्होंने श्रेष्ठतम उपयोग बड़े शानदार ढंग से किया है। अपनी सामर्थ्य और शौर्य का सार्थक प्रयोग श्रीराम से सीखें। किन्तु श्रीरामचन्द्रजी निरीह पशुओं का नहीं खोज-खोजकर पशु प्रवृत्तियों के नराधम राक्षसों का शिकार करते हैं। खर-दूषण के दूत जब उनके पास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पहुचते हैं और बिना युद्ध किये समझौते का प्रस्ताव रखते हैं तो श्रीराम का ओजपूर्ण स्वर फूट पड़ता है–

हम क्षत्रिय मृगया वन करहीं ।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥

"हम क्षत्रिय हैं, वन में शिकार करते हैं और तुम्हारे समान दुषट पशुओं को तो खोजते ही फिरते हैं ।"

अनीति के साथ किसी प्रकार के समझोते का यहाँ प्रश्न नहीं, उन्हें तो खोज-खोजकर समाप्त करने का संकल्प है । बहुधा लोग प्रबल प्रतिद्वन्द्वी को देखकर डर जाते हैं । वह हीन भावना श्रीराम को स्पर्श भी नहीं करती । वे अनीति का प्रतिरोध करना अपना कर्तव्य मानते हैं । उसके लिये भंयकर खतरा उठाने को भी तैयार रहते हैं । दूतों से वे अपना मत प्रकट करते हुए आगे कहते हैं–

रिपु बलवन्त देखि नहिं डरहीं ।
एक बार कालहु सन लरहीं ॥

"श्रीराम ने कहा हम ताकेतवर शत्रु को देखकर नहीं डरते है । एक बार मृत्यु भी आ जाय तो उससे लड़ सकते हैं ।"

उन्हें अपने पौरुष पर विश्वास है तथा अपने कर्तव्य के प्रति गौरव का बोध भी । सत्पुरुषों के पोषण और दुष्टों को दण्ड देने के अपने संकल्प को वे उनके सामने रखते हुए उन्हें अच्छी तरह फटकार देते हैं ; उनके कथन अथवा व्यवहार में कहीं जरा भी कमजोरी नहीं झलकती–

यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक ।
मुनि पालक खल सालक बालक ॥

"यद्यपि हम मनुष्य है, परन्तु राक्षस कुल का विनाश करने वाले और मुनियों की रक्षा करने वाले हैं । हम बच्चे हैं, परन्तु दुष्टों को सजा देने वाले हैं ।"

इसका यह अर्थ नहीं कि श्रीराम को लड़ने का बड़ा शौक था और वे अकारण ही लोगों से उलझते फिरते हों । उनका उद्देश्य सत्प्रवृत्तियों की स्थापना तथा सत्पुरुषों का पोषण है । कोई उसमें बाधक न हो यही वे चाहते हैं । शस्त्र तो वे उस स्थिति में उठाते हैं जब अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता अन्यथा उनका प्रयास यही रहता है कि शत्रु पक्ष का भी अहित न हो, अपना उद्देश्य भी पूरा हो जाय । समुद्र के साथ भी उन्होंने यही ढंग अपनाया और रावण के साथी वही किया । समुद्र पार कर अपनी शक्ति का परिचय देने के बाद उन्होंने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा और कहा–

काज हमार तासु हित होई ।
रिपु सन कहेहु बतकही सोई ॥

"हे अंगद ! जिससे हमारा कार्य और उसका हित हो तुम शत्रु से वही बातचीत करना ।"

यदि अपने उद्देश्य में शत्रु भी बाधा नहीं पहुँचाता तो उसका भी अनिष्ट चाहना उचित नहीं है । किन्तु यदि अपना सगा व्यक्ति भी आदर्श में बाधक बनता है तो उसका प्रतिरोध किया जाना भी उचित ही है । श्रीराम को वनवास देकर भरत को राज्य दिलाने की चाल कैकेयी ने चली थी । किन्तु भरत ने इसका समर्थन नहीं किया । उन्होंने अपनी खुली असहमति प्रकट की । माता अपने स्थान पर सम्माननीय है और रहे किन्तु यदि वही माता अनीति करने के लिये आग्रह करे यह जरा भी सहन नहीं करना चाहिये । वे क्षुब्ध होकर कैकेयी से कह उठते हैं–

जी हसि सो हसि मुह मसि लाई ।
आखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

"तू जो भी हो मुँह में कालिख लगाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ । मैं तेरा मुँह देखना भी पसन्द नहीं करता ।"

तुलसीदास ने बड़ों की मर्यादा रखने का विशेष ध्यान रखा है । फिर भरत के मुख से उन्होंने कैकेयी के प्रति कटु वचन कहलाये । महर्षि वाल्मीकि को भी यह आवश्यक लगा । वाल्मीकि रामायण में भरत माँ की दुष्टता भरी इच्छा पूरी न होने की स्पष्ट घोषणा करते हैं–

न तु कामं करष्यामि तवाहं पापनिश्चये ।
त्वया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम ॥

"हे पापिन ! याद रख, चाहे जो कुछ हो मैं तेरे साध कभी पूरी न करूँगा । क्योंकि तूने मेरे प्राण लेने वाले प्रपञ्च का सूत्रपात किया है ।"

बड़ों का सम्मान आवश्यक भी है और उचित भी । किन्तु बड़प्पन का उपयोग जब आदर्शों से गिराने के लिये किया जाय तो उसकी उपेक्षा ही नहीं भर्त्सना भी की जानी चाहिये । बड़ों का काम सन्मार्ग की प्रेरणा देना है । उससे विपरीत चलते ही वे अपना बड़प्पन खो देते हैं । ऐसे बुजुर्गों से पाला पड़े तो भरत जैसा ही क्रम अपनाना उचित है । ऐसा करना किसी प्रकार अहितकर नहीं होता बल्कि हितकारी ही होता है । इस संदर्भ में सन्त तुलसीदास जी का यह पद बहुत प्रसिद्ध है–

पिता तज्यो प्रहलाद, विभीषण बन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यों कन्त ब्रजवनितन, भे मुद मंगलकारी ॥

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता, भाई,माता, गुरु, पति आदि सभी सम्मान के पात्र होते हैं तथा उनकी आज्ञा माननी चाहिये । पर जब वे उल्टे अनीति के रास्ते पर चलने का आग्रह करें या किसी श्रेष्ठ कार्य से रोकें तो उनकी उपेक्षा की जा सकती है । यदि यह कार्य विवेकपूर्वक किया जाय तो प्रारम्भ में ही अटपटा लगता है, बाद में सभी उसकी सराहना करने लगते हैं । भरत के साथ भी ऐसा ही होता है । वे माँ से ही नहीं कहते गुरु वशिष्ठ सहित सारे मन्त्रियों और सभासदों को भी उनका यही उत्तर रहता है ।

राजा दशरथ द्वारा कैकेयी को दिये गये वचनों को ध्यान में रखकर वे सब सिंहासन पर बैठने को उचित बतलाते हुए भरत से आग्रह करते हैं किन्तु भरत अपना मत दूसरे ही ढंग से प्रस्तुत करते हैं । वे कहते हैं कि राजा दशरथ और कैकेयी से जो भूलें हुई हैं, उस परम्परा को आगे न बढ़ाना ही उचित है । वे उस प्रसंग को छोड़कर आदर्श को ध्यान में रखकर हितकारी सलाह की माँग उन सब से करते हैं—

तुम्ह तौ देहु सरल सिख सोई ।
जो आचरत मोर भल होई ॥

"आप लोग तो मुझे वही सरल शिक्षा दीजिये, जिसके अनुसार आचरण करने से मेरी भलाई हो ।"

सहयोग और समर्थन व्यक्ति को नहीं सिद्धान्त को दिया जाना चाहिये, यह भरत ने सिद्ध कर दिया । उनका यह कार्य उचित ही नहीं, अति प्रशंसनीय माना गया ।

परिस्थितियाँ कभी ऐसी भी होती हैं कि औचित्य के लिये अपने से बड़ों का खुलकर विरोध भी करना पड़ता है । रावण राम से लड़ने को तैयार है, जबकि उसका पक्ष गलत है । सभासद उसी की हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं । तब रावण का पुत्र प्रहस्त आगे आकर कहता है—

सबके वचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोर ।
नीति विरोध न करिअ प्रभु, मन्त्रन्हि मति अति थोर ॥
कहहिं सचिव सब ठकुर सुहाती ।
नाथ न पूर आव एहि भांती ॥

"सबकी बात सुनकर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा हे नाथ ! आप नीति का विरोध न करें । इन मन्त्रियों में बुद्धि कम है । ये सलाहकार धूर्त हैं और खुशामद की बातें कर रहे हैं । इस प्रकार से काम नहीं बन सकता ।"

प्रहस्त ने शालीनता से किन्तु दृढ़तापूर्वक कह दिया कि ये मन्त्री और सलाहकार मन्द बुद्धि और दुष्ट हैं, इनकी सलाह न मानें । राम की सेना समुद्र लाँघकर इस पार आ चुकी थी, पर रावण के मन्त्री लोग कह रहे थे अरे ! वानरों की क्या गिनती, हम तो उन्हें यों ही खा जायेंगे । प्रहस्त ने इसे खुशामदी और मूर्खतापूर्ण उक्ति बतलाया और कहा कि जब हनुमान अकेले लंका तहस-नहस कर गये, तब किसी ने उन्हें क्यों न खा डाला ? शत्रु बल को देखकर भी डींग हाँकना गलत है । अपना अनुचित हठ छोड़ना चाहिये ।

किन्तु रावण ने उसकी सलाह नहीं मानी । तब वह सभा छोड़कर चला गया और पुनः स्पष्ट शब्दों में सावधान करता गया—

हित मत तोहि न लागत कैसे ।
काल बिबस कहँ भेसज जैसे ॥

"तुम्हें हित की सलाह अच्छी नहीं लग रही है, यह वैसी स्थिति है, जैसे मरणासन्न रोगी दवा को अरुचिकर कहकर त्याग देता है ।"

अपना कोई निकट का व्यक्ति गलत कार्य करे तो उसे न रोकना उसके साथ शत्रुता करने जैसा ही है । वह बुरा माने तो भी भयवश मौन रहना ठीक नहीं । पत्नी को पति की अनुगामिनी कहा गया है । किन्तु पति भूल करे तो पत्नी को चाहिये कि उसका विरोध करे, मन्दोदरी भी यही कहती है । रावण को वह बार-बार समझाती है, अनीति छोड़कर नीति के मार्ग पर आने का आग्रह करती है । फिर भी वह नहीं मानता तो उसे कड़े शब्दों में सावधान करती हुई कहती है—

निकट काल जेहि आवत साईं ।
तेहि भ्रम होहि तुम्हारिहि नाईं ॥

"हे स्वामी ! जिसका काल समीप आ जाता है, उसे आपकी ही तरह भ्रम होने लगता है ।"

उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि तुम्हारे मरने के लक्षण हैं । पत्नी के नाते उसका यह प्रसंग सर्वथा उचित ही कहा जायेगा ।

बात किसी हद तक भी पहुँच गयी हो, किन्तु जब उसमें अनौचित्य दीखे तो उसे मान-अपमान, प्रतिष्ठा आदि की आड़ में चलने न देकर, उसे हर कीमत पर ठीक करने का प्रयास करना उचित ही है । पार्वती विवाह प्रसंग में मैना का यही रूप देखने को मिलता है । नारदजी ने उमा के लिये शिवजी को उपयुक्त वर बतलाया । उसके लिये तप भी कराया गया । वह सिद्ध भी हुआ । बारात द्वार पर आ पहुँची किन्तु मैना को लगा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि यह वर मेरी कन्या के अनुरूप नहीं है । बस वे सबकी अवज्ञा करके प्रबल प्रतिरोध के लिये तैयार हो गयीं । अनुपयुक्त वर से कन्या का विवाह किसी भी शर्त पर न होने देने की घोषणा कर दी गयी, वे पार्वती से बोली–

तुम्ह सहित गिरि ते गिरौं, पावक जरौं जलनिधि महु परौं ।
घर जाउ अपजसु होउ जग, जीवत बिबाह न हौं करौं ॥

"मैं तुम्हारे सहित पहाड़ पर से कूद जाऊँ, अग्नि में जल जाऊँ, समुद्र में डूब जाऊँ, घर द्वार नष्ट हो जाय और संसार में अपयश हो जाय पर अपने जीवित रहते यह अनुचित सम्बन्ध कदापि न होने दूँगी ।"

जब उन्हें विश्वास हो गया कि शिवजी सब प्रकार से उमा के योग्य हैं, तभी अगले चरण बढ़ने दिये । ऐसा विवेक पूर्ण प्रतिरोध करने की क्षमतायें जाग पड़ें तो बेटियों के साथ होने वाले अत्याचारों से लेकर सामाजिक अनाचार समाप्त होते देर न लगे ।

नीति पक्ष के समर्थन में प्राणों की बाजी लगाकर भी अनीति का मुकाबला करने का आदर्श रामायण के पात्रों में मिलता हैं । भरत सेना सहित चित्रकूट जा रहे हैं । इसमें निषाद को उनकी दुर्भावना का संदेह हुआ । बस, भरत की चतुरंगिनी सेना की परवाह न करके वह उनसे खुले संघर्ष के लिये तैयार हो गया । जीते जी उन्हें गलत उद्देश्य से आगे न बढ़ने देने का संकल्प कर उठा ।

सनमुख लोह भरत सन लेऊ ।
जिअत न सुरसरि उतरन देऊ ॥

"मैं भरत के सामने होकर लोहा लूँगा (युद्ध करूँगा) तथा जीते जी उन्हें गंगा पार नहीं करने दूँगा ।"

अनीति करने वाला अपना कितना भी निकट सम्बन्धी क्यों न हो, उसे शत्रु की तरह मानकर दण्ड देने के लिये तैयार हो जाना राम कथा का आदर्श है । लक्ष्मण जी चित्रकूट में भरत की नीयत पर संदेह होते ही सम्बन्ध को ताक में रख देते हैं । वे तो आदर्श के सम्बन्धी हैं । अनीति करने वाले भरत को वे मार डालने के योग्य मानते हैं । वे राम से कहते हैं–

समप्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव मे ।
भरतस्य वधे दोषं न हि पश्यामि राघव ॥

"भरत शत्रु भाव से आया है । अतः वह मार डालने योग्य है । हे राघव ! भरत को मार डालने में मुझे कुछ भी पाप नहीं जान पड़ता ।

यही नहीं अनीति करने वाले भरत का साथ देने के कारण एक ही माँ के पेट से उत्पन्न भाई शत्रुघ्न को भी वे भरत के साथ दण्डित करने को कटिबद्ध हो जाते हैं । तुलसी के शब्दों में वे कहते हैं–

राम निरादर कर फलु पाई ।
सोवहु समर सेज दोऊ भाई ॥

"लक्ष्मण कहते हैं श्रीराम के अपमान का फल दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) पायेंगे । मैं उन्हें युद्ध शैया पर सुला दूँगा अर्थात् मार डालूँगा ।

निषादराज और लक्ष्मण दोनों लड़ने के लिये उतावले, बावले नहीं, वे तो पूर्ण सतर्क हैं और न्याय पक्ष के लिये बड़े से बड़ा बलिदान करने का तत्पर हैं । भरत का पक्ष सही है यह पता लगते ही रोष छोड़कर उनका सम्मान करने में भी पीछे नहीं रहते । सिद्धान्त के लिये संघर्ष की यही मर्यादा है । ऐसे सिद्धान्तनिष्ठ व्यक्ति को मात्र औचित्य ही झुका सकता है, भय नहीं । अनीति के विरोध में मात्र मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षियों का भी योगदान रहा है । विरोधी पक्ष कितना भी सबल होने पर नीति के समर्थन में कमजोर एवं बुढ़े जटायु ने साहस का परिचय दिया और अनीति के विरोध में प्राण न्यौछावर कर दिया । यह अपने कर्तव्य का गौरव ही उसे दीखता है– रावण का भय नहीं वह उस पर टूट पड़ता है, कहता है–

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही ।
निर्भय चलेसि न जानहि मोही ॥

"जटायु बोला अरे, दुष्ट ! खड़ा रह ! निर्भय होकर जा रहा है । मुझे नहीं जानता ।"

जटायु रावण को रोक पाया या नहीं यह बात कम महत्व की है । मुख्य बात यह है कि उसने अनीति करने वाले का मनोबल तोड़ दिया । भय से अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुआ ।

रामायण के विभिन्न पात्र नीति के पक्ष में समयानुसार अनीति का असहयोग, विरोध, प्रतिरोध, संघर्ष आदि करते दीखते हैं । विभीषण का भी उनमें अपना महत्वपूर्ण स्थान हैं । वह सभी प्रकार के प्रयास करते हैं । रावण को सलाह देते हैं, दबाव देते हैं, चेतावनी देते हैं, किन्तु वह नहीं मानता तो फिर उसका मोह छोड़कर उसे त्याग भी देते हैं । भरी सभा में घोषणा करके चल पड़ते हैं ।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राम सत्य संकल्प प्रभु, सभा काल बस तोरि ।
मैं रघुवीर सरन अब, जाउ जनि खोरि ॥

यही नहीं राम-रावण युद्ध में जब रावण की शक्ति से श्रीराम मूर्छित हो जाते हैं तो वह गदा लेकर उससे भिड़ जाता है । उस समय शिवजी पार्वती से इस संदर्भ में कहते हैं—

उमा विभीषण रावनहिं, सनमुख चितव कि काउ ।
सो अब भिरत काल ज्यों, श्रीरघुवीर प्रभाउ ॥

"हे उमा ! विभीषण कभी रावण के सामने देख तक नहीं सकता था । वही अब श्रीराम के प्रभाव से मृत्यु के समान लड़ रहा है ।"

राम का प्रभाव अर्थात् नैतिक पक्ष का, प्रभु पक्ष का प्रभाव ऐसा ही चमत्कारी प्रभाव होता है, जो सामान्य व्यक्तियों में भी अद्भुत शौर्य जगा देता है ।

यह तथ्य राम पक्ष के सामान्य से बन्दरों के क्रिया-कलाप में भी दिखाई देता है । वे सीता की खोज में सभी जगह घूमते हैं । उस बीच यदि कोई राक्षस मिल-जाता है तो न उसे क्षमा करते हैं और न उससे भयभीत होते हैं । वे तो उसे एक ही चपेट में समाप्त कर देते हैं । समाज के लिये घातक व्यक्तियों के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया जाना उचित है ।

कतहु होहिं निसिचर सौं भेंटा ।
प्रान लेहि एक एक चपेटा ॥

"वानरों की भेट किसी राक्षस से हो जाती है तो उसके प्राण एक ही चपेट में ले लेते हैं ।"

अनीति के विरुद्ध व्यापक संघर्ष का एक और पक्ष है, वह है सज्जनों को उत्साहित करना— उन्हें अनीति के विरुद्ध डटकर खड़े हो जाने के लिये प्रेरित करना, दबाव देना, बाध्य करना । वानर सेना के सैनिक जहाँ राक्षसों को समाप्त करते हुए घूमते हैं वहाँ ऋषि-मुनियों की कुशल-क्षेम पूछने से लेकर उन्हें उत्साहित, प्रेरित करने का भी क्रम चलाते रहते हैं—

बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं ।
कोऊ मुनि मिलहि ताहि सब घेरहिं ॥

"वानर सैनिक अनेक प्रकार से पहाड़ों और जंगलों में खोज करते हैं वहाँ उन्हें कोई मुनि मिल जाते हैं तो उन्हें वे घेर लेते हैं ।"

घेर लेने का तात्पर्य है कि उन्हें अपनी सामर्थ्य के अनुसार श्रीराम के अभियान में सहयोगी होने के लिये बाध्य करते हैं । जो व्यक्ति समर्थ हैं और भय या मोहवश सत्कार्य में सहयोग नहीं करते, उन्हें बलपूर्वक उस ओर लगा देना भी संघर्ष का एक पक्ष है । मनुष्य को जो विभूतियाँ मिली हैं उनका सार्थक उपयोग किया जाना चाहिये । यदि उनका सदुपयोग नहीं हो सके तो उनका न होना, नष्ट होना ही अच्छा है, क्योंकि सदुपयोग के अभाव में दुरुपयोग होगा, जो व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिये अहितकर होगा । इस सिद्धान्त के आधार पर रामायण के पात्र ओजस्वी अनुशासन के पक्ष में हैं । भरत जी का राज्य लोभ छोड़कर भूल सुधार के लिये श्रीरामचन्द्र जी को लेने चित्रकूट जाने की घोषणा करते हैं । इस सत्कार्य के समर्थन में अयोध्यावासी भी साथ देते हैं । किसी हानि की शंका उठाये जाने पर वे कहते हैं—

जरउ सो सम्पत्ति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ ।
सनमुख होत जो राम पद, करे न सहस सहाइ ॥

"वह सम्पत्ति, घर, सुख, सम्बन्धी, माता-पिता और भाई बेकार हैं, जो राम मार्ग में बढ़ते हुए साधक की सहर्ष सहायता न करें ।"

ऐसे आदर्शनिष्ठ साहस का परिचय देने वाले व्यक्ति जहाँ होंगे वहाँ श्रेष्ठतम परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी । जहाँ अनीति के प्रतिरोध में भय होगा वहाँ अनीति बढ़ेगी तथा भयभीत होने वाले दूसरों को भी साथ लेकर उसमें पिसेंगे । इसके विपरीत श्रीराम एवं अनेक सहयोगियों की तरह अनीति को उखाड़ फैंकने का साहस दिखाने वाले रामराज्य जैसी श्रेष्ठ सुख-सुविधा भरी परिस्थितियों के हकदार बन जाते हैं ।

ooo

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क .
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६.ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org